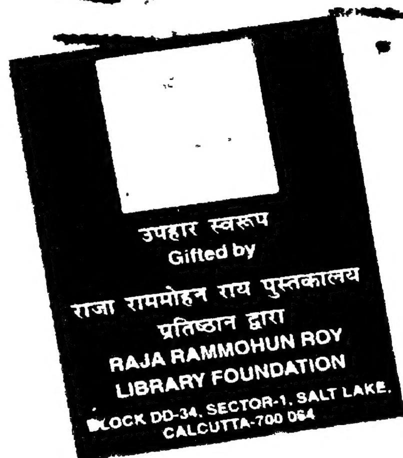


प्रेमचंद रचनावली

11

प्रेमचंद रचनावली

11



कहानियां : 1908-1916



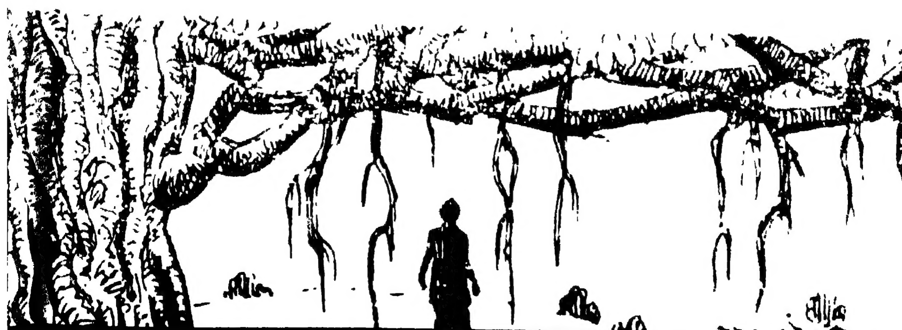
प्रेमचंद रचनावली

खण्ड : ग्यारह

भूमिका एवं मार्गदर्शन

डॉ॰ रामविलास शर्मा





प्रकाशकीय

'प्रेमचंद रचनावली' का प्रकाशन **जनवाणी** के लिए गौरव की बात है। कॉपीराइट समाप्त होने के बाद प्रेमचंद साहित्य विपुल मात्रा में प्रकाशित-प्रचारित हुआ। पर उनका सम्पूर्ण साहित्य अब तक कहीं भी एक जगह उपलब्ध नहीं था। लगातार यह जरूरत महसूस की जा रही थी कि उनके सम्पूर्ण साहित्य का प्रामाणिक प्रकाशन हो।

श्रेष्ठ और कालजयी साहित्यकारों के समग्र कृतित्व का एकत्र प्रकाशन कई दृष्टियों से उपयोगी होता है। इसी आलोक में **'प्रेमचंद रचनावली'** की कुछ विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख बहुत आवश्यक है। इस रचनावली में पहली बार सम्पूर्ण प्रेमचंद साहित्य सर्वाधिक शुद्ध और प्रामाणिक मूल पाठ के साथ सामने आया है। सम्पूर्ण रचनाओं का विभाजन पहले विधावार तत्पश्चात् कालक्रमानुसार किया गया है। रचनाओं के प्रथम प्रकाशन एवं उनके कालक्रम संबंधी प्रामाणिक जानकारी प्रत्येक रचना के अन्त में दी गई है जिससे प्रेमचंद के कृतित्व के अध्ययन और मूल्यांकन में विशेष सुविधा होगी। इसकी अधिकांश सामग्री प्रथम संस्करणों या काफी पुराने संस्करणों से ली गई है। प्रेमचंद साहित्य के अध्ययन, अध्यापन तथा शोध के लिए इस रचनावली का अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि इसमें प्रेमचंद की अब तक उपलब्ध सम्पूर्ण तथा अद्यतन सामग्री का समावेश कर लिया गया है। रचनावली के बीस खण्डों का क्रमबद्ध प्रारूप इस प्रकार है—

> **खण्ड 1-6 :** मौलिक उपन्यास; **खण्ड 7-9 :** लेख, भाषण, संस्मरण, संपादकीय, भूमिकाएं, समीक्षाएं; **खण्ड 10 :** मौलिक नाटक; **खण्ड 11-15:** सम्पूर्ण कहानियां (302); **खण्ड 16-17 :** अनुवाद (उपन्यास, नाटक, कहानी); **खण्ड 18 :** जीवनी एवं बाल साहित्य; **खण्ड 19 :** पत्र (चिट्ठी-पत्री); **खण्ड 20 :** विविध।

रचनावली की विस्तृत भूमिका मूर्धन्य आलोचक डॉ॰ रामविलास शर्मा ने लिखी है, जो इस रचनावली की सबसे बड़ी उपलब्धि है। डॉ॰ शर्मा ने अपनी साहित्य-साधना के व्यस्त क्षणों में भी हर कदम पर हमारा मार्गदर्शन किया। रचनावली का जो यह उत्कृष्ट रूप सामने आया है यह सब उन्हीं के आशीर्वाद का प्रतिफल है। इस कृपा और सहयोग के लिए मैं उनके प्रति नतमस्तक हूं।

बिहार विधान परिषद् के माननीय सभापति, हिन्दी और उर्दू के वरिष्ठ साहित्यकार प्रो॰ जाबिर हुसेन ने प्रेमचंद रचनावली के संपादक-मण्डल का अध्यक्ष होना स्वीकार किया और रचनावली के संपादन कार्य में हमारा उचित मार्गदर्शन किया, इसके लिए मैं उनका आभारी हूं। साथ ही संपादक-मण्डल के विद्वान सदस्यों के प्रति भी हार्दिक आभार प्रकट करता हूं।

श्री केशवदेव शर्मा ने अपनी तमाम व्यस्तताओं के बावजूद सम्पादन कार्य में जिस गहरी लगन, समझदारी और आत्मीयता से सहयोग किया है उसके लिए उनके प्रति अनेकशः धन्यवाद। उनका अहर्निश सानिध्य मुझे स्फूर्ति प्रदान करता रहा। डॉ॰ गीता शर्मा एवं डॉ॰ अशोक कुमार शर्मा, वेद प्रकाश सोनी तथा डॉ॰ विनय के प्रति भी उनके हार्दिक सहयोग के लिए आभारी हूं।

भाई राम आनंद साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करते ही प्रेमचंद द्वारा स्थापित प्रकाशन संस्थान **'सरस्वती प्रेस'** से जुड़ गए थे। लगभग बीस वर्षों तक उन्होंने स्व॰ श्रीपत राय (प्रेमचंद के ज्येष्ठ पुत्र) के मार्गदर्शन में अप्राप्य प्रेमचंद साहित्य पर शोध कार्य किया। वे स्व॰ श्रीपत राय के संपादन में प्रकाशित होने वाली विख्यात कथा-पत्रिका **'कहानी'** के सहायक संपादक रहे। श्रीपत राय के देहांत के बाद उन्होंने **'कहानी'** का स्वतंत्र रूप से संपादन किया और उसे नया रूप तथा गरिमा प्रदान की। उन्होंने जिस गहरी सूझ-बूझ, लगन, धैर्य और निष्ठा से इस रचनावली के संपादन कार्य को इतने सुरुचिपूर्ण और वैज्ञानिक ढंग से संपन्न किया, इसके लिए वे हम सबों के साधुवाद के पात्र हैं।

श्री हरीशचन्द्र वार्ष्णेय, श्री प्रेमशंकर शर्मा, श्री उदयकान्त पाठक ने प्रूफ-संशोधन और सम्पूर्ण मुद्रण कार्य में विशेष जागरूकता और मनस्विता का परिचय दिया, इनके साथ विमलसिंह, आर॰ के॰ यादव, सुनील जैन, शिवानंदसिह तथा संस्था के अन्य सभी सहकर्मियों के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूं क्योंकि इन सबके सहयोग और सद्भाव के बिना यह काम पूरा होना लगभग असंभव था।

मेरी भ्रातृजा रीमा और भ्रातृज संदीप, संजीव, मनीष, विक्रांत, चेतन की लगन और सूझबूझ ने भी मुझे सदैव प्रेरित और उत्साहित किया वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

रचनावली के मुद्रण का कार्य श्री कान्तीप्रसाद शर्मा की देखरेख में हुआ है। उनकी सूझबूझ और श्रमनिष्ठा के लिए वे हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

सर्वश्री विजयदान देथा, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', रामकुमार कृषक, स्वामी प्रेम जहीर, डॉ॰ कुसुम वियोगी, रामकुमार शर्मा आदि सभी मित्रों के सुझावों के लिए भी आभारी हूं।

इस कार्य में पूज्य माताजी श्रीमती जसवन्ती देवी का आशीर्वाद और पिताश्री प्रेमनाथ शर्मा का दीर्घकालीन प्रकाशन-व्यवसाय का अनुभव और आशीर्वाद मेरे विशेष प्रेरणा स्रोत रहे। इनके साथ मातृतुल्या भाभी श्रीमती ललिता शर्मा, अग्रज राजकुमार शर्मा, चमनलाल शर्मा, धर्मपाल शर्मा एवं उनकी धर्मपत्नी इन्दु शर्मा के साथ भाई हरीशकुमार शर्मा एवं सुभाषचन्द्र शर्मा के साथ ही चाचा श्री दीनानाथ शर्मा का भी आभारी हूं जिन्होंने पग-पग पर मेरा मार्ग-दर्शन किया। और सबसे अंत में सहधर्मिणी श्रीमती गीता शर्मा ने जो सहयोग और संबल प्रदान किया उसके लिए आभार अथवा धन्यवाद जैसा शब्द बहुत कम होगा। सारा श्रेय उन्हीं का है।

नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता के सहयोग से दुर्लभ पुस्तक 'महात्मा शेखसादी' लगभग सत्तर वर्ष बाद एक बार फिर इस रचनावली के मार्फत पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की जा रही है। मैं नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूं। उन समस्त संस्थानों, पुस्तकालयों, विभागों, संस्थाओं, लेखकों, संपादकों, अधिकारियों और व्यक्तियों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूं, जिन्होंने इस रचनावली के आयोजन में सहयोग किया।

अन्त में विद्वान पाठकों से हमारा निवेदन है कि वे इस रचनावली की त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करें ताकि आगामी संस्करणों में उन्हें दूर किया जा सके।

हम आशा करते हैं कि हिन्दी जगत् इस बहु-प्रतीक्षित रचनावली का हार्दिक स्वागत करेगा।

अरुण कुमार

(प्रबंध निदेशक)



स्व॰ प्रेमचंद जी और श्री ज॰ ंकर 'प्रसाद'

काशी, 1933



1921

कथाक्रम

सांसारिक प्रेम और देश-प्रेम

शहर लन्दन के एक पुराने टूटे-फूटे होटल में जहां शाम ही से अंधेरा हो जाता है, जिस हिस्से में फैशनेबुल लोग आना ही गुनाह समझते हैं और जहां जुआ, शराबखोरी और बदचलनी के बड़े भयानक दृश्य हरदम आंख के सामने रहते हैं उस होटल में, उस बदचलनी के अखाड़े में इटली का नामवर देश-प्रेमी मैजिनी खामोश बैठा हुआ है। उसका सुंदर चेहरा पीला है, आंखों से चिंता बरस रही है, होंठ सूखे हुए हैं और शायद महीनों से हजामत नहीं बनी। कपड़े मैले-कुचैले हैं। कोई व्यक्ति जो मैजिनी को पहले से न जानता हो, उसे देखकर यह खयाल करने मे नहीं रुक सकता कि हो न हो यह भी उन्हीं अभागे लोगों में है जो अपनी वासनाओं के गुलाम होकर जलील से जलील काम करते हैं।

मैजिनी अपने विचारों में डूबा हुआ है। आह बदनसीब कौम ! ऐ मजलूम इटली ! क्या तेरी किस्मत कभी न सुधरेगी ? क्या तेरे सैकड़ों सपूतों का खून जरा भी रंग न लाएगा ? क्या तेरे देश से निकाले हुए हजारों जांनिसारों की आहों में जरा भी तासीर नहीं ? क्या तू अन्याय और अत्याचार और गुलामी के फंदे में हमेशा गिरफ्तार रहेगी ? शायद तुझमें अभी सुधरने की, स्वतन्त्र होने की योग्यता नहीं आई। शायद तेरी किस्मत में कुछ दिनों और जिल्लत और बर्बादी झेलनी लिखी है। आजादी, हाय आजादी, तेरे लिए मैंने कैसे-कैसे दोस्त, जान से प्यारे दोस्त कुर्बान किए। कैसे-कैसे नौजवान, होनहार नौजवान, जिनकी मांएं और बीवियां आज उनकी कब्र पर आंसू बहा रही हैं और अपने कष्टों और आपदाओं से तंग आकर उनके वियोग के कष्ट में अभागे, आफत के मारे मैजिनी को शाप दे रही हैं। कैसे-कैसे शेर जो दुश्मनों के सामने पीठ फेरना न जानते थे, क्या यह सब कुर्बानियां, यह सब भेंटें काफी नहीं हैं ? आजादी, तू ऐसी कीमती चीज है ! हां तो फिर मैं क्यों जिंदा रहूं ? क्या यह देखने के लिए कि मेरा प्यारा वतन, मेरा प्यारा देश, धोखेबाज अत्याचारी दुश्मनों के पैरों तले रौंदा जाए, मेरे प्यारे भाई, मेरे प्यारे हमवतन, अत्याचार का शिकार बनें ? नहीं, मैं यह देखने के लिए जिंदा नहीं रह सकता !

मैजिनी इन्हीं खयालों में डूबा हुआ था कि उसका दोस्त रफेती जो उसके साथ निर्वासित किया गया था, इस कोठरी में दाखिल हुआ। उसके हाथ में एक बिस्कुट का टुकड़ा था। रफेती उम्र में अपने दोस्त से दो-चार बरस छोटा था। भंगिमा से सज्जनता झलक रही थी। उसने मैजिनी का कंधा पकड़कर हिलाया और कहा—जोजेफ, यह लो, कुछ खा लो।

मैजिनी ने चौंककर सर उठाया और बिस्कुट देखकर बोला—यह कहां से लाए? तुम्हारे पास पैसे कहां थे ?

रफेती—पहले खा लो फिर यह बातें पूछना, तुमने कल शाम से कुछ नहीं खाया है।

मैजिनी—पहले यह बता दो, कहां से लाए ? जेब में तम्बाकू का डिब्बा भी नजर आता है। इतनी दौलत कहां हाथ लगी ?

रफेती—पूछकर क्या करोगे ? वही अपना नया कोट जो मां ने भेजा था, गिरो रख आया हूं।

मैजिनी ने एक ठंडी सांस ली, आंखों से आंसू टप-टप जमीन पर गिर पड़े। रोते हुए बोला—यह तुमने क्या हरकत की, क्रिसमस के दिन आते हैं, उस वक्त क्या पहनोगे क्या इटली के एक लखपती व्यापारी का इकलौता बेटा क्रिसमस के दिन भी ऐसे ही फटे-पुराने कोट में बसर करेगा ? ऐं ?

रफेती—क्यों, क्या उस वक्त तक कुछ आमदनी न होगी, हम-तुम दोनों नए जोड़े बनवाएंगे और अपने प्यारे देश की आने वाली आजादी के नाम पर खुशियां मनाएंगे।

मैजिनी—आमदनी की तो कोई सूरत नजर नहीं आती। जो लेख मासिक पत्रिकाओं के लिए लिखे गए थे, वह वापस ही आ गए। घर से जो कुछ मिलता है, वह कब का खत्म हो चुका। अब और कौन-सा जरिया है ?

रफेती—अभी क्रिसमस को हफ्ता भर पड़ा है। अभी से उसकी क्या फिक्र करें। और अगर मान लो यही कोट पहना तो क्या ? तुमने नहीं मेरी बीमारी में डाक्टर की फीस के लिए मेग्डलीन की अंगूठी बेच डाली थी ? मैं जल्दी ही यह बात उसे लिखने वाला हूं, देखना तुम्हें कैसा बनाती है।

2

क्रिसमस का दिन है, लन्दन में चारों तरफ खुशियों की गर्म बाजारी है। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सब अपने-अपने घर खुशियां मना रहे हैं और अपने अच्छे-से-अच्छे कपड़े पहनकर गिरजाघरों में जा रहे हैं। कोई उदास सूरत नजर नहीं आती। ऐसे वक्त मैजिनी और रफेती दोनों उसी छोटी-सी अंधेरी कोठरी में सर झुकाए खामोश बैठे हैं। मैजिनी ठंडी आहें भर रहा है और रफेती रह-रहकर दरवाजे पर आता है और बदमस्त शराबियों को और दिनों से ज्यादा बहकने और दीवानेपन की हरकतें करते देखकर अपनी गरीबी और मुहताजी की फिक्र दूर करना चाहता है। अफसोस ! इटली का सरताज जिसकी एक ललकार पर हजारों आदमी अपना खून बहाने के लिए तैयार हो जाते थे, आज ऐसा मुहताज हो रहा है कि उसे खाने का ठिकाना नहीं। यहां तक कि आज सुबह से उसने एक सिगार भी नहीं पिया। तम्बाकू ही दुनिया की वह नेमत थी जिससे वह हाथ नहीं खींच सकता था और वह भी आज उसे नसीब न हुआ। मगर इस वक्त उसे अपनी फिक्र नहीं, रफेती, नौजवान, खुशहाल और खूबसूरत होनहार रफेती की फिक्र जी पर भारी हो रही है। वह पूछता है कि मुझे क्या हक है कि मैं एक ऐसे आदमी को अपने साथ गरीबी की तकलीफें झेलने पर मजबूर करूं जिसके स्वागत के लिए दुनिया की सब नेमतें बांहें खोले खड़ी हैं।

इतने में एक चिट्ठीरसां ने पूछा—जोजेफ मैजिनी यहां कहीं रहता है ? अपनी चिट्ठी ले जा।

रफेती ने ख़त ले लिया और खुशी के जोश से उछलकर वोला—जोजेफ, यह लो मैग्डलीन का खत है।

मैजिनी ने चौंककर खत ले लिया और बड़ी बेसब्री से खोला। लिफाफा खोलते ही थोड़े से वालों का एक गुच्छा गिर पड़ा, जो मैग्डलीन ने क्रिसमस के उपहार के रूप में भेजा था। मैजिनी ने उस गुच्छे को चूमा और उसे उठाकर अपने सीने की जेब में खोंस लिया। खत में लिखा था—

माई डियर जोजेफ,

यह तुच्छ भेंट स्वीकार करो। भगवान् करे तुम्हें एक सौ क्रिसमस देखने नसीब हों। इस यादगार को हमेशा अपने पास रखना और गरीब मैग्डलीन को भूलना मत। मैं और क्या लिखूं। कलेजा मुंह को आया जाता है। हाय जोजेफ, मेरे प्यारे, मेरे स्वामी, मेरे मालिक जाजेफ, तू मुझे कब तक तड़पाएगा। अब जब्त नहीं होता। आंखों में आंसू उमड़े आते हैं। मैं तेरे साथ मुसीवतें झेलूंगी, भूखों मरूंगी, यह सब मुझे गवारा है, मगर तुझसे जुदा रहना गवारा नहीं। तुझे कसम है, तुझे अपने ईमान की कसम है, तुझे अपने वतन की कसम, तुझे मेरी कसम, यहां आ जा, यह आंखें तरस रही हैं, कब तुझे देखूंगी। क्रिसमस करीब है, मुझे क्या, जब तक जिंदा हूं, तेरी हूं।

तुम्हारी
मैग्डलीन

3

मैग्डलीन का घर स्विट्जरलैंड में था। वह एक समृद्ध व्यापारी की वेटी थी और अनिंद्य सुदरी। आंतरिक सौंदर्य में भी उसका जोड़ मिलना मुश्किल था। कितने ही अमीर और रईस लोग उसका पागलपन सर में रखते थे, मगर वह किसी का कुछ खयाल में न लाती थी। मैजिनी जब इटली से भागा तो स्विट्जरलैंड में आकर शरण ली। मैग्डलीन उस वक्त भोली-भाली जवानी की गोद में खेल रही थी। मैजिनी की हिम्मत और कुर्बानियों की तारीफें पहले ही सुन चुकी थी। कभी-कभी अपनी मां के साथ उसके यहां आने लगी और आपस का मिलना-जुलना जैसे-जैसे बढ़ा और मैजिनी के भीतरी सौंदर्य का ज्यों-ज्यों उसके दिल पर गहरा असर होता गया, उसकी मुहब्बत उसके दिल में पक्की होती गई। यहां तक कि उसने एक दिन खुद लाज-शर्म को किनारे रखकर मैजिनी के पैरों पर सिर रख दिया और कहा—मुझे अपनी सेवा में स्वीकार कर लीजिए।

मैजिनी पर भी उस वक्त जवानी छाई हुई थी, देश की चिंताओं ने अभी दिल को ठंडा नहीं किया था। जवानी की पुरजोश उम्मीदें दिल में लहरें मार रही थीं, मगर उसने संकल्प कर लिया था कि मैं देश और जाति पर अपने को न्योछावर कर दूंगा। और इस संकल्प पर कायम रहा। एक ऐसी सुंदर युवती के नाजुक-नाजुक होंठों से ऐसी दरख्वास्त सुनकर रद कर देना मैजिनी ही जैसे संकल्प के पक्के, हियाव के पूरे आदमी का काम था।

मैग्डलीन भीगी-भीगी आंखें लिए उठी मगर निराश न हुई थी। इस असफलता ने उसके दिल में प्रेम की आग और भी तेज कर दी और गो आज मैजिनी को स्विट्जरलैंड छोड़े कई साल गुजरे मगर वफादार मैग्डलीन अभी तक मैजिनी को नहीं भूली। दिनों के

साथ उसकी मुहब्बत और भी गाढ़ी और सच्ची होती जाती है।

मैजिनी खत पढ़ चुका तो एक लंबी आह भरकर रफेती से बोला—देखा मैग्डलीन क्या कहती है ?

रफेती—उस गरीब की जान लेकर दम लोगे !

मैजिनी फिर खयाल में डूबा—मैग्डलीन, तू नौजवान है, सुंदर है, भगवान् ने तुझे अकूत दौलत दी है, तू क्यों एक गरीब, दुखियारे, कंगाल, फक्कड़, परदेश में मारे-मारे फिरने वाले आदमी के पीछे अपनी जिंदगी मिट्टी में मिला रही है ! मुझ जैसा मायूस, आफत का मारा हुआ आदमी तुझे क्योंकर खुश रख सकेगा ? नहीं, नहीं, मैं ऐसा स्वार्थी नहीं हूं। दुनिया में बहुत-से ऐसे हंसमुख खुशहाल नौजवान हैं जो तुझे खुश रख सकते हैं, जो तेरी पूजा कर सकते हैं। क्यों तू उनमें से किसी को अपनी गुलामी में नहीं ले लेती। मैं तेरे प्रेम, सच्चे, नेक और निःस्वार्थ प्रेम का आदर करता हूं। मगर मेरे लिए, जिसका दिल देश और जाति पर समर्पित हो चुका है, तू एक प्यारी और हमदर्द बहन के सिवा और कुछ नहीं हो सकती। मुझमें ऐसी क्या खूबी है, ऐसे कौन से गुण हैं कि तुझ जैसी देवी मेरे लिए ऐसी मुसीबतें झेल रही है। आह मैजिनी, कम्बख्त मैजिनी, तू कहीं का न हुआ। जिनके लिए तूने अपने को न्योछावर कर दिया, वह तेरी सूरत से नफरत करते हैं। जो तेरे हमदर्द हैं, वह समझते हैं तू सपने देख रहा है।

इन खयालों से बेबस होकर मैजिनी ने कलम-दावात निकाली और मैग्डलीन को खत लिखना शुरू किया।

4

प्यारी मैग्डलीन,

तुम्हारा खत उस अनमोल तोहफे के साथ आया। मैं तुम्हारा हृदय से कृतज्ञ हूं कि तुमने मुझ जैसे बेकस और बेबस आदमी को इस भेंट के काबिल समझा। मैं उसकी हमेशा कद्र करूंगा। यह मेरे पास हमेशा एक सच्चे, निःस्वार्थ और अमर प्रेम की स्मृति के रूप में रहेगी और जिस वक्त यह मिट्टी का शरीर कब्र की गोद में जाएगा मेरी आखिरी वसीयत यह होगी कि यह यादगार मेरे जनाजे के साथ दफन कर दी जाए। मैं शायद खुद उस ताकत का अंदाजा नहीं लगा सकता जो मुझे इस खयाल से मिलती है, कि दुनिया में जहां चारों तरफ मेरे बारे में बदगुमानियां फैल रही हैं, कम-से-कम एक ऐसी नेक औरत है जो मेरी नियत की सफाई और मेरी बुराइयों से पाक कोशिश पर सच्ची निष्ठा रखती है और शायद तुम्हारी हमदर्दी का यकीन है कि मैं जिंदगी की ऐसी कठिन परीक्षाओं में सफल होता जाता हूं।

मगर प्यारी बहन, मुझे कोई तकलीफ नहीं है। तुम मेरी तकलीफों के खयाल से अपना दिल मत दुखाना। मैं बहुत आराम से हूं। तुम्हारे प्रेम जैसी अक्षयनिधि पाकर भी अगर मैं कुछ थोड़े से शारीरिक कष्टों का रोना रोऊं तो मुझ जैसा अभागा आदमी दुनिया में कौन होगा।

मैंने सुना है, तुम्हारी सेहत रोज-ब-रोज गिरती जाती है। मेरा जी बेअख्तियार

चाहता है कि तुझे देखूं। काश, मैं आजाद होता; काश, मेरा दिल इस काबिल होता कि तुझे भेंट चढ़ा सकता। मगर एक पजमुर्दा उदास दिल तेरे काबिल नहीं। मैग्डलीन, खुदा के वास्ते अपनी सेहत का खयाल रक्खो, मुझे शायद इससे ज्यादा और किसी बात की तकलीफ न होगी कि प्यारी मैग्डलीन तकलीफ में है और मेरे लिए ! तेरा पाकीजा चेहरा इस वक्त निगाहों के सामने है। मेगा ! देखो मुझसे नाराज न हो। खुदा की कसम, मैं तुम्हारे काबिल नहीं हूं। आज क्रिसमस का दिन है, तुम्हें क्या तोहफा भेजूं। खुदा तुम पर हमेशा अपनी बेइंतहा बरकतों का साया रक्खे। अपनी मां को मेरी तरफ से सलाम कहना। तुम लोगों को देखने की इच्छा है। देखें कब तक पूरी होती है।

तेरा—जोजेफ

5

इस वाकये के बाद बहुत दिन गुजर गए। जोजेफ मैजिनी फिर इटली पहुंचा और रोम में पहली बार जनता के राज्य का ऐलान किया गया। तीन आदमी राज्य की व्यवस्था के लिए निर्वाचित किए गए। मैजिनी भी उनमें एक था। मगर थोड़े ही दिनों में फ्रांस की ज्यादतियों और पीडमांट के बादशाह की दगाबाजियों की बदौलत इस जनता के राज का खात्मा हो गया और उसके कर्मचारी और मंत्री अपनी जानें लेकर भाग निकले। मैजिनी अपने विश्वसनीय मित्रों की दगाबाजी और मौका-परस्ती पर पेचोताब खाता हुआ खस्ताहाल और परेशान रोम की गलियों की खाक छानता फिरता था। उसका यह सपना कि रोम को मैं जरूर एक दिन जनता के राज का केन्द्र बनाकर छोड़ूंगा, पूरा होकर फिर तितर-बितर हो गया।

दोपहर का वक्त था, धूप से परेशान होकर वह एक पेड़ की छाया में जरा दम लेने के लिए ठहर गया कि सामने से एक लेडी आती हुई दिखाई दी। उसका चेहरा पीला था, कपड़े बिल्कुल सफेद और सादा, उम्र तीस से ज्यादा। मैजिनी आत्म-विस्मृति की दशा में था कि यह स्त्री प्रेम से व्यग्र होकर उसके गले लिपट गई। मैजिनी ने चौंककर देखा, बोला—प्यारी मैग्डलीन, तुम हो ! यह कहते-कहते उसकी आंखें भीग गईं। मैग्डलीन ने रोकर कहा—जोजेफ ! और मुंह से कुछ न निकला।

दोनों खामोश कई मिनट तक रोते रहे। आखिर मैजिनी बोला—तुम यहां कब आईं, मेगा ?

मैग्डलीन—मैं यहां कई महीने से हूं, मगर तुमसे मिलने की कोई सूरत नहीं निकलती थी। तुम्हें काम-काज में डूबा हुआ देखकर और यह समझकर कि अब तुम्हें मुझ जैसी औरत की हमदर्दी की जरूरत बाकी नहीं रही, तुमसे मिलने की कोई जरूरत न देखती थी। (रुककर) क्यों जोजेफ, यह क्या कारण है कि अक्सर लोग तुम्हारी बुराई किया करते हैं ? क्या वह अंधे हैं, क्या भगवान् ने उन्हें आंखें नहीं दीं ?

जोजेफ -मेगा, शायद वह लोग सच कहते होंगे। फिलहाल मुझमें वह गुण नहीं हैं जो मैं शान के मारे अक्सर कहा करता हूं कि मुझमें हैं या जिन्हें तुम अपनी सरलता और पवित्रता के कारण मुझमें मौजूद समझती हो। मेरी कमजोरियां रोज-ब-रोज मुझे मालूम होती जाती हैं।

मैग्डलीन—जभी तो तुम इस काबिल हो कि मैं तुम्हारी पूजा करूं। मुबारक है वह इंसान जो खुदी को मिटाकर अपने को हेच समझने लगे। जोजेफ, भगवान् के लिए मुझे इस तरह अपने से मत अलग करो। मैं तुम्हारी हो गई हूं और मुझे विश्वास है कि तुम वैसे ही पाक-साफ हो जैसा हमारा ईसू था। यह खयाल मेरे मन पर अंकित हो गया है और अगर उसमें जरा कमजोरी आ गई थी तो तुम्हारी इस वक्त की बातचीत ने उसे और भी पक्का कर दिया। बेशक तुम फरिश्ते हो। मगर मुझे अफसोस है कि दुनिया में क्यों लोग इतने तंग-दिल और अंधे होते हैं और खासतौर पर वह लोग जिन्हें मैं तंग-खयाल से ऊपर समझती थी। रफेती, रसारीनो पलाइनो, बर्नाबास यह सब-के-सब तुम्हारे दोस्त हैं। तुम उन्हें अपना दोस्त समझते हो, मगर वह सब तुम्हारे दुश्मन हैं और उन्होंने मुझसे मेरे सामने सैकड़ों ऐसी बातें तुम्हारे बारे में कही हैं जिनका मैं मरकर भी यकीन नहीं कर सकती। वह सब गलत, झूठ बकते हैं। हमारा प्यारा जोजेफ वैसा ही है जैसा मैं समझती थी बल्कि उससे भी अच्छा। क्या यह भी तुम्हारी एक जाती खूबी नहीं है कि तुम अपने दुश्मनों को भी अपना दोस्त समझते हो ?

जोजेफ से अब सब्र न हो सका। मैग्डलीन के मुरझाए हुए पीले-पीले हाथों को चूमकर कहा—प्यारी मेगा, मेरे दोस्त बेकसूर हैं और मैं खुद दोषी हूं। (रोकर) जो कुछ उन्होंने कहा वह सब मेरे ही इशारे और मर्जी के अनुसार था, मैंने तुमसे दगा की मगर मेरी प्यारी बहन, यह सिर्फ इसलिए था कि तुम मेगी तरफ से बेपरवाह हो जाओ और अपनी जवानी के बाकी दिन खुशी से बसर करो। मैं बहुत शर्मिंदा हूं। मैंने तुम्हें जरा भी न समझा था। मैं तुम्हारे प्रेम की गहराई से अपरिचित था क्योंकि मैं जो चाहता था उसका उल्टा असर हुआ। मगर मेगा, मैं माफी चाहता हूं।

मैग्डलीन—हाय जोजेफ, तुम मुझसे माफी मांगते हो ! ऐं, तुम जो दुनिया के सब इंसानों से ज्यादा नेक, ज़्यादा सच्चे और ज्यादा लायक हो ! मगर हां, बेशक तुमने मुझे बिल्कुल न समझा था जोजेफ ! यह तुम्हारी गलती थी। मुझे ताज्जुब तो यह है कि तुम्हारा ऐसा पत्थर का दिल कैसे हो गया।

जोजेफ—मेगा, ईश्वर जानता है जब मैंने रफेती को यह सब सिखा-पढ़ाकर तुम्हारे पास भेजा है, उस वक्त मेरे दिल की क्या कैफियत थी। मैं जो दुनिया में नेकनामी को सबसे ज्यादा कीमती समझता हूं और मैं जिसने दुश्मनों के जाती हमलों को कभी पूरी तरह काटे बिना न छोड़ा, अपने मुंह से सिखाऊं कि जाकर मुझे बुरा कहो ! मगर यह केवल इसलिए था कि तुम अपने शरीर का ध्यान रखो और मुझे भूल जाओ।

सच्चाई यह थी कि मैजिनी ने मैग्डलीन के प्रेम को रोज-ब-रोज बढ़ते देखकर एक खास हिकमत की थी। उसे खूब मालूम था कि मैग्डलीन के प्रेमियों में से कितने ही ऐसे हैं जो उससे ज्यादा सुंदर, ज्यादा दौलतमंद और ज्यादा अक्ल वाले हैं, मगर वह किसी को खयाल में नहीं लाती। मुझमें उसके लिए जो खास आकर्षण है, वह मेरे कुछ खास गुण हैं और अगर मेरे ऐसे मित्र, जिनका आदर मैग्डलीन भी करती है, उससे मेरी शिकायत करके इन गुणों का महत्त्व उसके दिल से मिटा दें तो वह खुद-ब-खुद मुझे भूल जाएगी। पहले तो उसके दोस्त इस काम के लिए तैयार न होते थे मगर इस डर से कि कहीं मैग्डलीन ने घुल-घुलकर जान दे दी तो मैजिनी ज़िंदगी भर हमें माफ न करेगा, उन्होंने यह अप्रिय काम

स्वीकार कर लिया था। वह स्विट्जरलैंड गए और जहां तक उनकी जबान में ताकत थी, अपने दोस्त की पीठ पीछे बुराई करने में खर्च की। मगर मैग्डलीन पर मुहब्बत का रंग ऐसा गहरा चढ़ा हुआ था, कि इन कोशिशों का इसके सिवाय और कोई नतीजा न हो सकता था जो हुआ। वह एक रोज बेकरार होकर घर से निकल खड़ी हुई और रोम में आकर एक सराय में ठहर गई। यहां उसका रोज का नियम था कि मैजिनी के पीछे-पीछे उसकी निगाह से दूर घूमा करती मगर उसे आश्वस्त और अपनी सफलता से प्रसन्न देखकर उसे छेड़ने का साहस न करनी थी। आखिरकार जब फिर उस पर असफलताओं का बार हुआ और वह फिर दुनिया में बेकस और बेबस हो गया तो मैग्डलीन ने समझा, अब इसको किसी हमदर्द की जरूरत है। और पाठक देख चुके हैं जिस तरह वह मैजिनी से मिली।

6

मैजिनी रोम से फिर इंगलिस्तान पहुंचा और यहां एक अरसे तक रहा। सन् 1870 में उसे खबर मिली कि सिसली की रिआया बगावत पर आमादा है और उन्हें मैदाने जंग में लाने के लिए एक उभारने वाले की जरूरत है। बस वह फौरन सिसली पहुंचा मगर उसके जाने के पहले शाही फौज ने बागियों को दबा दिया था। मैजिनी जहाज से उतरते ही गिरफ्तार करके एक कैदखाने में डाल दिया गया। मगर चूंकि अब वह बहुत बुड्ढा हो गया था, शाही हुक्काम ने इस डर से कि कहीं वह कैद की तकलीफों से मर जाए तो जनता को संदेह होगा कि बादशाह की प्रेरणा से वह कत्ल कर डाला गया, उसे रिहा कर दिया। निराश और टूटा हुआ दिल लिए मैजिनी फिर स्विट्जरलैंड की तरफ रवाना हुआ। उसकी जिंदगी की तमाम उम्मीदें खाक में मिल गई। इसमें शक नहीं कि इटली के एकताबद्ध हो जाने के दिन बहुत पास आ गए थे मगर उसकी हुकूमत की हालत उससे हर्गिज बेहतर न थी जैसी आस्ट्रिया या नेपल्स के शासन-काल में। अंतर यह था कि पहले वह एक दूसरी कौम की ज्यादतियों से परेशान थे, अब अपनी कौम के हाथों। इन निरंतर असफलताओं ने दृढ़व्रती मैजिनी के दिल में यह खयाल पैदा किया कि शायद जनता की राजनीतिक शिक्षा इस हद तक नहीं हुई है, कि वह अपने लिए एक प्रजातांत्रिक शासन-व्यवस्था की बुनियाद डाल सके और इसी नियत से वह स्विट्जरलैंड जा रहा था कि वहां से एक जबर्दस्त कौमी अखबार निकाले क्योंकि इटली में उसे अपने विचारों को फैलाने की इजाजत न थी। वह रात भर नाम बदलकर रोम में ठहरा। फिर वहां से अपनी जन्मभूमि जिनेवा में आया और अपनी नेक मां की कब्र पर फूल चढ़ाए। इसके बाद स्विट्जरलैंड की तरफ चला और साल भर तक कुछ विश्वसनीय मित्रों की सहायता से अखबार निकालता रहा। मगर निरंतर चिंता और कष्टों ने उसे बिल्कुल कमजोर कर दिया था। सन् 1870 में वह सेहत के खयाल से इंगलिस्तान आ रहा था कि आल्प्स पर्वत की तलहटी में निमोनिया की बीमारी ने उसके जीवन का अंत कर दिया और वह एक अरमानों से भरा हुआ दिल लिए स्वर्ग को सिधारा। इटली का नाम मरते दम तक उसकी जबान पर था। यहां भी उसके बहुत-से समर्थक और हमदर्द शरीक थे। उसका जनाजा बड़ी धूम से निकला। हजारों आदमी साथ थे और एक बड़ी सुहानी खुली हुई जगह पर पानी के एक साफ चश्मे

के किनारे पर इस कौम के लिए मर मिटने वाले को सुला दिया गया।

7

मैजिनी को कब्र में सोए हुए आज तीन दिन गुजर गए। शाम का वक्त था, सूरज की पीली किरणें इस ताजा कब्र पर हसरत भरी आंखों से ताक रही हैं। तभी एक अधेड़ खूबसूरत औरत, सुहाग के जोड़े पहने, लड़खड़ाती हुई आई। यह मैग्डलीन थी। उसका चेहरा शोक में डूबा हुआ था, बिल्कुल मुर्झाया हुआ, कि जैसे अब इस शरीर में जान बाकी नहीं रही। वह इस कब्र के सिरहाने बैठ गई और अपने सीने पर खुंसे हुए फूल उस पर चढ़ाए, फिर घुटनों के बल बैठकर सच्चे दिल से दुआ करती रही। जब खूब अंधेरा हो गया, बर्फ पड़ने लगी तो वह चुपके से उठी और खामोश सर झुकाए करीब के एक गांव में जाकर रात बसर की और भोर की बेला अपने मकान की तरफ रवाना हुई।

मैग्डलीन अब अपने घर की मालिक थी। उसकी मां बहुत जमाना हुआ, मर चुकी थी। उसने मैजिनी के नाम से एक आश्रम बनवाया और खुद आश्रम की ईसाई लेडियों के लिबास में वहां रहने लगी। मैजिनी का नाम उसके लिए एक निहायत पुरदर्द और दिलकश गीत से कम न था। हमदर्दो और कद्रदानो के लिए उसका घर उनका अपना घर था। मैजिनी के खत उसकी इंजील और मैजिनी का नाम उसका ईश्वर था। आसपास के गरीब लडको और मुफलिस बीवियों के लिए यही बरकत से भरा हुआ नाम जीविका का साधन था। मैग्डलीन तीन बरस तक जिंदा रही और जब मरी तो अपनी आखिरी वसीयत के मुताबिक उसी आश्रम में दफन की गई। उसका प्रेम मामूली प्रेम न था, एक पवित्र और निष्कलक भाव था और वह हमको उन प्रेम-रस में डूबी हुई गोपियो की याद दिलाता है जो श्रीकृष्ण के प्रेम में वृंदावन की कुंजों और गलियों में मंडलाया करती थी, जो उससे मिले होने पर भी उससे अलग थीं और जिनके दिलों मे प्रेम के सिवा और किसी चीज की जगह न थी। मैजिनी का आश्रम आज तक कायम है और गरीब और साधु-संत अभी तक मैजिनी का पवित्र नाम लेकर वहा हर तरह का सुख पाते हैं।

[प्रथम प्रकाशन 'इश्के दुनिया व हुब्बे वतन' शीर्षक से उर्दू मे। 'जमाना' (उर्दू मासिक पत्रिका), अप्रैल, 1908। 'सोजे वतन' (उर्दू कहानी सग्रह), जुलाई, 1908 मे सकलित। प्रेमचद की पहली उर्दू कहानी। हिन्दी रूप 'सासारिक प्रेम और देशप्रेम' शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-1 मे सकलित।]

दुनिया का सबसे अनमोल रतन

दिलफिगार एक कंटीले पेड़ के नीचे दामन चाक किए बैठा हुआ खून के आंसू बहा रहा था। वह सौंदर्य की देवी यानी मलका दिलफरेब का सच्चा और जान देने वाला प्रेमी था। उन प्रेमियों में नहीं, जो इत्र फुलेल में बसकर और शानदार कपड़ों में सजकर आशिक के वेश में माशूकियत का दम भरते हैं। बल्कि उन सीधे-सादे, भोले-भाले फिदाइयों में जो

जंगल और पहाड़ों से सर टकराते हैं और फरियाद मचाते फिरते हैं। दिलफरेब ने उससे कहा था कि अगर तू मेरा सच्चा प्रेमी है, तो जा और दुनिया की सबसे अनमोल चीज लेकर मेरे दरबार में आ। तब मैं तुझे अपनी गुलामी में कबूल करूंगी। अगर तुझे वह चीज न मिले तो खबरदार इधर रुख न करना, वर्ना सूली पर खिंचवा दूंगी। दिलफिगार को अपनी भावनाओं के प्रदर्शन का, शिकवे-शिकायत का, प्रेमिका के सौंदर्य-दर्शन का तनिक भी अवसर न दिया गया। दिलफरेब ने ज्योंही यह फैसला सुनाया उसके चोबदारों ने गरीब दिलफिगार को धक्के देकर बाहर निकाल दिया। और आज तीन दिन से यह आफत का मारा आदमी उसी कंटीले पेड़ के नीचे उसी भयानक मैदान में बैठा हुआ सोच रहा है कि क्या करूं ? दुनिया की सबसे अनमोल चीज मुझको मिलेगी? नामुमकिन! और वह है क्या? कारूं का खजाना? आबे हयात ? खुसरो का ताज? जामेजम? तख्ते ताऊस ? परवेज की दौलत ? नहीं, यह चीजें हर्गिज नहीं। दुनिया में जरूर इनसे भी महंगी, इनसे भी अनमोल चीजें मौजूद हैं, मगर वह क्या हैं ? कैसे मिलेंगी ? या खुदा, मेरी मुश्किल क्योंकर आसान होगी ?

दिलफिगार इन्हीं खयालों में चक्कर खा रहा था और अक्ल कुछ काम नहीं करती थी। मुनीर शामी को हातिम-सा मददगार मिल गया। ऐ काश, कोई मेरा भी मददगार हो जाता। ऐ काश, मुझे भी उस चीज का, जो दुनिया की सबसे बेशकीमती चीज है, नाम बतला दिया जाता ! बला से वह चीज हाथ न आती मगर मुझे इतना तो मालूम हो जाता कि वह किस किस्म की चीज है। मैं घड़े बराबर मोती की खोज में जा सकता हूं। मैं समुंदर का गीत, पत्थर का दिल, मौत की आवाज और इनसे भी ज्यादा बेनिशान चीजों की तलाश में कमर कस सकता हूं। मगर दुनिया की सबसे अनमोल चीज ! यह मेरी कल्पना की उड़ान से बहुत ऊपर है।

आसमान पर तारे निकल आए थे। दिलफिगार यकायक खुदा का नाम लेकर उठा और एक तरफ को चल खड़ा हुआ। भूखा-प्यासा, नंगे बदन, थकन से चूर, वह बरसों वीरानों और आबादियों की खाक छानता फिरा, तलवे कांटों से छलनी हो गए, शरीर में हड्डियां-ही-हड्डियां दिखाई देने लगीं मगर वह चीज, जो दुनिया की सबसे बेशकीमती चीज थी, न मिली और न उसका कुछ निशान मिला।

एक रोज वह भूलता-भटकता एक मैदान में जा निकला, जहां हजारों आदमी गोल बांधे खड़े थे। बीच में कई अमामे और चोगे वाले दढ़ियल काजी अफसरी शान से बैठे हुए आपस में कुछ सलाह-मशविरा कर रहे थे और इस जमात से जरा दूर पर एक सूली खड़ी थी। दिलफिगार कुछ तो कमजोरी की वजह से और कुछ यहां की कैफियत देखने के इरादे से ठिठक गया। क्या देखता है कि कई लोग नंगी तलवारें लिए, एक कैदी को, जिसके हाथ-पैरों में जंजीरें थीं, पकड़े चले आ रहे हैं। सूली के पास पहुंचकर सब सिपाही रुक गए और कैदी की हथकड़ियां-बेड़ियां सब उतार ली गईं। इस अभागे आदमी का दामन सैकड़ों बेगुनाहों के खून के छींटों से रंगीन था, और उसका दिल नेकी के खयाल और रहम की आवाज से जरा भी परिचित न था। उसे काला चोर कहते थे। सिपाहियों ने उसे सूली के तख्ते पर खड़ा कर दिया, मौत की फांसी उसकी गर्दन में डाल दी और जल्लादों ने तख्ता खींचने का इरादा किया कि वह अभागा मुजरिम चीखकर बोला—खुदा के वास्ते मुझे एक

पल के लिए फांसी से उतार दो ताकि अपने दिल की आखिरी आरजू निकाल लूं। यह सुनते ही चारों तरफ सन्नाटा छा गया। लोग अचंभे में आकर ताकने लगे। काजियों ने एक मरने वाले आदमी की अंतिम याचना को रद्द करना उचित न समझा और बदनसीब पापी काला चोर जरा देर के लिए फांसी से उतार लिया गया।

इसी भीड़ में एक खूबसूरत भोला-भाला लड़का एक छड़ी पर सवार होकर अपने पैरों पर उछल-उछल फर्जी घोड़ा दौड़ा रहा था और अपनी सादगी की दुनिया में ऐसा मगन था कि जैसे वह इस वक्त सचमुच अरबी घोड़े का शहसवार है। उसका चेहरा उस सच्ची खुशी से कमल की तरह खिला हुआ था जो चंद दिनों के लिए बचपन ही में हासिल होती है और जिसकी याद हमको मरते दम तक नहीं भूलती। उसका दिल अभी तक पाप की गर्द और धूल से अछूता था और मासूमियत उसे अपनी गोद में खिला रही थी।

बदनसीब काला चोर फांसी से उतरा। हजारों आंखें उस पर गड़ी हुई थीं। वह उस लड़के के पास आया और उसे गोद में उठाकर प्यार करने लगा। उसे इस वक्त वह जमाना याद आया जब वह खुद ऐसा ही भोला-भाला, ऐसा ही खुश-व-खुर्रम और दुनिया की गंदगियों से ऐसा ही पाक-साफ था। मां गोदियों में खिलाती थी, बाप बलाएं लेता था और सारा कुनबा जान न्योछावर करता था। आह, काले चोर के दिल पर इस वक्त बीते हुए दिनों की याद का इतना असर हुआ कि उसकी आंखों से, जिन्होंने दम तोड़ती हुई लाशों को तड़पते देखा और न झपकीं, आंसू का एक कतरा टपक पड़ा। दिलफिगार ने लपककर उस अनमोल मोती को हाथ में ले लिया और उसके दिल ने कहा—बेशक यह दुनिया की सबसे अनमोल चीज है जिस पर तख्ते ताऊस और जामे-जम और आबे हयात और जरे परवेज सब न्योछावर हैं।

इस खयाल से खुश होता है, कामयाबी की उम्मीद में सरमस्त, दिलफिगार अपनी माशूका दिलफरेब के शहर मीनोसवाद को चला। मगर ज्यों-ज्यों मंजिलें तय होती जाती थीं उसका दिल बैठा जाता था कि कहीं उस चीज की, जिसे मैं दुनिया की सबसे बेशकीमती चीज समझता हूं, दिलफरेब की आंखों में कद्र न हुई तो मैं फांसी पर चढ़ा दिया जाऊंगा और इस दुनिया से नामुराद जाऊंगा। लेकिन जो हो सो हो, अब तो किस्मत-आजमाई है। आखिरकार पहाड़ और दरिया तय करते शहर मीनोसवाद में आ पहुंचा और दिलफरेब की ड्योढ़ी पर जाकर बिनती की कि थकान से टूटा हुआ दिलफिगार खुदा के फजल से हुक्म की तामील करके आया है, और आपके कदम चूमना चाहता है। दिलफरेब ने फौरन अपने सामने बुला भेजा और एक सुनहरे परदे की ओट से फरमाइश की कि वह अनमोल चीज पेश करो। दिलफिगार ने आशा और भय की एक विचित्र मनःस्थिति में वह बूंद पेश की और उसकी सारी कैफियत बहुत पुरअसर लफ्जों में बयान की। दिलफरेब ने पूरी कहानी बहुत गौर से सुनी और वह भेंट हाथ में लेकर जरा देर तक गौर करने के बाद बोली—दिलफिगार, बेशक तूने दुनिया की एक बेशकीमत चीज ढूंढ़ निकाली, तेरी हिम्मत और तेरी सूझ-बूझ की दाद देती हूं ! मगर यह [illegible] बेशकीमती चीज नहीं, इसलिए तू यहां से जा और फिर कोशिश कर, [illegible] अब की तेरे [illegible] वह मोती लगे और तेरी किस्मत में मेरी गुलामी लिखी हो। जैसा [illegible] मैंने पहले ही [illegible] दिया था, मैं तुझे फांसी पर चढ़वा सकती हूं, मगर मैं तेरी [illegible] करती हूं इसलिए कि तुझमें वह गुण



मौजूद हैं, जो मैं अपने प्रेमी में देखना चाहती हूं और मुझे यकीन है कि तू जरूर कभी-न-कभी कामयाब होगा।

नाकाम और नामुराद दिलफिगार इस माशूकाना इनायत से जग दिलेर होकर बोला—ऐ दिल की रानी, बड़ी मुद्दत के बाद तेरी ड्योढ़ी पर सजदा करना नसीब होता है। फिर खुदा जाने ऐसे दिन कब आएंगे, क्या तू अपने जान देने वाले आशिक के बुरे हाल पर तरस न खाएगी और क्या अपने रूप की एक झलक दिखाकर इस जलते हुए दिलफिगार को आने वाली सख्तियों के झेलने की ताकत न देगी ? तेरी एक मस्त निगाह के नशे से चूर होकर मैं वह कर सकता हूं जो आज तक किसी से न बन पड़ा हो।

दिलफरेब आशिक की यह चाव भरी बातें सुनकर गुस्सा हो गई और हुक्म दिया कि इस दीवाने को खड़े-खड़े दरबार से निकाल दो। चोबदार ने फौरन गरीब दिलफिगार को धक्का देकर यार के कूचे से बाहर निकाल दिया।

कुछ देर तक तो दिलफिगार अपनी निष्ठुर प्रेमिका की इस कठोरता पर आंसू बहाता रहा, और फिर सोचने लगा कि अब कहां जाऊं। मुद्दतों रास्ते नापने और जंगलों में भटकने के बाद आंसू की यह बूंद मिली थी, अब ऐसी कौन-सी चीज है जिसकी कीमत इस आबदार मोती से ज्यादा हो। हजरते खिज्र ! तुमने सिकन्दर को आबे हयात के कुएं का रास्ता दिखाया था, क्या मेरी बांह न पकड़ोगे ? सिकन्दर सारी दुनिया का मालिक था। मैं तो एक बेघरबार मुसाफिर हूं। तुमने कितनी ही डूबती किश्तियां किनारे लगाई हैं, मुझ गरीब का बेड़ा भी पार करो। ऐ आलीमुकाम जिबरील ! कुछ तुम्हीं इस नीमजान दुखी आशिक पर तरस खाओ। तुम खुदा के एक खास दरबारी हो, क्या मेरी मुश्किल आसान न करोगे ? गरज यह कि दिलफिगार ने बहुत फरियाद मचाई मगर उसका हाथ पकड़ने के लिए कोई सामने न आया। आखिर निराश होकर वह पागलों की तरह दुबारा एक तरफ को चल खड़ा हुआ।

दिलफिगार ने पूरब से पश्चिम तक और उत्तर से दक्खिन तक कितने ही जंगलों और वीरानों की खाक छानी, कभी बर्फिस्तानी चोटियों पर सोया, कभी डरावनी घाटियों में भटकता फिरा मगर जिस चीज की धुन थी वह न मिली, यहां तक कि उसका शरीर हड्डियों का एक ढांचा रह गया।

एक रोज वह शाम के वक्त किसी नदी के किनारे खस्ताहाल पड़ा हुआ था। बेखुदी के नशे से चौंका तो क्या देखता है कि चंदन की एक चिता बनी हुई है और उस पर एक युवती सुहाग का जोड़े पहने सोलहों सिंगार किए बैठी है। उसकी जांघ पर उसके प्यारे पति का सर है। हजारों आदमी गोल बांधे खड़े हैं और फूलों की बरखा कर रहे हैं। यकायक चिता में से खुद-ब-खुद एक लपक उठी। सती का चेहरा उस वक्त एक पवित्र भाव से आलोकित हो रहा था, चिता की पवित्र लपटें उसके गले से लिपट गई और दम के दम में वह फूल-सा शरीर राख का ढेर हो गया। प्रेमिका ने अपने को प्रेमी पर न्योछावर कर दिया और दो प्रेमियों के सच्चे, पवित्र, अमर प्रेम की अंतिम लीला आंख से ओझल हो गई। जब सब लोग अपने घरों को लौटे तो दिलफिगार चुपके से उठा और अपने चाकदामन कुरते में यह राख का ढेर समेट लिया और इस मुट्ठी भर राख को दुनिया की सबसे अनमोल चीज समझता हुआ, सफलता के नशे में चूर, यार के कूचे की तरफ चला। अबकी ज्यों-ज्यों वह

अपनी मंजिल के करीब आता था, उसकी हिम्मत बढ़ती जाती थी। कोई उसके दिल में बैठा हुआ कह रहा था—अबकी तेरी जीत है और इस खयाल ने उसके दिल को जो-जो सपने दिखाए उनकी चर्चा व्यर्थ है। आखिरकार वह शहर मीनोसवाद में दाखिल हुआ और दिलफरेब की ऊंची ड्योढ़ी पर जाकर खबर दी कि दिलफिगार सुर्ख-रू होकर लौटा है, और हुजूर के सामने आना चाहता है। दिलफरेब ने जांबाज आशिक को फौरन दरबार में बुलाया और उस चीज के लिए, जो दुनिया की सबसे बेशकीमती चीज थी, हाथ फैला दिया। दिलफिगार ने हिम्मत करके उसकी चांदी जैसी कलाई को चूम लिया और मुट्ठी भर राख को उसकी हथेली में रखकर सारी कैफियत दिल को पिघला देने वाले लफ्जों में कह सुनाई और अपनी सुंदर प्रेमिका के होंठों से अपनी किस्मत का मुबारक फैसला सुनने के लिए इंतजार करन लगा। दिलफरेब ने उस मुट्ठी भर राख को आंखों से लगा लिया और कुछ देर तक विचारों के सागर में डूबे रहने के बाद बोली—ऐ जान निछावर करने वाले आशिक दिलफिगार ! बेशक यह राख जो तू लाया है, जिसमें लोहे को सोना कर देने की सिफत है, दुनिया की बहुत बेशकीमती चीज है और मैं सच्चे दिल से तेरी अहसानमंद हूं कि तूने ऐसी अनमोल भेंट दी। मगर दुनिया में इससे भी ज्यादा अनमोल कोई चीज है, जा उसे तलाश कर और तब मेरे पास आ। मैं तहेदिल से दुआ करती हूं कि खुदा तुझे कामयाब करे। यह कहकर वह सुनहरे परदे से बाहर आई और माशूकाना अदा से अपने रूप का जलवा दिखाकर फिर नजरों से ओझल हो गई। एक बिजली थी कि कौंधी और फिर बादलों के परदे में छिप गई। अभी दिलफिगार के होश-हवास ठिकाने पर न आने पाए थे कि चोबदार ने मुलायमियत से उसका हाथ पकड़कर यार के कूचे से उसको निकाल दिया और फिर तीसरी बार वह प्रेम का पुजारी निराशा के अथाह समुंदर में गोता खाने लगा।

दिलफिगार का हियाव छूट गया। उसे यकीन हो गया कि मैं दुनिया में इसी तरह नाशाद और नामुराद मर जाने के लिए पैदा किया गया था और अब इसके सिवा और कोई चारा नहीं कि किसी पहाड़ पर चढ़कर नीचे कूद पड़ूं ताकि माशूक के जुल्मों की फरियाद करने के लिए एक हड्डी भी बाकी न रहे। वह दीवाने की तरह उठा और गिरता-पड़ता एक गगनचुम्बी पहाड़ की चोटी पर जा पहुंचा। किसी और समय वह ऐसे ऊंचे पहाड़ पर चढ़ने का साहस न कर सकता था मगर इस वक्त जान देने के जोश में उसे वह पहाड़ एक मामूली टेकरी से ज्यादा ऊंचा न नजर आया। करीब था कि वह नीचे कूद पड़े कि हरे-हरे कपड़े पहने हुए और हरा अमामा बांधे एक बुजुर्ग एक हाथ में तसबीह और दूसरे हाथ में लाठी लिए बरामद हुए और हिम्मत बढ़ाने वाले स्वर में बोले—दिलफिगार, नादान दिलफिगार, यह क्या बुजदिलों जैसी हरकत है ! तू मुहब्बत का दावा करता है और तुझे इतनी भी खबर नहीं कि मजबूत इरादा मुहब्बत के रास्ते की पहली मंजिल है ? मर्द बन और यों हिम्मत न हार। पूरब की तरफ एक देश है जिसका नाम हिंदोस्तान है, वहां जा और तेरी आरजू पूरी होगी।

यह कहकर हजरते खिज्र गायब हो गए। दिलफिगार ने शुक्रिये की नमाज अदा की और ताजा हौसले, ताजा जोश और अलौकिक सहायता का सहारा पाकर खुश-खुश पहाड़ से उतरा और हिंदोस्तान की तरफ चल पड़ा।

मुद्दतों तक कांटों से भरे हुए जंगलों, आग बरसाने वाले रेगिस्तानों, कठिन घाटियों

और अलंघ्य पर्वतों को तय करने के बाद दिलफिगार हिंद की पाक सरजमीन में दाखिल हुआ और एक ठंडे पानी के सोते में सफर की तकलीफें धोकर थकान के मारे नदी के किनारे लेट गया। शाम होते-होते वह एक चटियल मैदान में पहुंचा जहां बेशुमार अधमरी और बेजान लाशें बिना कफन के पड़ी हुई थीं। चील-कौए और वहशी दरिंदे मरे पड़े थे और सारा मैदान खून से लाल हो रहा था। यह डरावना दृश्य देखते ही दिलफिगार का जी दहल गया। या खुदा, किस मुसीबत में जान फंसी, मरने वालों का कराहना, सिसकना और एड़ियां रगड़कर जान देना, दरिंदों का हड्डियों को नोचना और गोश्त के लोथड़ों को लेकर भागना, ऐसा हौलनाक सीन दिलफिगार ने कभी न देखा था। यकायक उसे खयाल आया, यह लड़ाई का मैदान है और यह लाशें सूरमा सिपाहियों की हैं। इतने में करीब से कराहने की आवाज आई। दिलफिगार उस तरफ फिरा तो देखा कि एक लंबा-तगड़ा आदमी, जिसका मर्दाना चेहरा जान निकलने की कमजोरी से पीला हो गया है, जमीन पर सर झुकाए पड़ा हुआ है। सीने से खून का फव्वारा जारी है, मगर आबदार तलवार की मूठ पंजे से अलग नहीं हुई। दिलफिगार ने एक चीथड़ा लेकर घाव के मुंह पर रख दिया ताकि खून रुक जाए और बोला—ऐ जवांमर्द, तू कौन है ? जवांमर्द ने यह सुनकर आंखें खोलीं और वीरों की तरह बोला— क्या तू नहीं जानता मैं कौन हूं, क्या तूने आज इस तलवार की काट नहीं देखी ? मैं अपनी मां का बेटा और भारत का सपूत हूं। यह कहते-कहते उसकी त्योरियों पर बल पड़ गए। पीला चेहरा गुस्से से लाल हो गया और आबदार शमशीर फिर अपना जौहर दिखाने के लिए चमक उठी। दिलफिगार समझ गया कि यह इस वक्त मुझे दुश्मन समझ रहा है, नरमी से बोला—ऐ जवांमर्द, मैं तेरा दुश्मन नहीं हूं। अपने वतन से निकला हुआ एक गरीब मुसाफिर हूं। इधर भूलता-भटकता आ निकला। बराय मेहरबानी मुझसे यहां की कुल कैफियत बयान कर।

यह सुनते ही घायल सिपाही बहुत मीठे स्वर में बोला—अगर तू मुसाफिर है तो आ और मेरे खून से तर पहलू में बैठ जा क्योंकि यही दो अंगुल जमीन है जो मेरे पास बाकी रह गई है और जो सिवाय मौत के कोई नहीं छीन सकता। अफसोस है कि तू यहां ऐसे वक्त में आया जब हम तेरा आतिथ्य-सत्कार करने के योग्य नहीं। हमारे बाप-दादा का देश आज हमारे हाथ से निकल गया और इस वक्त हम बेवतन हैं। मगर (पहलू बदलकर) हमने हमलावर दुश्मन को बता दिया कि राजपूत अपने देश के लिए कैसी बहादुरी से जान देता है। यह आस-पास जो लाशें तू देख रहा है, यह उन लोगों की हैं, जो इस तलवार के घाट उतरे हैं। (मुस्कराकर) और गो कि मैं बेवतन हूं, मगर गनीमत है कि दुश्मन की जमीन पर मर रहा हूं। (सीने के घाव से चीथड़ा निकालकर) क्या तूने यह मरहम रख दिया ? खून निकलने दे, इसे रोकने से क्या फायदा ? क्या मैं अपने ही देश में गुलामी करने के लिए जिंदा रहूं ? नहीं, ऐसी जिंदगी से मर जाना अच्छा। इससे अच्छी मौत मुमकिन नहीं।

जवांमर्द की आवाज मद्धिम हो गई, अंग ढीले पड़ गए, खून इतना ज्यादा बहा कि खुद ब खुद बंद हो गया, रह-रहकर एकाध बूंद टपक पड़ता था। आखिरकार सारा शरीर बेदम हो गया, दिल की हरकत बंद हो गई और आंखें मुंद गई। दिलफिगार ने समझा अब काम तमाम हो गया कि मरने वाले ने धीमे से कहा—'भारतमाता की जय।' और उसके

सीने से खून का आखिरी कतरा निकल पड़ा। एक सच्चे देशप्रेमी और देशभक्त ने देशभक्ति का हक अदा कर दिया। दिलफिगार पर इस दृश्य का बहुत गहरा असर पड़ा और उसके दिल ने कहा, बेशक दुनिया में खून के इस कतरे से ज्यादा अनमोल चीज कोई नहीं हो सकती। उसने फौरन उस खून की बूंद को, जिसके आगे यमन का लाल भी हेच है, हाथ में ले लिया और इस दिलेर राजपूत की बहादुरी पर हैरत करता हुआ अपने वतन की तरफ रवाना हुआ और सख्तियां झेलता आखिरकार बहुत दिनों के बाद रूप की रानी मलका दिलफरेब की ड्योढ़ी पर जा पहुंचा और पैगाम दिया कि दिलफिगार सुर्खरू और कामयाब होकर लौटा है और दरबार में हाजिर होना चाहता है। दिलफरेब ने उसे फौरन हाजिर होने का हुक्म दिया। खुद हस्बे मामूल सुनहरे परदे की ओट में बैठी और बोली—दिलफिगार, अबकी तू बहुत दिनों के बाद वापस आया है। ला, दुनिया की सबसे बेशकीमती चीज कहां है ?

दिलफिगार ने मेहंदी-रची हथेलियों को चूमते हुए खून का वह कतरा उस पर रख दिया और उसकी पूरी कैफियत पुरजोश लहजे में कह सुनाई। वह खामोश भी न होने पाया था कि यकायक वह सुनहरा परदा हट गया और दिलफिगार के सामने हुस्न का एक दरबार सजा हुआ नजर आया जिसकी एक-एक नाजनीन जुलेखा से बढ़कर थी। दिलफरेब बड़ी शान के साथ सुनहरी मसनद पर सुशोभित हो रही थी। दिलफिगार हुस्न का यह तिलिस्म देखकर अचंभे में पड़ गया और चित्रलिखित-सा खड़ा रहा कि दिलफरेब मसनद से उठी और कई कदम आगे बढ़कर उससे लिपट गई। गानेवालियों ने खुशी के गाने शुरू किए, दरबारियों ने दिलफिगार को नजरें भेंट कीं और चांद-सूरज को बड़ी इज्जत के साथ मसनद पर बैठा दिया। जब वह लुभावना गीत बंद हुआ तो दिलफरेब खड़ी हो गई और हाथ जोड़कर दिलफिगार से बोली—ऐ जानिसार आशिक दिलफिगार ! मेरी दुआएं बर आईं और खुदा ने मेरी सुन ली और तुझे कामयाब व सुर्खरू किया। आज से तू मेरा मालिक है और मैं तेरी लौंडी !

यह कहकर उसने एक रत्नजटित मंजूषा मंगाई और उसमें से एक तख्ती निकाली जिस पर सुनहरे अक्षरों में लिखा हुआ था—

'खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाजत में गिरे दुनिया की सबसे अनमोल चीज है।'

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'सोजे वतन' (उर्दू कहानी संग्रह), जुलाई, 1908 में प्रथम बार संकलित-प्रकाशित। हिन्दी रूप 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-1 में संकलित। अमृतराय के अनुसार यह कहानी 'जमाना' में सन् 1907 में छपी थी, लेकिन यह तिथि गलत है। 'जमाना' के 1907 के अंकों में इस शीर्षक की कोई कहानी नहीं छपी है। प्रेमचंद इसे अपनी पहली कहानी मानते थे। बाद में प्रेमचंद के अन्य शोधकर्ताओं ने भी इसे उनकी पहली कहानी माना है। पर निश्चित प्रकाशन तिथि के हिसाब से उनकी पहली कहानी 'सांसारिक प्रेम और देश प्रेम' ठहरती है।]

यह मेरी मातृभूमि है

आज पूरे साठ वर्ष के बाद मुझे मातृभूमि—प्यारी मातृभूमि के दर्शन प्राप्त हुए हैं। जिस समय मैं अपने प्यारे देश से विदा हुआ था और भाग्य मुझे पश्चिम की ओर ले चला था, उस समय मैं पूर्ण युवा था। मेरी नसों में नवीन रक्त संचालित हो रहा था। हृदय उमंगों और बड़ी-बड़ी आशाओं से भरा हुआ था। मुझे अपने प्यारे भारतवर्ष से किसी अत्याचारी के अत्याचार या न्याय के बलवान हाथों ने नहीं जुदा किया था। अत्याचारी के अत्याचार और कानून की कठोरताएँ मुझसे जो चाहे सो करा सकती हैं, मगर मेरी प्यारी मातृभूमि मुझसे नहीं छुड़ा सकती। वे मेरी उच्च अभिलाषाएँ और बड़े-बड़े ऊँचे विचार ही थे, जिन्होंने मुझे देश-निकाला दिया था।

मैंने अमेरिका जा कर वहाँ खूब व्यापार किया और व्यापार से धन भी खूब पैदा किया तथा धन से आनंद भी खूब मनमाने लूटे। सौभाग्य से पत्नी भी ऐसी मिली, जो सौंदर्य में अपना सानी आप ही थी। उसकी लावण्यता और सुन्दरता की ख्याति तमाम अमेरिका में फैली। उसके हृदय में ऐसे विचार की गुंजाइश भी न थी, जिसका सम्बन्ध मुझसे न हो, मैं उस पर तन मन से आसक्त था और वह मेरी सर्वस्व थी। मेरे पाँच पुत्र थे जो सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट और ईमानदार थे। उन्होंने व्यापार को और भी चमका दिया था। मेरे भोले-भाले नन्हें-नन्हें पौत्र गोद में बैठे हुए थे, जब कि मैंने प्यारी मातृभूमि के अंतिम दर्शन करने को अपने पैर उठाये। मैंने अनंत धन, प्रियतमा पत्नी, सपूत बेटे और प्यारे-प्यारे जिगर के टुकड़े नन्हें-नन्हें बच्चे आदि अमूल्य पदार्थ केवल इसीलिए परित्याग कर दिया कि मैं प्यारी भारत-जननी का अंतिम दर्शन कर लूँ। मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ; दस वर्ष के बाद पूरे सौ वर्ष का हो जाऊँगा। अब मेरे हृदय में केवल एक ही अभिलाषा बाकी है कि मैं अपनी मातृभूमि का रजकण बनूँ।

यह अभिलाषा कुछ आज ही मेरे मन में उत्पन्न नहीं हुई, बल्कि उस समय भी थी जब मेरी प्यारी पत्नी अपनी मधुर बातों और कोमल कटाक्षों से मेरे हृदय को प्रफुल्लित किया करती थी। और जब कि मेरे युवा पुत्र प्रातःकाल आ कर अपने वृद्ध पिता को सभक्ति प्रणाम करते, उस समय भी मेरे हृदय में एक काँटा-सा खटखता रहता था कि मैं अपनी मातृभूमि से अलग हूँ। यह देश मेरा देश नहीं है और मैं इस देश का नहीं हूँ।

मेरे पास धन था, पत्नी थी, लड़के थे और जायदाद थी, मगर न मालूम क्यों, मुझे रह-रह कर मातृभूमि के टूटे झोंपड़े, चार-छै बीघा मौरूसी जमीन और बालपन के लँगोटिया यारों की याद अक्सर सता जाया करती। प्रायः अपार प्रसन्नता और आनंदोत्सवों के अवसर पर भी यह विचार हृदय में चुटकी लिया करता था कि "यदि मै अपने देश में होता...."

2

जिस समय मैं बम्बई में जहाज से उतरा, मैंने पहले काले कोट-पतलून पहने टूटी-फूटी अँग्रेजी बोलते हुए मल्लाह देखे। फिर अँग्रेजी दुकान, ट्राम और मोटरगाड़ियाँ दीख पड़ीं। इसके बाद रबरटायर वाली गाड़ियों की ओर मुँह में चुरट दाबे हुए आदमियों से मुठभेड़

हुई। फिर रेल का विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन देखा। बाद में मैं रेल में सवार होकर हरी-भरी पहाड़ियों के मध्य में स्थित अपने गाँव को चल दिया। उस समय मेरी आँखों में आँसू भर आये और मैं खूब रोया, क्योंकि यह मेरा देश न था। यह वह देश न था, जिसके दर्शनों की इच्छा सदा मेरे हृदय में लहराया करती थी। यह तो कोई और देश था। यह अमेरिका या इंगलैंड था; मगर प्यारा भारत नहीं था।

रेलगाड़ी जंगलों, पहाड़ों, नदियों और मैदानों को पार करती हुई मेरे प्यारे गाँव के निकट पहुँची, जो किसी समय में फूल, पत्तों और फलों की बहुतायत तथा नदी-नालों की अधिकता से स्वर्ग की होड़ कर रहा था। मैं उस गाड़ी से उतरा, तो मेरा हृदय बाँसों उछल रहा था—अब अपना प्यारा घर देखूँगा—अपने बालपन के प्यारे साथियों से मिलूँगा। मैं इस समय बिल्कुल भूल गया था कि मैं नबवय वर्ष का बूढ़ा हूँ। ज्यों-ज्यों मैं गाँव के निकट आता था, मेरे पग शीघ्र-शीघ्र उठते थे और हृदय में अकथनीय आनंद का स्रोत उमड़ रहा था। प्रत्येक वस्तु पर आँखें फाड़-फाड़ कर दृष्टि डालता। अहा ! यह वही नाला है, जिसमें हम रोज घोड़े नहलाते थे और स्वयं भी डुबकियाँ लगाते थे, किंतु अब उसके दोनों ओर काँटेदार तार लगे हुए थे। सामने एक बँगला था, जिसमें दो अँग्रेज बंदूकें लिये इधर-उधर ताक रहे थे। नाले में नहाने की सख्त मनाही थी।

गाँव में गया और निगाहें बालपन के साथियों को खोजने लगीं, किन्तु शोक ! वे सब के सब मृत्यु के ग्रास हो चुके थे। मेरा घर—मेरा टूटा-फूटा झोंपड़ा—जिसकी गोद में मैं बरसों खेला था, जहाँ बचपन और बेफिक्री के आनंद लूटे थे और जिनका चित्र अभी तक मेरी आँखों में फिर रहा था, वही मेरा प्यारा घर अब मिट्टी का ढेर हो गया था।

यह स्थान गैर-आबाद न था। सैकड़ों आदमी चलते-चलते दृष्टि आते थे, जो अदालत-कचहरी और थाना-पुलिस की बातें कर रहे थे, उनके मुखों से चिंता, निर्जीवता और उदासी प्रदर्शित होती थी और वे सब सांसारिक चिंताओं से व्यथित मालूम होते थे। मेरे साथियों के समान हृष्ट-पुष्ट, बलवान, लाल चेहरे वाले नवयुवक कहीं न देख पड़ते थे। उस अखाड़े के स्थान पर जिसकी जड़ मेरे हाथों ने डाली थी, अब एक टूटा-फूटा स्कूल था। उसमें दुर्बल तथा कांतिहीन, रोगियों की-सी सूरतवाले बालक फटे कपड़े पहिने बैठे ऊँघ रहे थे। उनको देख कर सहसा मेरे मुख से निकल पड़ा कि नहीं-नहीं, यह मेरा प्यारा देश नहीं है। यह देश देखने मैं इतनी दूर से नहीं आया हूँ—यह मेरा प्यारा भारतवर्ष नहीं है।

बरगद के पेड़ की ओर मैं दौड़ा, जिसकी सुहावनी छाया में मैंने बचपन के आनंद उड़ाये थे, जो हमारे छुटपन का क्रीड़ास्थल और युवावस्था का सुखप्रद वासस्थान था। आह ! इस प्यारे बरगद को देखते ही हृदय पर एक बड़ा आघात पहुँचा और दिल में महान् शोक उत्पन्न हुआ। उसे देख कर ऐसी-ऐसी दुःखदायक तथा हृदय-विदारक स्मृतियाँ ताजी हो गयीं कि घंटों पृथ्वी पर बैठे-बैठे मैं आँसू बहाता रहा। हाँ ! यही बरगद है, जिसकी डालों पर चढ़ कर मैं फुनगियों तक पहुँचता था, जिसकी जटाएँ हमारी झूला थीं और जिसके फल हमें सारे संसार की मिठाइयों से अधिक स्वादिष्ट मालूम होते थे। मेरे गले में बाँहें डाल कर खेलनेवाले लँगोटिया यार, जो कभी रूठते थे, कभी मनाते थे, कहाँ गये ? हाय, बिना घरबार का मुसाफिर अब क्या अकेला ही हूँ ? क्या मेरा कोई भी साथी नहीं ? इस बरगद

के निकट अब थाना था और बरगद के नीचे कोई लाल साफा बाँधे बैठा था। उसके आस-पास दस-बीस लाल पगड़ीवाले करबद्ध खड़े थे ! वहाँ फटे-पुराने कपड़े पहने, दुर्भिक्षग्रस्त पुरुष, जिस पर अभी चाबुकों की बौछार हुई थी, पड़ा सिसक रहा था। मुझे ध्यान आया कि यह मेरा प्यारा देश नहीं है, कोई और देश है। यह योरोप है, अमेरिका है, मगर मेरी प्यारी मातृभूमि नहीं है--कदापि नहीं है।

3

इधर से निराश होकर मैं उस चौपाल की ओर चला, जहाँ शाम के वक्त पिता जी गाँव के अन्य बुजुर्गों के साथ हुक्का पीते और हँसी-कहकहे उड़ाते थे। हम भी उस टाट के बिछौने पर कलाबाजियाँ खाया करते थे। कभी-कभी वहाँ पंचायत भी बैठती थी, जिसके सरपंच सदा पिताजी ही हुआ करते थे। इसी चौपाल के पास एक गोशाला थी, जहाँ गाँव भर की गायें रखी जाती थीं और बछड़ों के साथ हम यहीं किलोलें किया करते थे। शोक ! कि अब उस चौपाल का पता तक न था। वहाँ अब गाँवों में टीका लगाने की चौकी और डाकखाना था।

उस समय इसी चौपाल से लगा एक कोल्हवाड़ा था, जहाँ जाड़े के दिनों में ईख पेरी जाती थी और गुड़ की सुगंध से मस्तिष्क पूर्ण हो जाता था। हम और हमारे साथी वहाँ गंडरियों के लिए बैठे रहते और गंडरियाँ करनेवाले मजदूरों के हस्तलाघव को देख कर आश्चर्य किया करते थे। वहाँ हजारों बार मैंने कच्चा रस और पक्का दूध मिला कर पिया था और वहाँ आस-पास के घरों की स्त्रियाँ और बालक अपने-अपने घड़े ले कर आते थे और उनमें रस भर कर ले जाते थे। शोक है कि वे कोल्हू अब तक ज्यों के त्यों खड़े थे, किन्तु कोल्हवाड़े की जगह पर अब एक सन लपेटने वाली मशीन लगी थी और उसके सामने एक तम्बोली और सिगरेट वाले की दुकान थी। इन हृदय-विदारक दृश्यों को देखकर मैंने दुखित हृदय से, एक आदमी से, जो देखने में सभ्य मालूम होता था, पूछा, ''महाशय, मैं एक परदेशी यात्री हूँ। रात भर लेट रहने की मुझे आज्ञा दीजिएगा ?'' इस आदमी ने मुझे सिर से पैर तक गहरी दृष्टि से देखा और कहने लगा कि ''आगे जाओ, यहाँ जगह नहीं है।'' मैं आगे गया और वहाँ से भी यही उत्तर मिला ''आगे जाओ।'' पाँचवीं बार एक सज्जन से स्थान माँगने पर उन्होंने एक मुट्ठी चने मेरे हाथ पर रख दिये। चने मेरे हाथ से छूट पड़े और नेत्रों से अविरल अश्रु-धारा बहने लगी। मुख से सहसा निकल पड़ा कि ''हाय ! यह मेरा देश नहीं है, यह कोई और देश है। यह हमारा अतिथि-सत्कारी प्यारा भारत नहीं है--कदापि नहीं।''

मैंने एक सिगरेट की डिबिया खरीदी और एक सुनसान जगह पर बैठकर सिगरेट पीते हुए पूर्व समय की याद करने लगा कि अचानक मुझे धर्मशाला का स्मरण हो आया, जो मेरे विदेश जाते समय बन रही थी; मैं उस ओर लपका कि रात किसी प्रकार वहीं काट लूँ, मगर शोक ! शोक !! महान् शोक !!! धर्मशाला ज्यों की त्यों खड़ी थी, किंतु उसमे गरीब यात्रियों के टिकने के लिए स्थान न था। मदिरा, दुराचार और द्यूत ने उसे अपना घर बना रखा था। यह दशा देख कर विवशतः मेरे हृदय से एक सर्द आह निकल पड़ी और मैं जोर से चिल्ला उठा कि ''नहीं, नहीं, नहीं और हजार बार नहीं है''--यह

मेरा प्यारा भारत नहीं है। यह कोई और देश है। यह योरोप है, अमेरिका है; मगर भारत कदापि नहीं है।

4

अँधेरी रात थी। गीदड़ और कुत्ते अपने-अपने कर्कश स्वर में उच्चारण कर रहे थे। मैं अपना दुखित हृदय ले कर उसी नाले के किनारे जा कर बैठ गया और सोचने लगा—अब क्या करूँ ! फिर अपने पुत्रों के पास लौट जाऊँ और अपना यह शरीर अमेरिका की मिट्टी में मिलाऊँ। अब तक मेरी मातृभूमि थी, मैं विदेश में जरूर था किंतु मुझे अपने प्यारे देश की याद बनी थी, पर अब मैं देश-विहीन हूँ। मेरा कोई देश नहीं है। इसी सोच-विचार में मैं बहुत देर तक घुटनों पर सिर रखे मौन रहा। रात्रि नेत्रों में ही व्यतीत की। घंटेवाले ने तीन बजाये और किसी के गाने का शब्द कानों में आया। हृदय गद्गद हो गया कि यह तो देश का ही राग है, यह तो मातृभूमि का ही स्वर है। मैं तुरंत उठ खड़ा हुआ और क्या देखता हूँ कि पन्द्रह-बीस वृद्धा स्त्रियाँ, सफेद धोतियाँ पहिने, हाथों में लोटे लिये स्नान को जा रही हैं और गाती जाती हैं :

"हमारे प्रभु, अवगुन चित्त न धरो..."

मैं इस गीत को सुन कर तन्मय हो ही रहा था कि इतने में मुझे बहुत से आदमियों की बोलचाल सुन पड़ी। उनमें से कुछ लोग हाथों में पीतल के कमंडलु लिये हुए शिव-शिव, हर-हर, गंगे-गंगे, नारायण-नारायण आदि शब्द बोलते हुए चले जाते थे। आनंददायक और प्रभावोत्पादक राग से मेरे हृदय पर जो प्रभाव हुआ, उसका वर्णन करना कठिन है।

मैंने अमेरिका की चंचल से चंचल और प्रसन्न से प्रसन्न चित्तवाली लावण्यवती स्त्रियों का आलाप सुना था, सहस्रों बार उनकी जिह्वा से प्रेम और प्यार के शब्द सुने थे, हृदयाकर्षक वचनों का आनंद उठाया था, मैंने सुरीले पक्षियों का चहचहाना भी सुना था, किंतु जो आनंद, जो मजा और जो सुख मुझे इस राग में आया, वह मुझे जीवन में कभी प्राप्त नहीं हुआ था। मैंने खुद गुनगुना कर गाया :

"हमारे प्रभु, अवगुन चित न धरो..."

मेरे हृदय में फिर उत्साह आया कि ये तो मेरे प्यारे देश की ही बातें हैं। आनंदातिरेक से मेरा हृदय आनंदमय हो गया। मैं भी इन आदमियों के साथ हो लिया और छः मील तक पहाड़ी मार्ग पार करके उसी नदी के किनारे पहुँचा, जिसका नाम पतित-पावनी है, जिसकी लहरों में डुबकी लगाना और जिसकी गोद में मरना प्रत्येक हिंदू अपना परम सौभाग्य समझता है। पतित-पावनी भागीरथी गंगा मेरे प्यारे गाँव से छः-सात मील पर बहती थी। किसी समय में घोड़े पर चढ़ कर गंगा माता के दर्शनों की लालसा मेरे हृदय में सदा रहती थी। यहाँ मैंने हजारों मनुष्यों को इस ठंडे पानी में डुबकी लगाते हुए देखा। कुछ लोग बालू पर बैठे गायत्री-मंत्र जप रहे थे। कुछ लोग हवन करने में संलग्न थे। कुछ माथे पर तिलक लगा रहे थे और कुछ लोग सस्वर वेदमंत्र पढ़ रहे थे। मेरा हृदय फिर उत्साहित हुआ और मैं जोर से कह उठा—"हाँ, हाँ, यही मेरा प्यारा देश है, यही मेरी पवित्र मातृभूमि है, यही मेरा सर्वश्रेष्ठ भारत है और इसी के दर्शनों की मेरी उत्कट इच्छा थी

तथा इसी की पवित्र धूलि के कण बनने की मेरी प्रबल अभिलाषा है।"

5

मैं विशेष आनंद में मग्न था। मैंने अपना पुराना कोट और पतलून उतार कर फेंक दिया और गंगा माता की गोद में जा गिरा, जैसे कोई भोलाभाला बालक दिन भर निर्दय लोगों के साथ रहने के बाद संध्या को अपनी प्यारी माता की गोद में दौड़ कर चला आये और उसकी छाती से चिपट जाय। हाँ, अब मैं अपने देश में हूँ। यह मेरी प्यारी मातृभूमि है। ये लोग मेरे भाई हैं और गंगा मेरी माता है।

मैंने ठीक गंगा के किनारे एक छोटी-सी कुटी बनवा ली है। अब मुझे सिवा राम-नाम जपने के और कोई काम नहीं है। मैं नित्य प्रातः-सायं गंगा-स्नान करता हूँ और मेरी प्रबल इच्छा है कि इसी स्थान पर मेरे प्राण निकलें और मेरी अस्थियाँ गंगा माता की लहरों की भेंट हों।

मेरी स्त्री और मेरे पुत्र बार-बार बुलाते हैं; मगर अब मैं यह गंगा माता का तट और अपना प्यारा देश छोड़ कर वहाँ नहीं जा सकता। अपनी मिट्टी गंगा जी को ही सौपूँगा। अब संसार की कोई आकांक्षा मुझे इस स्थान से नहीं हटा सकती, क्योंकि यह मेरा प्यारा देश और यही प्यारी मातृभूमि है। बस, मेरी उत्कट इच्छा यही है कि मैं अपनी प्यारी मातृभूमि में ही अपने प्राण विसर्जन करूँ।

['यही मेरा वतन है' शीर्षक से उर्दू में प्रथम प्रकाशन। 'सोजे वतन' (उर्दू कहानी संग्रह), जुलाई, 1908 में प्रथम बार संकलित-प्रकाशित। हिन्दी रूप 'यह मेरी मातृभूमि है' शीर्षक से 'मानसरोवर' भाग-6 में संकलित।]

शेख मखमूर

मुल्के जन्नतनिशां के इतिहास में वह बहुत अंधेरा वक्त था जब शाह किशवर की फतहों की बाढ़ बड़े जोर-शोर के साथ उस पर आई। सारा देश तबाह हो गया। आजादी की इमारतें ढह गई और जानोमाल के लाले पड़ गए। शाह बामुराद खूब जी तोड़कर लड़ा, खूब बहादुरी का सबूत दिया और अपने खानदान के तीन लाख सूरमाओं को अपने देश पर चढ़ा दिया मगर विजेता की पत्थर काट देने वाली तलवार के मुकाबले में उसकी यह मर्दाना जांबाजियां बेअसर साबित हुईं। मुल्क पर शाह किशवरकुशा की हुकूमत का सिक्का जम गया और शाह बामुराद अकेला और तनहा बेयारो मददगार अपना सब कुछ आजादी के नाम पर कुर्बान करके एक झोंपड़े में जिंदगी बसर करने लगा।

यह झोंपड़ा पहाड़ी इलाके में था। आस-पास जंगली कौमें आबाद थीं और दूर-दूर तक पहाड़ों के सिलसिले नजर आते थे। इस सुनसान जगह में शाह बामुराद मुसीबत के दिन काटने लगा। दुनिया में अब उसका कोई दोस्त न था। वह दिन भर आबादी से दूर एक चट्टान पर अपने खयाल में मस्त बैठा रहता था। लोग समझते थे कि यह कोई ब्रह्म

ज्ञान के नशे में चूर सूफी है। शाह बामुराद को यों बसर करते एक जमाना बीत गया और जवानी की विदाई और बुढ़ापे के स्वागत की तैयारियां होने लगीं।

तब एक रोज शाह बामुराद बस्ती के सरदार के पास गया और उससे कहा—मैं अपनी शादी करना चाहता हूं। उसकी तरफ से पैगाम सुनकर वह अचंभे में आ गया मगर चूंकि दिल में शाह साहब के कमाल और फकीरी में गहरा विश्वास रखता था, पलटकर जवाब न दे सका और अपनी कुंआरी नौजवान बेटी उनको भेंट की। तीसरे साल इस युवती की कामनाओं की वाटिका में एक नौरस पौधा उगा। शाह साहब खुशी के मारे जामे में फूले न समाए। बच्चे को गोद में उठा लिया और हैरत में डूबी हुई मां के सामने जोश भरे लहजे में बोले—'खुदा का शुक्र है कि मुल्के जन्नतनिशां का वारिस पैदा हुआ।'

बच्चा बढ़ने लगा। अक्ल और जहानत में, हिम्मत और ताकत में, वह अपनी दुगनी उमर के बच्चों से बढ़कर था। सुबह होते ही गरीब रिन्दा बच्चे का बनाव-सिंगार करके और उसे नाश्ता खिलाकर अपने काम-धंधों में लग जाती थी और शाह साहब बच्चे की उंगली पकड़कर उसे आबादी से दूर चट्टान पर ले जाते। वहां कभी उसे पढ़ाते, कभी हथियार चलाने की मश्क कराते और कभी उसे शाही कायदे समझाते। बच्चा था तो कमसिन, मगर इन बातों में ऐसा जी लगाता और ऐसे चाव से लगा रहता गोया उसे अपने वंश का हाल मालूम है। मिजाज भी बादशाहों जैसा था। गांव का एक-एक लड़का उसके हुक्म का फरमाबरदार था। मां उस पर गर्व करती, बाप फूला न समाता और सारे गांव के लोग समझते कि यह शाह साहब के जप-तप का असर है।

बच्चा मसऊद देखते-देखते एक सात साल का नौजवान शहजादा हो गया। देखकर देखने वाले के दिल को एक नशा-सा होता था। एक रोज शाम का वक्त था, शाह साहब अकेले सैर करने गए और जब लौटे तो उनके सर पर एक जड़ाऊ ताज शोभा दे रहा था। रिन्दा उनका यह हुलिया देखकर सहम गई और मुंह से कुछ बोल न सकी। तब उन्होंने नौजवान मसऊद को गले से लगाया, उसी वक्त उसे नहलाया-धुलाया और एक चट्टान के तख्त पर बैठाकर दर्द-भरे लहजे में बोले—मसऊद, मैं आज तुमसे रुखसत होता हूं और तुम्हारी अमानत तुम्हें सौंपता हूं। यह उसी मुल्के जन्नतनिशां का ताज है। कोई वह जमाना था, कि यह ताज तुम्हारे बदनसीब बाप के सर पर जेब देता था, अब वह तुम्हें मुबारक हो। रिन्दा ! प्यारी बीवी ! तेरा बदकिस्मत शौहर किसी जमाने में इस मुल्क का बादशाह था और अब तू उसकी मलिका है। मेंने यह राज तुमसे अब तक छिपाया था, मगर हमारे अलग होने का वक्त बहुत पास है। अब छिपाकर क्या करूं। मसऊद, तुम अभी बच्चे हो, मगर दिलेर और समझदार हो। मुझे यकीन है कि तुम अपने बूढ़े बाप की आखिरी वसीयत पर ध्यान दोगे और उस पर अमल करने की कोशिश करोगे। यह मुल्क तुम्हारा है, यह ताज तुम्हारा है और यह रिआया तुम्हारी है। तुम इन्हें अपने कब्जे में लाने की मरते दम तक कोशिश करते रहना और अगर तुम्हारी तमाम कोशिशें नाकाम हो जाएं और तुम्हें भी यही बेसरोसामानी की मौत नसीब हो तो यही वसीयत तुम अपने बेटे से कर देना और यह ताज जो उसकी अमानत होगी उसके सुपुर्द करना। मुझे तुमसे और कुछ नहीं कहना है, खुदा तुम दोनों को खुशोखुर्रम रखे और तुम्हें मुराद को पहुंचाए।

यह कहते-कहते शाह साहब की आंखें बंद हो गईं। रिन्दा दौड़कर उनके पैरों से

लिपट गई और मसऊद रोने लगा। दूसरे दिन सुबह गांव के लोग जमा हुए और एक पहाड़ी गुफा की गोद में लाश रख दी।

2

शाह किशवरकुशा ने आधी सदी तक खूब इंसाफ के साथ राज किया मगर किशवरकुशा दोयम ने सिंहासन पर आते ही अपने अक्लमंद बाप के मंत्रियों को एक सिरे से बर्खास्त कर दिया और अपनी मर्जी के मुआफिक नए-नए वजीर और सलाहकार नियुक्त किए। सल्तनत का काम रोज-ब-रोज बिगड़ने लगा। सरदारों ने बेइंसाफी पर कमर बांधी और हुक्काम रिआया पर जोर-जबर्दस्ती करने लगे। यहां तक कि खानदाने मुरादिया के एक पुराने नमकखोर ने मौका अच्छा देखकर बगावत का झंडा बुलंद कर दिया। आसपास से लोग उसके झंडे के नीचे जमा होने लगे और कुछ ही हफ्तों में एक बड़ी फौज कायम हो गई और मसऊद भी नमकखोर सरदार की फौज में आकर मामूली सिपाहियों का काम करने लगा।

मसऊद का अभी यौवन का आरंभ था। दिल में मर्दाना जोश और बाजुओं में शेरों की कूवत मौजूद थी। ऐसा लंबा-तड़ंगा, सुंदर नौजवान बहुत कम किसी ने देखा होगा। शेरों के शिकार का उसे इश्क था। दूर-दूर तक जंगल दरिंदों से खाली हो गए। सवेरे से शाम तक उसे सैरो-शिकार के सिवा कोई धंधा न था। लबोलहजा ऐसा दिलकश पाया था कि जिस वक्त मस्ती में आकर कोई कौमी गीत छेड़ देता तो राह चलते मुसाफिरों और पहाड़ी औरतों का ठट लग जाता था। कितने ही भोले-भाले दिलों पर उसकी मोहिनी सूरत नक्श थी, कितनी ही आंखें उसे देखने को तरसतीं और कितनी ही जानें उसकी मुहब्बत की आग में घुलती थीं। मगर मसऊद पर अभी तक किसी का जादू न चला था। हां, अगर उसे मुहब्बत थी तो अपनी आबदार शमशीर से जो उसने बाप से विरसे में पाई थी। इस तेग को वह जान से ज्यादा प्यार करता था। बेचारा खुद नंगे बदन रहता मगर उसके लिए तरह-तरह के म्यान बनवाए थे। उसे एक दम के लिए अपने पहलू से अलग न करता। सच है दिलेर सिपाही की तलवार उसकी निगाहों में दुनिया की तमाम चीजो से ज्यादा प्यारी होती है। खासकर वह आबदार खंजर जिसका जौहर बहुत से मौकों पर परखा जा चुका हो। इसी तेग से मसऊद ने कितने ही जंगली दरिंदों को मारा था, कितने ही लुटेरों और डाकुओं को मौत का मजा चखाया था और उसे पूरा यकीन था कि यही तलवार किसी दिन किशवरकुशा दोयम के सर पर चमकेगी और उसकी शहरग के खून से अपनी जबान तर करेगी।

एक रोज वह एक शेर का पीछा करते-करते बहुत दूर निकल गया। धूप सख्त थी, भूख और प्यास से जी बेताब हुआ, मगर वहां न कोई मेवे का दरख्त नजर आया न कोई बहता हुआ पानी का सोता जिसमें भूख और प्यास की आग बुझाता। हैरान और परेशान खड़ा था कि सामने से एक चांद जैसी सुंदर युवती हाथ में बर्छी लिये और बिजली की तरह तेज घोड़े पर सवार आती हुई दिखाई दी। पसीने की मोती जैसी बूंदें उसके माथे पर झलक रही थीं और अंबर की सुगंध में बसे हुए बाल दोनों कंधों पर एक सुहानी बेतकल्लुफी से बिखरे हुए थे। दोनों की निगाहें चार हुई और मसऊद का दिल हाथ से जाता रहा। उस गरीब ने आज तक दुनिया को जला डालने वाला ऐसा हुस्न न देखा था। उसके ऊपर एक

सकता-सा छा गया। यह जवान औरत उस जंगल में मलिका शेर अफगन के नाम से मशहूर थी।

मलिका ने मसऊद को देखकर घोड़े की बाग खींच ली और गर्म लहजे में बोली, क्या तू वही नौजवान है, जो मेरे इलाके के शेरों का शिकार किया करता है ? बतला तेरी इस गुस्ताखी की क्या सजा दूं ?

यह सुनते ही मसऊद की आंखें लाल हो गई और बरबस हाथ तलवार की मूठ पर जा पहुंचा मगर जब्त करके बोला—इस सवाल का जवाब मैं खूब देता, अगर आपके बजाय यह किसी दिलेर मर्द की जबान से निकलता !

इन शब्दों ने मलिका के गुस्से की आग को और भी भड़का दिया। उसने घोड़े को चमकाया और बर्छी उछालती सर पर आ पहुंची और वार पर वार करने शुरू किए। मसऊद के हाथ-पांव बेहद थकान से चूर हो रहे थे और मलिका शेर अफगन बर्छी चलाने की कला में बेजोड़ थी। उसने चरके पर चरके लगाए, यहां तक कि मसऊद घायल होकर घोड़े से गिर पड़ा। उसने अब तक मलिका के वारों को काटने के सिवाय खुद एक हाथ भी न चलाया था।

तब मलिका घोड़े से कूदी और अपना रूमाल फाड़-फाड़कर मसऊद के जख्म बांधने लगी। ऐसा दिलेर और गैरतमंद जवांमर्द उसकी नजर से आज तक न गुजरा था। वह उसे बहुत आराम से उठवाकर अपने खेमे में लाई और पूरे दो हफ्ते तक उसकी परिचर्या में लगी रही। यहां तक कि घाव भर गया और मसऊद का चेहरा फिर पूरनमासी के चांद की तरह चमकने लगा। मगर हसरत यह थी कि अब मलिका ने उसके पास आना-जाना छोड़ दिया।

एक रोज मलिका शेर अफगन ने मसऊद को दरबार में बुलाया और यह बोली, ऐ घमंडी नौजवान ! खुदा का शुक्र है कि तू मेरी बर्छी की चोट से अच्छा हो गया, अब मेरे इलाके से जा, तेरी गुस्ताखी माफ करती हूं। मगर आइंदा मेरे इलाके में शिकार के लिए आने की हिम्मत न करना। फिलहाल ताकीद के तौर पर तेरी तलवार छीन ली जाएगी ताकि तू घमंड के नशे से चूर होकर फिर इधर कदम बढ़ाने की हिम्मत न करे।

मसऊद ने नंगी तलवार म्यान से खींच ली और कड़ककर बोला—जब तक मेरे दम में दम है, कोई यह तलवार मुझसे नहीं ले सकता। यह सुनते ही एक देव-जैसा लंबा-तड़ंगा हैकल पहलवान ललकारकर बढ़ा और मसऊद की कलाई पर तेगे का तुला हुआ हाथ चलाया। मसऊद ने वार खाली दिया और संभलकर तेगे का वार किया तो पहलवान की गर्दन की पट्टी तक बाकी न रही। यह कैफियत देखते ही मलिका की आंखों से चिंगारियां उड़ने लगीं। भयानक गुस्से के स्वर में बोली—खबरदार, यह शख्स यहां से जिंदा न जाने पावे। चारों तरफ से आजमाए हुए मजबूत सिपाही पिल पड़े और मसऊद पर तलवारों और बर्छियों की बौछार पड़ने लगी।

मसऊद का जिस्म जख्मों से छलनी हो गया। खून के फव्वारे जारी थे और खून की प्यासी तलवारें जबान खोले बार-बार उसकी तरफ लपकती थीं और उसका खून चाटकर अपनी प्यास बुझा लेती थीं। कितनी ही तलवारें उसकी ढाल से टकराकर टूट गईं, कितने ही बहादुर सिपाही जख्मी होकर तड़पने लगे और कितने ही उस दुनिया को सिधारे। मगर

मसऊद के हाथ में वह आबदार शमशीर ज्यों-की-त्यों बिजली की तरह कौंधती और सुथराव करती रही। यहां तक कि इस फन के कमाल को समझने वाली मलिका ने खुद उसकी तारीफ का नारा बुलंद किया और उसके तेगे को चूमकर बोली—मसऊद ! तू बहादुरी के समुंदर का मगर है। शेरों के शिकार में वक्त बर्बाद मत कर। दुनिया में शिकार के अलावा और भी ऐसे मौके हैं जहां तू अपने आबदार तेगे का जौहर दिखा सकता है। जा और मुल्कोकौम की खिदमत कर। सैरो-शिकार हम जैसी औरतों के लिए छोड़ दे।

मसऊद के दिल ने गुदगुदाया, प्यार की बानी जबान तक आई मगर बाहर निकल न सकी और उसी वक्त वह अपने दिल में किसी की पलकों की टीस लिए हुए तीन हफ्तों के बाद अपनी बेकरार मां के कदमों पर जा गिरा।

3

नमकखोर सरदार की फौज रोज ब रोज बढ़ने लगी। पहले तो वह अंधेरे के पर्दे में शाही खजानों पर हाथ बढ़ाता रहा, धीरे-धीरे एक बाकायदा फौज तैयार हो गई, यहां तक कि सरदार को शाही फौजों के मुकाबले में अपनी तलवार आजमाने का हौसला हुआ, और पहली लड़ाई में चाबीस किले इस नई फौज के हाथ आ गए। शाही फौज ने लड़ने में जरा भी कसर न की मगर वह ताकत, वह जोश, वह जज्बा जो सरदार नमकखोर और उसके दोस्तों के दिलों को हिम्मत के मैदान में आगे बढ़ाता रहता था, किशवरकुशा दोयम के सिपाहियों में गायब था। लड़ाई के कलाकौशल, हथियारों की खूबी और ऊपर दिखाई पड़ने वाली शान-शौकत के लिहाज से दोनों फौजों का कोई मुकाबला न था। बादशाह के सिपाही लहीम-शहीम, लम्बे-तड़ंगे और आजमाए हुए थे। उनके साज-सामान और तौर-तरीके से देखने वालों के दिलों पर एक डर-सा छा जाता था और वहम भी यह गुमान न कर सकता था कि इस जबर्दस्त जमात के मुकाबले में निहत्थी-सी अधनंगी और बेकायदा सरदारी फौज एक पल के लिए भी पैर जमा सकेगी। मगर जिस वक्त 'मारो' की दिल बढ़ाने वाली पुकार हवा में गूंजी, एक अजीबो-गरीब नजारा सामने आया। सरदार के सिपाही तो नारे मारकर आगे धावा करते थे और बादशाह की फौज भागने की राह पर दबी हुई निगाहें डालती थी। दम के दम में मोर्चे गुबार की तरह फट गए और जब मस्कात के मजबूत किले में सरदार नमकखोर शाही किलेदार की मसनद पर अमीराना ठाट-बाट से बैठा और अपनी फौज की कारगुजारियों और जांबाजियों के इनाम देने के लिए एक तश्त में सोने के तमगे मंगवाकर रखे तो सबसे पहले जिस सिपाही का नाम पुकारा गया वह नौजवान मसऊद था।

मसऊद पर इस वक्त उसकी फौज घमंड करती थी। लड़ाई के मैदान में सबसे पहले उसी की तलवार चमकती थी और धावे के वक्त सबसे पहले उसी के कदम उठते थे। दुश्मन के मोर्चों में ऐसा बेधड़क घुसता था जैसे आसमान में चमकता हुआ लाल तारा। उसकी तलवार के वार कयामत थे और उसके तीर का निशाना मौत का संदेश।

मगर टेढ़ी चाल की तकदीर से उसका यह प्रताप, यह प्रतिष्ठा न देखी गई। कुछ थोड़े से आजमाए हुए अफसर जिनके तेगों की चमक मसऊद के तेग के सामने मंद पड़ गई थी, उससे खार खाने लगे और उसे मिटा देने की तदबीरें सोचने लगे। संयोग से उन्हें

मौका भी जल्द हाथ आ गया।

किशवरकुशा दोयम ने बागियों को कुचलने के लिए अबकी एक जबर्दस्त फौज रवाना की और मीर शुजा को उसका सिपहसालार बनाया जो लड़ाई के मैदान में अपने वक्त का इसफंदियार था। सरदार नमकखोर ने यह खबर पाई तो हाथ-पांव फूल गए। मीर शुजा के मुकाबले में आना अपनी हार को बुलाना था। आखिरकार यह राय तय पाई कि इस जगह से आबादी का निशान मिटाकर हम लोग किलेबंद हो जाएं। उस वक्त नौजवान मसऊद ने उठकर बड़े पुरजोश लहजे में कहा—

'नहीं, हम किलेबंद न होंगे, हम मैदान में रहेंगे और हाथों हाथ दुश्मन का मुकाबला करेंगे। हमारे सीनों की हड्डियां ऐसी कमजोर नहीं हैं कि तीर-तुपुक के निशाने बर्दाश्त न कर सकें। किलेबंद होना इस बात का ऐलान है कि हम आमने-सामने नहीं लड़ सकते। क्या आप लोग, जो शाह बामुराद के नामलेवा हैं, भूल गए कि इसी मुल्क पर उसने अपने खानदान के तीन लाख सपूतों को फूल की तरह चढ़ा दिया ? नहीं, हम हर्गिज किलेबंद न होंगे। हम दुश्मन के मुकाबले में ताल ठोंककर आएंगे और अगर खुदा इंसाफ करने वाला है तो जरूर हमारी तलवारें दुश्मनों से गले मिलेंगी और हमारी बर्छिया उनके पहलू में जगह पाएंगी।''

सैकड़ों निगाहें मसऊद के पुरजोश चेहरे की तरफ उठ गईं। सरदारों की त्योरियों पर बल पड़ गए और सिपाहियों के सीने जोश से धड़कने लगे। सरदार नमकखोर ने उसे गले से लगा लिया और बोले—मसऊद, तेरी हिम्मत और हौसले की दाद देता हूं। तू हमारी फौज की शान है। तेरी सलाह मर्दाना सलाह है। बेशक हम किलेबंद न होंगे। हम दुश्मन के मुकाबले में ताल ठोंककर आएंगे और अपने प्यारे जन्नतनिशां के लिए अपना खून पानी की तरह बहाएंगे। तू हमारे लिए आगे-आगे चलने वाली मशाल है और हम सब आज इसी रोशनी में कदम आगे बढ़ाएंगे।

मसऊद ने चुने हुए सिपाहियों का एक दस्ता तैयार किया और कुछ इस दमखम और कुछ इस जोशखरोश से मीर शुजा पर टूटा कि उसकी सारी फौज में खलबली पड़ गई। सरदार नमकखोर ने जब देखा कि शाही फौज के कदम डगमगा रहे हैं, तो अपनी पूरी ताकत से बादल और बिजली की तरह लपका और तेगों से तेगे और बर्छियों से बर्छियां खड़कने लगीं। तीन घंटे तक बला का शोर मचा रहा, यहां तक कि शाही फौज के कदम उखड़ गए और वह सिपाही जिसकी तलवार मीर शुजा से गले मिली मसऊद था।

तब सरदारी फौज और अफसर सब-के-सब लूट के माल पर टूटे और मसऊद जख्मों से चूर और खून में रंगा हुआ अपने कुछ जान पर खेलने वाले दस्तों के साथ मस्कात के किले की तरफ लौटा मगर जब होश ने आंखें खोलीं और हवास ठिकाने हुए तो क्या देखता है कि मैं एक सजे हुए कमरे में मखमली गद्दे पर लेटा हुआ हूं। फूलों की सुहानी महक और लंबी छरहरी सुंदरियों के जमघट से कमरा चमन बना हुआ था। ताज्जुब से इधर-उधर ताकने लगा कि इतने में एक अप्सरा-जैसी सुंदर युवती तश्त में फूलों का हार लिए धीरे-धीरे आती हुई दिखाई दी कि जैसे बहार फूलों की डाली पेश करने आ रही है। उसे देखते ही उन लंबी छरहरी सुंदरियों ने आंखें बिछाईं और उसकी हिनाई हथेली को चूमा। मसऊद देखते ही पहचान गया। यह मलिका शेर अफगन थी।

मलिका ने फूलों का हार मसऊद के गले में डाला। हीरे-जवाहरात उस पर चढ़ाए और सोने के तारों से टकी हुई मसनद पर बड़ी आन-बान से बैठ गई। साजिंदों ने बीन ले-लेकर विजयी अतिथि के स्वागत में सुहाने राग अलापने शुरू किए।

यहां तो नाच-गाने की महफिल थी उधर आपसी डाह ने नए-नए शिगूफे खिलाए। सरदार से शिकायत की कि मसऊद जरूर दुश्मन से जा मिला है और आज जान-बूझकर फौज का एक दस्ता लेकर लड़ने को गया था ताकि उसे खाक और खून में सुलाकर सरदारी फौज को बेचिराग कर दे। इसके सबूत में कुछ जाली खत भी दिखाए गए और इस कमीनी कोशिश में जबान की ऐसी चालाकी से काम लिया कि आखिर सरदार को इन बातों पर यकीन आ गया। पौ फटे जब मसऊद मलिका शेर अफगन के दरबार से विजय का हार गले में डाले सरदार को बधाई देने गया तो बजाय इसके कि कद्रदानी का सिरोपा और बहादुरी का तमगा पाए, उसको खरी-खोटी बातों के तीर का निशाना बनाया गया और हुक्म मिला कि तलवार कमर से खोलकर रख दे।

मसऊद स्तंभित रह गया। यह तेगा मैंने अपने बाप से विरसे में पाया है और यह मेरे पिछले बड़प्पन की आखिरी यादगार है। यह मेरी बांहों की ताकत और मेरा सहयोगी और मददगार है। इसके साथ कैसी-कैसी स्मृतियां जुड़ी हुई हैं, क्या मैं जीते जी इसे अपने पहलू से अलग कर दूं ? अगर मुझ पर कोई आदमी लड़ाई के मैदान से कदम हटाने का इल्जाम लगा सकता, अगर कोई शख्स इस तेगे का इस्तेमाल मेरे मुकाबिले में ज्यादा कारगुजारी के साथ कर सकता, अगर मेरी बांहों में तेगा पकड़ने की ताकत न होती तो खुदा की कसम, मैं खुद ही तेगा कमर से खोलकर रख देता। मगर खुदा का शुक्र है कि मैं इन इल्जामों से बरी हूं। फिर क्यों मैं इसे हाथ से जाने दूं ? क्या इसलिए कि मेरी बुराई चाहने वाले कुछ थोड़े से डाहियों ने सरदार नमकखोर का मन मेरी तरफ से फेर दिया है। ऐसा नहीं हो सकता।

मगर फिर उसे खयाल आया, मेरी सरकशी पर सरदार और भी गुस्सा हो जाएंगे और यकीनन मुझसे तलवार शमशीर के जोर से छीन ली जाएगी। ऐसी हालत में मेरे ऊपर जान छिड़कने वाले सिपाही कब अपने को काबू में रख सकेंगे। जरूर आपस में खून की नदियां बहेंगी और भाई-भाई का सिर कटेगा। खुदा न करे कि मेरे सबब से यह दर्दनाक मार-काट हो। यह सोचकर उसने चुपके से शमशीर सरदार नमकखोर के बगल में रख दी और खुद सर नीचा किए जब्त की इंतहाई कूवत से गुस्से को दबाता हुआ खेमे से बाहर निकल आया।

मसऊद पर सारी फौज गर्व करती थी और उस पर जानें वारने के लिए हथेली में सर लिए रहती थी। जिस वक्त उसने तलवार खोली है, दो हजार सूरमा सिपाही म्यान पर हाथ रखे और शोले बरसाती हुई आंखों से ताकते कनौतियां बदल रहे थे। मसऊद के एक जरा से इशारे की देर थी और दम के दम में लाशों के ढेर लग जाते। मगर मसऊद बहादुरी ही में बेजोड़ न था, जब्त और धीरज में भी उसका जवाब न था। उसने यह जिल्लत और बदनामी सब गवारा की, तलवार देना गवारा किया, बगावत का इल्जाम लेना गवारा किया और अपने साथियों के सामने सर झुकाना गवारा किया मगर यह गवारा न किया कि उसके कारण फौज में बगावत और हुक्म न मानने का खयाल पैदा हो। और ऐसे नाजुक

वक्त में जबकि कितने ही दिलेर जिन्होंने लड़ाई की आजमाइश में अपनी बहादुरी का सबूत दिया था, जब्त हाथ से खो बैठते और गुस्से की हालत में एक-दूसरे के गले काटते, खामोश रहा और उसके पैर नहीं डगमगाए। उसकी पेशानी पर जरा भी बल न आया, उसके तेवर जरा भी न बदले। उसने खून बरसाती हुई आंखों से दोस्तों को अलविदा कहा और हसरत-भरा दिल लिए उठा और एक गुफा में छिप बैठा और जब सूरज डूबने पर वहां से उठा तो उसके दिल ने फैसला कर लिया था कि बदनामी का दाग माथे से मिटाऊंगा और डाहियों को शर्मिंदगी के गड्ढे में गिराऊंगा।

मसऊद ने फकीरों का भेस अख्तियार किया, सर पर लोहे की टोपी के बजाय लंबी जटाएं बनाईं, जिस्म पर जिरहबख्तर के बजाय गेरुए रंग का बाना सजा, हाथ में तलवार के बजाय फकीरों का प्याला लिया। जंग के नारे के बजाय फकीरों की सदा बुलंद की और अपना नाम शेख मखमूर रख दिया। मगर यह जोगी दूसरे जोगियों की तरह धूनी रमाकर न बैठा और न उस तरह का प्रचार शुरू किया। वह दुश्मन की फौज में जाता और सिपाहियों की बातें सुनता। कभी उनकी मोर्चेबंदियों पर निगाह दौड़ाता, कभी उनके दमदमों और किलों की दीवारों का मुआइना करता। तीन बार सरदार नमकखोर दुश्मन के पंजे से ऐसे वक्त निकले जबकि उन्हें जान बचाने की कोई आस न रही थी। और यह सब शेख मखमूर की करामात थी। मिनकाद का किला जीतना कोई आसान बात न थी। पांच हजार बहादुर सिपाही उसकी हिफाजत के लिए कुर्बान होने को तैयार बैठे थे। तीस तोपें आग के गोले उगलने के लिए मुंह खोले हुए थीं और दो हजार सधे हुए तीरंदाज हाथों में मौत का पैगाम लिए हुक्म का इंतजार कर रहे थे। मगर जिस वक्त सरदार नमकखोर अपने दो हजार बहादुरों के साथ इस किले पर चढ़ा तो पांचों हजार दुश्मन सिपाही काठ के पुतले बन गए। तोपों के मुंह बंद हो गए और तीरंदाजों के तीर हवा में उड़ने लगे। और यह सब शेख मखमूर की करामात थी। शाह साहब वहीं मौजूद थे। सरदार दौड़कर उनके कदमों पर गिर पड़ा और उनके पैरो की धूल माथे पर लगाई।

4

किशवरकुशा दोयम का दरबार सजा हुआ है। अंगूरी शराब का दौर चल रहा है और दरबार के बड़े-बड़े अमीर और रईस अपने-अपने दर्जे के हिसाब से अदब के साथ घुटना मोड़े बैठे हैं। यकायक भेदियों ने खबर दी कि मीर शुजा की हार हुई और वह जान से मारे गए। यह सुनकर किशवरकुशा के चेहरे पर चिंता के लक्षण दिखाई पड़े। सरदारों को संबोधित करके बोले—आप लोगों में ऐसा दिलेर कौन है जो इस बदमाश सरदार का सर कलम करके हमारे सामने पेश करे। इसकी गुस्ताखियां अब हद से आगे बढ़ी जाती हैं। आप ही लोगों के बड़े-बूढ़ों ने यह मुल्क तलवार के जोर से मुरादिया खानदान से छीना था। क्या आप उन्हीं पुरखों की औलाद नहीं हैं ? यह सुनते ही सरदारों में एक सन्नाटा छा गया, सबके चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं और किसी की हिम्मत न पड़ी कि बादशाह की दावत कबूल करे। आखिरकार शाह किशवरकुशा के बुड्ढे चचा खुद उठे और बोले—ऐ शाह जवांबख्त ! मैं तेरी दावत कबूल करता हूं। अगरचे मैं बुड्ढा हो गया हूं और बाजुओं में तलवार पकड़ने की ताकत बाकी नहीं रही, मगर मेरे खून में वही गर्मी और दिल में वही

जोश है जिनकी बदौलत हमने यह मुल्क शाह बामुराद से लिया था। या तो मैं इस नापाक कुत्ते की हस्ती खाक में मिला दूंगा या इस कोशिश में अपनी जान निसार कर दूंगा, ताकि अपनी आंखों से सल्तनत की बर्बादी न देखूं। यह कहकर अमीर पुरतदबीर वहां से उठा और मुस्तैदी से जंगी तैयारियों में लग गया। उसे मालूम था कि यह आखिरी मुकाबिला है और अगर इसमें नाकाम रहे तो मर जाने के सिवाय और कोई चारा नहीं है। उधर सरदार नमकखोर धीरे-धीरे राजधानी की तरफ बढ़ता आता था, यकायक उसे खबर मिली कि अमीर पुरतदबीर बीस हजार पैदल और सवारों के साथ मुकाबले के लिए आ रहा है।

यह सुनते ही सरदार नमकखोर की हिम्मतें छूट गईं। अमीर पुरतदबीर बुढ़ापे के बावजूद अपने वक्त का एक ही सिपहसालार था। उसका नाम सुनकर बड़े-बड़े बहादुर कानों पर हाथ रख लेते थे। सरदार नमकखोर का खयाल था कि अमीर कहीं एक कोने में बैठे खुदा की इबादत करते होंगे। मगर उनको अपने मुकाबले में देखकर उसके होश उड़ गए कि कहीं ऐसा न हो कि हार से हम अपनी सारी जीत खो बैठें और बरसों की मेहनत पर पानी फिर जाए। सबकी यही सलाह हुई कि वापस चलना ही ठीक है। उस वक्त शेख मखमूर ने कहा—ऐ सरदार नमकखोर ! तूने मुल्के जन्नतनिशां को छुटकारा दिलाने का बीड़ा उठाया है। क्या इन्हीं हिम्मतों से तेरी आरजुएं पूरी होंगी ? तेरे सरदार और सिपाहियों ने कभी मैदान से कदम पीछे नहीं हटाया, कभी पीठ नहीं दिखाई, तीरों की बौछार को तुमने पानी की फुहार समझा और बंदूकों की बाढ़ को फूलों की बहार। क्या इन चीजों से इतनी जल्दी तुम्हारा जी भर गया ? तुमने यह लड़ाई सल्तनत को बढ़ाने के कमीने इरादे से नहीं छेड़ी है। तुम सच्चाई और इंसाफ की लड़ाई लड़ रहे हो। क्या तुम्हारा जोश इतनी जल्दी ठंडा हो गया ? क्या तुम्हारी इंसाफ की तलवार की प्यास इतनी जल्दी बुझ गई ? तुम खूब जानते हो कि इंसाफ और सच्चाई की जीत जरूर होगी, तुम्हारी इन बहादुरियों का इनाम खुदा के दरबार से जरूर मिलेगा। फिर अभी से क्यों हौसले छोड़े देते हो ? क्या बात है, अगर अमीर पुरतदबीर बड़ा दिलेर और इरादे का पक्का सिपाही है। अगर वह शेर है तो तुम शेर मर्द हो; अगर उसकी तलवार लोहे की है तो तुम्हारा तेगा फौलाद का है; अगर उसके सिपाही जान पर खेलने वाले हैं तो तुम्हारे सिपाही भी सर कटाने के लिए तैयार हैं। हाथों में तेगा मजबूत पकड़ो और खुदा का नाम लेकर दुश्मन पर टूट पड़ो। तुम्हारे तेवर कहे देते हैं कि मैदान तुम्हारा है।

इस पुरजोश तकरीर ने सरदारों के हौसले उभार दिए। उनकी आंखें लाल हो गई, तलवारें पहलू बदलने लगीं और कदम बरबस लड़ाई के मैदान की तरफ बढ़े। शेख मखमूर ने तब फकीरी बाना उतार फेंका, फकीरी प्याले को सलाम किया और हाथों में वही तलवार और ढाल लेकर जो किसी वक्त मसऊद से छीने गए थे, सरदार नमकखोर के साथ-साथ सिपाहियों और अफसरों का दिल बढ़ाते शेरों की तरह बिफरता हुआ चला। आधी रात का वक्त था, अमीर के सिपाही अभी मंजिलें मारे चले आते थे। बेचारे दम भी न लेने पाये थे कि एकाएक सरदार नमकखोर के आ पहुंचने की खबर पाई। होश उड़ गए और हिम्मतें टूट गई। मगर अमीर शेर की तरह गरजकर खेमे से बाहर आया और दम के दम में अपनी सारी फौज दुश्मन के मुकाबले में कतार बांधकर खड़ी कर दी कि जैसे एक माली था कि

आया और इधर-उधर बिखरे हुए फूलों को एक गुलदस्ते में सजा गया।

दोनों फौजें काले-काले पहाड़ों की तरह आमने-सामने खड़ी हैं। और तोपों का आग बरसाना ज्वालामुखी का दृश्य प्रस्तुत कर रहा था। उनकी घनगरज आवाज से बला का शोर मच रहा था। यह पहाड़ धीरे-धीरे आगे बढ़ते गए। यकायक वह टकराए और कुछ इस जोर से टकराए कि जमीन कांप उठी और घमासान की लड़ाई शुरू हो गई। मसऊद का तेगा इस वक्त एक बला हो रहा था, जिधर पहुंचता लाशों के ढेर लग जाते और सैकड़ों सर उस पर भेंट चढ़ जाते।

पौ फटे तक तेगे यों ही खड़का किए और यों ही खून का दरिया बहता रहा। जब दिन निकला तो लड़ाई का मैदान मौत का बाजार हो रहा था। जिधर निगाह उठती थी, मरे हुओं के सर और हाथ-पैर लहू में तैरते दिखाई देते थे। यकायक शेख मखमूर की कमान से एक तीर बिजली बनकर निकला और अमीर पुरतदबीर की जान के घोंसले पर गिरा और उसके गिरते ही शाही फौज भाग निकली और सरदारी फौज फतेह का झंडा उठाए राजधानी की तरफ बढ़ी।

5

जब यह जीत की लहर-जैसी फौज शहर की दीवार के अंदर दाखिल हुई तो शहर के मर्द और औरत, जो बड़ी मुद्दत से गुलामी की सख्तियां झेल रहे थे, उसकी अगवानी के लिए निकल पड़े। सारा शहर उमड़ आया। लोग सिपाहियों को गले लगाते थे और उन पर फूलों की बरखा करते थे कि जैसे बुलबुलें थीं जो बहेलिये के पंजे से रिहाई पाने पर बाग में फूलों को चूम रही थीं। लोग शेख मखमूर के पैरों की धूल माथे से लगाते थे और सरदार नमकखोर के पैरों पर खुशी के आंसू बहाते थे।

अब मौका था कि मसऊद अपना जोगिया भेस उतार फेंके और ताजोतख्त का दावा पेश करे। मगर जब उसने देखा कि मलिका शेर अफगन का नाम हर आदमी की जबान पर है तो खामोश हो रहा। वह खूब जानता था कि अगर मैं अपने दावे को साबित कर दूं तो मलिका का दावा खत्म हो जाएगा। मगर तब भी यह नामुमकिन था कि सख्त मारकाट के बिना यह फैसला हो सके। एक पुरजोश और आरजूमंद दिल के लिए इस हद तक जब्त करना मामूली बात न थी। जब से उसने होश संभाला, यह खयाल कि मैं इस मुल्क का बादशाह हूं, उसके रग रेशे में घुल गया था। शाह बामुराद की वसीयत उसे एकदम को भी न भूलती थी। दिन को वह बादशाहत के मनसूबे बांधता और रात को बादशाहत के सपने देखता। यह यकीन कि मैं बादशाह हूं, उसे बादशाह बनाए हुए था। अफसोस, आज वह मंसूबे टूट गए और वह सपना तितर-बितर हो गया। मगर मसऊद के चरित्र में मर्दाना जब्त अपनी हद पर पहुंच गया था। उसने उफ तक न की, एक ठंडी आह भी न भरी, बल्कि पहला आदमी जिसने मलिका के हाथों को चूमा और उसके सामने सर झुकाया, वह फकीर मखमूर था। हां, ठीक उस वक्त जबकि वह मलिका के हाथ को चूम रहा था, उसकी जिंदगी भर की लालसाएं आंसू की एक बूंद बनकर मलिका की मेहंदी-रची हथेली पर गिर पड़ी कि जैसे मसऊद ने अपनी लालसा का मोती मलिका को सौंप दिया। मलिका ने हाथ खींच लिया और फकीर मखमूर के चेहरे पर मुहब्बत से भरी हुई निगाह डाली। जब

सल्तनत के सब दरबारी भेंट दे चुके, तब तोपों की सलामियां दगने लगीं, शहर में धूमधाम का बाजार गर्म हो गया और खुशियों के जलसे चारों तरफ नजर आने लगे।

राजगद्दी के तीसरे दिन मसऊद खुदा की इबादत में बैठा हुआ था कि मलिका शेर अफगन अकेले उसके पास आई और बोली—मसऊद, मैं एक नाचीज तोहफा तुम्हारे लिए लाई हूं और वह मेरा दिल है। क्या तुम उसे मेरे हाथ से कबूल करोगे ? मसऊद अचंभे से ताकता रह गया, मगर जब मलिका की आंखें मुहब्बत के नशे में डूबी हुई पाई तो चाव के मारे उठा और उसे सीने से लगाकर बोला—मैं तो मुद्दत से तुम्हारी बर्छी की नोक का घायल हूं, मेरी किस्मत है कि आज तुम मरहम रखने आई हो।

6

मुल्के जन्नतनिशां अब आजादी और खुशहाली का घर है। मलिका शेर अफगन को अभी गद्दी पर बैठे साल भर से ज्यादा नहीं गुजरा मगर सल्तनत का कारबार बहुत अच्छी तरह और खूबी से चल रहा है और इस बड़े काम में उसका प्यारा शौहर मसऊद, जो अभी तक फकीर मखमूर के नाम से मशहूर है, उसका सलाहकार और मददगार है।

रात का वक्त था, शाही दरबार सजा हुआ था, बड़े-बड़े वजीर अपने पद के अनुसार बैठे हुए थे और नौकर जर्क-बर्क वर्दियां पहने हाथ बांधे खड़े थे कि एक खिदमतगार ने आकर अर्ज की—दोनों जहान की मलिका, एक गरीब औरत बाहर खड़ी है और आपके कदमों का बोसा लेने की गुजारिश करती है। दरबारी चौंके और मलिका ने ताज्जुब-भरे लहजे में कहा—अंदर हाजिर करो। खिदमतगार बाहर चला गया और जरा देर में एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई आई और अपनी पिटारी से एक जड़ाऊ ताज निकालकर बोली—तुम लोग इसे ले लो, अब यह मेरे किसी काम का नहीं रहा। मियां ने मरते वक्त इसे मसऊद को देकर कहा था कि तुम इसके मालिक हो, मगर अपने जिगर के टुकड़े मसऊद को कहां ढूंढू। रोते-रोते अंधी हो गई, सारी दुनिया की खाक छानी, मगर उसका कहीं पता न लगा। अब जिंदगी से तंग आ गई हूं, जीकर क्या करूंगी। यह अमानत मेरे पास है, जिसका जी चाहे ले ले।

दरबार में सन्नाटा छा गया। लोग हैरत के मारे मूरत-से बन गए कि जैसे एक जादूगर था जो उंगली के इशारे से सबका दम बंद किए हुए था। यकायक मसऊद अपनी जगह से उठा और रोता हुआ जाकर रिन्दा के पैरों पर गिर पड़ा। रिन्दा अपने जिगर के टुकड़े को देखते ही पहचान गई, उसे छाती से लगा लिया और वह जड़ाऊ ताज उसके सर पर रखकर बोली—साहबो, यही मेरा प्यारा मसऊद और शाहे बामुराद का बेटा है, तुम लोग इसकी रिआया हो, यह ताज इसका है, यह मुल्क इसका है और सारी खिलकत इसकी है। आज से वह अपने मुल्क का बादशाह है, अपनी कौम का खादिम।

दरबार में कयामत का शोर मचने लगा, दरबारी उठे और मसऊद को हाथोंहाथ ले जाकर तख्त पर मलिका शेर अफगन के बगल में बिठा दिया। भेंटें दी जाने लगीं, सलामियां दगने लगीं, नफीरियों ने खुशी का गीत गाया और बाजों ने जीत का शोर मचाया। मगर जब जोश की यह खुशी जरा कम हुई और लोगों ने रिन्दा को देखा तो

वह मर गई थी। आरजूओं के पूरे होते ही जान निकल गई। गोया आरजूएं रूह बनकर उसके मिट्टी के तन को जिंदा रखे हुए थीं।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'सोजे वतन' (उर्दू कहानी-संग्रह), जुलाई, 1908 में प्रथम बार संकलित-प्रकाशित। हिन्दी रूप इसी शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-1 में संकलित।]

शोक का पुरस्कार

आज तीन दिन गुजर गए। शाम का वक्त था। मैं युनिवर्सिटी हॉल से खुश-खुश चला आ रहा था। मेरे सैकड़ों दोस्त मुझे बधाइयां दे रहे थे। मारे खुशी के मेरी बाछें खिल जाती थीं। मेरी जिंदगी की सबसे प्यारी आरजू कि मैं एम. ए. पास हो जाऊं, पूरी हो गई थी और ऐसी खूबी से जिसकी मुझे तनिक भी आशा न थी। मेरा नंबर अव्वल था। वाइस चांसलर साहब ने खुद मुझसे हाथ मिलाया था और मुस्कराकर कहा था कि भगवान् तुम्हें और भी बड़े कामों की शक्ति दे। मेरी खुशी की कोई सीमा न थी। मैं नौजवान था, सुंदर था, स्वस्थ था, रुपये-पैसे की न मुझे इच्छा थी और न कुछ कमी, मां-बाप बहुत कुछ छोड़ गए थे। दुनिया में सच्ची खुशी पाने के लिए जिन चीजों की जरूरत है वह सब मुझे प्राप्त थीं। और सबसे बढ़कर पहलू में एक हौसलामंद दिल था जो ख्याति प्राप्त करने के लिए अधीर हो रहा था।

घर आया, दोस्तों ने यहां भी पीछा न छोड़ा, दावत की ठहरी। दोस्तों की खातिर-तवाजो में बारह बज गए, लेटा तो बरबस खयाल मिस लीलावती की तरफ जा पहुंचा जो मेरे पड़ोस में रहती थी और जिसने मेरे साथ बी. ए. का डिप्लोमा हासिल किया था। भाग्यशाली होगा वह व्यक्ति जो मिस लीला को ब्याहेगा, कैसी सुंदर है ! कितना मीठा गला है ! कैसा हंसमुख स्वभाव ! मैं कभी-कभी उसके यहां प्रोफेसर साहब से दर्शनशास्त्र में सहायता लेने के लिए जाया करता था। वह दिन शुभ होता था जब प्रोफेसर साहब घर पर न मिलते थे। मिस लीला मेरे साथ बड़े तपाक से पेश आती और मुझे ऐसा मालूम होता था कि मैं ईसा मसीह की शरण में आ जाऊं तो उसे मुझे अपना पति बना लेने में आपत्ति न होगी। वह शेली, बायरन और कीट्स की प्रेमी थी और मेरी रुचि भी बिल्कुल उसी के समान थी। हम जब अकेले होते तो अक्सर प्रेम और प्रेम के दर्शन पर बातें करने लगते और उसके मुंह से भावों में डूबी हुई बातें सुन-सुनकर मेरे दिल में गुदगुदी पैदा होने लगती थी। मगर अफसोस, मैं अपना मालिक न था। मेरी शादी एक ऊंचे घराने में कर दी गई थी और अगरचे मैंने अब तक अपनी बीवी की सूरत भी न देखी थी मगर मुझे पूरा-पूरा विश्वास था कि मुझे उसकी संगत में वह आनंद नहीं मिल सकता जो मिस लीला की संगत में संभव है। शादी हुए दो साल हो चुके थे मगर उसने मेरे पास एक खत भी न लिखा था। मैंने दो-तीन खत लिखे भी, मगर किसी का जवाब न मिला। इससे मुझे शक हो गया था कि उसकी तालीम भी यों ही-सी है।

आह ! क्या मैं इसी लड़की के साथ जिंदगी बसर करने पर मजबूर हूंगा?.... इस सवाल ने मेरे उन तमाम किलों को ढहा दिया जो मैंने अभी-अभी बनाए थे। क्या मैं मिस

लीला से हमेशा के लिए हाथ धो लूं ? नामुमकिन है। मैं कुमुदिनी को छोड़ दूंगा, मैं अपने घर वालों से नाता तोड़ लूंगा, मैं बदनाम हूंगा, परेशान हूंगा, मगर मिस लीला को जरूर अपना बनाऊंगा।

इन्हीं खयालों के असर में मैंने अपनी डायरी लिखी और उसे मेज पर खुला छोड़कर बिस्तर पर लेट रहा और सोचते-सोचते सो गया।

सवेरे उठकर देखता हूं तो बाबू निरंजनदास मेरे सामने कुर्सी पर बैठे हैं। उनके हाथ में डायरी थी जिसे वह ध्यानपूर्वक पढ़ रहे थे। उन्हें देखते ही मैं बड़े चाव से लिपट गया। अफसोस, अब उस देवोपम स्वभाव वाले नौजवान की सूरत देखनी न नसीब होगी। अचानक मौत ने उसे हमेशा के लिए हमसे अलग कर दिया। कुमुदिनी के सगे भाई थे, बहुत स्वस्थ, सुंदर और हंसमुख, उम्र मुझसे दो ही चार साल ज्यादा थी, ऊंचे पद पर नियुक्त थे, कुछ दिनों से इसी शहर में तबदील होकर आ गए थे। मेरी और उनकी गाढ़ी दोस्ती हो गई थी। मैंने पूछा—क्या तुमने डायरी पढ़ ली ?

निरंजन—हां।

मैं—मगर कुमुदिनी से कुछ न कहना।

निरंजन—बहुत अच्छा, न कहूंगा।

मैं—इस वक्त किसी सोच में हो। मेरा डिप्लोमा देखा ?

निरंजन—घर से खत आया है, पिताजी बीमार हैं, दो-तीन दिन में जाने वाला हूं।

मैं—शौक से जाइए, ईश्वर उन्हें जल्द स्वस्थ करे।

निरंजन—तुम भी चलोगे ? न मालूम कैसा पड़े, कैसा न पड़े।

मैं—मुझे तो इस वक्त माफ कर दो।

निरंजनदास यह कहकर चले गए। मैंने हजामत बनाई, कपड़े बदले और मिस लीलावती से मिलने का चाव मन में लेकर चला। वहां जाकर देखा तो ताला पड़ा हुआ है। मालूम हुआ कि मिस साहिबा की तबीयत दो-तीन दिन से खराब थी। आबहवा बदलने के लिए नैनीताल चली गई हैं। अफसोस, मैं हाथ मलकर रह गया। क्या लीला मुझसे नाराज थी ? उसने मुझे क्यों खबर नहीं दी। लीला, क्या तू बेवफा है, तुझसे बेवफाई की उम्मीद न थी। फौरन पक्का इरादा कर लिया कि आज की डाक से नैनीताल चल दूं। मगर घर आया तो लीला का खत मिला। कांपते हुए हाथों से खोला, लिखा था—मैं बीमार हूं, मेरे जीने की कोई उम्मीद नहीं है, डॉक्टर कहते हैं कि 'प्लेग' है। जब तक तुम आओगे, शायद मेरा किस्सा तमाम हो जाएगा। आखिरी वक्त तुमसे न मिलने का सख्त सदमा है। मेरी याद दिल में कायम रखना। मुझे सख्त अफसोस है कि तुमसे मिलकर नहीं आई। मेरा कुसूर माफ करना और अपनी अभागिनी लीला को भुला मत देना। खत मेरे हाथ से छूटकर गिर पड़ा। दुनिया आंखों में अंधेरी हो गई, मुंह से एक ठंडी आह निकली। बिना एक क्षण गंवाये मैंने बिस्तर बांधा और नैनीताल चलने के लिए तैयार हो गया। घर से निकला ही था कि प्रोफेसर बोस से मुलाकात हो गई। कॉलेज से चले आ रहे थे, चेहरे पर शोक लिखा हुआ था। मुझे देखते ही उन्होंने जेब से एक तार निकालकर मेरे सामने फेंक दिया। मेरा कलेजा धक् से हो गया। आंखों में अंधेरा छा गया, तार कौन उठाता है, हाय मारकर बैठ गया। लीला, तू इतनी जल्द मुझसे जुदा हो गई !

2

मैं रोता हुआ घर आया और चारपाई पर मुंह ढांपकर खूब रोया। नैनीताल जाने का इरादा खत्म हो गया। दस-बारह दिन तक मैं उन्माद की-सी दशा में इधर-उधर घूमता रहा। दोस्तों की सलाह हुई कि कुछ रोज के लिए कहीं घूमने चले जाओ। मेरे दिल में भी यह बात जम गई। निकल खड़ा हुआ और दो महीने तक विंध्याचल, पारसनाथ वगैरह पहाड़ियों में आवारा फिरता रहा। ज्यों-त्यों करके नई-नई जगहों और दृश्यों की सैर से तबीयत को जरा तस्कीन हुई। मैं आबू में था जब मेरे नाम तार पहुंचा कि मैं कॉलेज की असिस्टेंट प्रोफेसरी के लिए चुना गया हूं। जी तो न चाहता था कि फिर इस शहर में आऊं, मगर प्रिंसिपल के खत ने मजबूर कर दिया। लाचार, लौटा और अपने काम में लग गया। जिंदादिली नाम को न बाकी रही थी। दोस्तों की संगत से भागता और हंसी-मजाक से चिढ़ मालूम होती।

एक रोज शाम के वक्त मैं अपने अंधेरे कमरे में लेटा हुआ कल्पनालोक की सैर कर रहा था कि सामने वाले मकान से गाने की आवाज आई। आह, क्या आवाज थी, तीर की तरह दिल में चुभी जाती थी, स्वर कितना करुण था ! इस वक्त मुझे अंदाजा हुआ कि गाने में क्या असर होता है। तमाम रोंगटे खड़े हो गए, कलेजा मसोसने लगा और दिल पर एक अजीब वेदना-सी छा गई। आंखों से आंसू बहने लगे। हाय, यह लीला का प्यारा गीत था—

पिया मिलन है कठिन बावरी।

मुझसे जब्त न हो सका, मैं एक उन्माद की-सी दशा में उठा और जाकर सामने वाले मकान का दरवाजा खटखटाया। मुझे उस वक्त यह चेतना न रही कि एक अजनबी आदमी के मकान पर आकर खड़े हो जाना और उसके एकांत में विघ्न डालना परले दर्जे की असभ्यता है।

3

एक बुढ़िया ने दरवाजा खोल दिया और मुझे खड़े देखकर लपकी हुई अंदर गई। मैं भी उसके साथ चला गया। देहलीज तय करते ही एक बड़े कमरे में पहुंचा। उस पर एक सफेद फर्श बिछा हुआ था। गावतकिए भी रखे थे। दीवारों पर खूबसूरत तस्वीरें लटक रही थीं और एक सोलह-सत्रह साल का सुंदर नौजवान जिसकी अभी मसें भीग रही थीं, मसनद के करीब बैठा हुआ हारमोनियम पर गा रहा था। मैं कसम खा सकता हूं कि ऐसा सुंदर स्वस्थ नौजवान मेरी नजर से कभी नहीं गुजरा। चाल-ढाल से सिख मालूम होता था। मुझे देखते ही चौंक पड़ा और हारमोनियम छोड़कर खड़ा हो गया। शर्म से सिर झुका लिया और कुछ घबराया हुआ-सा नजर आने लगा। मैंने कहा—माफ कीजिएगा, मैंने आपको बड़ी तकलीफ दी। आप इस फन के उस्ताद मालूम होते हैं। खासकर जो चीज अभी आप गा रहे थे, वह मुझे पसंद है।

नौजवान ने अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से मेरी तरफ देखा और सर नीचा कर लिया और होंठों ही में कुछ अपने नौसिखियेपन की बात कही। मैंने फिर पूछा—आप यहां कब से हैं ?

नौजवान—तीन महीने के करीब होता है।

मैं—आपका शुभ नाम ?

नौजवान—मुझे मेहरसिंह कहते हैं।

मैं बैठ गया और बहुत गुस्ताखाना बेतकल्लुफी से मेहरसिंह का हाथ पकड़कर बिठा दिया और फिर माफी मांगी। उस वक्त की बातचीत से मालूम हुआ कि वह पंजाब का रहने वाला है और यहां पढ़ने के लिए आया हुआ है। शायद डॉक्टरों ने सलाह दी थी कि पंजाब की आबहवा उसके लिए ठीक नहीं है। मैं दिल में तो झेंपा कि एक स्कूल के लड़के के साथ बैठकर ऐसी बेतकल्लुफी से बातें कर रहा हूं, मगर संगीत के प्रेम ने इस खयाल को रहने न दिया। रस्मी परिचय के बाद मैंने फिर प्रार्थना की कि वही चीज छेड़िए। मेहरसिंह ने आंखें नीची करके जवाब दिया कि मैं अभी बिल्कुल नौसिखिया हूं।

मैं—यह तो आप अपनी जबान से कहिए।

मेहरसिंह—(झेंपकर) आप कुछ फरमाएं, हारमोनियम हाजिर है।

मैं—इस फन में बिल्कुल कोरा हूं वर्ना आपकी फरमाइश जरूर पूरी करता।

इसके बाद मैंने बहुत आग्रह किया मगर मेहरसिंह झेंपता ही रहा। मुझे स्वभावतः शिष्टाचार से घृणा है। हालांकि इस वक्त मुझे रूखा होने का कोई हक न था मगर जब मैंने देखा कि यह किसी तरह न मानेगा तो जरा रुखाई से बोला—खैर जाने दीजिए। मुझे अफसोस है कि मैंने आपका बहुत वक्त बर्बाद किया। माफ कीजिए। यह कहकर उठ खड़ा हुआ। मेरी रोनी सूरत देखकर शायद मेहरसिंह को उस वक्त तरस आ गया, उसने झेंपते हुए मेरा हाथ पकड़ लिया और बोला—आप तो नाराज हुए जाते हैं।

मैं—मुझे आपसे नाराज होने का हक हासिल नहीं।

मेहरसिंह—अच्छा बैठ जाइए, मै आपकी फरमाइश पूरी करूंगा। मगर मैं अभी बिल्कुल अनाड़ी हूं।

मैं बैठ गया और मेहरसिंह ने हारमोनियम पर वही गीत अलापना शुरू किया—

पिया मिलन है कठिन बावरी।

कैसी सुरीली तान थी, कैसी मीठी आवाज, कैसा बेचैन करने वाला भाव ! उसके गले में वह रस था जिसका बयान नहीं हो सकता। मैंने देखा कि गाते-गाते खुद उसकी आंखों में आंसू भर आए। मुझ पर इस वक्त एक मोहक सपने की-सी दशा छाई हुई थी। एक बहुत मीठा, नाजुक, दर्दनाक असर दिल पर हो रहा था जिसे बयान नहीं किया जा सकता। एक हरे-भरे मैदान का नक्शा आंखों के सामने खिंच गया और लीला, प्यारी लीला उस मैदान पर बैठी हुई मेरी तरफ हसरतनाक आंखों से ताक रही थी। मैंने एक लंबी आह भरी और बिना कुछ कहे उठ खड़ा हुआ। इस वक्त मेहरसिंह ने मेरी तरफ ताका, उसकी आंखों में मोती के कतरे डबडबाए हुए थे और बोला—कभी-कभी तशरीफ लाया कीजिएगा।

मैंने सिर्फ इतना जवाब दिया—मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूं।

4

धीरे-धीरे मेरी यह हालत हो गई कि जब तक मेहरसिंह के यहां जाकर दो-चार गाने न सुन लूँ र्जा को चैन न आता। शाम हुई और मैं जा पहुंचा। कुछ देर तक गानों की बहार लूटता और तब उसे पढ़ाता। ऐसे जहीन और समझदार लड़के को पढ़ाने में मुझे खास मजा आता था। मालूम होता था कि मेरी एक-एक बात उसके दिल पर नक्श हो रही है। जब तक मैं

पढ़ाता वह पूरे जी-जान से कान लगाए बैठा रहता। जब उसे देखता, पढ़ने-लिखने में डूबा हुआ पाता। साल भर में अपने भगवान् के दिए हुए जेहन की बदौलत उसने अंग्रेजी में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। मामूली चिट्ठियां लिखने लगा और दूसरा साल गुजरते-गुजरते वह अपने स्कूल के कुल छात्रों से बाजी ले गया। जितने मुदर्रिस थे, सब उसकी अक्ल पर हैरत करते और सीधा, नेकचलन ऐसा कि कभी झूठ-मूठ भी किसी ने उसकी शिकायत नहीं की। वह अपने सारे स्कूल की उम्मीद और रौनक था लेकिन बावजूद सिख होने के उसे खेल-कूद में रुचि न थी। मैंने उसे कभी क्रिकेट में नहीं देखा। शाम होते ही सीधे घर चला आता और लिखने-पढ़ने में लग जाता।

मैं धीरे-धीरे उससे इतना हिल-मिल गया कि बजाय शिष्य के उसको अपना दोस्त समझने लगा। उम्र के लिहाज से उसकी समझ आश्चर्यजनक थी। देखने में सोलह-सत्रह साल से ज्यादा न मालूम होता मगर जब कभी मैं रवानी में आकर दुर्बोध कवि-कल्पनाओं और कोमल भावों की उसके सामने व्याख्या करता तो मुझे उसकी भंगिमा से ऐसा मालूम होता कि एक-एक बारीकी को समझ रहा है। एक दिन मैंने उससे पूछा—मेहरसिंह, तुम्हारी शादी हो गई ?

मेहरसिंह ने शरमाकर जवाब दिया—अभी नहीं।

मैं—तुम्हें कैसी औरत पसंद है ?

मेहरसिंह—मैं शादी करूंगा ही नहीं।

मैं—क्यों ?

मेहरसिंह—मुझ जैसे जाहिल गंवार के साथ शादी करना कोई औरत पसंद न करेगी।

मैं—बहुत कम ऐसे नौजवान होंगे जो तुमसे ज्यादा लायक हों या तुमसे ज्यादा समझ रखते हों।

मेहरसिंह ने मेरी तरफ अचंभे से देखकर कहा—आप दिल्लगी करते हैं।

मैं—दिल्लगी नहीं, मैं सच कहता हूं। मुझे खुद आश्चर्य होता है कि इतने दिनों में तुमने इतनी योग्यता क्योंकर पैदा कर ली। अभी तुम्हें अंग्रेजी शुरू किए तीन बरस से ज्यादा नहीं हुए।

मेहरसिंह—क्या मैं किसी पढ़ी-लिखी लेडी को खुश रख सकूंगा ?

मैं—(जोश से) बेशक !

5

गर्मी का मौसम था। मैं हवा खाने शिमले गया हुआ था। मेहरसिंह भी मेरे साथ था। वहां मैं बीमार पड़ा। चेचक निकल आई। तमाम जिस्म में फफोले पड़ गए। पीठ के बल चारपाई पर पड़ा रहता। उस वक्त मेहरसिंह ने मेरे साथ जो-जो एहसान किए वह मुझे हमेशा याद रहेंगे। डॉक्टरों की सख्त मनाही थी कि वह मेरे कमरे में न आवे। मगर मेहरसिंह आठों पहर मेरे ही पास बैठा रहता। मुझे खिलाता-पिलाता, उठाता-बिठाता। रात-रात भर चारपाई के करीब बैठकर जागते रहना मेहरसिंह ही का काम था। सगा भाई भी इससे ज्यादा सेवा नहीं कर सकता था। एक महीना गुजर गया। मेरी हालत रोज-ब-रोज बिगड़ती जाती थी। एक रोज मैंने डॉक्टर को मेहरसिंह से कहते हुए सुना कि इनकी

हालत नाजुक है। मुझे यकीन हो गया कि अब न बचूंगा, मगर मेहरसिंह कुछ ऐसी दृढ़ता से मेरी सेवा-शुश्रूषा में लगा हुआ था कि जैसे वह मुझे जबर्दस्ती मौत के मुंह से बचा लेगा। एक रोज शाम के वक्त मैं कमरे में लेटा हुआ था कि किसी के सिसकी लेने की आवाज आई। वहां मेहरसिंह को छोड़कर और कोई न था। मैंने पूछा—मेहरसिंह, मेहरसिंह, तुम रोते हो !

मेहरसिंह ने जब्त करके कहा—नहीं, रोऊं क्यों ? और मेरी तरफ बड़ी दर्द-भरी आंखों से देखा।

मैं—तुम्हारे सिसकने की आवाज आई।

मेहरसिंह—वह कुछ बात न थी। घर की याद आ गई थी।

मैं—सच बोलो।

मेहरसिंह की आंखें फिर डबडबा आईं। उसने मेज पर से आईना उठाकर मेरे सामने रख दिया। हे नारायण ! मैं खुद अपने को पहचान न सका। चेहरा इतना ज्यादा बदल गया था। रंगत बजाय सुर्ख के सियाह हो रही थी और चेचक के बदनुमा दागों ने सूरत बिगाड़ दी थी। अपनी यह बुरी हालत देखकर मुझसे भी जब्त न हो सका और आंखें डबडबा गईं। वह सौंदर्य, जिस पर मुझे इतना गर्व था, बिल्कुल विदा हो गया था।

6

मैं शिमले से वापस आने की तैयारी कर रहा था। मेहरसिंह उसी रोज मुझसे विदा होकर अपने घर चला गया था। मेरी तबीयत उचाट हो रही थी। असबाब सब बंध चुका था कि एक गाड़ी मेरे दरवाजे पर आकर रुकी और उसमें से कौन उतरा ? मिस लीला! मेरी आंखों को विश्वास न हो रहा था, चकित होकर ताकने लगा। मिस लीलावती ने आगे बढ़कर मुझे सलाम किया और हाथ मिलाने को बढ़ाया। मैंने भी बौखलाहट में हाथ तो बढ़ा दिया पर अभी तक यह यकीन नहीं हुआ था कि मैं सपना देख रहा हूं या हकीकत है। लीला के गालों पर वह लाली न थी, न वह चुलबुलापन बल्कि वह बहुत गंभीर और पीली-पीली-सी हो रही थी। आखिर मेरी हैरत कम न होते देखकर उसने मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहा—तुम कैसे जेंटिलमैन हो कि एक शरीफ लेडी को बैठने के लिए कुर्सी भी नहीं देते !

मैंने अंदर से कुर्सी लाकर उसके लिए रख दी, मगर अभी तक यही समझ रहा था कि सपना देख रहा हूं।

लीलावती ने कहा—शायद तुम मुझे भूल गए।

मैं—भूल तो उम्र भर नहीं सकता मगर आंखों को एतबार नहीं आता।

लीला—तुम तो बिल्कुल पहचाने नहीं जाते।

मैं—तुम भी तो वह नहीं रहीं। मगर आखिर यह भेद क्या है, क्या तुम स्वर्ग से लौट आईं

लीला—मैं तो नैनीताल में अपने मामा के यहां थी।

मैं—और वह चिट्ठी मुझे किसने लिखी थी और तार किसने दिया था ?

लीला—मैंने ही।

मैं—क्यों ? तुमने मुझे यह धोखा क्यों दिया ? शायद तुम अंदाजा नहीं कर सकतीं

कि मैंने तुम्हारे शोक में कितनी पीड़ा सही है।

मुझे उस वक्त एक अनोखा गुस्सा आया—यह फिर मेरे सामने क्यों आ गई ! मर गई थी तो मरी ही रहती !

लीला—इसमें एक गुर था, मगर यह बातें तो फिर होती रहेंगी। आओ, इस वक्त तुम्हें अपनी एक लेडी फ्रेंड से इंट्रोड्यूस कराऊं, वह तुमसे मिलने की बहुत इच्छुक है।

मैंने अचरज से पूछा—मुझसे मिलने की ! मगर लीलावती ने इसका कुछ जवाब न दिया और मेरा हाथ पकड़कर गाड़ी के सामने ले गई। उसमें एक युवती हिंदुस्तानी कपड़े पहने बैठी हुई थी। मुझे देखते ही उठ खड़ी हुई और हाथ बढ़ा दिया। मैंने लीला की तरफ सवाल करती हुई आंखों से देखा।

लीला—क्या तुमने नहीं पहचाना ?

मैं—मुझे अफसोस है कि मैंने आपको पहले कभी नहीं देखा और अगर देखा भी हो तो घूंघट की आड़ से क्योंकर पहचान सकता हूं।

लीला—यह तुम्हारी बीवी कुमुदिनी है !

मैंने आश्चर्य के स्वर में कहा—कुमुदिनी यहां !

लीला—कुमुदिनी, मुंह खोल दो और अपने प्यारे पति का स्वागत करो।

कुमुदिनी ने कांपते हुए हाथों से जरा-सा घूंघट उठाया। लीला ने सारा मुंह खोल दिया और ऐसा मालूम हुआ कि जैसे बादल से चांद निकल आया। मुझे खयाल आया, मैंने यह चेहरा कहीं देखा है। कहां ? आह, उसकी नाक पर भी तो वही तिल है, उंगली में वही अंगूठी भी है।

लीला—क्या सोचते हो, अब पहचाना ?

मैं—मेरी अक्ल कुछ काम नहीं करती। हू-ब-हू यही हुलिया मेरे एक प्यारे दोस्त मेहरसिंह का है।

लीला—(मुस्कराकर) तुम तो हमेशा निगाह के तेज बनते थे, इतना भी नहीं पहचान सकते !

मैं खुशी से फूल उठा—कुमुदिनी मेहरसिंह के भेस में ! मैंने उसी वक्त उसे गले से लगा लिया और खूब दिल खोलकर प्यार किया। इन कुछ क्षणों में मुझे जो खुशी हासिल हुई उसके मुकाबले में जिंदगी भर की खुशियां हेच हैं। हम दोनों आलिंगन-पाश में बंधे हुए थे। कुमुदिनी, प्यारी कुमुदिनी के मुंह से आवाज न निकलती थी। हां, आंखों से आंसू जारी थे।

मिस लीला बाहर खड़ी कोमल आंखों से यह दृश्य देख रही थी। मैंने उसके हाथों को चूमकर कहा—प्यारी लीला, तुम सच्ची देवी हो, जब तक जिएंगे तुम्हारे कृतज्ञ रहेंगे।

लीला के चेहरे पर एक हल्की-सी मुस्कराहट दिखाई दी। बोली—अब तो शायद तुम्हें मेरे शोक का काफी पुरस्कार मिल गया।

['सिल-ए मातम' शीर्षक से उर्दू में प्रथम प्रकाशन। 'सोजे वतन' (उर्दू कहानी संग्रह), जुलाई 1908 में प्रथम बार संकलित-प्रकाशित। हिन्दी रूप 'शोक का पुरस्कार' शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-1 में संकलित।]

पाप का अग्निकुंड

कुँवर पृथ्वीसिंह महाराज यशवंतसिंह के पुत्र थे। रूप, गुण और विद्या में प्रसिद्ध थे। ईरान, मिस्र, श्याम आदि देशों में परिभ्रमण कर चुके थे और कई भाषाओं के पंडित समझे जाते थे। इनकी एक बहिन थी जिसका नाम राजनंदिनी था। यह भी जैसी सुरूपवती और सर्वगुणसंपन्ना थी वैसी ही प्रसन्नवदना और मृदुभाषिणी भी थी। कड़वी बात कह कर किसी का जी दुखाना उसे पसंद नहीं था। पाप को तो वह अपने पास भी नहीं फटकने देती थी। यहाँ तक कि कई बार महाराज यशवंत से भी वाद-विवाद कर चुकी थी और जब कभी उन्हें किसी बहाने कोई अनुचित काम करते देखती, तो उसे यथाशक्ति रोकने की चेष्टा करती। इसका ब्याह कुँवर धर्मसिंह से हुआ था। यह एक छोटी रियासत का अधिकारी और महाराज यशवंतसिंह की सेना का उच्च पदाधिकारी था। धर्मसिंह बड़ा उदार और कर्मवीर था। इसे होनहार देख कर महाराज ने राजनंदिनी को इसके साथ ब्याह दिया था और दोनों बड़े प्रेम से अपना वैवाहिक जीवन बिताते थे। धर्मसिंह अधिकतर जोधपुर में ही रहता था। पृथ्वीसिंह उसके गाढ़े मित्र थे। इनमें जैसी मित्रता थी, वैसी भाइयों में भी नहीं होती। जिस प्रकार दोनों राजकुमारों में मित्रता थी, उसी प्रकार दोनों राजकुमारियाँ भी एक दूसरी पर जान देती थीं। पृथ्वीसिंह की स्त्री दुर्गाकुँवरि बहुत सुशीला और चतुर थी। ननद-भावज में अनबन होना लोक-रीति है, पर इन दोनों में इतना स्नेह था कि एक के बिना दूसरी को कभी कल नहीं पड़ता था। दोनों स्त्रियाँ संस्कृत से प्रेम रखती थीं।

एक दिन दोनों राजकुमारियाँ बाग की सैर में मग्न थीं कि एक दासी ने राजनंदिनी के हाथ में एक कागज ला कर रख दिया। राजनंदिनी ने उसे खोला तो वह संस्कृत का एक पत्र था। उसे पढ़ कर उसने दासी से कहा कि उन्हें भेज दे। थोड़ी देर में एक स्त्री सिर से पैर तक चादर ओढ़े आती दिखायी दी। इसकी उम्र पच्चीस साल से अधिक न थी, पर रंग पीला था। आँखें बड़ी और ओंठ सूखे। चाल-ढाल में कोमलता थी और उसके डील-डौल की गठन बहुत मनोहर थी। अनुमान से जान पड़ता था कि समय ने इसकी वह दशा कर रखी है। पर एक समय वह भी होगा जब यह बड़ी सुंदर होगी। इस स्त्री ने आकर चौखट चूमी और आशीर्वाद देकर फर्श पर बैठ गयी। राजनंदिनी ने इसे सिर से पैर तक बड़े ध्यान से देखा और पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है ?"

उसने उत्तर दिया, "मुझे ब्रजविलासिनी कहते हैं।"

"कहाँ रहती हो ?"

"यहाँ से तीन दिन की राह पर एक गाँव विक्रमनगर है, वहाँ मेरा घर है।"

"संस्कृत कहाँ पढ़ी है ?"

"मेरे पिता जी संस्कृत के बड़े पंडित थे, उन्होंने थोड़ी-बहुत पढ़ा दी है।"

"तुम्हारा ब्याह तो हो गया है न ?"

ब्याह का नाम सुनते ही ब्रजविलासिनी की आँखों से आँसू बहने लगे। वह आवाज संभाल कर बोली—इसका जवाब मैं फिर कभी दूँगी, मेरी रामकहानी बड़ी दुःखमय है। उसे सुन कर आपको दुःख होगा इसलिए इस समय क्षमा कीजिए।

आज से ब्रजविलासिनी वहीं रहने लगी। संस्कृत-साहित्य में उसका बहुत प्रवेश था।

वह राजकुमारियों को प्रतिदिन रोचक कविता पढ़ कर सुनाती थी। उसके रंग, रूप और विद्या ने धीरे-धीरे राजकुमारियों के मन में उसके प्रति प्रेम और प्रतिष्ठा उत्पन्न कर दी। यहाँ तक कि राजकुमारियों और ब्रजविलासिनी के बीच बड़ाई-छुटाई उठ गयी और वे सहेलियों की भाँति रहने लगीं।

2

कई महीने बीत गये। कुँवर पृथ्वीसिंह और धर्मसिंह दोनों महाराज के साथ अफगानिस्तान की मुहीम पर गये हुए थे। यह विरह की घड़ियाँ मेघदूत और रघुवंश के पढ़ने में कटीं। ब्रजविलासिनी को कालिदास के देवता से बहुत प्रेम था और वह उसके काव्यों की व्याख्या उत्तमता से करती और उसमें ऐसी बारीकियाँ निकालती कि दोनों राजकुमारियाँ मुग्ध हो जातीं।

एक दिन संध्या का समय था, दोनों राजकुमारियाँ फुलवाड़ी में सैर करने गयीं तो देखा कि ब्रजविलासिनी हरी-हरी घास पर लेटी हुई है और उसकी आँखों से आँसू बह रहे हैं। राजकुमारियों के अच्छे बर्ताव और स्नेहपूर्ण बातचीत से उसकी सुंदरता कुछ चमक गयी थी। इनके साथ अब वह भी राजकुमारी जान पड़ती थी; पर इन सभी बातों के रहते भी वह बेचारी बहुधा एकांत में बैठ कर रोया करती। उसके दिल पर एक ऐसी चोट थी कि वह उसे दम भर भी चैन नहीं लेने देती थी। राजकुमारियाँ उस समय उसे रोती देख कर बड़ी सहानुभूति के साथ उसके पास बैठ गयीं। राजनंदिनी ने उसका सिर अपनी जाँघ पर रख लिया और उसके गुलाब-से गालों को थपथपाकर कहा—सखी, तुम अपने दिल का हाल हमें न बताओगी ? क्या अब भी हम गैर हैं ? तुम्हारा यों अकेले दुःख की आग में जलना हमसे नहीं देखा जाता।

ब्रजविलासिनी आवाज संभाल कर बोली—बहन, मैं अभागिनी हूँ। मेरा हाल मत सुनो।

राजकुमारी—अगर बुरा न मानो तो एक बात पूछूं।

ब्रजविलासिनी—क्या, कहो ?

राजकुमारी—वही जो मैंने पहले दिन पूछा था, तुम्हारा ब्याह हुआ है कि नहीं

ब्रजविलासिनी—इसका जवाब मैं क्या दूँ ? अभी नहीं हुआ।

राजकुमारी—क्या किसी का प्रेम-बाण हृदय में चुभा हुआ है ?

ब्रजविलासिनी—नहीं बहन, ईश्वर जानता है।

राजकुमारी—तो इतनी उदास क्यों रहती हो ? क्या प्रेम का आनंद उठाने को जी चाहता है ?

ब्रजविलासिनी—नहीं, दुःख के सिवा मन में प्रेम को स्थान ही नहीं।

राजकुमारी—हम प्रेम का स्थान पैदा कर देंगी।

ब्रजविलासिनी इशारा समझ गयी और बोली—बहन, इन बातों की चर्चा न करो।

राजकुमारी—मैं अब तुम्हारा ब्याह रचाऊँगी। दीवान जयचंद को तुमने देखा है?

ब्रजविलासिनी आँखों में आँसू भर कर बोली—राजकुमारी, मैं व्रतधारिणी हूँ और अपने व्रत को पूरा करना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है। प्रण को निभाने के लिए मैं जीती हूँ,

नहीं तो मैंने ऐसी आफतें झेली हैं कि जीने की इच्छा अब नहीं रही। मेरे बाप विक्रमनगर के जागीरदार थे। मेरे सिवा उनके कोई संतान न थी। वे मुझे प्राणों से अधिक प्यार करते थे। मेरे ही लिए उन्होंने बरसों संस्कृत-साहित्य पढ़ा था। युद्ध-विद्या में वे बड़े निपुण थे और कई बार लड़ाइयों पर गये थे।

एक दिन गोधूलि-बेला में जब गायें जंगल से लौट रही थीं मैं अपने द्वार पर खड़ी थी। इतने में एक जवान बाँकी पगड़ी बाँधे, हथियार सजाये, झूमता आता दिखायी दिया। मेरी प्यारी मोहिनी इस समय जंगल से लौटी थी, और उसका बच्चा इधर कलोलें कर रहा था। संयोगवश बच्चा उस नौजवान से टकरा गया। गाय उस आदमी पर झपटी। राजपूत बड़ा साहसी था। उसने शायद सोचा कि भागता हूँ तो कलंक का टीका लगता है, तुरंत तलवार म्यान से खींच ली और वह गाय पर झपटा। गाय झल्लायी हुई तो थी ही, कुछ भी न डरी। मेरी आँखों के सामने उस राजपूत ने उस प्यारी गाय को जान से मार डाला। देखते-देखते सैकड़ों आदमी जमा हो गये और उसको टेढ़ी-सीधी सुनाने लगे। इतने में पिता जी भी आ गये। वे संध्या करने गये थे। उन्होंने आ कर देखा कि द्वार पर सैकड़ों आदमियों की भीड़ लगी है, गाय तड़प रही है और उसका बच्चा खड़ा रो रहा है। पिता जी की आहट सुनते ही गाय कराहने लगी और उनकी ओर उसने कुछ ऐसी दृष्टि से देखा कि उन्हें क्रोध आ गया। मेरे बाद उन्हें वह गाय ही प्यारी थी। वे ललकार कर बोले—मेरी गाय किसने मारी है ? नवजवान लज्जा से सिर झुकाये सामने आया और बोला—मैंने।

पिताजी—तुम क्षत्रिय हो ?'

राजपूत—हाँ !

पिताजी—तो किसी क्षत्रिय से हाथ मिलाते ?

राजपूत का चेहरा तमतमा गया। बोला—कोई क्षत्रिय सामने आ जाय। हजारों आदमी खड़े थे; पर किसी का साहस न हुआ कि उस राजपूत का सामना करे। यह देख कर पिताजी ने तलवार खींच ली और वे उस पर टूट पड़े। उसने भी तलवार निकाल ली और दोनों आदमियों में तलवारें चलने लगीं। पिता जी बूढ़े थे; सीने पर जखम गहरा लगा। गिर पड़े। उठा कर लोग घर पर लाये। उनका चेहरा पीला था; पर उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। मैं रोती हुई उनके सामने आयी। मुझे देखते ही उन्होंने सब आदमियों को वहाँ से हट जाने का संकेत किया। जब मैं और पिता जी अकेले रह गये, तो वे बोले—बेटी, तुम राजपूतानी हो ?

मैं—जी हाँ।

पिता जी—राजपूत बात के धनी होते हैं ?

मैं—जी हाँ।

पिता जी—इस राजपूत ने मेरी गाय की जान ली है, इसका बदला तुम्हें लेना होगा।

मैं—आपकी आज्ञा का पालन करूँगी।

पिता जी—अगर मेरा बेटा जीता होता तो मैं यह बोझ तुम्हारी गर्दन पर न रखता।

मैं—आपकी जो कुछ आज्ञा होगी, मैं सिर-आँखों से पूरी करूँगी।

पिता जी—तुम प्रतिज्ञा करती हो ?

मैं—जी हाँ।

पिता जी–इस प्रतिज्ञा को पूरा कर दिखाओगी।

मैं–जहाँ तक मेरा वश चलेगा, मैं निश्चय यह प्रतिज्ञा पूरी करूँगी।

पिता जी–यह मेरी तलवार लो। जब तक तुम यह तलवार उस राजपूत के कलेजे में न भोंक दो, तब तक भोग-विलास न करना।

यह कहते-कहते पिता जी के प्राण निकल गये। मैं उसी दिन से तलवार को कपड़ों में छिपाये उस नौजवान राजपूत की तलाश में घूमने लगी। वर्षो बीत गये। मैं कभी बस्तियों में जाती, कभी पहाड़ों-जंगलों की खाक छानती; पर उस नौजवान का कहीं पता न मिलता। एक दिन मैं बैठी हुई अपने फूटे भाग पर रो रही थी कि वही नौजवान आदमी आता हुआ दिखाई दिया। मुझे देखकर उसने पूछा, तू कौन है ? मैंने कहा, मैं दुखिया ब्राह्मणी हूँ, आप मुझ पर दया कीजिए और मुझे कुछ खाने को दीजिए। राजपूत ने कहा, अच्छा, मेरे साथ आ!

मैं उठ खड़ी हुई। वह आदमी बेसुध था। मैंने बिजली की तरह लपक कर कपड़ों में से तलवार निकाली और उसके सीने में भोंक दी। इतने में कई आदमी आते दिखायी पड़े। मैं तलवार छोड़कर भागी। तीन वर्ष तक पहाड़ों और जंगलों में छिपी रही। बार-बार जी में आया कि कहीं डूब मरूँ, पर जान बड़ी प्यारी होती है। न जाने क्या-क्या मुसीबतें और कठिनाईयाँ भोगनी हैं, जिनको भोगने को अभी तक जीती हूँ। अंत में जब जंगल में रहते-रहते जी उकता गया, तो जोधपुर चली आयी। यहाँ आपकी दयालुता की चर्चा सुनी। आपकी सेवा में आ पहुँची और तब से आपकी कृपा से मैं आराम से जीवन बिता रही हूँ। यही मेरी रामकहानी है।

राजनंदिनी ने लम्बी साँस ले कर कहा–दुनिया में कैसे-कैसे लोग भरे हुए हैं। खैर, तुम्हारी तलवार ने उसका काम तो तमाम कर दिया ?

ब्रजविलासिनी–कहाँ बहन ! वह बच गया, जखम ओछा पड़ा था। उसी शकल के एक नौजवान राजपूत को मैंने जंगल में शिकार खेलते देखा था। नहीं मालूम, वह था या और कोई, शकल बिलकुल मिलती थी।

3

कई महीने बीत गये। राजकुमारियों ने जब से ब्रजविलासिनी की रामकहानी सुनी है, उसके साथ वे और भी प्रेम और सहानुभूति का बर्ताव करने लगी हैं। पहले बिना संकोच कभी-कभी छेड़छाड़ हो जाती थी; पर अब दोनों हरदम उसका दिल बहलाया करती हैं। एक दिन बादल घिरे हुए थे, राजनंदिनी ने कहा–आज बिहारीलाल की 'सतसई' सुनने को जी चाहता है। वर्षाऋतु पर उसमें बहुत अच्छे दोहे हैं।

दुर्गाकुँवरि–बड़ी अनमोल पुस्तक है। सखी, तुम्हारी बगल में जो आलमारी रखी है, उसी में वह पुस्तक है, जरा निकालना। ब्रजविलासिनी ने पुस्तक उतारी और उसका पहला पृष्ठ खोला था कि उसके हाथ से पुस्तक छूट कर गिर पड़ी। उसके पहले पृष्ठ पर एक तस्वीर लगी हुई थी। वह उसी निर्दय युवक की तस्वीर थी जो उसके बाप का हत्यारा था। ब्रजविलासिनी की आँखें लाल हो गयीं। त्योरी पर बल पड़ गये। अपनी प्रतिज्ञा याद आ गयी; पर उसके साथ ही यह विचार उत्पन्न हुआ कि इस आदमी का चित्र यहाँ कैसे आया और इसका इन राजकुमारियों से क्या सम्बन्ध है ? कहीं ऐसा न हो कि मुझे इतना कृतज्ञ

हो कर अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी पड़े। राजनंदिनी ने उसकी सूरत देख कर कहा—सखी क्या बात है ? यह क्रोध क्यों ? ब्रजविलासिनी ने सावधानी से कहा—कुछ नहीं, न जाने क्यों चक्कर आ गया था।

आज से ब्रजविलासिनी के मन में एक और चिन्ता उत्पन्न हुई—क्या मुझे राजकुमारियों का कृतज्ञ हो कर अपना प्रण तोड़ना पड़ेगा ?

पूरे सोलह महीने के बाद अफगानिस्तान से पृथ्वीसिंह और धर्मसिंह लौटे। बादशाह की सेना को बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बर्फ अधिकता से पड़ने लगी। पहाड़ों के दर्रे बर्फ से ढक गये। आने-जाने के रास्ते बंद हो गये। रसद के सामान न मिलने लगे। सिपाही भूखों मरने लगे। अब अफ़गानों ने समय पा कर रात को छापे मारने शुरू किये। आखिर शहजादे मुहीउद्दीन को हिम्मत हार कर लौटना पड़ा।

दोनों राजकुमार ज्यों-ज्यों जोधपुर के निकट पहुँचते थे, उत्कंठा से उनके मन उमड़ आते थे। इतने दिनों के वियोग के बाद फिर भेंट होगी। मिलने की तृष्णा बढ़ती जाती है। रात-दिन मंजिल काटते चले आते हैं, न थकावट मालूम होती है, न माँदगी। दोनों घायल हो रहे हैं; पर फिर भी मिलने की खुशी में जख्मों की तकलीफ भूले हुए हैं। पृथ्वीसिंह दुर्गाकुँवरि के लिए एक अफ़गानी कटार लाये हैं। धर्मसिंह ने राजनन्दिनी के लिए काश्मीर का एक बहुमूल्य शाल जोड़ा मोल लिया है। दोनों के दिल उमंग से भरे हुए हैं।

राजकुमारियों ने जब सुना कि दोनों वीर वापस आते हैं, तो वे फूले अंगों न समायीं। शृंगार किया जाने लगा, माँगें मोतियों से भरी जाने लगीं, उनके चेहरे खुशी से दमकने लगे। इतने दिनों के बिछोह के बाद फिर मिलाप होगा, खुशी आँखों से उबली पड़ती है। एक दूसरे को छेड़ती हैं और खुश हो कर गले मिलती हैं।

अगहन का महीना था, बरगद की डालियों में मूँगे के दाने लगे हुए थे। जोधपुर के किले से सलामियों की घनगरज आवाजें आने लगीं। सारे नगर में धूम मच गयी कि कुँवर पृथ्वीसिंह सकुशल अफगानिस्तान से लौट आये। दोनों राजकुमारियाँ थालों में आरती के सामान लिये दरवाजे पर खड़ी थीं। पृथ्वीसिंह दरबारियों के मुजरे लेते हुये महल में आये। दुर्गाकुँवरि ने आरती उतारी और दोनों एक दूसरे को देख कर खुश हो गये। धर्मसिंह भी प्रसन्नता से ऐंठते हुए अपने महल में पहुँचे; पर भीतर पैर रखने न पाये थे कि छींक हुई और बायीं ऑख फड़कने लगी। राजनन्दिनी आरती का थाल ले कर लपकी; पर उसका पैर फिसल गया और थाल हाथ से छूट कर गिर पड़ा। धर्मसिंह का माथा ठनका और राजनन्दिनी का चेहरा पीला हो गया। यह असगुन क्यों?

ब्रजविलासिनी ने दोनों राजकुमारों के आने का समाचार सुन कर उन दोनों को देने के लिए दो अभिनन्दन-पत्र बनवा रखे थे। सबेरे जब कुँवर पृथ्वीसिंह संध्या आदि नित्य-क्रिया से निपट कर बैठे, तो वह उनके सामने आयी और उसने एक सुन्दर कुश की चँगेली में अभिनन्दन-पत्र रख दिया। पृथ्वीसिंह ने उसे प्रसन्नता से ले लिया। कविता यद्यपि उतनी बढ़िया न थी, पर वह नयी और वीरता से भरी हुई थी। वे वीररस के प्रेमी थे, उसको पढ़ कर बहुत खुश हुए और उन्होंने मोतियों का हार उपहार दिया।

ब्रजविलासिनी यहाँ से छुट्टी पा कर कुँवर धर्मसिंह के पास पहुँची। वे बैठे हुए राजनन्दिनी को लड़ाई की घटनाएँ सुना रहे थे; पर ज्यों ही ब्रजविलासिनी की आँख उन पर

पड़ी, वह सन्न होकर पीछे हट गयी। उसको देख कर धर्मसिंह के चेहरे का भी रंग उड़ गया, होंठ सूख गये और हाथ-पैर सनसनाने लगे। ब्रजविलासिनी तो उल्टे पाँव लौटी; पर धर्मसिंह ने चारपाई पर लेट कर दोनों हाथों से मुँह ढँक लिया। गजनन्दिनी ने यह दृश्य देखा और उसका फूल-सा बदन पसीने से तर हो गया। धर्मसिंह सारे दिन पलंग पर चुपचाप पड़े करवटें बदलते रहे। उनका चेहरा ऐसा कुम्हला गया जैसे वे बरसों के रोगी हों। राजनन्दिनी उनकी सेवा में लगी हुई थी। दिन तो यों कटा, रात को कुँवर साहब संध्या ही से थकावट का बहाना करके लेट गये। राजनन्दिनी हैरान थी कि माजरा क्या है। ब्रजविलासिनी इन्हीं के खून की प्यासी है ? क्या यह सम्भव है कि मेरा प्यारा, मेरा मुकुट धर्मसिंह ऐसा कठोर हो ? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। वह यद्यपि चाहती है कि अपने भावों से उनके मन का बोझ हलका करे, पर नहीं कर सकती। अन्त को नींद ने उसको अपनी गोद में ले लिया।

4

रात बहुत बीत गयी है। आकाश में अँधेरा छा गया है। सारस की दुःख से भरी बोली कभी-कभी सुनायी दे जाती है और रह-रह कर किले के संतरियों की आवाज कान में आ पड़ती है। राजनदिनी की आँख एकाएक खुली, तो उसने धर्मसिंह को पलंग पर न पाया। चिंता हुई, वह झट उठ कर ब्रजविलासिनी के कमरे की ओर चली और दरवाजे पर खड़ी हो कर भीतर की ओर देखने लगी। संदेह पूरा हो गया। क्या देखती है कि ब्रजविलासिनी हाथ में तेगा लिये खड़ी है और धर्मसिंह दोनों हाथ जोड़े उसके सामने दीनों की तरह घुटने टेके बैठे हैं। वह दृश्य देखते ही राजनंदिनी का खून सूख गया और उसके सिर में चक्कर आने लगा, पैर लड़खड़ाने लगे। जान पड़ता था कि गिरी जाती है। वह अपने कमरे में आयी और मुँह ढँक कर लेट रही, पर उसकी आँखों से आँसू की एक बूँद भी न निकली।

दूसरे दिन पृथ्वीसिंह बहुत सबेरे ही कुँवर धर्मसिंह के पास गये और मुस्करा कर बोले—भैया, मौसम बड़ा सुहावना है, शिकार खेलने चलते हो ?

धर्मसिंह—हाँ चलो।

दोनों राजकुमारों ने घोड़े कसवाये और जंगल की ओर चल दिये। पृथ्वीसिंह का चेहरा खिला हुआ था, जैसे कमल का फूल। एक-एक अंग से तेजी और चुस्ती टपकी पड़ती थी, पर कुँवर धर्मसिंह का चेहरा मैला हो गया था, मानो बदन में जान ही नहीं है। पृथ्वीसिंह ने उन्हें कई बार छेड़ा, पर जब देखा कि वे बहुत दुःखी हैं, तो चुप हो गये। चलते-चलते दोनों आदमी झील के किनारे पर पहुँचे। एकाएक धर्मसिंह ठिठके और बोले—मैंने आज रात को एक दृढ़ प्रतिज्ञा की है। यह कहते-कहते उनकी आँखों में पानी आ गया। पृथ्वीसिंह ने घबरा कर पूछा—कैसी प्रतिज्ञा ?

'तुमने ब्रजविलासिनी का हाल सुना है ? मैंने प्रतिज्ञा की है कि जिस आदमी ने उसके बाप को मारा है, उसे भी जहन्नुम में पहुँचा दूँ।'

'तुमने सचमुच वीर-प्रतिज्ञा की है।'

'हाँ, यदि मैं पूरी कर सकूँ। तुम्हारे विचार में ऐसा आदमी मारने योग्य है या नहीं ?'

'ऐसे निर्दयी की गर्दन गुट्ठल छुरी से काटनी चाहिए।'

'बेशक, यही मेरा भी विचार है। यदि मैं किसी कारण यह काम न कर सकूँ, तो तुम मेरी प्रतिज्ञा पूरी कर दोगे ?'

'बड़ी खुशी से। उसे पहचानते हो न ?'

'हाँ, अच्छी तरह !'

'तो अच्छा होगा, यह काम मुझको ही करने दो, तुम्हें शायद उस पर दया आ जाय।'

'बहुत अच्छा; पर यह याद रखो कि वह आदमी बड़ा भाग्यशाली है ! कई बार मौत के मुँह से बच कर निकला है। क्या आश्चर्य है कि तुमको भी उस पर दया आ जाय। इसलिए तुम प्रतिज्ञा करो कि उसे जरूर जहन्नुम पहुँचाओगे।'

'मैं दुर्गा की शपथ खा कर कहता हूँ कि उस आदमी को अवश्य मारूँगा।'

'बस, तो हम दोनों मिल कर कार्य सिद्ध कर लेंगे। तुम अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहोगे न ?'

'क्यों ? क्या मैं सिपाही नहीं हूँ ? एक बार जो प्रतिज्ञा की, समझ लो कि वह पूरी करूँगा, चाहे इसमें अपनी जान ही क्यों न चली जाय।'

'सब अवस्थाओं में ?'

'हाँ, सब अवस्थाओं में।'

'यदि वह तुम्हारा कोई बंधु हो तो ?'

पृथ्वीसिंह ने धर्मसिंह को विचारपूर्वक देख कर कहा—कोई बंधु हो तो ?

धर्मसिंह—हाँ, सम्भव है कि तुम्हारा कोई नातेदार हो।

पृथ्वीसिंह—(जोश में) कोई हो, यदि मेरा भाई भी हो, तो भी जीता चुनवा दूँ।

धर्मसिंह घोड़े से उतर पड़े। उनका चेहरा उतरा हुआ था और ओंठ काँप रहे थे। उन्होंने कमर से तेगा खोल कर जमीन पर रख दिया और पृथ्वीसिंह को ललकार कर कहा—पृथ्वीसिंह, तैयार हो जाओ। वह दुष्ट मिल गया। पृथ्वीसिंह ने चौंक कर इधर-उधर देखा तो धर्मसिंह के सिवाय और कोई दिखायी न दिया।

धर्मसिंह—तेगा खींचो।

पृथ्वीसिंह—मैंने उसे नहीं देखा।

धर्मसिंह—वह तुम्हारे सामने खड़ा है। वह दुष्ट कुकर्मी धर्मसिंह ही है।

पृथ्वीसिंह—(घबरा कर) ऐं तुम ! —मैं—

धर्मसिंह—राजपूत अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो।

इतना सुनते ही पृथ्वीसिंह ने बिजली की तरह अपने कमर से तेगा खींच लिया और उसे धर्मसिंह के सीने में चुभा दिया। मूठ तक तेगा चुभ गया। खून का फव्वारा बह निकला। धर्मसिंह जमीन पर गिर कर धीरे से बोले—पृथ्वीसिंह, मैं तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ। तुम सच्चे वीर हो। तुमने पुरुष का कर्त्तव्य पुरुष की भाँति पालन किया।

पृथ्वीसिंह यह सुन कर जमीन पर बैठ गये और रोने लगे।

5

अब राजनंदिनी सती होने जा रही है। उसने सोलहों शृंगार किये हैं और माँग मोतियों से भरवायी है। कलाई में सोहाग का कंगन है, पैरों में महावर लगायी है और लाल चुनरी ओढ़ी

है। उसके अंग से सुगंधि उड़ रही है, क्योंकि आज वह सती होने जाती है।

राजनंदिनी का चेहरा सूर्य की भाँति प्रकाशमान है। उसकी ओर देखने से आँखों में चकाचौंध लग जाती है। प्रेम-मद से उसका रोयाँ-रोयाँ मस्त हो गया है, उसकी आँखों से अलौकिक प्रकाश निकल रहा है। वह आज स्वर्ग की देवी जान पड़ती है। उसकी चाल बड़ी मदमाती है। वह अपने प्यारे पति का सिर अपनी गोद में लेती है और उस चिता में बैठ जाती है जो चंदन, खस आदि से बनायी गयी है।

सारे नगर के लोग यह दृश्य देखने के लिए उमड़े चले आते हैं। बाजे बज रहे हैं, फूलों की वृष्टि हो रही है। सती चिता पर बैठ चुकी थी कि इतने में कुँवर पृथ्वीसिंह आये और हाथ जोड़कर बोले—महारानी, मेरा अपराध क्षमा करो।

सती ने उत्तर दिया -क्षमा नहीं हो सकता। तुमने एक नौजवान राजपूत की जान ली है, तुम भी जवानी में मारे जाओगे।

सती के वचन कभी झूठे हुए हैं ? एकाएक चिता में आग लग गयी। जयजयकार के शब्द गूँजने लगे सती का मुख आग में यों चमकता था, जैसे सबेरे की ललाई में सूर्य चमकता है। थोड़ी देर में वहाँ राख के ढेर के सिवा और कुछ न रहा।

इस सती के मन में कैसा सत था ! परसों जब उसने ब्रजविलासिनी को झिझक कर धर्मसिंह के सामने जाते देखा था, उसी समय से उसके दिल में संदेह हो गया था। पर जब रात को उसने देखा कि मेरा पति इसी स्त्री के सामने दुखिया की तरह बैठा हुआ है, तब वह संदेह निश्चय की सीमा तक पहुँच गया और यही निश्चय अपने साथ सत लेता आया था। सबेरे जब धर्मसिंह उठे तब राजनंदिनी ने कहा था कि मैं ब्रजविलासिनी के शत्रु का सिर चाहती हूँ, तुम्हें लाना होगा। और ऐसा ही हुआ। अपने सती होने के सब कारण राजनंदिनी ने जान-बूझ कर पैदा किये थे, क्योंकि उसके मन में सत था। पाप की आग कैसे तेज होती है ? एक पाप ने कितनी जानें लीं ? राजवंश के दो राजकुमार और दो कुमारियाँ देखते-देखते इस अग्निकुंड में स्वाहा हो गयीं। सती का वचन सच हुआ। सात ही सप्ताह के भीतर पृथ्वीसिंह दिल्ली में कत्ल किये गये और दुर्गाकुमारी सती हो गयी।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'जमाना', मार्च, 1910 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-6 में संकलित। उर्दू रूप 'गुनाह का अगन कुंड' शीर्षक से प्रकाशित एवं 'उर्दू प्रेम पचीसी' में संकलित।]

शाप

मैं बर्लिन नगर का निवासी हूँ। मेरे पूज्य पिता भौतिक विज्ञान के सुविख्यात ज्ञाता थे। भौगोलिक अन्वेषण का शौक मुझे भी बाल्यावस्था ही से था। उनके स्वर्गवास के बाद मुझे यह धुन सवार हुई कि पैदल पृथ्वी के समस्त देश-देशान्तरों की सैर करूँ। मैं विपुल धन का स्वामी था। वे सब रुपये एक बैंक में जमा कर दिये और उस से शर्त कर ली कि मुझे यथा समय रुपये भेजता रहे, इस कार्य से निवृत्त हो कर मैंने सफर का सामान पूरा किया।

आवश्यक वैज्ञानिक यंत्र साथ लिये और ईश्वर का नाम ले कर चल खड़ा हुआ। उस समय यह कल्पना मेरे हृदय में गुदगुदी पैदा कर रही थी कि मैं वह पहला प्राणी हूँ जिसे यह बात सूझी है कि पैरों से पृथ्वी को नापे। अन्य यात्रियों ने रेल, जहाज और मोटरकार की शरण ली है। मैं पहला ही वह वीर-आत्मा हूँ, जो अपने पैरों के बूते पर प्रकृति के विराट् उपवन की सैर के लिए उद्यत हुआ हूँ। अगर मेरे साहस और उत्साह ने यह कष्ट साध्य यात्रा पूरी कर ली तो भद्र-संसार मुझे सम्मान और गौरव के मसनद पर बैठावेगा और अनंत काल तक मेरी कीर्ति के राग अलापे जायेंगे। उस समय मेरा मस्तिष्क इन्हीं विचारों से भरा हुआ था। और ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ कि सहस्रों कठिनाइयों का सामना करने पर भी धैर्य ने मेरा साथ न छोड़ा और उत्साह एक क्षण के लिए भी निरुत्साह न हुआ।

मैं वर्षों ऐसे स्थानों में रहा हूँ, जहाँ निर्जनता के अतिरिक्त कोई दूसरा साथी न था। वर्षों ऐसे स्थानों में रहा हूँ, जहाँ की पृथ्वी और आकाश हिम की शिलाएँ थीं। मैं भयंकर जंतुओं के पहलू में सोया हूँ। पक्षियों के घोंसलों में रातें काटी हैं, किंतु ये सारी बाधाएँ कट गयीं और वह समय अब दूर नहीं है कि साहित्य और विज्ञान-संसार मेरे चरणों पर शीश नवायें।

मैंने इस यात्रा में बड़े-बड़े अद्भुत दृश्य देखे और कितनी ही जातियों के आहार-व्यवहार, रहन-सहन का अवलोकन किया। मेरा यात्रा-वृत्तांत, विचार, अनुभव और निरीक्षण का एक अमूल्य रत्न होगा। मैंने ऐसी-ऐसी आश्चर्यजनक घटनाएँ आँखों से देखी हैं, जो अलिफ-लैला की कथाओं से कम मनोरंजक न होंगी। परंतु वह घटना जो मैंने ज्ञानसरोवर के तट पर देखी, उसका उदाहरण मुश्किल से मिलेगा, मैं उसे कभी न भूलूँगा। यदि मेरे इस तमाम परिश्रम का उपहार यही एक रहस्य होता तो भी मैं उसे पर्याप्त समझता। मैं यह बता देना आवश्यक समझता हूँ कि मैं मिथ्यावादी नहीं और न सिद्धियों तथा विभूतियों पर मेरा विश्वास है। मैं उस विद्वान् का भक्त हूँ जिसका आधार तर्क और न्याय पर है। यदि कोई दूसरा प्राणी यही घटना मुझसे बयान करता तो मुझे उस पर विश्वास करने में बहुत संकोच होता, किन्तु मैं जो कुछ बयान कर रहा हूँ, वह सत्य घटना है। यदि मेरे इस आश्वासन पर भी कोई उस पर अविश्वास करे, तो उसकी मानसिक दुर्बलता और विचारों की संकीर्णता है।

यात्रा का सातवाँ वर्ष था और ज्येष्ठ का महीना। मैं हिमालय के दामन में ज्ञानसरोवर के तट पर हरी-हरी घास पर लेटा हुआ था, ऋतु अत्यंत सुहावनी थी। ज्ञानसरोवर के स्वच्छ निर्मल जल में आकाश और पर्वत श्रेणी का प्रतिबिम्ब, जलपक्षियों का पानी पर तैरना, शुभ्र हिमश्रेणी का सूर्य के प्रकाश से चमकना आदि दृश्य ऐसे मनोहर थे कि मैं आत्मोल्लास से विह्वल हो गया। मैंने स्विट्जरलैंड और अमेरिका के बहुप्रशंसित दृश्य देखे हैं, पर उनमें यह शांतिप्रद शोभा कहाँ ! मानव बुद्धि ने उनके प्राकृतिक सौंदर्य को अपनी कृत्रिमता से कलंकित कर दिया है। मैं तल्लीन हो कर इस स्वर्गीय आनंद का उपभोग कर रहा था कि सहसा मेरी दृष्टि एक सिंह पर जा पड़ी, जो मंदगति से कदम बढ़ाता हुआ मेरी ओर आ रहा था। उसे देखते ही मेरा खून सूख गया, होश उड़ गये। ऐसा वृहदाकार भयंकर जंतु मेरी नजर से न गुजरा था। वहाँ ज्ञानसरोवर के अतिरिक्त कोई ऐसा स्थान नहीं था जहाँ भाग कर अपनी जान बचाता। मैं तैरने में कुशल हूँ, पर मैं ऐसा

भयभीत हो गया कि अपने स्थान से हिल न सका। मेरे अंग-प्रत्यंग मेरे काबू से बाहर थे। समझ गया कि मेरी जिंदगी यहीं तक थी। इस शेर के पंजे से बचने की कोई आशा न थी। अकस्मात् मुझे स्मरण हुआ कि मेरी जेब में एक पिस्तौल गोलियों से भरी हुई रखी है, जो मैंने आत्मरक्षा के लिए चलते समय साथ ले ली थी, और अब तक प्राणपण से इसकी रक्षा करता आया था। आश्चर्य है कि इतनी देर तक मेरी स्मृति कहाँ सोई रही। मैंने तुरंत ही पिस्तौल निकाली और निकट था कि शेर पर वार करूँ कि मेरे कानों में यह शब्द सुनायी दिए, ''मुसाफिर, ईश्वर के लिए वार न करना अन्यथा मुझे दुःख होगा। सिंहराज से तुझे हानि न पहुँचेगी।''

मैंने चकित होकर पीछे की ओर देखा तो एक युवती रमणी आती हुई दिखायी दी। उसके हाथ में एक सोने का लोटा था और दूसरे में एक तश्तरी। मैंने जर्मनी की हूरें और कोहकाफ की परियाँ देखी हैं, पर हिमाचल पर्वत की यह अप्सरा मैंने एक ही बार देखी और उसका चित्र आज तक हृदय-पट पर खिंचा हुआ है। मुझे स्मरण नहीं कि 'रफैल' या 'कोरेजियो' ने भी कभी ऐसा चित्र खींचा हो। 'वैंडाइक' और 'रेमब्रॉड' के आकृति-चित्रों ने भी ऐसी मनोहर छवि नहीं देखी। पिस्तौल मेरे हाथ से गिर पड़ी। कोई दूसरी शक्ति इस समय मुझे अपनी भयावह परिस्थिति से निश्चिंत न कर सकती थी।

मैं उस सुंदरी की ओर देख ही रहा था कि वह सिंह के पास आयी। सिंह उसे देखते ही खड़ा हो गया और मेरी ओर सशंक नेत्रों से देख कर मेघ की भाँति गर्जा। रमणी ने एक रूमाल निकाल कर उसका मुँह पोंछा और फिर लोटे से दूध उँडेल कर उसके सामने रख दिया। सिंह दूध पीने लगा। मेरे विस्मय की अब कोई सीमा न थी। चकित था कि यह कोई तिलिस्म है या जादू। व्यवहार-लोक में हूँ अथवा विचार-लोक में। सोता हूँ या जागता। मैंने बहुधा सरकसों में पालतू शेर देखे हैं, किंतु उन्हें काबू में रखने के लिए किन-किन रक्षा विधानों से काम लिया जाता है ! उसके प्रतिकूल यह मांसाहारी पशु उस रमणी के सम्मुख इस भाँति लेटा हुआ है मानो वह सिंह की योनि में कोई मृग-शावक है। मन में प्रश्न हुआ, सुंदरी में कौन-सी चमत्कारिक शक्ति है जिसने सिंह को इस भाँति वशीभूत कर लिया ? क्या पशु भी अपने हृदय में कोमल और रसिक-भाव छिपाये रखते हैं? कहते हैं कि महुअर का अलाप काले नाग को भी मस्त कर देता है। जब ध्वनि में यह सिद्धि है तो सौंदर्य की शक्ति का अनुमान कौन कर सकता है। रूप-लालित्य संसार का सब से अमूल्य रत्न है, प्रकृति के रचना-नैपुण्य का सर्वश्रेष्ठ अंश है।

जब सिंह दूध पी चुका तो सुंदरी ने रूमाल से उसका मुँह पोंछा और उसका सिर अपने जाँघ पर रख कर उसे थपकियाँ देने लगी। सिंह पूँछ हिलाता था और सुंदरी की अरुणवर्ण हथेलियों को चाटता था। थोड़ी देर के बाद दोनों एक गुफा में अंतर्हित हो गये। मुझे भी धुन सवार हुई कि किसी प्रकार इस तिलिस्म को खोलूँ, इस रहस्य का उद्घाटन करूँ। जब दोनों अदृश्य हो गये तो मैं भी उठा और दबे पाँव उस गुफा के द्वार तक जा पहुँचा। भय से मेरे शरीर की बोटी-बोटी काँप रही थी, मगर इस रहस्यपट को खोलने की उत्सुकता भय को दबाये हुए थी। मैंने गुफा के भीतर झाँका तो क्या देखता हूँ कि पृथ्वी पर जरी का फर्श बिछा हुआ है और कारचोबी गावतकिये लगे हुए हैं। सिंह मसनद पर गर्व से बैठा हुआ है। सोने-चाँदी के पात्र, सुंदर चित्र, फूलों के गमले सभी अपने-अपने स्थान पर

सजे हुए हैं, वह गुफा राजभवन को भी लज्जित कर रही है।

द्वार पर मेरी परछाई देख कर वह सुंदरी बाहर निकल आयी और मुझसे कहा, "यात्री, तू कौन है और इधर क्योंकर आ निकला ?"

कितनी मनोहर ध्वनि थी। मैंने अबकी बार समीप से देखा तो सुंदरी का मुख कुम्हलाया हुआ था। उसके नेत्रों से निराशा झलक रही थी, उसके स्वर में भी करुणा और व्यथा की खटक थी। मैंने उत्तर दिया, "देवी, मैं यूरोप का निवासी हूँ, यहाँ देशाटन करने आया हूँ। मेरा परम सौभाग्य है कि आप से सम्भाषण करने का गौरव प्राप्त हुआ।" सुन्दरी के गुलाब से ओठों पर मधुर मुस्कान की झलक दिखायी दी, उसमें कुछ कुटिल हास्य का भी अंश था। कदाचित् यह मेरे इस अस्वाभाविक वाक्य-प्रणाली का द्योतक था। "तू विदेश से यहाँ आया है। आतिथ्य-सत्कार हमारा कर्त्तव्य है। मैं आज तेरा निमंत्रण करती हूँ, स्वीकार कर।"

मैंने अवसर देख कर उत्तर दिया, "आपकी यह कृपा मेरे लिए गौरव की बात है, पर इस रहस्य ने मेरी भूख-प्यास वंद कर दी है। क्या मैं आशा करूँ कि आप इस पर कुछ प्रकाश डालेंगी ?"

सुन्दरी ने ठंडी साँस ले कर कहा, "मेरी रामकहानी विपत्ति की एक बड़ी कथा है; तुझे सुन कर दुःख होगा।" किंतु मैंने जब बहुत आग्रह किया तो उसने मुझे फर्श पर बैठने का संकेत किया और अपना वृत्तांत सुनाने लगी :

"मैं काश्मीर देश की रहनेवाली राजकन्या हूँ। मेरा विवाह एक राजपूत योद्धा से हुआ था। उनका नाम नृसिंहदेव था। हम दोनों बड़े आनंद से जीवन व्यतीत करते थे। संसार का सर्वोत्तम पदार्थ रूप है, दूसरा स्वास्थ्य और तीसरा धन। परमात्मा ने हमको ये तीनों ही पदार्थ प्रचुर परिमाण में प्रदान किये थे। खेद है कि मैं उनसे मुलाकात नहीं कर सकती। ऐसा साहसी, ऐसा सुन्दर, ऐसा विद्वान् पुरुष सारे काश्मीर में न था। मैं उनकी आराधना करती थी। उनका मेरे ऊपर अपार स्नेह था। कई वर्षों तक हमारा जीवन एक जलस्रोत की भाँति वृक्ष-पुंजों और हरे-हरे मैदानों में प्रवाहित होता रहा।

मेरे पड़ोस में एक मंदिर था। पुजारी एक पंडित श्रीधर थे। हम दोनों प्रातःकाल तथा संध्या समय उस मन्दिर में उपासना के लिए जाते। मेरे स्वामी कृष्ण के भक्त थे। मंदिर एक सुरम्य सागर के तट पर बना हुआ था। वहाँ की परिष्कृत मंद समीर चित्त को पुलकित कर देती थी। इसलिए हम उपासना के पश्चात् भी वहाँ घंटों वायु-सेवन करते रहते थे। श्रीधर बड़े विद्वान, वेदों के ज्ञाता, शास्त्रों के जाननेवाले थे। कृष्ण पर उनकी भी अविचल भक्ति थी। समस्त काश्मीर में उनके पांडित्य की चर्चा थी। वह बड़े संयमी, संतोषी, आत्मज्ञानी पुरुष थे। उनके नेत्रों से शांति की ज्योतिरेखाएँ निकलती हुई मालूम होती थीं। सदैव परोपकार में मग्न रहते थे। उनकी वाणी ने कभी किसी का हृदय नहीं दुखाया। उनका हृदय नित्य परवेदना से पीड़ित रहता था।

पंडित श्रीधर मेरे पतिदेव से लगभग दस वर्ष बड़े थे; पर उनकी धर्मपत्नी विद्याधरी मेरी समवयस्का थीं। हम दोनों सहेलियाँ थीं। विद्याधरी अत्यंत गंभीर, शांत प्रकृति की स्त्री थीं। यद्यपि रंग-रूप में वही रानी थीं, पर वह अपनी अवस्था से संतुष्ट थीं। अपने पति को वह देवतुल्य समझती थीं।

श्रावण का महीना था। आकाश पर काले-काले बादल मँडरा रहे थे, मानो काजल के पर्वत उड़े जा रहे हैं। झरनों से दूध की धारें निकल रही थीं और चारों ओर हरियाली छाई हुई थी। नन्हीं-नन्हीं फुहारें पड़ रही थीं, मानो स्वर्ग से अमृत की बूँदें टपक रही हैं। जल की बूँदें फूलों और पत्तियों के गले में चमक रही थीं। चित्त को अभिलाषाओं से उभारनेवाला शमा छाया हुआ था। यह वह समय है जब रमणियों को विदेशगामी प्रियतम की याद रुलाने लगती है, जब हृदय किसी से आलिंगन करने के लिए व्यग्र हो जाता है। जब सूनी सेज देख कर कलेजे में हूक-सी उठती है। इसी ऋतु में विरह की मारी वियोगिनियाँ अपनी बीमारी का बहाना करती हैं, जिसमें उसका पति उसे देखने आवे। इसी ऋतु में माली की कन्या धानी साड़ी पहन कर क्यारियों में इठलाती हुई चम्पा और बेले के फूलों से आँचल भरती है, क्योंकि हार और गजरों की माँग बहुत बढ़ जाती है। मैं और विद्याधरी ऊपर छत पर बैठी हुई वर्षाऋतु की बहार देख रही थीं और कालिदास का ऋतुसंहार पढ़ती थीं कि इतने में मेरे पति ने आ कर कहा, "आज का सुहावना दिन है। झूला झूलने में बड़ा आनंद आयेगा।" सावन में झूला झूलने का प्रस्ताव क्योंकर रद्द किया जा सकता था। इन दिनों प्रत्येक रमणी का चित्त आप ही आप झूला झूलने के लिए विकल हो जाता है। जब वन के वृक्ष झूला झूलते हों, जब सारी प्रकृति आंदोलित हो रही हो तो रमणी का कोमल हृदय क्यों न चंचल हो जाय! विद्याधरी भी राजी हो गयी। रेशम की डोरियाँ कदम की डाल पर पड़ गयीं, चंदन का पटरा रख दिया गया और मैं विद्याधरी के साथ झूला झूलने चली। जिस प्रकार ज्ञानसरोवर पवित्र जल से परिपूर्ण हो रहा है, उसी भाँति हमारे हृदय पवित्र आनंद से परिपूर्ण थे। किन्तु शोक ! वह कदाचित् मेरे सौभाग्यचंद्र की अंतिम झलक थी। मैं झूले के पास पहुँच कर पटरे पर जा बैठी; किंतु कोमलांगी विद्याधरी ऊपर न आ सकी। वह कई बार उचकी, परंतु पटरे तक न आ सकी। तब मेरे पतिदेव ने सहारा देने के लिए उसकी बाँह पकड़ ली ! उस समय उनके नेत्रों में एक विचित्र तृष्णा की झलक थी और मुख पर एक विचित्र आतुरता। वह धीमे में मल्हार गा रहे थे; किंतु विद्याधरी जब पटरे पर आयी तो उसका मुख डूबते हुए सूर्य की भाँति लाल हो रहा था, नेत्र अरुणवर्ण हो रहे थे। उसने पतिदेव की ओर क्रोधोन्मत्त हो कर कहा :

"तूने काम के वश हो कर मेरे शरीर में हाथ लगाया है। मैं अपने पातिव्रत के बल से तुझे शाप देती हूँ कि तू इसी क्षण पशु हो जा।"

यह कहते ही विद्याधरी ने अपने गले से रुद्राक्ष की माला निकाल कर मेरे पतिदेव के ऊपर फेंक दिया और तत्क्षण ही पटरे के समीप मेरे पतिदेव के स्थान पर एक विशाल सिंह दिखलायी दिया।

2

ऐ मुसाफिर, अपने प्रिय पतिदेवता की यह गति देख कर मेरा रक्त सूख गया और कलेजे पर बिजली-सी आ गिरी। मैं विद्याधरी के पैरों से लिपट गयी और फूट-फूट कर रोने लगी। उस समय अपनी आँखों से देख कर अनुभव हुआ कि पातिव्रत की महिमा कितनी प्रबल है। ऐसी घटनाएँ मैंने पुराणों में पढ़ी थीं, परंतु मुझे विश्वास न था कि वर्तमान काल में जबकि स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में स्वार्थ की मात्रा दिनोंदिन अधिक होती जाती है, पातिव्रत

धर्म में यह प्रभाव होगा; परंतु यह नहीं कह सकती कि विद्याधरी के विचार कहाँ तक ठीक थे। मेरे पति विद्याधरी को सदैव बहिन कह कर संबोधित करते थे। वह अत्यंत स्वरूपवान् थे और रूपवान पुरुष की स्त्री का जीवन बहुत सुखमय नहीं होता; पर मुझे उन पर संशय करने का अवसर कभी नहीं मिला। वह स्त्री व्रत धर्म का वैसा ही पालन करते थे जैसे सती अपने धर्म का। उनकी दृष्टि में कुचेष्टा न थी और विचार अत्यंत उज्ज्वल और पवित्र थे। यहाँ तक कि कालिदास की शृंगारमय कविता भी उन्हें प्रिय न थी, मगर काम के मर्मभेदी बाणों से कौन बचा है ! जिस काम ने शिव, ब्रह्मा जैसे तपस्वियों की तपस्या भंग कर दी, जिस काम ने नारद और विश्वामित्र जैसे ऋषियों के माथे पर कलंक का टीका लगा दिया, वह काम सब कुछ कर सकता है। सम्भव है कि सुरापान ने उद्दीपक ऋतु के साथ मिल कर उनके चित्त को विचलित कर दिया हो। मेरा गुमान तो यह है कि यह विद्याधरी की केवल भ्रांति थी। जो कुछ भी हो, उसने शाप दे दिया। उस समय मेरे मन में भी उत्तेजना हुई कि जिस शक्ति का विद्याधरी को गर्व है, क्या वह शक्ति मुझमें नहीं है ? क्या मैं पतिव्रता नहीं हूँ ? किंतु हा ! मैंने कितना ही चाहा कि शाप के शब्द मुँह से निकालूँ, पर मेरी जबान बंद हो गयी। अखंड विश्वास जो विद्याधरी को अपने पातिव्रत पर था, मुझे न था ? विवशता ने मेरे प्रतिकार के आवेग को शांत कर दिया। मैंने बड़ी दीनता के साथ कहा—बहिन, तुमने यह क्या किया ?

विद्याधरी ने निर्दय हो कर कहा—मैंने कुछ नहीं किया। यह उसके कर्मों का फल है।

मैं—तुम्हें छोड़ कर और किसकी शरण जाऊँ, क्या तुम इतनी दया न करोगी ?

विद्याधरी—मेरे किये अब कुछ नहीं हो सकता।

मैं—देवि, तुम पातिव्रतधारिणी हो, तुम्हारे वाक्य की महिमा अपार है। तुम्हारा क्रोध यदि मनुष्य से पशु बना सकता है, तो क्या तुम्हारी दया पशु से मनुष्य न बना सकेगी ?

विद्याधरी—प्रायश्चित करो। इसके अतिरिक्त उद्धार का और कोई उपाय नहीं।

ऐ मुसाफिर, मैं राजपूत की कन्या हूँ। मैंने विद्याधरी से अधिक अनुनय-विनय नहीं की। उसका हृदय दया का आगार था। यदि मैं उसके चरणों पर शीश रख देती तो कदाचित् उसे मुझ पर दया आ जाती; किंतु राजपूत की कन्या इतना अपमान नहीं सह सकती। वह घृणा के घाव सह सकती है, क्रोध की अग्नि सह सकती है, पर दया का बोझ उससे नहीं उठाया जाता। मैंने पटरे से उतर कर पतिदेव के चरणों पर सिर झुकाया और उन्हें साथ लिये हुए अपने मकान चली आयी।

3

कई महीने गुजर गये। मैं पतिदेव की सेवा-शुश्रूषा में तन-मन से व्यस्त रहती। यद्यपि उनकी जिह्वा वाणीविहीन हो गयी थी, पर उनकी आकृति से स्पष्ट प्रकट होता था कि वह अपने कर्म से लज्जित थे। यद्यपि उनका रूपांतर हो गया था; पर उन्हें मांस से अत्यंत घृणा थी। मरी पशुशाला में सैकड़ों गायें-भैंसें थीं; किंतु शेरसिंह ने कभी किसी की ओर आँख उठा कर भी न देखा। मैं उन्हें दोनों वेला दूध पिलाती और संध्या समय उन्हें साथ लेकर पहाड़ियों की सैर कराती। मेरे मन में न जाने क्यों धैर्य और साहस का इतना संचार हो गया

था कि मुझे अपनी दशा असह्य न जान पड़ती थी। मुझे निश्चय था कि शीघ्र ही इस विपत्ति का अंत भी होगा।

इन्हीं दिनों हरिद्वार में गंगा-स्नान का मेला लगा। मेरे नगर से यात्रियों का एक समूह हरिद्वार चला। मैं भी उनके साथ हो ली। दीन-दुखी जनों को दान देने के लिए रुपयों और अशर्फियों की थैलियाँ साथ ले लीं। मैं प्रायश्चित्त करने जा रही थी, इसलिए पैदल ही यात्रा करने का निश्चय कर लिया। लगभग एक महीने में हरिद्वार जा पहुँची। यहाँ भारतवर्ष के प्रत्येक प्रांत से असंख्य यात्री आये हुए थे। संन्यासियों और तपस्वियों की संख्या गृहस्थों से कुछ ही कम होगी। धर्मशालों में रहने का स्थान न मिलता था। गंगातट पर, पर्वतों की गोद में, मैदानों के वक्षःस्थल पर, जहाँ देखिए आदमी ही आदमी नजर आते थे। दूर से वह छोटे-छोटे खिलौने की भाँति दिखायी देते थे। मीलों तक आदमियों का फर्श-सा बिछा हुआ था। भजन और कीर्तन की ध्वनि नित्य कानों में आती रहती थी। हृदय में असीम शुद्धि गंगा की लहरों की भाँति लहरें मारती थी। वहाँ का जल, वायु, आकाश सब शुद्ध था।

मुझे हरिद्वार आये तीन दिन व्यतीत हुए थे। प्रभात का समय था। मैं गंगा में खड़ी स्नान कर रही थी। सहसा मेरी दृष्टि ऊपर की ओर उठी तो मैंने किसी आदमी को पुल की ओर झाँकते देखा। अकस्मात् उस मनुष्य का पाँव ऊपर उठ गया और सैकड़ों ही गज की ऊँचाई से गंगा में गिर पड़ा। सहस्रों आखें यह दृश्य देख रही थी, पर किसी का साहस न हुआ कि उस अभागे मनुष्य की जान बचाये। भारतवर्ष के अतिरिक्त ऐसा समवेदना शून्य और कौन देश होगा और यह वह देश है जहाँ परमार्थ मनुष्य का कर्त्तव्य बताया गया है। लोग बैठे हुए अपंगुओं की भाँति तमाशा देख रहे थे। सभी हतबुद्धि से हो रहे थे। धारा प्रबल वेग से प्रवाहित थी और जल बर्फ से भी अधिक शीतल। मैंने देखा कि वह धारा के साथ बहता चला जाता था। यह हृदय-विदारक दृश्य मुझसे न देखा गया। मैं तैरने में अभ्यस्त थी। मैंने ईश्वर का नाम लिया और मन को दृढ़ करके धारा के साथ तैरने लगी। ज्यों-ज्यों मैं आगे बढ़ती थी, वह मनुष्य मुझसे दूर होता जाता था। यहाँ तक मेरे सारे अंग ठंड से शून्य हो गये।

मैंने कई बार चट्टानों को पकड़ कर दम लिया, कई बार पत्थरों से टकरायी। मेरे हाथ ही न उठते थे। सारा शरीर बर्फ का ढाँचा-सा बना हुआ था। मेरे अंग गतिहीन हो गये कि मैं धारा के साथ बहने लगी और मुझे विश्वास हो गया कि गंगामाता के उदर ही में मेरी जल-समाधि होगी। अकस्मात् मैंने उस पुरुष की लाश को एक चट्टान पर रुकते देखा। मेरा हौसला बँध गया। शरीर में एक विचित्र स्फूर्ति का अनुभव हुआ। मैं जोर लगा कर प्राणपण से उस चट्टान पर जा पहुँची और उसका हाथ पकड़ कर खींचा। मेरा कलेजा धक से हो गया। यह श्रीधर पंडित थे।

ऐ मुसाफिर, मैंने यह काम प्राणों को हथेली पर रख कर पूरा किया। जिस समय मैं पंडित श्रीधर की अर्ध मृत देह, लिये तट पर आयी तो सहस्रों मनुष्यों की जयध्वनि से आकाश गूँज उठा। कितने ही मनुष्यों ने चरणों पर सिर झुकाये। अभी लोग श्रीधर को होश में लाने के उपाय कर ही रहे थे कि विद्याधरी मेरे सामने आ कर खड़ी हो गयी। उसका मुख, प्रभात के चंद्र की भाँति कांतिहीन हो रहा था, होंठ सूखे हुए, बाल बिखरे हुए। आँखों से

आँसुओं की झड़ी लगी हुई थी। वह जोर से हाँफ रही थी, दौड़ कर मेरे पैरों से चिमट गयी, किन्तु दिल खोल कर नहीं, निर्मल भाव से नहीं। एक की आँखें गर्व से भरी हुई थीं और दूसरे की ग्लानि से झुकी हुईं। विद्याधरी के मुँह से बात न निकलती थी। केवल इतना बोली—'बहिन, ईश्वर तुमको इस सत्कार्य का फल दें।'

4

ऐ मुसाफिर, यह शुभकामना विद्याधरी के अंतःस्थल से निकली थी। मैं उसके मुँह से यह आशीर्वाद सुन कर फूली न समायी। मुझे विश्वास हो गया कि अबकी बार जब मैं अपने मकान पर पहुँचूँगी तो पतिदेव मुस्कराते हुए मुझसे गले मिलने के लिए द्वार पर आयेंगे। इस विचार से मेरे हृदय में गुदगुदी-सी होने लगी। मैं शीघ्र ही स्वदेश को चल पड़ी। उत्कंठा मेरे कदम बढ़ाये जाती थी। मैं दिन में भी चलती और रात को भी चलती, मगर पैर थकना ही न जानते थे। यह आशा कि वह मोहिनी मूर्ति द्वार पर मेरे स्वागत करने के लिए खड़ी होगी, मेरे पैरों में पर-से लगाये हुए थी। एक महीने की मंजिल मैंने एक सप्ताह में तय की। पर शोक ! जब मकान के पास पहुँची, तो उस घर को देख कर दिल बैठ गया और हिम्मत न पडी कि अदर कदम रखूँ। मैं चौखट पर बैठ कर देर तक विलाप करती रही। न किसी नौकर का पता, न कहीं पाले हुए पशु ही दिखायी देते थे। द्वार पर धूल उड़ रही थी। जान पड़ता था कि पक्षी घोंसले से उड़ गया है, कलेजे पर पत्थर की सिल रख कर भीतर गयी तो क्या देखती हूँ कि मेरा प्यारा सिंह आँगन में मोटी-मोटी जंजीरों से बँधा हुआ है। इतना दुर्वल हो गया है कि उसके कूल्हों की हड्डियाँ दिखायी दे रही हैं। ऊपर-नीचे जिधर देखती थी, उजाड़-सा मालूम होता था। मुझे देखते ही शेरसिंह ने पूँछ हिलायी और सहसा उनकी आँखें दीपक की भाँति चमक उठीं। मैं दौड़कर उनके गले से लिपट गयी, समझ गयी कि नौकरों ने दगा की। घर की सामग्रियों का कहीं पता न था। सोने-चाँदी के बहुमूल्य पात्र, फर्श आदि सब गायब थे। हाय ! हत्यारे मेरे आभूषणों का संदूक भी उठा ले गये। इस अपहरण ने मुसीबत का प्याला भर दिया। शायद पहले उन्होंने शेरसिंह को जकड़ कर बाँध दिया होगा, फिर खूब दिल खोल कर नोच-खसोट की होगी। कैसी विडम्बना थी कि धर्म लूटने गयी थी और धन लुटा बैठी। दरिद्रता ने पहली बार अपना भयंकर रूप दिखाया।

ऐ मुसाफिर, इस प्रकार लुट जाने के बाद वह स्थान आँखों में काँटे की तरह खटकने लगा। यही वह स्थान था जहाँ हमने आनंद के दिन काटे थे। इन्हीं क्यारियों में हमने मृगों की भाँति कलोल किये थे। प्रत्येक वस्तु से कोई न कोई स्मृति सम्बन्धित थी। उन दिनों की याद करके आँखों से रक्त के आँसू बहने लगते थे। बसंत की ऋतु थी, बौर की महक से वायु सुगंधित हो रही थी। महुए के वृक्षों के नीचे परियों के शयन करने के लिए मोतियों की शय्या बिछी हुई थी, करौंदे और नींबू के फलों की सुगंध से चित्त प्रसन्न हो जाता था। मैंने अपनी जन्म-भूमि को सदैव के लिए त्याग दिया। मेरी आँखों से आँसुओं की एक बूँद भी न गिरी। जिस जन्म-भूमि की याद यावज्जीवन हृदय को व्यथित करती रहती है, उससे मैंने यों मुँह मोड़ लिया मानो कोई बंदी कारागार से मुक्त हो जाय। एक सप्ताह तक मैं चारों ओर भ्रमण करके अपने भावी निवासस्थान का निश्चय करती रही। अंत में सिंधु नदी के

किनारे एक निर्जन स्थान मुझे पसंद आया। यहाँ एक प्राचीन मंदिर था। शायद किसी समय में वहाँ देवताओं का वास था; पर इस समय वह बिलकुल उजाड़ था। देवताओं ने काल को विजय किया हो; पर समय चक्र को नहीं। शनैः-शनैः मुझे इस स्थान से प्रेम हो गया और वह स्थान पथिकों के लिए धर्मशाला बन गया।

मुझे यहाँ रहते तीन वर्ष व्यतीत हो चुके थे। वर्षा ऋतु में एक दिन संध्या के समय मुझे मंदिर के सामने से एक घोड़े पर सवार जाता दिखायी दिया। मंदिर से प्रायः दो सौ गज की दूरी पर एक रमणीक सागर था, उसके किनारे कचनार वृक्षों के झुरमुट थे। वह सवार उस झुरमुट में जा कर अदृश्य हो गया। अंधकार बढ़ता जाता था। एक क्षण के बाद मुझे उस ओर किसी मनुष्य का चीत्कार सुनायी दिया, फिर बंदूकों के शब्द सुनायी दिये और उनकी ध्वनि से पहाड़ गूँज उठा।

ऐ मुसाफिर, यह दृश्य देख कर मुझे किसी भीषण घटना का संदेह हुआ। मैं तुरंत उठ खड़ी हुई। एक कटार हाथ में ली और उस सागर की ओर चल दी।

अब मूसलाधार वर्षा होने लगी थी, मानो आज के बाद फिर कभी न बरसेगा। रह-रह कर गर्जन की ऐसी भयंकर ध्वनि उठती थी, मानो सारे पहाड़ आपस में टकरा गये हों। बिजली की चमक ऐसी तीव्र थी, मानो संसार-व्यापी प्रकाश सिमट कर एक हो गया हो। अंधकार का यह हाल था मानो सहस्रों अमावस्या की रातें गले मिल रही हों। मैं कमर तक पानी में चलती दिल को संभाले हुए आगे बढ़ती जाती थी। अंत में सागर के समीप आ पहुँची। बिजली की चमक ने दीपक का काम किया। सागर के किनारे एक बड़ी-सी गुफा थी। इस समय उस गुफा में से प्रकाश-ज्योति बाहर आती हुई दिखायी देती थी। मैंने भीतर की ओर झाँका तो क्या देखती हूँ कि एक बड़ा अलाव जल रहा है। उसके चारों ओर बहुत-से आदमी खड़े हुए हैं और एक स्त्री आग्नेय नेत्रों से घूर-घूर कर कह रही है, "मैं अपने पति के साथ उसे भी जला कर भस्म कर दूँगी।" मेरे कुतूहल की कोई सीमा न रही। मैंने साँस बंद कर ली और हतबुद्धि की भाँति यह कौतुक देखने लगी। उस स्त्री के सामने एक रक्त से लिपटी हुई लाश पड़ी थी और लाश के समीप ही एक मनुष्य रस्सियों से बँधा हुआ सिर झुकाये बैठा था। मैंने अनुमान किया कि यह वही अश्वारोही पथिक है, जिस पर इन डाकुओं ने आघात किया था। यह शव डाकू सरदार का है और यह स्त्री डाकू की पत्नी है। उसके सिर के बाल बिखरे हुए थे और आँखों से अंगारे निकल रहे थे। हमारे चित्रकारों ने क्रोध को पुरुष कल्पित किया है। मेरे विचार में स्त्री का क्रोध इससे कहीं घातक, कहीं विध्वंसकारी होता है। क्रोधोन्मत्त हो कर वह कोमलांगी सुन्दरी ज्वालाशिखर बन जाती है।

उस स्त्री ने दाँत पीस कर कहा, "मैं अपने पति के साथ इसे भी जला कर भस्म कर दूँगी।" यह कह कर उसने उस रस्सियों से बँधे हुए पुरुष को घसीटा और दहकती हुई चिता में डाल दिया। आह ! कितना भयंकर, कितना रोमांचकारी दृश्य था। स्त्री ही अपनी द्वेष की अग्नि शांत करने में इतनी पिशाचिनी हो सकती है। मेरा रक्त खौलने लगा। अब एक क्षण भी विलम्ब करने का अवसर न था। मैंने कटार खींच ली, डाकू चौंक कर तितर-बितर हो गये, समझे मेरे साथ और लोग भी होंगे। मैं बेधड़क चिता में घुस गयी और क्षणमात्र में उस अभागे पुरुष को अग्नि के मुख से निकाल लायी। अभी केवल उसके वस्त्र ही जले थे। जैसे सर्प अपना शिकार छिन जाने से फुफकारता हुआ लपकता है, उसी प्रकार

गरजती हुई लपटें मेरे पीछे दौड़ीं। ऐसा प्रतीत होता था कि अग्नि भी उसके रक्त की प्यासी हो रही थी।

इतने में डाकू संभल गये और आहत सरदार की पत्नी पिशाचिनी की भाँति मुँह खोले मुझ पर झपटी। समीप था कि ये हत्यारे मेरी बोटियाँ कर दें कि इतने में गुफा के द्वार पर मेघ गर्जन की-सी ध्वनि सुनायी दी और शेरसिंह रौद्ररूप धारण किये हुए भीतर पहुँचे। उनका भयंकर रूप देखते ही डाकू अपनी-अपनी जान ले कर भागे। केवल डाकू सरदार की पत्नी स्तम्भित-सी अपने स्थान पर खड़ी रही। एकाएक उसने अपने पति का शव उठाया और उसे ले कर चिता में बैठ गयी। देखते-देखते उसका भयंकर रूप अग्नि-ज्वाला में विलीन हो गया। अब मैंने उस बँधे हुए मनुष्य की ओर देखा तो मेरा हृदय उछल पड़ा। यह पंडित श्रीधर थे। मुझे देखते ही सिर झुका लिया और रोने लगे। मैं उनके समाचार पूछ ही रही थी कि उसी गुफा के एक कोने से किसी के कराहने का शब्द सुनायी दिया। जा कर देखा तो एक सुन्दर युवक रक्त से लथपथ पड़ा था। मैंने उसे देखते ही पहचान लिया। उसका पुरुषवेष उसे छिपा न सका। यह विद्याधरी थी। मर्दों के वस्त्र उस पर खूब सजते थे। वह लज्जा और ग्लानि की मूर्ति बनी हुई थी। वह पैरों पर गिर पड़ी, पर मुँह से कुछ न बोली।

उस गुफा में पल भर भी ठहरना अत्यंत शंकाप्रद था। न जाने कब डाकू फिर सशस्त्र हो कर आ जायँ। उधर चिताग्नि भी शांत होने लगी और उस सती की भी भीषण काया अत्यंत तेज रूप धारण करके हमारे नेत्रों के सामने तांडव क्रीड़ा करने लगी। मैं बड़ी चिंता में पड़ी कि इन दोनों प्राणियों को कैसे वहाँ से निकालूँ। दोनों ही रक्त से चूर थे। शेरसिंह ने मेरा असमंजस ताड़ लिया। रूपांतर हो जाने के बाद उनकी बुद्धि बड़ी तीव्र हो गयी थी। उन्होंने मुझे संकेत किया कि दोनों को हमारी पीठ पर बिठा दो। पहले तो मैं उनका आशय न समझी, पर जब उन्होंने संकेत को बार-बार दुहराया तो मैं समझ गयी। गूँगों के घरवाले ही गूँगों की बातें खूब समझते हैं। मैंने पंडित श्रीधर को गोद में उठा कर शेरसिंह की पीठ पर बिठा दिया। उसके पीछे विद्याधरी को भी बिठाया। नन्हा बालक भालू की पीठ पर बैठ कर जितना डरता है, उससे कहीं ज्यादा यह दोनों प्राणी भयभीत हो रहे थे। चिताग्नि के क्षीण प्रकाश में उनके भयविकृत मुख देख कर करुण विनोद होता था। अस्तु मैं इन दोनों प्राणियों को साथ ले कर गुफा से निकली और फिर उसी तिमिर-सागर को पार करके मंदिर आ पहुँची।

मैंने एक सप्ताह तक उनका यहाँ यथाशक्ति सेवा-सत्कार किया। जब वह भली-भाँति स्वस्थ हो गये तो मैंने उन्हें विदा किया। ये स्त्री-पुरुष कई आदमियों के साथ टेढ़ी जा रहे थे, यहाँ के राजा पंडित श्रीधर के शिष्य हैं। पंडित श्रीधर का घोड़ा आगे था। विद्याधरी का अभ्यास न होने के कारण पीछे थी, उनके दोनों रक्षक भी उनके साथ थे। जब डाकुओं ने पंडित श्रीधर को घेरा और पंडित ने पिस्तौल से डाकू सरदार को गिराया तो कोलाहल सुन कर विद्याधरी ने घोड़ा बढ़ाया। दोनों रक्षक तो जान ले कर भागे, विद्याधरी को डाकुओं ने पुरुष समझ कर घायल कर दिया और तब दोनों प्राणियों को बाँध कर गुफा में डाल दिया। शेष बातें मैंने अपनी आँखों देखीं। यद्यपि यहाँ से बिदा होते समय विद्याधरी का रोम-रोम मुझे आशीर्वाद दे रहा था। पर हाँ ! अभी प्रायश्चित पूरा न हुआ था। इतना आत्म-समर्पण करके भी मैं सफल मनोरथ न हुई थी।

5

ऐ मुसाफिर, उस प्रान्त में अब मेरा रहना कठिन हो गया। डाकू बंदूकें लिए हुए शेरसिंह की तलाश में घूमने लगे। विवश हो कर एक दिन मैं वहाँ से चल खड़ी हुई और दुर्गम पर्वतों को पार करती हुई यहाँ आ निकली। यह स्थान मुझे ऐसा पसंद आया कि मैंने इस गुफा को अपना घर बना लिया है। आज पूरे तीन वर्ष गुजरे जब मैंने पहले-पहल ज्ञानसरोवर के दर्शन किये। उस समय भी यही ऋतु थी। मैं ज्ञानसरोवर में पानी भरने गयी हुई थी, सहसा क्या देखती हूँ कि एक युवक मुश्की घोड़े पर सवार रत्न जटित आभूषण पहने हाथ में चमकता हुआ भाला लिये चला आता है। शेरसिंह को देख कर वह ठिठका और भाला संभाल कर उन पर वार कर बैठा। शेरसिंह को भी क्रोध आया। उनके गरज की ऐसी गगनभेदी ध्वनि उठी कि ज्ञानसरोवर का जल आंदोलित हो गया और तुरंत घोड़े से खींच कर उसकी छाती पर पंजे रख दिये। मैं घड़ा छोड़ कर दौड़ी। युवक का प्राणांत होनेवाला ही था कि मैंने शेरसिंह के गले में हाथ डाल दिये और उनका सिर सहला कर क्रोध शांत किया। मैंने उनका ऐसा भयंकर रूप कभी नहीं देखा था। मुझे स्वयं उनके पास जाते हुए डर लगता था, पर मेरे मृदु वचनों ने अंत में उन्हें वशीभूत कर लिया, वह अलग खड़े हो गये। युवक की छाती में गहरा घाव लगा था। उसे मैंने इसी गुफा में ला कर रखा और उसकी मरहम-पट्टी करने लगी। एक दिन मैं कुछ आवश्यक वस्तुएँ लेने के लिए उस कस्बे में गयी जिसके मंदिर के कलश यहाँ से दिखायी दे रहे हैं, मगर वहाँ सब दुकानें बंद थीं। बाजारों में खाक उड़ रही थी। चारों ओर सियापा छाया हुआ था। मैं बहुत देर तक इधर-उधर घूमती रही, किसी मनुष्य की सूरत भी न दिखायी देती थी कि उससे वहाँ का सब समाचार पूछूँ। ऐसा विदित होता था, मानो यह अदृश्य जीवों की बस्ती है। सोच ही रही थी कि वापस चलूँ कि घोड़ों के टापों की ध्वनि कानों में आयी और एक क्षण में एक स्त्री सिर से पैर तक काले वस्त्र धारण किये, एक काले घोड़े पर सवार आती हुई दिखायी दी। उसके पीछे कई सवार और प्यादे काली वर्दियाँ पहने आ रहे थे। अकस्मात् उस सवार स्त्री की दृष्टि मुझ पर पड़ी। उसने घोड़े को एड़ लगायी और मेरे निकट आकर कर्कश स्वर में बोली, "तू कौन है ?" मैंने निर्भीक भाव से उत्तर दिया, "मैं ज्ञानसरोवर के तट पर रहती हूँ। यहाँ बाजार में कुछ सामग्रियाँ लेने आयी थी; किंतु शहर में किसी का पता नहीं।" उस स्त्री ने पीछे की ओर देख कर कुछ संकेत किया और दो सवारों ने आगे बढ़ कर मुझे पकड़ लिया और मेरी बाँहों में रस्सियाँ डाल दीं। मेरी समझ में न आता था कि मुझे किस अपराध का दंड दिया जा रहा है। बहुत पूछने पर भी किसी ने मेरे प्रश्नों का उत्तर न दिया। हाँ, अनुमान से यह प्रकट हुआ कि यह स्त्री यहाँ की रानी है। मुझे अपने विषय में तो कोई चिंता न थी पर चिंता थी शेरसिंह की, यह अकेले घबरा रहे होंगे। भोजन का समय आ पहुँचा, कौन खिलावेगा। किस विपत्ति में फँसी। नहीं मालूम विधाता अब मेरी क्या दुर्गति करेंगे। मुझ अभागिन को इस दशा में भी शांति नहीं। इन्हीं मलिन विचारों में मग्न मैं सवारों के साथ आध घंटे तक चलती रही कि सामने एक ऊँची पहाड़ी पर एक विशाल भवन दिखायी दिया। ऊपर चढ़ने के लिए पत्थर काट कर चौड़े जीने बनाये गये थे। हम लोग ऊपर चढ़े। वहाँ सैकड़ों ही आदमी दिखायी दिये, किंतु सब-के-सब काले वस्त्र धारण किए हुए थे। मैं जिस कमरे में ला कर रखी गयी, वहाँ एक कुशासन के अतिरिक्त सजावट

का और सामान न था। मैं जमीन पर बैठ कर अपने नसीब को रोने लगी। जो कोई यहाँ आता था, मुझ पर करुण दृष्टिपात करके चुपचाप चला जाता था। थोड़ी देर में रानी साहब आ कर उसी कुशासन पर बैठ गयीं। यद्यपि उनकी अवस्था पचास वर्ष से अधिक थी, परन्तु मुख पर अद्भुत कांति थी। मैंने अपने स्थान से उठ कर उनका सम्मान किया और हाथ बाँध कर अपनी किस्मत का फैसला सुनने के लिए खड़ी हो गयी।

ऐ मुसाफिर, रानी महोदया के तेवर देख कर पहले तो मेरे प्राण सूख गये, किंतु जिस प्रकार चंदन जैसी कठोर वस्तु में मनोहर सुगंधि छिपी होती है, उसी प्रकार उनकी कर्कशता और कठोरता के नीचे मोम के सदृश हृदय छिपा हुआ था। उनका प्यारा पुत्र थोड़े ही दिन पहले युवावस्था ही में दगा दे गया था। उसी के शोक में सारा शहर मातम मना रहा था। मेरे पकड़े जाने का कारण यह था कि मैंने काले वस्त्र क्यों न धारण किये थे। यह वृतांत सुन कर मैं समझ गयी कि जिस राजकुमार का शोक मनाया जा रहा है वह वही युवक है जो मेरी गुफा में पड़ा हुआ है। मैंने उनसे पूछा, "राजकुमार मुश्की घोड़े पर तो सवार नहीं थे ?"

रानी–हाँ, हाँ मुश्की घोड़ा था। उसे मैंने उनके लिए अरब देश से मँगवा दिया था। क्या तूने उन्हें देखा है ?

मैं–हाँ, देखा है।

रानी ने पूछा–कब ?

मैं–जिस दिन वह शेर का शिकार खेलने गये थे।

रानी–क्या तेरे सामने ही शेर ने उन पर चोट की थी ?

मैं–हाँ, मेरी आँखों के सामने।

रानी उत्सुक हो कर खड़ी हो गयी और बड़े दीन भाव से बोली–तू उनकी लाश का पता लगा सकती है ?

मैं–ऐसा न कहिए, वह अमर हों। वह दो सप्ताहों से मेरे यहाँ मेहमान हैं।

रानी हर्षमय आश्चर्य से बोली–मेरा रणधीर जीवित है ?

मैं–हाँ, अब उनमें चलने-फिरने की शक्ति आ गयी है।

रानी मेरे पैरों पर गिर पड़ी।

तीसरे दिन अर्जुन नगर की कुछ और ही शोभा थी। वायु आनंद के मधुर स्वर में गूँजती थी, दुकानों ने फूलों का हार पहना था, बाजारों में आनंद के उत्सव मनाये जा रहे थे। शोक के काले वस्त्रों की जगह केसर का सुहावना रंग बधाई दे रहा था। इधर सूर्य ने उषा-सागर से सिर निकाला। उधर सलामियाँ दगना आरम्भ हुई। आगे-आगे मैं एक सब्जा घोड़े पर सवार आ रही थी और पीछे राजकुमार का हाथी सुनहरे झूलों से सजा चला आता था। स्त्रियाँ अटारियों पर मंगल के गीत गाती थीं और पुष्पों की वृष्टि करती थीं। राज-भवन के द्वार पर रानी मोतियों से आँचल-भरे खड़ी थी, ज्यों ही राजकुमार हाथी से उतरे; वह उन्हें गोद में लेने के लिए दौड़ी और छाती से लगा लिया।

6

ऐ मुसाफिर, आनंदोत्सव समाप्त होने पर जब मैं विदा होने लगी, तो रानी महोदया ने सजल नयन हो कर कहा :

"बेटी, तूने मेरे साथ जो उपकार किया है उसका फल तुझे भगवान् देंगे। तूने मेरे राज-वंश का उद्धार कर दिया, नहीं तो कोई पितरों को जल देनेवाला भी न रहता। मैं तुझे कुछ बिदाई देना चाहती हूँ, वह तुझे स्वीकार करनी पड़ेगी। अगर रणधीर मेरा पुत्र है, तो तू मेरी पुत्री है। तूने ही रणधीर को प्राणदान दिया है, तूने ही इस राज्य का पुनरुद्धार किया है। इसलिए इस माया-बंधन से तेरा गला नहीं छूटेगा। मैं अर्जुन नगर का प्रांत उपहारस्वरूप तेरी भेंट करती हूँ।"

रानी की यह असीम उदारता देख कर मैं दंग रह गयी। कलियुग में भी कोई ऐसा दानी हो सकता है, इसकी मुझे आशा न थी। यद्यपि मुझे धन-भोग की लालसा न थी, पर केवल इस विचार से कि कदाचित् यह सम्पत्ति मुझे अपने भाइयों की सेवा करने की सामर्थ्य दे, मैंने एक जागीरदार की जिम्मेदारियाँ अपने सिर लीं। तब से दो वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, पर भोग-विलास ने मेरे मन को एक क्षण के लिए भी चंचल नहीं किया। मैं कभी पलंग पर नहीं सोयी। रूखी-सूखी वस्तुओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं खाया। पति-वियोग की दशा में स्त्री तपस्विनी हो जाती है, उसकी वासनाओं का अंत हो जाता है, मेरे पास कई विशाल भवन हैं, कई रमणीक वाटिकाएँ हैं, विषय-वासना की ऐसी कोई सामग्री नहीं है जो प्रचुर मात्रा में उपस्थित न हो, पर मेरे लिए वह सब त्याज्य हैं। भवन सूने पड़े हैं और वाटिकाओं में खोजने से भी हरियाली न मिलेगी। मैंने उनकी ओर कभी आँख उठा कर भी नहीं देखा। अपने प्राणाधार के चरणों से लगे हुए मुझे अन्य किसी वस्तु की इच्छा नहीं है। मैं नित्यप्रति अर्जुन नगर जाती हूँ और रियासत के आवश्यक काम-काज करके लौट आती हूँ। नौकर-चाकरों को कड़ी आज्ञा दे दी गयी है कि मेरी शांति में बाधक न हों। रियासत की सम्पूर्ण आय परोपकार में व्यय होती है। मैं उसकी कौड़ी भी अपने खर्च में नहीं लाती। आपको अवकाश हो तो आप मेरी रियासत का प्रबंध देख कर बहुत प्रसन्न होंगे। मैंने इन दो वर्षों में बीस बड़े-बड़े तालाब बनवा दिये हैं और चालीस गोशालाएँ बनवा दी हैं। मेरा विचार है कि अपनी रियासत में नहरों का ऐसा जाल बिछा दूँ जैसे शरीर में नाड़ियों का। मैंने एक सौ कुशल वैद्य नियुक्त कर दिये हैं जो ग्रामों में विचरण करें और रोग की निवृत्ति करें। मेरा कोई ऐसा ग्राम नहीं है जहाँ मेरी ओर से सफ़ाई का प्रबंध न हो। छोटे-छोटे गाँवों में आपको लालटेनें जलती हुई मिलेंगी। दिन का प्रकाश ईश्वर देता है, रात के प्रकाश की व्यवस्था करना राजा का कर्त्तव्य है। मैंने सारा प्रबंध पंडित श्रीधर के हाथों में दे दिया है। सबसे प्रथम कार्य जो मैंने किया वह यह था कि उन्हें ढूँढ़ निकालूँ और यह भार उनके सिर रख दूँ। इस विचार से नहीं कि उनका सम्मान करना मेरा अभीष्ट था, बल्कि मेरी दृष्टि में कोई अन्य पुरुष ऐसा कर्त्तव्यपरायण, ऐसा निस्पृह, ऐसा सच्चरित्र न था। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह यावज्जीवन रियासत की बागडोर अपने हाथ में रखेंगे। विद्याधरी भी उनके साथ है। वही शांति और संतोष की मूर्ति, वही धर्म और व्रत की देवी। उसका पातिव्रत अब भी ज्ञानसरोवर की भाँति अपार और अथाह है। यद्यपि उसका सौंदर्य-सूर्य अब मध्याह्न पर नहीं है, पर अब भी वह रनिवास की रानी जान पड़ती है। चिंताओं ने उसके मुख पर शिकन डाल दिये हैं। हम दोनों कभी-कभी मिल जाती हैं। किंतु बातचीत की नौबत नहीं आती। उसकी आँखें झुक जाती हैं। मुझे देखते ही उसके ऊपर घड़ों पानी पड़ जाता है और उसके माथे के जलबिंदु दिखाई देने लगते हैं। मैं आपसे सत्य कहती हूँ

कि मुझे विद्याधरी से कोई शिकायत नहीं है। उसके प्रति मेरे मन में दिनोंदिन श्रद्धा और भक्ति बढ़ती जाती है। मैं उसे देखती हूँ, तो मुझे प्रबल उत्कंठा होती है कि उसके पैरों पर पड़ूँ। पतिव्रता स्त्री के दर्शन बड़े सौभाग्य से मिलते हैं। पर केवल इस भय से कि कदाचित् वह इसे मेरी खुशामद समझे, रुक जाती हूँ। अब मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि अपने स्वामी के चरणों में पड़ी रहूँ और जब इस संसार से प्रस्थान करने का समय आये तो मेरा मस्तक उनके चरणों पर हो। और अन्तिम जो शब्द मेरे मुँह से निकलें वह यही कि, "ईश्वर, दूसरे जन्म में भी इनकी चेरी बनाना।"

पाठक, उस सुन्दरी का जीवन-वृत्तांत सुन कर मुझे जितना कुतूहल हुआ वह अकथनीय है। खेद है कि जिस जाति में ऐसी प्रतिभाशालिनी देवियाँ उत्पन्न हों उस पर पाश्चात्य के कल्पनाहीन, विश्वासहीन पुरुष उँगलियाँ उठायें ? समस्त यूरोप में एक ऐसी सुन्दरी न होगी जिससे इसकी तुलना की जा सके। हमने स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को सांसारिक सम्बन्ध समझ रखा है। उसका आध्यात्मिक रूप हमारे विचार से कोसों दूर है। यही कारण है कि हमारे देश में शताब्दियों की उन्नति के पश्चात् भी पातिव्रत का ऐसा उज्ज्वल और अलौकिक उदाहरण नहीं मिल सकता। और दुर्भाग्य से हमारी सभ्यता ने ऐसा मार्ग ग्रहण किया है कि कदाचित् दूर भविष्य में ऐसी देवियों के जन्म लेने की सम्भावना नहीं है। जर्मनी को यदि अपनी सेना पर, फ्रांस को अपनी विलासिता पर और इंगलैंड को अपने वाणिज्य पर गर्व है तो भारतवर्ष को अपने पातिव्रत का घमंड है। क्या यूरोप निवासियों के लिए यह लज्जा की बात नहीं है कि होमर और वर्जिल, डैंटे और गेटे, शेक्सपियर और ह्यूगो जैसे उच्चकोटि के कवि एक भी सीता या सावित्री की रचना न कर सके। वास्तव में यूरोपीय समाज ऐसे आदर्शों से वंचित है !

मैंने दूसरे दिन ज्ञानसरोवर से बड़ी अनिच्छा के साथ विदा माँगी और यूरोप को चला। मेरे लौटने का समाचार पूर्व ही प्रकाशित हो चुका था। जब मेरा जहाज हैम्पबर्ग के बंदरगाह में पहुँचा तो सहस्रों नर-नारी, सैकड़ों विद्वान् और राज कर्मचारी मेरा अभिवादन करने के लिए खड़े थे। मुझे देखते ही तालियाँ बजने लगीं, रूमाल और टोप हवा में उछलने लगे और वहाँ से मेरे घर तक जिस समारोह से जुलूस निकला उस पर किसी राष्ट्रपति को भी गर्व हो सकता है। संध्या समय मुझे कैसर की मेज पर भोजन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कई दिनों तक अभिनंदन-पत्रों का ताँता लगा रहा और महीनों क्लब और यूनिवर्सिटी की फरमाइशों से दम मारने का अवकाश न मिला। यात्रावृत्तांत देश के प्रायः सभी पत्रों में छपा। अन्य देशों से भी बधाई के तार और पत्र मिले। फ्रांस और रूस आदि देशों की कितनी ही सभाओं ने मुझे व्याख्यान देने के लिए निमंत्रित किया। एक-एक वक्तृता के लिए मुझे कई-कई हजार पौंड दिये जाते थे। कई विद्यालयों ने मुझे उपाधियाँ दीं। जार ने अपना आटोग्राफ भेज कर सम्मानित किया, किन्तु इन आदर-सम्मान की आँधियों से मेरे चित्त को शांति न मिलती थी और ज्ञानसरोवर का सुरम्य तट और वह गहरी गुफा और वह मृदुभाषणी रमणी सदैव आँखों के सामने फिरती रहती। उसके मधुर शब्द कानों में गूँजा करते। मैं थियेटरों में जाता और स्पेन और जार्जिया की सुन्दरियों को देखता, किंतु हिमालय की अप्सरा मेरे ध्यान से न उतरती। कभी-कभी कल्पना में मुझे वह देवी आकाश से उतरती हुई मालूम होती, तब चित्त चंचल हो जाता और विकल उत्कंठा होती कि किसी

तरह पर लगा कर ज्ञानसरोवर के तट पहुँच जाऊँ। आखिर एक रोज मैंने सफर का सामान दुरुस्त किया और उसी मिती के ठीक एक हजार दिनों के बाद जब कि मैंने पहली बार ज्ञानसरोवर के तट पर कदम रखा था, मैं फिर वहाँ जा पहुँचा।

प्रभात का समय था। गिरिराज सुनहरा मुकुट पहने खड़े थे। मंद समीर के आनन्दमय झोंकों से ज्ञानसरोवर का निर्मल प्रकाश से प्रतिबिम्बित जल इस प्रकार लहरा रहा था, मानो अगणित अप्सराएँ आभूषणों से जगमगाती हुई नृत्य कर रही हों। लहरों के साथ शतदल यों झकोरे लेते थे जैसे कोई बालक हिंडोले में झूल रहा हो। फूलों के बीच में श्वेत हंस तैरते हुए ऐसे मालूम होते थे, मानो लालिमा से छाये हुए आकाश पर तारागण चमक रहे हों। मैंने उत्सुक नेत्रों से इस गुफा की ओर देखा तो वहाँ एक विशाल राजप्रासाद आसमान से कंधा मिलाये खड़ा था। एक ओर रमणीक उपवन था, दूसरी ओर एक गगनचुम्बी मंदिर। मुझे यह कायापलट देख कर आश्चर्य हुआ। मुख्य द्वार पर जा कर देखा, तो दो चोबदार ऊदे मखमल की वर्दियाँ पहने, जरी के पट्टे बाँधे खड़े थे। मैंने उनसे पूछा, "क्यों भाई, यह किसका महल है ?"

चोबदार—अर्जुन नगर की महारानी का।

मैं—क्या अभी हाल ही में बना है ?

चोबदार—हाँ ! तुम कौन हो ?

मैं—एक परदेसी यात्री हूँ। क्या तुम महारानी को मेरी सूचना दे दोगे ?

चोबदार—तुम्हारा क्या नाम है और कहाँ से आते हो ?

मैं—उनसे केवल इतना कह देना कि यूरोप से एक यात्री आया है और आपके दर्शन करना चाहता है।

चोबदार भीतर चला गया और एक क्षण के बाद आ कर बोला, 'मेरे साथ आओ।'

मैं उसके साथ हो लिया। पहले एक लम्बी दालान मिली जिसमें भाँति-भाँति के पक्षी पिंजरों में बैठे चहक रहे थे। इसके बाद एक विस्तृत बारहदरी में पहुँचा जो सम्पूर्णतः पाषाण की बनी हुई थी। मैंने ऐसी सुन्दर गुलकारी ताजमहल के अतिरिक्त और कहीं नहीं देखी। फर्श की पच्चीकारी को देख कर उस पर पाँव धरते संकोच होता था। दीवारों पर निपुण चित्रकारों की रचनाएँ शोभायमान थीं। बारहदरी के दूसरे सिरे पर एक चबूतरा था जिस पर मोटी कालीनें बिछी हुई थीं। मैं फर्श पर बैठ गया। इतने में एक लम्बे कद का रूपवान् पुरुष अंदर आता हुआ दिखायी दिया। उसके मुख पर प्रतिभा की ज्योति झलक रही थी और आँखों से गर्व टपका पड़ता था। उसकी काली और भाले की नोक के सदृश तनी हुई मूँछें, उसके भौंरे की तरह काले घुँघरवाले बाल उसकी आकृति की कठोरता को नम्र कर देते थे। विनयपूर्ण वीरता का इससे सुन्दर चित्र नहीं खींच सकता था। उसने मेरी ओर देख कर मुस्कराते हुए कहा, "आप मुझे पहचानते हैं ?" मैं अदब से खड़ा हो कर बोला, "मुझे आपसे परिचय का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ।" वह कालीन पर बैठ गया और बोला, "मैं शेरसिंह हूँ।" मैं अवाक् रह गया। शेरसिंह ने फिर कहा, "क्या आप प्रसन्न नहीं हैं कि आपने मुझे पिस्तौल का लक्ष्य नहीं बनाया ? मैं तब पशु था, अब मनुष्य हूँ।" मैंने कहा, "आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ। यदि आज्ञा हो, तो मैं आपसे एक प्रश्न करना चाहता हूँ।"

शेरसिंह ने मुस्करा कर कहा—मैं समझ गया, पूछिए।

मैं—जब आप समझ ही गये तो मैं पूछूँ क्यों ?

शेरसिंह—सम्भव है, मेरा अनुमान ठीक न हो।

मैं—मुझे भय है कि उस प्रश्न से आपको दुःख न हो।

शेरसिंह—कम से कम आपको मुझसे ऐसी शंका न करनी चाहिए।

मैं—विद्याधरी के भ्रम में कुछ सार था ?

शेरसिंह ने सिर झुका कर देर में उत्तर दिया—जी हाँ, था। जिस वक्त मैंने उसकी कलाई पकड़ी थी उस समय आवेश से मेरा एक-एक अंग काँप रहा था। मैं विद्याधरी के उस अनुग्रह को मरणपर्यंत न भूलूँगा। मगर इतना प्रायश्चित करने पर भी मुझे अपनी ग्लानि से निवृत्ति न हुई। संसार की कोई वस्तु स्थिर नहीं, किंतु पाप की कालिमा अमर और अमिट है। यश और कीर्ति कालांतर में मिट जाती है किंतु पाप का धब्बा नहीं मिटता। मेरा विचार है कि ईश्वर भी दाग को नहीं मिटा सकता। कोई तपस्या, कोई दंड, कोई प्रायश्चित इस कालिमा को नहीं धो सकता। पतितोद्धार की कथाएँ और तौबा या कन्फेशन करके पाप से मुक्त हो जाने की बातें, यह सब संसार-लिप्सी पाखंडी धर्मावलम्बियों की कल्पनाएं हैं।

हम दोनों यही बातें कर रहे थे कि रानी प्रियंवदा सामने आ कर खड़ी हो गयीं। मुझे आज अनुभव हुआ, जो बहुत दिनों से पुस्तकों में पढ़ा करता था कि सौंदर्य में प्रकाश होता है। आज इसकी सत्यता मैंने अपनी आँखों से देखी। मैंने जब उन्हें पहले देखा था तो निश्चय किया था कि यह ईश्वरीय कलानैपुण्य की पराकाष्ठा है; परंतु अब जब मैंने उन्हें दोबारा देखा तो ज्ञात हुआ कि वह इस असल की नकल थी। प्रियंवदा ने मुस्करा कर कहा—'मुसाफिर, तुझे स्वदेश में भी कभी हम लोगों की याद आयी थी?' अगर मैं चित्रकार होता तो उसके मधु हास्य को चित्रित करके प्राचीन गुणियों को चकित कर देता। उसके मुँह से यह प्रश्न सुनने के लिए तैयार न था। यदि इसी भाँति मैं उसका उत्तर देता तो शायद वह मेरी धृष्टता होती और शेरसिंह के तेवर बदल जाते। मैं यह भी न कह सका कि मेरे जीवन का सबसे सुखद भाग वही था जो ज्ञानसरोवर के तट पर व्यतीत हुआ था; किंतु मुझे इतना साहस भी न हुआ। मैंने दबी जबान से कहा, ''क्या मैं मनुष्य नहीं हूँ।

7

तीन दिन बीत गये। इन तीन दिनों में खूब मालूम हो गया कि पूर्व को आतिथ्यसेवी क्यों कहते हैं। यूरोप का कोई दूसरा मनुष्य जो यहाँ की सभ्यता से परिचित न हो, इन सत्कारों से ऊब जाता। किंतु मुझे इन देशों के रहन-सहन का बहुत अनुभव हो चुका है और मैं इसका आदर करता हूँ।

चौथे दिन मेरी विनय पर रानी प्रियंवदा ने अपनी शेष कथा सुनानी शुरू की—

ऐ मुसाफिर, मैंने तुझसे कहा था कि अपनी रियासत का शासन-भार मैंने श्रीधर पर रख दिया था और जितनी योग्यता और दूरदर्शिता से उन्होंने इस काम को संभाला है, उसकी प्रशंसा नहीं हो सकती। ऐसा बहुत कम हुआ है कि एक विद्वान् पंडित जिसका सारा जीवन पठन-पाठन में व्यतीत हुआ हो, एक रियासत का बोझ संभाले; किंतु राजा

वीरबल की भाँति पं. श्रीधर भी सब कुछ कर सकते हैं। मैंने परीक्षार्थ उन्हें यह काम सौंपा था। अनुभव ने सिद्ध कर दिया कि वह इस कार्य के सर्वथा योग्य हैं। ऐसा जान पड़ता है कि कुल-परम्परा ने उन्हें इस काम के लिए अभ्यस्त कर दिया। जिस समय उन्होंने इसका काम अपने हाथ में लिया, यह रियासत एक ऊजड़ ग्राम के सदृश थी। अब वह धनधान्यपूर्ण एक नगर है। शासन का कोई ऐसा विभाग नहीं, जिस पर उनकी सूक्ष्म दृष्टि न पहुँची हो।

थोड़े ही दिनों में लोग उनके शील-स्वभाव पर मुग्ध हो गये और राजा रणधीरसिंह भी उन पर कृपा-दृष्टि रखने लगे। पंडित जी पहले शहर से बाहर एक ठाकुरद्वारे में रहते थे। किंतु जब राजा साहब से मेल-जोल बढ़ा तो उनके आग्रह से विवश हो कर राजमहल में चले आये। यहाँ तक परस्पर में मैत्री और घनिष्ठता बढ़ी कि मान-प्रतिष्ठा का विचार जाता रहा। राजा साहब पंडित जी से संस्कृत भी पढ़ते थे और उनके समय का अधिकांश भाग पंडित जी के मकान पर ही कटता था; किन्तु शोक ! यह विद्याप्रेम या शुद्ध मित्रभाव का आकर्षण न था। यह सौंदर्य का आकर्षण था। यदि उस समय मुझे लेशमात्र भी संदेह होता कि रणधीरसिंह की यह घनिष्ठता कुछ और ही पहलू लिये हुए है तो उसका अंत इतना खेदजनक न होता जितना कि हुआ। उनकी दृष्टि विद्याधरी पर उस समय पड़ी जब वह ठाकुरद्वारे में रहती थी और यह सारी कुयोजनाएँ उसी की करामात थीं। राजा साहब स्वभावतः बड़े ही सच्चरित्र और संयमी पुरुष हैं; किंतु जिस रूप ने मेरे पति जैसे देवपुरुष का ईमान डिगा दिया, वह सब कुछ कर सकता है।

भोली-भाली विद्याधरी मनोविकारों की इस कुटिल नीति से बेखबर थी। जिस प्रकार छलाँगें मारता हुआ हिरन व्याध की फैलायी हुई हरी-हरी घास से प्रसन्न हो कर उस ओर बढ़ता है और यह नहीं समझता कि प्रत्येक पग मुझे सर्वनाश की ओर लिये जाता है, उसी भाँति विद्याधरी को उसका चंचल मन अंधकार की ओर खींचे लिए जाता था। वह राजा साहब के लिए अपने हाथों से बीड़े लगा कर भेजती, पूजा के लिए चंदन रगड़ती। रानी जी से भी उसका बहनापा हो गया। वह एक क्षण के लिए भी उसे अपने पास से न जाने देतीं। दोनों साथ-साथ बाग की सैर करतीं, साथ-साथ झूला झूलतीं, साथ-साथ चौपड़ खेलतीं। यह उनका शृंगार करती और वह उनकी माँग-चोटी सँवारती, मानो विद्याधरी ने रानी के हृदय में वह स्थान प्राप्त कर लिया, जो किसी समय मुझे प्राप्त था। लेकिन वह गरीब क्या जानता थी कि जब मैं बाग की रविशों में विचरती हूँ, तो कुवासना मेरे तलवे के नीचे आँखें बिछाती है, जब मैं झूला झूलती हूँ, तो वह आड़ में बैठी हुई आनंद से झूमती है। इस एक सरल हृदय अबला स्त्री के लिए चारों ओर से चक्रव्यूह रचा जा रहा था।

इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत हो गया, राजा साहब का रब्त-जब्त दिनोंदिन बढ़ता जाता था। पंडित जी को उनसे वह स्नेह हो गया जो गुरु जी को अपने एक होनहार शिष्य से होता है। मैंने जब देखा कि आठों पहर का यह सहवास पंडित जी के काम में विघ्न डालता है, तो एक दिन मैंने उनसे कहा—यदि आपको कोई आपत्ति न हो, तो दूरस्थ देहातों का दौरा आरम्भ कर दें और इस बात का अनुसंधान करें कि देहातों में कृषकों के लिए बैंक खोलने में हमें प्रजा से कितनी सहानुभूति और कितनी सहायता की आशा करनी चाहिए। पंडित जी के मन की बात नहीं जानती; पर प्रत्यक्ष में उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की। दूसरे

ही दिन प्रातःकाल चले गये। किंतु आश्चर्य है कि विद्याधरी उनके साथ न गयी। अब तक पंडित जी जहाँ कहीं जाते थे; विद्याधरी परछाईं की भाँति उनके साथ रहती थी। असुविधा या कष्ट का विचार भी उसके मन में न आता था। पंडित जी कितना ही समझायें, कितना ही डरायें, पर वह उनका साथ न छोड़ती थी; पर अबकी बार कष्ट के विचार ने उसे कर्तव्य के मार्ग से विमुख कर दिया। पहले उसका पातिव्रत एक वृक्ष था, जो उसके प्रेम की क्यारी में अकेला खड़ा था; किन्तु अब उसी क्यारी में मैत्री का घास-पात निकल आया था, जिनका पोषण भी उसी भोजन पर अवलम्बित था।

8

ऐ मुसाफिर, छह महीने गुजर गये और पंडित श्रीधर वापस न आये। पहाड़ों की चोटियों पर छाया हुआ हिम धुल-धुल कर नदियों में बहने लगा, उनकी गोद में फिर रंग-बिरंग के फूल लहलहाने लगे। चंद्रमा की किरणें फिर फूलों की महक सूँघने लगीं। सभी पर्वतों के पक्षी अपनी वार्षिक यात्रा समाप्त कर फिर स्वदेश आ पहुँचे; किंतु पंडित जी रियासत के कामों में ऐसे उलझे कि मेरे निरंतर आग्रह करने पर भी अर्जुन नगर न आये। विद्याधरी की ओर से वह इतने उदासीन क्यों हुए, समझ में नहीं आता था। उन्हें तो उसका वियोग एक क्षण के लिए भी असह्य था। किंतु इससे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि विद्याधरी ने भी आग्रहपूर्ण पत्रों के लिखने के अतिरिक्त उनके पास जाने का कष्ट न उठाया। वह अपने पत्रों में लिखती—'स्वामी जी, मैं बहुत व्याकुल हूँ, यहाँ मेरा जी जरा भी नहीं लगता। एक दिन एक-एक वर्ष के समान व्यतीत होता है। न दिन को चैन, न रात को नींद। क्या आप मुझे भूल गये ? मुझसे कौन-सा अपराध हुआ ? क्या आपको मुझ पर दया भी नहीं आती? मैं आपके वियोग में रो-रो कर मरी जाती हूँ। नित्य स्वप्न देखती हूँ कि आप आ रहे हैं; पर यह स्वप्न सच्चा नहीं होता।' उसके पत्र ऐसे ही प्रेममय शब्दों से भरे होते थे और इसमें भी कोई संदेह नहीं कि जो कुछ वह लिखती थी, वह भी अक्षरशः सत्य था; मगर इतनी व्याकुलता, इतनी चिंता और इतनी उद्विग्नता पर भी उसके मन में कभी यह प्रश्न न उठा कि क्यों न मैं ही उनके पास चली चलूँ।

बहुत ही सुहावनी ऋतु थी। ज्ञानसरोवर में यौवन-काल की अभिलाषाओं की भाँति कमल के फूल खिले हुए थे। राजा रणधीरसिंह की पचीसवीं जयंती का शुभ-मुहूर्त आया। सारे नगर में आनंदोत्सव की तैयारियाँ होने लगीं। गृहणियाँ कोरे-कोरे दीपक पानी में भिगोने लगीं कि वह अधिक तेल न सोख जायँ। चैत्र की पूर्णिमा थी, किन्तु दीपक की जगमगाहट ने ज्योत्सना को मात कर दिया था। मैंने राजा साहब के लिए इस्फहान से एक रत्न-जटित तलवार मँगा रखी थी। दरबार के अन्य जागीरदारों और अधिकारियों ने भी भाँति-भाँति के उपहार मँगा रखे थे। मैंने विद्याधरी के घर जा कर देखा, तो वह एक पुष्पहार गूँथ रही थी। मैं आध घंटे तक उसके सम्मुख खड़ी रही; किंतु वह अपने काम में इतनी व्यस्त थी कि उसे मेरी आहट भी न मिली। तब मैंने धीरे से पुकारा, "बहन ?" विद्याधरी ने चौंक कर सिर उठाया और बड़ी शीघ्रता से वह हार फूल की डाली में छिपा दिया और लज्जित हो कर बोली—क्या तुम देर से खड़ी हो ? मैंने उत्तर दिया—आध घंटे से अधिक हुआ।

विद्याधरी के चेहरे का रंग उड़ गया, आँखें झुक गयीं, कुछ हिचकिचायी, कुछ घबरायी, अपने अपराधी हृदय को इन शब्दों से शांत किया—'यह हार मैंने ठाकुर जी के लिए गूँथा है।' उस समय विद्याधरी की घबराहट का भेद मैं कुछ न समझी। ठाकुर जी के लिए हार गूँथना क्या कोई लज्जा की बात है ? फिर जब वह हार मेरी नजरों से छिपा दिया गया तो उसका जिक्र ही क्या ? हम दोनों ने कितनी ही बार साथ बैठ कर हार गूँथे थे। कोई निपुण मालिन भी हमसे अच्छे हार न गूँथ सकती थी; मगर इसमें शर्म क्या ? दूसरे दिन यह रहस्य मेरी समझ में आ गया। वह हार राजा रणधीरसिंह को उपहार में देने के लिए बनाया गया था।

यह बहुत सुंदर वस्तु थी। विद्याधरी ने अपना सारा चातुर्य उसके बनाने में खर्च किया था। कदाचित् यह सबसे उत्तम वस्तु थी जो राजा साहब को भेंट कर सकती थी। वह ब्राह्मणी थी। राजा साहब की गुरुमाता थी। उसके हाथों से यह उपहार बहुत ही शोभा देता था; किंतु यह बात उसने मुझसे छिपायी क्यों ?

मुझे उस दिन रात भर नींद न आयी। उसके इस रहस्य-भाव ने उसे मेरी नजरों से गिरा दिया। एक बार आँख झपकी तो मैंने उसे स्वप्न में देखा, मानो वह एक सुंदर पुष्प है; किन्तु उसकी बास मिट गयी हो। वह मुझसे गले मिलने के लिए बढ़ी; किंतु मैं हट गयी और बोली कि तूने मुझसे यह बात छिपायी क्यों ?

9

ऐ मुसाफिर, राजा रणधीरसिंह की उदारता ने प्रजा को मालामाल कर दिया। रईसों और अमीरों ने खिलअतें पायीं। किसी को घोड़ा मिला, किसी को जागीर मिली। मुझे उन्होंने श्री भगवद्गीता की एक प्रति एक मखमली बस्ते में रख कर दी। विद्याधरी को एक बहुमूल्य जड़ाऊ कंगन मिला। उस कंगन में.अनमोल हीरे जड़े हुए थे। देहली के निपुण स्वर्णकारों ने इसके बनाने में अपनी कला का चमत्कार दिखाया था। विद्याधरी को अब तक आभूषणों से इतना प्रेम न था, अब तक सादगी ही उसका आभूषण और पवित्रता ही उसका शृंगार थी, पर इस कंगन पर वह लोट-पोट हो गयी।

आषाढ़ का महीना आया। घटाएँ गगनमंडल में मँडराने लगीं। पंडित श्रीधर को घर की सुध आयी। पत्र लिखा कि मैं आ रहा हूँ। विद्याधरी ने मकान खूब साफ कराया और स्वयं अपना बनाव-शृंगार किया। उसके वस्त्रों से चंदन की महक उड़ रही थी। उसने कंगन को संदूकचे से निकाला और सोचने लगी कि इसे पहनूँ या न पहनूँ ? उसके मन ने निश्चय किया कि न पहनूँगी। संदूक बंद करके रख दिया।

सहसा लौंडी ने आ कर सूचना दी कि पंडित जी आ गये। यह सुनते ही विद्याधरी लपक कर उठी; किंतु पति के दर्शनों की उत्सुकता उसे द्वार की ओर नहीं ले गयी। उसने बड़ी फुर्ती से संदूकचा खोला, कंगन निकाल कर पहना और अपनी सूरत आईने में देखने लगी।

इधर पंडित जी प्रेम की उत्कंठा से कदम बढ़ाते दालान से आँगन और आँगन से विद्याधरी के कमरे में आ पहुँचे। विद्याधरी ने आ कर उनके चरणों को अपने सिर से स्पर्श किया। पंडित जी उसका यह शृंगार देख कर दंग रह गये। एकाएक उनकी दृष्टि उस

कंगन पर पड़ी। राजा रणधीरसिंह की संगत ने उन्हें रत्नों का पारखी बना दिया था। ध्यान से देखा तो एक-एक नगीना एक-एक हजार का था। चकित हो कर बोले, ''यह कंगन कहाँ मिला ?'

विद्याधरी ने जवाब पहले ही सोच रखा था। रानी प्रियंवदा ने दिया है। यह जीवन में पहला अवसर था कि विद्याधरी ने अपने पतिदेव से कपट किया। जब हृदय शुद्ध न हो तो मुख से सत्य क्योंकर निकले ! यह कंगन नहीं, वरन् एक विषैला नाग था।

10

एक सप्ताह गुजर गया। विद्याधरी के चित्त की शांति और प्रसन्नता लुप्त हो गयी थी। यह शब्द कि रानी प्रियंवदा ने दिया है, प्रतिक्षण उसके कानों में गूँजा करते। वह अपने को धिक्कारती कि मैंने अपने प्राणाधार से क्यों कपट किया। बहुधा रोया करती। एक दिन उसने सोचा कि क्यों न चल कर पति से सारा वृत्तांत सुना दूँ। क्या वह मुझे क्षमा न करेंगे? यह सोच कर उठी; किंतु पति के सम्मुख जाते ही उसकी जबान बंद हो गयी। वह अपने कमरे में आयी और फूट-फूट कर रोने लगी। कंगन पहन कर उसे बहुत आनंद हुआ था। इसी कंगन ने उसे हँसाया था, अब वही रुला रहा है।

विद्याधरी ने रानी के साथ बागों में सैर करना छोड़ दिया, चौपड़ और शतरंज उसके नाम को रोया करते। वह सारे दिन अपने कमरे में पड़ी रोया करती और सोचती कि क्या करूँ। काले वस्त्र पर काला दाग छिप जाता है, किंतु उज्ज्वल वस्त्र पर कालिमा की एक बूँद भी झलकने लगती है। वह सोचती, इसी कंगन ने मेरा सुख हर लिया है, यही कंगन मुझे रक्त के आँसू रुला रहा है। सर्प जितना सुंदर होता है उतना ही विषाक्त भी होता है। यह सुंदर कंगन विषधर नाग है, मैं उसका सिर कुचल डालूँगी। यह निश्चय करके उसने एक दिन अपने कमरे में कोयले का अलाव जलाया, चारों तरफ के किवाड़ बंद कर दिये और उस कंगन को, जिसने उसके जीवन को संकटमय बना रखा था, संदूकचे से निकाल कर आग में डाल दिया। एक दिन वह था कि कंगन उसे प्राणों से भी प्यारा था, उसे मखमली संदूकचे में रखती थी, आज उसे इतनी निर्दयता से आग में जला रही है।

विद्याधरी अलाव के सामने बैठी हुई थी इतने में पंडित श्रीधर ने द्वार खटखटाया। विद्याधरी को काटो तो लोहू नहीं। उसने उठ कर द्वार खोल दिया और सिर झुका कर खड़ी हो गयी। पंडित जी ने बड़े आश्चर्य से कमरे में निगाह दौड़ायी, पर रहस्य कुछ समझ में न आया। बोले कि किवाड़ बन्द करके क्या हो रहा है ? विद्याधरी ने उत्तर न दिया। तब पंडित जी ने छड़ी उठा ली और अलाव कुरेदा तो कंगन निकल आया। उसका संपूर्णतः रूपांतर हो गया था। न वह चमक थी, न वह रंग, न वह आकार। घबरा कर बोले, 'विद्याधरी, तुम्हारी बुद्धि कहाँ है ?'

विद्याधरी—भ्रष्ट हो गयी है।

पंडित—इस कंगन ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ?

विद्याधरी—इसने मेरे हृदय में आग लगा रखी है।

पंडित—ऐसी अमूल्य वस्तु मिट्टी में मिल गयी।

विद्याधरी—इसने उससे भी अमूल्य वस्तु का अपहरण किया है।

पंडित—तुम्हारा सिर तो नहीं फिर गया है।

विद्याधरी—शायद आपका अनुमान सत्य है।

पंडित जी ने विद्याधरी की ओर चुभनेवाली निगाहों से देखा। विद्याधरी की आँखें नीचे को झुक गयीं। वह उनसे आँखें न मिला सकी। भय हुआ कि कहीं यह तीव्र दृष्टि मेरे हृदय में न चुभ जाय। पंडित जी कठोर स्वर में बोले—विद्याधरी, तुम्हें स्पष्ट कहना होगा। विद्याधरी से अब न रुका गया, वह रोने लगी और पंडित जी के सम्मुख धरती पर गिर पड़ी।

11

विद्याधरी को जब सुध आयी तो पंडित जी का वहाँ पता न था। घबरायी हुई बाहर के दीवानखाने में आयी, मगर यहाँ भी उन्हें न पाया। नौकरों से पूछा तो मालूम हुआ कि घोड़े पर सवार हो कर ज्ञानसरोवर की ओर गये हैं। यह सुन कर विद्याधरी को कुछ ढाढ़स हुआ। वह द्वार पर खड़ी हो कर उनकी राह देखती रही। दोपहर हुआ, सूर्य सिर पर आया, संध्या हुई, चिड़ियाँ बसेरा लेने लगीं फिर रात आयी, गगन में तारागण जगमगाने लगे; किंतु विद्याधरी दीवार की भाँति खड़ी पति का इंतजार करती रही। रात भीग गयी, वनजंतुओं के भयानक शब्द कानों में आने लगे, सन्नाटा छा गया। सहसा उसे घोड़े के टापों की ध्वनि सुनायी दी। उसका हृदय फड़कने लगा। आनंदोन्मत्त हो कर द्वार के बाहर निकल आयी; किंतु घोड़े पर सवार न था। विद्याधरी को अब विश्वास हो गया कि अब पतिदेव के दर्शन न होंगे। या तो उन्होंने संन्यास ले लिया या आत्मघात कर लिया। उसके कंठ से वैराग्य और विषाद में डूबी हुई ठंडी साँस निकली। वहीं भूमि पर बैठ गयी और सारी रात खून के आँसू बहाती रही। जब उषा की निद्रा भंग हुई और पक्षी आनंदगान करने लगे तब वह दुखिया उठी और अंदर जाकर लेट रही।

जिस प्रकार सूर्य का ताव जल को सोख लेता है, उसी भाँति शोक के ताव ने विद्याधरी का रक्त जला दिया। मुख से ठंडी साँस निकलती थी, आँखों से गर्म आँसू बहते थे। भोजन से अरुचि हो गयी और जीवन से घृणा। इसी अवस्था में एक दिन राजा रणधीरसिंह समवेदना-भाव से उसके पास आये। उन्हें देखते ही विद्याधरी की आँखें रक्तवर्ण हो गयीं, क्रोध से ओंठ काँपने लगे, झल्लायी हुई नागिन की भाँति फुफकार कर उठी और राजा के सम्मुख आ कर कर्कश स्वर में बोली, 'पापी, यह आग तेरी ही लगायी हुई है। यदि मुझमें अब भी कुछ सत्य है, तो तुझे इस दुष्टता के कडुवे फल मिलेंगे।' ये तीर के-से शब्द राजा के हृदय में चुभ गये। मुँह से एक शब्द भी न निकला। काल से न डरनेवाला राजपूत एक स्त्री की आग्नेय दृष्टि से काँप उठा।

12

एक वर्ष बीत गया, हिमालय पर मनोहर हरियाली छायी, फूलों ने पर्वत की गोद में क्रीड़ा करनी शुरू की। यह ऋतु बीती, जल-थल ने बर्फ की सुफेदी चादर ओढ़ी, जलपक्षियों की मालाएँ मैदानों की ओर उड़ती हुई दिखाई देने लगीं। यह मौसम भी गुजरा। नदी-नालों में

दूध की धारें बहने लगीं; चंद्रमा की स्वच्छ निर्मल ज्योति ज्ञानसरोवर में थिरकने लगी; परंतु पंडित श्रीधर की कुछ टोह न लगी। विद्याधरी ने राजभवन त्याग दिया और एक पुराने निर्जन मंदिर में तपस्विनियों की भाँति कालक्षेप करने लगी। उस दुखिया की दशा कितनी करुणाजनक थी। उसे देख कर मेरी आँखें भर आती थीं। वह मेरी प्यारी सखी थी। उसकी संगत में मेरे जीवन के कई वर्ष आनन्द से व्यतीत हुए थे। उसका यह अपार दुःख देख कर मैं अपना दुःख भूल गयी। एक दिन वह था कि उसने अपने पातिव्रत के बल पर मनुष्य को पशु के रूप में परिणत कर दिया था, और आज यह दिन है कि उसका पति भी उसे त्याग रहा है। किसी स्त्री के हृदय पर इससे अधिक लज्जाजनक, इससे अधिक प्राणघातक आघात नहीं लग सकता। उसकी तपस्या ने मेरे हृदय में उसे फिर उसी सम्मान के पद पर बिठा दिया। उसके सतीत्व पर फिर मेरी श्रद्धा हो गयी; किन्तु उससे कुछ पूछते, सांत्वना देते मुझे संकोच होता था। मैं डरती थी कि कहीं विद्याधरी यह न समझे कि मैं उससे बदला ले रही हूँ। कई महीनों के बाद जब विद्याधरी ने अपने हृदय का बोझा हलका करने के लिए स्वयं मुझसे यह वृत्तांत कहा तो मुझे ज्ञात हुआ कि यह सब काँटे राजा रणधीरसिंह के बोये हुए थे। उन्हीं की प्रेरणा से रानी जी ने पंडित जी के साथ जाने से रोका। उसके स्वभाव ने जो कुछ रंग बदला वह रानी जी ही की कुसंगति का फल था। उन्हीं की देखा-देखी उसे बनाव-शृंगार की चाट पड़ी, उन्हीं के मना करने से उसने कंगन का भेद पंडित जी से छिपाया। ऐसी घटनाएँ स्त्रियों के जीवन में नित्य होती रहती हैं और उन्हें जरा भी शंका नहीं होती। विद्याधरी का पातिव्रत आदर्श था। इसलिए यह विचलता उसके हृदय में चुभने लगी। मैं यह नहीं कहती कि विद्याधरी कर्त्तव्यपथ से विचलित नहीं हुई, चाहे किसी के बहकाने से, चाहे अपने भोलेपन से, उसने कर्त्तव्य का सीधा रास्ता छोड़ दिया, परन्तु पाप-कल्पना उसके दिल से कोसों दूर थी।

13

ऐ मुसाफिर, मैंने पंडित श्रीधर का पता लगाना शुरू किया। मैं उनकी मनोवृत्ति से परिचित थी। वह श्रीरामचंद्र के भक्त थे। कौशलपुरी की पवित्र भूमि और सरयू नदी के रमणीक तट उनके जीवन के सुखस्वप्न थे। मुझे खयाल आया कि सम्भव है, उन्होंने अयोध्या की राह ली हो। कहीं मेरे प्रयत्न से उनकी खोज मिल जाती और मैं उन्हें ला कर विद्याधरी के गले से मिला देती, तो मेरा जीवन सफल हो जाता। इस विरहिणी ने बहुत दुःख झेले हैं। क्या अब भी देवताओं को उस पर दया न आयेगी ? एक दिन मैंने शेरसिंह से कहा और पाँच विश्वस्त मनुष्य के साथ अयोध्या को चली। पहाड़ों से नीचे उतरते ही रेल मिल गयी। उसने हमारी यात्रा सुलभ कर दी। बीसवें दिन मैं अयोध्या पहुँच गयी और धर्मशाले में ठहरी। फिर सरयू में स्नान करके श्रीरामचंद्र के दर्शन को चली। मन्दिर के आँगन में पहुँची ही थी कि पंडित श्रीधर की सौम्य मूर्ति दिखायी दी। वह एक कुशासन पर बैठे हुए रामायण का पाठ कर रहे थे और सहस्र नर-नारी बैठे हुए उनकी अमृतवाणी का आनन्द उठा रहे थे।

पंडित जी की दृष्टि मुझ पर ज्यों ही पड़ी, वह आसन से उठकर मेरे पास आये और बड़े प्रेम से मेरा स्वागत किया। दो-ढाई घंटे तक उन्होंने मुझे उस मंदिर की सैर करायी।

मंदिर के छत पर से सारा नगर शतरंज के बिसात की भाँति मेरे पैरों के नीचे फैला हुआ दिखायी देता था। मंदगामिनी वायु सरयू की तरंगों को धीरे-धीरे थपकियाँ दे रही थीं। ऐसा जान पड़ता था मानो स्नेहमयी माता ने इस नगर को अपनी गोद में लिया हो। यहाँ से जब अपने डेरे को चली तब पंडित जी भी मेरे साथ आये। जब वह इतमीनान से बैठे तो मैंने कहा—आपने तो हम लोगों से नाता ही तोड़ लिया।

पंडित जी ने दुखित होकर कहा—विधाता की यही इच्छा थी। मेरा क्या वश था। अब तो श्रीरामचंद्र की शरण आ गया हूँ और शेष जीवन उन्हीं की सेवा में भेंट होगा।

मैं—आप तो श्रीरामचंद्र की शरण में आ गये हैं, उस अबला विद्याधरी को किसकी शरण में छोड़ दिया है ?

पंडित—आपके मुख से ये शब्द शोभा नहीं देते।

मैंने उत्तर दिया—विद्याधरी को मेरी सिफारिश की आवश्यकता नहीं है। अगर आपने उसके पातिव्रत पर संदेह किया है तो आपसे ऐसा भीषण पाप हुआ है, जिसका प्रायश्चित आप बार-बार जन्म ले कर भी नहीं कर सकते। आपकी यह भक्ति इस अधर्म का निवारण नहीं कर सकती। आप क्या जानते हैं कि आपके वियोग में उस दुखिया का जीवन कैसे कट रहा है।

किन्तु पंडित जी ने ऐसा मुँह बना लिया, मानो इस विषय में वह अंतिम शब्द कह चुके। किंतु मैं इतनी आसानी से उनका पीछा क्यों छोड़ने लगी। मैंने सारी कथा आद्योपांत सुनायी। और रणधीरसिंह की कपटनीति का रहस्य खोल दिया तब पंडित जी की आँखें खुलीं। मैं वाणी में कुशल हूँ, किंतु उस समय सत्य और न्याय के पक्ष ने मेरे शब्दों को बहुत ही प्रभावशाली बना दिया था। ऐसा जान पड़ता था, मानो मेरी जिह्वा पर सरस्वती विराजमान हों। अब वह बातें याद आती हैं तो मुझे स्वयं आश्चर्य होता है। आखिर विजय मेरे ही साथ रही। पंडित जी मेरे साथ चलने पर उद्यत हो गये।

14

यहाँ आकर मैंने शेरसिंह को यहीं छोड़ा और पंडित जी के साथ अर्जुननगर को चली। हम दोनों अपने विचारों में मग्न थे। पंडित जी की गर्दन शर्म से झुकी हुई थी क्योंकि अब उनकी हैसियत रूठनेवालों की भाँति नहीं, बल्कि मनानेवालों की तरह थी।

आज प्रणय के सूखे हुए धान में फिर पानी पड़ेगा; प्रेम की सूखी हुई नदी फिर उमड़ेगी !

जब हम विद्याधरी के द्वार पर पहुँचे तो दिन चढ़ आया था। पंडित जी बाहर ही रुक गये थे। मैंने भीतर जाकर देखा तो विद्याधरी पूजा पर थी। किंतु यह किसी देवता की पूजा न थी। देवता के स्थान पर पंडित जी की खड़ाऊँ रखी हुई थीं। पातिव्रत का यह अलौकिक दृश्य देख कर मेरा हृदय पुलकित हो गया। मैंने दौड़ कर विद्याधरी के चरणों पर सिर झुका दिया। उसका शरीर सूख कर काँटा हो गया था और शोक ने कमर झुका दी थी।

विद्याधरी ने मुझे उठा कर छाती से लगा लिया और बोली—बहन, मुझे लज्जित न करो। खूब आयीं, बहुत दिनों से जी तुम्हें देखने को तरस रहा था।

मैंने उत्तर दिया—जरा अयोध्या चली गयी थी। जब हम दोनों अपने देश में थीं तो

तब मैं कहीं जाती तो विद्याधरी के लिए कोई न कोई उपहार अवश्य लाती। उसे वह बात याद आ गयी। सजल-नयन हो कर बोली—मेरे लिए भी कुछ लायीं ?

मैं—एक बहुत अच्छी वस्तु लायी हूँ।

विद्याधरी—क्या है, देखूँ ?

मैं—पहले बूझ जाओ।

विद्याधरी—सुहाग की पिटारी होगी ?

मैं—नहीं, उससे अच्छी।

विद्याधरी—ठाकुर जी की मूर्ति ?

मैं—नहीं, उससे भी अच्छी।

विद्याधरी—मेरे प्राणाधार का कोई समाचार ?

मैं—उससे भी अच्छी।

विद्याधरी प्रबल आवेश से व्याकुल हो कर उठी कि द्वार पर जाकर पति का स्वागत करे, किंतु निर्बलता ने मन की अभिलाषा न निकलने दी। तीन बार सँभली और तीन बार गिरी, तब मैंने उसका सिर अपनी गोद में रख लिया और आँचल से हवा करने लगी। उसका हृदय बड़े वेग से धड़क रहा था और पतिदर्शन का आनन्द आँखों से आँसू बन कर निकलता था।

जब जरा चित सावधान हुआ तो उसने कहा—उन्हें बुला लो, उनका दर्शन मुझे रामबाण हो जायगा।

ऐसा ही हुआ। ज्यों ही पंडित जी अंदर आये, विद्याधरी उठ कर उनके पैरों से लिपट गयी। देवी ने बहुत दिनों के बाद पति के दर्शन पाये हैं। अश्रुधारा से उनके पैर पखार रही है।

मैंने वहाँ ठहरना उचित न समझा। इन दोनों प्राणियों के हृदय में कितनी ही बातें आ रही होंगी, दोनों क्या-क्या सुनना चाहते होंगे, इस विचार से, मैं उठ खड़ी हुई और बोली—बहन, अब मैं जाती हूँ, शाम को फिर आऊँगी। विद्याधरी ने मेरी ओर आँखें उठायीं। पुतलियों के स्थान पर हृदय रखा हुआ था। दोनों आँखें आकाश की ओर उठा कर बोली—ईश्वर तुम्हें इस यश का फल दें।

15

ऐ मुसाफिर, मैंने दो बार पंडित श्रीधर को मौत के मुँह से बचाया था, किन्तु आज का-सा आनंद कभी न प्राप्त हुआ था।

जब मैं ज्ञानसरोवर पर पहुँची तो दोपहर हो आया था। विद्याधरी की शुभकामना मुझसे पहले ही पहुँच चुकी थी। मैंने देखा कि कोई पुरुष गुफा से निकल कर ज्ञानसरोवर की ओर चला जाता है। मुझे आश्चर्य हुआ कि इस समय यहाँ कौन आया। लेकिन जब समीप आ गया तो मेरे हृदय में ऐसी तरंगें उठने लगीं मानो छाती से बाहर निकल पड़ेगा। यह मेरे प्राणेश्वर, मेरे पतिदेव थे। मैं चरणों पर गिरना ही चाहती थी कि उनका कर-पाश मेरे गले में पड़ गया।

पूरे दस वर्षों के बाद आज मुझे यह शुभ दिन देखना नसीब हुआ। मुझे उस समय

ऐसा जान पड़ता था कि ज्ञानसरोवर के कमल मेरे ही लिए खिले हैं, गिरिराज ने मेरे ही लिए फूल की शय्या दी है, हवा मेरे ही लिए झूमती हुई आ रही है।

दस वर्षों के बाद मेरा उजड़ा हुआ घर बसा; गये हुए दिन लौटे। मेरे आनंद का अनुमान कौन कर सकता है।

मेरे पति ने प्रेमकरुणा भरी आँखों से देख कर कहा, 'प्रियंवदा ?'

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में 'सैरे-दरवेश' शीर्षक से 'जमाना', अप्रैल-जून, 1910 में प्रकाशित। 'सोजे वतन' (उर्दू कहानी संग्रह) के द्वितीय संस्करण में संकलित। हिन्दी रूप 'शाप' शीर्षक से 'मानसरोवर' भाग-6 में संकलित। 'प्रेम-प्रसून', 1924 में प्रथम बार संकलित।]

शिकार

फटे वस्त्रों वाली मुनिया ने रानी वसुधा के चाँद से मुखड़े की ओर सम्मान भरी आँखों से देखकर राजकुमार को गोद में उठाते हुए कहा—हम गरीबों का इस तरह कैसे निबाह हो सकता है महारानी ! मेरी तो अपने आदमी से एक दिन न पटे। मैं उसे घर में पैठने न दूँ। ऐसी-ऐसी गालियाँ सुनाऊँ कि छठी का दूध याद आ जाय।

रानी वसुधा ने गम्भीर विनोद के भाव से कहा—क्यों, वह कहेगा नहीं, तू मेरे बीच में बोलने वाली कौन है ? मेरी जो इच्छा होगी वह करूँगा। तू अपना रोटी-कपड़ा मुझसे लिया कर। तुझे मेरी दूसरी बातों से क्या मतलब ? मैं तेरा गुलाम नहीं हूँ।

मुनिया तीन ही दिन से यहाँ लड़कों को खेलाने के लिए नौकर हुई थी। पहले दो-चार घरों में चौका-बरतन कर चुकी थी; पर रानियों से अदब के साथ बातें करना अभी न सीख पाई थी। उसका सूखा हुआ सांवला चेहरा उत्तेजित हो उठा। कर्कश स्वर में बोली—जिस दिन ऐसी बातें मुँह से निकालेगा, मूँछे उखाड़ लूँगी सरकार ! वह मेरा गुलाम नहीं है, तो क्या मैं उसकी लौंडी हूँ ? अगर वह मेरा गुलाम है, तो मैं उसकी लौंडी हूँ। मैं आप नहीं खाती, उसे खिला देती हूँ; क्योंकि वह मर्द-बच्चा है। पल्लेदारी में उसे बहुत कसाला करना पड़ता है। आप चाहे फटे पहनूँ; पर उसे फटे-पुराने नहीं पहनने देती। जब मैं उसके लिए इतना करती हूँ, तो मजाल है, कि वह मुझे आँख दिखाये। अपने घर को आदमी इसलिए तो छाता-छोपता है, कि उससे बर्खा-बूँदी में बचाव हो। अगर यह डर लगा रहे, कि घर न जाने कब गिर पड़ेगा, तो ऐसे घर में कौन रहेगा। उससे तो ऊख की छाँह ही कहीं अच्छी। कल न जाने कहाँ बैठा गाता-बजाता रहा। दस बजे रात को घर आया। मैं रात-भर उससे बोली ही नहीं। लगा पैरों पड़ने, घिघियाने, तब मुझे दया आ गयी ! यही मुझमें एक बुराई है। मुझसे उसकी रोनी सूरत नहीं देखी जाती। इसी से वह कभी-कभी बहक जाता है; पर अब मैं पक्की हो गई हूँ। फिर किसी दिन झगड़ा किया, तो या वही रहेगा, या मैं ही रहूँगी। क्यों किसी की धौंस सहूँ सरकार ? जो बैठकर खाय, वह धौंस सहे! यहाँ तो बराबर की कमाई करती हूँ।

वसुधा ने उसी गम्भीर भाव से फिर पूछा—अगर वह तुझे बैठाकर खिलाता तब

उसकी धौंस सहती।

मुनिया जैसे लड़ने पर उतारू हो गयी ! बोली—बैठाकर कोई क्या खिलायेगा सरकार ? मर्द बाहर काम करता है, तो हम भी घर में काम करती हैं कि घर के काम में कुछ लगता ही नहीं ? बाहर के काम से तो रात को छुट्टी मिल जाती है। घर के काम से तो रात को भी छुट्टी नहीं मिलती। पुरुष यह चाहे कि मुझे घर में बिठाकर आप सैर-सपाटा करे, तो मुझसे तो न सहा जाय—यह कहती हुई मुनिया राजकुमार को लिये हुए बाहर चली गयी।

वसुधा ने थकी हुई, रुआँसी आँखों से खिड़की की ओर देखा। बाहर हरा-भरा बाग था, जिसके रंग-बिरंगे फूल यहाँ से साफ नजर आ रहे थे। और पीछे एक विशाल मंदिर आकाश में अपना सुनहला मस्तक उठाये, सूर्य से आँखें मिला रहा था। स्त्रियाँ रंग-बिरंगे वस्त्राभूषण पहने पूजन करने आ रही थीं। मन्दिर की दाहिनी तरफ तालाब में कमल प्रभात के सुनहले आनन्द से मुस्करा रहे थे। और कार्तिक की शीतल रवि-छवि-जीवन-ज्योति लुटाती फिरती थी; पर प्रकृति की यह सुरम्य शोभा वसुधा को कोई हर्ष न प्रदान कर सकी। उसे जान पड़ा—प्रकृति उसकी दशा पर व्यंग्य से मुस्करा रही है। उसी सरोवर के तट पर केवट का एक टूटा-फूटा झोपड़ा किसी अभागिनी वृद्धा की भाँति रो रहा था। वसुधा की आँखें सजल हो गयीं। पुष्प और उद्यान के मध्य में खड़ा वह सूना झोपड़ा उसके विलास और ऐश्वर्य से घिरे हुए मन का सजीव मित्र था। उसके जी में आया, जाकर झोंपड़े के गले लिपट जाऊँ ! और खूब रोऊँ !

वसुधा को इस घर में आये पाँच वर्ष हो गये। पहले उसने अपने भाग्य को सराहा था। माता-पिता के छोटे-से कच्चे आनन्दहीन घर को छोड़कर, वह एक विशाल भवन में आयी थी, जहाँ सम्पत्ति उसके पैरों को चूमती हुई जान पड़ती थी। उस समय सम्पत्ति ही उसकी आँखों में सब कुछ थी। पति-प्रेम गौण-सी वस्तु थी; पर उसका लोभी मन सम्पत्ति पर सन्तुष्ट न रह सका, पति-प्रेम के लिए हाथ फैलाने लगा। कुछ दिनों में उसे मालूम हुआ, मुझे परम-रत्न भी मिल गया; पर थोड़े ही दिनों में वह भ्रम जाता रहा। कुँवर गजराजसिंह रूपवान थे, उदार थे, बलवान् थे, शिक्षित थे, विनोदप्रिय थे और प्रेम का अभिनय भी करना जानते थे; उनके जीवन में प्रेम से कंपित होने वाला तार न था। वसुधा का खिला हुआ यौवन और देवताओं को भी लुभाने वाला रूप-रंग केवल विनोद का सामान था। घुड़दौड़ और शिकार सट्टे और मकार जैसे सनसनी पैदा करने वाले मनोरंजन में प्रेम दबकर पीला और निर्जीव हो गया था। और प्रेम से वंचित होकर वसुधा की प्रेम-तृष्णा अब अपने भाग्य को रोया करती थी। दो पुत्र-रत्न पाकर भी वह सुखी न थी। कुंवर साहब एक महीने से ज्यादा हुआ, शिकार खेलने गये और अभी तक लौटकर नहीं आये। और यह ऐसा, पहला ही अवसर न था। हाँ, अब उनकी अवधि बढ़ गयी थी। पहले वह एक सप्ताह में लौट आते थे; फिर दो सप्ताह का नम्बर चला और अब कई बार से एक-एक महीने की खबर लेने लगे। साल में तीन-तीन महीने शिकार की भेंट हो जाते थे। शिकार से लौटते, तो घुड़दौड़ का राग छिड़ता। कभी मेरठ, कभी पूना, कभी बम्बई, कभी कलकत्ता। घर पर भी रहते, तो अधिकतर लम्पट रईसजादों के साथ गप्पे उड़ाया करते। पति के यह रंग-ढंग देखकर वसुधा मन-ही-मन कुढ़ती और घुलती जाती थी। कुछ दिनों से हल्का-हल्का ज्वर

भी रहने लगा था।

वसुधा बड़ी देर तक बैठी उदास आँखों से यह दृश्य देखती रही। फिर टेलीफोन पर आकर उसने रियासत के मैनेजर से पूछा—कुँवर साहब का कोई पत्र आया ?

फोन ने जवाब दिया—जी हाँ, अभी खत आया है। कुँवर साहब ने एक बहुत बड़े शेर को मारा है।

वसुधा ने जलकर कहा—मैं यह नहीं पूछती ! आने को कब लिखा है ?

'आने के बारे में तो कुछ नहीं लिखा।'

'यहाँ से उनका पड़ाव कितनी दूर है ?'

'यहाँ से ! दो सौ मील से कम न होगा। पीलीभीत के जंगलों में शिकार हो रहा है।'

'मेरे लिए दो मोटरों का इन्तजाम कर दीजिए। मैं आज वहाँ जाना चाहती हूँ।'

फोन ने कई मिनट बाद जवाब दिया—एक मोटर तो वह साथ ले गये हैं। एक हाकिम जिला के बँगले पर भेज दी गयी, तीसरी बैंक के मैनेजर की सवारी में, चौथी की मरम्मत हो रही है।

वसुधा का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। बोली—किसके हुक्म से बैंक के मैनेजर और हाकिम जिला को मोटरें भेजी गयीं ? आप दोनों मँगवा लीजिए। मैं आज जरूर जाऊँगी।

'उन दोनों साहबों के पास हमेशा मोटरें भेजी जाती रही हैं; इसलिए मैंने भेज दीं। अब आप हुक्म दे रही हैं, तो मँगवा लूँगा !'

वसुधा ने फोन से आकर सफर का सामान ठीक करना शुरू किया। उसने उसी आवेश में आकर अपने भाग्य-निर्णय करने का निश्चय कर लिया था। परित्यक्ता की भाँति पड़ी रहकर जीवन को समाप्त न करना चाहती थी। वह जाकर कुँवर साहब से कहेगी—अगर आप समझते हैं कि मैं आपकी सम्पत्ति की लौंडी बनकर रहूँ, तो यह मुझसे न होगा। आपकी सम्पत्ति आपको मुबारक हो। मेरा अधिकार आपकी सम्पत्ति पर नहीं, आपके ऊपर है। अगर आप मुझसे जौ-भर हटना चाहते हैं, तो मैं आपसे हाथ भर हट जाऊँगी ! इस तरह की और कितनी ही विराग-भरी बातें उसके मन में बगूलों की भाँति उठ रही थीं।

डाक्टर साहब ने द्वार पर आकर पुकारा—मैं अन्दर आऊँ ?

वसुधा ने नम्रता से कहा—आज क्षमा कीजिए, मैं जरा पीलीभीत जा रही हूँ।

डाक्टर ने आश्चर्य से कहा—आप पीलीभीत जा रही हैं ! आपका ज्वर चढ़ जायगा। इस दशा में मैं आपको जाने की सलाह न दूँगा।

वसुधा ने विरक्त-स्वर में कहा—बढ़ जायगा, बढ़ जाय; मुझे इसकी चिन्ता नहीं है !

वृद्ध डाक्टर परदा उठाकर आ गया और वसुधा के चेहरे की ओर ताकता हुआ बोला—लाइए मैं टेम्परेचर ले लूँ। अगर टेम्परेचर बढ़ा होगा, तो मैं आपको हरगिज न जाने दूँगा।

'टेम्परेचर लेने की जरूरत नहीं। मेरा इरादा पक्का हो गया है।'

'स्वास्थ्य पर ध्यान रखना आपका पहला कर्तव्य है।'

वसुधा ने मुस्कराकर कहा—आप निश्चिन्त रहिए, मैं इतनी जल्द मरी नहीं जा रही हूँ ! फिर अगर किसी बीमारी की दवा मौत ही हो, तो आप क्या करेंगे ?

डाक्टर ने दो-एक बार आग्रह किया; फिर विस्मय से सिर हिलाता चला गया!

2

रेलगाड़ी से जाने में आखिरी स्टेशन से दस कोस तक जंगली सुनसान रास्ता तय करना पड़ता था, इसलिए कुँवर साहब बराबर मोटर ही पर जाते थे। वसुधा ने भी उसी से जाने का निश्चय किया। दस बजते-बजते दोनों मोटरें आयीं। वसुधा ने ड्राइवरों पर गुस्सा उतारा—अब मेरे हुक्म के बगैर कहीं मोटर ले गये, तो मोटर का किराया तुम्हारी तलब से काट लूँगी। अच्छी दिल्लगी है ! घर को रोयें, बन की गायें ! हमने अपने आराम के लिए मोटरें रखी हैं, किसी की खुशामद करने के लिए नहीं। जिसे मोटर पर सवार होने का शौक हो, मोटर खरीदे। यह नहीं कि हलवाई की दुकान देखी और दादे का फातिहा पढ़ने बैठ गये !

वह चली, तो दोनों बच्चे कुनमुनाये, मगर जब मालूम हुआ, कि अम्माँ बड़ी दूर हौआ को मारने जा रही हैं तो उनका यात्रा-प्रेम ठण्डा पड़ा। वसुधा ने आज सुबह से उन्हें प्यार न किया था। उसने जलन में सोचा—मैं ही क्यों इन्हें प्यार करूँ, मैंने ही इनका ठेका लिया है ! वह तो वहाँ जाकर चैन करें और मैं यहाँ इन्हें छाती से लगाये बैठी रहूँ। लेकिन चलते समय माता का हृदय पुलक उठा। दोनों को बारी-बारी से गोद में लिया चूमा, प्यार किया और घण्टे भर में लौट आने का वचन देकर वह सजल नेत्रों के साथ घर से निकली। मार्ग में भी उसे बच्चों की याद बार-बार आती रही। रास्ते में कोई गाँव आ जाता और छोटे-छोटे बालक मोटर की दौड़ देखने के लिए घरों से निकल आते, और सड़क पर खड़े होकर तालियाँ बजाते हुए मोटर का स्वागत करते, तो वसुधा का जी चाहता, इन्हें गोद में उठाकर प्यार कर लूँ ? मोटर जितने वेग से आगे जा रही थी, उतने ही वेग से उसका मन सामने के वृक्ष-समूहों के पीछे की ओर उड़ा जा रहा था। कई बार इच्छा हुई, घर लौट चलूँ। जब उन्हें मेरी रत्ती भर परवाह नहीं है, तो मैं ही क्यों उनकी फिक्र में प्राण दूँ ? जी चाहे आवें या न आवें; लेकिन एक बार पति से मिलकर उनसे खरी-खरी बात करने के प्रलोभन को वह न रोक सकी। सारी देह थककर चूर-चूर हो रही थी, ज्वर भी हो आया था, सिर पीड़ा से फटा पड़ता था; पर वह संकल्प से सारी बाधाओं को दबाये आगे बढ़ती जाती थी। यहाँ तक कि जब वह दस बजे रात को जंगल के उस डाक-बँगले में पहुँची, तो उसे तन-बदन की सुधि न थी। जोर का ज्वर चढा हुआ था।

3

शोकर की आवाज सुनते ही कुँवर साहब निकल आये और पूछा—तुम यहाँ कैसे आये जी ? कुशल तो है ?

शोफर ने समीप आकर कहा—रानी साहब आयी हैं हुजूर ! रास्ते में बुखार हो आया। बेहोश पड़ी हुई हैं।

कुँवर साहब ने वहीं खड़े कठोर स्वर में पूछा—तो तुम उन्हें वापस क्यों न ले गये ? क्या तुम्हें मालूम नहीं था, यहाँ कोई वैद्य-हकीम नहीं है।

शोफर ने सिटपिटाकर जवाब दिया—हुजूर, वह किसी तरह मानती ही न थीं, तो मैं क्या करता ?

कुँवर साहब ने डाँटा—चुप रहो जी, बातें न बनाओ। तुमने समझा होगा, शिकार की

बहार देखेंगे और पड़े-पड़े सोयेंगे। तुमने वापस चलने को कहा ही न होगा।

शोफर—वह मुझे डाँटती थीं हुजूर !

'तुमने कहा था ?'

'मैंने कहा तो नहीं हुजूर !'

'बस तो चुप रहो ! मैं तुमको भी पहचानता हूँ। तुम्हें मोटर लेकर इसी वक्त लौटना पड़ेगा। और कौन-कौन साथ हैं ?'

शोफर ने दबी हुई आवाज में कहा—एक मोटर पर बिस्तर और कपड़े हैं एक पर खुद रानी साहब हैं।

'यानी और कोई साथ नहीं है ?'

'हुजूर ! मैं तो हुक्म का ताबेदार हूँ।'

'बस, चुप रहो !'

यों झल्लाते हुए कुँवर साहब वसुधा के पास गये और आहिस्ता से पुकारा। जब कोई जवाब न मिला तो उन्होंने धीरे से उनके माथे पर हाथ रखा। सिर गर्म तवा हो रहा था। उस ताप ने मानो उनकी सारी क्रोध-ज्वाला को खींच लिया। लपककर बँगले में आये, सोये हुए आदमियों को जगाया, पलंग बिछवाया, अचेत वसुधा को गोद में उठाकर कमरे में लाये और पलंग पर लिटा दिया। फिर उसके सिरहाने खड़े होकर उसे व्यथित नेत्रों से देखने लगे। उस धूल से भरे मुखमंडल और बिखरे हुए रज-रंजित केशों में आज उन्होंने आग्रहमय प्रेम की झलक देखी। अब तक उन्होंने वसुधा को विलासिनी के रूप में देखा था, जिसे उनके प्रेम की परवाह न थी, जो अपने बनाव-सिंगार ही में मगन थी, आज धूल के पौडर और पोमेड में वह उसके नारीत्व का दर्शन कर रहे थे। उसमें कितना आग्रह था, कितनी लालसा थी! अपनी उड़ान के आनन्द में डूबी हुई; अब वह पिंजरे के द्वार पर आकर पंख फड़फड़ा रही थी। पिंजरे का द्वार खुलकर क्या उसका स्वागत न करेगा ?

रसोइये ने पूछा—क्या सरकार अकेले आयी हैं ?

कुँवर साहब ने कोमल कण्ठ से कहा—हाँ जी, और क्या। इतने आदमी हैं, किसी को साथ न लिया। आराम से रेलगाड़ी से आ सकती थीं। यहाँ से मोटर भेज दी जाती। मन ही तो है। कितने जोर का बुखार है कि हाथ नहीं रखा जाता। जरा-सा पानी गर्म करो और देखो, कुछ खाने को बना लो।

रसोइये ने ठकुर-सोहाती की—सौ कोस की दौड़ बहुत होती है सरकार ! सारा दिन बैठे-बैठे बीत गया।

कुँवर साहब ने वसुधा के सिर के नीचे तकिया सीधा करके कहा—कचूमर तो हम लोगों का निकल जाता है। दो दिन तक कमर नहीं सीधी होती फिर इनकी क्या बात है। ऐसी बेहूदा सड़क दुनिया में न होगी।

यह कहते हुए उन्होंने एक शीशी से तेल निकाला और वसुधा के सिर में मलने लगे।

4

वसुधा का ज्वर इक्कीस दिन तक न उतरा। घर के डाक्टर आये। दोनों बालक, मुनिया, नौकर-चाकर, सभी आ गये। जंगल में मंगल हो गया।

वसुधा खाट पर पड़ी-पड़ी कुँवर साहब की शुश्रुषाओं में अलौकिक आनन्द और सन्तोष का अनुभव किया करती। वह दोपहर दिन चढ़े तक सोने के आदी थे, कितने सबेरे उठते, उसके पथ्य और आराम की जरा-जरा सी बातों का कितना ख्याल रखते। जरा देर के लिए स्नान और भोजन करने जाते, फिर आकर बैठ जाते। एक तपस्या-सी कर रहे थे। उनका स्वास्थ्य बिगड़ता जाता था, चेहरे पर स्वास्थ्य की लाली न थी। कुछ व्यस्त से रहते थे।

एक दिन वसुधा ने कहा—तुम आजकल शिकार खेलने क्यों नहीं ज़ाते ? मैं तो शिकार खेलने ही आयी थी, मगर न जाने किस बुरी साइत से चली कि तुम्हें इतनी तपस्या करनी पड़ गयी। अब मैं बिलकुल अच्छी हूँ। जरा आईने में अपनी सूरत तो देखो।

कुँवर साहब को इतने दिनों शिकार का कभी ध्यान ही न आया था। इसकी चर्चा ही न होती थी। शिकारियों का आना-जाना, मिलना-जुलना बन्द था। एक बार साथ के एक शिकारी ने किसी शेर का जिक्र किया था। कुँवर साहब ने उसकी ओर कुछ ऐसी कड़वी आँखों से देखा कि वह सूख-सा गया। वसुधा के पास बैठने, उससे कुछ बातें करके उसका मन बहलाने, दवा और पथ्य बनाने में ही उन्हें आनन्द मिलता था। उनका भोग-विलास जीवन के इस कठोर व्रत में जैसे बुझ गया। वसुधा की एक हथेली पर अंगुलियों से रेखा खींचने में मग्न थे। शिकार की बात किसी और के मुँह से सुनी होती, तो फिर उसी आग्नेय नेत्रों से देखते। वसुधा के मुँह से यह चर्चा सुनकर उन्हें दुःख हुआ। वह उन्हें इतना शिकार का आसक्त समझती है ! अमर्ष भरे स्वर में बोले—हाँ, शिकार खेलने का इससे अच्छा और कौन अवसर मिलेगा !

वसुधा ने आग्रह किया—मैं तो अब अच्छी हूँ, सच ! देखो (आईने की ओर दिखाकर) मेरे चेहरे पर वह पीलापन नहीं रहा। तुम अलबता बीमार से होते जाते हो। जरा मन बहल जायगा। बीमार के पास बैठने से आदमी सचमुच बीमार हो जाता है।

वसुधा ने साधारण-सी बात कही थी; पर कुँवर साहब के हृदय पर वह चिनगारी के समान लगी। इधर वह अपने शिकार के खब्त पर कई बार पछता चुके थे। अगर वह शिकार के पीछे यों न पड़ते, तो वसुधा यहाँ क्यों आती और क्यों बीमार पड़ती। उन्हें मन-ही-मन इसका बड़ा दुःख था। इस वक्त कुछ न बोले। शायद कुछ बोला ही न गया। फिर वसुधा की हथेली पर रेखाएँ बनाने लगे।

वसुधा ने उसी सरल भाव से कहा—अब की तुमने क्या-क्या तोहफे जमा किये, जरा मँगाओ, देखूँ। उनमें से जो सबसे अच्छा होगा, उसे मैं ले लूँगी। अब की मैं भी तुम्हारे साथ शिकार खेलने चलूँगी। बोले, मुझे ले चलोगे न ? मैं मानूँगी नहीं। बहाने मत करने लगना।

अपने शिकारी तोहफे दिखाने का कुँवर साहब को मरज था। सैकड़ों ही खालें जमा कर रखी थीं। उनके कई कमरों में फर्श, गद्दे, कोच, कुर्सियाँ, मोढ़े सब खालों ही के थे। ओढ़ना और बिछौना भी खालों ही का था ! बाघम्बरों के कई सूट बनवा रखे थे। शिकार में वही सूट पहनते थे। अब की भी बहुत से सींग, सिर, पंजे, खालें जमा कर रखी थीं। वसुधा का इन चीजों से अवश्य मनोरंजन होगा। यह न समझे कि वसुधा ने सिंह-द्वार से प्रवेश न पाकर चोर दरवाजे से घुसने का प्रयत्न किया है। जाकर वह चीजें उठवा लाये; लेकिन आदमियों को परदे की आड़ में खड़ा करके पहले अकेले ही उसके पास गये ! डरते थे; कहीं

मेरी उत्सुकता वसुधा को बुरी न लगे।

वुसधा ने उत्सुक होकर पूछा—चीजें नहीं लाये ?

'लाया हूँ, मगर कहीं डाक्टर साहब न हों।'

'डाक्टर ने पढ़ने-लिखने को मना किया था।'

तोहफे लाये गये। कुँवर साहब एक-एक चीज निकालकर दिखाने लगे। वसुधा के चेहरे पर हर्ष की ऐसी लाली हफ्तों से न दिखी थी, जैसे कोई बालक तमाशा देखकर मगन हो रहा हो। बीमारी के बाद हम बच्चों की तरह जिद्दी; उतने ही आतुर, उतने ही सरल हो जाते हैं। जिन किताबों में भी मन न लगा हो, वह बीमारी के बाद पढ़ी जाती हैं। वसुधा जैसे उल्लास की गोद में खेलने लगी। चीतों की खालें थीं, बाघों की, मृगों की, शेरों की। वसुधा हरेक खाल को नयी उमंग से देखती, जैसे बायस्कोप के एक चित्र के बाद दूसरा चित्र आ रहा हो। कुँवर साहब एक-एक तोहफे का इतिहास सुनाने लगे। यह जानवर कैसे मारा गया, उसके मारने में क्या-क्या बाधाएँ पड़ीं, क्या-क्या उपाय करने पड़े, पहले कहाँ गोली लगी आदि। वसुधा हरेक की कथा आँखें फाड़-फाड़कर सुन रही थी। इतना सजीव, स्फूर्तिमय आनन्द उसे आज तक किसी कविता, संगीत या आमोद में भी न मिला था। सबसे सुन्दर एक सिंह की खाल थी। वही उसने छाँटी।

कुँवर साहब की यह सबसे बहुमूल्य वस्तु थी। उसे अपने कमरे में लटकाने को रखे हुए थे। बोले—तुम बाघम्बरों में से कोई ले लो। यह तो कोई अच्छी चीज नहीं।

वसुधा ने खाल को अपनी ओर खींचकर कहा—रहने दीजिए अपनी सलाह। मैं खराब ही लूँगी।

कुँवर साहब ने जैसे अपनी आँखों से आँसू पोंछकर कहा—तुम वही लो लो, मैं तो तुम्हारे ख्याल से कह रहा था। मैं फिर वैसा ही मार लूँगा।

'तो तुम मुझे चकमा क्यों देते थे ?'

'चकमा कौन देता था ?'

'अच्छा, खाओ मेरे सिर की कसम, कि यह सबसे सुन्दर खाल नहीं है ?' कुँवर साहब ने हार की हँसी हँस कर कहा—कसम क्यों खायँ, इस एक खाल के लिए ? ऐसी-ऐसी एक लाख खालें हों, तो तुम्हारे ऊपर न्योछावर कर दूँ।

जब शिकारी सब खालें लेकर चला गया, तो कुँवर साहब ने कहा—मैं इस खाल पर काले ऊन से अपना समर्पण लिखूँगा।

वसुधा ने थकान से पलंग पर लेटते हुए कहा—अब मैं भी शिकार खेलने चलूँगी।

फिर वह सोचने लगी, वह भी कोई शेर मारेगी और उसकी खाल पतिदेव को भेंट करेगी। उस पर लाल ऊन से लिखा जायगा—प्रियतम !

जिस ज्योति के मन्द पड़ जाने से हरेक व्यापार, हरेक व्यंजन पर अंधकार छा गया था, वह ज्योति अब प्रदीप्त होने लगी थी।

5

शिकारों का वृतान्त सुनने की वसुधा को चाट-सी पड़ गयी। कुँवर साहब को कई-कई बार अपने अनुभव सुनाने पड़े। उसका सुनने से जी ही न भरता था। अब तक कुँवर साहब का

संसार अलग था, जिसके दुःख-सुख, हानि-लाभ, आशा-निराशा से वसुधा को कोई सरोकार न था। वसुधा को इस संसार के व्यापार से कोई रुचि न थी, बल्कि अरुचि थी। कुँवर साहब इस पृथक संसार की बातें उससे छिपाते थे; पर अब वसुधा उनके इस संसार में एक उज्जवल प्रकाश, एक वरदानों वाली देवी के समान अवतरित हो गयी थी।

एक दिन वसुधा ने आग्रह किया—मुझे बन्दूक चलाना सिखा दो।

डाक्टर साहब की अनुमति मिलने में विलम्ब न हुआ। वसुधा स्वस्थ हो गयी थी। कुँवर साहब ने शुभ मुहूर्त में उसे दीक्षा दी। उस दिन से जब देखो, वृक्षों की छाँह में खड़ी निशाने का अभ्यास कर रही है, और कुँवर साहब खड़े उसकी परीक्षा ले रहे हैं।

जिस दिन उसने पहली चिड़िया मारी, कुँवर साहब हर्ष से उछल पड़े। नौकरों को इनाम दिये; ब्राह्मणों को दान दिया गया। इस आनन्द की शुभ-स्मृति में उस पक्षी की ममी बनाकर रखी गयी।

वसुधा के जीवन में अब एक नया उत्साह एक नया उल्लास, एक नयी आशा थी। पहले की भाँति उसका वंचित हृदय अशुभ कल्पनाओं से त्रस्त न था। अब उसमें विश्वास था, बल था, अनुराग था।

6

कई दिनों के बाद वसुधा की साध पूरी हुई। कुँवर साहब उसे साथ लेकर शिकार खेलने पर राजी हुए और शिकार था शेर का और शेर भी वह जिसने इधर एक महीने से आस-पास के गाँवों में तहलका मचा दिया था।

चारों तरफ अन्धकार था, ऐसा सघन कि पृथ्वी उसके भार से कराहती हुई जान पड़ती। कुँवर साहब और वसुधा एक ऊँचे मचान पर बन्दूक लिए दम साधे बैठे हुए थे। बहुत भयंकर जन्तु था। अभी पिछली रात को वह एक सोते हुए आदमी को खेत में मचान पर से खींचकर ले भागा था। उसकी चालाकी पर लोग दाँतों तले अंगुली दबाये थे। मचान इतना ऊँचा था कि चीता उछलकर न पहुँच सकता था। हाँ, उसने यह देख लिया कि वह आदमी मचान पर बाहर की तरफ सिर किये सो रहा था। दुष्ट को एक चाल सूझी। वह पास के गाँव में गया और वहाँ से एक लम्बा बाँस उठा लाया। बाँस के एक सिरे को उसने दाँतों से कुचला और जब उसकी कूँची-सी बन गयी, तो उसे न जाने अगले पंजों या दाँतों से उठाकर सोने वाले आदमी के बालों में फिराने लगा। वह जानता था, बाल बाँस के रेशों में फँस जायँगे। एक झटके में वह अभागा आदमी नीचे आ रहा। इसी मानस-भक्षी चीते की घात में दोनों शिकारी बैठे हुए थे। नीचे कुछ दूर पर भैंसा बाँध दिया गया था और शेर के आने की राह देखी जा रही थी। कुंवर साहब शान्त थे; पर वसुधा की छाती धड़क रही थी। जरा-सा भी पत्ता खड़कता, तो वह चौंक पड़ती और बन्दूक सीधी करने के बदले में चौंक कर कुँवर साहब से चिपक जाती। कुँवर साहब बीच-बीच में उसकी हिम्मत बँधाते जाते थे।

'ज्यों ही भैंसे पर आया, मैं उसका काम तमाम कर दूँगा। तुम्हारी गोली की नौबत ही न आने पावेगी।'

वसुधा ने सिहरकर कहा—और जो कहीं निशाना चूक गया तो उछलेगा ?

'तो फिर दूसरी गोली चलेगी। तीनों बन्दूकें तो भरी तैयार रखी हैं। तुम्हारा जी घबड़ाता तो नहीं ?

'बिलकुल नहीं। मैं तो चाहती हूँ, पहला मेरा निशाना होता।'

पत्ते खड़खड़ा उठे। वसुधा चौंककर पति के कन्धों से लिपट गयी। कुँवर साहब ने उसकी गर्दन में हाथ डालकर कहा—दिल मजबूत करो प्रिये। वसुधा ने लज्जित होकर कहा—नहीं-नहीं, मैं डरती नहीं, जरा चौंक पड़ी थी।

सहसा भैंसे के पास दो चिनगारियाँ-सी चमक उठी। कुँवर साहब ने धीरे-से वसुधा का हाथ दबाकर शेर के आने की सूचना दी और सतर्क हो गये। जब शेर भैंसे पर आ गया, तो उन्होंने निशाना मारा। खाली गया। दूसरा फैर किया। चीता जख्मी तो हुआ; पर गिरा नहीं। क्रोध से पागल होकर इतनी जोर से गरजा कि वसुधा का कलेजा दहल उठा। कुँवर साहब तीसरा फैर करने जा रहे थे कि चीते ने मचान पर जस्त मारी उसके अगले पंजों के धक्के से मचान ऐसा हिला कि कुँवर साहब हाथ में बन्दूक लिये झोंके से नीचे गिर पड़े। कितना भीषण अवसर था ! अगर एक पल का भी विलम्ब होता, तो कुँवर साहब की खैरियत न थी। शेर की जलती हुई आँखें वसुधा के सामने चमक रही थीं। उसकी दुर्गन्धमय साँस देह में लग रही थी। हाथ-पाँव फूले हुए थे। आँखें भीतर को सिकुड़ी जा रही थीं; पर इस खतरे ने जैसे उसकी नाड़ियों में बिजली भर दी। उसने अपनी बन्दूक सँभाली। शेर के और उसके बीच में दो हाथ से ज्यादा अन्तर न था। वह उचककर आना ही चाहता था कि वसुधा ने बन्दूक की नली उसकी आँखों में डालकर बन्दूक छोड़ी। धायँ ! शेर के पंजे ढीले पड़े। नीचे गिर पड़ा। अब समस्या भीषण थी। शेर से तीन-ही-चार कदम पर ही कुँवर साहब गिरे पड़े थे। शायद चोट ज्यादा आयी हो। शेर में अगर अभी दम है, तो वह उन पर जरूर वार करेगा। वसुधा के प्राण आँखों में थे और बल कलाइयों में। इस वक्त कोई उसकी देह में भाला भी चुभा देता, तो उसे खबर न होती ! वह अपने होश में न थी। उसकी मूर्च्छा ही चेतना का काम कर रही थी। उसने बिजली की बत्ती जलाई। देखा शेर उठने की चेष्टा कर रहा है। दूसरी गोली सिर पर मारी और उसे साथ ही रिवाल्वर लिये नीचे कूदी। शेर जोर से गुर्राया वसुधा ने उसके मुँह के सामने रिवाल्वर खाली कर दिया। कुँवर साहब सँभलकर खड़े हो गये। दौड़कर उसे छाती से चिपटा लिया। अरे ! यह क्या। वसुधा बेहोश थी। भय उसके प्राणों को मुट्ठी में लिये उसकी आत्म-रक्षा कर रहा था। भय के शांत होते ही मूर्च्छा आ गयी।

7

तीन घंटों के बाद वसुधा की मूर्च्छा टूटी। उसकी चेतना अब भी उन्हीं भयप्रद परिस्थितियों में विचर रही थी। उसने धीरे से डरते-डरते आँखें खोलीं। कुँवर साहब ने पूछा—कैसा जी है प्रिये ?

वसुधा ने उनकी रक्षा के लिए दोनों हाथों का घेरा बनाते हुए कहा—वहाँ से हट जाओ ! ऐसा न हो, झपट पड़े।

कुँवर साहब ने हँसकर कहा—शेर कब का ठंडा हो गया। वह बरामदे में पड़ा है। ऐसे डील-डौल का और इतना भयंकर सिंह मैंने नहीं देखा।

वसुधा—तुम्हें चोट तो नहीं आयी ?

कुँवर—बिल्कुल नहीं। तुम कूद क्यों पड़ीं ? पैरों में बड़ी चोट आयी होगी। तुम जीती कैसे बचीं, यह आश्चर्य है। मैं तो इतनी ऊँचाई से कभी न कूद सकता।

वसुधा ने चकित होकर कहा—मैं ! मैं कहाँ कूदी ? शेर मचान पर आया, इतना याद है। उसके बाद क्या हुआ, मुझे कुछ याद नहीं।

कुँवर को भी विस्मय हुआ—वाह ! तुमने उस पर दो गोलियाँ चलाईं। जब वह नीचे गिरा, तो तुम भी कूद पड़ीं और उसके मुँह में रिवाल्वर की नली ठूँस दी। बस वहीं ठंडा हो गया। बड़ा बेहया जानवर था। अगर तुम चूक जातीं, तो वह नीचे आते ही मुझ पर जरूर चोट करता। मेरे पास तो छुरी भी न थी। बन्दूक हाथ से छूटकर दूसरी तरफ गिर गयी थी। अंधेरे में कुछ सुझाई न देता था। तुम्हारे ही प्रभाव से इस वक्त मैं यहाँ खड़ा हूँ, तुमने मुझे प्राण-दान दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल यहाँ से कूच हुआ।

जो घर वसुधा को फाड़े खाता था, उसमें आज जाकर ऐसा आनन्द आया, जैसे किसी बिछुड़े मित्र से मिली हो। हरेक वस्तु उसका स्वागत करती हुई मालूम होती थी ! जिन नौकरों और लौंडियों से वह महीनों से सीधे मुँह न बोली थी, उनसे वह आज हँस-हँसकर कुशल पूछती और गले मिलती थी, जैसे अपनी पिछली रुखाइयों की पटौती कर रही हो।

संध्या का सूर्य, आकाश के स्वर्ण सागर में अपनी नौका खेता हुआ चला जा रहा था! वसुधा खिड़की के सामने कुरसी पर बैठकर सामने का दृश्य देखने लगी। उस दृश्य में आज जीवन था, विकास था, उन्माद था। केवट का वह सूना झोपड़ा भी आज कितना सुहावना लग रहा था। प्रकृति में मोहिनी भरी हुई थी।

मन्दिर के सामने मुनिया राजकुमारों को खिला रही थी। वसुधा के मन में आज कुलदेव के प्रति श्रद्धा जागृत हुई, जो बरसों से पड़ी सो रही थी। उसने पूजा के सामान मँगवाये और पूजा करने चली। आनन्द से भरे भण्डार से अब वह कुछ दान भी कर सकती थी। जलते हुए हृदय से ज्वाला के सिवा और क्या निकलती।

उसी वक्त कुँवर साहब आकर बोले—अच्छा, पूजा करने जा रही हो। मैं भी वहीं जा रहा था। मैंने एक मनौती मान रक्खी है।

वसुधा ने मुस्कराती हुई आँखों से पूछा—कैसी मनौती है ?

कुँवर साहब ने हँसकर कहा—यह न बताऊँगा।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। उर्दू मासिक पत्रिका 'जमाना', जून, 1910 में प्रकाशित। उर्दू मासिक पत्रिका 'चन्दन', अक्टूबर, 1931 में पुनः प्रकाशित। हिन्दी रूप इसी शीर्षक से 'हंस' मासिक पत्रिका, जुलाई-अगस्त, 1931 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित।]

नेकी

सावन का महीना था। रेवती रानी ने पांव में मेहंदी रचाई, मांग-चोटी संवारी और तब अपनी बूढ़ी सास से जाकर बोली—अम्मांजी, आज मैं भी मेला देखने जाऊंगी।

रेवती पंडित चिंतामणि की पत्नी थी। पंडितजी ने सरस्वती की पूजा में ज्यादा लाभ न देखकर लक्ष्मी देवी की पूजा करनी शुरू की थी। लेन-देन का कारोबार करते थे मगर और महाजनों के विपरीत खास-खास हालतों के सिवा पच्चीस फीसदी से ज्यादा सूद लेना उचित न समझते थे।

रेवती की सास एक बच्चे को गोद में लिए खटोले पर बैठी थी। बहू की बात सुनकर बोली—भीग जाओगी तो बच्चे को जुकाम हो जाएगा।

रेवती—नहीं अम्मां, मुझे देर न लगेगी, अभी चली जाऊंगी।

रेवती के दो बच्चे थे—एक लड़का, दूसरी लड़की। लड़की अभी गोद में थी और लड़का हीरामन सातवें साल में था। रेवती ने उसे अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाए। नजर लगने से बचाने के लिए माथे और गालों पर काजल के टीके लगा दिए, गुड़ियां पीटने के लिए एक अच्छी रंगीन छड़ी दे दी और अपनी सहेलियों के साथ मेला देखने चली।

कीरत सागर के किनारे औरतों का बड़ा जमघट था। नीलगूं घटाएं छाई हुई थीं। औरतें सोलह सिंगार किए सागर के खुले हुए हरे-भरे सुंदर मैदान में सावन की रिमझिम वर्षा की बहार लूट रही थीं। शाखों में झूले पड़े थे। कोई झूला झूलती, कोई मल्हार गाती, कोई सागर के किनारे बैठी लहरों से खेलती। ठंडी-ठंडी खुशगवार पानी की हल्की-हल्की फुहार, पहाड़ियों की निखरी हुई हरियावल, लहरों के दिलकश झकोले मौसम को ऐसा बना रहे थे कि उसमें संयम टिक न पाता था।

आज गुड़ियों की विदाई है। गुड़ियां अपनी ससुराल जाएंगी। कुंआरी लड़कियां हाथ-पांव में मेहंदी रचाए, गुड़ियों को गहने-कपड़े से सजाए उन्हें विदा करने आई हैं। उन्हें पानी में बहाती हैं और छक-छककर सावन के गीत गाती हैं। मगर सुख-चैन के आंचल से निकलते ही इन लाड़-प्यार में पली हुई गुड़ियों पर चारों तरफ से छड़ियों और लकड़ियों की बौछार होने लगती है।

रेवती यह सैर देख रही थी और हीरामन सागर की सीढ़ियों पर और लड़कियों के साथ गुड़ियां पीटने में लगा हुआ था। सीढ़ियों पर काई लगी हुई थी। अचानक उसका पांव फिसला तो पानी में जा पड़ा। रेवती चीख मारकर दौड़ी और सर पीटने लगी। दम के दम में वहां मर्दों और औरतों का ठट लग गया मगर यह किसी की इंसानियत तकाजा न करती थी कि पानी में जाकर मुमकिन हो तो बच्चे की जान बचाए। संवारे हुए बाल न बिखर जाएंगे ! धुली हुई धोती न भीग जाएगी ! कितने ही मर्दों के दिलों में यह मर्दाना खयाल आ रहे थे। दस मिनट गुजर गए। मगर कोई आदमी हिम्मत करता नजर न आया। गरीब रेवती पछाड़ें खा रही थी। अचानक उधर से एक आदमी अपने घोड़े पर सवार चला जाता था। यह भीड़ देखकर उतर पड़ा और एक तमाशाई से पूछा—यह कैसी भीड़ है ? तमाशाई ने जवाब दिया—एक लड़का डूब गया है।

मुसाफिर—कहां ?

तमाशाई—जहां वह औरत खड़ी रो रही है।

मुसाफिर ने फौरन अपनी गाढ़े की मिर्जई उतारी और धोती कसकर पानी में कूद पड़ा। चारों तरफ सन्नाटा छा गया। लोग हैरान थे कि यह आदमी कौन है। उसने पहला

गोता लगाया, लड़के की टोपी मिली। दूसरा गोता लगाया तो उसकी छड़ी हाथ लगी और तीसरे गोते के बाद जब ऊपर आया तो लड़का उसकी गोद में था। तमाशाइयों ने जोर से वाह-वाह का नारा बुलंद किया। मां दौड़कर बच्चे से लिपट गई। इसी बीच पंडित चिंतामणि के और कई मित्र आ पहुंचे और लड़के को होश में लाने की फिक्र करने लगे। आध घंटे में लड़के ने आंखें खोल दीं। लोगों की जान में जान आई। डॉक्टर साहब ने कहा—अगर लड़का दो मिनट पानी में रहता तो बचना असंभव था। मगर जब लोग अपने गुमनाम भलाई करने वाले को ढूंढ़ने लगे तो उसका कहीं पता न था। चारों तरफ आदमी दौड़ाए, सारा मेला छान मारा, मगर वह नजर न आया।

2

बीस साल गुजर गए। पंडित चिंतामणि का कारोबार रोज-ब-रोज बढ़ता गया। इस बीच में उसकी मां ने सातों यात्राएं कीं और मरीं तो उनके नाम पर ठाकुरद्वारा तैयार हुआ। रेवती वहू से सास बनी, लेन-देन, बहीखाता हीरामणि के हाथ में आया। हीरामणि अब एक हृष्ट-पुष्ट लंबा-तड़ंगा नौजवान था—बहुत अच्छे स्वभाव का, नेक। कभी-कभी बाप से छिपाकर गरीब असामियों को यों ही कर्ज दे दिया करता। चिन्तामणि ने कई बार इस अपराध के लिए बेटे को आंखें दिखाई थीं और अलग कर देने की धमकी दी थी। हीरामणि ने एक बार एक संस्कृत पाठशाला के लिए पचास रुपया चंदा दिया। पंडितजी उस पर ऐसे क्रुद्ध हुए कि दो दिन तक खाना नहीं खाया। ऐसे अप्रिय प्रसंग आए दिन होते रहते थे, इन्हीं कारणों से हीरामणि की तबीयत बाप से कुछ खिंची रहती थी। मगर उसकी यह सारी शरारतें हमेशा रेवती की साजिश से हुआ करती थीं। जब कस्बे की गरीब विधवायें या जमींदार के सताए हुए असामियों की औरतें रेवती के पास आकर हीरामणि को आंचल फैला-फैलाकर दुआएं देने लगतीं तो उसे ऐसा मालूम होता कि मुझसे ज्यादा भाग्यवान और मेरे बेटे से ज्यादा नेक आदमी दुनिया में कोई न होगा। तब उसे बरबस वह दिन याद आ जाता जब हीरामणि कीरत सागर में डूब गया था और उस आदमी की तस्वीर उनकी आंखों के सामने खड़ी हो जाती जिसने उसके लाल को डूबने से बचाया था। उसके दिल की गहराई से दुआ निकलती और ऐसा जी चाहता कि उसे देख पाती तो उसके पांव पर गिर पड़ती। उसे अब पक्का विश्वास हो गया था कि वह मनुष्य न था बल्कि कोई देवता था। वह अब उसी खटोले पर बैठी हुई, जिस पर उसकी सास बैठती थी, अपने दोनों पोतों को खिलाया करती थी।

आज हीरामणि की सत्ताईसवीं सालगिरह थी। रेवती के लिए यह दिन साल भर के दिनों में सबसे अधिक शुभ था। आज उसका दया का हाथ खूब उदारता दिखलाता था और यही एक अनुचित खर्च था जिसमें पंडित चिंतामणि भी शरीक हो जाते थे। आज के दिन वह बहुत खुश होती और बहुत रोती और आज अपने गुमनाम भलाई करने वाले के लिए उसके दिल से जो दुआएं निकलतीं वह दिल और दिमाग की अच्छी से अच्छी भावनाओं में रंगी होती थीं। उसी दिन की बदौलत तो आज मुझे यह दिन और यह सुख देखना नसीब हुआ है !

3

एक दिन हीरामणि ने आकर रेवती से कहा--अम्मां, श्रीपुर नीलाम पर चढ़ा हुआ है, कहो तो मैं भी दाम लगाऊं ?

रेवती—सोलहों आना है ?

हीरामणि—सोलहों आना। अच्छा गांव है। न बड़ा न छोटा। यहां से दस कोस है। बीस हजार तक बोली चढ़ चुकी है। सौ दो सौ में खतम हो जाएगा।

रेवती—अपने दादा से तो पूछो ?

हीरामणि—उनके साथ दो घंटे तक माथापच्ची करने की किसे फुर्सत है।

हीरामणि अब घर का मालिक हो गया था और चिन्तामणि की एक न चलने पाती। वह गरीब अब ऐनक लगाए एक गद्दे पर बैठे अपना वक्त खांसने में खर्च करते थे।

दूसरे दिन हीरामणि के नाम पर श्रीपुर खतम हो गया। महाजन से जमींदार हुए अपने मुनीम और दो चपरासियों को लेकर गांव की सैर करने चले। श्रीपुर वालों को खबर हुई। नए जमींदारो का पहला आगमन था। घर-घर नजराने देने की तैयारियां होने लगीं। पांचवें दिन शाम के वक्त हीरामणि गांव में दाखिल हुए। दही और चावल का तिलक लगाया गया और तीन सौ असामी पहर रात तक हाथ बांधे हुए उनकी सेवा में खड़े रहे। सवेरे मुख्तारेआम ने असामियों का परिचय कराना शुरू किया। जो असामी जमींदार के सामने आता वह अपनी बिसात के मुताबिक एक या दो रुपये उनके पांव पर रख देता। दोपहर होते-होते वहां पांच सौ रुपये का ढेर लगा हुआ था।

हीरामणि को पहली बार जमींदारी का मजा मिला, पहली बार धन और बल का नशा महसूस हुआ। सब नशों से ज्यादा तेज, ज्यादा घातक धन का नशा है। जब असामियों की फेहरिस्त खतम हो गई तो मुख्तार से बोले—और कोई असामी तो बाकी नहीं है ?

मुख्तार—हां महाराज, अभी एक असामी और है, तखतसिंह।

हीरामणि—वह क्यों नहीं आया ?

मुख्तार—जरा मस्त है।

हीरामणि—मैं उसकी मस्ती उतार दूंगा। जरा कोई उसे बुला लाए।

थोड़ी देर में एक बूढ़ा आदमी लाठी टेकता हुआ आया और दंडवत् करके जमीन पर बैठ गया, न नजर न नियाज। उसकी यह गुस्ताखी देखकर हीरामणि को बुखार चढ़ आया। कड़ककर बोले—अभी किसी जमींदार से पाला नहीं पड़ा है। एक-एक की हेकड़ी भुला दूंगा।

तखतसिंह ने हीरामणि की तरफ गौर से देखकर जवाब दिया—मेरे सामने बीस जमींदार आए और चले गए, मगर कभी किसी ने इस तरह घुड़की नहीं दी।

यह कहकर उसने लाठी उठाई और अपने घर चला आया।

बूढ़ी ठकुराइन ने पूछा—देखा जमींदार को, कैसे आदमी हैं ?

तखतसिंह—अच्छे आदमी हैं। मैं उन्हें पहचान गया।

ठकुराइन—क्या तुमसे पहले की मुलाकात है ?

तखतसिंह—मेरी उनकी बीस बरस की जान-पहिचान है। गुड़ियों के मेले वाली बात याद है न ?

उस दिन से तखतसिंह फिर हीरामणि के पास न आया।

4

छः महीने के बाद रेवती को भी श्रीपुर देखने का शौक हुआ। वह और उसकी बहू और बच्चे सब श्रीपुर आए। गांव की सब औरतें उनसे मिलने आईं। उनमें बूढ़ी ठकुराइन भी थी। उसकी बातचीत, सलीका और तमीज देखकर रेवती दंग रह गई। जब वह चलने लगी तो रेवती ने कहा—ठकुराइन, कभी-कभी आया करना, तुमसे मिलकर तबीयत बहुत खुश हुई।

इस तरह दोनों औरतों में धीरे-धीरे मेल हो गया। यहां तो यह कैफियत थी और हीरामणि अपने मुख्तारेआम के बहकावे में आकर तखतसिंह को बेदखल करने की तरकीबें सोच रहा था।

जेठ की पूरनमासी आई। हीरामणि की सालगिरह की तैयारियां होने लगीं। रेवती चलनी में मैदा छान रही थी कि बूढ़ी ठकुराइन आई। रेवती ने मुस्कराकर कहा, ठकुराइन, हमारे यहां कल तुम्हारा न्योता है।

ठकुराइन—तुम्हारा न्योता सिर-आंखों पर। कौन-सी बरसगांठ है ?

रेवती—उनतीसवीं।

ठकुराइन—नरायन करे, अभी ऐसे-ऐसे सौ दिन तुम्हें और देखने नसीब हों।

रेवती—ठकुराइन, तुम्हारी जबान मुबारक हो। बड़े-बड़े जंतर-मंतर किए हैं तब तुम लोगों की दुआ से यह दिन देखना नसीब हुआ है। यह तो सातवें ही साल में थे कि इनकी जान के लाले पड़ गए। गुड़ियों का मेला देखने गई थी। यह पानी में गिर पड़े। बारे, एक महात्मा ने इनकी जान बचाई। इनकी जान उन्हीं की दी हुई है। बहुत तलाश करवाया। उनका पता न चला। हर बरसगांठ पर उनके नाम से सौ रुपये निकाल रखती हूं। दो हजार से कुछ ऊपर हो गए हैं। बच्चे की नीयत है कि उनके नाम से श्रीपुर में एक मंदिर बनवा दें। सच मानो ठकुराइन, एक बार उनके दर्शन हो जाते तो जीवन सुफल हो जाता, जी की हवस निकाल लेते।

रेवती जब खामोश हुई तो ठकुराइन की आंखों से आंसू जारी थे।

दूसरे दिन एक तरफ हीरामणि की सालगिरह का उत्सव था और दूसरी तरफ तखतसिंह के खेत नीलाम हो रहे थे।

ठकुराइन बोली—मैं रेवती रानी के पास जाकर दुहाई मचाती हूं।

तखतसिंह ने जवाब दिया—मेरे जीते जी नहीं।

5

आषाढ़ का महीना आया। मेघराज ने अपनी प्राणदायी उदारता दिखाई। श्रीपुर के किसान अपने-अपने खेत जोतने चले। तखतसिंह की लालसा भरी आंखें उनके साथ-साथ जातीं, यहां तक कि जमीन उन्हें अपने दामन में छिपा लेती।

तखतसिंह के पास एक गाय थी। वह अब दिन के दिन उसे चराया करता। उसकी जिंदगी का अब यही एक सहारा था। उसके उपले और दूध बेचकर गुजर-बसर करता। कभी-कभी फाके करने पड़ जाते। यह सब मुसीबतें उसने झेलीं मगर अपनी कंगाली का

रोना रोने के लिए एक दिन भी हीरामणि के पास न गया। हीरामणि ने उसे नीचा दिखाना चाहा था मगर खुद उसे ही नीचा देखना पड़ा, जीतने पर भी उसे हार हुई, पुराने लोहे को अपने नीचे हठ की आंच से न झुका सका।

एक दिन रेवती ने कहा—बेटा, तुमने गरीब को सताया, अच्छा न किया।

हीरामणि ने तेज होकर जवाब दिया—वह गरीब नहीं है। उसका घमंड मैं तोड़ दूंगा।

दौलत के नशे में मतवाला जमींदार वह चीज तोड़ने की फिक्र में था जो कहीं थी ही नहीं। जैसे नासमझ बच्चा अपनी परछाईं से लड़ने लगता है।

6

साल भर तखतसिंह ने ज्यों-त्यों करके काटा। फिर बरसात आई। उसका घर छाया न गया था। कई दिन तक मूसलाधार मेह बरसा तो मकान का एक हिस्सा गिर पड़ा। गाय वहां बंधी हुई थी, दबकर मर गई। तखतसिंह को सख्त चोट आई। उसी दिन से बुखार आना शुरू हुआ। दवा-दारू कौन करता, रोजी का सहारा था वह भी टूटा। जालिम बेदर्द मुसीबत ने कुचल डाला। सारा मकान पानी से भरा हुआ, घर में अनाज का दाना नहीं, अंधेरे में पड़ा हुआ कराह रहा था कि रेवती उसके घर गई। तखतसिंह ने आंखें खोलीं और पूछा—कौन है?

ठकुराइन—रेवती रानी हैं।

तखतसिंह—मेरे धन्य भाग, मुझ पर बड़ी दया की।

रेवती ने लज्जित होकर कहा—ठकुराइन, ईश्वर जानता है, मैं अपने बेटे से हैरान हूं। तुम्हें जो तकलीफ हो मुझसे कहो। तुम्हारे ऊपर ऐसी आफत पड़ गई और हमसे खबर तक न की ?

यह कहकर रेवती ने रुपयों की एक छोटी-सी पोटली ठकुराइन के सामने रख दी।

रुपयों की झनकार सुनकर तखतसिंह उठ बैठा और बोला—रानी, हम इसके भूखे नहीं हैं। मरते दम गुनाहगार न करो।

दूसरे दिन हीरामणि भी अपने मुसाहिबों को लिए उधर से जा निकला। गिरा हुआ मकान देखकर मुस्कराया। उसके दिल ने कहा, आखिर मैंने उसका घमण्ड तोड़ दिया। मकान के अंदर जाकर बोला—ठाकुर, अब क्या हाल है ?

ठाकुर ने धीरे से कहा—सब ईश्वर की दया है, आप कैसे भूल पड़े ?

हीरामणि को दूसरी बार हार खानी पड़ी। उसकी यह आरजू कि तखतसिंह मेरे पांव को आंखों से चूमे, अब भी पूरी न हुई। उसी रात को वह गरीब, आजाद, ईमानदार और बेगरज ठाकुर इस दुनिया मे विदा हो गया।

7

बूढ़ी ठकुराइन अब दुनिया में अकेली थी। कोई उसके गम का शरीक और उसके मरने पर आंसू बहाने वाला न था। कंगाली ने गम की आंच और तेज कर दी थी। जरूरत की चीजें मौत के घाव को चाहे न भर सकें मगर मरहम का काम जरूर करती हैं।

रोटी की चिंता बुरी बला है। ठकुराइन अब खेत और चरागाह से गोबर चुन लाती और उपले बनाकर बेचती। उसे लाठी टेकते हुए खेतों को जाते और गोबर का टोकरा सिर पर रखकर बोझ से हांफते हुए आते देखना बहुत ही दर्दनाक था। यहां तक कि हीरामणि को भी उस पर तरस आ गया। एक दिन उन्होंने आटा, दाल, चावल, थालियों में रखकर उसके पास भेजा। रेवती खुद लेकर गई। मगर बूढ़ी ठकुराइन आंखों में आंसू भरकर बोली—रेवती, जब तक आंखों से सूझता है और हाथ-पांव चलते हैं, मुझे और मरने वाले को गुनहगार न करो।

उस दिन से हीरामणि को फिर उसके साथ अमली हमदर्दी दिखलाने का साहस न हुआ।

एक दिन रेवती ने ठकुराइन से उपले मोल लिए। गांव में पैसे के तीस उपले बिकते थे। उसने चाहा कि इससे बीस ही उपले लूं। उस दिन से ठकुराइन ने उसके यहां उपले लाना बंद कर दिया।

ऐसी देवियां दुनिया में कितनी हैं ! क्या वह इतना न जानती थी कि एक गुप्त रहस्य जबान पर लाकर मैं अपनी इन तकलीफों का खात्मा कर सकती हूं ! मगर फिर वह एहसान का बदला न हो जाएगा ! मसल मशहूर है, नेकी कर और दरिया में डाल। शायद उसके दिल में कभी यह खयाल ही न आया कि मैंने रेवती पर कोई एहसान किया।

यह वजादार, आन पर मरने वाली औरत पति के मरने के बाद तीन साल तक जिंदा रही। यह जमाना उसने जिस तकलीफ से काटा उसे याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कई-कई दिन निराहार बीत जाते। कभी गोबर न मिलता, कभी कोई उपले चुरा ले जाता। ईश्वर की मर्जी ! किसी का घर भरा हुआ है, खाने वाले नहीं। कोई यों रो-रोकर जिंदगी काटता है।

बुढ़िया ने यह सब दुःख झेला मगर किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया।

8

हीरामणि की तीसवीं सालगिरह आई। ढोल की सुहानी आवाज सुनाई देने लगी। एक तरफ घी की पूड़ियां पक रही थीं, दूसरी तरफ तेल की। घी की मोटे ब्राह्मणों के लिए, तेल की गरीब भूखे नीचों के लिए।

अचानक एक औरत ने रेवती से आकर कहा—ठकुराइन जाने कैसी हुई जाती हैं। तुम्हें बुला रही हैं।

रेवती ने दिल में कहा—आज तो खैरियत से काटना, कहीं बुढ़िया मर न रही हो।

यह सोचकर वह बुढ़िया के पास न गई। हीरामणि ने जब देखा, अम्मां नहीं जाना चाहतीं तो खुद चला। ठकुराइन पर उसे कुछ दिनों से दया आने लगी थी। मगर रेवती मकान के दरवाजे तक उसे मना करने आई। यह रहमदिल, नेक-मिजाज शरीफ रेवती थी।

हीरामणि ठकुराइन के मकान पर पहुंचा तो वहां बिल्कुल सन्नाटा छाया हुआ था। बूढ़ी औरत का चेहरा पीला था और जान निकलने की हालत उस पर छाई हुई थी। हीरामणि ने जोर से कहा—ठकुराइन, मैं हूं, हीरामणि।

ठकुराइन ने आंखें खोलीं और इशारे से उसे अपना सिर नजदीक लाने को कहा, फिर

रुक-रुककर बोली—मेरे सिरहाने पिटारी में ठाकुर की हड्डियां रखी हुई हैं, मेरे सुहाग का सैंदुर भी वहीं है। यह दोनों प्रयागराज भेज देना।

यह कहकर उसने आंखें बंद कर लीं। हीरामणि ने पिटारी खोली तो दोनों चीजें हिफाजत के साथ रखी हुई थीं। एक पोटली में दस रुपये भी रखे हुए मिले। यह शायद जाने वाले का सफर खर्च था !

रात को ठकुराइन के कष्टों का हमेशा के लिए अंत हो गया।

उसी रात को रेवती ने सपना देखा—सावन का मेला है, घटाएं छाई हुई हैं, मैं कीरत सागर के किनारे खड़ी हूं। इतने में हीरामणि पानी में फिसल पड़ा। मैं छाती पीट-पीटकर रोने लगी। अचानक एक बूढ़ा आदमी पानी में कूदा और हीरामणि को निकाल लाया। रेवती उसके पांव पर गिर पड़ी और बोली—आप कौन हैं ?

उसने जवाब दिया—मैं श्रीपुर में रहता हूं, मेरा नाम तखतसिंह है।

श्रीपुर अब भी हीरामणि के कब्जे में है, मगर अब उसकी रौनक दोबारा हो गई है। वहां जाओ तो दूर से शिवाले का सुनहरा कलश दिखाई देने लगता है; जिस जगह तखतसिंह का मकान था, वहां यह शिवाला बना हुआ है। उसके सामने एक पक्का कुआं और पक्की धर्मशाला है। मुसाफिर यहां ठहरते हैं और तखतसिंह का गुन गाते हैं। यह शिवाला और धर्मशाला दोनों उसके नाम से मशहूर हैं।

['बेगर्ज मुहसिन' शीर्षक से उर्दू में 'अदीब', सितम्बर, 1910 में प्रकाशित। हिन्दी रूप 'नेकी' शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-1 में संकलित।]

· रानी सारन्धा

अँधेरी रात के सन्नाटे में धसान नदी चट्टानों से टकराती हुई ऐसी सुहावनी मालूम होती थी जैसे घुमुर-घुमुर करती हुई चक्कियाँ। नदी के दाहिने तट पर एक टीला है। उस पर एक पुराना दुर्ग बना हुआ है, जिसको जंगली वृक्षों ने घेर रखा है। टीले के पूर्व की ओर छोटा-सा गाँव है। यह गढ़ी और गाँव दोनों एक बुंदेला सरदार के कीर्ति-चिह्न हैं। शताब्दियाँ व्यतीत हो गयीं, बुंदेलखंड में कितने ही राज्यों का उदय और अस्त हुआ, मुसलमान आये और बुंदेला राजा उठे और गिरे—कोई गाँव, कोई इलाका ऐसा न था, जो इन दुर्वस्थाओं से पीड़ित न हो; मगर इस दुर्ग पर किसी शत्रु की विजय-पताका न लहरायी और इस गाँव में किसी विद्रोह का भी पदार्पण न हुआ। यह उसका सौभाग्य था।

अनिरुद्धसिंह वीर राजपूत था। वह जमाना ही ऐसा था जब मनुष्यमात्र को अपने बाहुबल और पराक्रम ही का भरोसा था। एक ओर मुसलमान सेनाएँ पैर जमाये खड़ी रहती थीं दूसरी ओर बलवान राजा अपने निर्बल भाइयों का गला घोंटने पर तत्पर रहते थे। अनिरुद्धसिंह के पास सवारों और पियादों का एक छोटा-सा, मगर संजीव दल था। इससे वह अपने कुल और मर्यादा की रक्षा किया करता था। उसे कभी चैन से बैठना नसीब न होता था। तीन वर्ष पहले उसका विवाह शीतला देवी से हुआ था; मगर अनिरुद्ध विहार के

दिन और विलास की रातें पहाड़ों में काटता था और शीतला उसकी जान की खैर मनाने में। वह कितनी बार पति से अनुरोध कर चुकी थी, कितनी बार उसके पैरों पर गिर कर रोई थी कि तुम मेरी आँखों से दूर न हो, मुझे हरिद्वार ले चलो, मुझे तुम्हारे साथ वनवास अच्छा है, यह वियोग अब नहीं सहा जाता। उसने प्यार से कहा, जिद से कहा, विनय की; मगर अनिरुद्ध बुंदेला था। शीतला अपने किसी हथियार से उसे परास्त न कर सकी।

2

अँधेरी रात थी। सारी दुनिया सोती थी, तारे आकाश में जागते थे। शीतला देवी पलंग पर पड़ी करवटें बदल रही थीं और उसकी ननद सारन्धा फर्श पर बैठी मधुर स्वर से गाती थी—

बिनु रघुवीर कटत नहिं रैन

शीतला ने कहा—जी न जलाओ। क्या तुम्हें भी नींद नहीं आती ?

सारन्धा—तुम्हें लोरी सुना रही हूँ।

शीतला—मेरी आँखों से तो नींद लोप हो गयी।

सारन्धा—किसी को ढूँढ़ने गयी होगी।

इतने में द्वार खुला और एक गठे हुए बदन के रूपवान पुरुष ने भीतर प्रवेश किया। वह अनिरुद्ध था। उसके कपड़े भीगे हुए थे, और बदन पर कोई हथियार न था। शीतला चारपाई से उतर कर जमीन पर बैठ गयी।

सारन्धा ने पूछा—भैया, यह कपड़े भीगे क्यों हैं ?

अनिरुद्ध—नदी तैर कर आया हूँ।

सारन्धा—हथियार क्या हुए ?

अनिरुद्ध—छिन गये।

सारन्धा—और साथ के आदमी ?

अनिरुद्ध—सब ने वीर-गति पायी।

शीतला ने दबी जबान से कहा—ईश्वर ने ही कुशल किया।

मगर सारन्धा के तीवरों पर बल पड़ गये और मुख-मण्डल गर्व से सतेज हो गया। बोली—भैया, तुमने कुल की पर्यादा खो दी। ऐसा कभी न हुआ था।

सारन्धा भाई पर जान देती थी। उसके मुँह से यह धिक्कार सुनकर अनिरुद्ध लज्जा और खेद से विकल हो गया। वह वीराग्नि; जिसे क्षण भर के लिये अनुराग ने दबा लिया था, फिर ज्वलंत हो गयी। वह उलटे पाँव लौटा और यह कह कर बाहर चला गया कि 'सारन्धा, तुमने मुझे सदैव के लिये सचेत कर दिया। यह बात मुझे कभी न भूलेगी।'

अँधेरी रात थी। आकाश-मण्डल में तारों का प्रकाश बहुत धुँधला था। अनिरुद्ध किले से बाहर निकला। पल भर में नदी के उस पार जा पहुँचा और फिर अन्धकार में लुप्त हो गया। शीतला उसके पीछे-पीछे किले की दीवारों तक आयी; मगर जब अनिरुद्ध छलाँग मार कर बाहर कूद पड़ा तो वह विरहिणी चट्टान पर बैठ कर रोने लगी।

इतने में सारन्धा भी वहीं आ पहुँची। शीतला ने नागिन की तरह बल खा कर कहा—मर्यादा इतनी प्यारी है ?

सारन्धा—हाँ।

शीतला—अपना पति होता तो हृदय में छिपा लेती।

सारन्धा—ना, छाती में छुरा चुभा देती।

शीतला ने ऐंठकर कहा—चोली में छिपाती फिरोगी, मेरी बात गिरह में बाँध लो।

सारन्धा—जिस दिन ऐसा होगा, मैं भी अपना वचन पूरा कर दिखाऊँगी।

इस घटना के तीन महीने पीछे अनिरुद्ध महरौनी को जीत करके लौटा और साल भर पीछे सारन्धा का विवाह ओरछा के राजा चम्पतराय से हो गया, मगर उस दिन की बातें दोनों महिलाओं के हृदय-स्थल में काँटे की तरह खटकती रहीं।

3

राजा चम्पतराय बड़े प्रतिभाशाली पुरुष थे। सारी बुन्देला जाति उनके नाम पर जान देती थी और उनके प्रभुत्व को मानती थी। गद्दी पर बैठते ही उन्होंने मुगल बादशाहों को कर देना बन्द कर दिया और वे अपने बाहुबल से राज्य-विस्तार करने लगे। मुसलमानों की सेनाएँ बार-बार उन पर हमले करती थीं, पर हारकर लौट जाती थीं।

यही समय था जब अनिरुद्ध ने सारन्धा का चम्पतराय से विवाह कर दिया। सारन्धा ने मुँह-माँगी मुराद पायी। उसकी यह अभिलाषा कि मेरा पति बुन्देला जाति का कुल-तिलक हो, पूरी हुई। यद्यपि राजा के रनिवास में पाँच रानियाँ थीं मगर उन्हें शीघ्र ही मालूम हो गया कि वह देवी, जो हृदय में मेरी पूजा करती है, सारन्धा है।

परन्तु कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं कि चम्पतराय को मुगल बादशाह का आश्रित होना पड़ा। वे अपना राज्य अपने भाई पहाड़सिंह को सौंपकर देहली चले गये। यह शाहजहाँ के शासन-काल का अन्तिम भाग था। शाहजादा दारा शिकोह राजकीय कार्यों को सँभालते थे। युवराज की आँखों में शील था और चित्त में उदारता। उन्होंने चम्पतराय की वीरता की कथाएँ सुनी थीं, इसलिए उनका बहुत आदर-सम्मान किया और कालपी की बहुमूल्य जागीर उनको भेंट की, जिसकी आमदनी नौ लाख थी। यह पहला अवसर था कि चम्पतराय को आये-दिन के लड़ाई-झगड़े से निवृत्ति मिली और उसके साथ ही भोग-विलास का प्राबल्य हुआ। रात-दिन आमोद-प्रमोद की चर्चा रहने लगी। राजा विलास में डूबे, रानियाँ जड़ाऊ गहनों पर रीझीं, मगर सारन्धा इन दिनों बहुत उदास और संकुचित रहती—वह इन रहस्यों से दूर-दूर रहती, ये नृत्य और गान की सभाएँ उसे सूनी प्रतीत होतीं।

एक दिन चम्पतराय ने सारन्धा से कहा—सारन तुम उदास क्यों रहती हो ? मैं तुम्हें कभी हँसते नहीं देखता। क्या मुझसे नाराज हो ?

सारन्धा की आँखों में जल भर आया। बोली—स्वामीजी, आप क्यों ऐसा विचार करते हैं ? जहाँ आप प्रसन्न हैं, वहाँ मैं भी खुश हूँ।

चम्पतराय—मैं जब से यहाँ आया हूँ, मैंने तुम्हारे मुख-कमल पर कभी मनोहारिणी मुस्कराहट नहीं देखी। तुमने कभी अपने हाथों से मुझे बीड़ा नहीं खिलाया। कभी मेरी पाग नहीं सँवारी। कभी मेरे शरीर पर शस्त्र न सजाये। कहीं प्रेम-लता मुरझाने तो नहीं लगी ?

सारन्धा—प्राणनाथ, आप मुझसे ऐसी बात पूछते हैं, जिसका उत्तर मेरे पास नहीं है। यथार्थ में इन दिनों मेरा चित्त उदास रहता है। मैं बहुत चाहती हूँ कि खुश रहूँ, मगर

बोझ-सा हृदय पर धरा रहता है।

चम्पतराय स्वयं आनन्द में मग्न थे। इसलिये उनके विचार में सारन्धा को असन्तुष्ट रहने का कोई उचित कारण नहीं हो सकता था। वे भौहें सिकोड़ कर बोले—मुझे तुम्हारे उदास रहने का कोई विशेष कारण नहीं मालूम होता। ओरछे में कौन-सा सुख था जो यहाँ नहीं है ?

सारन्धा का चेहरा लाल हो गया। बोली—मैं कुछ कहूँ, आप नाराज तो न होंगे?

चम्पतराय—नहीं, शौक से कहो।

सारन्धा—ओरछे में मैं एक राजा की रानी थी। यहाँ मैं एक जागीरदार की चेरी हूँ। ओरछे में वह थी जो अवध में कौशल्या थीं, यहाँ मैं बादशाह के एक सेवक की स्त्री हूँ। जिस बादशाह के सामने आज आप आदर से सिर झुकाते हैं, वह कल आपके नाम से काँपता था। रानी से चेरी हो कर भी प्रसन्नचित्त होना मेरे वश में नहीं है। आपने यह पद और ये विलास की सामग्रियाँ बड़े महँगे दामों मोल ली हैं।

चम्पतराय के नेत्रों पर से एक पर्दा-सा हट गया। वे अब तक सारन्धा की आत्मिक उच्चता को न जानते थे। जैसे बे-माँ-बाप का बालक माँ की चर्चा सुन कर रोने लगता है, उसी तरह ओरछे की याद मे चम्पतराय की आँखें सजल हो गयीं। उन्होंने आदरयुक्त अनुराग के साथ सारन्धा को हृदय से लगा लिया।

आज से उन्हें फिर उसी उजड़ी बस्ती की फिक्र हुई, जहाँ से धन और कीर्ति की अभिलाषाएँ खींच लाई थीं।

4

माँ अपने खोये हुए बालक को पा कर निहाल हो जाती है। चम्पतराय के आने से बुन्देलखण्ड निहाल हो गया। ओरछे के भाग जागे। नौबतें झड़ने लगीं और फिर सारन्धा के कमल-नेत्रों में जातीय अभिमान का आभास दिखाई देने लगा !

यहाँ रहते-रहते महीनों बीत गये। इस बीच में शाहजहाँ बीमार पड़ा। पहले से ईर्ष्या की अग्नि दहक रही थी। यह खबर सुनते ही ज्वाला प्रचण्ड हुई। संग्राम की तैयारियाँ होने लगीं। शाहजादे मुराद और मुहीउद्दीन अपने-अपने दल सजाकर दक्खिन से चले। वर्षा के दिन थे। उर्वरा भूमि रंग-बिरंग के रूप भर कर अपने सौन्दर्य को दिखाती थी।

मुराद और मुहीउद्दीन उमंगों से भरे हुए कदम बढ़ाते चले आ रहे थे। यहाँ तक कि धौलपुर के निकट चम्बल के तट पर आ पहुँचे; परन्तु यहाँ उन्होंने बादशाही सेना को अपने शुभागमन के निमित्त तैयार पाया।

शाहजादे अब बड़ी चिंता में पड़े। सामने अगम्य नदी लहरें मार रही थीं, किसी योगी के त्याग के सदृश। विवश हो कर चम्पतराय के पास संदेश भेजा कि खुदा के लिए आ कर हमारी डूबती हुई नाव को पार लगाइये।

राजा ने भवन में जा कर सारन्धा से पूछा—इसका क्या उत्तर दूँ ?

सारन्धा—आपको मदद करनी होगी।

चम्पतराय—उनकी मदद करना दारा शिकोह से वैर लेना है।

सारन्धा—यह सत्य है; परन्तु हाथ फैलाने की मर्यादा भी तो निभानी चाहिये ?

चम्पतराय—प्रिये, तुमने सोचकर जवाब नहीं दिया।

सारन्धा—प्राणनाथ, मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि यह मार्ग कठिन है। और अब हमें अपने योद्धाओं का रक्त पानी के समान बहाना पड़ेगा; परंतु हम अपना रक्त बहायेंगे और चम्बल की लहरों को लाल कर देंगे। विश्वास रखिये कि जब तक नदी की धारा बहती रहेगी, वह हमारे वीरों का कीर्तिगान करती रहेगी। जब तक बुन्देलों का एक भी नामलेवा रहेगा, ये रक्त-बिन्दु उसके माथे पर केशर का तिलक बन कर चमकेंगे।

वायुमण्डल में मेघराज की सेनाएँ उमड़ रही थीं। ओरछे के किले से बुन्देलों की एक काली घटा उठी और वेग के साथ चम्बल की तरफ चली। प्रत्येक सिपाही वीर-रस से झूम रहा था। सारन्धा ने दोनों राजकुमारों को गले से लगा लिया और राजा को पान का बीड़ा दे कर कहा—बुन्देलों की लाज अब तुम्हारे हाथ है।

आज उसका एक-एक अंग मुस्करा रहा है और हृदय हुलसित है। बुन्देलों की यह सेना देख कर शाहजादे फूले न समाये। राजा वहाँ की अंगुल-अंगुल भूमि से परिचित थे। उन्होंने बुन्देलों को तो एक आड़ में छिपा दिया और वे शाहजादों की फौज को सजा कर नदी के किनारे-किनारे पश्चिम की ओर चले। दारा शिकोह को भ्रम हुआ कि शत्रु किसी अन्य घाट से नदी उतरना चाहता है। उन्होंने घाट पर से मोर्चे हटा लिये। घाट में बैठे हुए बुन्देले उसी ताक में थे। बाहर निकल पड़े और उन्होंने तुरन्त ही नदी में घोड़े डाल दिये। चम्पतराय ने शाहजादा दारा शिकोह को भुलावा देकर अपनी फौज घुमा दी और वह बुन्देलों के पीछे चलता हुआ उसे पार उतार लाया। इस कठिन चाल में सात घण्टों का विलम्ब हुआ; परन्तु जा कर देखा तो सात सौ बुन्देलों की लाशें तड़प रही थीं।

राजा को देखते ही बुन्देलों की हिम्मत बँध गयी। शाहजादों की सेना ने भी 'अल्लाहो अकबर' की ध्वनि के साथ धावा किया। बादशाही सेना में हलचल पड़ गयी। उनकी पंक्तियाँ छिन्न-भिन्न हो गयीं, हाथोंहाथ लड़ाई होने लगी, यहाँ तक कि शाम हो गयी। रणभूमि रुधिर से लाल हो गयी और आकाश में अँधेरा हो गया। घमासान की मार हो रही थी। बादशाही सेना शाहजादों को दबाये आती थी। अकस्मात् पश्चिम से फिर बुन्देलों की एक लहर उठी और इस वेग से बादशाही सेना की पुश्त पर टकरायी कि उसके कदम उखड़ गये। जीता हुआ मैदान हाथ से निकल गया। लोगों को कुतूहल था कि यह दैवी सहायता कहाँ से आयी। सरल स्वभाव के लोगों की धारणा थी कि यह फतह के फरिश्ते हैं; शाहजादों की मदद के लिये आये हैं; परन्तु जब राजा चम्पतराय निकट गये तो सारन्धा ने घोड़े से उतर कर उनके पैरों पर सिर झुका दिया। राजा को असीम आनन्द हुआ। यह सारन्धा थी।

समर-भूमि का दृश्य इस समय अत्यन्त दुःखमय था। थोड़ी देर पहले जहाँ सजे हुए वीरों के दल थे वहाँ अब बेजान लाशें तड़प रही थीं। मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिए अनादि काल से ही भाइयों की हत्या की है।

अब विजयी सेना लूट पर टूट पड़ी। पहले मर्द मर्दों से लड़ते थे। वह वीरता और पराक्रम का चित्र था, यह नीचता और दुर्बलता की ग्लानिप्रद तस्वीर थी। उस समय मनुष्य पशु बना हुआ था, अब वह पशु से भी बढ़ गया था।

इस नोच-खसोट में लोगों को बादशाही सेना के सेनापति वली बहादुर खाँ की लाश

दिखायी दी। उसके निकट उसका घोड़ा खड़ा हुआ अपनी दुम से मक्खियाँ उड़ा रहा था। राजा को घोड़ों का शौक था। देखते ही वह उस पर मोहित हो गया। यह एराकी जाति का अति सुन्दर घोड़ा था। एक-एक अंग साँचे में ढला हुआ, सिंह की-सी छाती; चीते की-सी कमर, उसका यह प्रेम और स्वामिभक्ति देखकर लोगों को बड़ा कुतूहल हुआ। राजा ने हुक्म दिया—खबरदार ! इस प्रेमी पर कोई हथियार न चलाये, इसे जीता पकड़ लो, यह मेरे अस्तबल की शोभा बढ़ायेगा। जो इसे मेरे पास ले आयेगा, उसे धन से निहाल कर दूँगा।

योद्धागण चारों ओर से लपके; परन्तु किसी को साहस न होता था कि उसके निकट जा सके। कोई पुचकार रहा था, कोई फन्दे में फँसाने की फिक्र में था पर कोई उपाय सफल न होता था। वहाँ सिपाहियों का मेला-सा लगा हुआ था।

तब सारन्धा अपने खेमे से निकली और निर्भय होकर घोड़े के पास चली गयी। उसकी आँखों में प्रेम का प्रकाश था, छल का नहीं। घोड़े ने सिर झुका दिया। रानी ने उसकी गर्दन पर हाथ रखा और वह उसकी पीठ सहलाने लगी। घोड़े ने उसके अंचल में मुँह छिपा लिया। रानी उसकी रास पकड़ कर खेमे की ओर चली। घोड़ा इस तरह चुपचाप उसके पीछे चला मानो सदैव से उसका सेवक है।

पर बहुत अच्छा होता कि घोड़े ने सारन्धा से भी निष्ठुरता की होती। यह सुन्दर घोड़ा आगे चल कर इस राज-परिवार के निमित्त स्वर्ण जटित मृग साबित हुआ।

5

संसार एक रण-क्षेत्र है। इस मैदान में उसी सेनापति को विजय लाभ होता है, जो अवसर को पहचानता है। वह अवसर पर जितने उत्साह से आगे बढ़ता है, उतने ही उत्साह से आपत्ति के समय पीछे हट जाता है। वह वीर पुरुष राष्ट्र का निर्माता होता है और इतिहास उसके नाम पर यश के फूलों की वर्षा करता है।

पर इस मैदान में कभी-कभी ऐसे सिपाही भी जाते हैं, जो अवसर पर कदम बढ़ाना जानते हैं; लेकिन संकट में पीछे हटाना नहीं जानते। ये रणवीर पुरुष विजय को नीति की भेंट कर देते हैं। वे अपनी सेना का नाम मिटा देंगे, किन्तु जहाँ एक बार पहुँच गये हैं, वहाँ से कदम पीछे न हटायेंगे। उनमें कोई विरला ही संसार-क्षेत्र में विजय प्राप्त करता है; किंतु प्रायः उसकी हार विजय से भी अधिक गौरवात्मक होती है। अगर अनुभवशील सेनापति राष्ट्रों की नींव डालता है, तो आन पर जान देनेवाला, मुँह न मोड़नेवाला सिपाही राष्ट्र के भावों को उच्च करता है, और उसके हृदय पर नैतिक गौरव को अंकित कर देता है। उसे इस कार्यक्षेत्र में चाहे सफलता न हो, किन्तु जब किसी वाक्य या सभा में उसका नाम जबान पर आ जाता है, श्रोतागण एक स्वर से उसके कीर्ति-गौरव को प्रतिध्वनित कर देते हैं। सारन्धा 'आन' पर जान देनेवालों में थी।

शाहजादा मुहीउद्दीन चम्बल के किनारे से आगरे की ओर चला तो सौभाग्य उसके सिर पर मोर्छल हिलाता था। जब वह आगरे पहुँचा तो विजय देवी ने उसके लिये सिंहासन सजा दिया !

औरंगजेब गुणज्ञ था। उसने बादशाही सरदारों के अपराध क्षमा कर दिये, उनके राज्य-पद लौटा दिये और राजा चम्पतराय को उसके बहुमूल्य कृत्यों के उपलक्ष्य में बारह

हजारी मन्सब प्रदान किया। ओरछा से बनारस और बनारस से जमुना तक उसकी जागीर नियत की गयी। बुन्देला राजा फिर राज-सेवक बना, वह फिर सुख-विलास में डूबा और रानी सारन्धा फिर पराधीनता के शोक से घुलने लगी।

वली बहादुर खाँ बड़ा वाक्य-चतुर मनुष्य था। उसकी मृदुता ने शीघ्र ही उसे बादशाह आलमगीर का विश्वासपात्र बना दिया। उस पर राज-सभा में सम्मान की दृष्टि पड़ने लगी।

खाँ साहब के मन में अपने घोड़े के हाथ से निकल जाने का बड़ा शोक था। एक दिन कुँवर छत्रसाल उसी घोड़े पर सवार होकर सैर को गया था। वह खाँ साहब के महल की तरफ जा निकला। वली बहादुर ऐसे ही अवसर की ताक में था। उसने तुरन्त अपने सेवकों को इशारा किया। राजकुमार अकेला क्या करता ? पाँव-पाँव घर आया और उसने सारन्धा से सब समाचार बयान किया। रानी का चेहरा तमतमा गया। बोली, "मुझे इसका शोक नहीं कि घोड़ा हाथ से गया, शोक इसका है कि तू उसे खो कर जीता क्यों लौटा ? क्या तेरे शरीर में बुंदेलों का रक्त नहीं है ? घोड़ा न मिलता, न सही; किन्तु तुझे दिखा देना चाहिये था कि एक बुन्देला बालक से उसका घोड़ा छीन लेना हँसी नहीं है।"

यह कह कर उसने अपने पच्चीस योद्धाओं को तैयार होने की आज्ञा दी। स्वयं अस्त्र धारण किये और योद्धाओं के साथ वली बहादुर खाँ के निवास-स्थान पर जा पहुँची। खाँ साहब उसी घोड़े पर सवार हो कर दरबार चले गये थे, सारन्धा दरबार की तरफ चली, और एक क्षण में किसी वेगवती नदी के सदृश बादशाही दरबार के सामने जा पहुँची, यह कैफियत देखते ही दरबार में हलचल मच गयी। अधिकारी वर्ग इधर-उधर से आ कर जमा हो गये। आलमगीर भी सहन में निकल आये। लोग अपनी-अपनी तलवारें सँभालने लगे और चारों तरफ़ शोर मच गया। कितने ही नेत्रों ने इसी दरबार में अमरसिंह की तलवार की चमक देखी थी। उन्हें वही घटना फिर याद आ गयी।

सारन्धा ने उच्च स्वर से कहा—खाँ साहब, बड़ी लज्जा की बात है, आपने वही वीरता, जो चम्बल के तट पर दिखानी चाहिये थी, आज एक अबोध बालक के सम्मुख दिखायी है। क्या यह उचित था कि आप उससे घोड़ा छीन लेते ?

वली बहादुर खाँ की आँखों से अग्नि-ज्वाला निकल रही थी। वे कड़ी आवाज से बोले—किसी गैर को क्या मजाल है कि मेरी चीज अपने काम में लाये ?

रानी—वह आपकी चीज नहीं, मेरी है। मैंने उसे रणभूमि में पाया है और उस पर मेरा अधिकार है। क्या रण-नीति की इतनी मोटी बात भी आप नहीं जानते ?

खाँ साहब—वह घोड़ा मैं नहीं दे सकता, उसके बदले में सारा अस्तबल आपकी नजर है।

रानी—मैं अपना घोड़ा लूँगी।

खाँ साहब—मैं उसके बराबर जवाहरात दे सकता हूँ; परन्तु घोड़ा नहीं दे सकता!

रानी—तो फिर इसका निश्चय तलवार से होगा, बुन्देला योद्धाओं ने तलवारें सौंत लीं और निकट था कि दरबार की भूमि रक्त से प्लावित हो जाय, बादशाह आलमगीर ने बीच में आ कर कहा—रानी साहबा, आप सिपाहियों को रोकें। घोड़ा आपको मिल जायगा; परन्तु इसका मूल्य बहुत देना पड़ेगा।

रानी—मैं उसके लिये अपना सर्वस्व खोने को तैयार हूँ।

बादशाह—जागीर और मन्सब भी !

रानी—जागीर और मन्सब कोई चीज नहीं।

बादशाह—अपना राज्य भी ?

रानी—हाँ, राज्य भी।

बादशाह—एक घोड़े के लिए ?

रानी--नहीं, उस पदार्थ के लिए जो संसार में सबसे अधिक मूल्यवान् है।

बादशाह—वह क्या है ?

रानी—अपनी आन।

इस भाँति रानी ने अपने घोड़े के लिए अपनी विस्तृत जागीर, उच्च राज और राज-सम्मान सब हाथ से खोया और केवल इतना ही नहीं, भविष्य के लिए काँटे बोये, इस घड़ी से अन्त दशा तक चम्पतराय को शान्ति न मिली।

6

राजा चम्पतराय ने फिर ओरछे के किले में पदार्पण किया। उन्हें मन्सब और जागीर के हाथ से निकल जाने का अत्यन्त शोक हुआ; किन्तु उन्होंने अपने मुँह से शिकायत का एक शब्द भी नहीं निकाला, वे सारन्धा के स्वभाव को भली-भाँति जानते थे। शिकायत इस समय उसके आत्म-गौरव पर कुठार का काम करती।

कुछ दिन यहाँ शान्तिपूर्वक व्यतीत हुए; लेकिन बादशाह सारन्धा की कठोर बात भूला न था। वह क्षमा करना जानता ही न था। ज्यों ही भाइयों की ओर से निश्चिन्त हुआ, उसने एक बड़ी सेना चम्पतराय का गर्व चूर्ण करने के लिए भेजी और बाईस अनुभवशील सरदार इस मुहीम पर नियुक्त किये। शुभकरण बुन्देला बादशाह का सूबेदार था। वह चम्पतराय का बचपन का मित्र और सहपाठी था। उसने चम्पतराय को परास्त करने का बीड़ा उठाया। और भी कितने ही बुन्देला सरदार राजा से विमुख हो कर बादशाही सूबेदार से आ मिले। एक घोर संग्राम हुआ। भाइयों की तलवार रक्त से लाल हुई। यद्यपि इस समर में राजा को विजय प्राप्त हुई लेकिन उसकी शक्ति सदा के लिए क्षीण हो गयी। निकटवर्ती बुन्देला राजा जो चम्पतराय के बाहुबल थे, बादशाह के कृपाकांक्षी बन बैठे। साथियों में कुछ तो काम आये, कुछ दगा कर गये। यहाँ तक कि निज सम्बन्धियों ने भी आँखें चुरा लीं; परन्तु इन कठिनाइयों में भी चम्पतराय ने हिम्मत नहीं हारी, धीरज को न छोड़ा। उन्होंने ओरछा छोड़ दिया और वे तीन वर्ष तक बुंदलखंड के सघन पर्वतों पर छिपे फिरते रहे। बादशाही सेनाएँ शिकारी जानवरों की भाँति सारे देश में मँडरा रही थीं। आये-दिन राजा का किसी न किसी से सामना हो जाता था। सारन्धा सदैव उनके साथ रहती और उनका साहस बढ़ाया करती। बड़ी-बड़ी आपत्तियों में जब कि धैर्य लुप्त हो जाता—और आशा साथ छोड़ देती—आत्मरक्षा का धर्म उसे सँभाले रहता है। तीन साल के बाद अंत में बादशाह के सूबेदारों ने आलमगीर को सूचना दी कि इस शेर का शिकार आपके सिवाय और किसी से न होगा। उत्तर आया कि सेना को हटा लो और घेरा उठा लो। राजा ने समझा, संकट से निवृत्ति हुई, पर वह बात शीघ्र ही भ्रमात्मक सिद्ध हो गयी।

7

तीन सप्ताह से बादशाही सेना ने ओरछा घेर रखा है। जिस तरह कठोर वचन हृदय को छेद डालते हैं, उसी तरह तोपों के गोलों ने दीवारों को छेद डाला है। किले में बीस हजार आदमी घिरे हुए हैं, लेकिन उनमें आधे से अधिक स्त्रियाँ और उनसे कुछ ही कम बालक हैं। मर्दो की संख्या दिनोंदिन न्यून होती जाती है। आने-जाने के मार्ग चारों तरफ से बंद हैं। हवा का भी गुजर नहीं। रसद का सामान बहुत कम रह गया है। स्त्रियाँ पुरुषों और बालकों को जीवित रखने के लिए आप उपवास करती हैं। लोग बहुत हताश हो रहे हैं। औरतें सूर्य नारायण की ओर हाथ उठा-उठा कर शत्रु को कोसती हैं। बालकवृन्द मारे क्रोध के दीवार की आड़ से उन पर पत्थर फेंकते हैं, जो मुश्किल से दीवार के उस पार जा पाते हैं। राजा चम्पतराय स्वयं ज्वर से पीड़ित हैं। उन्होंने कई दिन से चारपाई नहीं छोड़ी! उन्हें देखकर लोगों को कुछ ढाढ़स होता था, लेकिन उनकी बीमारी से सारे किले में नैराश्य छाया हुआ है।

राजा ने सारंधा से कहा—आज शत्रु जरूर किले में घुस आयेंगे।

सारंधा—ईश्वर न करे कि इन आँखों से वह दिन देखना पड़े।

राजा—मुझे बड़ी चिंता इन अनाथ स्त्रियों और बालकों की है। गेहूँ के साथ यह घुन भी पिस जायेंगे।

सारन्धा—हम लोग यहाँ से निकल जायँ तो कैसा ?

राजा—इन अनाथों को छोड़ कर ?

सारन्धा—इस समय इन्हें छोड़ देने में ही कुशल है। हम न होंगे तो शत्रु इन पर कुछ दया ही करेंगे।

राजा—नहीं, यह लोग मुझसे न छोड़े जायँगे। मर्दों ने अपनी जान हमारी सेवा में अर्पण कर दी है, उनकी स्त्रियों और बच्चों को मैं कदापि नहीं छोड़ सकता।

सारन्धा—लेकिन यहाँ रह कर हम उनकी कुछ मदद भी तो नहीं कर सकते ?

राजा—उनके साथ प्राण तो दे सकते हैं। मैं उनकी रक्षा में अपनी जान लड़ा दूँगा। उनके लिए बादशाही सेना की खुशामद करूँगा, कारावास की कठिनाइयाँ सहूँगा, किन्तु इस संकट में उन्हें छोड़ नहीं सकता।

सारन्धा ने लज्जित हो कर सिर झुका लिया और सोचने लगी, निस्संदेह प्रिय साथियों को आग की आँच में छोड़ कर अपनी जान बचाना घोर नीचता है ! मैं ऐसी स्वार्थान्ध क्यों हो गयी हूँ ? लेकिन एकाएक विचार उत्पन्न हुआ। बोली—यदि आपको विश्वास हो जाय कि इन आदमियों के साथ कोई अन्याय न किया जायगा तब तो आपको चलने में कोई बाधा न होगी ?

राजा—(सोच कर) कौन विश्वास दिलायेगा ?

सारन्धा—बादशाह के सेनापति का प्रतिज्ञा-पत्र।

राजा—हाँ, तब मैं सानन्द चलूँगा।

सारन्धा विचार-सागर में डूबी। बादशाह के सेनापति से क्योंकर यह प्रतिज्ञा कराऊँ ? कौन यह प्रस्ताव ले कर वहाँ जायगा और निर्दयी ऐसी प्रतिज्ञा करने ही क्यों लगे? उन्हें तो अपनी विजय की पूरी आशा है। मेरे यहाँ ऐसा नीति-कुशल, वाकूपटु चतुर

कौन है जो इस दुस्तर कार्य को सिद्ध करे ? छत्रसाल चाहे तो कर सकता है। उसमें ये सब गुण मौजूद हैं।

इस तरह मन में निश्चय करके रानी ने छत्रसाल को बुलाया। यह उसके चारों पुत्रों में बुद्धिमान और साहसी था। रानी उसे सबसे अधिक प्यार करती थीं। जब छत्रसाल ने आ कर रानी को प्रणाम किया तो उनके कमल नेत्र सजल हो गये और हृदय से दीर्घ निःश्वास निकल गया।

छत्रसाल—माता, मेरे लिए क्या आज्ञा है ?

रानी—आज लड़ाई का क्या ढंग है ?

छत्रसाल—हमारे पचास योद्धा अब तक काम आ चुके हैं।

रानी—बुन्देलों की लाज अब ईश्वर के हाथ है।

छत्रसाल—हम आज रात को छापा मारेंगे।

रानी ने संक्षेप में अपना प्रस्ताव छत्रसाल के सामने उपस्थित किया और कहा—यह काम किसे सौंपा जाय ?

छत्रसाल—मुझको।

'तुम इसे पूरा कर दिखाओगे ?'

'हाँ, मुझे पूर्ण विश्वास है ?'

'अच्छा जाओ, परमात्मा तुम्हारा मनोरथ पूरा करे।'

छत्रसाल जब चला तो रानी ने उसे हृदय से लगा लिया और तब आकाश की ओर दोनों हाथ उठा कर कहा—दयानिधि, मैंने अपना तरुण और होनहार पुत्र बुन्देलों की आन के आगे भेंट कर दिया। अब इस आन को निभाना तुम्हारा काम है। मैंने बड़ी मूल्यवान् वस्तु अर्पित की है, इसे स्वीकार करो।

8

दूसरे दिन प्रातःकाल सारन्धा स्नान करके थाल में पूजा की सामग्री लिये मन्दिर को चली। उसका चेहरा पीला पड़ गया था और आँखों तले अँधेरा छाया जाता था। वह मंदिर के द्वार पर पहुँची थी कि उसके थाल में बाहर से आ कर एक तीर गिरा। तीर की नोक पर एक कागज का पुरजा लिपटा हुआ था। सारन्धा ने थाल मंदिर के चबूतरे पर रख दिया और पुर्जे को खोलकर देखा तो आनन्द से चेहरा खिल गया; लेकिन यह आनन्द क्षण-भर का था। हाय ! इस पुर्जे के लिए मैंने अपना प्रिय पुत्र हाथ से खो दिया है। कागज के टुकड़े को इतने महँगे दामों किसने लिया होगा ?

मन्दिर से लौटकर सारन्धा राजा चम्पतराय के पास गयी और बोली—'प्राणनाथ, आपने जो वचन दिया था उसे पूरा कीजिये।' राजा ने चौंक कर पूछा, 'तुमने अपना वादा पूरा कर दिया ?' रानी ने वह प्रतिज्ञा-पत्र राजा को दे दिया। चम्पतराय ने उसे गौर से देखा फिर बोले—अब मैं चलूँगा और ईश्वर ने चाहा तो एक बार फिर शत्रुओं की खबर लूँगा। लेकिन सारन, सच बताओ, इस पत्र के लिए क्या देना पड़ा है ?

रानी ने कुंठित स्वर से कहा—बहुत कुछ।

राजा—सुनूँ ?

रानी—एक जवान पुत्र।

राजा को बाण-सा लग गया। पूछा—कौन ? अंगदराय ?

रानी—नहीं।

राजा—रतनसाह ?

रानी—नहीं।

राजा—छत्रसाल ?

रानी—हाँ।

जैसे कोई पक्षी गोली खाकर परों को फड़फड़ाता है और तब बेदम हो कर गिर पड़ता है, उसी भाँति चम्पतराय पलंग से उछले और फिर अचेत होकर गिर पड़े। छत्रसाल उनका परम प्रिय पुत्र था। उनके भविष्य की सारी कामनाएँ उसी पर अवलम्बित थीं। जब चेत हुआ तब बोले, 'सारन, तुमने बुरा किया।'

अँधेरी रात थी। रानी सारन्धा घोड़े पर सवार चम्पतराय को पालकी में बैठाये किले के गुप्त मार्ग से निकली जाती थी। आज से बहुत काल पहले एक दिन ऐसे ही अँधेरी दुःखमयी रात्रि थी। तब सारन्धा ने शीतलादेवी को कुछ कठोर वचन कहे थे। शीतलादेवी ने उस समय जो भविष्यवाणी की थी, वह आज पूरी हुई। क्या सारन्धा ने उसका जो उत्तर दिया था, वह भी पूरा होकर रहेगा ?

9

मध्याह्न था। सूर्यनारायण सिर पर आकर अग्नि की वर्षा कर रहे थे। शरीर को झुलसाने वाली प्रचण्ड, प्रखर वायु वन और पर्वत में आग लगाती फिरती थी। ऐसा विदित होता था, मानो अग्निदेव की समस्त सेना गरजती हुई चली आ रही है। गगन-मण्डल इस भय से काँप रहा था। रानी सारन्धा घोड़े पर सवार, चम्पतराय को लिये, पश्चिम की तरफ चली जाती थी। ओरछा दस कोस पीछे छूट चुका था और प्रतिक्षण यह अनुमान स्थिर होता जाता था कि अब हम भय के क्षेत्र से बाहर निकल आये। राजा पालकी में अचेत पड़े हुए थे और कहार पसीने में सराबोर थे। पालकी के पीछे पाँच सवार घोड़ा बढ़ाये चले आते थे, प्यास के मारे सबका बुरा हाल था। तालु सूखा जाता था। किसी वृक्ष की छाँह और कुएँ की तलाश में आँखें चारों ओर दौड़ रही थीं।

अचानक सारन्धा ने पीछे की तरफ फिर कर देखा, तो उसे सवारों का एक दल आता हुआ दिखायी दिया। उसका माथा ठनका कि अब कुशल नहीं है। यह लोग अवश्य हमारे शत्रु हैं। फिर विचार हुआ कि शायद मेरे राजकुमार अपने आदमियों को लिये हमारी सहायता को आ रहे हैं। नैराश्य में भी आशा साथ नहीं छोड़ती। कई मिनट तक वह इसी आशा और भय की अवस्था में रही। यहाँ तक कि वह दल निकट आ गया और सिपाहियों के वस्त्र साफ नजर आने लगे। रानी ने एक ठण्डी साँस ली, उसका शरीर तृणवत् काँपने लगा। यह बादशाही सेना के लोग थे।

सारन्धा ने कहारों से कहा—डोली रोक लो। बुन्देला सिपाहियों ने भी तलवारें खींच लीं। राजा की अवस्था बहुत शोचनीय थी; किन्तु जैसे दबी हुई आग हवा लगते ही प्रदीप्त हो जाती है, उसी प्रकार इस संकट का ज्ञान होते ही उनके जर्जर शरीर में वीरात्मा चमक

उठी। वे पालकी का पर्दा उठा कर बाहर निकल आये। धनुष-बाण हाथ में ले लिया; किन्तु वह धनुष जो उनके हाथ में इन्द्र का वज्र बन जाता था, इस समय जरा भी न झुका। सिर में चक्कर आया, पैर थर्राये और वे धरती पर गिर पड़े। भावी अमंगल की सूचना मिल गयी। उस पंखरहित पक्षी के सदृश, जो साँप को अपनी तरफ आते देख कर ऊपर को उचकता और फिर गिर पड़ता है, राजा चम्पतराय फिर सँभल उठे और फिर गिर पड़े। सारन्धा ने उन्हें सँभालकर बैठाया और रो कर बोलने की चेष्टा की, परन्तु मुँह से केवल इतना निकला—प्राणनाथ ! इसके आगे मुँह से एक शब्द भी न निकल सका। आन पर मरने वाली सारन्धा इस समय साधारण स्त्रियों की भाँति शक्तिहीन हो गयी, लेकिन एक अंश तक यह निर्बलता स्त्री-जाति की शोभा है।

चम्पतराय बोले—सारन, देखो, हमारा एक वीर जमीन पर गिरा। शोक ! जिस आपत्ति से यावज्जीवन डरता रहा, उसने इस अन्तिम समय में आ घेरा। मेरी आँखों के सामने शत्रु तुम्हारे कोमल शरीर में हाथ लगायेंगे, और मैं जगह से हिल भी न सकूँगा। हाय! मृत्यु, तू कब आयेगी ! यह कहते-कहते उन्हें एक विचार आया। तलवार की तरफ हाथ बढ़ाया, मगर हाथों में दम न था। तब सारन्धा से बोले—प्रिये, तुमने कितने ही अवसरों पर मेरी आन निभायी है।

इतना सुनते ही सारन्धा के मुरझाये हुए मुख पर लाली दौड़ गयी। आँसू सूख गये। इस आशा में कि मैं पति के कुछ काम आ सकती हूं, उसके हृदय में बल का संचार कर दिया। वह राजा की ओर विश्वासोत्पादक भाव से देख कर बोली—ईश्वर ने चाहा तो मरते दम तक निभाऊंगी।

रानी ने समझा, राजा मुझे प्राण देने का संकेत कर रहे हैं।

चम्पतराय—तुमने मेरी बात कभी नहीं टाली।

सारन्धा—मरते दम तक न टालूंगी।

राजा—यह मेरी अन्तिम याचना है। इसे अस्वीकार न करना।

सारन्धा ने तलवार को निकाल कर अपने वक्षस्थल पर रख लिया और कहा—यह आपकी आज्ञा नहीं है। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मरूँ तो यह मस्तक आपके पद-कमलों पर हो।

चम्पतराय—तुमने मेरा मतलब नहीं समझा। क्या तुम मुझे इसलिए शत्रुओं के हाथ में छोड़ जाओगी कि मैं बेड़ियां पहने हुए दिल्ली की गलियों में निन्दा का पात्र बनूँ ?

रानी ने जिज्ञासा की दृष्टि से राजा को देखा। वह उनका मतलब न समझी।

राजा—मैं तुमसे एक वरदान माँगता हूं।

रानी—सहर्ष मांगिए।

राजा—यह मेरी अन्तिम प्रार्थना है। जो कुछ कहूंगा, करोगी ?

रानी—सिर के बल करूँगी।

राजा—देखो, तुमने वचन दिया है। इन्कार न करना।

रानी—(काँप कर) आपके कहने की देर है।

राजा—अपनी तलवार मेरी छाती में चुभा दो।

रानी के हृदय पर वज्रघात-सा हो गया। बोली—जीवननाथ ! इसके आगे वह और

कुछ न बोल सकी। आँखों में नैराश्य छा गया।.

राजा—मैं बेड़ियाँ पहनने के लिए जीवित रहना नहीं चाहता।

रानी—मुझसे यह कैसे होगा ?

पाँचवाँ और अन्तिम सिपाही धरती पर गिरा। राजा ने झुँझला कर कहा—इसी जीवन पर आन निभाने का गर्व था ?

बादशाह के सिपाही राजा की तरफ लपके। राजा ने नैराश्यपूर्ण भाव से रानी की ओर देखा। रानी क्षण भर अनिश्चित रूप से खड़ी रही; लेकिन संकट में हमारी निश्चयात्मक शक्ति बलवान हो जाती है। निकट था कि सिपाही लोग राजा को पकड़ लें कि सारन्धा ने दामिनी की भाँति लपक कर तलवार राजा के हृदय में चुभा दी।

प्रेम की नाव प्रेम के सागर में डूब गयी। राजा के हृदय से रुधिर की धारा निकल रही थी; पर चेहरे पर शान्ति छाई हुई थी।

कैसा हृदय है ! वह स्त्री जो अपने पति पर प्राण देती थी आज उसकी प्राणघातिका है ! जिस हृदय से आलिंगित होकर उसने यौवनसुख लूटा, जो हृदय उसकी अभिलाषाओं का केन्द्र था, जो हृदय उसके अभिमान का पोषक था, उसी हृदय को सारन्धा की तलवार छेद रही है। किसी स्त्री की तलवार से ऐसा काम हुआ है ?

आह ! आत्माभिमान का कैसा विषादमय अंत है। उदयपुर और मारवाड़ के इतिहास में भी आत्म-गौरव की ऐसी घटनाएँ नहीं मिलतीं।

बादशाही सिपाही सारन्धा का यह साहस और धैर्य देखकर दंग रह गये।

सरदार ने आगे बढ़कर कहा रानी साहिबा, खुदा गवाह है, हम सब आपके गुलाम हैं। आपका जो हुक्म हो, उसे ब-सरो चश्म बजा लायेंगे।

सारन्धा ने कहा—अगर हमारे पुत्रों में से कोई जीवित हो, तो ये दोनों लाशें उसे सौंप देना।

यह कह कर उसने वही तलवार अपने हृदय में चुभा ली। जब वह अचेत हो कर धरती पर गिरी, तो उसका सिर राजा चम्पतराय की छाती पर था।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू, 'जमाना', सितम्बर, 1910 में। उर्दू 'प्रेम पचीसी' में संकलित। हिन्दी रूप 'जैन हितैषी', अगस्त, 1917 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-6 में संकलित।]

बड़े घर की बेटी

बेनीमाधव सिंह गौरीपुर गाँव के जमींदार और नम्बरदार थे। उनके पितामह किसी समय बड़े धन-धान्य संपन्न थे। गाँव का पक्का तालाब और मंदिर जिनकी अब मरम्मत भी मुश्किल थी, उन्हीं की कीर्ति-स्तंभ थे। कहते हैं, इस दरवाजे पर हाथी झूमता था, अब उसकी जगह एक बूढ़ी भैंस थी, जिसके शरीर में अस्थि-पंजर के सिवा और कुछ शेष न रहा था; पर दूध शायद बहुत देती थी; क्योंकि एक न एक आदमी हाँड़ी लिये उसके सिर पर सवार ही रहता था। बेनीमाधव सिंह अपनी आधी से अधिक संपत्ति वकीलों को भेंट कर

चुके थे। उनकी वर्तमान आय एक हजार रुपये वार्षिक से अधिक न थी। ठाकुर साहब के दो बेटे थे। बड़े का नाम श्रीकंठ सिंह था। उसने बहुत दिनों के परिश्रम और उद्योग के बाद बी. ए. की डिग्री प्राप्त की थी। अब एक दफ्तर में नौकर था। छोटा लड़का लालबिहारी सिंह दोहरे बदन का, सजीला जवान था। भरा हुआ मुखड़ा, चौड़ी छाती। भैंस का दो सेर ताजा दूध वह उठ कर सवेरे पी जाता था। श्रीकंठ सिंह की दशा बिलकुल विपरीत थी। इन नेत्रप्रिय गुणों को उन्होंने बी. ए.—इन्हीं दो अक्षरों पर न्योछावर कर दिया था। इन दो अक्षरों ने उनके शरीर को निर्बल और चेहरे को कांतिहीन बना दिया था। इसी से वैद्यक ग्रंथों पर उनका विशेष प्रेम था। आयुर्वेदिक औषधियों पर उनका अधिक विश्वास था। शाम-सबेरे से उनके कमरे से प्रायः खरल की सुरीली कर्णमधुर ध्वनि सुनायी दिया करती थी। लाहौर और कलकत्ते के वैद्यों से बड़ी लिखा-पढ़ी रहती थी।

श्रीकंठ इस अँगरेजी डिग्री के अधिपति होने पर भी अँगरेजी सामाजिक प्रथाओं के विशेष प्रेमी न थे। बल्कि वह बहुधा बड़े जोर से उसकी निंदा और तिरस्कार किया करते थे। इसी से गाँव में उनका बड़ा सम्मान था। दशहरे के दिनों में वह बड़े उत्साह से रामलीला में सम्मिलित होते और स्वयं किसी न किसी पात्र का पार्ट लेते थे। गौरीपुर में रामलीला के वही जन्मदाता थे। प्राचीन हिंदू सभ्यता का गुणगान उनकी धार्मिकता का प्रधान अंग था। सम्मिलित कुटुम्ब के तो वह एक मात्र उपासक थे। आजकल स्त्रियों को कुटुम्ब में मिल-जुल कर रहने की जो अरुचि होती है, उसे वह जाति और देश दोनों के लिए हानिकारक समझते थे। यही कारण था कि गाँव की ललनाएँ उनकी निंदक थीं। कोई-कोई तो उन्हें अपना शत्रु समझने में भी संकोच न करती थीं। स्वयं उनकी पत्नी को ही इस विषय में उनसे विरोध था। यह इसलिए नहीं कि उसे अपने सास-ससुर, देवर या जेठ आदि से घृणा थी, बल्कि उसका विचार था कि यदि बहुत कुछ सहने और तरह देने पर भी परिवार के साथ निर्वाह न हो सके, तो आये-दिन की कलह से जीवन को नष्ट करने की अपेक्षा यही उत्तम है कि अपनी खिचड़ी अलग पकायी जाये।

आनंदी एक बड़े उच्च कुल की लड़की थी। उसके बाप एक छोटी-सी रियासत के ताल्लुकेदार थे। विशाल भवन, एक हाथी, तीन कुत्ते, बाज, बहरी-शिकरे, झाड़-फानूस, आनरेरी मजिस्ट्रेटी, और ऋण, जो एक प्रतिष्ठित ताल्लुकेदार के भोग्य पदार्थ हैं, सभी यहाँ विद्यमान थे। नाम था भूपसिंह। बड़े उदार-चित्त और प्रतिभाशाली पुरुष थे, पर दुर्भाग्य से लड़का एक भी न था। सात लड़कियां हुई और दैवयोग से सब की सब जीवित रहीं। पहली उमंग में तो उन्होंने तीन ब्याह दिल खोल कर किये; पर पंद्रह-बीस हजार रुपयों का कर्ज सिर पर हो गया, तो आँखें खुलीं, हाथ समेट लिया। आनंदी चौथी लड़की थी। वह अपनी सब बहनों से अधिक रूपवती और गुणवती थी। इससे ठाकुर भूपसिंह उसे बहुत प्यार करते थे। सुन्दर संतान को कदाचित् उसके माता-पिता भी अधिक चाहते हैं। ठाकुर साहब बड़े धर्म-संकट में थे कि इसका विवाह कहाँ करें ? न तो यही चाहते थे कि ऋण का बोझ बढ़े और न यही स्वीकार था कि उसे अपने को भाग्यहीन समझना पड़े। एक दिन श्रीकंठ उनके पास किसी चंदे का रुपया माँगने आए। शायद नागरी-प्रचार का चंदा था। भूपसिंह उनके स्वभाव पर रीझ गये और धूमधाम से श्रीकंठसिंह का आनंदी के साथ ब्याह हो गया।

आनंदी अपने नये घर में आयी, तो यहाँ का रंग-ढंग कुछ और ही देखा। जिस टीम-टाम की उसे बचपन से ही आदत पड़ी हुई थी, वह यहाँ नाम-मात्र को भी न थी। हाथी-घोड़ों का तो कहना ही क्या, कोई सजी हुई सुंदर बहली तक न थी। रेशमी स्लीपर साथ लायी थी, पर यहाँ बाग कहाँ। मकान में खिड़कियाँ तक न थीं। न जमीन पर फर्श, न दीवार पर तस्वीरें। यह एक सीधा-सादा देहाती गृहस्थ का मकान था, किन्तु आनंदी ने थोड़े ही दिनों में अपने को इस नयी अवस्था के ऐसा अनुकूल बना लिया, मानो उसने विलास के सामान कभी देखे ही न थे।

2

एक दिन दोपहर के समय लालबिहारी सिंह दो चिड़ियाँ लिये हुए आया और भावज से बोला—जल्दी से पका दो, मुझे भूख लगी है। आनंदी भोजन बनाकर उसकी राह देख रही थी। अब वह नया व्यंजन बनाने बैठी। हाँड़ी में देखा, तो घी पाव-भर भी न था। बड़े घर की बेटी, किफायत क्या जाने। उसने सब घी मांस में डाल दिया। लालबिहारी खाने बैठा, तो दाल में घी न था, बोला—दाल में घी क्यों नहीं छोड़ा ?

आनंदी ने कहा—घी सब मांस में पड़ गया। लालबिहारी जोर से बोला—अभी परसों घी आया है। इतना जल्द उठ गया ?

आनंदी ने उत्तर दिया—आज तो कुल पाव-भर रहा होगा। वह सब मैंने मांस में डाल दिया।

जिस तरह सूखी लकड़ी जल्दी से जल उठती है—उसी तरह क्षुधा से बावला मनुष्य जरा-जरा सी बात पर तिनक जाता है। लालबिहारी को भावज की यह ढिठाई बहुत बुरी मालूम हुई, तिनक कर बोला—मैके में तो चाहे घी की नदी बहती हो !

स्त्री गालियाँ सह लेती हैं, मार भी सह लेती है; पर मैके की निंदा उनसे नहीं सही जाती। आनंदी मुँह फेर कर बोली—हाथी मरा भी, तो नौ लाख का। वहाँ इतना घी नित्य नाई-कहार खा जाते हैं।

लालबिहारी जल गया, थाली उठाकर पलट दी, और बोला—जी चाहता है, जीभ पकड़ कर खींच लूँ।

आनंदी को भी क्रोध आ गया। मुँह लाल हो गया, बोली—वह होते तो आज इसका मज़ा चखाते।

अब अपढ़, उजड्ड ठाकुर से न रहा गया। उसकी स्त्री एक साधारण जमींदार की बेटी थी। जब जी चाहता, उस पर हाथ साफ कर लिया करता था। खड़ाऊँ उठाकर आनंदी की ओर जोर से फेंकी, और बोला—जिसके गुमान पर भूली हुई हो, उसे भी देखूँगा और तुम्हें भी।

आनंदी ने हाथ से खड़ाऊँ रोकी, सिर बच गया। पर उँगली में बड़ी चोट आयी। क्रोध के मारे हवा से हिलते पत्ते की भाँति काँपती हुई अपने कमरे में आ कर खड़ी हो गयी। स्त्री का बल और साहस, मान और मर्यादा पति तक है। उसे अपने पति के ही बल और पुरुषत्व का घंमड होता है। आनंदी खून का घूँट पी कर रह गयी।

3

श्रीकंठ सिंह शनिवार को घर आया करते थे। वृहस्पति को यह घटना हुई थी। दो दिन तक आनंदी कोप-भवन में रही। न कुछ खाया न पिया, उनकी बाट देखती रही। अंत में शनिवार को वह नियमानुकूल संध्या समय घर आये और बाहर बैठ कर कुछ इधर-उधर की बातें, कुछ देश-काल संबंधी समाचार तथा कुछ नये मुकदमों आदि की चर्चा करने लगे। यह वार्तालाप दस बजे रात तक होता रहा। गाँव के भद्र पुरुषों को इन बातों में ऐसा आनंद मिलता था कि खाने-पीने की भी सुधि न रहती थी। श्रीकंठ को पिंड छुड़ाना मुश्किल हो जाता था। ये दो-तीन घंटे आनंदी ने बड़े कष्ट से काटे! किसी तरह भोजन का समय आया। पंचायत उठी। एकांत हुआ, तो लालबिहारी ने कहा—भैया, आप जरा भाभी को समझा दीजिएगा कि मुँह सँभाल कर बातचीत किया करें, नहीं तो एक दिन अनर्थ हो जायेगा।

बनीमाधव सिंह ने बेटे की ओर साक्षी दी—हाँ, बहू-बेटियों का यह स्वभाव अच्छा नहीं कि मर्दों के मुँह लगें।

लालबिहारी—वह बड़े घर की बेटी हैं, तो हम भी कोई कुर्मी-कहार नहीं हैं।

श्रीकंठ ने चिंतित स्वर से पूछा—आखिर बात क्या हुई ?

लालबिहारी ने कहा—कुछ भी नहीं; यों ही आप ही आप उलझ पड़ीं। मैके के सामने हम लोगों को कुछ समझती ही नहीं।

श्रीकंठ खा-पी कर आनंदी के पास गये। वह भरी बैठी थी। यह हज़रत भी कुछ तीखे थे। आनंदी ने पूछा—चित्त तो प्रसन्न है।

श्रीकंठ बोले—बहुत प्रसन्न है। पर तुमने आजकल घर में यह क्या उपद्रव मचा रखा है ?

आनंदी की त्योरियों पर बल पड़ गये, झुँझलाहट के मारे बदन में ज्वाला-सी दहक उठी। बोली—जिसने तुमसे यह आग लगायी है, उसे पाऊँ, मुँह झुलस दूँ।

श्रीकंठ—इतनी गरम क्यों होती हो, बात तो कहो।

आनंदी—क्या कहूँ, यह मेरे भाग्य का फेर है ! नहीं तो गँवार छोकरा, जिसको चपरासगिरी करने का भी शऊर नहीं, मुझे खड़ाऊँ से मार कर यों न अकड़ता।

श्रीकंठ—सब हाल साफ-साफ कहो, तो मालूम हो। मुझे तो कुछ पता नहीं।

आनंदी—परसों तुम्हारे लाड़ले भाई ने मुझसे मांस पकाने को कहा। घी हाँड़ी में पाव-भर से अधिक न था। वह सब मैंने मांस में डाल दिया। जब खाने बैठा तो कहने लगा—दाल में घी क्यों नहीं है। बस, इसी पर मेरे मैके को बुरा-भला कहने लगा—मुझसे न रहा गया। मैंने कहा कि वहाँ इतना घी तो नाई-कहार खा जाते हैं, और किसी को जान भी नहीं पड़ता। बस इतनी सी बात पर इस अन्यायी ने मुझ पर खड़ाऊँ फेंक मारी। यदि हाथ से न रोक लूँ, तो सिर फट जाये। उसी से पूछो, मैंने जो कुछ कहा है, वह सच है या झूठ।

श्रीकंठ की आँखें लाल हो गयीं। बोले—यहाँ तक हो गया, इस छोकरे का यह साहस !

आनंदी स्त्रियों के स्वभावानुसार रोने लगी, क्योंकि आँसू उनकी पलकों पर रहते हैं। श्रीकंठ बड़े धैर्यवान और शांत पुरुष थे। उन्हें कदाचित् ही कभी क्रोध आता था; स्त्रियों के

आँसू पुरुषों की क्रोधाग्नि भड़काने में तेल का काम देते हैं। रात भर करवटें बदलते रहे। उद्विग्नता के कारण पलक तक नहीं झपकी। प्रातःकाल अपने बाप के पास जाकर बोले—दादा अब इस घर में मेरा निबाह न होगा।

इस तरह की विद्रोह-पूर्ण बातें कहने पर श्रीकंठ ने कितनी ही बार अपने कई मित्रों को आड़े हाथों लिया था; परन्तु दुर्भाग्य, आज उन्हें स्वयं वे ही बातें अपने मुँह से कहनी पड़ीं; दूसरों को उपदेश देना भी कितना सहज है।

बेनीमाधव सिंह घबरा उठे और बोले—क्यों ?

श्रीकंठ—इसलिए कि मुझे भी अपनी मान-प्रतिष्ठा का कुछ विचार है। आपके घर में अब अन्याय और हठ का प्रकोप हो रहा है। जिनको बड़ों का आदर-सम्मान करना चाहिए, वे उनके सिर चढ़ते हैं। मैं दूसरे का नौकर ठहरा घर पर रहता नहीं। यहाँ मेरे पीछे स्त्रियों पर खड़ाऊँ और जूतों की बौछारें होती हैं। कड़ी बात तक चिन्ता नहीं। कोई एक की दो कह ले, वहाँ तक मैं सह सकता हूँ किन्तु यह कदापि नहीं हो सकता कि मेरे ऊपर लात-घूँसे पड़ें और मैं दम न मारूँ।

बेनीमाधव सिंह कुछ जवाब न दे सके। श्रीकंठ सदैव उनका आदर करते थे। उनके ऐसे तेवर देख कर बूढ़ा ठाकुर अवाक् रह गया। केवल इतना ही बोला—बेटा, तुम बुद्धिमान हो कर ऐसी बातें करते हो ? स्त्रियाँ इस तरह घर का नाश कर देती हैं। उनको बहुत सिर चढ़ाना अच्छा नहीं।

श्रीकंठ—इतना मैं जानता हूँ, आपके आशीर्वाद से ऐसा मूर्ख नहीं हूँ। आप स्वयं जानते हैं कि मेरे ही समझाने-बुझाने से, इसी गाँव में कई घर सँभल गये, पर जिस स्त्री की मान-प्रतिष्ठा का ईश्वर के दरबार में उत्तरदाता हूँ, उसके प्रति ऐसा घोर अन्याय और पशुवत् व्यवहार मुझे असह्य है। आप सच मानिए, मेरे लिए यही कुछ कम नहीं है कि लालबिहारी को कुछ दंड नहीं देता।

अब बेनीमाधव सिंह भी गरमाये। ऐसी बातें और न सुन सके। बोले—लालबिहारी तुम्हारा भाई है। उससे जब कभी भूल-चूक हो, उसके कान पकड़ो। लेकिन··

श्रीकंठ—लालबिहारी को मैं अब अपना भाई नहीं समझता।

बेनीमाधव सिंह—स्त्री के पीछे ?

श्रीकंठ—जी नहीं, उसकी क्रूरता और अविवेक के कारण।

दोनों कुछ देर चुप रहे। ठाकुर साहब लड़के का क्रोध शांत करना चाहते थे लेकिन यह नहीं स्वीकार करना चाहते थे कि लालबिहारी ने कोई अनुचित काम किया है। इसी बीच में गाँव के और कई सज्जन हुक्के-चिलम के बहाने वहाँ आ बैठे। कई स्त्रियों ने जब यह सुना कि श्रीकंठ पत्नी के पीछे पिता से लड़ने को तैयार है, तो उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। दोनों पक्षों की मधुर वाणियाँ सुनने के लिए उनकी आत्माएँ तिलमिलाने लगीं। गाँव में कुछ ऐसे कुटिल मनुष्य भी थे, जो इस कुल की नीतिपूर्ण गति पर मन ही मन जलते थे। वे कहा करते थे—श्रीकंठ अपने बाप से दबता है, इसीलिए वह दब्बू है। उसने विद्या पढ़ी, इसलिए वह किताबों का कीड़ा है। बेनीमाधव सिंह उसकी सलाह के बिना कोई काम नहीं करते, यह उनकी मूर्खता है। इन महानुभावों की शुभकामनाएँ आज पूरी होती दिखायी दीं। कोई हुक्का पीने के बहाने और कोई लगान की रसीद दिखाने आ कर बैठ गया। बेनी

माधव सिंह पुराने आदमी थे। इन भावों को ताड़ गये। उन्होंने निश्चय किया चाहे कुछ ही क्यों न हो, इन द्रोहियों को ताली बजाने का अवसर न दूँगा। तुरंत कोमल शब्दों में बोले—बेटा मैं तुमसे बाहर नहीं हूँ। तुम्हारा जो जी चाहे करो, अब तो लड़के से अपराध हो गया।

इलाहाबाद का अनुभव-रहित झल्लाया हुआ ग्रेजुएट इस बात को न समझ सका। उसे डिबेटिंग-क्लब में अपनी बात पर अड़ने की आदत थी, इन हथकंडों की उसे क्या खबर ? बाप ने जिस मतलब से बात पलटी थी, वह उसकी समझ में न आयी। बोला—लालबिहारी के साथ अब इस घर में नहीं रह सकता।

बेनीमाधव—बेटा, बुद्धिमान लोग मूर्खो की बात पर ध्यान नहीं देते। वह बेसमझ लड़का है। उससे जो कुछ भूल हुई, उसे तुम बड़े हो कर क्षमा करो।

श्रीकंठ—उसकी इस दुष्टता को मैं कदापि नहीं सह सकता। या तो वही घर में रहेगा, या मैं ही। आपको यदि वह अधिक प्यारा है, तो मुझे विदा कीजिए, मैं अपना भार आप सँभाल लूँगा। यदि मुझे रखना चाहते हैं तो उससे कहिए, जहाँ चाहे चला जाये। बस यह मेरा अंतिम निश्चय है।

लालबिहारी सिंह दरवाजे की चौखट पर चुपचाप खड़ा बड़े भाई की बातें सुन रहा था। वह उनका बहुत आदर करता था। उसे कभी इतना साहस न हुआ था कि श्रीकंठ के सामने चारपाई पर बैठ जाय, हुक्का पी ले या पान खा ले। बाप का भी वह इतना मान न करता था। श्रीकंठ का भी उस पर हार्दिक स्नेह था। अपने होश में उन्होंने कभी उसे घुड़का तक न था। जब वह इलाहाबाद से आते, तो उसके लिए कोई न कोई वस्तु अवश्य लाते। मुगदर की जोड़ी उन्होंने ही बनवा दी थी। पिछले साल जब उसने अपने से ड्योढ़े जवान को नागपंचमी के दिन दंगल में पछाड़ दिया, तो उन्होंने पुलकित हो कर अखाड़े में ही जाकर उसे गले से लगा लिया था, पाँच रुपये के पैसे लुटाये थे। ऐसे भाई के मुँह से आज ऐसी हृदय-विदारक बात सुन कर लालबिहारी को बड़ी ग्लानि हुई। वह फूट-फूट कर रोने लगा। इसमें संदेह नहीं कि अपने किये पर पछता रहा था। भाई के आने से एक दिन पहले से उसकी छाती धड़कती थी कि देखूँ भैया क्या कहते हैं। मैं उनके सम्मुख कैसे जाऊँगा, उनसे कैसे बोलूँगा, मेरी आँखें उनके सामने कैसे उठेंगी। उसने समझा था कि भैया मुझे बुला कर समझा देंगे। इस आशा के विपरीत आज उसने उन्हें निर्दयता की मूर्ति बने हुए पाया। वह मूर्ख था। परंतु उसका मन कहता था कि भैया मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। यदि श्रीकंठ उसे अकेले में बुला कर दो-चार बातें कह देते; इतना ही नहीं दो-चार तमाचे भी लगा देते तो कदाचित् उसे इतना दुःख न होता; पर भाई का यह कहना कि अब मैं इसकी सूरत नहीं देखना चाहता, लालबिहारी से सहा न गया। वह रोता हुआ घर आया। कोठरी में जाकर कपड़े पहने, आँखें पोंछीं, जिसमें कोई यह न समझे कि रोता था। तब आनंदी के द्वार पर आकर बोला—भाभी, भैया ने निश्चय किया है कि वह मेरे साथ इस घर में न रहेंगे। अब वह मेरा मुँह नहीं देखना चाहते, इसलिए अब मैं जाता हूँ। उन्हें फिर मुँह न दिखाऊँगा। मुझसे जो कुछ अपराध हुआ, उसे क्षमा करना।

यह कहते-कहते लालबिहारी का गला भर आया।

4

जिस समय लालबिहारी सिंह सिर झुकाये आनंदी के द्वार पर खड़ा था, उसी समय श्रीकंठ सिंह भी आँखें लाल किये बाहर से आये। भाई को खड़ा देखा, तो घृणा से आँखें फेर लीं, और कतरा कर निकल गये। मानो उसकी परछाहीं से दूर भागते हों।

आनंदी ने लालबिहारी की शिकायत तो की थी, लेकिन अब मन में पछता रही थी। वह स्वभाव से ही दयावती थी। उसे इसका तनिक भी ध्यान न था कि बात इतनी बढ़ जायगी। वह मन में अपने पति पर झुँझला रही थी कि यह इतने गरम क्यों होते हैं। उस पर यह भय भी लगा हुआ था कि कहीं मुझसे इलाहाबाद चलने को कहें, तो कैसे क्या करूँगी। इस बीच में जब उसने लालबिहारी को दरवाजे पर खड़े यह कहते सुना कि अब मैं जाता हूँ, मुझसे जो कुछ अपराध हुआ, क्षमा करना, तो उसका रहा-सहा क्रोध भी पानी हो गया। वह रोने लगी। मन का मैल धोने के लिए नयन-जल से उपयुक्त और कोई वस्तु नहीं है।

श्रीकंठ को देख कर आनंदी ने कहा—लाला बाहर खड़े बहुत रो रहे हैं।

श्रीकंठ—तो मैं क्या करूँ ?

आनंदी—भीतर बुला लो। मेरी जीभ में आग लगे। मैंने कहाँ से यह झगड़ा उठाया।

श्रीकंठ—मैं न बुलाऊँगा।

आनंदी—पछताओगे। उन्हें बहुत ग्लानि हो गयी है, ऐसा न हो, कहीं चल दें।

श्रीकंठ न उठे। इतने में लालबिहारी ने फिर कहा—भाभी, भैया से मेरा प्रणाम कह दो। वह मेरा मुँह नहीं देखना चाहते। इसलिए मैं भी अपना मुँह उन्हें न दिखाऊँगा।

लालबिहारी इतना कह कर लौट पड़ा। और शीघ्रता से दरवाजे की ओर बढ़ा। अंत में आनंदी कमरे से निकली और उसका हाथ पकड़ लिया। लालबिहारी ने पीछे फिर कर देखा और आँखों में आँसू भरे बोला—मुझे जाने दो।

आनंदी—कहाँ जाते हो ?

लालबिहारी—जहाँ कोई मेरा मुँह न देखे।

आनंदी—मैं न जाने दूँगी ?

लालबिहारी—मैं तुम लोगों के साथ रहने योग्य नहीं हूँ।

आनंदी—तुम्हें मेरी सौगंध, अब एक पग भी आगे न बढ़ना।

लालबिहारी—जब तक मुझे यह न मालूम हो जाय कि भैया का मन मेरी तरफ से साफ हो गया, तब तक मैं इस घर में कदापि न रहूँगा।

आनंदी—मैं इश्वर को साक्षी दे कर कहती हूँ कि तुम्हारी ओर से मेरे मन में तनिक भी मैल नहीं है।

अब श्रीकंठ का हृदय पिघला। उन्होंने बाहर आ कर लालबिहारी को गले लगा लिया। दोनों भाई खूब फूट-फूटकर रोये। लालबिहारी ने सिसकते हुए कहा—भैया, अब कभी मत कहना कि तुम्हारा मुँह न देखूँगा। इसके सिवा आप जो दंड देंगे, मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा।

श्रीकंठ ने काँपते हुए स्वर से कहा—लल्लू ! इन बातों को बिलकुल भूल जाओ। ईश्वर चाहेगा, तो फिर ऐसा अवसर न आवेगा।

बेनीमाधव सिंह बाहर से आ रहे थे। दोनों भाइयों को गले मिलते देख कर आनंद से पुलकित हो गये। बोल उठे—बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं। बिगड़ता हुआ काम बना लेती हैं।

गाँव में जिसने यह वृत्तांत सुना, उसी ने इन शब्दों में आनंदी की उदारता को सराहा—'बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं।'

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'जमाना', दिसम्बर, 1910 में प्रकाशित। उर्दू 'प्रेम पचीसी' तथा 'देहात के अफसाने' में संकलित। हिन्दी रूप इसी नाम से 'मानसरोवर' भाग-7 में संकलित।]

विक्रमादित्य का तेगा

बहुत जमाना गुजरा एक रोज पेशावर के मौजे माहनगर में प्रकृति की एक आश्चर्यजनक लीला दिखाई पड़ी। अंधेरी रात थी, बस्ती से कुछ दूर बरगद के एक छांहदार पेड़ के नीचे एक आग की लौ दिखाई पड़ी और एक झलमलाते हुए चिराग की तरह नजर आती रही। गांव में बहुत जल्द यह खबर फैल गई। वहां के रहने वाले यह विचित्र दृश्य देखने के लिए यहां-वहां इकट्ठा हो गए। औरतें जो खाना पका रही थीं, हाथों में गूंधा हुआ आटा लपेटे बाहर निकल आईं। बूढ़ों ने बच्चों को कंधे पर बिठा लिया और खांसते हुए आ खड़े हुए। नवेली बहुएं लाज के मारे बाहर न आ सकीं मगर दरवाजों की दरारों से झांक-झांककर अपने बेकरार दिलों को तस्कीन देने लगीं। उस गुंबदनुमा पेड़ के नीचे अंधेरे के उस अथाह समुंदर में रोशनी का यह धुंधला शोला पाप के बादलों से घिरी हुई आत्मा का सजीव उदाहरण पेश कर रहा था।

टेकसिंह ने ज्ञानियों की तरह सिर हिलाकर कहा—मैं समझ गया, भूतों की सभा हो रही है।

पंडित चेतराम ने विद्वानों के समान विश्वास के साथ कहा—तुम क्या जानो मैं तह पर पहुंच गया। सांप मणि छोड़कर चरने गया है। इसमें जिसे शक हो जाकर देख आए।

मुंशी गुलाबचन्द्र बोले—इस वक्त जो वहां जाकर मणि को उठा लाए, उसके राजा होने में शक नहीं। मगर जान जोखिम है।

प्रेमसिंह एक बूढ़ा जाट था। वह इन महात्माओं की बातें बड़े ध्यान से सुन रहा था।

2

प्रेमसिंह दुनिया में बिल्कुल अकेला था। उसकी सारी उम्र लड़ाइयों में खर्च हुई थी। मगर जब जिंदगी की शाम आई और वह सुबह की जिंदगी के टूटे-फूटे झोंपड़े में फिर आया तो उसके दिल में एक अजीब ख्वाहिश पैदा हुई। अफसोस, दुनिया में मेरा कोई नहीं ! काश, मेरे भी कोई बच्चा होता ! जो ख्वाहिश शाम के वक्त चिड़ियों को घोंसले में खींच लाती है और जिस ख्वाहिश से बेकरार होकर जानवर शाम को अपने थानों की तरफ चलते हैं, वही ख्वाहिश प्रेमसिंह के दिल में मौजें मारने लगी। ऐसा कोई नहीं, जो सुबह के वक्त

दादा कहकर उसके गले से लिपट जाए। ऐसा कोई नहीं, जिसे वह खाने के वक्त कौर बना-बनाकर खिलाए। ऐसा कोई नहीं, जिसे वह रात के वक्त लोरियां सुना-सुनाकर सुलाए। यह आकांक्षाएं प्रेमसिंह के दिल में कभी न पैदा हुई थीं। मगर सारे दिन का अकेलापन इतना उदास करने वाला नहीं होता जितना शाम का।

एक दिन प्रेमसिंह बाजार गया हुआ था। रास्ते में उसने देखा कि एक घर में आग लगी हुई है। आग के ऊंचे-ऊंचे डरावने शोले हवा में अपने झंडे लहरा रहे हैं और एक औरत दरवाजे पर खड़ी सर पीट-पीटकर रो रही है। यह बेचारी विधवा स्त्री थी, उसका बच्चा अंदर सो रहा था कि घर में आग लग गई। वह दौड़ी थी कि गांव के आदमियों को आग बुझाने के लिए बुलाए कि इतने में आग ने जोर पकड़ लिया और अब तमाम जलते हुए शोलों का उमड़ा हुआ दरिया उसे उसके प्यारे बच्चे से अलग किए हुए था। प्रेमसिंह के दिल में उस औरत की दर्दनाक आहें चुभ गई। वह बेधड़क आग में घुस गया और सोते हुए बच्चे को गोद में लेकर बाहर निकल आया। विधवा स्त्री ने बच्चे को गोद में ले लिया और उसके कोमल गालों को बार-बार चूमकर आंखों में आंसू भर लाई और बोली—महाराज, तुम जो कोई हो, मैं आज अपना प्यारा बच्चा तुम्हें भेंट करती हूं। तुम्हें ईश्वर ने और भी लड़के दिए होंगे, उन्हीं के साथ इस अनाथ की भी खबर लेते रहना। तुम्हारे दिल में दया है, मेरा सब कुछ अग्नि देवी ने ले लिया, अब इस तन के कपड़े के सिवा मेरे पास और कोई चीज नहीं। मैं मजदूरी करके अपना पेट पाल लूंगी। यह बच्चा अब तुम्हारा है।

प्रेमसिंह की आंखें डबडबा गई, बोला—बेटी, ऐसा न कहो, तुम मेरे घर चलो और ईश्वर ने जो कुछ रूखा-सूखा दिया है, वह खाओ। मैं भी दुनिया में बिल्कुल अकेला हूं, कोई पानी देने वाला नहीं है। क्या जाने परमात्मा ने इसी बहाने से हम लोगों को मिलाया हो। शाम के वक्त जब प्रेमसिंह घर लौटा तो उसकी गोद में एक हंसता हुआ फूल जैसा बच्चा था और पीछे-पीछे एक पीली और मुर्झायी हुई औरत। आज प्रेमसिंह का घर आबाद हुआ। आज से उसे किसी ने शाम के वक्त नदी के किनारे खामोश बैठे नहीं देखा।

इसी बच्चे के लिए सांप की मणि लाने का निश्चय करके प्रेमसिंह आधी रात के वक्त कमर से तलवार लगाए, चौंक-चौंककर कदम रखता, बरगद के पेड़ की तरफ चला।

जब पेड़ के नीचे पहुंचा तो मणि की दमक ज्यादा साफ नजर आने लगी। मगर सांप का कहीं पता न था। प्रेमसिंह बहुत खुश हुआ, समझा, शायद सांप कहीं चरने गया है। मगर जब मणि को लेने के लिए हाथ बढ़ाया तो वहां साफ जमीन के सिवाय और कोई चीज न दिखाई दी। बूढ़े जाट का कलेजा सन से हो गया और बदन के रोंगटे खड़े हो गए। यकायक उसे अपने सामने कोई चीज लटकती हुई दिखाई दी। प्रेमसिंह ने तेगा खींच लिया और उसकी तरफ लपका मगर देखा तो वह बरगद की जटा थी। अब प्रेमसिंह का डर बिल्कुल दूर हो गया। उसने उस जगह को जहां से रोशनी की लौ निकल रही थी, अपनी तलवार से खोदना शुरू किया। जब एक बित्ता जमीन खुद गई तो तलवार किसी सख्त चीज से टकराई और लौ भभक उठी। यह एक छोटा-सा तेगा था मगर प्रेमसिंह के हाथ में आते ही उसकी लपट जैसी चमक गायब हो गई।

3

यह एक छोटा-सा तेगा था, मगर बहुत आवदार। उसकी मूठ में अनमोल जवाहरात जड़े हुए थे और मूठ के ऊपर 'विक्रमादित्य' खुदा हुआ था। यह विक्रमादित्य का तेगा था, उस विक्रमादित्य का जो भारत का सूर्य बनकर चमका, जिसके गुन अब तक घर-घर गाए जाते हैं। इस तेगे ने भारत के अमर कालिदास की सोहबतें देखी हैं। जिस वक्त विक्रमादित्य रातों को वेश बदलकर दुख-दर्द की कहानी अपने कानों से सुनने और अत्याचारों की लीला अपनी संवेदनशील आंखों से देखने के लिए निकलते थे, तो यही आवदार तेगा उनके बगल की शोभा हुआ करता था। जिस दया और न्याय ने विक्रमादित्य का नाम अब तक जिंदा रखा है, उसमें यह तेगा भी उनका हमदर्द और शरीक था। यह उनके साथ उस राजसिंहासन पर शोभायमान होता था जिस पर राजा भोज को भी बैठना नसीब न हुआ।

इस तेगे में गजब की चमक थी। बहुत जमाने तक जमीन के नीचे दफन रहने पर भी उस पर जंग का नाम न था। अंधेरे घरों में उससे उजाला हो जाता था। रात भर चमकते हुए तारे की तरह जगमगाता रहता। जिस तरह चांद बादलों के परदे में छिप जाता है मगर उसकी मद्धिम रोशनी छन-छनकर आती है उसी तरह गिलाफ के अंदर से उस तेगे की किरनें नजरों के तार मारा करती थीं।

मगर जब कोई व्यक्ति उसे हाथ में ले लेता तो उसकी चमक गायब हो जाती थी। उसका यह गुण देखकर लोग दंग रह जाते थे।

हिंदुस्तान में इन दिनों शेरे पंजाब की ललकार गूंज रही थी। रणजीतसिंह दानशीलता और वीरता, दया और न्याय में अपने समय के विक्रमादित्य थे। उस घमंडी काबुल को, जिसने सदियों तक हिंदोस्तान को सर नहीं उठाने दिया था, खाक में मिलाकर लाहौर जाते थे। मोहनगर का खुला हुआ दिलकश मैदान और पेड़ों का आकर्षक जमघट देखा तो वहीं पड़ाव डाल दिया। बाजार लग गए। खेमे और शामियाने गाड़ दिए गए। जब रात हुई तो पच्चीस हजार चूल्हों का काला धुआं सारे मैदान और बगीचे पर छा गया। और इस धुएं के आसमान में चूल्हों की आग, कंदीलें और मशालें ऐसी मालूम होती थीं गोया अंधेरी रात में आसमान पर तारे निकल आए हैं।

4

शाही आरामगाह से गाने-बजाने की पुरशोर और पुरजोश आवाजें आ रही थीं। सिक्ख सरदारों ने सरहदी जगहों पर सैकड़ों अफगानी औरतें गिरफ्तार कर ली थीं, जैसा उन दिनों लड़ाइयों में आमतौर पर हुआ करता था। वही औरतें इस वक्त सायेदार दरख्तों के नीचे कुदरती फर्श से सजी हुई महफिल में अपनी बेसुरी तानें अलाप रही थीं, और महफिल के लोग जिन्हें गाने का आनंद उठाने की इतनी लालसा न थी जितनी हंसने और खुश होने की, खूब जोर-जोर से कहकहे लगा-लगाकर हंस रहे थे। कहीं-कहीं मनचले सिपाहियों ने स्वांग भरे थे, वह कुछ मशालें और सैकड़ों तमाशाइयों की भीड़ साथ लिए हुए इधर-उधर धूम मचाते फिरते थे। सारी फौज के दिलों में बैठकर विजय की देवी अपनी लीला दिखा रही थी।

रात के नौ बजे होंगे कि एक आदमी काला कंबल ओढ़े एक बांस का सोंटा लिए शाही खेमे से बाहर निकला और बस्ती की तरफ आहिस्ता-आहिस्ता चला। आज महानगर भी खुशी से ऐंड़ रहा है। दरवाजों पर कई-कई बत्तियों वाले चौमुखे दीवट जल रहे हैं। दरवाजों के सहन झाड़कर साफ कर दिए गए हैं। दो-एक जगह शहनाइयां बज रही हैं और कहीं-कहीं लोग भजन गा रहे हैं। काली कमली वाला मुसाफिर इधर-उधर देखता-भालता गांव के चौपाल में जा पहुंचा। चौपाल खूब सजा हुआ था और गांव के बड़े लोग बैठे हुए इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर बहस कर रहे थे कि महाराज रणजीतसिंह की सेवा में कौन-सी भेंट पेश की जाए। आज महाराज ने इस गांव को अपने कदमों से रोशन किया है, तो क्या इस गांव के बसने वाले महाराज के कदमों को न चूमेंगे! ऐसे शुभ अवसर कहां आते हैं। सब लोग सर झुकाए चिंतित बैठे थे। किसी की अकल कुछ काम न करती थी। वहां अनमोल जवाहरात की किश्तियां कहां ? पूरे घंटे भर तक किसी ने सर न उठाया। यकायक बूढ़ा प्रेमसिंह खड़ा हो गया और बोला—अगर आप लोग पसंद करें तो मैं विक्रमादित्य की तलवार नजराने के लिए दे सकता हूं।

इतना सुनते ही सब-के-सब आदमी खुशी से उछल पड़े और एक हुल्लड़-सा मच गया। इतने में एक मुसाफिर काली कमली ओढ़े चौपाल के अंदर आया और हाथ उठाकर बोला—भाइयो, वाह गुरु की जय !

चेतराम बोले—तुम कौन हो ?

मुसाफिर—राहगीर हूं, पेशावर जाना है। रात ज्यादा आ गई है इसलिए यहीं लेट रहूंगा।

टेकसिंह—हां-हां, आराम से सोओ। चारपाई की जरूरत हो तो मंगा दूं ?

मुसाफिर—नहीं, आप तकलीफ न करें, मैं इसी टाट पर लेट रहूंगा। अभी आप लोग विक्रमादित्य की तलवार की कुछ बातचीत कर रहे थे। यही सुनकर चला आया वर्ना बाहर ही पड़ा रहता। क्या यहां किसी के पास विक्रमादित्य की तलवार है ?

मुसाफिर की बातचीत से साफ जाहिर होता था कि वह कोई शरीफ आदमी है। उसकी आवाज में वह कशिश थी जो कानों को अपनी तरफ खींच लिया करती है। सब की आंखें उसकी तरफ उठ गईं। पंडित चेतराम बोले—जी हां, कुछ अर्सा हुआ महाराज विक्रमादित्य का तेगा जमीन से निकला है।

मुसाफिर—यह क्योंकर मालूम हुआ कि यह तेगा उन्हीं का है ?

चेतराम—उसकी मूठ पर उनका नाम खुदा हुआ है।

मुसाफिर—उनकी तलवार तो बहुत बड़ी होगी ?

चेतराम—नहीं, वह तो एक छोटा-सा नीमचा है।

मुसाफिर—तो फिर उसमें कोई खास गुण होगा ?

चेतराम—जी हां, उसके गुण अनमोल हैं। देखकर अक्ल दंग रह जाती है। जहां रख दो, उसमें जलते चिराग की-सी रोशनी पैदा हो जाती है।

मुसाफिर—ओफ्फोह !

चेतराम—मगर ज्योंही कोई आदमी उसे हाथ में ले लेता है, उसकी सारी चमक-दमक गायब हो जाती है।

यह अजीब बात सुनकर उस मुसाफिर की वही कैफियत हो गई जो एक आश्चर्यजनक कहानी सुनने से बच्चों की हो जाया करती है। उसकी आंख और भंगिमा में अधीरता प्रकट होने लगी। जोश से बोला--विक्रमादित्य, तुम्हारे प्रताप को धन्य है?!

जरा देर के बाद फिर बोला--वह कौन बुजुर्ग है जिसके पास यह अनमोल चीज है?

प्रेमसिंह ने गर्व से कहा--मेरे पास है।

मुसाफिर--क्या मैं उसे देख सकता हूं ?

प्रेमसिंह--हां, मैं आपको सवेरे दिखा दूंगा। मगर नहीं, ठहरिए, सवेरे तो हम उसे महाराज रणजीतसिंह को भेंट करेंगे। आपका जी चाहे तो इसी वक्त देख लीजिए।

दोनों आदमी चौपाल से चल खड़े हुए। प्रेमसिंह ने मुसाफिर को अपने घर में ले जाकर नग के पास खड़ा कर दिया। इस कमरे में चिराग न था मगर सारा कमरा रोशनी से जगमगा रहा था। मुसाफिर ने पुरजोश आवाज से कहा--विक्रमादित्य, तुम्हारे प्रताप को धन्य है, इतना जमाना गुजरने पर भी तुम्हारी तलवार का तेज कम नहीं हुआ।

यह कहकर उसने बड़े चाव से हाथ बढ़ाकर नग को पकड़ लिया मगर उसका हाथ लगते ही नग की चमक जाती रही और कमरे में अंधेरा छा गया।

मुसाफिर ने [illegible] नग को तख्त पर रख दिया। उसका चेहरा अब बहुत उदास हो गया था। उसने प्रेमसिंह से कहा--क्या तुम यह नग रणजीतसिंह को भेंट दोगे ? वह इसे हाथ में लेने योग्य नहीं है।

यह कहकर मुसाफिर तेजी से बाहर निकल आया। वृन्दा दरवाजे पर खड़ी थी, मुसाफिर ने उसके चेहरे की तरफ एक बार गौर से देखा, मगर कुछ बोला नहीं।

रात आधी से ज्यादा गुजर चुकी थी, मगर फौज में शोरगुल बदस्तूर जारी था। खुशी के हंगामे ने नींद को सिपाहियों की आखों से दूर भगा दिया है। अगर कोई अंगड़ाई लेता या ऊंघता नजर आ जाता है तो उसके साथी उसे एक टांग से खड़ा कर देते हैं। यकायक यह खबर मशहूर हुई कि महाराज इसी वक्त कूच करेंगे। लोग ताज्जुब में आ गए कि महाराज ने क्यों इस अंधेरी रात में सफर करने की ठानी है। इस डर से कि फौज को इसी वक्त कूच करना पड़ेगा चारों तरफ खलबली-सी मच गई। वह खुद थोड़े से आजमाए हुए सरदारों के साथ रवाना हो गए। इसका कारण किसी की समझ में न आया।

जिस तरह बांध टूट जाने से तालाब का पानी काबू से बाहर होकर जोर-शोर के साथ बह निकलता है, उसी तरह महाराज के जाते ही फौज के अफसर और सिपाही होश-हवास खोकर मस्तियां करने लगे।

5

वृन्दा को विधवा हुए तीन साल गुजरे हैं। उसका पति एक बेफिक्र और रंगीन मिजाज आदमी था। गाने-बजाने से उसे प्रेम था। घर की जो कुछ जमा-जथा थी, वह सरस्वती और उसके पुजारियों के भेंट कर दी। तीन लाख की जायदाद तीन साल के लिए भी काफी न हो सकी मगर उसकी कामना पूरी हो गई। सरस्वती देवी ने उसे आशीर्वाद दिया और उसने संगीत-कला में ऐसा कमाल पैदा किया कि अच्छे-अच्छे गुनी उसके सामने जबान खोलते डरते थे। गाने का उसे जितना शौक था, उतनी ही मुहब्बत उसे वृन्दा से थी। उसकी जान

अगर गाने में बसती थी तो दिल वृन्दा की मुहब्बत से भरा हुआ था। पहले छेड़छाड़ में और फिर दिल बहलाव के लिए उसने वृन्दा को कुछ गाना सिखाया। यहां तक कि उसको भी इस अमृत का स्वाद मिल गया और यद्यपि उसके पति को मरे तीन साल गुजर गए हैं और उसने सांसारिक सुखों को अंतिम नमस्कार कर लिया है, यहां तक कि किसी ने उसके गुलाब के-से होठों पर मुस्कराहट की झलक नहीं देखी मगर गाने की तरफ अभी तक उसकी तबीयत झुकी हुई थी। उसका मन जब कभी बीते हुए दिनों की याद से उदास होता है तो वह कुछ गाकर जी बहला लेती है। लेकिन गाने में उसका उद्देश्य इंद्रिय का आनंद नहीं होता, बल्कि जब वह कोई सुंदर राग अलापने लगती है तो खयाल में अपने पति को खुशी से मुस्कराते हुए देखती है। वही काल्पनिक चित्र उसके गाने की प्रशंसा करता हुआ दिखाई देता है। गाने में उसका लक्ष्य अपने स्वर्गीय पति की स्मृति को ताजा करना है। गाना उसके नजदीक पतिव्रत धर्म का निबाह है।

तीन पहर रात जा चुकी है, आसमान पर चांद की रोशनी मंद हो चुकी है, चारों तरफ गहरा सन्नाटा छाया हुआ है और इन विचारों को जन्म देने वाले सन्नाटे में वृन्दा जमीन पर बैठी हुई मद्धिम स्वरों में गा रही है—

बता दे कोई प्रेमनगर की डगर।

वृन्दा की आवाज में लोच भी है और दर्द भी। उसमें बेचैन दिल को तस्कीन देने वाली ताकत भी है और सोए हुए भावों को जगा देने की शक्ति भी। सुबह के वक्त पूरब की गुलाबी आभा में सर उठाए हुए फूलों से लदी हुई डाली पर बैठकर गाने वाली बुलबुल की चहक में भी यह घुलावट नहीं होती। यह वह गाना है जिसे सुनकर अकलुष आत्माएं सिर धुनने लगती हैं। उसकी तान कानों को छेदती हुई जिगर में जा पहुंचती है—

बता दे कोई प्रेमनगर की डगर।
मैं बौरी पग-पग पर भटकूं, काहू की कुछ नाहीं खबर।
बता दे कोई प्रेमनगर की डगर।

यकायक किसी ने दरवाजा खटखटाया और कई आदमी पुकारने लगे—किसका मकान है, दरवाजा खोलो।

वृन्दा चुप हो गई। प्रेमसिंह ने उठकर दरवाजा खोल दिया। दरवाजे के सहन में सिपाहियों की एक भीड़ थी। दरवाजा खुलते ही कई सिपाही दहलीज में घुस आए और बोले—तुम्हारे घर में कोई गाने वाली रहती है, हम उसका गाना सुनेंगे।

प्रेमसिंह ने कड़ी आवाज में कहा—हमारे यहां कोई गाने वाली नहीं है।

इस पर कई सिपाहियों ने प्रेमसिंह को पकड़ लिया और बोले—तेरे घर से गाने की आवाज आती थी।

एक सिपाही—बताता क्यों नहीं रे, कौन गा रहा है ?

प्रेमसिंह—मेरी लड़की गा रही थी। मगर वह गाने वाली नही है।

सिपाही—कोई हो, हम तो आज गाना सुनेंगे।

गुस्से से प्रेमसिंह कांपने लगा, होंठ चबाकर बोला—यारो, हमने भी अपनी जिंदगी फौज ही में काटी है मगर कभी...

इस हंगामे में प्रेमसिंह की बात किसी ने न सुनी। एक नौजवान जाट ने जिसकी

आंखें नशे से लाल हो रही थीं, ललकारकर कहा—इस बुड्ढे की मूंछें उखाड़ लो।

वृन्दा आंगन में पत्थर की मूरत की तरह खड़ी यह कैफियत देख रही थी। जब उसने दो सिपाहियों को प्रेमसिंह की मूंछ पकड़कर खींचने देखा तो उससे न रहा गया, वह निर्भय सिपाहियों के बीच में घुस आई और ऊंची आवाज में बोली—कौन मेरा गाना सुनना चाहता है ?

सिपाहियों ने उसे देखते ही प्रेमसिंह को छोड़ दिया और बोले—हम सब तेरा गाना सुनेंगे।

वृन्दा—अच्छा बैठ जाओ, मैं गाती हूं।

इस पर कई सिपाहियों ने जिद की कि इसे पड़ाव पर ले चलो, वहां खूब रंग जमेगा।

जब वृन्दा सिपाहियों के साथ पड़ाव की तरफ चली तो प्रेमसिंह ने कहा—वृन्दा, इनके साथ जाती हो तो फिर इस घर में पैर न रखना।

वृन्दा जब पड़ाव पर पहुंची तो वहां बदमस्तियों का एक तूफान मचा हुआ था। विजय की देवी दुश्मन को बर्बाद करके अब विजेताओं की मानवता और सज्जनता को पांव से कुचल रही थी। हैवानियत का खूंखार शेर दुश्मन के खून से तृप्त न होकर अब मानवोचित भावों का खून चूस रहा था। वृन्दा को लोग एक सजे हुए खेमे में ले गए। यहां फर्शी चिराग रोशन थे और आग-जैसी शराब के दौर चल रहे थे। वृन्दा उस मेमने की तरह, जो खूंखार दरिंदों के पंजे में फंस जाता है, फर्श के एक कोन पर सहमी हुई बैठी थी। वासना का भूत जो इस वक्त दिलों में अपनी शैतानी फौज सजाए बैठा था कभी आंखों की कमान से सतीत्व का नाश करने वाले तेज तीर चलाता और कभी मुंह की कमान से मर्मवेधी बाणों की बौछार करता। जहरीली शराब में बुझे हुए यह तीर वृन्दा के कोमल और पवित्र हृदय को छेदते हुए पार हो जाते थे। वह सोच रही थी—ऐ द्रौपदी की लाज रखने वाले कृष्ण भगवान्, तुमने धर्म के बंधन से बंधे हुए पांडवों के होते हुए द्रौपदी की लाज रखी थी, मैं तो दुनिया में बिल्कुल अनाथ हूं, क्या मेरी लाज न रखोगे ? यह सोचते हुए उसने मीरा का यह मशहूर भजन गाया—

सिया रघुबीर भरोसो ऐसो।

वृन्दा ने यह गीत बड़े मोहक ढंग से गाया। उसके मीठे सुरों में मीरा का अंदाज पैदा हो गया था। प्रकट रूप से वह शराबी सिपाहियों के सामने बैठी गा रही थी मगर कल्पना की दुनिया में वह मुरली वाले श्याम के सामने हाथ बांधे खड़ी उससे प्रार्थना कर रही थी।

जरा देर के लिए उस शोर से भरे हुए महल में निस्तब्धता छा गई। इंसान के दिल में बैठे हुए हैवान पर भी प्रेम की यह तड़पा देने वाली पुकार अपना जादू चला गई। मीठा गाना मस्त हाथी को भी बस में कर लेता है। पूरे घंटे भर तक वृन्दा ने सिपाहियों को मूर्तिवत् रखा। सहसा घड़ियाल ने पांच बजाए। सिपाही और सरदार सब चौंक पड़े। सबका नशा हिरन हो गया। चालीस कोस की मंजिल तय करनी है, फुर्ती के साथ रवानगी की तैयारियां होने लगीं। खेमे उखड़ने लगे, सवारों ने घोड़ों को दाना खिलाना शुरू किया। एक भगदड़-सी मच गई। उधर सूरज निकला इधर फौज ने कूच का डंका बजा दिया। शाम को जिस मैदान का एक-एक कोना आबाद था, सुबह को वहां कुछ भी न था। सिर्फ टूटे-फूटे उखड़े चूल्हों की राख और खेमों की कीलों के निशान उस शान-शौकत की यादगार

के रूप में रह गए थे।

वृन्दा ने जब महफिल के लोगों को रवानगी की तैयारियों में व्यस्त देखा तो वह खेमे से बाहर निकल आई। कोई बाधक न हुआ। मगर उसका दिल धड़क रहा था कि कहीं कोई आकर फिर न पकड़ ले। जब वह पेड़ों के झुरमुट से बाहर पहुंची तो उसकी जान में जान आई। बड़ा सुहाना मौसम था, ठंडी-ठंडी मस्त हवा पेड़ों के पत्तों पर धीमे-धीमे चल रही थी और पूरब के क्षितिज में सूर्य भगवान् की अगवानी के लिए लाल मखमल का फर्श बिछाया जा रहा था। वृन्दा ने आगे कदम बढ़ाना चाहा। मगर उसके पांव न उठे। प्रेमसिंह की यह बात कि सिपाहियों के साथ जाती हो तो फिर इस घर में पैर न रखना, उसे याद आ गई। उसने एक लंबी सांस ली और जमीन पर बैठ गई। दुनिया में अब उसके लिए कोई ठिकाना न था।

उस अनाथ चिड़िया की हालत कैसी दर्दनाक है जो दिल में उड़ने की चाह लिए हुए बहेलिये की कैद से निकल आती है मगर आजाद होने पर उसे मालूम होता है कि उस निष्ठुर बहेलिये ने उसके परों को काट दिया है। वह पेड़ों की सायेदार डालियों की तरफ बार-बार हसरत की निगाहों से देखती है मगर उड़ नहीं सकती और एक बेबसी के आलम में सोचने लगती है कि काश, बहेलिया मुझे फिर अपने पिंजरे में कैद कर लेता। वृन्दा की हालत इस वक्त ऐसी ही दर्दनाक थी।

वृन्दा कुछ देर तक इस खयाल में डूबी बैठी रही, फिर वह उठी और धीरे-धीरे प्रेमसिंह के दरवाजे पर आई। दरवाजा खुला हुआ था मगर वह अन्दर कदम न रख सकी। उसने दरोदीवार को हसरत भरी निगाहों से देखा और फिर जंगल की तरफ चली गई।

6

शहर लाहौर के एक शानदार हिस्से में ठीक सड़क के किनारे एक अच्छा-सा साफ-सुथरा तिमंजिला मकान है। हरी-भरी और सुंदर फूलों वाली माधवी लता ने उसकी दीवारों और मेहराबों को खूब सजा दिया है। इसी मकान में एक अमीराना ठाट-बाट से सजे हुए कमरे के अंदर वृन्दा एक मखमली कालीन पर बैठी हुई अपनी सुंदर रंगों और मीठी आवाज वाली मैना को पढ़ा रही है। कमरे की दीवारों पर हल्के हरे रंग की कलई है—खुशनुमा दीवारगीरियां, खूबसूरत तस्वीरें उचित स्थानों पर शोभा दे रही हैं। संदल और खस की प्राणवर्द्धक सुगंध कमरे में फैली हुई है। एक बूढ़ी औरत बैठी हुई पंखा झल रही है। मगर इस ऐश्वर्य और विलास की सब सामग्रियों के होते हुए वृन्दा का चेहरा उदास है। उसका चेहरा अब और भी पीला नजर आता है। मौलश्री का फूल मुर्झा गया है।

वृन्दा अब लाहौर की मशहूर गानेवालियों में से है। उसे इस शहर में आए तीन महीने से ज्यादा नहीं हुए, मगर इतने ही दिनों में उसने बहुत बड़ी शोहरत हासिल कर ली है। यहां उसका नाम श्यामा मशहूर है। इतने बड़े शहर में जिससे श्यामा बाई का पता पूछो वह यकीनन बता देगा। श्यामा की आवाज और अंदाज में कोई मोहिनी है, जिसने शहर में हर एक को अपना प्रेमी बना रखा है। लाहौर में बाकमाल गानेवालियों की कमी नहीं है। लाहौर उस जमाने में हर कला का कद्र था मगर कोयलें और बुलबुलें बहुत थीं, श्यामा सिर्फ एक थी। वह ध्रुपद ज्यादा गाती थी इसलिए लोग उसे ध्रुपदी श्यामा कहते थे।

लाहौर में मियां तानसेन के खानदान के कई ऊंचे कलाकार हैं जो राग और रागनियों में बातें करते हैं। वह श्यामा का गाना पसंद नहीं करते। वह कहते हैं कि श्यामा का गाना अक्सर गलत होता है। उसे राग और रागनियों का ज्ञान नहीं। मगर उनकी इस आलोचना का किसी पर कुछ असर नहीं होता। श्यामा गलत गाए या सही गाए वह जो कुछ गाती है उसे सुनकर लोग मस्त हो जाते हैं। उसका भेद यह है कि श्यामा हमेशा दिल से गाती है और जिन भावों को वह प्रकट करती है उन्हें खुद भी अनुभव करती है। वह कठपुतलियों की तरह तुली हुई अदाओं की नकल नहीं करती। अब उसके बगैर महफिलें सूनी रहती हैं। हर महफिल में उसका मौजूद होना लाजिमी हो गया है। वह चाहे श्लोक ही गाए मगर उसके बगैर संगीत-प्रेमियों का जी नहीं भरता। तलवार की बाढ़ की तरह वह महफिलों की जान है। उसने साधारणजनों के हृदय में यहां तक घर कर लिया है कि जब वह अपनी पालकी पर हवा खाने निकलती है तो उस पर चारों तरफ से फूलों की बौछार होने लगती है। महाराज रणजीतसिंह को काबुल से लौटे हुए तीन महीने गुजर गए, मगर अभी तक विजय की खुशी में कोई जलसा नहीं हुआ। वापसी के बाद कई दिन तक तो महाराज किसी कारण से उदास थे, उसके बाद उनके स्वभाव में यकायक एक बड़ा परिवर्तन आया, उन्हें काबुल की विजय की चर्चा से घृणा-सी हो गई। जो कोई उन्हें इस जीत की बधाई देने जाता उसकी तरफ से मुंह फेर लेते थे। वह आत्मिक उल्लास जो मौजा माहनगर तक उनके चेहरे से झलकता था, अब वहां न था। काबुल को जीतना उनकी जिंदगी की सबसे बड़ी आरजू थी। वह मोर्चा जो एक हजार साल तक हिंदू राजाओं की कल्पना से बाहर था, उनके हाथों सर हुआ। जिस मुल्क ने हिंदोस्तान को एक हजार बरस तक अपने मातहत रखा वहां हिंदू कौम का झंडा रणजीतसिंह ने उड़ाया। गजनी और काबुल की पहाड़ियां इंसानी खून से लाल हो गईं, मगर रणजीतसिंह खुश नहीं हैं। उनके स्वभाव की कायापलट का भेद किसी की समझ में नहीं आता। अगर कुछ समझती है तो वृन्दा समझती है।

तीन महीने तक महाराज की यही कैफियत रही। इसके बाद उनका मिजाज अपने असली रंग पर आने लगा। दरबार की भलाई चाहने वाले इस मौके के इंतजार में थे। एक रोज उन्होंने महाराज से एक शानदार जलसा करने की प्रार्थना की। पहले तो वह बहुत क्रुद्ध हुए मगर आखिरकार मिजाज समझने वालों की घातें अपना काम कर गईं।

जलसे की तैयारियां बड़े पैमाने पर की जाने लगीं। शाही नृत्यशाला की सजावट होने लगी। पटना, बनारस, लखनऊ, ग्वालियर, दिल्ली और पूना की नामी वेश्याओं को संदेश भेजे गए। वृन्दा को भी निमंत्रण मिला। आज एक मुद्दत के बाद उसके चेहरे पर मुस्कराहट की झलक दिखाई दी।

जलसे की तारीख निश्चित हो गई। लाहौर की सड़कों पर रंग-बिरंगी झंडियां लहराने लगीं। चारों तरफ से नवाब और राजे बड़ी शान के साथ सज-धजकर आने लगे। होशियार फर्राशों ने नृत्यशाला को इतने सुंदर ढंग से सजाया था कि उसे देखकर लगता था विलास का विश्राम स्थल है।

शाम के वक्त शाही दरबार जमा। महाराजा साहब सुनहरे राजसिंहासन पर शोभायमान हुए। नवाब और राजे, अमीर और रईस, हाथी-घोड़ों पर सवार अपनी सज-धज दिखाते हुए

जुलूस बनाकर महाराज की कदमबोसी को चले। सड़क पर दोनों तरफ तमाशाइयों का ठट लगा था। खुशी को रंगों से भी कोई गहरा संबंध है। जिधर आंख उठती थी रंग ही रंग दिखाई देते थे। ऐसा मालूम होता था कि कोई उमड़ी हुई नदी रंग-बिरंगे फूलों की क्यारियों से बहती चली आती है।

अपनी खुशी के जोश में कभी-कभी लोग अभद्रता भी कर बैठते थे। एक पंडित जी मिर्जई पहने सर पर गोल टोपी रखे तमाशा देखने में लगे थे। किसी मनचले ने उनकी तोंद पर एक चमगादड़ चिमटा दी। पंडित जी बेतहाशा तोंद मटकाते हुए भागे। बड़ा कहकहा पड़ा। एक और मौलवी साहब नीची अचकन पहने एक दुकान पर खड़े थे। दुकानदार ने कहा—मौलवी साहब, आपको खड़े-खड़े तकलीफ होती है, यह कुर्सी रखी हुई है, बैठ जाइए। मौलवी साहब बहुत खुश हुए, सोचने लगे कि शायद मेरे रूप-रंग से रोब झलक रहा है वर्ना दुकानदार कुर्सी क्यों देता ? दुकानदार आदमियों के बड़े पारखी होते हैं। हजारों आदमी खड़े हैं, मगर उसने किसी से बैठने की प्रार्थना न की। मौलवी साहब मुस्कराते हुए कुर्सी पर बैठे, मगर बैठते ही पीछे की तरफ लुढ़के और नीचे बहती हुई नाली में गिर पड़े। सारे कपड़े लथपथ हो गए। दुकानदार को हजारों खरी-खोटी सुनाई। बड़ा कहकहा पड़ा। कुर्सी तीन ही टांग की थी।

एक जगह कोई अफीमची साहब तमाशा देखने आए हुए थे। झुकी हुई कमर, पोपला मुंह, छिदरे-छिदरे सर के बाल और दाढ़ी के बाल मेहंदी से रंगे हुए थे। आंखों में सुरमा भी था। आप बड़े गौर से सैर करने में लगे थे। इतने में एक हलवाई सर पर खोमचा रखे हुए आया और बोला—खां साहब, जुमेरात की गुलाब वाली रेवड़ियां हैं। आज पैसे की आध पाव लगा दीं, खा लीजिए वर्ना पछताइएगा। अफीमची साहब ने जेब में हाथ डाला मगर पैसे न थे। हाथ मलकर रह गए, मुंह में पानी भर आया। गुलाब वाली रेवड़ियां और पैसे में आध पाव ! न हुए पैसे नहीं तो सेरों तुला लेते। हलवाई ताड़ गया, बोला—आप पैसों की कुछ फिक्र न करें, पैसे फ़िर मिल जाएंगे। आप कोई ऐसे-वैसे आदमी थोड़े ही हैं। अफीमची साहब की बाछें खिल गईं। रूह फड़क उठी। आपने पाव भर रेवड़ियां लीं और जी में कहा—अब पैसा देने वाले पर लानत है। घर से निकलूंगा ही नहीं, तो पैसे क्या लोगे ? अपने रूमाल में रेवड़ियां लीं। आशिक के दिल में सब्र कहां ? मगर ज्योंही पहली रेवड़ी जबान पर रखी कि तिलमिला गए। पागल कुत्ते की तरह पानी की तलाश में इधर-उधर दौड़ने लगे। आंख और नाक से पानी बहने लगा। आधा मुंह खोलकर ठंडी हवा से जबान की जलन बुझाने लगे। जब होश ठीक हुए तो हलवाई को हजारों गालियां सुनाईं, इस पर भी लोग खूब हंसे। खुशी के मौकों पर ऐसी शरारतें अक्सर हुआ करती हैं और इन्हें लोग मुआफी के काबिल समझते हैं क्योंकि वह खौलती हुई हांडी के उबाल हैं।

रात के नौ बजे संगीतशाला में जमघट हुआ। सारा महल नीचे से ऊपर तक रंग-बिरंगी हांड़ियों और फानूसों से जगमगा रहा था। अंदर झाड़ों की बहार थी। एक बाकमाल कारीगर ने रंगशाला के बीचोंबीच अधर में लटका हुआ एक फव्वारा लगाया था जिसके सूराखों से खस और केवड़ा, गुलाब और संदल का अरक हल्की फुहारों में बरस रहा था। महफिल में अंबर की बौछार करने वाली तरावट फैली हुई थी। खुशी अपनी सखियों-सहेलियों के साथ खुशियां मना रही थी।

दस बजे महाराज रणजीतसिंह तशरीफ लाए। उनके बदन पर तंजेब की एक सफेद अचकन थी और सिर पर तिरछी पगड़ी बंधी हुई थी। जिस तरह सूरज क्षितिज की रंगीनियों से पाक रहकर अपनी पूरी रोशनी दिखा सकता है उसी तरह हीरे और जवाहरात, 'दीवा और हरीर' (रेशमी कपड़ों के नाम) की पुरतकल्लुफ सजावट से मुक्त रहकर महाराजा रणजीतसिंह का प्रताप पूरी तेजी के साथ चमक रहा था।

चंद नामी शायरों ने महाराज की शान में इसी मौके के लिए कसीदे कहे थे। मगर उपस्थित लोगों के चेहरों से उनके दिलों में जोश खाता हुआ संगीत-प्रेम देखकर महाराज ने गाना शुरू करने का हुक्म दिया। तबले पर थाप पड़ी, साजिंदों ने सुर मिलाया, नींद से झपकती हुई आंखें खुल गई और गाना शुरू हो गया।

7

उस शाही महफिल में रात भर मीठे-मीठे गानों की बौछार होती रही। पीलू और पिरच, देस और बिहाग के मद भरे झोंके चलते रहे। सुंदरी नर्तकियों ने बारी-बारी से अपना कमाल दिखाया। किसी की नाज-भरी अदाएं दिलों में खुब गई, किसी का थिरकना कत्लेआम कर गया, किसी की रसीली तानों पर वाह-वाह मच गई। ऐसी तबीयतें बहुत कम थीं जिन्होंने सच्चाई के साथ गाने का पवित्र आनंद उठाया हो।

चार बजे होंगे जब श्यामा की बारी आई तो उपस्थित लोग संभाल बैठे। चाव के मारे लोग आगे खिसकने लगे। खुमारी से भरी हुई आंखें चौंक पड़ीं। वृन्दा महफिल में आई और सर झुकाकर खड़ी हो गई। उसे देखकर लोग हैरत में आ गए। उसके शरीर पर न आबदार गहने थे, न खुशरंग, भड़कीली पेशवाज। वह सिर्फ एक गेरुए रंग की साड़ी पहने हुए थी। जिस तरह गुलाब की पंखुरी पर डूबते हुए सूरज की सुनहरी किरन चमकती है, उसी तरह उसके गुलाबी होंठों पर मुस्कराहट झलकती थी। उसका आडंबर से मुक्त सौंदर्य अपने प्राकृतिक वैभव की शान दिखा रहा था। असली सौंदर्य बनाव-सिंगार का मोहताज नहीं होता। प्रकृति के दर्शन से आत्मा को जो आनंद प्राप्त होता है वह सजे हुए बगीचों की सैर से मुमकिन नहीं। वृन्दा ने गाया—

सब दिन नाहीं बराबर जात।

यह गीत इससे पहले भी लोगों ने सुना था मगर इस वक्त का-सा असर कभी दिलों पर नहीं हुआ था। किसी के सब दिन बराबर नहीं जाते यह कहावत रोज सुनते थे। आज उसका मतलब समझ में आया। किसी रईस को वह दिन याद आया जब खुद उसके सिर पर ताज था, आज वह किसी का गुलाम है। किसी को अपने बचपन की लाड़-प्यार की गोद याद आई, किसी को वह जमाना याद आया, जब वह जीवन के मोहक सपने देख रहा था। मगर अफसोस, अब वह सपना तितर-बितर हो गया। वृन्दा भी बीते हुए दिनों को याद करने लगी। एक दिन वह था कि उसके दरवाजे पर अताइयों और गाने वालों की भीड़ रहती थी और दिल में खुशियों की। और आज, आह, आज ! इसके आगे वृन्दा कुछ न सोच सकी। दोनों हालतों का मुकाबला बहुत दिल तोड़ने वाला था, निराशा से भर देने वाला। उसकी आवाज भारी हो गई और रोने से गला बैठ गया।

महाराजा रणजीतसिंह श्यामा के तर्ज व अंदाज को गौर से देख रहे थे। उनकी तेज

निगाहें उसके दिल में पहुंचने की कोशिश कर रही थीं। लोग अचंभे में पड़े हुए थे कि क्यों उनकी जबान से तारीफ और कद्रदानी की एक बात भी न निकली। वह खुश न थे, उदास भी न थे, वह खयाल में डूबे हुए थे। उन्हें हुलिए से साफ पता चल रहा था कि यह औरत हर्गिज अपनी अदाओं को बेचने वाली औरत नहीं है। यकायक वह उठ खड़े हुए और बोले—श्यामा, बृहस्पति को मैं फिर तुम्हारा गाना सुनूंगा।

8

वृन्दा के चले जाने के बाद उसका फूल-सा बच्चा राजा उठा और आंखें मलता हुआ बोला—अम्मां कहां है ?

प्रेमसिंह ने उसे गोद में लेकर कहा—अम्मां मिठाई लेने गई है।

राजा खुश हो गया, बाहर जाकर लड़कों के साथ खेलने लगा। मगर कुछ देर के बाद फिर बोला—अम्मां मिठाई।

प्रेमसिंह ने मिठाई लाकर दी। मगर राजा रो-रोकर कहता रहा, अम्मां मिठाई। वह शायद समझता था कि अम्मां की मिठाई इस मिठाई से ज्यादा मीठी होगी।

आखिर प्रेमसिंह ने उसे कंधे पर चढ़ा लिया और दोपहर तक खेतों में घूमता रहा। राजा कुछ देर तक चुप रहता और फिर चौंककर पूछने लगता—अम्मां कहां है ?

बूढ़े सिपाही के पास इस सवाल का कोई जवाब न था। वह बच्चे के पास से एक पल को भी कहीं न जाता और उसे बातों में लगाए रहता कि कहीं वह फिर न पूछ बैठे, अम्मां कहां है ? बच्चों की स्मरणशक्ति कमजोर होती है। राजा कई दिनों तक बेकरार रहा, आखिर धीरे-धीरे मां की याद उसके दिल से मिट गई।

इस तरह तीन महीने गुजर गए। एक रोज शाम के वक्त राजा अपने दरवाजे पर खेल रहा था कि वृन्दा आती हुई दिखाई दी। राजा ने उसकी तरफ गौर से देखा, जरा झिझका, फिर दौड़कर उसकी टांगों से लिपट गया और बोला—अम्मां आई, अम्मां आई।

वृन्दा की आंखों से आंसू जारी हो गए। उसने राजा को गोद में उठा लिया और कलेजे से लगाकर बोली—बेटा, अभी मैं नहीं आई, फिर कभी आऊंगी।

राजा इसका मतलब न समझा। वह उसका हाथ पकड़कर खींचता हुआ घर की तरफ चला। मां की ममता वृन्दा को दरवाजे तक ले गई। मगर चौखट से आगे न ले जा सकी। राजा ने बहुत खींचा मगर वह आगे न बढ़ी। तब राजा की बड़ी-बड़ी आंखों में आंसू भर आए। उसके होंठ फैल गए और वह रोने लगा।

प्रेमसिंह उसका रोना सुनकर बाहर निकल आया, देखा तो वृन्दा खड़ी है। चौंककर बोला—वृन्दा ! मगर वृन्दा कुछ जवाब न दे सकी।

प्रेमसिंह ने फिर कहा—बाहर क्यों खड़ी हो, अंदर आओ। अब तक कहां थीं ?

वृन्दा ने आंसू पोंछते हुए जवाब दिया—मैं अंदर न आऊंगी।

प्रेमसिंह—आओ-आओ, अपने बूढ़े बाप की बातों का बुरा न मानो।

वृन्दा—नहीं दादा, मैं अंदर कदम नहीं रख सकती।

प्रेमसिंह—क्यों ?

वृन्दा—फिर कभी बताऊंगी। मैं तुम्हारे पास वह तेगा लेने आई हूं।

प्रेमसिंह ने अचरज में आकर पूछा—उसे लेकर क्या करोगी ?

वृन्दा—अपनी बेइज्जती का बदला लूंगी।

प्रेमसिंह—किससे ?

वृन्दा—रणजीतसिंह से।

प्रेमसिंह जमीन पर बैठ गया और वृन्दा की बातों पर गौर करने लगा, फिर बोला—वृन्दा, तुम्हें मौका क्योंकर मिलेगा ?

वृन्दा—कभी-कभी धूल के साथ उड़कर चींटी भी आसमान तक जा पहुंचती है।

प्रेमसिंह—मगर बकरी शेर से क्योंकर लड़ेगी ?

वृन्दा—इसी तेगे की मदद से।

प्रेमसिंह—इस तेगे ने कभी छिपकर खून नहीं किया।

वृन्दा—दादा, यह विक्रमादित्य का तेगा है। इसने हमेशा दुखियारों की मदद की है।

प्रेमसिंह ने तेगा लाकर वृन्दा के हाथ में रख दिया। वृन्दा उसे पहलू में छिपाकर जिस तरफ से आई थी उसी तरफ चली गई। सूरज डूब गया था। पश्चिम के क्षितिज में रोशनी का कुछ-कुछ निशान बाकी था और भैंसें अपने बछड़ों को देखने के लिए चरागाहों से दौड़ती और चाव-भरी हुई आवाज से मिमियाती चली आती थीं और वृन्दा अपने बच्चे को रोता छोड़कर शाम के अंधेरे डरावने जंगल की तरफ जा रही थी।

9

बृहस्पति का दिन है। रात के दस बज चुके हैं। महाराजा रणजीतसिंह अपने विलास-भवन में शोभायमान हो रहे हैं। एक सात बत्तियों वाला झाड़ रौशन है। मानो दीपक-सुंदरी अपनी सहेलियों के साथ शबनम का घूंघट मुंह पर डाले हुए अपने रूप के गर्व में खोई हुई है। महाराजा साहब के सामने वृन्दा गेरुए रंग की साड़ी पहने बैठी है। उसके हाथ में एक बीन है, उसी पर वह एक लुभावना गीत अलाप रही है।

महाराज बोले—श्यामा, मैं तुम्हारा गाना सुनकर बहुत खुश हुआ, तुम्ह क्या इनाम दूं?

श्यामा ने एक विशेष भाव से सिर झुकाकर कहा—हुजूर के अख्तियार में सब कुछ है।

रणजीतसिंह—जागीर लोगी ?

श्यामा—ऐसी चीज दीजिए, जिससे आपका नाम हो जाए।

महाराज ने वृन्दा की तरफ गौर से देखा। उसकी सादगी कह रही थी कि वह धन-दौलत को कुछ नहीं समझती। उसकी दृष्टि की पवित्रता और चेहरे की गंभीरता साफ बता रही थी कि वह वेश्या नहीं है जो अपनी अदाओं को बेचती है। फिर पूछा—कोहनूर लोगी ?

श्यामा—वह हुजूर के ताज में अधिक सुशोभित है।

महाराज ने आश्चर्य में पड़कर कहा—तुम खुद मांगो।

श्यामा—मिलेगा ?

रणजीतसिंह—हां।

श्यामा—मुझे इंसाफ के खून का बदला दिया जाए।

महाराज रणजीतसिंह चौंक पड़े। वृन्दा की तरफ फिर गौर से देखा और सोचने लगे इसका क्या मतलब है ? इंसाफ तो खून का प्यासा नहीं होता, यह औरत जरूर किसी जालिम रईस या राजा की सताई हुई है। क्या अजब है कि उसका पति कहीं का राजा हो। जरूर ऐसा ही है। उसे किसी ने कत्ल कर दिया है। इंसाफ को खून की प्यास इसी हालत में होती है; इसी वक्त इंसाफ खूंखार जानवर हो जाता है। मैंने वादा किया है कि वह जो कुछ मांगेगी वह दूंगा। उसने एक बेशकीमती चीज मांगी है, इंसाफ के खून का बदला। वह उसे मिलना चाहिए। मगर किसका खून ? राजा ने फिर पहलू बदलकर सोचा—किसका खून ? यह सवाल मेरे दिल में न पैदा होना चाहिए। इंसाफ जिसका खून मांगे उसका खून मुझे देना चाहिए। इंसाफ के सामने सबका खून बराबर है। मगर इंसाफ को खून पाने का हक है, इसका फैसला कौन करेगा ? बैर के बुखार से भरे हुए आदमी के हाथ में इसका फैसला नहीं रहना चाहिए। अक्सर एक कड़ी बात, एक दिल जला देने वाला ताना इंसान के दिल में खून की प्यास पैदा कर देता है। इस दिल जलाने वाले ताने की आग उस वक्त तक नहीं बुझती जब तक उस पर खून के छींटे न दिए जाएं। मैंने जबान दे दी है तो गलती हुई। पूरी बात सुने बगैर, मुझे इंसाफ के खून का बदला देने का वादा हर्गिज न करना चाहिए था। इन विचारों ने राजा को कई मिनट तक अपने में खोया हुआ रखा। आखिर वह बोले—श्यामा, तुम कौन हो ?

वृन्दा—एक अनाथ औरत।

राजा—तुम्हारा घर कहां है ?

वृन्दा—माहनगर में।

रणजीतसिंह ने वृन्दा को फिर गौर से देखा। कई महीने पहले रात के समय माहनगर में एक भोली-भाली औरत की जो तस्वीर दिल में खींची थी वह इस औरत से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी। उस वक्त आंखें इतनी बेधड़क न थीं। उस वक्त आंखों में शर्म का पानी था, अब शोखी की झलक है। तब सच्चा मोती था, अब झूठा हो गया है।

महाराज बोले—श्यामा, इंसाफ किसका खून चाहता है ?

वृन्दा—जिसे आप दोषी ठहराएं। जिस दिन हुजूर ने रात को माहनगर में पड़ाव किया था उसी रात को आपके सिपाही मुझे जबर्दस्ती खींचकर पड़ाव पर लाए और मुझे इस काबिल नहीं रखा कि लौटकर अपने घर जा सकूं। मुझे उनकी नापाक निगाहों का निशाना बनना पड़ा। उनकी बेबाक जबानों ने, उनके शर्मनाक इशारों ने मेरी इज्जत खाक में मिला दी। आप वहां मौजूद थे और आपकी बेकस रैयत पर यह जुल्म किया जा रहा था। कौन मुजरिम है ? इंसाफ किसका खून चाहता है ? इसका फैसला आप करें।

रणजीतसिंह जमीन पर आंखें गड़ाए सुनते रहे। वृन्दा ने जरा दम लेकर फिर कहना शुरू किया—मैं विधवा स्त्री हूं। मेरी इज्जत और आबरू के रखवाले आप हैं। पति-वियोग के साढ़े तीन साल मैंने तपस्विनी बनकर काटे थे। मगर आपके आदमियों ने मेरी तपस्या धूल में मिला दी। मैं इस योग्य नहीं रही कि लौटकर अपने घर जा सकूं। अपने बच्चे के लिए मेरी गोद अब नहीं खुलती। अपने बूढ़े बाप के सामने मेरी गर्दन नहीं उठती। मैं अब अपने गांव की औरतों से आंखें चुराती हूं। मेरी इज्जत लुट गई। औरत की इज्जत कितनी

कीमती चीज है, इसे कौन नहीं जानता ? एक औरत की इज्जत के पीछे लंका का शानदार राज्य मिट गया। एक ही औरत की इज्जत के लिए कौरव वंश का नाश हो गया। औरतों की इज्जत के लिए हमेशा खून की नदियां बही हैं और राज्य उलट गए हैं। मेरी इज्जत आपके आदमियों ने ली है, इसका जवाबदेह कौन है। इंसाफ किसका खून चाहता है, इसका फैसला आप करें।

वृन्दा का चेहरा लाल हो गया। महाराजा रणजीतसिंह एक गंवार देहाती औरत का यह हौसला, यह खयाल और जोशीली बात सुनकर सकते में आ गए। कांच का टुकड़ा टूटकर तेज धार वाला छुरा हो जाता है। वही कैफियत इंसान के टूटे हुए दिल की है।

आखिर महाराज ने ठंडी सांस ली और हसरत भरे लहजे में बोले—श्यामा, इंसाफ जिसका खून चाहता है, वह मैं हूं।

इतना कहने के साथ महाराज रणजीतसिंह का चेहरा भभक उठा और दिल बेकाबू हो गया। तात्कालिक भावनाओं के नशे में आदमी का दिल आसमान की बुलन्दियों तक जा पहुंचता है। कांटे के चुभने से कराहने वाला इंसान इसी नशे से मस्त होकर खंजर की नोक कलेजे में चुभो लेता है। पानी की बौछार से डरने वाला इंसान गले-गले पानी में अकड़ता हुआ चला जाता है। इस हालत में इंसान का दिल एक असाधारण शक्ति और असीम उत्साह अनुभव करने लगता है। इसी हालत में इंसान छोटे-से-छोटे, जलील-से-जलील काम करता है और इसी हालत में इंसान अपने वचन और कर्म की ऊंचाई से देवताओं को भी लज्जित कर देता है। महाराजा रणजीतसिंह उद्विग्न होकर उठ खड़े हुए और ऊंची आवाज में बोले—श्यामा, इंसाफ जिसका खून चाहता है, वह मैं हूं ! तुम्हारे साथ जो जुल्म हुआ है उसका जवाबदेह मैं हूं। बुजुर्गों ने कहा है कि ईश्वर के सामने राजा अपने नौकरों की सख्ती और जबर्दस्ती का जिम्मेदार होता है।

यह कहकर राजा ने तेजी के साथ अचकन के बंद खोल दिए और वृन्दा के सामने घुटनों के बल, सीना फैलाकर बैठते हुए बोले—श्यामा, तुम्हारे पहलू में तलवार छिपी हुई है। वह विक्रमादित्य की तलवार है। उसने कितनी ही बार न्याय की रक्षा की है। आज एक अभागे राजा के खून से उसकी प्यास बुझा दो। बेशक वह राजा अभागा है जिसके राज्य में अनाथों पर अत्याचार होता है।

वृन्दा के दिल में अब एक जबर्दस्त तब्दीली पैदा हुई, बदले की भावना ने प्रेम और आदर को जगह दी। रणजीतसिंह ने अपनी जिम्मेदारी मान ली, वह उसके सामने एक मुजरिम की हैसियत में इंसाफ की तलवार का निशाना बनने के लिए खड़े हैं, उनकी जान अब उसकी मुट्ठी में है। उन्हें मारना या जिलाना अब उसका अख्तियार है।

यह खयाल उसकी बदले की भावना को ठंडा कर देने के लिए काफी थे। प्रताप और ऐश्वर्य जब अपने स्वर्ण-सिंहासन से उतरकर दया की याचना करने लगता है तो कौन ऐसा हृदय है जो पसीज न जाएगा ? वृन्दा ने दिल पर सब्र करके पहलू से खंजर निकाला, मगर वार न कर सकी। तलवार उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ी।

महाराज रणजीतसिंह समझ गए कि औरत की हिम्मत दगा दे गई। वह बड़ी तेजी से लपके और तेगे को हाथ में उठा लिया। यकायक दाहिना हाथ पागलों जैसे जोश के साथ ऊपर को उठा। वह एक बार जोर से बोले 'वाह गुरु की जय' और करीब था कि तलवार

सीने में डूब जाए। बिजली कौंधकर बादल के सीने में घुसने ही वाली थी कि वृन्दा एक चीख मारकर उठी और राजा के ऊपर उठे हुए हाथ को अपने दोनों हाथों से मजबूत पकड़ लिया। रणजीतसिंह ने झटका देकर हाथ छुड़ाना चाहा मगर कमजोर औरत ने उनके हाथ को इस तरह जकड़ा था जैसे मुहब्बत दिल को जकड़ लेती है। बेबस होकर बोले—श्यामा, इंसाफ को अपनी प्यास बुझाने दो।

श्यामा ने कहा—महाराज, उसकी प्यास बुझ गई। यह तलवार इसकी गवाह है।

महाराज ने तेगे को देखा। इस वक्त उसमें दूज के चांद की चमक थी। सत्य और न्याय के चमकते हुए सूरज ने उस चांद को आलोकित कर दिया।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू, 'जमाना', जनवरी, 1911 में प्रकाशित। उर्दू 'प्रेम पचीसी' में संकलित। हिन्दी रूप इसी नाम से 'गुप्तधन' भाग-1 में संकलित।]

करिश्मा-ए-इन्तिकाम (अद्भुत प्रतिशोध)

क़रीब बीस साल के गुज़रे, बुन्देलखंड के एक जिले में शिवनाथ नाम का एक खंगार रहता था। बड़ा ग़रीब, ईमानदार, कुश्ती और पटे में मश्शाक़ (कुशल, अभ्यस्त)। क़रीब के थाने में तीन रुपया महावार मुशाहरा (वेतन) पर चौकीदारी का काम करता था। यही उसकी माश (जीविका का साधन) थी, मगर वे अर्जानी (सस्ती) के दिन थे। उसकी बड़ी फ़राग़त (निश्चिंतता) से निभती जाती थी।

शिवनाथ जिस मौज़े का वाशिंदा था, उसके एक नम्बरदार साहब का नाम लालसिंह था। लालसिंह औबाश (बदमाश), आवारा-मिज़ाज आदमी था। गाँव की हयादार औरतें बेमहाबा (निडरता) कहतीं कि किसी तरह उसकी दोनों आँखें बैठ जाएँ। न आँखें रहेंगी, न यह दूसरों की बहू-बेटियों पर बुरी निगाह डालेगा। एक रोज़ घूमता हुआ शिवनाथ के दरवाज़े की तरफ़ आ निकला और अपना दामे-मोहब्बत (प्रेम-पाश) फैला गया। शिवनाथ तो उधर थाने चला गया और मोहब्बत की घातें यहाँ अपना काम करती रहतीं। आख़िर ग़रीब खंगारन लालसिंह के जाल में फँस गई।

कुछ दिनों तक यह राज़ पोशीदा (छिपा) रहा, मगर गुनाह छिपाने से कब छिपता है? गाँव में सरगोशियाँ (कानाफूसी) होने लगीं। शिवनाथ को भी ख़बर हुई। बीवी का मिज़ाज कुछ दिनों से बदला हुआ देखकर उलझन में पड़ा हुआ था। कुछ शुबहा हुआ। लालसिंह से जाकर बोला, "ठाकुर साहब, मैं ग़रीब आदमी हूँ। मेरी इज़्जत, हुर्मत (प्रतिष्ठा) सब आपके हाथ में है। मुझे और आपको गाँव वाले बदनाम कर रहे हैं। ऐसा कुछ कीजिए कि मैं भी गाँव में बसा रहूँ और तुम्हारी भी बदनामी न हो।"

मगर लालसिंह नशे-ताक़त में भूला हुआ था। शिवनाथ को डांट-डपट बतायी और धक्के देकर निकलवा दिया। शिवनाथ को गुस्सा तो आया मगर ज़ब्त कर गया, और जाकर अपने थानेदार साहब से सारी कैफ़ियत बयान की। थानेदार ने लालसिंह को थाने में बुलाया, मगर शाम को लोगों ने उसे मूँछों पर ताव देते हुए लौटते देखा। बेदाग़ छूट आया।

सौ-पचास रुपयों ने मुश्किल आसान कर दी। ग़रीब शिवनाथ को इस दरबार से मायूस (निराश) होना पड़ा। आख़िर उसके दिल ने वह फ़ैसला किया जो ऐसी हालतों में अक्सर आख़िरी फ़ैसला होता है।

कुछ दिन और गुज़रे। शिवनाथ अपने घर में बेगानों की तरह आता और मेहमान की तरह रहता। वह घर अब उसका घर न था और न वह औरत उसकी बीवी थी। वह घर अब लालसिंह का था और औरत अब लालसिंह की बीवी थी।

एक दिन शिवनाथ ने अपनी बीवी से कहा, "मैं एक सरकारी काम से मौदहा जाता हूँ, चार-पाँच दिन लगेंगे, खूब होशियारी से रहना।" गँवार औरत तिरिया-चरित न पढ़ी थी। यह ख़बर सुनते ही बाग़-बाग़ हो गई। लबों पर तबस्सुब (मुस्कराहट) आ गया। यह मुस्कराहट शिवनाथ के कलेजे में बर्छी की तरह उतर गई। जब वह आटा-दाल बाँधकर घर से निकला तो लालसिंह के भाग जागे। जामे में फूले न समाये। सोचा कि अब चार-पाँच दिन चैन ही चैन है।

आधी रात का वक्त था। शिवनाथ ढाक के जंगल में छिपा हुआ था। उसने अपनी गँडास खूब तेज़ कर रखी थी। जब सारस के नालों ने दूसरा पहर बजाया तो वह कटार हाथ में लेकर अपने घर की तरफ़ चला। वहाँ जाकर देखा तो दरवाज़ा बन्द था। बन्दर की तरह लपककर छप्पर पर चढ़ गया और आँगन में कूद पड़ा। अन्दर जाकर देखा तो ठाकुर साहब और उनकी माशूक़ा-ए-दिलनवाज़ (हृदय की प्रेमिका) दोनों सरमस्ते-ख्वाब (स्वप्नलीन) हैं। कौन इस नज़ारे की ताब ला सकता है ? ललकारकर बोला. "लालसिंह, ख़बरदार हो जाओ, अब तुम्हारा काल आ पहुँचा है।"

लालसिंह हकबकाकर उठा ही था कि कटार का भरपूर हाथ गर्दन पर पड़ा और सिर अलग जा गिरा। खँगारिन शिवनाथ के पैरों पर गिर पड़ी। शिवनाथ ने उससे सिर्फ़ इतना कहा, "शर्म हो तो चुल्लू भर पानी में डूब मर !" मगर उस पर हाथ नहीं उठाया।

रात ज्यों-त्यों गुज़री। सवेरा होते ही शिवनाथ ने एक हाथ में इस सरे-बुरीदा (कटे सिर) को लटकाया और दूसरे में खून-आलूदा (खून से लथपथ) गँडास लिये हुए अपने थाने की तरफ़ चला और थानेदार साहब के रू-ब-रू वह सिर रखकर बोला, "आपसे जो इन्साफ़ न हो सका वह इस तलवार ने किया। लीजिये, यह सर हाज़िर है। आज से शिवनाथ खंगार पुलिस का दुश्मन है। निकल आये जिसे कुछ हौसला हो। शिवनाथ ललकार कर थाने से जाता है। यह न कहना, चुपके से निकल गया।"

बीस जवान बैठे यह ललकार सुनते रह गये, मगर किसी की हिम्मत न पड़ी कि उस झल्लाए हुए खंगार को रोक ले।

2

शिवनाथ ने चारों तरफ़ ऊधम मचाना शुरू किया। कहीं इस गाँव में आग लगाता कहीं उस गाँव में डाका मारता। उसे रुपये-पैसे की भूख न थी, उसे नम्बरदारों के खून की प्यास थी। कितने ही नम्बरदारों के घर बेचिराग़ हो गये। रफ्ता-रफ्ता उसकी एक जमीअत (गिरोह) क़ायम हो गई। शिवनाथ के नाम से लोग थर्राने लगे। एक फर्दे-बशर (अकेले व्यक्ति) ने

सारे ज़िले में हलचल डाल दी। सरेशाम ही से घरों के दरवाज़े बन्द हो जाते, रास्ता चलना दुश्वार हो गया। जहाँ देखिए, शिवनाथ मौजूद है। आज यहाँ डाका तो कल यहाँ से पचास मील पर आग लगयी। बड़े-बड़ों का सिर नीचा हो गया। दिन-दहाड़े उसका पैगाम पहुँचता कि शिवनाथसिंह का फलाँ मुक़ाम पर पड़ाव है, तुम उसकी दावत का सामान वहाँ भिजवा देना, वर्ना बुरा होगा। जिसने हुक्म-उदूली (आज्ञा का उल्लंघन) की, उसी जान की ख़ैर न थी। उसकी हिम्मत और ताक़त की रिवायतें सुनकर लोग दंग रह जाते थे। दाँतों में तलवार दबाकर हाथी के मस्तक पर जा बैठना उसके नज़दीक एक अदना-सी बात थी और वह चोरों की तरह छिपकर न रहता। रातों को मैदान में उसकी महफ़िलें आरास्ता (सुसज्जित) होतीं और पहाड़ियाँ नग्मों की सदाओं से गूँजतीं। तीन रुपये का चौकीदार सेठ-साहूकारों और बड़े-बड़े ज़मींदारों से खिराज (राजस्व, कर) लेने लगा।

एक दिन शिवनाथ ने एक मुतमव्वल (धनवान्) अहीर के घर पर डाका मारा। जब मालो-असबाब लेकर चलने लगे तो नौजवान अहीर उसके सामने आकर खड़ा हो गया और बोला, "गुरुजी, मेरी जमा-जथा तो तुम लिये जाते हो, मैं कहाँ रहूं। मुझे भी साथ लेते चलो।"

शिवनाथ उसका चेहरा-मोहरा, डील-डौल देखकर दंग रह गया। मर्द नहीं, शेर था। शेर की गर्दन, गैंडे का सीना, गोया वदन में सेंदुर भरा हो। बोला, "सच कहते हो ?"

अहीर, "हाँ।"

शिवनाथ, "तुम्हारा नाम क्या है ?"

अहीर, "दंगल।"

शिवनाथ, "आज से तुम दंगलसिंह हो।"

दंगल, "इस नाम की मरजाद-तुम्हारे हाथ है।"

शिवनाथ, "शक्ल तो तुम्हारी मर्दो की-सी है। दग़ा तो न दोगे ?"

दंगल, "मारूँगा तो कहकर मारूँगा। दग़ा देना मर्दो का काम नहीं है।"

शिवनाथ ने दंगलसिंह का सारा माल उसी वक्त वापस कर दिया और उसी दिन उन दोनों में उस दोस्ती और वफ़ादारी की बुनियाद पड़ी जो मरते दम तक क़ायम रही। पहले एक था, अब एक से दो हुए। दोनों मर्दे-मैदाँ (रण-बांकुरे)। शिवनाथ ने अकेले ज़िले में अंधेर मचा रखा था, अब दोनों ने मिलकर तूफ़ान बरपा कर दिया। शिवनाथ और दंगल का नाम सुनकर लोगों की रूह फना हो जाती थी।

3

तीन साल तक सारे ज़िले में कोहराम मचा रहा । दोनों डाकू ग़ज़ब के दिलेर थे। सौ-सौ आदमियों के वीच से यूँ निकल जाते, गोया विजली कौंध गयी। उनके ख़ौफ़ से पुलिस के आदमियों को नींद न आती। थानेदार और पुलिस के इंस्पेक्टर उन्हें नजराने दिया करते।

एक रोज़ दोनों एक पहाड़ी पर बैठे हुए थे। शाम हो गई थी। उन्हें दूर से एक आदमी घोड़े पर सवार आता दिखाई दिया। उसके पीछे-पीछे पालकी पर उसकी बीवी भी थी। मैके से विदा कराये लिये आता था। दंगल ने कहा, "गुरु, यह शिकार अच्छा आ रहा

है। इसे हाथ से जाने न देना चाहिए।"

यह सलाह करके दोनों पहाड़ी से उतरे और सवार से पूछा, "ठाकुर साहब, कहाँ से आते हो ? यहीं ठहर जाओ। आगे डाकू लगते हैं। यहाँ सरे-शाम ही से रास्ता बन्द हो जाता है।"

ठाकुर का नाम धनीसिंह था। बोला, "ठहरना तो मैं भी चाहता हूँ, मगर यहाँ ठहरने के लायक कोई जगह नहीं दीखती।"

दंगल—"इस पेड़ के नीचे कुआँ है, साया है, और क्या चाहिए। आज यहीं ठहरिये।"

धनीसिंह—"तुम लोग कौन हो ?"

दंगल—"हम भी मुसाफ़िर हैं। आज रात यहीं काटेंगे।"

धनीसिंह—"अच्छी बात है। यहाँ कोई गाँव नज़दीक है न ?"

दंगल—"घोड़े से तो उतरो। तुम्हारे आराम का सब इन्तज़ाम हो जायेगा। बन्दूक़ तो बड़ी तरहदार (बांकी) रखते हो। ज़रा इधर तो बढ़ाना।"

धनीसिंह चकमे में आ गया। बन्दूक़ दंगलसिंह को दे दी। फिर क्या था ! शिवनाथ ने धनीसिंह को घोड़े से खींच लिया और उसके हाथ-पैर बाँध दिये। कहारों ने यह कैफ़ियत देखी तो पालकी छोड़कर भाग निकले। ठकुराइन ने पालकी का पर्दा उठाकर झाँका तो आँखों में अँधेरा छा गया। धम से कुएँ में कूद पड़ी। धनीसिंह की आँखें खून की तरह सुर्ख़ हो रही थीं। बोला—"यारो, यह दग़ा की मार है।"

दंगल—"जब तक ज़बान से काम निकले, हम लोग देवी को तकलीफ़ नहीं देते।"

धनीसिंह—"क्या मुझे जीता छोड़े जाते हो ?"

दंगल—"हाँ, खूब चैन करो।"

धनीसिंह—"पछताओगे, मैं भी ठाकुर हूँ। कभी-न-कभी बदला लूँगा।"

दंगल—"हमारे एक लाख दुश्मन हैं। तुम एक और सही।"

धनीसिंह—"अच्छा तो ख़बरदार रहना। तुमने दग़ा की मार मारी है। मैं भी दग़ा की मार मारूँगा।"

4

इस वाक़िया के एक महीने बाद ख़बर उड़ी कि जगतसिंह नाम का एक नया डाकू उठ खड़ा हुआ है और साल भर के अन्दर उसने इस कसरत से डाके मारे कि शिवनाथ और दंगल के कारनामे उसके सामने मांद (धूमिल) पड़ गये। मगर बिल-उमूम (प्रायः) यह नया डाकू क़त्ल और लूट से मोतरिज़ (दूर) रहता। वह आंधी की तरह उठता और गांव को घेर लेता। बन्दूक़ की सदाएँ सुनायी देतीं। दो-चार पुराने झोंपड़ों में आग लग जाती और मतला (वातावरण) साफ़ हो जाता। न किसी की जान जाती, न किसी का माल जाता। ये सब लोग कहते कि जगतसिंह ने फलाँ गाँव में डाका मारा, मगर यह कोई नहीं कहता कि नुकसान क्या हुआ। यह नया डाकू दौलत का भूखा न था, न खून का प्यासा। वह डाकू की शोहरत चाहता था।

दंगल ने एक दिन शिवनाथ से कहा—"भइया, यह तो एक नया खिलाड़ी पैदा

हुआ।"

शिवनाथ—"बहादुर आदमी है, पूरा वीर।"

दंगल—"हमारा-उसका मेल हो जाये तो अच्छा।"

शिवनाथ—"सूबे का सूबा लूट लें।"

दंगल—"कहो तो आज संदेसा भेज दूँ।"

शिवनाथ—"भेज दो, मगर होशियार रहना।"

जगत के पास पैगाम पहुँचा तो उसका चेहरा खिल गया। दिल की खुशी दबाये न दबी। मुद्दतों की आरजू पूरी हुई। संदेसिये से कहा—"गुरुजी से हमारा पालागन कहना। हम तो उनके चाकर हैं। जब हुक्म हो, हाज़िर हों। आपस में कपट क्यों ?"

तीसरे दिन एक नदी के किनारे दोनों डाकू जगतसिंह से मिले। दंगल उसे देखकर चौंक पड़ा और ऐसा घबराया गोया गिर पड़ेगा। शिवनाथ भी चौंका, मगर सँभल गया। यह जगतसिंह कोई और न था, यह वही धनीसिंह ठाकुर था।

धनीसिंह ने कहा—"गुरु, मुझे पहचान गये न ?"

शिवनाथ—"हाँ, पहचान गया। यह बाना कब से लिया ?"

धनीसिंह—"उसी दिन से, जब आपके दर्शन हुए।"

शिवनाथ—"मेरी तरफ़ से दिल साफ़ है न ? पिछली बातें भूल गये या नहीं ?"

दंगल—"अगर न भूले हो तो फिर हमारा-तुम्हारा मेल न होगा।"

धनीसिंह ने संजीदगी के साथ कहा—"गुरु, शेरों के दिल में कीना नहीं होता।"

शिवनाथ—"हम-तुम अब भाई हैं।"

धनीसिंह—"मैं ऐसा ही समझता हूँ। आओ, गले मिल जायें। जो कुछ पुरानी कसर हो, निकल जाये।"

तीनों आदमी बाहम (परस्पर) गले मिले और रात-भर खूब जश्न मनाया गया।

5

साल भर और गुज़रा। तीनों डाकुओं ने ज़िले को तबाह कर दिया। उनके लिए रात-दिन, अँधेरे-उजाले की कैद न थी। वे दिन-दहाड़े लूटते और पहले से न्यौता देकर। फितना (दुष्ट) और क़यामत (प्रलय) के साथ काली बला और आ मिली। मेंह और आँधी के साथ बिजली का याराना हो गया।

होली के दिन थे। एक सेठ के घर डाका पड़ा। ग़रीब फाग गा रहे थे और खुशियाँ मना रहे थे। रंग में भंग पड़ गया। डाकू मालामाल हो गये। दंगलसिंह ने कहा—"गुरु, आज धूम से जलसा हो। आज हम भी होली मनायेंगे।"

दो परियाँ बुलायी गयीं। शराब का एक प्याला लाकर रख दिया गया। शराब का दौर शुरू हुआ और तबला गमकने लगा। परी शीशे में थी, शीशा परी के हाथ में, खूब शराब उड़ी। दंगल की आँखें झपक गयीं। मदहोश होकर बोला—"हम अब सोते हैं। देखें, कौन हमको पकड़ लेता है।"

शिवनाथ के होश वज़ा थे, मगर आँखों में सुरूर आ गया था। धनीसिंह से

बोला—"भइया, दंगल तो गिरे, अब सवेरे ही उठेंगे। तुम्हारी आँखें भी चढ़ी हुई हैं। दूसरे आदमियों का एतबार नहीं। क्यों न तुम भी थोड़ी देर आराम कर लो। फिर तुम्हें जगाकर मैं एक नींद सो लूँगा।"

यह कहकर बन्दूक़ हाथ में ली और पहाड़ी के आस-पास चक्कर काटने लगा, मगर हवा लगी तो शराब रंग लायी। एक चट्टान के सहारे खड़ा हो गया और खड़े-खड़े खर्राटे लेने लगा। अब धनीसिंह उठा। वह धुन का पक्का, बात का धनी ठाकुर अपने इरादे पर अब तक क़ायम था। बंदूक़ भरकर दंगलसिंह के सिर पर जा पहुँचा और ललकार कर बोला—"डाकू, होशियार हो जा। तेरी क़ज़ा सिर पर आ पहुँची।"

दंगलसिंह लड़खड़ाता हुआ उठा मगर गोली सीने के पार हो गयी और लाश चट्टान पर तड़पने लगी। बंदूक की आवाज़ शिवनाथ के कान में पहुँची। चट्टान की आड़ से झाँककर देखा तो धनीसिंह बंदूक सीने से लगाये उसकी तरफ़ चला आता था। चट्टान से चिमटकर बोला—"आख़िर दग़ा की।"

धनीसिंह—"दग़ा का जवाब दगा है।"

शिवनाथ—"मैं तेरी चाल समझ गया था।"

धनीसिंह—"समझते तो धोखा न खाते।"

दोनों ने बन्दूक़ें दागीं, मगर दोनों निशाने ख़ाली गये। इतने में शोर मच गया। तरफैन (दोनों तरफ से) से आदमी जमा हो गये। धनीसिंह ने शिवनाथ को गिरफ़्तार करना चाहा, मगर वह साफ निकल गया।

इस तरह एक बात के धनी ठाकुर के इन्तिक़ाम का फ़र्ज़ पूरा किया और मुल्क को एक बला-ए-मुहीब (भयानक विपत्ति) से निज़ात दी। इसके बाद कई साल तक धनीसिंह के मकान पर कांस्टेबिलों का पहरा रहा और जहाँ कहीं वह जाता, कांस्टेबिल उसकी हिफ़ाजत के लिए साथ रहते। ताहम (फिर भी), शिवनाथ रात और दिन में कम-से-कम एक बार उसके मकान का चक्कर लगाता और दो-चार निशाने ज़रूर सर करता, मगर कभी निशाना कारगर न हुआ।

धनीसिंह को सरकार से जागीर अता (अधिकारी) हुई। उसके लड़के अब तक उस पर काबिज (अधिकारी) हैं। फिर न मालूम शिवनाथ का क्या हश्र हुआ। उसने उसी दिन से डाका मारना तर्क (परित्याग) किया। कुछ लोगों का ख़याल है कि भगत होकर जगन्नाथ चला गया। कुछ लोग कहते हैं खुदकुशी कर ली, मगर यक़ीनी तौर पर कुछ मालूम नहीं।

लालसिंह नम्बरदार के नाम पर एक चबूतरा बनाया गया। गाँव में अभी तक उसकी पूजा होती है। वह शख़्स जो ज़िन्दगी में कुछ न कर सकता था, अब इन्सानी नेमतों (वरदान) और मसर्रतों (खुशियों) का खजांची समझा जाता है।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू, 'जमाना', फरवरी, 1911 में प्रकाशित। उर्दू में असंकलित। 'सारिका', जुलाई 2, 1976 में हिन्दी में प्रथम बार प्रकाशित। 'सोलह अप्राप्य कहानियां' और 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित।]

दोनों तरफ़ से

पंडित श्यामसरूप पटना के एक नौजवान वकील थे। उन बूढ़े नौजवानों की तरह नहीं जो आजकल मुहज्ज़ब (सभ्य) सोसाइटी में अक्सर नज़र आया करते हैं, जिनकी सारी जिस्मानी-ओ-दिमागी, ज़हनी-ओ-अकली, वातिनी-ओ-खारजी कुव्वत (आंतरिक एवं बाह्य शक्ति) जबान में मुजतमा (एकत्रित) रहती है। नहीं, हमारे पंडितजी इस जुमरे (वर्ग) के बूढ़े नौजवानों में न थे। वह ज़िन्दादिल नौजवानों में थे। ज़बान से कम और दिलो-दिमाग़, हाथ और पैर से ज़्यादा काम लेते थे। एक बार दिल में जो उसूल कायम कर लेते, उस पर साबित क़दम रहते थे। उनमें एक बड़ा वस्फ़ (गुण) यह था कि वह बहुत कामों में एक साथ हाथ न डालते। जो लोग चारों तरफ हाथ फैलाते हैं उन्हें कुछ भी नहीं मिलता। जो शख्स एक दर्जन अंजुमनों का सेक्रेटरी और निस्फ़ (आधी) दर्जन सोसाइटियों का प्रेसिडेंट है, उससे अमली काम की उम्मीद अगर सादा लोह (भोले-भाले) करें तो करें। कोई अक्ल सलीम (ठीक) रखने वाला शख्स नहीं कर सकता। उस गरीब की सारी कुव्वत और सरगर्मी ज़बान के रास्ते उड़ जाती है। पंडितजी शायद इस नुक्ते को खूब समझते थे। उन्होंने अछूत जातों के सुधार की एक छोटी-सी अंजुमन खोल रखी थी और अपने वक्ते फ़ुर्सत और आमदनी का एक कलील हिस्सा (अल्प-भाग) इस कारे खैर (सत्कार्य, पुण्यकार्य) की नजर करते थे। शाम हुई, कचहरी से आये, कुछ नाश्ता किया, बाईसिकिल उठाई और शहर से मुत्तसिल (मिले) देहातों में जा पहुँचे। वहाँ कहीं चमारों के साथ बैठे बातें कर रहे हैं, कहीं डोमों के बीच में बैठे हैं और उनसे उनकी ठेठ बोली में एखलाक के मुतअल्लिक गुफ़्तगू छिड़ी हुई है। उनके बच्चों को गोद में लेते हैं, प्यार करते हैं। इतवार के दिन या अगर कोई दूसरी तातील आ पड़ती तो तिलिस्मी लालटेन के तमाशे दिखाने जाया करते। उनकी सोहबत और हमदर्दी ने साल ही भर में उनके परगने के अछूतों की मुआशरत (रहन-सहन) में बहुत कुछ इस्लाह (सुधार) कर दी थी। लाशखोरी बिल्कुल बन्द हो गई शराबखोरी बिल्कुल तो बन्द नहीं हुई. मगर इससे आये दिन जो वारदातें होती रहती थीं, उनमें कमी हो जाने से पुलिस इंस्पेक्टर हामिद खाँ अलबत्ता बदजन (नाराज) हो गये।

रफ़्ता-रफ़्ता पंडितजी की इस हमदर्दी ने अछूत जातों के साथ बिरादराना ताल्लुक़ात कायम कर दिये। उनके परगने में तीन सौ मौजे थे और नीची जाति की तादाद छः हजार से कम न थी। इन सबों के साथ पंडितजी को दोस्ताना-ओ-बिरादराना उन्स (लगाव) था। उनकी शादियों में शरीक होते और रिवाज़ के मुताबिक़ व्यवहार ले जाते। अगर उनमें कोई फसाद होता तो अक्सर फरियाद पंडितजी के यहाँ ही आती थी। मुमकिन न था कि पंडितजी उनमें से किसी के बीमार होने की खबर पायें और अयादत (बीमार का हाल-चाल पूछने) के लिए न जायें। उन्होंने वैद्यक में खुद भी थोड़ी-सी मश्क-बहम (उपलब्ध करना) पहुँचाई थी। ख़ुद मरीज़ की तीमारदारी करते और ज्यादा तकलीफ़ में पाते तो रुपये-पैसे से भी इमदाद करते। मगर बेशतर सूरतों में उनकी हमदर्दी और मुहब्बत काफ़ी होती थी। ऐसे कामों के लिए रुपये की इतनी ज़रूरत नहीं होती, जितनी बेगरज इंसानियत और कौमी खिदमत के जोश की। उनकी साल भर की मुस्तकिल और सरगर्म हमदर्दाना कोशिशों ने इस फिरके में एक इन्क़लाब-सा पैदा कर दिया। उनके घर और झोंपड़े, उनकी ख़ूराको-लिबास

(खानपान) उनके रस्मो-रिवाज सब गोया खराद पर चढ़ गये और सबसे बड़ी बात यह हुई कि ये लोग अपनी इज्ज़त करना सीख गये। पहले दो-चार जाहिल-जपट ज़मींदारों ने उन्हें दिक दिया, मगर जब देखा कि इन्हें कुछ और ही धुन सवार है तो खामोश हो रहे। दो-चार कोरबातिन (कलुषित मन, अज्ञानी) आदमियों ने इस मामले में पुलिस से चाराजोई करनी चाही। दारोगा हामिद खाँ साहब आमादा भी थे, मगर चमारों और डोमों के पास क्या रखा था जो किसी की दाल गलती ? पंडितजी के ये ताल्लुक़ात बढ़ते गये। आख़िर यहाँ तक नौबत पहुँची कि एक बार चमारों के चौधरी की लड़की की शादी में उन्होंने उनके साथ खाना खा लिया।

2

पंडित श्यामसरूप की बीवी का नाम कोलेसरीदेवी था। कोलेसरी आम हिन्दुस्तानी औरतों की तरह अपने शौहर को दिलोजान से मुहब्बत करती थी। पढ़ी-लिखी तो कुछ यूँ ही-सी थी, मगर पंडितजी के साथ रहते-रहते मुल्की-व-तमद्दुनी मसायल (देशी एवं सांस्कृतिक समस्याओं) से कुछ मानूस (परिचित) हो गयी थी, लेकिन इसे चाहे इंसानी कमज़ोरी कहो, चाहे ख़ल्की हिस (स्वभावगत अनुभव) कि उससे किसी की बात की बरदाश्त न हो सकती थी। वह ज़बान की तेज़ न थी, न बात-बात में उलझती थी। मगर कोई चुभती हुई बात, कोई दिल जलाने वाला ताना उसके दिल पर नासूर का-सा ज़ख्म पैदा कर देता था। सुनने को तो वह सुन लेती और जवाब देना तो उसने सीखा ही न था, मगर अन्दर ही अन्दर घुलने की आदी थी। पंडितजी उसके इस ख़ासे (विशेषता) से वाक़िफ़ थे और इसीलिए वह कभी कोई ऐसी बात ज़बान से न निकालते, जिससे उसे सदमा हो। कई साल हुए जब पंडितजी की वकालत का शुरू ज़माना था और आमदोख़र्च में रोजाना कशमकश रहती थी। कोलेसरी ने संक्रांत के दिन ज़रा फैयाज़ी (दानशीलता) से काम लिया और पाँच रुपये की खिचड़ी ग़ुरबा (गरीबों) को बाँट दी। पंडितजी दिन-भर कचहरी की ख़ाक छानकर ख़ाली हाथ लौटे और यह कैफ़ियत देखी तो झुंझला उठे। तेज़ होकर बोले, "मैं तो एक-एक पैसे के लिए मारा-मारा फिरूँ और तुम यूँ घर को लुटाओ। अगर यही मिज़ाज था तो बाप से कहा होता किसी राजा-महाराजा से शादी करता।"

कोलेसरी ने चुपचाप सिर नीचा करके सुना, न जवाब दिया, न उज्र-माज़िरत (आपत्ति) की, न रोयी, मगर कामिल (पूरे) छः महीने तक बुखार और जोफ़े-जिगर (यकृत की दुर्बलता) में मुब्तला (ग्रस्त) रही। पंडितजी को जिन्दगी-भर के लिए सबक़ मिल गया।

खैर, पंडितजी रामफल चौधरी के यहाँ से खाना खाकर लौटे और दम के दम में सारे शहर में यह खबर मशहूर हो गई। दूसरे दिन कोलेसरी गंगा स्नान को गयी। शायद सोमवारी अमावस थी। शहर के दीगर रऊसा (अन्य धनी परिवारों की) की औरतें भी स्नान के लिए आयी हुई थीं। कोलेसरी को देखकर आपस में काना-फुसकी होने लगी, इशारेबाज़ियाँ होने लगीं। एक औरत ने जो ज़ाहिरा किसी ऊँचे ख़ानदान की मालूम होती थी, अपने क़रीब की औरत से कहा—"जरा इन महारानी को देखो। मर्द तो चमारों के साथ खाना

खाता फिरता है और यह गंगा नहाने आयी है।"

कोलेसरी ने सुन लिया। उसे सुनाने के लिए ही यह बात कही गयी थी। जिस तरह कुम्हार का सूत नर्म मिट्टी में धँस जाता है, उसी तरह सख़्त बात दिल में चुभ जाती है। कोलेसरी तिलमिला उठी। मालूम हुआ, किसी ने कलेजे में छुरी मार दी। नहाने की सुध न रही, उल्टे क़दम लौटी और घर चली आयी। साँप का ज़हर रग-रग में समा गया। खाना पकाकर पंडितजी को खिलाया। वह कचहरी चले गये। आज कोई मालदार मुवक्किल जाल में फँसा था। इस खुशी में बीवी के बदले हुए तेवर उन्हें नज़र न आये। शाम को खुश-खुश लौटे तो देखा, वह मुँह ढाँपे पड़ी हुई है। माथा ठनका, बोले—"कोला, आज मामूल (नित्य नियम) के ख़िलाफ़ लेटी क्यों हो ? तबीयत तो अच्छी है न ?"

कोलेसरी उठ बैठी और बोली—"हाँ, तबीयत अच्छी है, यूँ ही लेट गयी थी।"

मगर यह जवाब पंडितजी को इत्मीनान दिलाने के लिए काफ़ी न हो सकता था। तबीयत अच्छी है तो होंठों पर पान की सुर्ख़ी क्यों नहीं, बाल क्यों बिखरे हैं, चेहरा क्यों उदास है, मेरे लिए बर्फ़ क्यों नहीं मँगायी गयी। यह ख़यालात माअन (एकदम) पंडितजी के दिल में आये। कपड़े उतारे, कुछ नाश्ता किया, इधर-उधर की बातें कीं, दो-चार लतीफ़े भी सुनाये। मगर इन मन्त्रों से साँप का ज़हर न उतरा। कोलेसरी यूँ ही हूँ-हाँ करती रही। ज़हर ने उसके कान बन्द कर दिए थे। शाम हो गयी, पंडितजी के सैर का वक्त आया, बाइसिकल उठायी और चल खड़े हुए; मगर कोलेसरी की अफ्सुर्दगी (उदासीनता, खिन्नता) का ख़याल दिल में खटकता रहा। आज माँझ गाँव के पासियों के यहाँ शादी थी। वहाँ जा पहुँचे। बारात दूर से आयी हुई थी। बाराती लोग शराब के लिए ज़िद कर रहे थे और घरातियों की तरफ से सोलह आना इनकार था। बारातियों का तकाज़ा था कि औरतें हस्बे रिवाज़ (रीति एवं प्रथा के अनुरूप) दरवाज़े पर नाचें, नगाड़ा बजे। घराती कहते थे, अब यह रिवाज हमारे यहाँ नहीं है। माँझ गाँव में पंडितजी की कोशिशें सरसब्ज़ (सफल) हो गयी थीं। बाराती उनके हल्क़ए-असर (प्रभाव-क्षेत्र) से बाहर थे। तरफैन (दोनों तरफ से) में यही रद्दोकद (वाद-विवाद, कहा-सुनी) हो रही थी कि पंडितजी जा पहुँचे और बारातियों को समझा-बुझाकर ठंडा किया। ऐसे मौक़ों पर वह नौ-दस बजे रात तक न लौटते थे, क्योंकि उपदेश ऐसे मौक़ों पर ज्यादा असर-पज़ीर (प्रभावोत्पादक) होता है। मगर आज इस काम में उनका दिल न लगा। कोलेसरी की अफ्सुर्दा मुरझाई हुई सूरत आँखों के सामने फिरती रही। रह-रहकर ख़याल आता, मेरी जबान से तो कोई सख्त बात नहीं निकली। मुझे तो ख़याल नहीं आता कि मैंने कुछ कहा हो, फिर क्या बाइस (कारण) ? यह अफ़सुर्दगी बेसबब नहीं है, कुछ बात ज़रूर है इन्हीं तशवीशों (चिंताओं) से बेचैन होकर वह सात ही बजे घर लौट आये।

3

पंडित श्यामसरूप खा-पीकर लेटे। कोलेसरी से इस वक्त भी कुछ न खाया गया। उसका चेहरा अब भी उतरा हुआ था। आख़िर पंडितजी ने पूछा—"कोला, तुम उदास क्यों हो ?"

कोलेसरी—"उदास तो नहीं हूँ।"

श्यामसरूप—"तुम्हारी तबीयत कैसी है ?"

कोलेसरी—"तबीयत में क्या हुआ है। देखते तो हो, भली-खासी बैठी हूँ।"

श्यामसरूप—"मैं यह न मानूँगा। तुम्हारे उदास होने की ज़रूर कोई-न-कोई वजह है। क्या मुझे तुमसे यह पूछने का हक़ नहीं है ?"

कोलेसरी—"आप मेरे दिल और जान के मालिक हैं। आपको हक़ न होगा तो किसको होगा।"

श्यामसरूप—"तो मुझसे यह पर्दा कैसा है। मैं तो अपने दिल की कोई बात तुमसे नहीं छिपाता हूँ।

कोलेसरी ने आँखें नीचे करके कहा—"क्या मैं कुछ छिपाती हूँ ?"

श्यामसरूप—"अब तक तो नहीं छिपाती थी मगर आज ज़रूर छिपा रही हो। आँखें मिलाओ, मेरी तरफ़ देखो। लोग कहते हैं, औरतें एक निगाह में मरदों की मुहब्बत का अन्दाज़ कर लिया करती हैं। मगर शायद तुमने अब तक मेरी मुहब्बत की थाह नहीं पायी। यक़ीन मानो तुम्हारी इस अफ़्सुर्दगी (खिन्नता) ने आज मुझे बहुत बेचेन रखा। अगर इस वक्त भी न बताओगी तो मैं समझूँगा तुम्हें मुझ पर एतबार नहीं है।"

कोलेसरी की आँखें आबगूँ (अश्रुपूरित) हो गयीं। पंडितजी की तरफ़ देखकर बोली—"मेरे दिल में जो काँटा खटक रहा है, उसे आप निकालेंगे ?"

श्यामसरूप के रोंगटे खड़े हो गये। घबराकर उठ बैठे और काँपती हुई आवाज़ से कहा—"कोला ! तुम यह सवाल पूछकर मुझ पर जुल्म कर रही हो। मैं और मेरा सब कुछ तुम पर से निसार (न्यौछावर) है। तुम्हें मेरी तरफ़ से ऐसा ख़याल नहीं रखना चाहिए।"

कोसेसरी समझ गई कि ज़बान से कुछ का कुछ निकल गया, बोली—"मेरा ईश्वर जानता है कि मैंने कभी तुम्हारी मुहब्बत पर शक नहीं किया। मैंने यह सवाल सिर्फ़ इसलिए पूछा था कि शायद तुम मेरे उदास होने का सबब सुनकर हँसी में उड़ा दो। मैं यह जानती हूं कि मैं जो कुछ कहूँगी, वह मुझे न कहना चाहिए। यह भी जानती हूँ कि आपको इस बात के मानने में बहुत दिली सदमा होगा। इसीलिए मैं आपसे छिपाना चाहती थी। बात ही तो थी, दो-चार महीने में भूल जाती। मगर आपकी इस धमकी ने मुझे मजबूर कर दिया। जिस दिन आप यह ख़याल करेंगे कि मुझे आप पर एतबार नहीं है, तो जानते हो मेरी क्या गत होगी....यही धमकी मुझे मजबूर कर रही है।"

श्यामसरूप—"हाँ-हाँ, बेख़ौफ़ कहो, मुझे अब सब्र नहीं है।"

कोलेसरी—"आप अछूतों के साथ मिलना-जुलना, खाना-पीना छोड़ दें।"

जैसे बेगुनाह कैदी मुंसिफ़ की ज़बान से सज़ा का हुक्म सुनकर लम्बी साँस खींचता है, उसी तरह पंडितजी ने एक आह-सर्द भरी और ज़रा देर के लिए दम बखूद (मौन) होकर लेट गये। फिर उठकर बोले—"बहुत अच्छा, तुम्हारे हुक्म की तामील होगी। दिल को सदमा बेशक होगा, लेकिन कोई मुज़ायक (आपत्ति) नहीं। सिर्फ़ इतना और बतला दो कि यह हुक्म किसकी ईमा (संकेत) से दिया गया है या दिल में खुद-ब-खुद पैदा हुआ है ?"

कोलेसरी—"मुझे औरतें ताना देती हैं और मुझसे इसकी बर्दाश्त नहीं होती। उनकी

ज़बान पर मेरा कोई दावा नहीं, वे जो चाहें कहें। आप पर मेरा दावा है, इसलिए आपसे कहती हूँ।"

श्यामसरूप—"बहुत अच्छी बात है, यही होगा।"

कोलेसरी—"अब आपसे मेरी एक और विनती है। मैंने अपने दिल की कैफ़ियत आपसे साफ़-साफ़ बयान कर दी। मरदों को तानों की परवाह नहीं होती, हम औरतें कमज़ोर होती हैं, हमारा दिल कमज़ोर होता है, उसमें तेज धार वाला ताना आसानी से चुभ जाता है। मगर आप इसका बिल्कुल ख़याल न करें। मुझे तानों से बचाने के लिए आप अपने ऊपर जब्र न कीजिएगा। मैं ताने सुन लूँगी, ज्यादा जी जलेगा तो बाहर आना-जाना, औरतों से मिलना-जुलना छोड़ दूँगी।"

श्यामसरूप ने कोलेसरी को गले से लगा लिया और बोले—"कोला, मुझसे यह गवारा न होगा कि मेरी ख़ातिर तुम ताने सहो। तुम्हारे नाजुक दिल पर ताने का जख़्म न लगने दूँगा। तुम्हारे दिल में रंज का वास हुआ तो मेरी मुहब्बत कहाँ रहेगी। बेआव खुश हो जाओ अपना प्यारा गीत सुना दो।"

कोलेसरी खुश हो गयी। उसका चेहरा रौशन हो गया। उसने पियानो उठा लिया और मीठे मद्धम सुरों में गाने लगी—

"पिया मिलन है कठिन बावरी....।"

4

एक हफ़्ता गुज़र गया और पंडितजी देहातों की तरफ़ न गये। अछूत भाइयों के साथ बिरादराना रिश्ता कायम करना, उनको अपने तईं इन्सान समझने के क़ाबिल बनाना, उन्हें जहालत और बातिल-परस्ती (अज्ञानता और असत्यता) की गार से निकालना, यह पंडितजी ने अपनी ज़िदगी का मिशन समझ रखा था और इस काम के रास्ते में एक दीवार हायल (बाधक) पाकर कोई ताज्जुब नहीं कि वह मुतफक्किर (चिंतित) और मग्मूम (दु:खित) रहते थे। इन्सान को ज़िन्दगी का लुत्फ़ उसी हालत में हासिल होता है, जब तक उसे इस बात का यक़ीन रहता है कि मैं अपने फराइज़ (कर्त्तव्य) अंज़ाम दे रहा हूँ दुनिया में ऐसे भी बेशुमार बंदगाने खुदा (ईश्वर के प्राणी) हैं जो यही नहीं जानते कि उनके शख़्सी और क़ौमी फ़राइज (व्यक्तिगत और सामाजिक कर्त्तव्य) क्या हैं। मगर ऐसे आदमियों को इंसान कहना भूल है। जिन लोगों को बुरे कामों की चाट पड़ जाती है, वे यह जानते हुए कि हम जो कुछ करते हैं, बुरा करते हैं, अपने को उस काम से बाज़ नही रख सकते और जायज़ मौक़ा न पाकर नाजायज़ मौक़ौ से फ़ायदा उठाते हैं। जुआरी को कितना ही समझाओ, कितना ही धमकाओ, मगर वह जुआ खेलने से बाज़ नहीं आता। शराबी को चाहे पिंजड़े में बन्द कर दो, मगर वह आज़ाद होते ही सीधे शराब-ख़ाने की राह लेता है। यह बुरे कामों का नशा है। नेक कामों का नशा इससे बदर्जहा (कई गुना) ज़्यादा बेचैन करने वाला होता है। दिन भर तो पंडितजी काम-धन्धे में लगे रहते मगर शाम को जो उनके दिलचस्प मशग़िल (दिल-बहलाव) का ख़ास वक्त था, वह बहुत बेकरार हो जाते थे और अपने क़ौमी फ़र्ज़ को शख़्सी फ़र्ज पर कुर्बान करने के लिए उन्हें अपने दिल पर बड़ा जब्र

करना पड़ता था। जब अपने बाग़ीचे में तनहा बैठे हुए वह अपने दिल से इस मसले पर बहस करने लगते तो बाज़ औक़ात अपनी कमज़ोरी पर झुँझला जाते और जी में आता कि चलकर कोलेसरी से साफ़-साफ़ कह दूँ कि मैं क़ौम को जात पर कुर्बान नहीं कर सकता। मगर हाय! इन बातों का असर कोला पर क्या होगा ! मेरी मुहब्बत में मतवाली, नेक, शरीफ़, गरीब कोला पर क्या कुछ न बीत जायेगी। नहीं, मेरी जान से प्यारी कोला; तुम जैसी अनमोल चीज़ पाकर मेरी हिमाक़त है, अगर मैं अपने तई बदनसीब ख़याल करूँ। तुम्हारी ख़ुशी के लिए मैं सब कुछ सह लूँगा। अगर तुझे आज मालूम हो जाये कि मैं इस क़दर बेचैन हो रहा हूँ तो मुझे यक़ीन है कि तू आज ही मेरे लिए ताने सहने क्या चीज़ हैं, सारी दुनिया में अंगुश्तनुमा (बदनाम, निन्दित) बनना पसन्द कर लेगी। तेरे इस हमागीर मुहब्बत (अनन्य प्रेम) के बदले में मेरे पास क्या है ? क़ौमी फ़र्ज़ बेशक इंसान के सब फराइज में बालातर (बहुत ऊँचा) है। मगर कभी-कभी और ख़ास-ख़ास हालतों में क़ौम को जात के लिए छोड़ना पड़ता है। राजा रामचन्द्र का क़ौमी फ़र्ज़ था कि वह अवध में रहकर अपनी रिआया पर इंसाफो-आसाइश (न्याय और समृद्धि) की बरकतें फैलाते, मगर इस क़ौमी फर्ज़ को उन्होंने बाप की इताअत (आज्ञा-पालन) के मुकाबले में कुछ न समझा, जो उनका खास जाती फ़र्ज़ था। राजा दशरथ का क़ौमी फर्ज़ था कि वह अपना राज-पाट रामचन्द्र को सौंपते, क्योंकि वह जानते थे कि रामचन्द्र अवधवासियों की आँखों की पुतली हैं। मगर उन्होंने इस क़ौमी की अहद-परवरी (प्रतिज्ञा पालन) पर निसार कर दिया, जो उनका ख़ास जाती फ़र्ज़ था।

लेकिन पंडित श्यामसरूप की गलती थी जो वह समझते थे कि कोलेसरी उनके दिल की कशमकश से वाक़िफ़ नहीं है। जिस राम को ये बातें हुई उस दिन से आज तक एक लम्हा भी ऐसा न गुज़रा होगा, जिसमें यह ख़याल उसके दिल में चुटकियाँ न लेता रहा हो कि मैंने इन पर बड़ा जुल्म किया है। उसे उनके चेहरे पर वह मसर्रत (प्रसन्नता) की झलक न नज़र आती थी जो इत्मीनाने क़ल्ब (सन्तुष्ट हृदय) की बरकत है। खाने-पीने में अगली-सी रग़बत (रुचि) न थी। बात से अपनी दिली कैफ़ियत के छिपाने की कोशिश मुतरश्शेह (प्रकट) होती थी। कोलेसरी को यह सब कैफ़ियत आईने की तरह दिखाई देती थी। वही बार-बार अपने तई कोसती थी—मैं कैसी खुदगर्ज़ हूँ। कैसी कमीनी, कैसी ओछी एक बदज़बान सिफ़्लामिजाज (क्षुद्र प्रकृति) औरत के ताने से मग्लूर (पराजित) होकर मैंने उन पर इतना जुल्म किया है। यह मेरे लिए अपने ऊपर इतना ज़ब्र करते हैं और मैं एक ताने का सदमा न सह सकी। यह सोच-सोचकर वह चाहती कि मैं उन्हें इस क़ैद से आज़ाद कर दूँ। मगर पंडितजी कभी उसे इन बातों का मौक़ा ही देते।

5

एक हफ़्ते तक पंडित श्यामसरूप के अछूत भाइयों ने सब्र किया। मुमकिन है तबीयत न अच्छी हो या किसी मुक़दमे की पैरवी में मसरूफ़ हों, या कहीं सैर करने चले गये हों। इन ख़यालात से उन्होंने अपने तई तस्कीन दी। मगर एक हफ़्ते बाद उनसे न रहा गया। जूक़ के जूक़ (भीड़ की भीड़) आदमी, बदन पर गाढ़े की मिरजई, सिर पर सफ़ेद पगड़ी, पाँव में

चमरौधा जूता, कन्धे पर लट्ठ, उनके मकान पर इस्तफ़सारे हाल (राजी-खुशी पूछने) के लिए आने लगे। पंडितजी के लिए अब बजाय इसके और कोई चारा न था कि अपनी फ़र्ज़शिकनी (कर्त्तव्य-भंग) के लिए कोई हीला करें और वह हीला यह था कि घर में तबीयत नासाज़ (अस्वस्थ) है। शाम से सबेरे तक आदमियों का तार न टूटता। एक गाँव के लोग जाते तो दूसरे गाँव के आ पहुँचते और सबसे पंडितजी को यही बहाना करना पड़ता। उनसे और क्या कहते !!

दूसरा हफ़्ता गुज़रा मगर पंडितजी के घर में अब तक तबीयत नासाज़ थी। एक रोज़ शाम के वक्त वह दरवाज़े पर बैठ हुए थे कि रामदीन पासी, हल्लू चौधरी और गोबरी, बंसफोड़ हकीम नादिरअली खाँ साहब को लिये हुए आये। हकीम साहब अपने जमाने के बुअली सेना (ईरान की प्रसिद्ध हकीम, दार्शनिक एवं ज्योतिषी) थे। जिस तरह इस्मे-आजम (महामंत्र) से शैतान भागता है, उसी तरह हकीमजी को देखते ही मर्जखाह (चाहे) कैसा ही कोहना (पुराना) और मुज़मिन (जड़ पकड़ना) हो, राहे-फ़रार (भागने का मार्ग) इख़्तियार करता था और बसा-औक़ात (प्रायः) मरज के साथ मरीज भी चल बसता था। पंडितजी हकीम साहब को देखते ही सिटपिटा गये। अब कौन-सी चाल चलूँ, भाँडा फूटा जाता है। इन कमबख़्तों को यह क्या सूझी कि इन ज़ाते-शरीफ़ (महाशय) को लाकर खड़ा कर दिया और इन मर्दे-खुदा (महापुरुष) ने भी आव देखा न ताव देखा, सीधे मौत की तरह सिर पर आ खड़े हुए। मगर वक्त तंग था, ज़्यादा सोच-विचार की फ़ुर्सत न थी। उस वक्त पंडितजी के दिल में बावजूद कोलेसरी को हज़ार जान से चाहने के यह ख़याल आया कि काश, जरा देर के लिए उसे कुछ हरारत हो जाती। किसी तरह बात तो बनती। मगर बुलाने से कहीं मौत आती है ?

हकीम साहब ने फर्माया—"मुझे यह सुनकर कमाल (अत्यन्त) अफ़सोस हुआ कि जनाब की अहलिया मुकर्रमा (प्यारी पत्नी) अर्से दो हफ़्ता से अलील (बीमार) हैं और अफ़सोस से ज़्यादा इस अम्र (बात) की शिकायत है कि जनाब ने मुझे जरा भी इत्तिला न दी वरना मर्ज़ इस कदर तूल न खींचता। क्या शिकायत है ?" पंडितजी ने कुछ सिर खुजलाकर, खाँसकर, पहलू बदलकर और सिर झुकाकर फ़र्माया—"जी, यही कुछ निस्वानी (स्त्रियों की) शिकायतें लाहक हो गयी थीं, मगर अब तो आपके फैज़ो-करम से तबीयत रूह बराह (ठीक रास्ते पर) है। फिलहाल लेडी डॉक्टर का इलाज हो रहा है। आप जानते हैं, यह अंग्रेजी तहजीब का दौर है, अंग्रेजी इलाज से लोगों को ज़्यादा अक़ीदत होती जाती है और मरीज को उस हकीम या डॉक्टर से सेहत होती है, जिस पर उसे अक़ीदा हो। इसी वजह से जनाब को तकलीफ़ नहीं दी।"

हक़ीम साहब—"जी हाँ, आप बजा फ़र्माते हैं। कौन-सी लेडी डॉक्टर का इलाज हो रहा है ?"

पंडितजी ने फिर सिर खुजलाकर और इधर-उधर ताककर कहा—"उन्हीं मिस बोगन का।"

श्यामसरूप को इस मौक़े पर सारी क़ानूनी काबलियत सर्फ़ करनी पड़ी। मगर आज वह किसी मनहूस आदमी का मुँह देखकर उठे थे। सूरत हाल बजाय मुआफ़िक होने के

और भी मुखालिफ़ होती जाती थी क्योंकि दौराने तक़रीर ही में कल्लू चौधरी, हरदास भर और जुग्गा धोबी आते हुए दिखायी दिए और उनके साथ मिस बोगन घोड़े पर सवार तशरीफ़ ला रही थीं। अब तो पंडितजी के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं, रंग फक हो गया। मिस बोगन को दिल में हज़ारों सलावातें (दुर्वचन) सुनायीं कि यह शैतान की खाला इस वक्त कहाँ से फट पड़ी। मगर झल्लाने का मौक़ा न था। फ़ौरन कुर्सी से उठ खड़े हुए। मिस बोगन से हाथ मिलाया और उसे बिला कुछ पूछने का मौक़ा दिए हुए हाथ पकड़कर जनाना निशस्तगार (बैठक) में ले गये और कुर्सी बैठा दिया। बाद अज़ाँ (तत्पश्चात्) कोलेसरी से जाकर कहा—"इस वक्त अजीब हालत में जान मुब्तला (फँसी) है। मैंने तो तुम्हारी बीमारी का बहाना किया कि किसी तरह इन आदमियों से पीछा छूटे। मगर उन्होंने आज हकीम नादिरअली खाँ और मिस बोगन को लाकर सिर पर सवार कर दिया। मिस साहेबा को बैठक में छोड़ आया हूँ। बताओ, क्या करूँ ?"

कोलेसरी—"तो मैं बीमार हो जाऊँ, क्यों ?"

पंडितजी (हँसकर)—"तुम्हारे दुश्मन बीमार हों।"

कोलेसरी—"दुश्मनों के बीमार होने से इस वक्त काम न चलेगा। तुम जाकर मिस बोगन को लाओ। मैं लिहाफ ओढ़कर लेटी जाती हूँ।"

पंडितजी तो मिस बोगन को लाने के लिए बाहर निकले। कोलेसरी ने सिर से पैर तक लिहाफ ओढ़ लिया और झूठ-मूठ कराहने लगी। मिस बोगन ने थर्मामीटर लगाया, जबान देखी और मुँह बनाकर बोली—"बीमारी जड़ पकड़ गयी है। हिस्टीरिया है बुखार बाहर नहीं है, मगर कलेजे पर है क्यूँ, तुम्हारे सर में दर्द है ना ?"

कोलेसरी—"सर तो फटा जाता है। फोड़ा हो रहा है।"

मिस बोगन—"भूख नहीं लगती न ?"

कोलेसरी—"दाने की तरफ़ देखने को जी नहीं चाहता।"

मिस बोगन मरज की तश्ख़ीस (निदान) कर ही चुकी थी। नुस्ख़ा लिखा और रुख़सत हो गयी। हकीम नादिरअली खाँ ने ज़्यादा बैठना फिजूल समझा। नजराना पेशगी ले चुके थे। पंडितजी बाहर आकर अपने मोहसिनों (उपकारकों) से बोले—"तुम लोगों ने नाहक़ तकलीफ़ की। उनकी तबीयत तो अब अच्छी हो चली है। ख़ैर, मैं तुम्हारा बहुत मशकूर (आभारी) हूँ।"

जब मेहमान रुख़सत हुए पंडितजी अन्दर आकर खूब हँसे और जब हँसी ख़त्म हो गयी तो सोचने लगे, जो कुछ न करना चाहिए वह आज सब करना पड़ा क्या अब भी देवी न पसीजेगी, मगर कोलेसरी को हँसी नहीं आयी।

6

पंडित श्यामसरूप खाना खाकर लेटे और सो गये मगर कोलेसरी को नींद नहीं आयी। वह करवटें बदलती रही। कभी उठ बैठती और कमरे में इधर-उधर टहलती, कभी कोई किताब खोलकर लैम्प के सामने जा बैठती, मगर तबीयत किसी काम में न लगती थी। हवा से हिलते हुए दरख्त के नीचे जिस तरह चाँद की किरणें नाचती हैं, उसी तरह उसके

ख़यालात परेशान हो रहे थे। वह सोचती थी कि मैंने इनके ऊपर कितना जुल्म किया है। हाय ! इनके दिल पर आज क्या गुज़री होगी। जिसने ज़िन्दगी भर झूठ बात मुँह से न निकली, उसे आज मेरी बदौलत झूठ को ओढ़ना-बिछौना बनाना पड़ा। अगर उन्होंने झूठ बोलना गवारा किया होता, तो आज दीदारगंज की अज़ीमुश्शान (विशाल) रियासत हमारे कब्जे में होती। ऐसी सच्चाई के नाम पर मरने वाले आदमी की मैंने यह दुर्गति की है ! क्या इसीलिए मैं उनकी किस्मतों की शरीक हूँ ? मेरा काम है उनसे हमदर्दी करना, नेक कामों में उनकी मदद करना, नेक सलाह देना, तस्कीन देना। इन सब फरायज़ के बदले में उन्हें झूठ के जाल में फँसा रही हूँ। ईश्वर मेरा गुनाह माफ़ करे।

मेरा फर्ज़ था कि इस कारे-ख़ैर (परोपकार के कार्य) में उनका हाथ बंटाती। यह देहती कैसे सच्चे, कैसे बेरिया, (निश्छल) कैसे मुहसिन-परस्त (उपकारी की पूजा करने वाले) हैं, कैसे दिल के फैय्याज़ (उदार)। ऐसे शरीफ आदमियों की ख़िदमत करने से मैंने अपने पति को रोक दिया है, सिर्फ इसलिए कि एक बदजबान औरत ने मुझे ताना दिया था और इतने पर आसूदा (सन्तुष्ट) न होकर अब मैं उन्हें ज़बर्दस्ती झूठ बोलने के लिए मजबूर करती हूँ। बावजूद मेरी इन कमीनी ज़्यादतियों के इस नेकी से भी ज़्यादा नेक, शराफ़त से भी ज्यादा शरीफ़, मेरे रहमदिल, मेरे पाकनफ्स (पवित्र आत्मा) पति का दिल ज्यों-का-त्यों है। यह समझता है कि मैं बेवकूफ़ हूँ, जाहिल हूँ, कमज़ोर हूँ, जिद्दी हूँ और इन कमज़ोरियों को अपनी वसी मुहब्बत (विस्तृत प्रेम) की गोद में छिपा लेता है। मैं कैसी तंगदिल हूँ ! इस क़ाबिल भी नहीं कि उनका पैर धोऊँ। आज जब मिस बोगन को रुख़सत करके आये तो कैसे हँस रहे थे। कैसी पाक हँसी थी! और यह सिर्फ़ मेरा दिल रखने के लिए, सिर्फ़ मेरा ग़म ग़लत करने के लिए। प्यारे ! मैं सिर से पैर तक बुराइयों से भरी हूँ। मैं ओछी हूँ। तुम मुझे अपने प्रेम में मतवाली दासी समझते रहना।

यह सोचते-सोचते एक बार उसने पंडित श्यामसरूप के चेहरे की तरफ़ देखा, राहतबख़्श ख़्वाब ने चेहरे को बहुत शगुफ़्ता (प्रफुल्लित) बना दिया था, होंठों पर हल्की-हल्की मुस्कराहट झलक रही थी। इसे देखकर कोलेसरी के दिल में प्रेम की एक लहर-सी उठी। जिस तरह समन्दरों में ज्वार उठता है, इसी तरह कभी-कभी इंसान के दिल में भी प्रेम का ज्वार उठता है। कोलेसरी की आँखों में इस वक्त मुहब्बत का एक दरिया समाया हुआ था। वह मुहब्बत से बेताब होकर अपने पति के सीने से लिपट गयी! उस सीने से जो उसकी मुहब्बत का आरामगाह था। जिस तरह एक चोर सोये हुए साहिबे-खाना (गृहस्वामी) के खजाने को आज़ादी से लूटता है, उसी तरह कोलेसरी अपनी नींद में मतवाले शौहर के प्रेम के खज़ाने को जी खोलकर लूट रही थी और जिस तरह चोर डरता है कि साहिबे-खाना जाग न जाये, उसी तरह कोलेसरी को भी धड़का लगा हुआ था कि कहीं यह जाग न रहे हों। औरत की मुहब्बत दू-बदू (प्रत्यक्ष) आज़ादी से आँखें नहीं मिला सकती। शर्म और हिजाब उसे आँखें ऊपर नहीं उठने देते। यह ख़ौफ कि मेरी यह गर्मजोशी ज़ाहिरदारी या तसन्नो (दिखावा या कपट-व्यवहार) न ख़याल कर ली जाये, उसकी मुहब्बत के पैरों में बेड़ियाँ डाले रहता है। कोलेसरी इस वक्त इन ख़यालों से आज़ाद थी। जब समन्दर में ज्वार आता है तो शिकस्ता (टूटे-फूटे) जहाज़ों के टुकड़े ख़सो-ख़ाशाक (कूड़ा करकट) और सीप

और घोंघे साहिल पर आ जाते हैं। कोलेसरी के दिल में से प्रेम के इस ज्वार ने वह फाँस निकाल दी जो अब तक खटक रही थी।

7

दूसरे दिन जब पंडितजी कचहरी से शाम को लौटे तो कोलेसरी से कहा—"मुझे दो-तीन दिन के लिए बाहर जाने का हुक्म मिलेगा।"

कोलेसरी—"क्यों, कहाँ जाओगे ?"

श्यामसरूप—"मुफ़स्सिल (शहर के बाहर) का एक मुक़दमा ले लिया है। भागलपुर जा रहा हूँ।"

कोलेसरी—"क्या अभी ?"

श्यामसरूप—"कल ही तो तारीख है।"

छः बजे शाम की डाक से पंडितजी भागलपुर सिधारे और चार दिन तक मुक़दमे की पैरवी में मसरूफ़ रहे। तीन दिन का वादा करके आये थे, चार दिन लग गये। बारे पाँचवें दिन फ़ुर्सत हुई। तीन बजे पटना पहुंचे और घर की तरफ चले। अपने मुहल्ले में दाख़िल हुए तो माँझ गाँव का सनपत चौधरी दिखायी दिया। पंडितजी ने कहा—"चौधरी जी, कहाँ के धावे हैं ?"

चौधरी ने चौंककर सिर उठाया और बोला—"पालागन, आपकी तो कल अवाई थी। देर काहे से हुई ?"

पंडितजी—"कल नहीं आ सका। और तो सब खैरियत है ?"

चौधरी—"सब आपकी कृपा है। आज तो आपके यहाँ बड़ा जलसा है।"

पंडितजी—(ताज्जुब से) "मेरे यहाँ ? कैसा जलसा ?"

चौधरी—"बहूजी ने सभा करी है। हम लोगन के घर की सब औरतें न्योते में आयी हैं।"

पंडितजी खुश-खुश आगे बढ़े तो सदहा आशना (सैकड़ों मित्र) सूरतें इधर-उधर आते-जाते दिखायी दीं, गोया दहक़ानियों (देहातियों) की बारात आ गयी हो! सबको सलाम-बन्दगी करते हुए अपने दरवाज़े पर पहुँचे तो मेला-सा लगा हुआ था। फ़र्श पर सैकड़ों आदमी बैठे हुक्का-तम्बाकू कर रहे थे। कोलेसरी ने औरतों को नवेद (निमंत्रण) दिया था। ये आदमी औरतों के साथ आये थे।

पंडितजी सीधे दीवानख़ाने में गये। कपड़े उतारे, नौकरों से कह दिया—अन्दर ख़बर मत करना और खुद दीवानख़ाने की खिड़की से अन्दर का तमाशा देखने लगे।

आँगन में सफ़ेद फ़र्श बिछा हुआ था और उस पर तीन-चार सौ औरतें दहक़ानी अन्दाज से बनी-सँवरी हुई बैठी हुई थीं। कोई हँसती थी, कोई बातें करती थी और कोलेसरी हाथ में तश्त (थाल) लिये सबको पान और इलायची तकसीम कर रही थी। बच्चों को खिलौने और मिठाइयाँ देती और प्यार करती थी। पान तकसीम हो चुका तो गाना होने लगा। कोलेसरी ने भी आज मोटी साड़ी पहनी थी और गहने उतार दिए थे। वह ढोल लेकर बैठ गयी और औरतों के साथ गाने लगी। पंडितजी बैठे ये सब कैफ़ियत देख रहे थे। फ़र्ते मसर्रत (हर्षातिरेक) से दिल में गुदगुदी हो रही थी। जी यही चाहता था कि चलकर कोला को गले से लगा लूँ।

गाना खत्म होने के बाद कोलेसरी ने पन्द्रह मिनट तक ठेठ बोली में औरतों को उपदेश दिया और तब मजलिस बरख़ास्त हुई। कोलेसरी औरतों को गले लगा-लगाकर रुख़सत करती थी। इनमें एक औरत बहुत मुसीन (वृद्धा) थी। जब वह गले मिलने को बढ़ी तो कोलेसरी ने झुककर उसके पैरों को अपने आँचल से छुआ और आँचल को माथे से लगा लियां। उसका यह इन्किसार (विनम्रता) और यह अख़लाक़ (शिष्टाचार) देखकर पंडितजी मारे खुशी के उछल पड़े और तीन-चार छलाँगें भरीं। उनसे अब ज़ब्त न हो सका। दीवानख़ाने से निकलकर आँगन में चले गये। कोलेसरी को इशारे से कमरे में बुलाया और गले से लगा लिया। वह खैरो-आफ़ियत (कुशलमंगल) पूछने लगी, "देर क्यूँ की ?" कहने लगी, "आज तुम न आते तो मैं खुद आती।" मगर पंडितजी को इन बातों के सुनने की कहाँ फ़ुर्सत ! फिर गले लगा लिया और फिर लगाया। तबीयत आसूदा न हुई, फिर प्यार।

कोलेसरी ने शर्माकर कहा—"हुआ तो, अब क्या सब मोहब्बत आज ही ख़र्च कर डालोगे ?"

पंडितजी—"क्या कहूँ, जी नहीं भरता। जितना प्यार करता हूँ, उतना ही प्यार करने को जी चाहता है। तुम सचमुच देवी हो।"

पंडितजी को राज तो नहीं, लेकिन कोई इलाक़ा मिल गया होता तो हर्गिज इतने खुश न होते। जब खूब प्यार कर चुके तो आँगन में खड़े होकर औरतों से बोले—"बहनो, कोला बीमार नहीं थी। इन्होंने मुझे तुमसे मिलने-जुलने की मुमानियत (निषेष, मना करना) की थी, मगर आज इन्होंने तुमको खुद बुलाया और बहनापे का नाता जोड़ा। मुझे इस वक्त जितनी खुशी है, इसका अन्दाजा नहीं हो सकता। इस खुशी में मैं एक-एक हज़ार रुपये से दस गाँवों में लेन-देन की कोठियाँ खोलूँगा और वहाँ तुम लोगों को विला सूद के रुपया दिया जायेगा। तुमको महाजनों से रुपंया लेने में एक आना और दो आना रुपया सूद देना पड़ता है। इन कोठियों के खुलते ही तुम महाजनों के बन्धन से छूट जाओगे और इन कोठियों का इंतज़ाम उन्हीं के सिपुर्द रहेगा, जिसने तुम्हें आज न्योता दिया है।"

सब औरतें हाथ उठा-उठाकर पंडितजी की जानोमाल की दुआएँ देने लगीं। कोलेसरी ने कहा—"वाह ! यह ज़हमत मेरे सिर डाल दी।"

पंडितजी (मुस्कराकर)—"पानी में पैर रखा है तो आप तैरना सीखोगी।"

कोलेसरी—"मुझे हिसाब-किताब कुछ आता भी है।"

पंडितजी—"सब खुद-ब-खुद आ जायेगा। तुम्हें उपदेश करना कब आता था ? तुम तो औरतों से बोलती लजाती थीं। अभी दो हफ़्ते हुए, तुम्हीं ने इन लोगों से मिलने की मुमानियत की थी। आज तुम उन्हें बहन समझ रही हो। तब तुम्हारा दाँव था, अब मेरा दाँव है।"

कोलेसरी (हँसकर)—"तुमने मुझे फाँसने के लिए जाल फैलाया था।"

पंडितजी—"यह जाल दोनों तरफ़ से फैला हुआ है।"

[प्रथम प्रकाशन उर्दू, 'जमाना', मार्च 1911 में प्रकाशित। हिन्दी रूप 'नया प्रतीक', अक्टूबर, 1976 में प्रकाशित। 'सोलह अप्राप्य कहानियां' और 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित।]

राजा हरदौल

बुंदेलखंड में ओरछा पुराना राज्य है। इसके राजा बुंदेले हैं। इन बुंदेलों ने पहाड़ों की घाटियों में अपना जीवन बिताया है। एक समय ओरछे के राजा जुझारसिंह थे। ये बड़े साहसी और बुद्धिमान थे। शाहजहाँ उस समय दिल्ली के बादशाह थे। जब लोदी ने बलवा किया और वह शाही मुल्क को लूटता-पाटता ओरछे की ओर आ निकला, तब राजा जुझारसिंह ने उससे मोरचा लिया। राजा के इस काम से गुणग्राही शाहजहाँ बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने तुरंत ही राजा को दक्खिन का शासन-भार सौंपा। उस दिन ओरछे में बड़ा आनंद मनाया गया। शाही दूत खिलअत और सनद ले कर राजा के पास आया। जुझारसिंह को बड़े-बड़े काम करने का अवसर मिला। सफर की तैयारियाँ होने लगीं, तब राजा ने अपने छोटे भाई हरदौलसिंह को बुला कर कहा, "भैया, मैं तो जाता हूँ। अब यह राज-पाट तुम्हारे सुपुर्द है। तुम भी इसे जी से प्यार करना ! न्याय ही राजा का सबसे बड़ा सहायक है। न्याय की गढ़ी में कोई शत्रु नहीं घुस सकता, चाहे वह रावण की सेना या इन्द्र का बल लेकर आये; पर न्याय वही सच्चा है, जिसे प्रजा भी न्याय समझे। तुम्हारा काम केवल न्याय ही करना न होगा बल्कि प्रजा को अपने न्याय का विश्वास भी दिलाना होगा और मैं तुम्हें क्या समझाऊँ, तुम स्वयं समझदार हो।"

यह कह कर उन्होंने अपनी पगड़ी उतारी और हरदौलसिंह के सिर पर रख दी। हरदौल रोता हुआ उनके पैरों से लिपट गया। इसके बाद राजा अपनी रानी से विदा होने के लिए रनिवास आये। रानी दरवाजे पर खड़ी रो रही थी। उन्हें देखते ही पैरों पर गिर पड़ी। जुझारसिंह ने उठा कर उसे छाती से लगाया और कहा, "प्यारी, यह रोने का समय नहीं है। बुंदेलों की स्त्रियाँ ऐसे अवसर पर रोया नहीं करतीं। ईश्वर ने चाहा, तो हम-तुम जल्द मिलेंगे। मुझ पर ऐसी ही प्रीति रखना। मैंने राज-पाट हरदौल को सौंपा है, वह अभी लड़का है। उसने अभी दुनिया नहीं देखी है। अपनी सलाहों से उसकी मदद करती रहना।"

रानी की जबान बंद हो गयी। वह अपने मन में कहने लगी, "हाय यह कहते हैं, बुंदेलों की स्त्रियाँ ऐसे अवसरों पर रोया नहीं करतीं। शायद उनके हृदय नहीं होता, या अगर होता है तो उसमें प्रेम नहीं होता !" रानी कलेजे पर पत्थर रख कर आँसू पी गयी और हाथ जोड़ कर राजा की ओर मुस्कराती हुई देखने लगी; पर क्या वह मुस्कराहट थी। जिस तरह अँधेरे मैदान में मशाल की रोशनी अँधेरे को और भी अथाह कर देती है, उसी तरह रानी की मुस्कराहट उसके मन के अथाह दुःख को और भी प्रकट कर रही थी।

जुझारसिंह के चले जाने के बाद हरदौलसिंह राज करने लगा। थोड़े ही दिनों में उसके न्याय और प्रजावात्सल्य ने प्रजा का मन हर लिया। लोग जुझारसिंह को भूल गये। जुझारसिंह के शत्रु भी थे और मित्र भी; पर हरदौलसिंह का कोई शत्रु न था, सब मित्र ही थे। वह ऐसा हँसमुख और मधुरभाषी था कि उससे जो बातें कर लेता, वही जीवन भर उसका भक्त बना रहता। राज भर में ऐसा कोई न था जो उसके पास तक न पहुँच सकता हो। रात-दिन उसके दरबार का फाटक सबके लिए खुला रहता था। ओरछे को कभी ऐसा सर्वप्रिय राजा नसीब न हुआ था। वह उदार था, न्यायी था, विद्या और गुण का ग्राहक था; पर सबसे बड़ा गुण जो उसमें था, वह उसकी वीरता थी। उसका वह गुण हद दर्जे को पहुँच

गया था। जिस जाति के जीवन का अवलम्ब तलवार पर है, वह अपने राजा के किसी गुण पर इतना नहीं रीझती जितना उसकी वीरता पर। हरदौल अपने गुण से अपनी प्रजा के मन का भी राजा हो गया, जो मुल्क और माल पर राज करने से भी कठिन है। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। उधर दक्खिन में जुझारसिंह ने अपने प्रबंध से चारों ओर शाही दबदबा जमा दिया, इधर ओरछे में हरदौल ने प्रजा पर मोहन-मंत्र फूँक दिया।

2

फाल्गुन का महीना था, अबीर और गुलाल से जमीन लाल हो रही थी। कामदेव का प्रभाव लोगों को भड़का रहा था। रबी ने खेतों में सुनहला फर्श बिछा रखा था और खलिहानों में सुनहले महल उठा दिये थे। संतोष इस सुनहले फर्श पर इठलाता फिरता था और निश्चिंतता इस सुनहले महल में तानें अलाप रही थी। इन्हीं दिनों दिल्ली का नामवर फेकैत कादिरखाँ ओरछे आया। बड़े-बड़े पहलवान उसका लोहा मान गये थे। दिल्ली से ओरछे तक सैकड़ों मर्दानगी के मद से मतवाले उसके सामने आये; पर कोई उससे जीत न सका। उससे लड़ना भाग्य से नहीं, बल्कि मौत से लड़ना था। वह किसी इनाम का भूखा न था। जैसा ही दिल का दिलेर था, वैसा ही मन का राजा था। ठीक होली के दिन उसने धूम-धाम से ओरछे में सूचना दी कि "खुदा का शेर दिल्ली का कादिरखाँ ओरछे आ पहुँचा है। जिसे अपनी जान भारी हो, आ कर अपने भाग्य का निपटारा कर ले।" ओरछे के बड़े-बड़े बुंदेले सूरमा वह घमंड-भरी वाणी सुन कर गरम हो उठे। फाग और डफ की तान के बदले ढोल की वीर-ध्वनि सुनायी देने लगी। हरदौल का अखाड़ा ओरछे के पहलवानों और फेकैतों का सबसे बड़ा अड्डा था। संध्या को यहाँ सारे शहर के सूरमा जमा हुए। कालदेव और भालदेव बुंदेलों की नाक थे, सैकड़ों मैदान मारे हुए। ये ही दोनों पहलवान कादिरखाँ का घमंड चूर करने के लिए गये।

दूसरे दिन किले के सामने तालाब के किनारे बड़े मैदान में ओरछे के छोटे-बड़े सभी जमा हुए। कैसे-कैसे सजीले, अलवेले जवान थे,—सिर पर खुशरंग बाँकी पगड़ी, माथे पर चंदन का तिलक, आँखों में मर्दानगी का सरूर, कमर में तलवार। और कैसे-कैसे बूढ़े थे—तनी हुई मूँछें, सादी पर तिरछी पगड़ी, कानों में बँधी हुई दाढ़ियाँ, देखने में तो बूढ़े, पर काम में जवान, किसी को कुछ न समझनेवाले। उनकी मर्दाना चाल-ढाल नौजवानों को लजाती थी। हर एक के मुँह से वीरता की बातें निकल रहीं थीं। नौजवान कहते थे—देखें आज ओरछे की लाज रहती है या नहीं। पर बूढ़े कहते—ओरछे की हार कभी नहीं हुई, न होगी। वीरों का यह जोश देख कर राजा हरदौल ने बड़े जोर से कह दिया—"खबरदार, बुंदेलों की लाज रहे या न रहे; पर उनकी प्रतिष्ठा में बल न पड़ने पाये—यदि किसी ने औरों को यह कहने का अवसर दिया कि ओरछे वाले तलवार से न जीत सके तो धाँधली कर बैठे, वह अपने को जाति का शत्रु समझे।"

सूर्य निकल आया था। एकाएक नगाड़े पर चोट पड़ी और आशा तथा भय ने लोगों के मन को उछाल कर मुँह तक पहुँचा दिया। कालदेव और कादिरखाँ दोनों लँगोट कसे शेरों की तरह अखाड़े में उतरे और गले मिल गये। तब दोनों तरफ से तलवारें निकलीं और

दोनों के बगलों में चली गयीं। फिर बादल के दो टुकड़ों से बिजलियाँ निकलने लगीं। पूरे तीन घंटे तक यही मालूम होता रहा कि दो अँगारे हैं। हजारों आदमी खड़े तमाशा देख रहे थे और मैदान में आधी रात का सा सन्नाटा छाया हुआ था। हाँ, जब कभी कालदेव गिरहदार हाथ चलाता या कोई पेंचदार वार बचा जाता, तो लोगों की गर्दन आप ही आप उठ जाती; पर किसी के मुँह से एक शब्द भी नहीं निकलता था। अखाड़े के अंदर तलवारों की खींचतान थी; पर देखने वालों के लिए अखाड़े से बाहर मैदान में इससे भी बढ़ कर तमाशा था। बार-बार जातीय प्रतिष्ठा के विचार से मन के भावों को रोकना और प्रसन्नता या दुःख का शब्द मुँह से बाहर न निकलने देना तलवारों के वार बचाने से अधिक कठिन काम था। एकाएक कादिरखाँ 'अल्लाहो-अकबर' चिल्लाया, मानो बादल गरज उठा और उसके गरजते ही कालदेव के सिर पर बिजली गिर पड़ी।

कालदेव के गिरते ही बुंदेलों को सब्र न रहा। हर एक के चेहरे पर निर्बल क्रोध और कुचले हुए घमंड की तस्वीर खिंच गयी। हजारों आदमी जोश में आ कर अखाड़े पर दौड़े, पर हरदौल ने कहा—खबरदार ! अब कोई आगे न बढ़े। इस आवाज ने पैरों के साथ जंजीर का काम किया। दर्शकों को रोक कर जब वे अखाड़े में गये और कालदेव को देखा, तो आँखें में आँसू भर आये। जख्मी शेर जमीन पर पड़ा तड़प रहा था। उसके जीवन की तरह उसकी तलवार के दो टुकड़े हो गये थे।

आज का दिन बीता, रात आयी; पर बुंदेलों की आँखों में नींद कहाँ। लोगों ने करवटें बदल कर रात काटी जैसे दुःखित मनुष्य विकलता से सुबह की बाट जोहता है, उसी तरह बुंदेले रह-रह कर आकाश की तरफ देखते और उसकी धीमी चाल पर झुँझलाते थे। उनके जातीय घमंड पर गहरा घाव लगा था। दूसरे दिन ज्यों ही सूर्य निकला, तीन लाख बुंदेले तालाब के किनारे पहुँचे। जिस समय भालदेव शेर की तरह अखाड़े की तरफ चला, दिलों में धड़कन-सी होने लगी। कल जब कालदेव अखाड़े में उतरा था, बुंदेलों के हौसले बढ़े हुए थे; पर आज वह बात न थी। हृदय में आशा की जगह डर घुसा हुआ था। कादिरखाँ कोई चुटीला वार करता तो लोगों के दिल उछल कर होंठों तक आ जाते। सूर्य सिर पर चढ़ा जाता था और लोगों के दिल बैठे जाते थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि भालदेव अपने भाई से फुर्तीला और तेज था। उसने कई बार कादिरखाँ को नीचा दिखलाया; पर दिल्ली का निपुण पहलवान हर बार सँभल जाता था। पूरे तीन घंटे तक दोनों बहादुरों में तलवारें चलती रहीं। एकाएक खटाके की आवाज हुई और भालदेव की तलवार के दो टुकड़े हो गये। राजा हरदौल अखाड़े के सामने खड़े थे। उन्होंने भालदेव की तरफ तेजी से अपनी तलवार फेंकी। भालदेव तलवार लेने के लिए झुका ही था कि कादिरखाँ की तलवार उसकी गर्दन पर आ पड़ी। घाव गहरा न था, केवल एक 'चरका' था; पर उसने लड़ाई का फैसला कर दिया।

हताश बुंदेले अपने-अपने घरों को लौटे। यद्यपि भालदेव अब भी लड़ने को तैयार था; पर हरदौल ने समझा कर कहा कि "भाइयो, हमारी हार उसी समय हो गयी जब हमारी तलवार ने जवाब दे दिया। यदि हम कादिरखाँ की जगह होते तो निहत्थे आदमी पर वार न करते और जब तक हमारे शत्रु के हाथ में तलवार न आ जाती, हम उस पर हाथ न उठाते; पर कादिरखाँ में यह उदारता कहाँ ? बलवान् शत्रु का सामना करने में उदारता को

ताक पर रख देना पड़ता है। तो भी हमने दिखा दिया है कि तलवार की लड़ाई में हम उसके बराबर हैं और अब हमको यह दिखाना है कि हमारी तलवार में भी वैसा ही जौहर है !" इसी तरह लोगों को तसल्ली दे कर राजा हरदौल रनिवास को गये।

कुलीना ने पूछा—लाला, आज दंगल का क्या रंग रहा ?

हरदौल ने सिर झुका कर जवाब दिया—आज भी वही कल का-सा हाल रहा।

कुलीना—क्या भालदेव मारा गया ?

हरदौल—नहीं, जान से तो नहीं पर हार हो गयी।

कुलीना—तो अब क्या करना होगा ?

हरदौल—मैं स्वयं इसी सोच में हूँ। आज तक ओरछे को कभी नीचा न देखना पड़ा था। हमारे पास धन न था, पर अपनी वीरता के सामने हम राज और धन कोई चीज न समझते थे। अब हम किस मुँह से अपनी वीरता का घमंड करेंगे ? ओरछे की और बुन्देलों की लाज अब जाती है।

कुलीना—क्या अब कोई आस नहीं है ?

हरदौल—हमारे पहलवानों में वैसा कोई नहीं है जो उससे बाजी ले जाय। भालदेव की हार ने बुंदेलों की हिम्मत तोड़ दी है। आज सारे शहर में शोक छाया हुआ है। सैकड़ों घरों में आग नहीं जली। चिराग रोशन नहीं हुआ। हमारे देश और जाति की वह चीज जिससे हमारा मान था, अब अंतिम साँस ले रही है। भालदेव हमारा उस्ताद था। उसके हार चुकने के बाद मेरा मैदान में आना धृष्टता है; पर बुंदेलों की साख जाती है, तो मेरा सिर भी उसके साथ जायगा। कादिरखाँ बेशक अपने हुनर में एक ही है, पर हमारा भालदेव कभी उससे कम नहीं। उसकी तलवार यदि भालदेव के हाथ में होती तो मैदान जरूर उसके हाथ रहता। ओरछे में केवल एक तलवार है जो क़ादिरखाँ की तलवार का मुँह मोड़ सकती है, वह भैया की तलवार है। अगर तुम ओरछे की नाक रखना चाहती हो तो उसे मुझे दे दो। यह हमारी अंतिम चेष्टा होगी। यदि इस बार भी हार हुई तो ओरछे का नाम सदैव के लिए डूब जायगा।

कुलीना सोचने लगी, तलवार इनको दूँ या न दूँ। राजा रोक गये हैं। उनकी आज्ञा थी कि किसी दूसरे की परछाहीं भी उस पर न पड़ने पाये। क्या ऐसी दशा में मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन करूँ तो वे नाराज होंगे ? कभी नहीं। जब वे सुनेंगे कि मैंने कैसे कठिन समय में तलवार निकाली है, तो उन्हें सच्ची प्रसन्नता होगी। बुंदेलों की आन किसको इतनी प्यारी नहीं है ? उनसे ज्यादा ओरछे की भलाई चाहने वाला कौन होगा? इस समय उनकी आज्ञा का उल्लंघन करना ही आज्ञा मानना है। यह सोच कर कुलीना ने तलवार हरदौल को दे दी।

सबेरा होते ही यह खबर फैल गयी कि राजा हरदौल कादिरखाँ से लड़ने के लिए जा रहे हैं। इतना सुनते ही लोगों में सनसनी-सी फैल गयी और चौंक उठे। पागलों की तरह लोग अखाड़े की ओर दौड़े। हर एक आदमी कहता था कि जब तक हम जीते हैं, महाराज को लड़ने नहीं देंगे; पर जब लोग अखाड़े के पास पहुँचे तो देखा कि अखाड़े में बिजलियाँ-सी चमक रही हैं। बुंदेलों के दिलों पर उस समय जैसी बीत रही थी, उसका अनुमान करना

कठिन है। उस समय उस लम्ब-चौड़े मैदान में जहाँ तक निगाह जाती थी, आदमी ही आदमी नजर आते थे; पर चारों तरफ सन्नाटा था। हर एक आँख अखाड़े की तरफ लगी हुई थी और हर एक का दिल हरदौल की मंगल-कामना के लिए ईश्वर का प्रार्थी था। कादिरखाँ का एक-एक वार हजारों दिलों के टुकड़े कर देता था और हरदौल की एक-एक काट से मनों में आनन्द की लहरें उठती थीं। अखाड़े में दो पहलवानों का सामना था और अखाड़े के बाहर आशा और निराशा का। आखिर घड़ियाल ने पहला पहर बजाया और हरदौल की तलवार बिजली बन कर कादिर के सिर पर गिरी। यह देखते ही बुन्देले मारे आनन्द के उन्मत्त हो गये। किसी को किसी की सुधि न रही। कोई किसी से गले मिलता, कोई उछलता और कोई छलाँगें मारता था। हजारों आदमियों पर वीरता का नशा छा गया। तलवारें स्वयं म्यान से निकल पड़ीं, भाले चमकने लगे। जीत की खुशी में सैकड़ों जानें भेंट हो गयीं। पर जब हरदौल अखाड़े से बाहर आये और उन्होंने बुन्देलों की ओर तेज निगाहों से देखा तो आन-की-आन में लोग सँभल गये। तलवारें म्यान में जा छिपीं। खयाल आ गया, यह खुशी क्यों, यह उमंग क्यों और यह पागलपन किस लिए ? बुन्देलों के लिए यह कोई नयी बात नहीं हुई। इस विचार ने लोंगों का दिल ठंडा कर दिया। हरदौल की इस वीरता ने उसे हर एक बुन्देले के दिल में मान-प्रतिष्ठा की ऊँची जगह पर बिठाया, जहाँ न्याय और उदारता भी उसे न पहुँचा सकती थी। वह पहले ही से सर्वप्रिय था और अब वह अपनी जाति का वीरवर और बुन्देला दिलावरी का सिरमौर बन गया।

3

राजा जुझारसिंह ने भी दक्षिण में अपनी योग्यता का परिचय दिया। वे केवल लड़ाई में ही वीर न थे, बल्कि राज्य-शासन में भी अद्वितीय थे। उन्होंने अपने सुप्रबन्ध से दक्षिण प्रांतों को बलवान राज्य बना दिया और वर्ष भर के बाद बादशाह से आज्ञा ले कर वे ओरछे की तरफ चले। ओरछे की याद उन्हें सदैव बेचैन करती रही। आह ओरछा ! वह दिन कब आयेगा कि फिर तेरे दर्शन होंगे ! राजा मंजिलें मारते चले आते थे, न भूख थी, न प्यास, ओरछे वालों की मुहब्बत खींचे लिये आती थी। यहाँ तक कि ओरछे के जंगलों में आ पहुँचे। साथ के आदमी पीछे छूट गये। दोपहर का समय था। धूप तेज थी। वे घोड़े से उतरे और एक पेड़ की छाँह में जा बैठे। भाग्यवश आज हरदौल भी जीत की खुशी में शिकार खेलने निकले थे। सैकड़ों बुंदेला सरदार उनके साथ थे। सब अभिमान के नशे में चूर थे। उन्होंने राजा जुझारसिंह को अकेले बैठे देखा; पर वे अपने घमंड में इतने डूबे हुए थे कि इनके पास तक न आये। समझा कोई यात्री होगा। हरदौल की आँखों ने भी धोखा खाया। वे घोड़े पर सवार अकड़ते हुए जुझारसिंह के सामने आये और पूछना चाहते थे कि तुम कौन हो कि भाई से आँख मिल गयी। पहचानते ही घोड़े से कूद पड़े और उनको प्रणाम किया। राजा ने भी उठ कर हरदौल को छाती से लगा लिया; पर उस छाती में अब भाई की मुहब्बत न थी। मुहब्बत की जगह ईर्ष्या ने घेर ली थी और वह केवल इसीलिए कि हरदौल दूर से नंगे पैर उनकी तरफ न दौड़ा, उसके सवारों ने दूर ही से उनकी अभ्यर्थना की। संध्या होते-होते दोनों भाई ओरछे पहुँचे। राजा के लौटने का समाचार पाते ही नगर में प्रसन्नता

की दुंदुभी बजने लगी। हर जगह आनंदोत्सव होने लगा और तुरती-फुरती शहर जगमगा उठा।

आज रानी कुलीना ने अपने हाथों भोजन बनाया। नौ बजे होंगे। लौंडी ने आ कर कहा—महाराज, भोजन तैयार है। दोनों भाई भोजन करने गये। सोने के थाल में राजा के लिए भोजन परोसा गया और चाँदी के थाल में हरदौल के लिए। कुलीना ने स्वयं भोजन बनाया था, स्वयं थाल परोसे थे और स्वयं ही सामने लायी थी; पर दिनों का चक्र कहो, या भाग्य के दुर्दिन, उसने भूल से सोने का थाल हरदौल के आगे रख दिया और चाँदी का राजा के सामने। हरदौल ने कुछ ध्यान न दिया, वह वर्ष भर से सोने के थाल में खाते-खाते उसका आदी हो गया था, पर जुझारसिंह तिलमिला गये। जबान से कुछ न बोले; पर तीवर बदल गये और मुँह लाल हो गया। रानी की तरफ घूरकर देखा और भोजन करने लगे। पर ग्रास विष मालूम होता था। दो-चार ग्रास खा कर उठ आये। रानी उनके तीवर देख कर डर गयी। आज कैसे प्रेम से उसने भोजन बनाया था, कितनी प्रतीक्षा के बाद यह शुभ दिन आया था, उसके उल्लास का कोई पारावार न था; पर राजा के तीवर देख कर उसके प्राण सूख गये। जब राजा उठ गये और उसने थाल को देखा, तो कलेजा धक् से हो गया और पैरों तले से मिट्टी निकल गयी। उसने सिर पीट लिया—ईश्वर ! आज रात कुशलतापूर्वक कटे, मुझे शकुन अच्छे दिखायी नहीं देते।

राजा जुझारसिंह शीश महल में लेटे। चतुर नाइन ने रानी का शृंगार किया और मुस्करा कर बोली—कल महाराज से इसका इनाम लूँगी। यह कह कर वह चली गयी; परंतु कुलीना वहाँ से न उठी। वह गहरे सोच में पड़ी हुई थी। उनके सामने कौन-सा मुँह ले कर जाऊँ ? नाइन ने नाहक मेरा शृंगार कर दिया। मेरा शृंगार देख कर वे खुश भी होंगे ? मुझसे इस समय अपराध हुआ है, मैं अपराधिनी हूँ, मेरा उनके पास इस समय बनाव-शृंगार करके जाना उचित नहीं। नहीं, नहीं; आज मुझे उनके पास भिखारिनी के भेष में जाना चाहिए। मैं उनसे क्षमा माँगूँगी। इस समय मेरे लिए यही उचित है। यह सोच कर रानी बड़े शीशे के सामने खड़ी हो गयी। वह अप्सरा-सी मालूम होती थी। सुंदरता की कितनी ही तस्वीरें उसने देखी थीं; पर उसे इस समय शीशे की तस्वीर सबसे ज्यादा खूबसूरत मालूम होती थी।

सुंदरता और आत्मरुचि का साथ है। जल्दी विना रंग के नहीं रह सकती। थोड़ी देर के लिए कुलीना सुंदरता के मद से फूल उठी। वह तन कर खड़ी हो गयी। लोग कहते हैं कि सुंदरता में जादू है और वह जादू, जिसका कोई उतार नहीं। धर्म और कर्म, तन और मन सब सुंदरता पर न्योछावर है। मैं सुंदर न सही, ऐसी कुरूपा भी नहीं हूँ। क्या मेरी सुंदरता में इतनी भी शक्ति नहीं है कि महाराज से मेरा अपराध क्षमा करा सके ? ये बाहु-लताएँ जिस समय उनके गले का हार होंगी, ये आँखें जिस समय प्रेम के मद से लाल हो कर देखेंगी, तब क्या मेरे सौंदर्य की शीतलता उनकी क्रोधाग्नि को ठंडा न कर देगी ? पर थोड़ी देर में रानी को ज्ञात हुआ। आह यह मैं क्या स्वप्न देख रही हूँ ! मेरे मन में ऐसी बातें क्यों आती हैं ! मैं अच्छी हूँ या बुरी हूँ उनकी चेरी हूँ। मुझसे अपराध हुआ है, मुझे उनसे क्षमा माँगनी चाहिए। यह शृंगार और बनाव इस समय उपयुक्त नहीं है। यह सोच कर रानी ने सब गहने उतार दिये। इत्तर में बसी हुई रेशम की साड़ी अलग कर दी।

मोतियों से भरी माँग खोल दी और वह खूब फूट-फूट कर रोयी। हाय ! यह मिलाप की रात वियोग की रात से भी विशेष दुःखदायिनी है। भिखारिनी का भेष बना कर रानी शीश महल की ओर चली। पैर आगे बढ़ते थे, पर मन पीछे हटता जाता था। दरवाजे तक आयी, पर भीतर पैर न रख सकी। दिल धड़कने लगा। ऐसा जान पड़ा मानो उसके पैर थर्रा रहे हैं। राजा जुझारसिंह बोले, "कौन है? —कुलीना ! भीतर क्यों नहीं आ जाती ?"

कुलीना ने जी कड़ा करके कहा—महाराज, कैसे आऊँ ? मैं अपनी जगह क्रोध को बैठा पाती हूँ।

राजा—यह क्यों नहीं कहती कि मन दोषी है, इसीलिए आँखें नहीं मिलने देतीं।

कुलीना—निस्संदेह मुझसे अपराध हुआ है, पर एक अबला आपसे क्षमा का दान माँगती है।

राजा—इसका प्रायश्चित करना होगा।

कुलीना—क्योंकर ?

राजा—हरदौल के खून से।

कुलीना सिर से पैर तक काँप गयी। बोली—क्या इसलिए कि आज मेरी भूल से ज्योनार के थालों में उलटफेर हो गया ?

राजा—नहीं, इसलिए कि तुम्हारे प्रेम में हरदौल ने उलटफेर कर दिया।

जैसे आग की आँच से लोहा लाल हो जाता है, वैसे ही रानी का मुँह लाल हो गया। क्रोध की अग्नि सद्भावों को भस्म कर देती है, प्रेम और प्रतिष्ठा, दया और न्याय सब जल के राख हो जाते हैं। एक मिनट तक रानी को ऐसा मालूम हुआ, मानो दिल और दिमाग दोनों खौल रहे हैं, पर उसने आत्मदमन की अंतिम चेष्टा से अपने को सँभाला, केवल इतना बोली—हरदौल को अपना लड़का और भाई समझती हूँ।

राजा उठ बैठे और कुछ नर्म स्वर में बोले—नहीं, हरदौल लड़का नहीं है, लड़का मैं हूँ, जिसने तुम्हारे ऊपर विश्वास किया। कुलीना मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी। मुझे तुम्हारे ऊपर घमंड था। मैं समझता था, चाँद-सूर्य टल सकते हैं, पर तुम्हारा दिल नहीं टल सकता, पर आज मुझे मालूम हुआ कि वह मेरा लड़कपन था। बड़ों ने सच कहा है कि स्त्री का प्रेम पानी की धार है, जिस ओर ढाल पाता है, उधर ही बह जाता है। सोना ज्यादा गरम होकर पिघल जाता है।

कुलीना रोने लगी। क्रोध की आग पानी बन कर आँखों से निकल पड़ी। जब आवाज वश में हुई, तो बोली—आपके इस सन्देह को कैसे दूर करूँ ?

राजा—हरदौल के खून से।

रानी—मेरे खून से दाग न मिटेगा ?

राजा—तुम्हारे खून से और पक्का हो जायगा।

रानी—और कोई उपाय नहीं है ?

राजा—नहीं।

रानी—यह आपका अंतिम विचार है ?

राजा—हाँ, यह मेरा अन्तिम विचार है। देखो, इस पानदान में पान का बीड़ा रखा है।

तुम्हारे सतीत्व की परीक्षा यही है कि तुम हरदौल को इसे अपने हाथों खिला दो। मेरे मन का भ्रम उसी समय निकलेगा जब इस घर से हरदौल की लाश निकलेगी।

रानी ने घृणा की दृष्टि से पान के बीड़े को देखा और वह उलटे पैर लौट आयी।

रानी सोचने लगी—क्या हरदौल के प्राण लूँ ? निर्दोष, सच्चरित्र वीर हरदौल की जान से अपने सतीत्व की परीक्षा दूँ ? उस हरदौल के खून से अपना हाथ काला करूँ जो मुझे बहन समझता है ? यह पाप किसके सिर पड़ेगा ? क्या एक निर्दोष का खून रंग न लायेगा? आह ! अभागी कुलीना ! तुझे आज अपने सतीत्व की परीक्षा देने की आवश्यकता पड़ी है और वह ऐसी कठिन ? नहीं, यह पाप मुझसे न होगा। यदि राजा मुझे कुलटा समझते हैं, तो समझें, उन्हें मुझ पर संदेह है, तो हो। मुझसे यह पाप न होगा। राजा को ऐसा संदेह क्यों हुआ ? क्या केवल थालों के बदल जाने से ? नहीं, अवश्य कोई और बात है। आज हरदौल उन्हें जंगल में मिल गया। राजा ने उसकी कमर में तलवार देखी होगी। क्या आश्चर्य है, हरदौल से कोई अपमान भी हो गया हो। मेरा अपराध क्या है ? मुझ पर इतना बड़ा दोष क्यों लगाया जाता है ? केवल थालों के बदल जाने से ? हे ईश्वर ! मैं किससे अपना दुःख कहूँ ? तू ही मेरा साक्षी है। जो चाहे सो हो; पर मुझसे यह पाप न होगा।

रानी ने फिर सोचा—राजा, क्या तुम्हारा हृदय ऐसा ओछा और नीच है ? तुम मुझसे हरदौल की जान लेने को कहते हो ? यदि तुमसे उसका अधिकार और मान नहीं देखा जाता, तो क्यों साफ़-साफ़ ऐसा नहीं कहते ? क्यों मरदों की लड़ाई नहीं लड़ते? क्यों स्वयं अपने हाथ से उसका सिर नहीं काटते और मुझसे वह काम करने को कहते हो ? तुम खूब जानते हो, मैं यह नहीं कर सकती। यदि मुझसे तुम्हारा जी उकता गया है, यदि मैं तुम्हारी जान की जंजाल हो गयी हूँ, तो मुझे काशी या मथुरा भेज दो। मैं बेखटके चली जाऊँगी, पर ईश्वर के लिए मेरे सिर इतना बड़ा कलंक न लगने दो। पर मैं जीवित ही क्यों रहूँ, मेरे लिए अब जीवन में कोई सुख नहीं है। अब मेरा मरना ही अच्छा है। मैं स्वयं प्राण दे दूँगी, पर यह महापाप मुझसे न होगा। विचारों ने फिर पलटा खाया। तुमको पाप करना ही होगा। इससे बड़ा पाप शायद आज तक संसार में न हुआ हो, पर यह पाप तुमको करना होगा। तुम्हारे पतिव्रत पर संदेह किया जा रहा है और तुम्हें इस संदेह को मिटाना होगा। यदि तुम्हारी जान जोखिम में होती, तो कुछ हर्ज न था। अपनी जान देकर हरदौल को बचा लेती; पर इस समय तुम्हारे पतिव्रत पर आँच आ रही है। इसलिए तुम्हें यह पाप करना ही होगा, और पाप करने के बाद हँसना और प्रसन्न रहना होगा। यदि तुम्हारा चित्त तनिक भी विचलित हुआ, यदि तुम्हारा मुखड़ा जरा भी मद्धिम हुआ, तो इतना बड़ा पाप करने पर भी तुम संदेह मिटाने में सफल न होगी। तुम्हारे जी पर चाहे जो बीते, पर तुम्हें यह पाप करना ही पड़ेगा। परंतु कैसे होगा ? क्या मैं हरदौल का सिर उतारूँगी ? यह सोच कर रानी के शरीर में कँपकँपी आ गयी। नहीं, मेरा हाथ उस पर कभी नहीं उठ सकता। प्यारे हरदौल, मैं तुम्हें खिला सकती। मैं जानती हूँ, तुम मेरे लिए आनंद से विष का बीड़ा खा लोगे। हाँ, मैं जानती हूँ तुम 'नहीं' न करोगे, पर मुझसे यह महापाप नहीं हो सकता। एक बार नहीं, हजार बार नहीं हो सकता।

4

हरदौल को इन बातों की कुछ भी खबर न थी। आधी रात को एक दासी रोती हुई उसके पास गयी और उसने सब समाचार अक्षर-अक्षर कह सुनाया। वह दासी पानदान ले कर रानी के पीछे-पीछे राजमहल के दरवाजे पर गयी थी और सब बातें सुन कर आयी थी। हरदौल राजा का ढंग देख कर पहले ही ताड़ता गया था कि राजा के मन में कोई-न-कोई काँटा अवश्य खटक रहा है। दासी की बातों ने उसके संदेह को और भी पक्का कर दिया। उसने दासी से कड़ी मनाही कर दी कि सावधान ! किसी दूसरे के कानों में इन बातों की भनक न पड़े और वह स्वयं मरने को तैयार हो गया।

हरदौल बुंदेलों की वीरता का सूरज था। उसकी भौंहों के तनिक इशारे से तीन लाख बुंदेले मरने और मारने के लिए इकट्ठे हो सकते थे, ओरछा उस पर न्योछावर था। यदि जुझारसिंह खुले मैदान उसका सामना करते तो अवश्य मुँह की खाते, क्योंकि हरदौल भी बुंदेला था और बुंदेला अपने शत्रु के साथ किसी प्रकार की मुँहदेखी नहीं करते, मारना-मरना उनके जीवन का एक अच्छा दिलबहलाव है। उन्हें सदा इसकी लालसा रही है कि कोई हमें चुनौती दे, कोई हमें छेड़े। उन्हें सदा खून की प्यास रहती है और वह प्यास कभी नहीं बुझती। परंतु उस समय एक स्त्री को उसके खून की जरूरत थी और उसका साहस उसके कानों में कहता था कि एक निर्दोष और सती अबला के लिए अपने शरीर का खून देने में मुँह न मोड़ो। यदि भैया को यह संदेह होता कि मैं उनके खून का प्यासा हूँ और उन्हें मार कर राज पर अधिकार करना चाहता हूँ, तो कुछ हर्ज न था। राज्य के लिए कत्ल और खून, दगा और फरेब सब उचित समझा गया है, परंतु उनके इस संदेह का निपटारा मेरे मरने के सिवा और किसी तरह नहीं हो सकता। इस समय मेरा धर्म है कि अपना प्राण दे कर उनके इस संदेह को दूर कर दूँ। उनके मन में यह दुखानेवाला संदेह उत्पन्न करके भी यदि मैं जीता ही रहूँ और अपने मन की पवित्रता जनाऊँ, तो मेरी ढिठाई है। नहीं, इस भले काम में अधिक आगा-पीछा करना अच्छा नहीं। मैं खुशी से विष का बीड़ा खाऊँगा। इससे बढ़ कर शूरवीर की मृत्यु और क्या हो सकती है ?

क्रोध में आकर मारू के भय बढ़ानेवाले शब्द सुन कर रणक्षेत्र में अपनी जान को तुच्छ समझना इतना कठिन नहीं है। आज सच्चा वीर हरदौल अपने हृदय के बड़प्पन पर अपनी सारी वीरता न्योछावर करने को उद्यत है।

दूसरे दिन हरदौल ने खूब तड़के स्नान किया। बदन पर अस्त्र-शस्त्र सजा मुस्कराता हुआ राजा के पास गया। राजा भी सोकर तुरंत ही उठे थे, उनकी अलसायी हुई आँखें हरदौल की मूर्ति की ओर लगी हुई थीं। सामने संगमरमर की चौकी पर विष मिला पान सोने की तश्तरी में रखा हुआ था। राजा कभी पान की ओर ताकते और कभी मूर्ति की ओर, शायद उनके विचार ने इस विष की गाँठ और उस मूर्ति में एक सम्बन्ध पैदा कर दिया था। उस समय जो हरदौल एकाएक घर में पहुँचे तो राजा चौंक पड़े। उन्होंने सँभल कर पूछा, "इस समय कहाँ चले ?"

हरदौल का मुखड़ा प्रफुल्लित था। वह हँस कर बोला, "कल आप यहाँ पधारे हैं, इसी खुशी में मैं आज शिकार खेलने जाता हूँ। आपको ईश्वर ने अजित बनाया है, मुझे अपने

हाथ से विजय का बीड़ा दीजिए।"

यह कह कर हरदौल ने चौक पर से पानदान उठा लिया और उसे राजा के सामने रख कर बीड़ा लेने के लिए हाथ बढ़ाया। हरदौल का खिला हुआ मुखड़ा देख कर राजा की ईर्ष्या की आग और भी भड़क उठी।—दुष्ट, मेरे घाव पर नमक छिड़कने आया है! मेरे मान और विश्वास को मिट्टी में मिलाने पर भी तेरा जी न भरा ! मुझसे विजय का बीड़ा माँगता है ! हाँ, यह विजय का बीड़ा है; पर तेरी विजय का नहीं, मेरी विजय का।

इतना मन में कहकर जुझारसिंह ने बीड़े को हाथ में उठाया। वे एक क्षण तक कुछ सोचते रहे, फिर मुस्करा कर हरदौल को बीड़ा दे दिया। हरदौल ने सिर झुका कर बीड़ा लिया, उसे माथे पर चढ़ाया, एक बार बड़ी ही करुणा के साथ चारों ओर देखा और फिर बीड़े को मुँह में रख लिया। एक सच्चे राजपूत ने अपना पुरुषत्व दिखा दिया। विष हलाहल था, कंठ के नीचे उतरते ही हरदौल के मुखड़े पर मुर्दनी छा गयी और आँखें बुझ गयीं। उसने एक ठंडी साँस ली, दोनों हाथ जोड़ कर जुझारसिंह को प्रणाम किया और जमीन पर बैठ गया। उसके ललाट पर पसीने की ठंडी-ठंडी बूँदें दिखायी दे रही थीं और साँस तेजी से चलने लगी थी; पर चेहरे पर प्रसन्नता और संतोष की झलक दिखायी देती थी।

जुझारसिंह अपनी जगह से जरा भी न हिले। उनके चेहरे पर ईर्ष्या से भरी हुई मुस्कराहट छायी हुई थी; पर आँखों में आँसू भर आये थे। उजेले और अँधेरे का मिलाप हो गया था।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू, 'जमाना', अप्रैल, 1911 में प्रकाशित। उर्दू 'प्रेम पचीसी' में संकलित। हिन्दी रूप 'मानसरोवर' भाग-6 में संकलित।]

बड़ी बहन

एक दिन मौज़ा शिवगंज में शाम के वक्त कई औरतें एक नीम के नीचे बातें कर रही थीं। तारा ने एक ऐसे खाविन्द का ज़िक्र करते हुए, जिसने अपनी बीवी को महज इसलिए डंडों से मारा था कि वह बिना उसकी इजाज़त के गंगा नहाने चली गई थी, ग़ुस्से के साथ कहा, "ऐसे आदमी के मुँह में आग लग जाये।"

यह सुनकर औरतें सन्नाटें में आ गयीं। किसी ने हाथ सीने पर रख लिया, किसी ने दाँतों से ज़बान दबाई—तारा को यह कहना मुनासिब नहीं था। कुन्दन ने तेवर बदलकर कहा, "तारा बहन, तुम ज़बान सँभालकर बात नहीं करतीं। अपना शौहर था, मार ही बैठा तो क्या हुआ।"

कुन्दन जयगोपाल चौधरी की बीवी थी। बाबू जयगोपाल दुनिया के उन चन्द ख़ुशक़िस्मत आदमियों में थे जिन्हें बग़ैर हाथ-पैर हिलाए दोनों वक्त लुक्मयेतर (अच्छा भोजन, तरमाल) खाने को मिल जाता है। वह साल भर में एक बार लगान वसूल करने के लिए घर से बाहर निकलते थे। बाक़ी साल भर वह अपने दालान में बैठे गपशप किया करते। मगर यह गाँव इनकी मौरूसी मिल्क़ियत नहीं थी। मौरूसी जायदाद तो बाबू मदनगोपाल मरहूम के जमाने ही में ख़ुर्द-बुर्द हो चुकी थी। जयगोपाल के ससुर ने तकलीफ़

में देखकर यह गाँव गुजारे के लिए दे दिया था। वह इसके अलावा हर महीने में अपने दामाद की इमदाद करता रहता था। जयगोपाल की खूब आराम से कटती थी और आइन्दा के लिए उन्हें कोई अन्देशा नहीं था। बूढ़ा ससुर लावलद (निःसंतान) था। उसके आँख मूँदते ही बीस हज़ार सालाना नफ़ा की जायदाद हाथ लगेगी। ऐसे ख़ुशनसीब आदमी दुनिया में कितने होते हैं? यह तो नहीं कहा जा सकता कि जयगोपाल अपने ससुर की मुबारक मौत के ख़्वास्तगार (इच्छुक) थे, मगर साल में दो-तीन बार वह इस रोजे-सईद (शुभ-व्रत) की आरजू में सत्यनारायण का पाठ जरूर करवाते थे।

खैर ! जयगोपाल के दस साल बड़े आराम से गुज़रे। तीन बच्चे हुए। पेट ने गुम्बदनुमा सूरत अख़्तियार की। चाँदी के बाल झड़ने लगे, ख़ुशकिस्मती के आने का रास्ता साफ़ होने लगा। मगर आना किसे था, और कौन। जो बात न होनी चाहिए थी, वह हो गयी और उसने जयगोपाल का मुस्तकबिल (भविष्य) स्याह कर दिया। साठ बरस के सिन (आयु) में बूढ़े ससुर के एक बच्चा हो गया। जयगोपाल ने सुना और सिर पीटकर रह गये। कुन्दन ने बूढ़े बाप को खूब जी भर कर कोसा और इस तिफ़ले-नौजाईदा (नवजात शिशु) की लाश देखने की तमन्ना ज़ाहिर की। कहने लगी—"बूढ़ा साठ बरस का हुआ, मगर हविस नहीं गयी। अब उसे गले से बाँधे।" यह सआदतमंद (सुयोग्य, आज्ञाकारी) बेटी थी! खुदगरजी ! वाह, ऐ खुदगरजी !

इस बच्चे ने जयगोपाल की बेफिक्रियों और ऐशपरस्तियों का ख़ात्मा कर दिया। अपनी नन्ही-सी मुट्ठी से उसने जयगोपाल की सारी उम्मीदें और आरजूएँ, हौसले और अरमान मसल डाले। ससुराल ने नवेद आया, मगर वह शरीक न हो सके। उन्हें अब अपनी रोज़ी की फ़िक्र दामनगीर हुई। आसाम चले गये और एक चाय के कारख़ाने में मुलाजमत कर ली। ज़िंदगी में पहली बार इतना दूर-दराज सफर करना पड़ा। वह अब तक कभी तनहा नहीं रहे थे। बीवी और बच्चे उनकी जिन्दगी का जुज बन गये थे। कई माह तक उनकी तबीयत न जमी। ज्यूं-ज्यूं दिन गुज़रते गये, त्यूं-त्यूं घर का ख़याल कमज़ोर होता गया। साल भर मुश्किल से गुज़रा होगा कि जयगोपाल के दिल में एक नया जोश पैदा हुआ और वह यह था कि अब घर की हालत सुधारनी चाहिए। मोहब्बत की जगह इरादों ने छीन ली। पहले हफ्तावार खतूत जाते थे, फिर पन्द्रहवें दिन जाने लगे। यहाँ तक कि दूसरा साल गुजरते-गुजरते यह नौबत हो गई कि महीने में एक ख़त लिखने की भी फ़ुर्सत न मिलती थी।

मगर कुन्दन की कैफ़ियत इसके बिलकुल बरअक्स (विपरीत) थी। जयगोपाल से उसे वही मोहब्बत थी जो आमतौर पर बीवियों को होती है, यानी शौहर की ख़िदमत दिलोजान से करती थी। वह मोहब्बत जो दिल को बेचैन करती है, जो आँखों को रुलाती और जिगर को तड़पाती है, वह पुरजोश जज्बा जो दिल के कुल एहसासात पर हावी हो जाता है, कुन्दन को नहीं था। वह कभी अपने शौहर से अलग नहीं हुई थी और इसलिए उन एहसासात से, उन हसरतों से जो कुछ फिराक ही में अपना ज़ोर दिखाते हैं, वह मानूस (परिचित) नहीं थी। रिश्ते-ए-मोहब्बत में गाँठ थी, मगर ढीली, लेकिन जुदाई के इस झटके ने इस गाँठ को मज़बूत कर दिया। मोहबत की आग, जो दबी हुई थी, जुदाई की हवा पाकर

भड़क उठी। कुन्दन के दिल में एक नयी और पुरजोश मोहब्बत ने उद (जन्म) किया। वह अक्सर ख़ामोश और उदास रहने लगी। तनहाई से उसकी तबीयत मामूस होने लगी। कभी-कभी अकेले में रोया करती। खतूत ज्यादा पुरशौक (लालासा युक्त) होने लगे। वह सोचती—बला से मुझे मोटे कपड़े पहनने पड़ेंगे, मैं गाढ़ा पहनूँगी। बला से—मैं तकलीफ़ सहूँगी। कुन्दन अगर्चे कई बच्चों की माँ थी, मगर इस वक्त उसके दिल में एक नशा-ए-शबाब (यौवन का उल्लास) की मतवाली नाजनीन (सुंदर स्त्री) का जोशे-मोहब्बत उमड़ने लगा। उसको कितनी ही ऐसी बातें याद आती थीं जो उसने जयगोपाल का दिल दुखाने के लिए कही थीं। कितनी बार उनसे लड़ी थी। इन सब बातों को याद करके वह रोती थी। उसने सच्चे मानूमाना (निर्दोष) जोश के साथ अपने दिल में अहद किया कि अब मैं उन्हें कुछ न कहूँगी। वह जैसे रखेंगे, वैसे ही रहूँगी।

2

बुढ़ापे की औलाद बहुत प्यारी होती है। इस नौजाईदा बच्चे ने, जिसका नाम नौनीचन्द रखा गया था, अपने बूढ़े माँ-बाप की किस्मत जगा दी। उनकी मोहब्बत चारों तरफ़ से सिमटकर उस पर जम गयी। वह लड़का नहीं था, उनकी मुद्दत-उल-उमर (जीवन भर की) की दुआओं और आरजूओं ने इन्सानी शक्ल अख़्तियार कर ली थी।

मगर बूढ़े माँ-बाप की तकदीर में बच्चे का सुख देखना नहीं बदा था। तीसरे साल उसकी माँ बीमार पड़ी। उसे मालूम हुआ कि अब मैं नहीं बचूँगी। तब उसने कुन्दन को बुलाया। कुन्दन जाने से जरूर इन्कार कर देती, क्योंकि उसे अब अपने माँ-बाप से नफ़रत हो गयी थी। मगर उन दिनों शिवगंज में प्लेग फैला हुआ था। कुन्दन को इन्क़ार करने की जुर्रत न हो सकी।

कुन्दन की माँ उसे देखकर बहुत खुश हुई और खूब रोई। बाप ने हज़ारों दुआएँ दीं, मगर मकान की महरियाँ और लौंडियाँ इस मेहमान को देखकर जल गयीं और उसकी तरफ़ तंज-आमेज़ (व्यंग्य-भरी) निगाहों से देखतीं। अक्सर उससे बेअदबी कर बैठतीं। महरी कहती—"अब कोई कहाँ तक पानी भरे ! दिन-भर पानी ढोते-ढोते कूल्हा रह जाता है।" महाराजिन कहती—यह लड़के जाने कहाँ के मरभूक्खे हैं। चूल्हा जला नहीं कि सब आकर घर घेर लेते हैं। कुन्दन यह सब सुनती और पी जाती। अपनी माँ की तक़लीफ़ देखकर उसका दिल कुछ-कुछ पिघल गया था। आख़िर एक रोज़ बूढ़ी औरत की हालत बहुत नाजुक हो गयी। उसने नौनीचन्द का हाथ पकड़कर कुन्दन के हाथ में दिया और रोती हुई दुनिया से सिधार गयी।

माँ के मरते ही कुन्दन के मिजाज में एक खुश-आयंद (खुशी लाने वाली) तब्दीली वाक्या हुई। नौनीचन्द से जो उसे नफ़रत थी, वह जाती रही। उस मुरझाये हुए यतीम बच्चे को देखकर उसे उस पर तरस आता। जब उसके अपने लड़के नौनी को मारते और वह आँखों में आँसू भरे हुए आता और 'जीजी' का आँचल पकड़कर फरियाद करता, तो कुन्दन का कलेजा मसोस उठता था। और नौनी को मादराना जोश (ममता) के साथ गोद में उठा लेती और कलेजे से चिपटाकर प्यार करती। कुन्दन के मिजाज़ में यह तब्दीली क्यों वाके

हुई, शायद इसलिए कि बूढ़ी माँ ने बच्चे को उसके सुपुर्द किया था। या मुमकिन है बेकसी के ख़याल ने नफ़रत पर फतह पायी हो। बहरहाल, कुन्दन अपने भाई को अपने बच्चे से ज़्यादा चाहने लगी। नौनी की फरियादें अब अकारथ नहीं जातीं। अगर कभी तिफलाना मुनाफ़ज़त (बच्चों जैसे झगड़े) में नौनी ही जसारत (धृष्टता, पहल) करता तो भी कुन्दन उसे सज़ा न देती। नौनी को रोता देखकर उसका कलेजा फटने लगता था और बच्चा भी उससे कुछ ऐसा हिला कि अपनी माँ को भूल गया।

तीन महीने के बाद कुन्दन का बाप भी मरा। उसने अपनी वसीयत में जयगोपाल को नौनी का सरपरस्त करार दिया और गुज़ारे के लिए उसे एक गाँव भी दिया। कुन्दन अब उस घर की मालिक हुई और नौनी उसके दिल का।

जयगोपाल खबर पाते ही आसाम से चले आये और ज़मींदारी का इन्तज़ाम करने लगे।

3

जयगोपाल अब पहले का सा बेफ़िकर, आज़ाद मनिश (मनमोजी, स्वेच्छाचारी) आदमी न था। अब वह शातिर (धूर्त, चालाक), मुअल्ला फहीम (उच्चकोटि का बुद्धिमान, विवेकी), दुनियादार बाबू बन गया था। उसे रुपये की चाट पड़ गयी थी और हरदम इसी धुन में रहता। परदेश में उसने खूब कमाया और खूब ख़र्च किया। चाय बाग़ों में नाजायज़ नफ़्सपरस्तियों (अनुचित वासनातृप्ति) के बेशुमार मौक़े हैं। उनसे उसने खूब दिल खोलकर फ़ायदा उठाया। खुलासा यह कि उसके मिज़ाज में अब छिछोरपन आ गया था और कुन्दन जैसी सीधी, भोली औरत, जिसकी निगाहों ने सामने ताकना नहीं सीखा था, अब उसके दिल को क़ाबू में न रख सकती थी। उसने एक अर्से-दराज (लम्बी अवधि) के बाद अपने शौहर को फिर पाया था और उसकी दिलजोई और खातिरदारी में पहले से भी ज़्यादा सरगर्म हो गयी थी। मगर ज्यूँ-ज्यूँ नज़दीक आने की कोशिश करती त्यूँ-त्यूँ जयगोपाल उससे दूर भागता था।

जयगोपाल ने पहले दिन ही से नौनीचन्द के साथ मुगायरत (बेगानापन, प्रतिकूलता) का बर्ताव करना शुरू किया उसकी तरफ़ देखता तो नफ़रत के साथ, बात करता तो तुर्श (कटु) लहजे में। कुन्दन भाई की मुहब्बत में शौहर को अपना शरीक बनाना चाहती थी लेकिन अगर वह कभी उसे गोद में लेकर जयगोपाल के पास चली जाती तो वह नफ़रत से मुँह फेर लेता। कुछ दिनों तक ग़रीब कुन्दन ने बहुत कोशिश की कि किसी तरह जयगोपाल के दिल में सफाई हो जाये; मगर आख़िरकार उसे मालूम हो गया कि उसने नौनी का कुसूर अब तक नहीं माफ किया और न अब इसकी तवक्को (आशा) थी और वह कुसूर क्या था ? पैदा होना !

पहले जब कभी नौनी और उसके भानजों में जंग होती तो कुन्दन हमेशा अपने भाई की तरफ़ रहा करती। इसलिए उनको नौनी के साथ सख्ती से पेश आने की हिम्मत न होती थी मगर अब अदालत का रुख़ पलट गया था। नये मुंसिफ ने आकर नया कानून जारी किया था, जो फ़रियाद करता था उसी की पूजा होती थी। जब कभी जयगोपाल नौनी

को मारते और वह अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से आँसू भरे आहिस्ता-आहिस्ता कुन्दन के पास आता तो वह उसे गोद में उठा लेती और मकान के किसी गोशे में जाकर खूब रोती और जब तक नौनी उसे चुप न कराता, रोया करती। ज्यों-ज्यों जयगोपाल नौनी के साथ ज़्यादा बेरहमी करते, त्यों-त्यों कुन्दन के दिल में उसकी मोहब्बत ज़्यादा होती।

जयंगोपाल को नौनी का रोना और बोलना सुनकर बुखार-सा आ जाता और जिस वक्त वह नींद में होते, उस वक्त तो नौनी की ज़बान का खुलना गोया शामत का आना था। जब वह सोते तो कुन्दन अपने भाई को गोद में लेकर सबसे ऊँची मुँडेर पर चली जाती और उसे थपक-थपककर लोरियाँ सुनाती और सुलाती। इसी बिना पर कभी-कभी जयगोपाल कुन्दन को भी सख्त-सुस्त कह बैठता था। दुर्गा-पूजा में उसने अपने लड़कों के लिए रेशमी कपड़े बनवाये, मगर नौनी के लिए मामूली कपड़े भी न बनवा सका। कुन्दन अपने बेकस भाई पर वह जुल्म देखती और दिल-ही-दिल में बल खाकर रह जाती। नौनी उससे इस कदर हिल गया था कि दोनों वजूदों (शरीरों, अस्तित्वों) में कोई फ़र्क़ न बाकी रहा था। कुन्दन के दिल में अब जयगोपाल की इज्ज़त रोज़-ब-रोज़ कम होती जाती थी। वह उसे मुश्तबह (संदिग्ध) निगाहों से देखती। वह कभी नौनी को उसके पास तनहा न रहने देती। इस क़दर बदगुमान हो गयी थी। वह इस मामले में बावजूद दिली कोशिश के जयगोपाल के साथ वफ़ादारी का बर्ताब नहीं कर सकती थी। जयगोपाल भी कुन्दन की जानिब (ओर, तरफ) से हद दरजा बदज़न हो गया था। पहले वह नौनी को अपनी ख़्वाबे-जिन्दगी का परेशान करने वाला समझता था, अब कुन्दन को। कुन्दन ही उस रास्ते में एक रुकावट थी जो उसे दौलत-ओ-सरवत (धन-वैभव) की तरफ़ ले जा रहा था। उसे अपनी बीवी से अब मुत्लक (बिलकुल) हमदर्दी न थी। कुन्दन के दिल में यही एक मुअम्मा (उलझन, पहेली) था जो उसकी समझ में नहीं आता था।

4

भैया दोज की तकरीब (शुभ अवसर, उत्सव) आयी। कुन्दन ने आज व्रत रखा। आज के लिए उसने पहले से ही तैयारियाँ कर रखी थीं। नौनी के लिए उसने गुलाबी रंग का रेशमी कोट, नीले किनारे की धोती, सुनहरा रेशमी दुपट्टा मँगा रखा था। सुबह उसने नौनी को उबटन से मला, नहलाया, कपड़े पहनाये और दस्तूर के मुआफ़िक उसके माथे पर दही और चावल का टीका लगा दिया। नौनी खुशरंग कपड़े पहने गाँव में खेलता-फिरता था। साफगो (स्पष्टवादी) तारा भी किसी काम से इस गाँव में आ गयी थी। यहाँ तरह-तरह के चर्चे हो रहे थे। तारा ने सुना और गुस्से से भरी हुई कुन्दन के पास आकर बोली, "बहन, क्या-क्या स्वाँग रचती हो। दिखावे के लिए तो नौनी का ऐसा लाड़-प्यार है, मगर घर भर उसकी जान का गाहक हो रहा है। सोने के कोर में ज़हर मिलाकर दे रही हो।" कुन्दन ने गुस्से से कहा, "तारा बरस-बरस के दिन ऐसी बातें जबान से न निकालो।"

तारा ने जवाब दिया, "मैं कोई बात अपने मन से बनाकर थोड़े ही कहती हूँ। गाँव में जो कुछ सुना है, वह तुमसे आकर कह दिया। जिसकी बदौलत तुम्हें सारी दुनिया का सुख मिल रहा है, उसी के लिए अब काँटे बोये जा रहे हैं। शेखूपुरा में आठ आने पर तुम्हारे

भानजे खरूद गोपाल का नाम चढ़ा दिया गया है और कई इलाक़ों में ऐसी ही चालें चली जा रही हैं। मगर याद रखो, ऐसी दौलत कभी हजम नहीं होती। ईश्वर सब देखता है।"

कुन्दन रोनी लगी। जब जयगोपाल घर में आये तो उसने यह जिक्र छेड़ा। जयगोपाल बोले, "मैं तो चाहता था कि यह बात तुम्हारे कान तक न पहुँचे। मुझे ख़ुद बड़ा धोक़ा हुआ। बात यूँ है कि मैंने शेखूपुरा का इंतिज़ाम खरूद के सुपुर्द कर दिया था, मगर खरूद ने सरकारी लगान बाक़ी डाल दी और जब वह गाँव नीलाम पर चढ़ा तो उसे अपने नाम से खरीद लिया। मुझे भी तो कल मालूम हुआ है।"

कुन्दन, "तो उज़्रदारी क्यों नहीं करते ?"

जयगोपाल, "उज़्रदारी से अब कोई काम न चलेगा। अलावा इसके अपने भानजे से मुकदमेबाजी करना बदनामी की बात है। लोग हँसी उड़ाएँगे।"

कुन्दन को इत्मीनान नहीं हुआ। वह समझ गयी, यह सब चालें नौनी को तबाह करने के लिए चली जा रही हैं। उसकी अक्ल अब कुछ काम नहीं करती थी। औरत इन मामलात को क्या समझे। मैं कैसे नौनी को बचाऊँ ! क्या बेकसों का कोई मददगार नहीं है ? क्या दुनिया में कोई इन्साफ़ करने वाला नहीं है ? कोई मुझे कलक्टर साहिब के पास ले चलता तो मैं उनसे सब हाल कह सुनाती। मुझे खुद जाना चाहिए। मैं बड़े लाट तक फ़रियाद ले जाऊँगी। मगर नौनी पर जुल्म न होने दूँगी।

5

इसके कुछ दिनों बाद नौनी बीमार पड़ा। बरसात के दिन थे। चारों तरफ़ मलेरिया फैला हुआ था। नौनी भी उसका शिकार हुआ। तीन दिन बुखार न उतरा और न बच्चे ने आँखें खोलीं। गाँव में एक बैद्यजी थे। दोनों वक्त आते और दवा देते, मगर उनकी दवाओं से मुत्लक इफ़ाका (रोग में कमी) न हुआ। चौथे दिन कुन्दन ने जयगोपाल से कहा, "जाकर शहर से सारदा बाबू को ले आते तो अच्छा होता। नौनी का बुखार अब तक नहीं उतरा।"

जयगोपाल ने लापरवाही से कहा, "सारदा बाबू जाने शहर में हैं या नहीं। अभी दो-चार रोज़ और बैद्यजी की दवा खिलाओ।"

कुन्दन, "बैद्यजी की दवाई से कोई फ़ायदा नहीं हुआ और उसकी हालत ख़राब होती जाती है।"

जयगोपाल, "अभी कुल तीन ही दिन तो बुखार आया है।"

कुन्दन, "तुम ज़रा चल के उसे देखो तो, कैसा पीला हो गया है।"

जयगोपाल, "अच्छा, कल मैं डॉक्टर बाबू के पास जाऊँगा।"

जयगोपाल सवेरे उठे और दिन भर ग़ायब रहने के बाद शाम को ख़बर लाये कि डॉक्टर साहिब घर पर नहीं हैं, कहीं मुफ़स्सलात (नगर के आसपास की छोटी आबादियों में) में गये हैं। कुन्दन को शौहर की बातों पर यक़ीन न आया। रात को जब सब सो गये तो उसने नौनी को गोद ले लिया। गाँव से मिली हुई सारद नदी बहती थी। घाट पर आकर एक किश्ती किराये पर की और बारह बजे वह डॉक्टर साहिब के मकान पर पहुँची। सारदा बाबू उसके फैमिली डॉक्टर थे। देखते ही पहचान गये। कुन्दन को इस हालत में देखकर

उन्हें बहुत रंज हुआ। सूरतेहाल समझ गये। कुन्दन के लिए दो कमरे ख़ाली कर दिये। एक मेहरी का इन्तिजाम किया और नौनी के मुआलजे (चिकित्सा) में मसरूफ़ हुए।

रात गुज़री। अलीअल (तड़के) जयगोपाल जामे से बाहर गुस्से से काँपते हुए पहुँचे और कुन्दन से कहा, "खैरियत चाहती हो तो इसी वक्त मेरे साथ घर चलो।" कुन्दन ने जवाब दिया, "तुम इस वक्त मेरा गला भी काट डालो तो मैं न जाऊँगी।" जयगोपाल, "अच्छा तो अब मेरे घर मत आना, समझीं।" कुन्दन ने अब की तनकर जवाब दिया, "तुम्हारा घर ! वह घर तो मेरे भाई का है।"

जयगोपाल घूँसा तानकर रह गया। उसी वक्त वहाँ से आकर रहने का मकान और बाग़ अपने बड़े लड़के के नाम लिखवा लिया और दूसरे दिन उसकी रजिस्ट्री भी हो गयी।

कुन्दन हफ़्ता भर डॉक्टर साहिब के यहाँ रही। नौनी को सेहत हो चली थी। उसका इरादा और एक हफ्ते भर रहने का था। मगर घर और बाग़ के बय (बिक्री) होने की ख़बर ने उसे वहाँ न ठहरने दिया। डेढ़-दो हज़ार की ज़ायदाद हाथ से निकली जाती है। अपने बेटे को कुन्दन उस वक्त ग़ैर समझ रही थी। भाई बेटे से भी ज़्यादा प्यारा हो गया था।

6

कलक्टर साहिब मौसिमे-सर्मा (शरद ऋतु) का दौरा कर रहे थे। शेखूपुरा में कायाम किया। सुबह के वक्त वह अपने खेमे में सामने बैठे हुए थे। आस-पास के मवाज़आत (ग्राम समूह) से ज़मींदार और रऊसा (तअल्लुकेदार, अमीर) सलाम करने को हाजिर हुए थे। बाबू जयगोपाल भी सियाह अलपाके की अचकन पहने, सफ़ेद पगड़ी बाँधे सलाम को हाज़िर हुए। साहिब बहादुर ने उनकी ग़ैरमामूली तौर पर इज्ज़त की और उनके लिए कुर्सी मँगाई। जयगोपाल को हफ़्तुलक़्लीम (सारे संसार) की दौलत मिल गयी। ऐसा खुशनसीब कौन होगा। ज्ञानपुर के चक्रवर्ती और शाहगंज के चौधरी यही अरमान लिये बैकुंठ सिधार गए। जयगोपाल ने चारों तरफ़ तफाखुराना अन्दाज (गर्वपूर्ण भंगिमा) से देखा। गाँव के बनिये और मज़दूर उनकी यह इज्ज़त देखकर सकते (चकित होने की अवस्था) में आ गये। अफ़सोस ! सामगंज के मित्र बाबू यहाँ नहीं हैं, वर्ना देखते कि मेरी कैसी इज़्ज़त है।

यकायक एक औरत सिर से पैर तक चादर ओढ़े एक पाँच साला लड़के की अँगुली पकड़े आयी और खड़ी हो गयी। साहिब ने पूछा, "तुम कौन हो ?" कुन्दन बोली, "हुजूर, मैं इस गाँव की एक दुखियारी औरत हूँ। आपके पास फ़रियाद लेकर आयी हूँ।"

साहिब, "अच्छा, इजलास के कमरे में चलो। हम अभी आता है।"

कुन्दन, "नहीं हुजूर, मेरी अर्ज यहीं सुन ली जाये।"

जयगोपाल के चेहरे पर एक रंग आता था और एक रंग जाता था। खिसियाए हुए बन्दर की तरह कुन्दन को घूर रहा था। अगर साहिब का खौफ़ न होता तो वह ज़रूर उस पर हमला कर बैठता।

कुन्दन कहने लगी, "हुजूर, यह लड़का मेरा भाई है। मैं बाबू मधुसूदन की लड़की हूँ, जिनका दो साल हुए इन्तकाल हो गया। यह बाबू साहिब जो आपके सामने बैठे हुए हैं, मेरे शौहर हैं। मेरे बाप का जब इन्तकाल हुआ तो उन्होंने इन बाबू साहिब को अपने

नाबालिग बच्चे का वली (संरक्षक) करार दिया और अपनी ज़मींदारी का दो आने इनके गुजारे के लिए वसीयत में लिख गए। मगर इन बाबू साहिब की अब नीयत बदली हुई है। यह मेरे ग़रीब भाई की सारी जायदाद अपने और अपने लड़कों के नाम करते जाते हैं। कोई इनका हाथ रोकने वाला नहीं। मैं इनकी बीवी हूँ। इनके काबू में हूँ. कुछ बोल नहीं सकती। इसका नतीजा यह होगा कि हुजूर के राज़ में एक यतीम पर कहर टूट जायेगा और उसकी जायदाद दूसरों के तसर्रुफ़ (अधिकार) में आ जायेगी। इसलिए मैं आपकी खिदमत में हाजिर हुई हूँ, यह लड़का आपको सौंप दूँ। अब इसके साथ इन्साफ़ करना आपका धर्म है। आप जो मुनासिब समझें, वही करें।"

यह कहकर कुन्दन खामोश हो गयी। जयगोपाल ने फर्ते-गजब (क्रोधावेग) से बीच में कई बार छेड़ने की जुर्रत की, मगर साहिब के तेवर देखकर ख़ामोश हो गये। आख़िर साहिब ने उनसे पूछा, "यह सब सच है ?" जयगोपाल बोले, "हुजूर, मैं क्या अर्ज करूँ ? बाबू माधुसूदन कर्ज छोड़ गये थे। सो हुजूर, कुछ जमीन मक्फूल (रेहन) करके क़र्ज अदा किया गया।"

साहिब—"अच्छा, अच्छा, कुल काग़जात हमारे सामने पेश करो।"

जयगोपाल— बहुत अच्छा, हुजूर।"

साहिब ने तब कुन्दन से कहा—"अच्छा, अब तुम जाओ। हम इस मुआमले में खूब कोशिश करेंगे। तुम्हारे भाई की जायदाद कोई नहीं ले सकता। तुम्हारी नेकी और मुस्तकिल मिजाज़ी (निश्चय की स्थिरता) से हम बहुत खुश हुआ।"

कुन्दन ने झुककर ज़मीन चूमी और नौनी को गोद से उतारकर साहिब के सामने खड़ा कर दिया। नौनी रोने लगा मगर साहिब ने उसे चुमकारा और एक टेनिस का गेंद देकर उसे बहलाया। जब कुन्दन चलने लगी तो साहिब ने पूछा, "इस लड़के को अपने साथ लेती जाओ। क्या कोई ख़ौफ़ है ?"

कुन्दन—"हुजूर, अब मैं उसे आपके सिपुर्द कर चुकी हूँ। मेरे साथ नहीं रह सकता।"

साहिब—"और तुम कहाँ जाओगी ?"

कुन्दन—"मैं अपने शौहर के साथ जाऊँगी।"

कुन्दन ने नौनी को गले लगाकर प्यार किया और आँखों में आँसू भरे रुख़सत हो गयी।

एक हफ़्ते में हलका कोर्ट-ऑफ वार्डस् के जेरे-तहत (अधिकार में) आ गया और नौनी को पढ़ाने के लिए मास्टर रख लिया गया। जयगोपाल आसाम चले गये, मगर कुन्दन को फिर किसी ने न देखा। वह जिस दिन साहिब के यहाँ से लौटी उसी दिन उसे हैजा हो गया, मगर गाँव वाले अब भी इसे तसलीम नहीं करते और साफगो तारा अब भी कहती है कि कुन्दन को हैजा नहीं हुआ था।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू, 'अदीब' (उर्दू मासिक पत्रिका), जुलाई, 1911 में प्रकाशित। उर्दू में असंकलित। हिन्दी रूप 'कादम्बिनी', जुलाई, 1980 में प्रकाशित। हिन्दी में 'सोलह अप्राप्य कहानियां' और 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित।]

आखिरी मंजिल

आह ! आज तीन साल गुजर गए, यही मकान है, यही बाग, यही गंगा का किनारा, यही संगमरमर का हौज। यही मैं हूं और यही दरोदीवार। मगर अब इन चीजों से दिल पर कोई असर नहीं होता। वह नशा जो गंगा की सुहानी लहरों और हवा के दिलकश झोंकों से दिल पर छा जाता था उस नशे के लिए अब जी तरस-तरस के रह जाता है ! अब वह दिल नहीं रहा। वह युवती जो मेरी जिंदगी का सहारा थी अब इस दुनिया में नहीं है।

मोहिनी ने बड़ा आकर्षक रूप पाया था। उसके सौंदर्य में एक आश्चर्यजनक बात थी। उसे प्यार करना मुश्किल था, वह पूजने के योग्य थी। उसके चेहरे पर हमेशा एक बड़ी लुभावनी आत्मिकता की दीप्ति रहती थी। उसकी आंखें जिनमें लाज की गंभीरता और पवित्रता का नशा था, प्रेम का स्रोत थीं। उसकी एक-एक चितवन, एक-एक क्रिया, एक-एक बात उसके हृदय की पवित्रता और सच्चाई का असर दिल पर पैदा करती थी। जब वह अपनी शर्मीली आंखों से मेरी ओर ताकती तो उसका आकर्षण और उसकी गर्मी मेरे दिल में एक ज्वार-भाटा-सा पैदा कर देती थी। उसकी आंखों से आत्मिक भावों की किरनें निकलती थीं मगर उसके होंठ प्रेम की बानी से अपरिचित थे। उसने कभी इशारे से भी उस अथाह प्रेम को व्यक्त नहीं किया जिसकी लहरों में वह खुद तिनके की तरह बही जाती थी। उसके प्रेम की कोई सीमा न थी। वह प्रेम जिसका लक्ष्य मिलन है, प्रेम नहीं वासना है। मोहिनी का प्रेम वह प्रेम था जो मिलन में भी वियोग के मजे लेता है। मुझे खूब याद है एक बार जब उसी हौज के किनारे चांदनी रात में मेरी प्रेम-भरी बातों से विभोर होकर उसने कहा था—आह ! वह आवाज अभी मेरे हृदय पर अंकित है, 'मिलन प्रेम का आदि है अंत नहीं।' प्रेम की समस्या पर इससे ज्यादा शानदार, इससे ज्यादा ऊंचा खयाल कभी मेरी नजर से नहीं गुजरा। वह प्रेम जो चितवनों से पैदा होता है और वियोग में भी हरा-भरा रहता है, वह वासना के एक झोंके को भी बर्दाश्त नहीं कर सकता। संभव है कि यह मेरी आत्मस्तुति हो मगर वह प्रेम, जो मेरी कमजोरियों के बावजूद मोहिनी को मुझसे था उसका एक कतरा भी मुझे बेसुध करने के लिए काफी था। मेरा हृदय इतना विशाल ही न था, मुझे आश्चर्य होता था कि मुझमें वह कौन-सा गुण था जिसने मोहिनी को मेरे प्रति प्रेम से विह्वल कर दिया था। सौंदर्य, आचरण की पवित्रता, मर्दानगी का जौहर यही वह गुण हैं जिन पर मोहब्बत निछावर होती है मगर मैं इनमें से एक पर भी गर्व नहीं कर सकता था। शायद मेरी कमजोरियां ही उस प्रेम की तड़प का कारण थीं।

मोहिनी में वह अदायें न थीं जिन पर रंगीली तबीयतें फिदा हो जाया करती हैं। तिरछी चितवन, रूप-गर्व की मस्ती से भरी हुई आंखें, दिल को मोह लेने वाली मुस्कराहट, चंचल वाणी, इनमें से कोई चीज यहां न थी। मगर जिस तरह चांद की मद्धिम सुहानी रोशनी में कभी-कभी फुहारें पड़ने लगती हैं, उसी तरह निश्छल प्रेम में उसके चेहरे पर एक उदास मुस्कराहट कौंध जाती और आंखें नम हो जातीं। यह अदा न थी, सच्चे भावों की तस्वीर थी जो मेरे हृदय में पवित्र प्रेम की खलबली पैदा कर देती थी।

2

शाम का वक्त था, दिन और रात गले मिल रहे थे। आसमान पर मतवाली घटाएं छाई हुई थीं और मैं मोहिनी के साथ उसी हौज के किनारे बैठा हुआ था। ठंडी-ठंडी बयार और मस्त घटायें हृदय के किसी कोने में सोए हुए प्रेम के भाव को जगा दिया करती हैं। वह मतवालापन जो उस वक्त हमारे दिलों पर छाया हुआ था, उस पर मैं हजारों होशमंदियों को कुर्बान कर सकता हूं। ऐसा मालूम होता था कि उस मस्ती के आलम में हमारे दिल बेताब होकर आंखों से टपक पड़ेंगे। आज मोहिनी की जबान भी संयम की बेड़ियों से मुक्त हो गई थी और उसकी प्रेम में डूबी हुई बातों से मेरी आत्मा को जीवन मिल रहा था।

एकाएक मोहिनी ने चौंककर गंगा की तरफ देखा। हमारे दिलों की तरह उस वक्त गंगा भी उमड़ी हुई थी।

पानी की उस उद्विग्न उठती-गिरती सतह पर एक दिया बहता हुआ चला जाता था और उसका चमकता हुआ अक्स थिरकता और नाचता एक पुच्छल तारे की तरह पानी को आलोकित कर रहा था। आह ! उस नन्ही-सी जान की क्या बिसात थी। कागज के चंद पुर्जे, बांस की चंद तीलियां, मिट्टी का एक दीया कि जैसे किसी की अतृप्त लालसाओं की समाधि थी जिस पर किसी दुख बंटाने वाले ने तरस खाकर एक दीया जला दिया था। मगर वह नन्ही-सी जान जिसके अस्तित्व का कोई ठिकाना न था, उस अथाह सागर में उछलती हुई लहरों से टकराती, भंवरों से हिलकोरे खाती, शोर करती हुई लहरों को रौंदती चली जाती थी। शायद जलदेवियों ने उसकी निर्बलता पर तरस खाकर उसे अपने आंचलों में छुपा लिया था।

जब तक वह दीया झिलमिलाता और टिमटिमाता, हमदर्द लहरों से झकोरे लेता दिखाई दिया, मोहिनी टकटकी लगाए खोई-सी उसकी तरफ ताकती रही। जब वह आंख से ओझल हो गया तो वह बेचैनी से उठ खड़ी हुई और बोली—मैं किनारे पर जाकर उस दीये को देखूंगी।

जिस तरह हलवाई की मनभावन पुकार सुनकर बच्चा घर से निकल पड़ता है और चाव-भरी आंखों से देखता और अधीर आवाजों से पुकारता उस नेमत के थाल की तरफ दौड़ता है, उसी जोश और चाव के साथ मोहिनी नदी के किनारे चली।

बाग से नदी तक सीढ़ियां बनी हुई थीं। हम दोनों तेजी के साथ नीचे उतरे और किनारे पहुंचते ही मोहिनी ने खुशी के मारे उछलकर जोर से कहा—अभी है ! अभी है ! देखो वह निकल गया !

वह बच्चों का-सा उत्साह और उद्विग्न अधीरता, जो मोहिनी के चेहरे पर उस समय थी, मुझे कभी न भूलेगी। मेरे दिल में सवाल पैदा हुआ, उस दीये से ऐसा हार्दिक संबंध, ऐसी विह्वलता क्यों ? मुझ जैसा कवित्वशून्य व्यक्ति उस पहेली को जरा भी न बूझ सका।

मेरे हृदय में आशंकाएं पैदा हुई। अंधेरी रात है, घटाएं उमड़ी हुईं, नदी बाढ़ पर, हवा तेज, यहां इस वक्त ठहरना ठीक नहीं। मगर मोहिनी ! वह चाव-भरे भोलेपन की तस्वीर, उसी दीये की तरफ आंखें लगाए चुपचाप खड़ी थी और वह उदास दीया ज्यों-का-त्यों हिलता-मचलता चला जाता था, न जाने कहां, किस देश को !

मगर थोड़ी देर के बाद वह दीया आंखों से ओझल हो गया। मोहिनी ने निराश स्वर

में पूछा—गया ! बुझ गया होगा ?

और इसके पहले कि मैं कुछ जवाब दूं वह उस डोंगी के पास चली गई, जिस पर बैठकर हम कभी-कभी नदी की सैरें किया करते थे, और प्यार से मेरे गले लिपटकर बोली—मैं उस दीये को देखने जाऊंगी, मैं देखूंगी कि वह कहां जा रहा है ? किस देश को ?

यह कहते-कहते मोहिनी ने नाव की रस्सी खोल ली। जिस तरह पेड़ों की डालियां तूफान के झोंकों से झकोले खाती हैं उसी तरह यह डोंगी डावांडोल हो रही थी। नदी का वह डरावना विस्तार, लहरों की वह भयानक छलांगें, पानी की वह गरजती हुई आवाज, इस खौफनाक अंधेरे में इस डोंगी का बेड़ा क्योंकर पार होगा ! मेरा दिल डूब गया। क्या उस अभागे की तलाश में यह किश्ती भी डूबेगी ? मगर मोहिनी का दिल उस वक्त उसके बस में न था। उसी दीये की तरह उसका हृदय भी भावनाओं की विराट्, लहरों भरी, गरजती हुई नदी में बहा जा रहा था। मतवाली घटाएं झुकती चली आती थीं कि जैसे नदी से गले मिलेंगी और वह काली नदी यों उठती थी कि जैसे बादलों को छू लेगी। डर के मारे आंखें मुंदी जाती थीं। हम तेजी के साथ उछलते, कगारों के गिरने की आवाजें सुनते, काले-काले पेड़ों का झूमना देखते चले जाते थे। आबादी पीछे छूट गई। देवताओं की बस्ती से भी आगे निकल गए। एकाएक मोहिनी चौंककर उठ खड़ी हुई और बोली—अभी है ! अभी है ! देखो वह जा रहा है।

मैंने आंख उठाकर देखा, वह दीया ज्यों का त्यों हिलता-मचलता चला जाता था।

3

उस दीये को देखते हम बहुत दूर निकल गए। मोहिनी ने यह राग अलापना शुरू किया—

मैं साजन से मिलन चली

कैसा तड़पा देने वाला गीत था और कैसी दर्दभरी रसीली आवाज। प्रेम और आंसुओं में डूबी हुई। मोहक गीत में कल्पनाओं को जगाने की बड़ी शक्ति होती है। वह मनुष्य को भौतिक संसार से उठाकर कल्पना-लोक में पहुंचा देता है। मेरे मन की आंखों में उस वक्त नदी की पुरशोर लहरें, नदी किनारे की झूमती हुई डालियां, सनसनाती हुई हवा सबने जैसे रूप धर लिया था और सबकी सब तेजी से कदम उठाए चली जाती थीं, अपने साजन से मिलने के लिए। उत्कंठा और प्रेम से झूमती हुई एक युवती की धुंधली सपने जैसी तस्वीर हवा में, लहरों में और पेड़ों के झुरमुट में चली जाती दिखाई देती और कहती थी—साजन से मिलने के लिए ! इस गीत ने सारे दृश्य पर उत्कंठा का जादू फूंक दिया—

मैं साजन से मिलन चली
साजन बसत कौन-सी नगरी मैं बौरी ना जानूं
ना मोहे आस मिलन की उससे ऐसी प्रीत भली
मैं साजन से मिलन चली

मोहिनी खामोश हुई तो चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था और उस सन्नाटे में एक बहुत मद्धिम, रसीली स्वप्निल स्वर क्षितिज के उस पार से या नदी के नीचे से या हवा के झोंकों के साथ आता हुआ मन के कानों को सुनाई देता था—

मैं साजन से मिलन चली

मैं इस गीत से इतना प्रभावित हुआ कि जरा देर के लिए मुझे खयाल न रहा कि कहां हूं और कहां जा रहा हूं। दिल और दिमाग में वही राग गूंज रहा था। अचानक मोहिनी ने कहा—उस दीये को देखो। मैंने दीये की तरफ देखा। उसकी रोशनी मंद हो गई थी और आयु की पूंजी खतम हो चली थी। आखिर वह एक बार जरा भभका और बुझ गया। जिस तरह पानी की बूंद नदी में गिरकर गायब हो जाती है, उसी तरह अंधेरे के फैलाव में उस दीये की हस्ती गायब हो गई। मोहिनी ने धीमे से कहा, अब नहीं दिखाई देता ! बुझ गया ! यह कहकर उसने ठंडी सांस ली। दर्द उमड़ आया। आंसुओं से गला फंस गया, जबान से सिर्फ इतना निकला, क्या यही उसकी आखिरी मंजिल थी ? और आंखों से आंसू गिरने लगे।

मेरी आंखों के सामने से पर्दा-सा हट गया। मोहिनी की बेचैनी और उत्कंठा, अधीरता और उदासी का रहस्य समझ में आ गया और बरबस मेरी आंखों से भी आंसू की चंद बूंदें टपक पड़ीं। क्या उस शोर-भरे, खतरनाक, तूफानी सफर की यही आखिरी मंजिल थी ?

दूसरे दिन मोहिनी उठी तो उसका चेहरा पीला था। उसे रात भर नींद नहीं आई थी। वह कवि स्वभाव की स्त्री थी। रात की इस घटना ने उसके दर्द-भरे भावुक हृदय पर बहुत असर पैदा किया था। हंसी उसके होंठों पर यूं ही बहुत कम आती थी, हां चेहरा खिला रहता था। आज से वह हंसमुखपन भी विदा हो गया, हरदम चेहरे पर एक उदासी-सी छाई रहती और बातें ऐसी जिनसे हृदय छलनी होता था और रोना आता था। मैं उसके दिल को इन खयालों से दूर रखने के लिए कई बार हंसाने वाले किस्से लाया मगर उसने उन्हें खोलकर भी न देखा। हां, जब मैं घर पर न होता तो वह कवि की रचनायें देखा करती मगर इसलिए नहीं कि उसके पढ़ने से कोई आनंद मिलता था बल्कि इसलिए कि उसे रोने के लिए खयाल मिल जाता था और वह कवितायें जो उस जमाने में उसने लिखीं दिल को पिघला देने वाले दर्द-भरे गीत हैं। कौन ऐसा व्यक्ति है जो इन्हें पढ़कर अपने आंसू रोक लेगा। वह कभी-कभी अपनी कविताएं मुझे सुनाती और जब मैं दर्द में डूबकर उनकी प्रशसा करता तो मुझे उसकी आंखों में आत्मा के उल्लास का नशा दिखाई पड़ता। हंसी-दिल्लगी और रंगीनी मुमकिन है कुछ लोगों के दिलों पर असर पैदा कर सके मगर वह कौन-सा दिल है जो दर्द के भावों से पिघल न जाएगा।

एक रोज हम दोनों इसी बाग की सैर कर रहे थे। शाम का वक्त था और चैत का महीना। मोहिनी की तबीयत आज खुश थी। बहुत दिनों के बाद आज उसके होंठों पर मुस्कराहट की झलक दिखाई दी थी। जब शाम हो गई और पूरनमासी का चांद गगा की गोद से निकलकर ऊपर उठा तो हम इसी हौज के किनारे बैठ गए। यह मौलसिरियों की कतार और यह हौज मोहिनी की यादगार है। चांदनी में बिसात आई और चौपड़ होने लगी। आज तबीयत की ताजगी ने उसके रूप को चमका दिया था और उसकी मोहक चपलताएं मुझे मतवाला किए देती थीं। मैं कई बाजियां खेला और हर बार हारा। हारने में जो मजा था वह जीतने में कहां। हल्की-सी मस्ती में जो मजा है वह छकने और मतवाला होने में नहीं।

चांदनी खूब छिटकी हुई थी। एकाएक मोहिनी ने गंगा की तरफ देखा और मुझसे

बोली, वह उस पार कैसी रोशनी नजर आ रही है ? मैंने भी निगाह दौड़ाई, चिता की आग जल रही थी लेकिन मैंने टालकर कहा—मांझी खाना पका रहे हैं।

मोहिनी को विश्वास न हुआ। उसके चेहरे पर एक उदास मुस्कराहट दिखाई दी और आंखें नम हो गईं। ऐसे दुख देने वाले दृश्य उसके भावुक और दर्दमंद दिल पर वही असर करते थे जो लू की लपट फूलों के साथ करती है।

थोड़ी देर तक वह मौन, निश्चल बैठी रही, फिर शोक भरे स्वर में बोली—'अपनी आखिरी मंजिल पर पहुंच गया !'

['मंजिले-मकसूद' शीर्षक से उर्दू में प्रथम प्रकाशन। 'जमाना', अगस्त-सितम्बर, 1911 में प्रकाशित हिन्दी रूप 'गुप्तधन' भाग-1 में संकलित।]

खौफे-रुसवाई (बदनामी का डर)

एक आरास्ता व पैरास्त (पूर्ण सुसज्जित) कमरे में एक नाजुक-अंदाम (कृशांग) नफीसपोश (सुन्दर वस्त्र पहने) औरत मेज के सामने रुख़सारों (कपोलों) पर हाथ रखे बैठी है। वह किसी गहरे खयाल में गर्क (निमग्न) है, मगर ज़ाहिरा इस ख़याल में गौर की महवियत (तल्लीनता) नहीं है, बल्कि बेचैनी और इंतशार (परेशानी) इज़तराब (बेचैनी) और घबराहट के आसार (चिन्ह) उसके हसीन चेहरे पर नमूदार (प्रकट) है।

सरला बाबू धीरेन चौधरी की बीवी है। धीरेन कलकत्ते के एक होनहार बैरिस्टर थे। खलीक (सज्जन) और गरीबनवाज़ (निर्धनों का सहायक), फैशनेबिल सोसाइटी से मोहतरीज़ रहने वाला (बचने वाला), न बॉल से रगबत (रुचि), न घुड़दौड़ के शैदा (आसक्त, आशिक)। वह थियेटरों और पोलिटिकल जलसों में बहुत कम शरीक होते। उनके औकात का बेशतर हिस्सा (अधिकतर समय) अपने मुकदमात की तहकीक व ततबीक (जॉच पड़ताल) में सर्फ (व्यतीत) होता था। उनके दोस्तों का हल्का निहायत महदूद (सीमित) था, जहाँ तकल्लुफ और ज़ाहिरदारी (ऊपरी दिखावट, आडम्बर) के बदले खुलूस (सरलता) और दोस्तों के मरासिम (रस्में) बरते जाते थे। धीरेन को फैशन से इन्तहा दर्जे की नफ़रत थी। बावजूद इसके कि कलकत्ते का हर एक गोशा (कोना) पोलिटिकल ख़बरों से गूँज रहा था, मगर धीरेन को उनसे सिर्फ इतनी हमदर्दी थी कि अख़बारों में उनका तज़करा (चर्चा) देख लिया करता था। पोलिटिक्स से उसे मुनासिबत (लगाव), न थी। वह अपने दोस्तों में एक सीधा सलीम उत्तबा (प्रसन्नचित्त) आदमी मशहूर था। इसके बरअक्श (विपरीत) सरला नेशनलिस्ट अकायद (विश्वासों) की औरत थी। उसने आला दर्जे की अंगरेज़ी तालीम पायी थी। और हिन्दुस्तान के पोलिटिकल और इक्तिसादी (आर्थिक) मामलात से उसे बहुत ज्यादा दिलचस्पी थी। एक बार वह अपने कॉलेज की लेडी प्रिंसिपल से सिर्फ़ इस बिना पर झगड़ पड़ी कि लेडी साहिबा ने बरसबील तजकरा (चर्चा चलने पर) हिन्दुस्तानी औरत के मुतल्लिक जंबान से कुछ इहानत-आमेज (अपमानजनक) कलमात (शब्द) निकाले थे। आजादी-ए-निस्वाँ (नारी-स्वातंत्र्य) के मुताल्लिक भी इसके ख़यालात बहुत पसीं (दृढ़ ,

अंतिम) थे। बावजूद इन असबाब के वह हिन्दुस्तानी मुहब्बत और ज़ज्बात की औरत थी। वजा (रीति) की पाबंद, शौहर की अदब और मुहब्बत करने वाली।

सरला सोचती थी, "क्या यह मुमकिन है ? उन्हें इन मुआमलात (विषयों, बातों) से मुतलक (जरा भी) दिलचस्पी न थी। यह सब किसी बदख्वाह (अहित-चिंतक) की शरारत है। किसी सियाहबातिन (कलुषमना, पापात्मा) शख्स ने यह दरोग (झूठ) इख्तिराअ (आविष्कार, ईजाद) किया है। ऐसा हरगिज मुमकिन नहीं।"

2

हक़ीक़त यह थी कि आज पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने कई कांस्टेबिलों के साथ धीरेन बाबू के मकान की तलाशी ली थी। मंगल के रोज़ चार बजे शाम को हैरीसन रोड के किनारे एक नौजवान बंगाली ने एक अंगरेज़ अफ़सर पर बमगोला चलाया था। इस हौलनाक (भयानक) हादसे ने सारे शहर में खलबली डाल दी थी। खाना-तलाशियों की गर्मबाजारी थी और सबसे अचम्भे की बात यह थी कि धीरेन बाबू पर कत्ल की अयानत (प्रगट) करने का जुर्म लगाया गया था। जो शख्स सुनता उसे हैरत होती। धीरेन बाबू ! नहीं, वह हरगिज ऐसे मुआमलों में शरीक नहीं हो सकते। वह ऐसे सीधे-सादे, सलामत-पंसद, अपने काम में शबे-रोज (दिन-रात) महव (तल्लीन) रहने वाले आदमी थे कि किसी को उनके मुताल्लिक ऐसी मुतवहिदृश (भयानक) ख़बर सुनकर एतबार नहीं आता था और धीरेन बाबू पर यह सुबहा एक मुखबिर के बयान की बदौलत आयद (लागू) हुआ था। मुखबिर ने साफ़-साफ़ कहा था कि मंगल को चार बजे धीरेन बाबू हैरीसन रोड पर मौजूद थे और उन्होंने कातिल को अपने हाथ से बमगोला दिया था। इसी बयान की बदौलत आज धीरेन बाबू की खाना-तलाशी हुई। सन्दूक, अल्मारिया, कागजात, खुतूत एक भी तफ़्तीश-कुनंदा (जाँच-पड़ताल करने वाला) अफ़सर की मुंतजस (चतुर) निगाहों से न बचा और बावजूद कि कोई सबूत ऐसा न मिला जिससे धीरेन बाबू पर आनत-जुर्म के शुबहा की ताईद (पुष्टि) हो सके। ताहम सुपरिंटेंडेंट ने उन्हें जेरे-हिरासत (कैद में) ले लिया।

सरला इन्हीं परेशान करने वाले वाकिआत के असर से इस वक्त बेचैन है। वह खयाल करती थी—'ज़रूर सुपरिंटेंडेंट पुलिस से गलती हुई। उसने धोखा खाया, मंगल को चार बजे धीरेन अदालत से होंगे। अदालत में इसका सबूत मिल सकता है। उनके मुवक्किल और अहबाब (मित्र, दोस्त) इसकी तसदीक कर सकते हैं, मगर धीरेन ने सुपरिंटेंडेंट पुलिस के रू-ब-रू (सामने) अपनी बरीयत (रिहाई) का सबूत क्यों न दे दिया। मुमकिन है उस वक्त घबराहट में उन्हें ख़याल न रहा हो। अब ज़रूर उन्होंने सफाई कर ली होगी और गालिबन आते ही होंगे।

इन ख़यालत से सरला का दिल जरा हल्का हुआ। इसी अस्नाय (बीच) में एक मोटरकार दरवाज़े पर आकर रुकी। सरला का कलेजा धड़कने लगा। वह मसर्रत से बेताब होकर ज़ीने से नीचे उतरी। मोटर घर ही का था, मगर इसमें धीरेन बाबू की बजाय जोतिन्द्र सेन बैठे थे जो धीरेन के दिली-दोस्तों में थे।

सरला ने पूछा, "धीरेन कहाँ हैं ? देखा पुलिस वालों ने कैसी हिमाकत की है। तुम

जानते हो मंगल के दिन शाम के वक्त वह हाईकोर्ट में थे। क्यों, सफाई हो गई ना ? कब तक आएँगे ? तुम उनसे मिले थे ?"

जोतिन्द्र के चेहरे ने सरला के खयाल की ताईद नहीं की। वह फिक्रमंद और दर्दनाक निगाहों से सरला की तरफ देख रहे थे। सरला ने घबराकर कहा, "जोतिन, तुम इस क़दर परेशान क्यों हो ? साफ-साफ क्यों नहीं कहते ?"

जोतिन ने कुछ सोचकर कहा, "शायद धीरेन आज शब (शत) को न आ सकें। मुमकिन है, कुछ तवक्कुफ़ (विलम्ब) हो। ज्यों ही उनकी सफाई होगी, गालिबन उनका तुमसे मिलना ज़रूरी है। मैं ख़याल करता हूँ....।" यह कहते-कहते जोतिन बाबू रुक गये। सरला ताड़ गई कि यह कोई मनहूस ख़बर लाये हैं। घबराकर बोली, "जोतिन, मुझसे इस वक्त पहेलियाँ मत बुझाओ, जो कुछ कहना हो साफ़ साफ़ कहो। मुझमें अब बरदाश्त करने की ताक़त नहीं है। क्या धीरेन अभी रिहा न हो सकेंगे ? क्या उन्होंने अपने बरीयत (रिहाई) के सबूत में यह नहीं कहा कि वह मंगल को चार बजे अदालत में थे? मेरे खयाल में यह तो बहुत काफी सबूत था।"

जोतिन्द्र ने लम्बी साँस लेकर कहा, "मंगल के दिन से पहर (तीसरे पहर) को वह अदालत में नहीं थे।"

सरला, "क्या ! अदालत में नहीं थे। आख़िर तब कहाँ थे ?"

जोतिन्द्र "यही तो वह बतलाते नहीं।"

सरला, "क्यों, आख़िर वजह ? क्या आप ही अपने दुश्मन हुए हैं ?"

जोतिन्द्र, "वह मुतलक कुछ नहीं जाहिर करते। अदालत में उनके दो बजे तक रहने का सबूत मिलता है। यह भी साबित होता है कि वह एक किराये की गाड़ी में बैठकर कहीं गये, मगर कहाँ गये थे और तीन बजे से छः बजे तक कहाँ रहे, इसका कुछ पता नहीं देते।"

सरला ने आलमे-बहशत (घबरायी हुई अवस्था) में सिर को हाथों से थामकर कहा, "मेरी अक्ल कुछ काम नहीं करती। धीरेन को क्या हो गया है ? यह ग़ैर-मुमकिन है कि वह इस साजिश में शरीक हों। अगर वह खुद अपनी ज़बान से कहें तब भी मुझे एतबार नहीं आ सकता। मगर वह साफ़-साफ़ हक़ीक़ते-हाल क्यों नहीं कहते ? क्या तुम लोगों ने उन्हें नहीं समझाया ?"

जोतिन्द्र, "समझाया क्यों नहीं, घंटों बैठे सरमगजनी (माथापच्ची) करते रहे, मगर जब कुछ उनके ख़याल में आये, और ऐसे कम फहम (अल्पज्ञ) नहीं हैं कि हमको उनके समझाने की ज़रूरत हो। क्या वह नहीं जानते कि यह ऐसे नाजुक मौके पर उनका साफ़-साफ़ न कहना कैसे ख़तरनाक नताइज (परिणाम) पैदा करेगा, मगर इस वक्त वह किसी की नहीं सुनते। कहते हैं, "बला से, मैं चन्द सालों के लिए जलावतन (देश-निष्कासित) हो जाऊँगा। जलावतनी और कैद झेलने के लिए आमादा हैं। मगर मंगल को कहाँ थे, यह नहीं बताते। इसलिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ कि शायद कुछ तुम्हें मालूम हो ! कुछ मालूम है ? वह ज़्यादातर कहाँ आते-जाते हैं ?"

सरला ने सिर हिलाकर जवाब दिया, "मैंने उन्हें कहीं आते-जाते नहीं देखा। मैं तो

अब तक इसी ख़याल से खुश थी कि मंगल को चार बजे वह ज़रूर कचहरी में रहे होंगे। मेरी समझ में कुछ नहीं आता। आख़िर वह क्यों ख़ामोश हैं ? क्या समझे हुए हैं ? ज़रा मुझे उनके पास ले चलो। शायद वह मुझसे कुछ अपने दिल की बात कहें। ज़रूर कहेंगे, मैं उन्हें समझाऊँगी। मुझे यक़ीन है कि मैं उनकी ज़बान से हक़ीक़ते-हाल सुन लूंगी। वह मेरी दरख़्वास्त को रद्द नहीं कर सकते। बस मुझे उनके पास ले चलो।''

सरला का गला भर आया। जोतिद्र तस्कीन-दह (तसल्ली देने वाले) लहजे में बोले, ''मेरा भी यही ख़याल है कि शायद तुमसे वह कुछ बतलायें। इसीलिए मैं तुम्हारे पास आया था, मगर अब रात ज्यादा हो गई है और इस वक्त उनकी मुलाक़ात करने की कोशिश फिजूल है। मजिस्ट्रेट की इजाज़त मिलनी मुश्किल होगी। मैं कल तुम्हें वहाँ ले चलूँगा। ईश्वर ने चाहा तो सब अच्छा ही होगा। हाय, यह क्या ? दिल को ढारस दो, घबराने की कोई बात नहीं है।''

सरला की आँखों में अश्क उमड़े हुए थे, मगर उसने ज़ब्त किया और जोतिन से हाथ मिलाते हुए बोली, ''जोतिन, तुम्हारी इन इनायतों का शुक्रिया अदा करने के लिए मेरी ज़बान में अल्फ़ाज़ नहीं हैं, मगर मैं इन्हें फरामोश (विस्मृत, भूला हुआ) नहीं कर सकती।''

सरला की आवाज फिर रुक गई। वह कैसी खुश-खुश जीने से उतरी थी। धीरेन की वापसी की उम्मीद ने उसके चेहरे को रोशन कर दिया था, मगर अब इस पर हसरती-यास (कामना व निराशा) की ज़र्दी (पीलापन) छायी हुई थी। जोतिन बाबू आहिस्ता-आहिस्ता फ़िक्रमन्द कमरे से बाहर चले गये। वह सोचते जाते थे—ग़रीब ! अभी उसे क्या खबर कि क्या बीतने वाली है। काश, वह ज़ालिम अपनी ज़बान से कुछ कह देता, मगर तब भी अजीब गोमगो (अस्पष्ट, गोल बात) का मामला है।

3

दस बज गये थे। सरला ने कुछ नहीं खाया। निवाले मुँह से बाहर निकले आते थे। वह पलंग पर गई, मगर नींद न आयी थी। मेज़ के सामने अख़बार लेकर बैठी, मगर अख़बार हाथ में था और आँखें खिड़की की तरफ़। तब वह उठकर टहलने लगी। उसका जी चाहता था कि इसी वक्त धीरेन के पास चलूँ। चलकर मजिस्ट्रेट से कहूँ कि मुझे उनसे मुलाक़ात करने दो। क्या वह इन्कार करेगा ?'' हाय ! धीरेन इस वक्त क्या करते होंगे। काश, मैं उनके पहलू में होती ! क्या वह मुझसे भी अपने दिल का हाल छिपाएँगे ? क्या इस वक्त उन्हें मेरा ख़याल होगा ?'' कभी-कभी उसका दिल झुँझला उठता और वह अपने शौहर को बेरहम ख़याल करती। क्या उन्हें ख़बर नहीं कि मैं किस कदर बेचैन हूँ ! इतने दिनों तक साथ रहने पर भी उन्हें मेरे दिल का और मेरी मुहब्बत का अन्दाजा नहीं हुआ। वह क्यों ख़ामोश हैं ? क्यों ?

टहलते-टहलते उसकी निगाह धीरेन की मेज़ पर पड़ी। खुतूत, काग़ज़ात, अख़बारात और औराक (पृष्ठ) परेशान की तरह पड़े हुए थे। सरला इज़्तिराबी (विकलता, व्याकुलता) तौर पर बैठ गई और उन्हें समेटने लगी। यकायक उसकी निगाह एक कागज के टुकड़े पर पड़ी जो मेज़ के नीचे गिरा हुआ था। उसने चाहा कि उसे उठाकर दूसरे खुतूत के साथ रख

दे, मगर उस पुर्जे पर चंद ऐसे अल्फ़ाज़ नज़र आये जो खुद-ब-खुद उसकी आँखों में चुभ गये। वे अल्फ़ाज़ थे जिनके पर्दे में उसकी परेशानियों का राज पोशीदा (भेद छिपा हुआ) था। 'मंगल के दिन चार बजे'–सरला चौंक पड़ी। उसने पुर्जे को उठा लिया। मंगल के दिन चार बजे ही का तो यह वाकया है। उसने इन अल्फ़ाज़ को फिर गौर से देखा। क्या इस पुर्जे का इस वाकियात से कोई तआल्लुक है ? क्यों, मैं न उसे पढ़ूँ, यह मुख्तसिर-सा ख़त था। अन्दाजे-तहरीर (लिखने के ढंग से) से वह मानूस (परिचित) मालूम होती थी। मगर ख़त को पढ़ूँ ? सरला बावजूद कि शौहर को दिलो-जान से चाहती थी, लेकिन अंग्रेजी तालीम के असर ने उसके दिल में यह ख़याल कायम कर दिया था कि मुझे अपने शौहर के पोशीदा खुतूत पढ़ने में कोई मजाज (अधिकार) नहीं हैं। क्या मैं इस ख़त को पढ़ लूँ तो वह मुझसे नाराज़ होंगे? यक़ीनन इससे इस मामलात पर कुछ न कुछ रोशनी पड़ेगी। इससे कोई ऐसी बात हरगिज नहीं हो सकती जो धीरेन मुझसे छिपाना चाहते हों। बिल्फर्ज (यह मानकर) इसमें कोई मुखफी (गुप्त) बात ही हो, ताहम मैं इस वक्त इसे पढ़ने की मुस्तहक (अधिकारी) हूँ। तहजीबे-जदीद (आधुनिक सभ्यता) की यह कैद ऐसे नाजुक मौक़ों पर अमल में नहीं आ सकती। क्या मुझे उनके राज़दार बनने का कोई इस्तेहकाक (अधिकार) नहीं है ? मैं साबित कर दूंगी कि मेरे दिल में भी बातें उसी तरह महफूज (सुरक्षित) रह सकती हैं, जिस तरह उनके दिल में।

उसने ख़त खोलकर देखा। यह एक मुख़्तसर (संक्षिप्त)-सा ख़त था। सरला एक निगाह में उसे पढ़ गई और उसे ऐसा मालूम हुआ, गोया मेरे बदन में जान नहीं है। वह पत्थर की मूरत की तरह बेहिस-ओ-हरकत (स्थिर) हो गई। उसकी उँगलियों के बीच में क़ागज का वह पुर्जा हवा के झोंकों से हिल रहा था और उसकी आँखें दीवार की तरफ गड़ी हुई थीं। उसका चेहरा खाक की तरह जर्द हो गया था। अज्व-ए-मफलूज (प्राणहीन, बेजान) की तरह उसके दिल-दिमाग़ इस वक्त बेकार हो गये थे। खत का मजमून भी ख़याल में नहीं आता था। वह बहुत देर तक इसी तरह खामोश खड़ी रही। यकायक उसकी निगाहों के सामने से एक पर्दा-सा हट गया और सारी कैफ़ियत नज़रों के सामने सूरत-पजीर (स्पष्ट) हो गई। उसने एक ठंडी साँस ली और कुर्सी पर गिर पड़ी। आह ! इस ख़ामोश के यह मायने हैं, इसलिए ज़बान पर मोहर लगी हुई है। ख़ैर, अब मुझे क्या करना चाहिए ? सरला सोचने लगी–बेशक, यह खत धीरेन को इस इल्जाम से बरी कर देगा जो उन पर आयद (आरोपित) है। किसी एहतमाम (प्रयत्न) की जरूरत नहीं। मैं इसे मजिस्ट्रेट के सामने रख दूँगी। जरा-सी तहक़ीक़ात में सारे वाकियात खुल पड़ेंगे और धीरेन फ़ौरन रिहा हो जाएँगे, लेकिन उसके बाद फिर कैसे निभेगी ? क्या उसके बाद भी हम एक-दूसरे की मुहब्बत कर सकेंगे ?

उसे फिर ख़याल आया, क्या यह मुमकिन है कि मैं इस राज को इस तरह तश्ते-अज़ बाम (भेद प्रकट) कर दूँ, जिनके मुखफी (बम्ब की दुर्घटना) रखने के लिए धीरेन यह सब कुछ झेलने को तैयार थे, लेकिन क्या यह मुमकिन है कि मैं ख़ामोशी अख़्तियार कर लूँ और उन्हें इस इल्जाम का खामियाजा उठाने दूँ। जिससे वह बिल्कुल पाक हैं, उन्हें बचाना मेरा फ़र्ज है। आख़िर उसके दिल ने फैसला कर लिया। वह खिड़की

की तरफ़ गई, बाहर झाँककर देखा। फिर अपने कमरे में आकर एक चादर ओढ़कर बाहर निकल पड़ी। नौकर-चाकर सब सो गये थे। गलियों में सन्नाटा छाया हुआ था। किसी ने उसे बाहर जाते नहीं देखा।

सरला क़दम बढ़ाते हुए थोड़ी देर में एक खूबसूरत मकान के सामने आकर रुकी। कमरे में लैम्प जल रहा था और एक औरत मेज़ पर बैठी हुई कुछ लिखती दिखाई देती थी। सरला को देखते ही उस औरत ने घबराकर पूछा, "सरला ! तुम यहाँ ? इतनी रात गये ! क्या मामला है ? क्या धीरेन बीमार तो नहीं हैं ?"

सरला ने मेज़ के सामने आकर कहा "क्या तुमने नहीं सुना कि धीरेन पर हादसा-ए-बम्ब (बम्ब की दुर्घटना) में शरीक होने का जुर्म आयद हुआ है ? मुखबिर का बयान है कि जिस वक्त कातिल के हाथ में बम्ब दिया गया था, उस वक्त धीरेन वहाँ मौजूद थे। यह मंगल के चार बजे दिन का वाकिया है। धीरेन का बयान है कि मुझे इन सोनहात (दुर्घटनाओं) का मुतलक (तनिक भी) इल्म नहीं और न उस वक्त मैं वहाँ था, लेकिन यह नहीं बताते कि उस वक्त थे कहाँ ? मैं तुमसे पूछती हूँ, मंगल के चार बजे शाम को वह कहाँ थे ?"

वह औरत चौंककर उठ खड़ी हुई। "मंगल के चार बजे! उस दिन तो वह....।" कुछ कहते-कहते रुक गई और बहुत मद्धिम लहजे में बोली, "क्यों, वह कुछ बताते नहीं क्या? सिवाय कचहरी के और कहाँ होंगे।"

सरला ने जवाब दिया, "नहीं, उस दिन वह अदालत में नहीं थे।" मगर जब्त हाथ से जाता रहा, उगल पड़ी, "और इस मामले में वह इसलिए ख़ामोश हैं कि शायद इजहारे-हाल (स्थिति प्रकट करना) किसी के नामे-नेक (प्रतिष्ठा) पर धब्बा न लगा दे। अब मेरे सामने ऐसी भोली न बनो। मैं सब जान गयी हूँ। हाँ, मुझे सब कुछ मालूम हो गया है। यह देखो।" यह कहकर उसने वही ख़त मेज़ पर फेंक दिया।

उस औरत ने लपककर ख़त उठा लिया और उस पर उड़ती हुई निगाह डालकर किसी कदर बवाकाना (निडर) लहजे में बोली, "मुझे किसी का ख़ौफ नहीं है। बेशक धीरेन को मुझसे मुहब्बत है। आज से नहीं, बहुत दिनों से।"

थोड़ी देर तक दोनों ख़ामोश रहीं। तब सरला ने तहक्कुमाना (अधिकारपूर्ण) अन्दाज़ से कहा, "तो उन्हें बचा क्यों नहीं लेतीं ! इस ख़त को मजिस्ट्रेट के पास भेज दो और धीरेन फौरन छूट जाएँगे।" यह कहकर वह लौट पड़ी और अपने खाना-ए-महजूं (शोकान्वित निवास) में चली आयी।

तड़का हो गया था और सरला की आँखें अभी नहीं झपकी थीं। उसे अब धीरेन की रिहाई की फिक्र न थी। उस फिक्र से अब वह आज़ाद हो गई थी, मगर जिन फिक्रों ने इस वक्त उसे घेरा था, वह उससे भी ज्यादा जाँक़न (प्राण घातक) थीं "थोड़ी देर में यहाँ आते होंगे। मुझसे मुलाक़ात होगी। क्या मैं उनसे मिल सकूँगी ? अब मैं किस दावे पर, किस बिरते पर उनसे मिलूँगी ? जब यह मैं जानती हूँ कि उन्हें मुझसे न कभी मुहब्बत थी और न है, तो मैं कौन-सा-मुँह लेकर उनके सामने जाऊँगी। जब तक मैं उल्फत का ख्वाब देख रही थी, मुझे उन पर एतबार था। मगर अब आह ! अब मेरे लिए जिन्दगी में क्या उम्मीद

है ? मेरा दिल, मेरी जान, मेरी आरज़ुएँ, मेरी ज़िन्दगी की खुशियाँ सब उनकी ज़ात से बाबिस्ता (संयुक्त, जुड़ी हुई) थीं। मुहब्बत से औरत का सुहाग कायम है, मेरा सुहाग अब कहाँ है ?''

सरला की आँखें खिड़की के बाहर सब्जा-ज़ार (हरा-भरा मैदान) की ओर लगी हुई थीं, गोया वह मुस्तक़बिल (भविष्य) के बसीअ (विस्तृत) मैदान में क़दम बढ़ाती चली जाती है। उसके दिमाग़ में अब एहसास का माद्दा न रहा था। भूख और प्यास, नींद और तकान (थकान) ये ज़रूरतें उसे बिल्कुल महसूस न होती थीं। सुस्त रफ़्तार दिन चढ़ता जाता था और सरला वहीं खिड़की के सामने उन्हीं ख़यालों में डूबी हुई थी। धीरेन की अब तक कुछ ख़बर न थी, मगर सरला को उसकी ज़्यादा तशवीश (चिंता) न थी। वह अपने शौहर को हमेशा एक हलीम और मतीन (सहनशील और दृढ़) शख़्स समझती रही। उसने बारहा उनसे उनकी बेनमकी (निर्मोहिता) और बेएतनाई (उदासीनता) की शिकायत की थी। मगर इस ख़याल से उसके दिल को तस्कीन हो गई थी कि उनकी तबीयत ऐसी मतीन वाके (सिद्ध) हुई है। वह समझती थी कि वह तब्अन् (स्वभावतः) इजहारे-जज़्बात (भावा-भिव्यक्ति) से मोतरिज (एतराज करते) रहते हैं। वह उसकी ओर से हमेशा बेतअल्लुक़-से रहते थे। कुछ परवा नहीं थी कि वह कहाँ जाती है, कैसे रहती है, किन चीज़ों का शौक़ है। ऐसा शाज़ (कभी) ही कभी इत्तफ़ाक़ हुआ था कि वह दुर्गा-पूजा के दिन सरला के लिए कोई तोहफ़ा लाये हैं। सरला समझती थी कि मुक़द्दमात की मसरूफ़ियत इन बेएतनाइयों (उदासीनताओं) का बाइस (कारण) है। उसे यक़ीन था कि गो ज़ाहिर न सही मगर दिल से वह मेरी मुहब्बत करते हैं। मगर अब इन सर्द-मेहरियों (निर्दयताओं) का राज समझ में आ गया। वह अब दूसरी औरत के दामे-मुहब्बत (प्रेम-पाश) में गिरफ़्तार हैं। जब मुहब्बत का रिश्ता न रहा तो तमद्दनी रिश्ता (सभ्यता का संबंध) किस काम का। मगर बावजूद इन सर्द मेहरियों के वह शौहर की मुहब्बत में मख़मूर (मतवाली) थी। उसने उन्हें अपने दिल में जगह दे दी थी और अब किसी तरह हटा नहीं सकती थी, ख्वाह वह मुहब्बत उसके लिए सोहाने-रूह (आत्मा को काटने वाली) ही क्यों न हो। बेशक यह ख़यालात हसद (ईर्ष्या) और जलन के सबब से पैदा हुए थे, मगर हसद की तेज़ी और जाँकाही (हृदय-द्रावकता) मुहब्बत की कसौटी है।

बहुत देर तक सोचने के बाद सरला इस नतीजे पर पहुँची—''मैं अब इनका दामन छोड़ दूँगी। इसके सिवा मेरे लिए अब और कोई तदबीर नहीं है। मैंने अब तक नादानिस्ता (अनजाने में) उन्हें क़ैदे-ज़ब्र (बलपूर्वक बन्धन में रखना) में रखा है। अब मैं उन्हें छोड़ दूँगी। उनका गला छूट जायेगा। उनकी ज़िन्दगी आराम से गुज़रेगी। ईश्वर करे वह हमेशा खुश रहें, सरसब्ज़ (प्रसन्न एवं सन्तुष्ट) हों। उन्हें खुश देखकर मैं भी खुश हो लिया करूँगी।''

इन्हीं ख़यालत में दस बज गये। सरला अब तक वहीं बैठी हुई थी। यकायक एक गाड़ी की आवाज उसके कानों में आयी। उसने खिड़की से झाँककर देखा, धीरेन बैठे हुए थे। सरला का कलेजा धड़कने लगा, मगर वह बेजान लावा की तरह बैठी रही। ज़ीने पर क़दमों की आवाज सुनाई दी और ज़रा देर में धीरेन कमरे में दाख़िल हुए। सरला अब भी कुछ न बोली। उसे अल्फ़ाज़ ही न मिले। धीरेन ने उसके पास आकर आगोशे-मुहब्बत

(प्रेमालिंगन) में लेना चाहा और बोले, "क्यों सरला, तुम मेरी ख़ातिर बहुत परेशान थीं।"

सरला ने मुँह फेर लिया और हट गई। धीरेन ने कुछ ख़याल न किया। कहने लगे, "पुलिस वालों ने कैसी हिमाक़त की ! खैर, जो कुछ हुआ, वह हुआ। किसी तरह खाना-ए-आफ़ियत (चैन की जगह) में तो पहुँचे। रात भर मुसीबत में मुब्तिला (फंसे) रहा।"

सरला ख़ामोश उनके चेहरे की तरफ़ ताकती रही। कैसी मक्र (धोखे) की बातें हैं। धीरेन के बर्ताब में कोई फ़र्क न था। वही बेतकल्लुफी, वही आज़ादी गोया कुछ हुआ ही नहीं। सरला ज्यादा मुतहम्मिल (सहनशील) न हो सकी। तरूश (कठोर) लहजे में बोली, "तुम यहाँ क्यों आये हो ?"

धीरेन ने तआज्जुब-आमेज (आश्चर्यजनक) लहजे में कहा, "सरला, यह कैसी बातें करती हो। अपने घर के सिवा और कहाँ जाता। तुम मेरे आने से खुश नहीं मालूम होती हो। क्यों, क्या बात हुई ?"

सरला, "अभी उनसे मुलाक़ात की या नहीं ?"

धीरेन, "किससे ? तुम्हारा मतलब मैं नहीं समझा।"

सरला, "धीरेन, अब यह तजाहुल (जानकर अनजान बनना) मत जताओ। अब हीला-साजियों (चालाकियाँ) का मौक़ा नहीं है। बेहतर है कि हममें सफाई के साथ गुफ़्तगू हो जाये। मुझ पर तुम्हारी सारी बातें रोशन हो गयी हैं। एक ख़त मेरी नजर से गुजर चुका है, जो मुझे मेज़ के नीचे गिरा हुआ मिला। यह ख़त मैंने तुम्हारी माशूका को दिखाया और ग़ालिबन उसने उसे मजिस्ट्रेट के यहाँ पेश कर दिया। इसलिए अब मुझसे दग़ल-फसल (छल-कपट) करने की ज़रूरत नहीं। मैं तुम्हारी खुशी में मुखिल (बाधक) नहीं होना चाहती। मैं तुम्हें शौक़ से लुत्फ़े-ज़िन्दगी (जीवन-सुख) उठाने के लिए आज़ादी देती हूँ। मुझे अफ़सोस है कि यह बातें मुझे और पहले क्यों न मालूम हो गई वरना तुम्हें इतने अरसे तक क़ैदे बेजा (अनुचित बन्धन) में न रहना पड़ता।"

धीरेन बगलें झाँकने लगा। आख़िर राज़ तशत-अज़-बाम (भेद खुलना) हो गया। मैंने क्या हिमाक़त की कि जो ख़त को चाक न कर दिया। उसने वह ख़त मजिस्ट्रेट के यहाँ देखा था और हाफिजे (स्मरण-शक्ति) पर बार-बार ज़ोर डालता था कि क्यों कर यहाँ पहुँचा। मगर याद ने कुछ काम न दिया। अब हक़ीक़त मालूम हुई और वह अपने ऊपर झुँझलाया, मगर सरला की खुशामद करने लगा, "मेरी जान ! मैं सख़्त नादिम (लज्जित) हूँ, वाकई मुझे सख़्त नदामत (लज्जा) है, मगर क्या तुम मेरी इस खता को मुआफ़ नहीं कर सकतीं ? अगर किसी के कान में इसकी ज़रा भी भनक पड़ गई तो मेरी खैर नहीं। अभी तक यह भेद छिपा हुआ है। मजिस्ट्रेट बड़ा दाना सख्स (बुद्धिमान व्यक्ति) है। उसने खत को देखकर मुझे तो रिहा कर दिया, मगर उसे अदालत में पेश नहीं किया। अभी तक यह राज़ सरबस्ता (गुप्त) है, मगर तुम खूब जानती हो कि लोगों को ऐसी बातों की क्यों कर तलाश रहती है। पब्लिक को दूसरों की रुसवाई और बदनामी में मज़ा आता है। मेरी ख़ातिर से तुम इस तज़किरे (चर्चा) को ज़बान पर न लाओ। ग़ल्तियाँ इन्सान से होती हैं। अगर तुम इसी में खुश हो तो हल्फ़िया कहता हूँ कि अब कभी उसके दरवाजे पर न जाऊँगा।"

सरला, "क्यों तुम उस पर आशिक़ नहीं हो ? उसकी आबरू के ख़ौफ से तुम कैद और जलावतनी (देश-निकाला) झेलने पर आमदा थे और अब तुम कहते हो मैं उसके दरवाजे पर न जाऊँगा। क्या इतनी जल्द दिल से नक्शे-मुहब्बत मिट गया! इन फ़रेब की बातों से कुछ हासिल नहीं। तुम शौक़ से ख़ुशियाँ मनाओ, मैं ज़रा भी मुखिल (बाधक) न हूँगी। हसद का काँटा बनकर किसी के पहलू में खटकना नहीं चाहती।"

धीरेन कुर्सी पर बैठ गये और गमनाक (शोकपूर्ण) लहजे में बोले, "सरला, ऐसी बातें बिल्कुल बेमौके और बेज़रूरत हैं। जब तुम देखती हो कि मैं हद दर्जे नादिम और पशेमान (लज्जित और पश्चातापपूर्ण) हूँ और वायदा करता हूँ कि अब उससे कोई सरोकार नहीं रखूँगा तो तुम्हें ऐसी बातें करके मेरा दिल नहीं दुखाना चाहिए। क्या तुम नहीं जानतीं कि इन बातों को पोशीदा रखने के लिए मैं किस हद तक नुक्सानात उठाने के लिए तैयार था? अगर्चे मेरे खिलाफ़ कोई सबूत नहीं था मगर मुझे जलावतन होना गवारा था, बजाय इसके कि मंगल के दिन अपने हरकात (कार्यों) का पता दूँ। अब तक तरह-तरह की अफ़वाहें उड़ती होतीं। यक़ीन मानो, इस रुसवाई के मुक़ाबले में मैं जलावतन होना बेहतर समझता हूँ।"

सरला, "अगर, राहे-मुहब्बत में कदम रक्खा है तो रुसवाई का क्या ख़ौफ ? अगर तुम्हारी मुहब्बत सच्ची है तो तुम्हें सोसाइटी का इस क़दर ख़ौफ न करना चाहिए।"

धीरेन, "कैसी बातें करती हो, सरला ! सोसाइटी का खौफ़ खुदा के खौफ़ से भी ज्यादा है। अगर तुमने यह रविश (ढंग) अख़्तियार की तो मेरी इज्ज़त खाक़ में मिला दोगी और मेरा मुस्तकबिल (भविष्य) स्याह (अन्धकारपूर्ण) हो जायेगा। मैं सोसाइटी की निगाहों में ज़लील हो जाऊँगा। सरला, तुम इस वक़्त गुस्से में हो, मगर जब तुम्हारी तबीयत ठंडी होगी, गुस्सा फरो (शान्त) हो जायेगा और तुम इस मसले पर गौर करोगी तो यक़ीनन मेरी यह ख़ता माफ़ कर दोगी। ऐसी वहुत कम औरतें होंगी जिन्हें अपनी ज़िन्दगी में ऐसी गुत्थियाँ न सुलझानी पड़ती हों। मैं मुबालगा (अतिशयोक्ति) नहीं करता हूँ, सोसाइटी में ऐसी बातें आए दिन हुआ करती हैं, मगर पर्दे के अन्दर। मैं दूसरे का शैदा नहीं, क्या तुम्हें भी मेरी मुहब्बत नहीं। उसी मुहब्बत के सदके, तुम इन बातों को भूल जाओ। मैं पुख़्ता वायदा करता हूँ कि अब फिर ऐसा मौक़ा कभी न आएगा।"

यह कहकर धीरेन बाहर चले गये और सरला वहीं ख़ामोश बैठी सोचती रही—"सोसाइटी का शीराज़ा (व्यवस्था) ऐसे कच्चे धागे से बँधा हुआ है।"

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में, 'अदीब' (उर्दू मासिक पत्रिका) अगस्त-सितम्बर, 1911 में प्रकाशित। हिन्दी रूप 'सोलह अप्राप्य कहानियां' और 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित।]

गरीब की हाय

मुंशी रामसेवक भौंहें चढ़ाये हुए घर से निकले और बोले—इस जीने से तो मरना भला है। मृत्यु को प्रायः इस तरह के जितने निमंत्रण दिये जाते हैं, यदि वह सबको स्वीकार करती

तो आज सारा संसार उजाड़ दिखायी देता।

मुंशी रामसेवक चाँदपुर गाँव के एक बड़े रईस थे। रईसों के सभी गुण इनमें भरपूर थे। मानव चरित्र की दुर्बलतायें उनके जीवन का आधार थीं। वह नित्य मुंसिफी कचहरी के हाते में एक नीम के पेड़ के नीचे कागजों का बस्ता खोले एक टूटी-सी चौकी पर बैठे दिखायी देते थे। किसी ने कभी उन्हें किसी इजलास पर कानूनी बहस या मुकदमे की पैरवी करते नहीं देखा। परन्तु उन्हें सब लोग मुख्तार साहब कह कर पुकारते थे। चाहे तूफान आये, पानी बरसे, ओले गिरें, पर मुख्तार साहब वहाँ से टस से मस न होते। जब वह कचहरी चलते तो देहातियों के झुंड के झुंड उनके साथ हो लेते। चारों ओर से उन पर विश्वास और आदर की दृष्टि पड़ती। सब में प्रसिद्ध था कि उनकी जीभ पर सरस्वती विराजती है। इसे वकालत कहो, या मुख्तारी, परंतु यह केवल कुल-मर्यादा की प्रतिष्ठा का पालन था। आमदनी अधिक न होती थी। चाँदी के सिक्कों की तो चर्चा ही क्या; कभी-कभी ताँबे के सिक्के भी निर्भय उनके पास आने में हिचकते थे। मुंशी जी की कानूनदानी में कोई संदेह न था। परंतु पास के बखेड़े ने उन्हें विवश कर दिया था। खैर जो हो, उनका यह पेशा केवल प्रतिष्ठा-पालन के निमित्त था। नहीं तो उनके निर्वाह का मुख्य साधन आस-पास की अनाथ पर खाने-पीने में सुखी विधवाओं और भोले-भाले किंतु धनी वृद्धों की श्रद्धा थी। विधवाएँ अपना रुपया उनके यहाँ अमानत रखतीं। बूढ़े अपने कपूतों के डर से अपना धन उन्हें सौंप देते। पर रुपया एक बार मुट्ठी में जा कर फिर निकलना भूल जाता था। वह जरूरत पड़ने पर कभी-कभी कर्ज ले लेते थे। भला बिना कर्ज लिये किसी का काम चल सकता है ? भोर को साँझ के करार पर रुपया लेते, पर साँझ कभी नहीं आती थी। सारांश, मुंशी जी कर्ज ले कर देना सीखे नहीं थे। यह उनकी कुल प्रथा थी। यही सब मामले बहुधा मुंशी जी के सुख-चैन में विघ्न डालते थे। कानून और अदालत का तो उन्हें कोई डर न था। इस मैदान में उनका सामना करना पानी में मगर से लड़ना था। परंतु जब कोई दुष्ट उनसे भिड़ जाता, उनकी ईमानदारी पर संदेह करता और उनके मुँह पर बुरा-भला कहने पर उतारू हो जाता, तब मुंशी जी के हृदय पर बड़ी चोट लगती। इस प्रकार की दुर्घटनाएँ प्रायः होती रहती थीं। हर जगह ऐसे ओछे रहते हैं, जिन्हें दूसरों को नीचा दिखाने में आनन्द आता है। ऐसे ही लोगों का सहारा पाकर कभी-कभी छोटे आदमी मुंशी जी के मुँह लग जाते थे। नहीं तो, कुंजड़िन की इतनी मजाल नहीं थी कि उनके आँगन में जाकर उन्हें भला-बुरा कहे। मुंशी जी उसके पुराने गाहक थे, बरसों तक उससे साग-भाजी ली थी। यदि दाम न दिया तो कुंजड़िन को संतोष करना चाहिए था। दाम जल्दी या देर से मिल ही जाता। परंतु वह मुँहफट कुंजड़िन दो ही बरसों में घबरा गयी, और उसने कुछ आने-पैसों के लिए एक प्रतिष्ठित आदमी का पानी उतार लिया। झुँझला कर मुंशी जी अपने को मृत्यु का कलेवा बनाने पर उतारू हो गये तो इसमें उनका कुछ दोष न था।

2

इसी गाँव में मूँगा नाम की एक विधवा ब्राह्मणी रहती थी। उसका पति बर्मा की काली

पलटन में हवलदार था और लड़ाई में वहीं मारा गया। सरकार की ओर से उसके अच्छे कामों के बदले मूँगा को पाँच सौ रुपये मिले थे। विधवा स्त्री, जमाना नाजुक था, बेचारी ने ये सब रुपये मुंशी रामसेवक को सौंप दिये, और महीने-महीने थोड़ा-थोड़ा उसमें से माँग कर अपना निर्वाह करती रही।

मुंशी जी ने यह कर्तव्य कई वर्ष तक तो बड़ी ईमानदारी के साथ पूरा किया। पर जब बूढ़ी होने पर मूँगा नहीं मरी और मुंशी जी को यह चिंता हुई कि शायद उसमें से आधी रकम भी स्वर्ग-यात्रा के लिए नहीं छोड़ना चाहती, तो एक दिन उन्होंने कहा—मूँगा ! तुम्हें मरना है या नहीं ! साफ-साफ कह दो कि मैं ही अपने मरने की फिक्र करूँ। उस दिन मूँगा की आँखें खुलीं, उसकी नींद टूटी, बोली—मेरा हिसाब कर दो। हिसाब का चिट्ठा तैयार था। अमानत में अब एक कौड़ी बाकी न थी। मूँगा ने बड़ी कड़ाई से मुंशी जी का हाथ पकड़ लिया और कहा—अभी मेरे ढाई सौ रुपये तुमने दबा रखे हैं। मैं एक कौड़ी भी न छोडूँगी।

परंतु अनाथों का क्रोध पटाखे की आवाज़ है, जिससे बच्चे डर जाते हैं और असर कुछ नहीं होता। अदालत में उसका कुछ जोर न था। न लिखा-पढ़ी थी, न हिसाब-किताब। हाँ, पंचायत से कुछ आसरा था। पंचायत बैठी। कई गाँव के लोग इकट्ठे हुए। मुंशी जी नीयत और मामले के साफ थे ! सभा में खड़े होकर पंचों से कहा—

भाइयो ! आप सब लोग सत्यपरायण और कुलीन हैं। मैं आप सब साहबों का दास हूँ। आप सब साहबों की उदारता और कृपा से, दया और प्रेम से, मेरा रोम-रोम कृतज्ञ है। क्या आप लोग सोचते हैं कि मैं इस अनाथिनी और विधवा स्त्री के रुपये हड़प कर गया हूँ?

पंचों ने एक स्वर में कहा—नहीं, नहीं ! आपसे ऐसा नहीं हो सकता।

रामसेवक—यदि आप सब सज्जनों का विचार हो कि मैंने रुपये दबा लिये, तो मेरे लिए डूब मरने के सिवा और कोई उपाय नहीं। मैं धनाढ्य नहीं हूँ, न मुझे उदार होने का घमंड है। पर अपनी कलम की कृपा से, आप लोगों की कृपा से किसी का मुहताज नहीं हूँ। क्या मैं ऐसा ओछा हो जाऊँगा कि एक अनाथिनी के रुपये पचा लूँ?

पंचों ने एक स्वर से फिर कहा—नहीं-नहीं, आप से ऐसा नहीं हो सकता। मुँह देख कर टीका काढ़ा जाता है। पंचों ने मुंशी जी को छोड़ दिया। पंचायत उठ गयी। मूँगा ने आह भर कर संतोष किया और मन में कहा—अच्छा ! यहाँ न मिला तो न सही, वहाँ कहाँ जायगा।

3

अब कोई मूँगा का दुःख सुनने वाला और सहायक न था। दरिद्रता से जो कुछ दुःख भोगने पड़ते हैं, वह उसे झेलने पड़े। वह सब शरीर से पुष्ट थी, चाहती तो परिश्रम कर सकती थी। पर जिस दिन पंचायत पूरी हुई, उसी दिन से उसने काम करने की कसम खा ली। अब उसे रात-दिन रुपये की रट लगी रहती। उठते-बैठते, सोते-जागते उसे केवल एक काम था, और वह मुंशी रामसेवक का भला मनाना। झोंपड़े के दरवाजे पर बैठी हुई रात-दिन, उन्हें सच्चे मन से असीसा करती। बहुधा अपनी असीस के वाक्यों में ऐसे कविता के भाव और उपमाओं का व्यवहार करती कि लोग सुन कर अचम्भे में आ जाते।

धीरे-धीरे मूँगा पगली हो चली। नंगे सिर, नंगे शरीर, हाथ में एक कुल्हाड़ी लिये हुए सुनसान स्थानों में जा बैठती। झोंपड़े के बदले अब वह मरघट पर नदी के किनारे खंडहरों में घूमती दिखायी देती। बिखरी हुई लटें, लाल-लाल आँखें, पागलों-सा चेहरा, सूखे हुए हाथ-पाँव। उसका यह स्वरूप देख कर लोग डर जाते थे। अब कोई उसे हँसी में भी नहीं छेड़ता। यदि वह कभी गाँव में निकल आती तो स्त्रियाँ घरों के किवाड़ बंद कर लेतीं। पुरुष कतरा कर इधर-उधर से निकल जाते और बच्चे चीख मार कर भागते। यदि कोई लड़का भागता न था तो वह मुंशी रामसेवक का सुपुत्र रामगुलाम था। बाप में जो कुछ कोर कसर रह गयी थी, वह बेटे में पूरी हो गयी थी। लड़कों का उसके मारे नाक में दम था। गाँव के काने और लँगड़े आदमी उसकी सूरत से चिढ़ते थे। और गालियाँ खाने में तो शायद ससुराल में आनेवाले दामाद को भी इतना आनंद न आता हो। वह मूँगा के पीछे तालियाँ बजाता, कुत्तों को साथ लिये हुए उस समय तक रहता जब तक वह बेचारी तंग आ कर गाँव से निकल न जाती। रुपया-पैसा, होश-हवास खो कर उसे पगली की पदवी मिली। और अब बस सचमुच पगली थी। अकेली बैठी अपने आप घंटों बातें किया करती जिसमें रामसेवक के मांस, हड्डी, चमड़े, आँखें, कलेजा आदि को खाने, मसलने, नोचने-खसोटने की बड़ी उत्कट इच्छा प्रकट की जाती थी और जब उसकी यह इच्छा सीमा तक पहुँच जाती तो वह रामसेवक के घर की ओर मुँह करके खूब चिल्ला कर और डरावने शब्दों में हाँक लगाती—तेरा लहू पीऊँगी।

प्रायः रात के सन्नाटे में यह गरजती हुई आवाज सुन कर स्त्रियाँ चौंक पड़ती थीं। परंतु इस आवाज से भयानक उसका ठठा कर हँसना था। मुंशी जी के लहू पीने की कल्पित खुशी में वह ज़ोर से हँसा करती थी। इस ठठाने से ऐसी आसुरिक उद्दंडता, ऐसी पाशविक उग्रता टपकती थी कि रात को सुन कर लोगों का खून ठंडा हो जाता था। मालूम होता, मानों सैकड़ों उल्लू एक साथ हँस रहे हैं। मुंशी रामसेवक बड़े हौसले और कलेजे के आदमी थे। न उन्हें दीवानी का डर था, न फौजदारी का, परन्तु मूँगा के इन डरावने शब्दों को सुन वह भी सहम जाते। हमें मनुष्य के न्याय का डर न हो, परन्तु ईश्वर के न्याय का डर प्रत्येक मनुष्य के मन में स्वभाव से रहता है। मूँगा का भयानक रात का घूमना रामसेवक के मन में कभी-कभी ऐसी ही भावना उत्पन्न कर देता—उनसे अधिक उनकी स्त्री के मन में। उनकी स्त्री बड़ी चतुर थी। वह इनको इन सब बातों में प्रायः सलाह दिया करती थी। उन लोगों की भूल थी, जो लोग कहते थे कि मुंशी जी की जीभ पर सरस्वती विराजती हैं। वह गुण तो उनकी स्त्री को प्राप्त था। बोलने में वह इतनी ही तेज थी जितना मुंशी लिखने में थे। और यह दोनों स्त्री-पुरुष प्रायः अपनी अवश दशा में सलाह करते कि अब क्या करना चाहिए।

आधी रात का समय था। मुंशी जी नित्य नियम के अनुसार अपनी चिंता दूर करने के लिए शराब के दो-चार घूँट पी कर सो गये थे। यकायक मूँगा ने उनके दरवाजे पर आ कर जोर से हाँक लगायी, 'तेरा लहू पीऊँगी' और खूब खिल-खिला कर हँसी।

मुंशी जी यह भयानक ठहाका सुन कर चौंक पड़े। डर के मारे पैर थर-थर काँपने लगे। कलेजा धक्-धक् करने लगा। दिल पर बहुत जोर डाल कर उन्होंने दरवाजा खोला,

जा कर नागिन को जगाया। नागिन ने झुँझला कर कहा—क्या कहते हो ? मुंशी जी ने दबी आवाज़ से कहा—वह दरवाजे पर आकर खड़ी है।

नागिन उठ बैठी—क्या कहती है ?

'तुम्हारा सिर।'

'क्या दरवाजे पर आ गयी ?'

'हाँ, आवाज़ नहीं सुनती हो।'

नागिन मूँगा से नहीं, परंतु उसके ध्यान से बहुत डरती थी, तो भी उसे विश्वास था कि मैं बोलने में उसे जरूर नीचा दिखा सकती हूँ। सँभल कर बोली—कहो तो मैं उससे दो-दो बातें कर लूँ। परंतु मुंशी जी ने मना किया।

दोनों आदमी पैर दबाये हुए ड्योढ़ी में गये और दरवाजे से झाँक कर देखा, मूँगा की धुँधली मूरत धरती पर पड़ी थी और उसकी साँस तेज़ी से चलती सुनायी देती थी। रामसेवक के लहू और मांस की भूख से वह अपना लहू और मांस सुखा चुकी थी। एक बच्चा भी उसे गिरा सकता था; परंतु उससे सारा गाँव थर-थर काँपता। हम जीते मनुष्य से नहीं डरते, पर मुरदे से डरते हैं। रात गुजरी । दरवाजा बंद था; पर मुंशी जी और नागिन ने बैठ कर रात काटी। मूँगा भीतर नहीं घुस सकती थी, पर उसकी आवाज़ को कौन रोक सकता था। मूँगा से अधिक डरावनी उसकी आवाज़ थी।

भोर को मुंशी जी बाहर निकले और मूँगा से बोले—यहाँ क्यों पड़ी है।

मूँगा बोली—तेरा लहू पीऊँगी।

नागिन ने बल खा कर कहा—तेरा मुँह झुलस दूँगी।

पर नागिन के विष ने मूँगा पर कुछ असर न किया। उसने ज़ोर से ठहाका लगाया, नागिन खिसियानी-सी हो गयी। हँसी के सामने मुँह बंद हो जाता है। मुंशी जी फिर बोले—यहाँ से उठ जा।

'न उठूँगी।'

'कब तक पड़ी रहेगी ?'

'तेरा लहू पी कर जाऊँगी।'

मुंशी जी की प्रखर लेखनी का यहाँ कुछ ज़ोर न चला और नागिन की आग भरी बातें यहाँ सर्द हो गयीं। दोनों घर में जा कर सलाह करने लगे, यह बला कैसे टलेगी। इस आपत्ति से कैसे छुटकारा होगा।

देवी आती है तो बकरे का खून पीकर चली जाती है; पर यह डाइन मनुष्य का खून पीने आयी है। वह खून, जिसकी अगर एक बूँद भी कलम बनाने के समय निकल पड़ती थी, तो अठवारों और महीनों सारे कुनबे को अफ़सोस रहता, और यह घटना गाँव में घर-घर फैल जाती थी। क्या यही लहू पी कर मूँगा का सूखा शरीर हरा हो जायगा।

गाँव में यह चर्चा फैल गयी, मूँगा मुंशी जी के दरवाजे पर धरना दिये बैठी है। मुंशी जी के अपमान में गाँववालों को बड़ा मज़ा आता था। देखते-देखते सैकड़ों आदमियों की भीड़ लग गयी। इस दरवाजे पर कभी-कभी भीड़ लगी रहती थी। यह भीड़ रामगुलाम को पसंद न थी। मूँगा पर उसे ऐसा क्रोध आ रहा था कि यदि उसका बस

चलता तो वह उसे कुएँ में ढकेल देता। इस तरह का विचार उठते ही रामगुलाम के मन में गुदगुदी समा गयी, और वह बड़ी कठिनता से अपनी हँसी रोक सका! अहा! वह कुएँ में गिरती तो क्या मजे की बात होती। परंतु यह चुड़ैल यहाँ से टलती ही नहीं, क्या करूँ ? मुंशी जी के घर में एक गाय थी, जिसे खली, दाना और भूसा तो खूब खिलाया जाता; पर वह सब उसकी हड्डियों में मिल जाता, उसका ढाँचा पुष्ट होता जाता था। रामगुलाम ने उसी गाय का गोबर एक हाँड़ी में घोला और सब का सब बेचारी मूँगा पर उँड़ेल दिया। उसके थोड़े बहुत छींटे दर्शकों पर भी डाल दिये। बेचारी मूँगा लदफद हो गयी और लोग भाग खड़े हुए। कहने लगे, यह मुंशी रामगुलाम का दरवाजा है। यहाँ इसी प्रकार का शिष्टाचार किया जाता है। जल्द भाग चलो। नहीं तो अबके इससे भी बढ़कर खातिर की जायगी। इधर भीड़ कम हुई, उधर रामगुलाम घर में जा कर खूब हँसा और तालियाँ बजायीं। मुंशी जी ने इस व्यर्थ की भीड़ को ऐसे सहज में और ऐसे सुंदर रूप से हटा देने के उपाय पर अपने सुशील लड़के की पीठ ठोंकी। सब लोग तो चम्पत हो गये, पर बेचारी मूँगा ज्यों की त्यों बैठी रह गयी।

दोपहर हुई। मूँगा ने कुछ नहीं खाया। साँझ हुई। हजार कहने-सुनने से भी उसने खाना नहीं खाया। गाँव के चौधरी ने बड़ी खुशामद की। यहाँ तक कि मुंशी जी ने हाथ तक जोड़े, पर देवी प्रसन्न न हुई। निदान मुंशी जी उठ कर भीतर चले गये। वह कहते थे कि रूठनेवाले को भूख आप ही मना लिया करती है। मूँगा ने यह रात भी बिना दाना-पानी के काट दी। लाला जी और ललाइन ने आज फिर जाग-जाग कर भोर किया। आज मूँगा की गरज और हँसी बहुत कम सुनायी पड़ती थी। घरवालों ने समझा, बला टली। सबेरा होते ही जो दरवाजा खोल कर देखा, तो वह अचेत पड़ी थी, मुँह पर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं और उसके प्राणपखेरू उड़ चुके हैं। वह इस दरवाजे पर मरने ही आयी थी। जिसने उसके जीवन की जमा-पूँजी हर ली थी, उसी को अपनी जान भी सौंप दी। अपने शरीर की मिट्टी तक उसकी भेंट कर दी। धन से मनुष्य को कितना प्रेम होता है। धन अपनी जान से भी ज्यादा प्यारा होता है। विशेष कर बुढ़ापे में। ऋण चुकाने के दिन ज्यों-ज्यों पास आते-जाते हैं, त्यों-त्यों उसका ब्याज बढ़ता जाता है।

यह कहना यहाँ व्यर्थ है कि गाँव में इस घटना से कैसी हलचल मची और मुंशी रामसेवक कैसे अपमानित हुए ! एक छोटे-से गाँव में ऐसी असाधारण घटना होने पर कितनी हलचल हो सकती उससे अधिक ही हुई। मुंशी जी का अपमान जितना होना चाहिए था, उससे बाल बराबर भी कम न हुआ। उनका बचा-खुचा पानी भी इस घटना से चला गया। अब गाँव का चमार भी उनके हाथ का पानी पीने या उन्हें छूने का रवादार न था। यदि किसी घर में कोई गाय खूँटे पर मर जाती है तो वह आदमी महीनों द्वार-द्वार भीख माँगता फिरता है। न नाई उसकी हजामत बनावे, न कहार उसका पानी भरे, न कोई उसे छूए। यह गोहत्या का प्रायश्चित्त ! ब्रह्महत्या का दंड तो इससे भी कड़ा है और इसमें अपमान भी बहुत है। मूँगा यह जानती थी और इसीलिए इस दरवाजे पर आ कर मरी थी। वह जानती थी कि मैं जीते जी जो कुछ नहीं कर सकती, मर कर उससे बहुत कुछ कर सकती हूँ। गोबर का उपला जब जल कर खाक हो जाता है, तब साधु-संत उसे माथे पर

चढ़ाते हैं। पत्थर का ढेला आग में जल कर आग से अधिक तीखा और मारक हो जाता है।

4

मुंशी रामसेवक कानूनदाँ थे। कानून ने उन पर कोई दोष नहीं लगाया था। मूँगा किसी कानूनी दफ़ा के अनुसार नहीं मरी थी। ताज़ीरात हिंद में उसका कोई उदाहरण नहीं मिलता था। इसलिए जो लोग उनसे प्रायश्चित्त करवाना चाहते थे, उनकी भारी भूल थी। कुछ हर्ज नहीं, कहार पानी न भरे न सही, वह आप पानी भर लेंगे। अपना काम आप करने में भला लाज ही क्या ? बजा से नाई बाल न बनावेगा। हज़ामत बनाने का काम ही क्या है ? दाढ़ी बहुत सुन्दर वस्तु है। दाढ़ी मर्द की शोभा और सिंगार है। और जो फिर बालों से ऐसी घिन होगी तो एक-एक आने में तो अस्तुरे मिलते हैं। धोबी कपड़ा न धोवेगा, इसकी भी कुछ परवाह नहीं। साबुन तो गली-गली कौड़ियों के मोल आता है। एक बट्टी साबुन में दर्जनों कपड़े ऐसे साफ हो जाते हैं जैसे बगुले के पर। धोबी क्या खा कर ऐसा साफ कपड़ा धोवेगा? पत्थर पर पटक-पटक कर कपड़ों का लत्ता निकाल लेता है। आप पहने, दूसरे को भाड़े पर पहनाये, भट्टी में चढ़ावे; रेह में भिगावे—कपड़ों की तो दुर्गत कर डालता है। जभी तो कुरते दो-तीन साल से अधिक नहीं चलते। नहीं तो दादा हर पाँचवें बरस दो अचकन और दो कुरते बनवाया करते थे। मुंशी रामसेवक और उनकी स्त्री ने दिन भर तो यों ही कहकर अपने मन को समझाया। साँझ होते ही उनकी तर्कनाएँ शिथिल हो गयीं।

अब उनके मन पर भय ने चढ़ाई की। जैसे-जैसे रात बीतती थी, भय भी बढ़ता जाता था। बाहर का दरवाजा भूल से खुला रह गया था, पर किसी की हिम्मत न पड़ती थी कि जा कर बन्द तो कर आये। निदान नागिन ने हाथ में दीया लिया, मुंशीजी ने कुल्हाड़ा, रामगुलाम ने गँड़ासा, इस ढंग से तीनों चौंकते-हिचकते दरवाजे पर आये। यहाँ मुंशी जी ने बड़ी बहादुरी से काम लिया। उन्होंने निधड़क दरवाजे से बाहर निकलने की कोशिश की। काँपते हुए, पर ऊँची आवाज में नागिन से बोले—तुम व्यर्थ डरती हो, वह क्या यहाँ बैठी है? पर उनकी प्यारी नागिन ने उन्हें अन्दर खींच लिया और झुँझला कर बोली—तुम्हारा यही लड़कपन तो अच्छा नहीं। यह दंगल जीत कर तीनों आदमी रसोई के कमरे में आये और खाना पकने लगा।

परन्तु मूँगा उनकी आँखों में घुसी हुई थी। अपनी परछाई को देख कर मूँगा का भय होता था। अँधेरे कोनों में बैठी मालूम होती थी। वही हड्डियों का ढाँचा, वही बिखरे बाल, वही पागलपन, वही डरावनी आँखें, मूँगा का नखशिख दिखायी देता था। इसी कोठरी में आटे-दाल के कई मटके रखे हुए थे, वहीं कुछ पुराने चिथड़े भी पड़े हुए थे। एक चूहे को भूख ने बेचैन किया (मटकों ने कभी अनाज की सूरत नहीं देखी थी, पर सारे गाँव में मशहूर था कि इस घर के चूहे गजब के डाकू हैं) तो वह उन दानों की खोज में जो मटकों से कभी नहीं गिरे थे, रेंगता हुआ इस चिथड़े के नीचे आ निकला। कपड़े में खड़खड़ाहट हुई। फैले हुए चिथड़े मूँगा की पतली टाँगें बन गयीं, नागिन देख कर झिझकी और चीख उठी। मुंशी जी बदहवास होकर दरवाजे की ओर लपके, रामगुलाम दौड़ कर उनकी टाँगों से लिपट गया। चूहा बाहर निकल आया। उसे देख कर इन लोगों के होश ठिकाने हुए। अब मुंशी

जी साहस करके मटके की ओर चले। नागिन ने कहा—रहने भी दो, देख ली तुम्हारी मरदानगी।

मुंशी जी अपनी प्रिया नागिन के इस अनादर पर बहुत बिगड़े—क्या तुम समझती हो मैं डर गया ? भला डर की क्या बात थी। मूँगा मर गयी। क्या वह बैठी है ? मैं कल नहीं दरवाजे के बाहर निकल गया था—तुम रोकती रहीं, मैं न माना।

मुंशी जी की इस दलील ने नागिन को निरुत्तर कर दिया। कल दरवाजे के बाहर निकल जाना या निकलने की कोशिश करना साधारण काम न था। जिसके साहस का ऐसा प्रमाण मिल चुका है, उसे डरपोक कौन कह सकता है ? यह नागिन की हठधर्मी थी।

खाना खा कर तीनों आदमी सोने के कमरे में आये; परन्तु मूँगा ने यहाँ भी पीछा न छोड़ा; बातें करते थे, दिल को बहलाते थे। नागिन ने राजा हरदौल और रानी सारंधा की कहानियाँ कहीं। मुंशी जी ने फौजदारी के कई मुकदमों का हाल कह सुनाया। परन्तु तो भी इन उपायों से भी मूँगा की मूर्ति उनकी आँखों के सामने से न हटती थी। ज़रा भी खटखटाहट होती कि तीनों चौंक पड़ते। इधर पत्तियों में सनसनाहट हुई कि उधर तीनों के रोंगटे खड़े हो गये ? रह-रह कर एक धीमी आवाज़ धरती के भीतर से उनके कानों में आती थी—'तेरा लहू पीऊँगी।'

आधी रात को नागिन नींद से चौंक पड़ी। वह इन दिनों गर्भवती थी। लाल-लाल आँखोंवाली, तेज और नोकीले दाँतोंवाली मूँगा उसकी छाती पर बैठी हुई जान पड़ती थी। नागिन चीख उठी। बावली की तरह आँगन में भाग आयी और यकायक धरती पर चित्त गिर पड़ी। सारा शरीर पसीने-पसीने हो गया। मुंशी जी भी उसकी चीख सुन कर चौंके, पर डर के मारे आँखें न खुलीं। अंधों की तरह दरवाजा टटोलते रहे। बहुत देर के बाद उन्हें दरवाजा मिला। आँगन में आये। नागिन जमीन पर पड़ी हाथ-पाँव पटक रही थी। उसे उठा कर भीतर लाये, पर रात भर उसने आँखें न खोलीं। भोर को अक-बक बकने लगी। थोड़ी देर में ज्वर हो आया। बदन लाल तवा-सा हो गया। साँझ होते-होते उसे सन्निपात हो गया और आधी रात के समय जब संसार में सन्नाटा छाया हुआ था नागिन इस संसार से चल बसी। मूँगा के डर ने उसकी जान ली। जब तक मूँगा जीती रही, वह नागिन की फुफकार से सदा डरती रही। पगली होने पर भी उसने कभी नागिन का सामना नहीं किया पर अपनी जान दे कर उसने आज नागिन की जान ली। भय में बड़ी शक्ति है। मनुष्य हवा में एक गिरह भी नहीं लगा सकता, पर इसने हवा में एक संसार रच डाला है।

रात बीत गयी। दिन चढ़ता आता था, पर गाँव का कोई आदमी नागिन की लाश उठाने को आता न दिखायी दिया। मुंशी जी घर-घर घूमे, पर कोई न निकला। भला हत्यारे के दरवाजे पर कौन जाय ? हत्यारे की लाश कौन उठावे ? इस समय मुंशी जी का रोब-दाब, उनकी प्रबल लेखनी का भय और उनकी कानूनी प्रतिभा एक भी काम न आयी; चारों ओर से हार कर मुंशी जी फिर अपने घर आये। यहाँ उन्हें अंधकार दीखता था। दरवाजे तक तो आए, पर भीतर पैर नहीं रखा जाता था। न बाहर ही खड़े रह सकते थे। बाहर मूँगा थी, भीतर नागिन। जी को कड़ा करके हनुमान चालीसा का पाठ करते हुए घर में घुसे। उस समय उनके मन पर जो बीतती थी, वही जानते थे। उसका अनुमान करना

कठिन है। घर में लाश पड़ी हुई; न कोई आगे, न पीछे। दूसरा ब्याह तो हो सकता था। अभी इसी फागुन में तो पचासवाँ लगा है; पर ऐसे सुयोग्य और मीठी बोलवाली स्त्री कहाँ मिलेगी ? अफसोस ! अब तगादा करनेवालों से बहस कौन करेगा, कौन उन्हें निरुत्तर करेगा ? लेन-देन का हिसाब-किताब कौन इतनी खूबी से करेगा ? किसकी कड़ी आवाज तीर की तरह तगादेदारों की छाती में चुभेगी ? यह नुकसान अब पूरा नहीं हो सकता। दूसरे दिन मुंशी जी लाश को ठेलेगाड़ी पर लाद कर गंगा जी की तरफ चले।

5

शव के साथ जानेवालों की संख्या कुछ भी न थी। एक स्वयं मुंशी जी, दूसरे उनके पुत्ररत्न रामगुलाम जी ! इस बेइज़्ज़ती से मूँगा की लाश भी नहीं उठी थी।

मूँगा ने नागिन की जान ले कर भी मुंशी जी का पिंड न छोड़ा। उनके मन में हर घड़ी मूँगा की मूर्ति विराजमान रहती थी। कहीं रहते, उनका ध्यान इसी ओर रहा करता था। यदि दिल-बहलाव का कोई उपाय होता तो शायद वह इतने बेचैन न होते, पर गाँव का एक पुतला भी उनके दरवाजे की ओर न झाँकता था। बेचारे अपने हाथों पानी भरते, आप ही बरतन धोते। सोच और क्रोध, चिंता और भय, इतने शत्रुओं के सामने एक दिमाग कब तक ठहर सकता था। विशेषकर वह दिमाग जो रोज कानून की बहसों में खर्च हो जाता था।

अकेले कैदी की तरह उनके दस-बारह दिन तो ज्यों-त्यों कर कटे। चौदहवें दिन मुंशी जी ने कपड़े बदले और बोरिया-बस्ता लिये हुए कचहरी चले। आज उनका चेहरा कुछ खिला हुआ था। जाते ही मेरे मुवक्किल मुझे घेर लेंगे। मेरी मातमपुर्सी करेंगे। मैं आँसुओं की दो-चार बूँदें गिरा दूँगा। फिर बैनामों, रेहननामों और सुलहनामों की भरमार हो जायगी। मुट्ठी गरम होगी; शाम को ज़रा नशे-पानी का रंग जम जायगा, जिसके छूट जाने से जी और भी उचाट रहा था। इन्हीं विचारों में मग्न मुंशी जी कचहरी पहुँचे।

पर वहाँ रेहननामों की भरमार और बैनामों की बाढ़ और मुवक्किलों की चहल-पहल के बदले निराशा की रेतीली भूमि नजर आयी। बस्ता खोले घंटों बैठे रहे, पर कोई नज़दीक भी न आया। किसी ने इतना भी न पूछा कि आप कैसे हैं ! नये मुवक्किल तो खैर, बड़े-बड़े पुराने मुवक्किल जिनका मुंशी जी से कई पीढ़ियों से सरोकार था, आज उनसे मुँह छिपाने लगे। वह नालायक और अनाड़ी रमजान, जिसकी मुंशी जी हँसी उड़ाते थे और जिसे शुद्ध लिखना भी न आता था, आज गोपियों का कन्हैया बना हुआ था। वाह रे भाग्य ? मुवक्किल यों मुँह फेरे चले जाते हैं मानो किसी की जान-पहचान ही नहीं। दिन भर कचहरी की खाक छानने के बाद मुंशी जी घर चले। निराशा और चिंता में डूबे हुए। ज्यों-ज्यों घर के निकट आते थे, मूँगा का चित्र सामने आता जाता था। यहाँ तक कि जब घर का द्वार खोला और दो कुत्ते, जिन्हें रामगुलाम ने बंद कर रखा था, झपट कर बाहर निकले तो मुंशी जी के होश उड़ गये, एक चीख मार कर ज़मीन पर गिर पड़े।

मनुष्य के मन और मस्तिष्क पर भय का जितना प्रभाव होता है उतना और किसी शक्ति का नहीं। प्रेम, चिंता, निराशा, हानि, यह सब मन को अवश्य दुःखित करते हैं, पर यह हवा के हलके झोंके हैं और भय प्रचंड आँधी है। मुंशी जी पर इसके बाद क्या बीती,

मालूम नहीं। कई दिनों तक लोगों ने उन्हें कचहरी जाते और यहाँ से मुरझाये हुए लौटते देखा। कचहरी जाना उनका कर्तव्य था, और यद्यपि वहाँ मुवक्किलों का अकाल था, तो भी तगादेवालों से गला छुड़ाने और उनको भरोसा दिलाने के लिए अब यही एक लटका रह गया था। इसके बाद कई महीने तक देख न पड़े। बद्रीनाथ चले गये। एक दिन गाँव में एक साधु आया। भभूत रमाये, लम्बी जटायें, हाथ में कमंडल। उसका चेहरा मुंशी रामसेवक से बहुत मिलता-जुलता था। बोलचाल में भी अधिक भेद न था। वह एक पेड़ के नीचे धूनी रमाये बैठा रहा। उसी रात को मुंशी रामसेवक के घर से धुआँ उठा, फिर आग की ज्वाला दीखने लगी और आग भड़क उठी। गाँव के सैकड़ों आदमी दौड़े। आग बुझाने के लिए नहीं, तमाशा देखने के लिए। एक गरीब की हाय में कितना प्रभाव है। रामगुलाम मुंशी जी के गायब हो जाने पर अपने मामा के यहाँ चला गया और वहाँ कुछ दिनों रहा। पर वहाँ उसकी चाल-ढाल किसी को पसन्द न आयी।

एक दिन उसने किसी के खेत में मूली नोची। उसने दो-चार धौल लगाये। उस पर वह इस कदर बिगड़ा कि जब उसके चने खलिहान में आये तो उसने आग लगा दी। सारा का सारा खलिहान जल कर खाक हो गया। हज़ारों रुपयों का नुकसान हुआ। पुलिस ने तहकीकात की, रामगुलाम पकड़ा गया। इसी अपराध में वह चुनार के रिफ़ार्मेटरी स्कूल में मौजूद है।

['आहे-बेकस' शीर्षक से उर्दू में प्रथम प्रकाशन, 'जमाना', अक्टूबर, 1911 में प्रकाशित। हिन्दी रूप 'मानसरोवर' भाग-8 में संकलित।]

आल्हा

आल्हा का नाम किसने नहीं सुना। पुराने जमाने के चंदेल राजपूतों में वीरता और जान पर खेलकर स्वामी की सेवा करने के लिए किसी राजा-महाराजा को भी यह अमर कीर्ति नहीं मिली। राजपूतों के नैतिक नियमों में केवल वीरता ही नहीं थी बल्कि अपने स्वामी और अपने राजा के लिए जान देना भी उसका एक अंग था। आल्हा और ऊदल की जिंदगी इसकी सबसे अच्छी मिसाल है। सच्चा राजपूत क्या होता था और उसे क्या होना चाहिए इसे जिस खूबसूरती से इन दोनों भाइयों ने दिखा दिया है, उसकी मिसाल हिंदोस्तान के किसी दूसरे हिस्से में मुश्किल से मिल सकेगी। आल्हा और ऊदल के मार्के और उनके कारनामे एक चंदेली कवि ने शायद उन्हीं के जमाने में गाये, और उसको इस सूबे में जो लोकप्रियता प्राप्त है वह शायद रामायण को भी न हो। यह कविता आल्हा ही के नाम से प्रसिद्ध है और आठ-नौ शताब्दियां गुजर जाने के बावजूद उसकी दिलचस्पी और सर्वप्रियता में अंतर नहीं आया। आल्हा गाने का इस प्रदेश में बड़ा रिवाज है। देहात में लोग हजारों की संख्या में आल्हा सुनने के लिए जमा होते हैं। शहरों में भी कभी-कभी यह मंडलियां दिखाई दे जाती हैं। बड़े लोगों की अपेक्षा सर्व-साधारण में यह किस्सा अधिक लोकप्रिय है। किसी मजलिस में जाइए, हजारों आदमी जमीन के फर्श पर बैठे हुए हैं, सारी महफिल जैसे बेसुध हो रही है और आल्हा गाने वाला किसी मोढ़े पर बैठा हुआ अपना अलाप सुना रहा है।

उसकी आवाज आवश्यकतानुसार कभी ऊंची हो जाती है और कभी मद्धिम मगर जब वह किसी लड़ाई और उसकी तैयारियों का जिक्र करने लगता है तो शब्दों का प्रवाह, उसके हाथों और भवों के इशारे, ढोल की मर्दाना लय और उन पर वीरतापूर्ण शब्दों का चुस्ती से बैठना, जो लड़ाई की कविताओं ही की अपनी एक विशेषता है, यह सब चीजें मिलकर सुनने वालों के दिलों में मर्दाना जोश की एक उमंग-सी पैदा कर देते हैं। बयान करने का तर्ज ऐसा सादा और दिलचस्प और जबान ऐसी आमफहम है कि उसके समझने में जरा भी दिक्कत नहीं होती। वर्णन और भावों की सादगी, कला के सौंदर्य का प्राण है।

राजा परमालदेव चंदेल खानदान का आखिरी राजा था। तेरहवीं शताब्दी के आरंभ में वह खानदान समाप्त हो गया। महोबा जो एक मामूली कस्बा है उस जमाने में चंदेलों की राजधानी था। महोबा की सल्तनत दिल्ली और कन्नौज से आंखें मिलाती थी। आल्हा और ऊदल इसी राजा परमालदेव के दरबार के सम्मानित सदस्य थे। यह दोनों भाई अभी बच्चे ही थे कि उनका बाप जसराज एक लड़ाई में मारा गया। राजा को अनाथों पर तरस आया, उन्हें राजमहल में ले आए और मुहब्बत के साथ अपनी रानी मलिनहा के सुपुर्द कर दिया। रानी ने उन दोनों भाइयों की परवरिश और लालन-पालन अपने लड़के की तरह किया। जवान होकर यही दोनों भाई बहादुरी में सारी दुनिया में मशहूर हुए। इन्हीं दिलावरों के कारनामों ने महोबे का नाम रौशन कर दिया है।

बड़े लड़इया महोबे वाले
जिनके बल को वार न पार।

आल्हा और ऊदल राजा परमालदेव पर जान कुर्बान करने के लिए हमेशा तैयार रहते थे। रानी मलिनहा ने उन्हें पाला, उनकी शादियां कीं, उन्हें गोद में खिलाया। नमक के हक के साथ-साथ इन एहसानों और संबंधों ने दोनों भाइयों को चंदेल राज का जांनिसार रखवाला और राजा परमालदेव का वफादार सेवक बना दिया था। उनकी वीरता के कारण आस-पास के सैकड़ों घमंडी राजा चंदेलों के अधीन हो गए। महोबा राज्य की सीमाएं नदी की बाढ़ की तरह फैलने लगीं और चंदेलों की शक्ति दूज के चांद से बढ़कर पूरनमासी का चांद हो गई। यह दोनों वीर कभी चैन से न बैठते थे। रणक्षेत्र में अपने हाथ का जौहर दिखाने की उन्हें धुन थी। सुख-सेज पर उन्हें नींद न आती थी। और वह जमाना भी ऐसा ही बेचैनियों से भरा हुआ था। उस जमाने में चैन से बैठना दुनिया के परदे से मिट जाना था। बात-बात पर तलवारें चलतीं और खून की नदियां बहती थीं। यहां तक कि शादियां भी खूनी लड़ाइयों जैसी हो गई थीं। लड़की पैदा हुई और शामत आ गई। हजारों सिपाहियों, सरदारों और संबंधियों की जानें दहेज में देनी पड़ती थीं। आल्हा और ऊदल उसी पुरशोर जमाने की सच्ची तस्वीरें हैं और गो कि ऐसी हालतों और जमाने के साथ जो नैतिक दुर्बलताएं और विषमताएं पाई जाती हैं, उनके असर से वह भी बचे हुए नहीं हैं, मगर उनकी दुर्बलताएं उनका कसूर नहीं बल्कि उनके जमाने का कसूर हैं।

2

आल्हा का मामा माहिल एक काले दिन का, मन में द्वेष पालने वाला आदमी था। इन दोनों भाइयों का प्रताप और ऐश्वर्य उसके हृदय में कांटे की तरह खटका करता था। उसकी

जिंदगी की सबसे बड़ी आरजू यह थी कि उनके बड़प्पन को किसी तरह खाक में मिला दे। इसी नेक काम के लिए उसने अपनी जिंदगी न्योछावर कर दी थी। सैकड़ों वार किए, सैकड़ों बार आग लगाई, यहां तक कि आखिरकार उसकी नशा पैदा करने वाली मंत्रणाओं ने राजा परमाल को मतवाला कर दिया। लोहा भी पानी से कट जाता है।

एक रोज राजा परमाल दरबार में अकेले बैठे हुए थे कि माहिल आया। राजा ने उसे उदास देखकर पूछा, भइया, तुम्हारा चेहरा कुछ उतरा हुआ है। माहिल की आंखों में आंसू आ गए। मक्कार आदमी को अपनी भावनाओं पर जो अधिकार होता है वह किसी बड़े योगी के लिए भी कठिन है। उसका दिल रोता है मगर होंठ हंसते हैं, दिल खुशियों के मजे लेता है मगर आंखें रोती हैं, दिल डाह की आग से जलता है मगर जबान से शहद और शक्कर की नदियां बहती हैं।

माहिल बोला—महाराज, आपकी छाया में रहकर मुझे दुनिया में अब किसी चीज की इच्छा बाकी नहीं। मगर जिन लोगों को आपने धूल से उठाकर आसमान पर पहुंचा दिया और जो आपकी कृपा से आज बड़े प्रताप और ऐश्वर्य वाले बन गए, उनकी कृतघ्नता और उपद्रव खड़े करना मेरे लिए बड़े दुःख का कारण हो रहा है।

परमाल ने आश्चर्य से पूछा—क्या मेरा नमक खाने वालों में ऐसे भी लोग हैं ?

माहिल—महाराज, मैं कुछ नहीं कह सकता। आपका हृदय कृपा का सागर है मगर उसमें एक खूंखार घड़ियाल आ घुसा है।

—वह कौन है ?

—मैं।

राजा ने आश्चर्यान्वित होकर कहा—तुम ?

माहिल—हां महाराज, वह अभागा व्यक्ति मैं ही हूं। मैं आज खुद अपनी फरियाद लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूं। अपने संबंधियों के प्रति मेरा जो कर्त्तव्य है वह उस भक्ति की तुलना में कुछ भी नहीं जो मुझे आपके प्रति है। आल्हा मेरे जिगर का टुकड़ा है। उसका मांस मेरा मांस और उसका रक्त मेरा रक्त है। मगर अपने शरीर में जो रोग पैदा हो जाता है उसे विवश होकर हकीम से कहना पड़ता है। आल्हा अपनी दौलत के नशे में चूर हो रहा है। उसके दिल में यह झूठा खयाल पैदा हो गया है कि मेरे ही बाहुबल से यह राज्य कायम है।

राजा परमाल की आंखें लाल हो गई, बोला—आल्हा को मैंने हमेशा अपना लड़का समझा है।

माहिल—लड़के से ज्यादा।

परमाल—वह अनाथ था, कोई उसका संरक्षक न था। मैंने उसका पालन-पोषण किया, उसे गोद में खिलाया। मैंने उसे जागीरें दीं, उसे अपनी फौज का सिपहसालार बनाया। उसकी शादी में मैंने बीस हजार चंदेल सूरमाओं का खून बहा दिया। उसकी मां और मेरी मलिनहा वर्षों गले मिलकर सोयी हैं और आल्हा क्या मेरे एहसानों को भूल सकता है ? माहिल, मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं आता।

माहिल का चेहरा पीला पड़ गया। मगर सम्हलकर बोला—महाराज, मेरी जबान से

कभी झूठ बात नहीं निकली।

परमाल—मुझे कैसे विश्वास हो ?

माहिल ने धीरे से राजा के कान में कुछ कह दिया।

3

आल्हा और ऊदल दोनों चौगान के खेल का अभ्यास कर रहे थे। लंबे-चौड़े मैदान में हजारों आदमी इस तमाशे को देख रहे थे। गेंद किसी अभागे की तरह इधर-उधर ठोकरें खाती फिरती थी। चोबदार ने आकर कहा—महाराज ने याद फरमाया है।

आल्हा को संदेह हुआ। महाराज ने आज बेवक्त क्यों याद किया ? खेल बंद हो गया। गेंद को ठोकरों से छुट्टी मिली। फौरन दरबार में चोबदार के साथ हाजिर हुआ और झुककर आदाब बजा लाया।

परमाल ने कहा—मैं तुमसे कुछ मांगूं ? दोगे ?

आल्हा ने सादगी से जवाब दिया—फरमाइए।

परमाल—इंकार तो न करोगे ?

आल्हा ने कनखियों से माहिल की तरफ देखा और समझ गया कि इस वक्त कुछ न कुछ दाल में काला है। इसके चेहरे पर यह मुस्कराहट क्यों ? गूलर में यह फूल क्यों लगे? क्या मेरी वफादारी का इम्तहान लिया जा रहा है ? जोश से बोला—महाराज, मैं आपकी जबान से ऐसे सवाल सुनने का आदी नहीं हूं। आप मेरे संरक्षक, मेरे पालनहार, मेरे राजा हैं। आपकी भवों के इशारे पर मैं आग में कूद सकता हूं और मौत से लड़ सकता हूं। आपकी आज्ञा पाकर मैं असंभव को संभव बना सकता हूं। आप मुझसे ऐसे सवाल न करें।

परमाल—शाबाश, मुझे तुमसे ऐसी ही उम्मीद है।

आल्हा—मुझे क्या हुक्म मिलता है ?

परमाल—तुम्हारे पास नाहर घोड़ा है ?

आल्हा ने 'जी हां' कहकर माहिल की तरफ भयानक गुस्से भरी हुई आंखों से देखा।

परमाल—अगर तुम्हें बुरा न लगे तो उसे मेरी सवारी के लिए दे दो।

आल्हा कुछ जवाब न दे सका, सोचने लगा, मैंने अभी वादा किया है कि इंकार न करूंगा। मैंने बात हारी है। मुझे इंकार न करना चाहिए। निश्चय ही इस वक्त मेरी स्वामिभक्ति की परीक्षा ली जा रही है। मेरा इंकार इस समय बहुत बेमौका और खतरनाक है। इसका तो कुछ गम नहीं। मगर मैं इंकार किस मुंह से करूं, बेवफा न कहलाऊंगा। मेरा और राजा का संबंध केवल स्वामी और सेवक का नहीं है, मैं उनकी गोद में खेला हूं। जब मेरे हाथ कमजोर थे और पांव में खड़े होने का बूता न था तब उन्होंने मेरे जुल्म सहे हैं, क्या मैं इंकार कर सकता हूं ?

विचारों की धारा मुड़ी—माना कि राजा के एहसान मुझ पर अनगिनत हैं। मेरे शरीर का एक-एक रोआं उनके एहसानों के बोझ से दबा हुआ है मगर क्षत्रिय कभी अपनी सवारी का घोड़ा दूसरे को नहीं देता। यह क्षत्रियों का धर्म नहीं। मैं राजा का पाला हुआ एहसानमंद हूं। मुझे अपने शरीर पर अधिकार है। उसे मैं राजा पर न्योछावर कर सकता हूं। मगर

राजपूती धर्म पर मेरा कोई अधिकार नहीं है, उसे मैं नहीं तोड़ सकता। जिन लोगों ने धर्म के कच्चे धागे को लोहे की दीवार समझा है, उन्हीं से राजपूतों का नाम चमक रहा है। क्या मैं हमेशा के लिए अपने ऊपर दाग लगाऊं ? आह ! माहिल ने इस वक्त मुझे खूब जकड़ रखा है। सामने खूंखार शेर है, पीछे गहरी खाई। या तो अपमान उठाऊं या कृतघ्न कहलाऊं। या तो राजपूतों के नाम को डुबोऊं या बर्बाद हो जाऊं। खैर, जो ईश्वर की मर्जी, मुझे कृतघ्न कहलाना स्वीकार है, मगर अपमानित होना स्वीकार नहीं। बर्बाद हो जाना मंजूर है, मगर राजपूतों के धर्म में बट्टा लगाना मंजूर नहीं!

आल्हा सर नीचा किए इन्हीं खयालों में गोते खा रहा था। यह उसके लिए परीक्षा की घड़ी थी जिसमें सफल हो जाने पर उसका भविष्य निर्भर था।

मगर माहिल के लिए यह मौका उसके धीरज की कम परीक्षा लेने वाला न था।

वह दिन अब आ गया जिसके इंतजार में कभी आंखें नहीं थकीं। खुशियों की यह बाढ़ अब संयम की लोहे की दीवार को काटती जाती थी। सिद्ध योगी पर दुर्बल मनुष्य की विजय होती जाती थी। एकाएक परमाल ने आल्हा से बुलंद आवाज में पूछा—किस दुविधा में हो ? क्या नहीं देना चाहते ?

आल्हा ने राजा से आंखें मिलाकर कहा—जी नहीं।

परमाल को तैश आ गया, कड़ककर बोला—क्यों ?

आल्हा ने अविचल मन से उत्तर दिया—यह राजपूतों का धर्म नहीं है।

परमाल—क्या मेरे एहसानों का यही बदला है ? तुम जानते हो, पहले तुम क्या थे और अब क्या हो ?

आल्हा—जी हां, जानता हूं।

परमाल—तुम्हें मैंने बनाया है और मैं ही बिगाड़ सकता हूं।

आल्हा से अब सब्र न हो सका, उसकी आंखें लाल हो गईं और त्योरियों पर बल पड़ गए। तेज लहजे में बोला—महाराज, आपने मेरे ऊपर जो एहसान किए, उनका मैं हमेशा कृतज्ञ रहूंगा। क्षत्रिय कभी एहसान नहीं भूलता। मगर आपने मेरे ऊपर एहसान किए हैं, तो मैंने भी जी तोड़कर आपकी सेवा की है। सिर्फ नौकरी और नमक का हक अदा करने का भाव मुझमें वह निष्ठा और गर्मी नहीं पैदा कर सकता जिसका मैं बार-बार परिचय दे चुका हूं। मगर खैर, अब मुझे विश्वास हो गया कि इस दरबार में मेरा गुजर न होगा। मेरा आखिरी सलाम कबूल हो और अपनी नादानी से मैंने जो कुछ भूल की है वह माफ की जाए।

माहिल की ओर देखकर उसने कहा—मामाजी, आज से मेरे और आपके बीच खून का रिश्ता टूटता है। आप मेरे खून के प्यासे हैं तो मैं भी आपकी जान का दुश्मन हूं।

4

आल्हा की मां का नाम देवलदेवी था। उसकी गिनती उन हौसले वाली उच्च-विचार स्त्रियों में है जिन्होंने हिंदोस्तान के पिछले कारनामों को इतना स्पृहणीय बना दिया है। उस अंधेरे युग में भी जबकि आपसी फूट और बैर की एक भयानक बाढ़ मुल्क में आ पहुंची थी,

हिंदोस्तान में ऐसी-ऐसी देवियां पैदा हुईं जो इतिहास के अंधेरे से अंधेरे पन्नों को भी ज्योतित कर सकती हैं। देवलदेवी ने सुना कि आल्हा ने अपनी आन को रखने के लिए क्या किया तो उसकी आंखों में आंसू भर आए। उसने दोनों भाइयों को गले लगाकर कहा--बेटा, तुमने वही किया जो राजपूतों का धर्म था। मैं बड़ी भाग्यशालिनी हूं कि तुम जैसे दो बात की लाज रखने वाले बेटे पाए हैं।

उसी रोज दोनों भाइयों ने महोबा से कूच कर दिया। अपने साथ अपनी तलवार और घोड़ों के सिवा और कुछ न लिया। माल-असबाब सब वहीं छोड़ दिए। सिपाही की दौलत और इज्जत सब कुछ उसकी तलवार है। जिसके पास वीरता की संपत्ति है, उसे दूसरी किसी संपत्ति की जरूरत नहीं।

बरसात के दिन थे, नदी-नाले उमड़े हुए थे। इन्द्र की उदारताओं से मालामाल होकर जमीन फूली नहीं समाती थी। पेड़ों पर मोरों की रसीली झंकारें सुनाई देती थीं और खेतों में निश्चिंतता की शराब से मतवाले किसान मल्हार की तानें अलाप रहे थे। पहाड़ियों की घनी हरियावल, पानी की दर्पन-जैसी सतह और जंगली बेल-बूटों के बनाव-संवार से प्रकृति पर एक यौवन बरस रहा था। मैदानों की ठंडी-ठंडी मस्त हवा, जंगली फूलों की मीठी-मीठी, सुहानी, आत्मा को उल्लास देने वाली महक और खेतों की लहराती हुई रंग-बिरंग उपज ने दिलों में आरजुओं का एक तूफान उठा दिया था। ऐसे मुबारक मौसम में आल्हा ने महोबा को आखिरी सलाम किया। दोनों भाइयों की आंखें रोते-रोते लाल हो गई थीं क्योंकि आज उनसे उनका देश छूट रहा था। इन्हीं गलियों में उन्होंने घुटनों के बल चलना सीखा था, इन्हीं तालाबों में कागज की नावें चलाई थीं, यहीं जवानी की बेफिक्रियों के मजे लूटे थे, इनसे अब हमेशा के लिए नाता टूटता था। दोनों भाई आगे बढ़ते जाते थे, मगर बहुत धीरे-धीरे। यह खयाल था कि शायद परमाल ने रूठने वालों को मनाने के लिए अपना कोई भरोसे का आदमी भेजा होगा। घोड़ों को संभाले हुए थे, मगर जब महोबे की पहाड़ियों का आखिरी निशान आंखों से ओझल हो गया तो उम्मीद की आखिरी झलक भी गायब हो गई। उन्होंने जिनका कोई देश न था, एक ठंडी सांस ली और घोड़े बढ़ा दिए। उनके निर्वासन का समाचार बहुत जल्द चारों तरफ फैल गया। उनके लिए हर दरबार में जगह थी, चारों तरफ से राजाओं के संदेश आने लगे। कन्नौज के राजा जयचन्द ने अपने राजकुमार को उनसे मिलने के लिए भेजा। संदेशों से जो काम न निकला वह इस मुलाकात ने पूरा कर दिया। राजकुमार की खातिरदारियां और आवभगत दोनों भाइयों को कन्नौज खींच ले गई। जयचन्द आंखें बिछाए बैठा था। आल्हा को अपना सेनापति बना दिया।

5

आल्हा और ऊदल के चले जाने के बाद महोबे में तरह-तरह के अंधेर शुरू हुए। परमाल कमजोर शासक था। मातहत राजाओं ने बगावत का झंडा बुलंद किया। ऐसी कोई ताकत न रही जो उन झगड़ालू लोगों को वश में रख सके। दिल्ली के राजा पृथ्वीराज की कुछ सेना सिमता से एक सफल लड़ाई लड़कर वापस आ रही थी। महोबे में पड़ाव किया। अक्खड़ सिपाहियों में तलवार चलते कितनी देर लगती है। चाहे राजा परमाल के मुलाजिमों की

ज्यादती हो चाहे चौहान सिपाहियों की, नतीजा यह हुआ कि चंदेलों और चौहानों में अनबन हो गई। लड़ाई छिड़ गई। चौहान संख्या में कम थे। चंदेलों ने आतिथ्य-सत्कार के नियमों को एक किनारे रखकर चौहानों के खून से अपना कलेजा ठंडा किया और यह न समझे कि मुट्ठी भर सिपाहियों के पीछे सारे देश पर विपत्ति आ जाएगी। बेगुनाहों का खून रंग लायेगा। पृथ्वीराज को यह दिल तोड़ने वाली खबर मिली तो उसके गुस्से की कोई हद न रही। आंधी की तरह महोबे पर चढ़ दौड़ा और सिरको, जो इलाका महोबे का एक मशहूर कस्बा था, तबाह करके महोबे की तरफ बढ़ा। चंदेलों ने भी फौज खड़ी की। मगर पहले ही मुकाबले में उनके हौसले पस्त हो गए। आल्हा-ऊदल के बगैर फौज बिन दूल्हे की बारात थी। सारी फौज तितर-बितर हो गई। देश में तहलका मच गया। अब किसी क्षण पृथ्वीराज महोबे में आ पहुंचेगा, इस डर से लोगों के हाथ-पांव फूल गए। परमाल अपने किए पर बहुत पछताया। मगर अब पछताना व्यर्थ था। कोई चारा न देखकर उसने पृथ्वीराज से एक महीने की संधि की प्रार्थना की। चौहान राजा युद्ध के नियमों को कभी हाथ से न जाने देता था। उसकी वीरता उसे कमजोर, बेखबर और नामुस्तैद दुश्मन पर वार करने की इजाजत न देती थी। इस मामले में अगर वह इन नियमों का इतनी सख्ती से पाबंद न होता तो शहाबुद्दीन के हाथों उसे वह बुरा दिन न देखना पड़ता। उसकी बहादुरी ही उसकी जान की गाहक हुई। उसने परमाल का पैगाम मंजूर कर लिया। चंदेलों की जान में जान आई।

अब सलाह-मशविरा होने लगा कि पृथ्वीराज से क्योंकर मुकाबला किया जाए। रानी मलिनहा भी इस मशविरे में शरीक थी। किसी ने कहा, महोबे के चारों तरफ एक ऊंची दीवार बनाई जाए। कोई बोला, हम लोग महोबे को वीरान करके दक्खिन की ओर चलें। परमाल जबान से तो कुछ न कहता था, मगर समर्पण के सिवा उसे और कोई चारा न दिखाई पड़ता था। तब रानी मलिनहा खड़ी होकर बोली–

"चंदेल वंश के राजपूतो, तुम कैसी बच्चों की-सी बातें करते हो ? क्या दीवार खड़ी करके तुम दुश्मन को रोक लोगे ? झाड़ू से कहीं आंधी रुकती है ? तुम महोबे को वीरान करके भागने की सलाह देते हो। ऐसी कायरों जैसी सलाह औरतें दिया करती हैं। तुम्हारी सारी बहादुरी और जान पर खेलना अब कहां गया ? अभी बहुत दिन नहीं गुजरे कि चंदेलों के नाम से राजे थर्राते थे। चंदेलों की धाक बंधी हुई थी, तुमने कुछ ही सालों में सैकड़ों मैदान जीते, तुम्हें कभी हार नहीं हुई। तुम्हारी तलवार की दमक कभी मंद नहीं हुई। तुम अब भी वही हो, मगर तुममें अब वह पुरुषार्थ नहीं है। वह पुरुषार्थ बनाकर वंश के साथ महोबे से उठ गया। देवलदेवी के रूठने से चंडिकादेवी भी हमसे रूठ गईं। अब अगर कोई यह हारी हुई बाजी संभाल सकता है तो वह आल्हा है। वही दोनों भाई इस नाजुक वक्त में तुम्हें बचा सकते हैं। उन्हीं को मनाओ, उन पर महोबे के बहुत हक हैं। महोबे की मिट्टी और पानी से उनकी परवरिश हुई है। वह महोबे के हक कभी भूल नही सकते, उन्हें ईश्वर ने बल और विद्या दी है, वही इस समय विजय का बीड़ा उठा सकते हैं।"

रानी मलिनहा की बातें लोगों के दिलों में बैठ गईं।

6

जगना भाट आल्हा और ऊदल को कन्नौज से लाने के लिए रवाना हुआ। यह दोनों भाई राजकुंवर लाखन के साथ शिकार खेलने जा रहे थे कि जगना ने पहुंचकर प्रणाम किया। उसके चेहरे से परेशानी और झिझक बरस रही थी। आल्हा ने घबराकर पूछा—कवीश्वर, यहां कैसे भूल पड़े ? महोबे में तो सब खैरियत है ? हम गरीबों को क्योंकर याद किया ?

जगना की आंखों में आंसू भर आए, बोला—अगर खैरियत होती तो तुम्हारी शरण में क्यों आता ? मुसीबत पड़ने पर ही देवताओं की याद आती है। महोबे पर इस समय इन्द्र का कोप छाया हुआ है। पृथ्वीराज चौहान महोबे को घेरे पड़ा है। नरसिंह और वीरसिंह तलवारों की भेंट हो चुके हैं। सिरको सारा राख का ढेर हो गया। चंदेलों का राज वीरान हुआ जाता है। सारे देश में कुहराम मचा हुआ है। बड़ी मुश्किलों से एक महीने की मोहलत ली गई है और मुझे राजा परमाल ने तुम्हारे पास भेजा है। इस मुसीबत के वक्त हमारा कोई मददगार नहीं है, कोई ऐसा नहीं है जो हमारी हिम्मत बंधाए। जब से तुमने महोबे से नाता तोड़ा है तब से राजा परमाल के होंठों पर हंसी नहीं आई। जिस परमाल को उदास देखकर तुम बेचैन हो जाते थे उसी परमाल की आंखें महीनों से नींद को तरसती हैं। रानी मलिनहा, जिसकी गोद में तुम खेले हो, रात-दिन तुम्हारी याद में रोती रहती है। वह अपने झरोखे से कन्नौज की तरफ आंखें लगाए तुम्हारी राह देखा करती है। ऐ बनाफर वंश के सपूतो ! चंदेलों की नाव अब डूब रही है। चंदेलों का नाम अब मिटा जाता है। अब मौका है कि तुम तलवारें हाथ में लो। अगर इस मौके पर तुमने डूबती हुई नाव को न संभाला तो तुम्हें हमेशा के लिए पछताना पड़ेगा, क्योंकि इस नाम के साथ तुम्हारा और तुम्हारे नामी बाप का नाम भी डूब जाएगा।

आल्हा ने रूखेपन से जवाब दिया—हमें इसकी अब कुछ परवाह नहीं है। हमारा और हमारे बाप का नाम तो उसी दिन डूब गया, जब हम बेकसूर महोबे से निकाल दिए गए। महोबा मिट्टी में मिल जाए, चंदेलों का चिराग गुल हो जाए, अब हमें जरा भी परवाह नहीं है। क्या हमारी सेवाओं का यही पुरस्कार था जो हमको दिया गया ? हमारे बाप ने महोबे पर अपने प्राण न्यौछावर कर दिए, हमने गोंडों को हराया और चंदेलों को देवगढ़ का मालिक बना दिया। हमने यादवों से लोहा लिया और कठियार के मैदान में चंदेलों का झंडा गाड़ दिया। मैंने इन्हीं हाथों से कछवाहों की बढ़ती हुई लहर को रोका। गया का मैदान हमीं ने जीता, रीवां का घमंड हमीं ने तोड़ा। मैंने ही मेवात से खिराज लिया। हमने यह सब कुछ किया और इसका हमको यह पुरस्कार दिया गया है ? मेरे बाप ने दस राजाओं को गुलामी का तौक पहनाया। मैंने परमाल की सेवा में सात बार प्राणलेवा जख्म खाए, तीन बार मौत के मुंह से निकल आया। मैंने चालीस लड़ाइयां लड़ीं और कभी हारकर न आया। ऊदल ने सात खूनी मार्के जीते। हमने चंदेलों की बहादुरी का डंका बजा दिया। चंदेलों का नाम हमने आसमान तक पहुंचा दिया और इसका यह पुरस्कार हमको मिला है ? परमाल अब क्यों उसी दगाबाज माहिल को अपनी मदद के लिए नहीं बुलाते जिसको खुश करने के लिए मेरा देश निकाला हुआ था !

जगना ने जवाब दिया—आल्हा ! यह राजपूतों की बातें नहीं हैं। तुम्हारे बाप ने जिस

राज पर प्राण न्यौछावर कर दिए वही राज अब दुश्मन के पांव तले रौंदा जा रहा है। उसी बाप के बेटे होकर भी क्या तुम्हारे खून में जोश नहीं आता ? वह राजपूत जो अपने मुसीबत में पड़े हुए राजा को छोड़ता है, उसके लिए नरक की आग के सिवा और कोई जगह नहीं है। तुम्हारी मातृभूमि पर बर्बादी की घटा छाई हुई है। तुम्हारी माएं और बहनें दुश्मनों की आबरू लूटने वाली निगाहों का निशाना बन रही हैं, क्या अब भी तुम्हारे खून में जोश नहीं आता ? अपने देश की यह दुर्गत देखकर भी तुम कन्नौज में चैन की नींद सो सकते हो ?

देवलदेवी को जगना के आने की खबर हुई। उसने फौरन आल्हा को बुलाकर कहा–बेटा, पिछली बातें भूल जाओ और आज ही महोबे चलने की तैयारी करो।

आल्हा कुछ जवाब न दे सका, मगर ऊदल झुंझलाकर बोला–हम अब महोबे नहीं जा सकते। क्या तुम्हें वह दिन भूल गए जब हम कुत्तों की तरह महोबे से निकाल दिए गए? महोबा डूबे या रहे, हमारा जी उससे भर गया, अब उसको देखने की इच्छा नहीं है। अब कन्नौज ही हमारी मातृभूमि है।

राजपूतनी बेटे की जबान से यह पाप की बात न सुन सकी, तैश में आकर बोली–ऊदल, तुझे ऐसी बातें मुंह से निकालते हुए शर्म नहीं आती ? काश, ईश्वर मुझे बांझ ही रखता कि ऐसे बेटों की मां न बनती। क्या इन्हीं बनाफर वंश के नाम पर कलंक लगाने वालों के लिए मैंने गर्भ की पीड़ा सही थी ? नालायको, मेरे सामने से दूर हो जाओ। मुझे अपना मुंह न दिखाओ। तुम जसराज के बेटे नहीं हो, तुम जिसकी रान से पैदा हुए हो वह जसराज नहीं हो सकता।

यह मर्मातक चोट थी। शर्म से दोनों भाइयों के माथे पर पसीना आ गया। दोनों उठ खड़े हुए और बोले–माता, अब बस करो, हम ज्यादा नहीं सुन सकते, हम आज ही महोबे जाएंगे और राजा परमाल की खिदमत में अपना खून बहाएंगे। हम रणक्षेत्र में अपनी तलवारों की चमक से अपने बाप का नाम रोशन करेंगे। हम चौहान के मुकाबले में अपनी बहादुरी के जौहर दिखाएंगे और देवलदेवी के बेटों का नाम अमर कर देंगे।

7

दोनों भाई कन्नौज से चले, देवल भी साथ थी। जब यह रूठने वाले अपनी मातृभूमि में पहुंचे तो सूखे धानों में पानी पड़ गया, टूटी हुई हिम्मतें बंध गई। एक लाख चंदेल इन वीरों की अगवानी करने के लिए खड़े थे। बहुत दिनों के बाद वह अपनी मातृभूमि से बिछुड़े हुए इन दोनों भाइयों से मिले। आंखों ने खुशी के आंसू बहाए। राजा परमाल उनके आने की खबर पाते ही कीरत सागर तक पैदल आया। आल्हा और ऊदल दौड़कर उसके पांव से लिपट गए। तीनों की आंखों से पानी बरसा और सारा मनमुटाव धुल गया।

दुश्मन सर पर खड़ा था, ज्यादा आतिथ्य-सत्कार का मौका न था। वहीं कीरत सागर के किनारे देश के नेताओं और दरबार के कर्मचारियों की राय से आल्हा फौज का सेनापति बनाया गया। वहीं मरने-मारने के लिए सौगंधें खाई गईं। वहीं बहादुरों ने कसमें खाईं कि मैदान से हटेंगे तो मरकर हटेंगे। वहीं लोग एक-दूसरे के गले मिले और अपनी किस्मतों का फैसला करने चले। आज किसी की आंखों में और चेहरे पर उदासी के चिह्न न थे,

औरतें हंस-हंसकर अपने प्यारों को विदा करती थीं, मर्द हंस-हंसकर स्त्रियों से अलग होते थे क्योंकि यह आखिरी बाजी है, इसे जीतना जिंदगी और हारना मौत है।

उस जगह के पास जहां अब और कोई कस्बा आबाद है, दोनों फौजों का मुकाबला हुआ और अठारह दिन तक मारकाट का बाजार गर्म रहा। खूब घमासान लड़ाई हुई। पृथ्वीराज खुद लड़ाई में शरीक था। दोनों दल दिल खोलकर लड़े। वीरों ने खूब अरमान निकाले और दोनों तरफ की फौजें वहीं कट मरीं। तीन लाख आदमियों में सिर्फ तीन आदमी जिंदा बचे—एक पृथ्वीराज, दूसरा चंदा भाट, तीसरा आल्हा। ऐसी भयानक, अटल और निर्णायक लड़ाई शायद ही किसी देश और किसी युग में हुई हो। दोनों ही हारे और दोनों ही जीते। चंदेल और चौहान हमेशा के लिए खाक में मिल गए क्योंकि थानेसर की लड़ाई का फैसला भी इसी मैदान में हो गया। चौहानों में जितने अनुभवी सिपाही थे, वह सब औरई में काम आए। शहाबुद्दीन से मुकाबला पड़ा तो नौसिखिए, अनुभवहीन सिपाही मैदान में लाए गए और नतीजा वही हुआ जो हो सकता था। आल्हा का कुछ पता न चला कि कहां गया। कहीं शर्म से डूब मरा या साधू हो गया।

जनता में अब तक यही विश्वास है कि वह जिंदा है। लोग कहते हैं कि वह अमर हो गया। यह बिल्कुल ठीक है क्योंकि आल्हा सचमुच अमर है और वह कभी मिट नहीं सकता, उसका नाम हमेशा कायम रहेगा।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में, 'जमाना', जनवरी, 1912 में प्रकाशित। उर्दू 'प्रेम पचीसी' में संकलित। हिन्दी रूप 'आल्हा' शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-1 में संकलित।]

ममता

बाबू रामरक्षादास दिल्ली के एक ऐश्वर्यशाली खत्री थे, बहुत ही ठाट-बाट से रहने वाले। बड़े-बड़े अमीर उनके यहाँ नित्य आते-जाते थे। वे आये हुओं का आदर-सत्कार ऐसे अच्छे ढंग से करते थे कि इस बात की धूम सारे मुहल्ले में थी। नित्य उनके दरवाजे पर किसी न किसी बहाने से इष्ट-मित्र एकत्र हो जाते, टेनिस खेलते, ताश उड़ता, हारमोनियम के मधुर स्वरों से जी बहलाते, चाय-पानी से हृदय प्रफुल्लित करते, अधिक और क्या चाहिए ? जाति की ऐसी अमूल्य सेवा कोई छोटी बात नहीं है। नीची जातियों के सुधार के लिए दिल्ली में एक सोसायटी थी। बाबू साहब उसके सेक्रेटरी थे, और इस कार्य को असाधारण उत्साह से पूर्ण करते थे। जब उनका बूढ़ा कहार बीमार हुआ और क्रिश्चियन मिशन के डाक्टरों ने उसकी शुश्रूषा की, जब उसकी विधवा स्त्री ने निर्वाह की कोई आशा न देख कर क्रिश्चियन-समाज का आश्रय लिया, तब इन दोनों अवसरों पर बाबू साहब ने शोक के रेजल्यूशन्स पास किये। संसार जानता है कि सेक्रेटरी का काम सभाएँ करना और रेजल्यूशन बनाना है। इससे अधिक वह कुछ नहीं कर सकता।

मिस्टर रामरक्षा का जातीय उत्साह यहीं तक सीमाबद्ध न था। वे सामाजिक कुप्रथाओं तथा अंध-विश्वास के प्रबल शत्रु थे। होली के दिनों में, जब कि मुहल्ले में चमार

और कहार शराब से मतवाले होकर फाग गाते और डफ बजाते हुए निकलते, तो उन्हें बड़ा शोक होता। जाति की इस मूर्खता पर उनकी आँखों में आँसू भर आते और वे प्रायः इस कुरीति का निवारण अपने हंटर से किया करते। उनके हंटर में जाति-हितैषिता की उमंग उनकी वक्तृता से भी अधिक थी। यह उन्हीं के प्रशंसनीय प्रयत्न थे, जिन्होंने मुख्य होली के दिन दिल्ली में हलचल मचा दी, फाग गाने के अपराध में हजारों आदमी पुलिस के पंजे में आ गये। सैकड़ों घरों में मुख्य होली के दिन मुहर्रम का-सा शोक फैल गया। इधर उनके दरवाजे पर हजारों पुरुष-स्त्रियाँ अपना दुखड़ा रो रही थीं। उधर बाबू साहब के हितैषी मित्रगण अपने उदारशील मित्र के सद्व्यवहार की प्रशंसा करते। बाबू साहब दिन-भर में इतने रंग बदलते थे कि उस पर 'पेरिस' की परियों को भी ईर्ष्या हो सकती थी। कई बैंकों में उनके हिस्से थे। कई दुकानें थीं; किंतु बाबू साहब को इतना अवकाश न था कि उनकी कुछ देखभाल करते। अतिथि-सत्कार एक पवित्र धर्म है। वे सच्ची देश-हितैपिता की उमंग से कहा करते थे—अतिथि-सत्कार आदिकाल से भारतवर्ष के निवासियों का एक प्रधान और सराहनीय गुण है। अभ्यागतों का आदर-सम्मान करने में हम अद्वितीय हैं। हम इससे संसार में मनुष्य कहलाने योग्य हैं। हम सब कुछ खो बैठे हैं, किंतु जिस दिन हममें यह गुण शेष न रहेगा; वह दिन हिंदू-जाति के लिए लज्जा, अपमान और मृत्यु का दिन होगा।

मिस्टर रामरक्षा जातीय आवश्यकताओं से भी बेपरवाह न थे। वे सामाजिक और राजनीतिक कार्यो में पूर्णरूपेण से योग देते थे। यहाँ तक कि प्रतिवर्ष दो, बल्कि कभी-कभी तीन वक्तृताएँ अवश्य तैयार कर लेते। भाषणों की भाषा अत्यंत उपयुक्त, ओजस्वी और सर्वांग-सुंदर होती थी। उपस्थित जन और इष्टमित्र उनके एक-एक शब्द पर प्रशंसासूचक शब्दों की ध्वनि प्रकट करते, तालियाँ बजाते, यहाँ तक कि बाबू साहब को व्याख्यान का क्रम स्थिर रखना कठिन हो जाता। व्याख्यान समाप्त होने पर उनके मित्र उन्हें गोद में उठा लेते और आश्चर्यचकित होकर कहते—तेरी भाषा में जादू है ! सारांश यह कि बाबू साहब का यह जातीय प्रेम और उद्योग केवल बनावटी, सहायता-शून्य तथा फैशनेबिल था। यदि उन्होंने किसी सदुद्योग में भाग लिया था, तो वह सम्मिलित कुटुम्ब का विरोध था। अपने पिता के पश्चात् वे अपनी विधवा माँ से अलग हो गये थे। इस जातीय सेवा में उनकी स्त्री विशेष सहायक थी। विधवा माँ अपने बेटे और बहू के साथ नहीं रह सकती थी। इससे बहू की स्वाधीनता में विघ्न पड़ने से मन दुर्बल और मस्तिष्क शक्तिहीन हो जाता है। बहू को जलाना और कुढ़ाना सास की आदत है। इसलिए बाबू रामरक्षा अपनी माँ से अलग हो गये थे। इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने मातृ-ऋण का विचार करके दस हजार रुपये अपनी माँ के नाम जमा कर दिये थे, कि उसके ब्याज से उनका निर्वाह होता रहे; किंतु बेटे के इस उत्तम आचरण पर माँ का दिल ऐसा टूटा कि वह दिल्ली छोड़कर अयोध्या जा रहीं। तब से वहीं रहती हैं। बाबू साहब कभी-कभी मिसेज रामरक्षा से छिप कर उससे मिलने अयोध्या जाया करते थे, किंतु वह दिल्ली आने का कभी नाम न लेतीं। हाँ, यदि कुशल-क्षेम की चिट्ठी पहुँचने में कुछ देर हो जाती, तो विवश हो कर समाचार पूछ लेती थीं।

2

उसी मुहल्ले में एक सेठ गिरधारी लाल रहते थे। उनका लाखों का लेन-देन था। वे हीरे और रत्नों का व्यापार करते थे। बाबू रामरक्षा के दूर के नाते में साढू होते थे। पुराने ढंग के आदमी थे—प्रातःकाल यमुना-स्नान करनेवाले तथा गाय को अपने हाथों से झाड़ने-पोंछनेवाले! उनसे मिस्टर रामरक्षा का स्वभाव न मिलता था; परंतु जब कभी रुपयों की आवश्यकता होती, तो वे सेठ गिरधारी लाल के यहाँ से बेखटके मँगा लिया करते थे। आपस का मामला था, केवल चार अंगुल के पत्र पर रुपया मिल जाता था, न कोई दस्तावेज, न स्टाम्प, न साक्षियों की आवश्यकता। मोटरकार के लिए दस हजार की आवश्यकता हुई, वह वहाँ से आया। घुड़दौड़ के लिए एक आस्ट्रेलियन घोड़ा डेढ़ हजार में लिया गया। उसके लिए भी रुपया सेठ जी के यहाँ से आया। धीरे-धीरे कोई बीस हजार का मामला हो गया। सेठ जी सरल हृदय के आदमी थे। समझते थे कि उसके पास दुकानें हैं, बैंकों में रुपया है। जब जी चाहेगा, रुपया वसूल कर लेंगे; किंतु जब दो-तीन वर्ष व्यतीत हो गये और सेठ जी के तकाजों की अपेक्षा मिस्टर रामरक्षा की माँग ही का आधिक्य रहा तो गिरधारी लाल को संदेह हुआ। वह एक दिन रामरक्षा के मकान पर आये और सभ्य-भाव से बोले—भाई साहब, मुझे एक हुण्डी का रुपया देना है, यदि आप मेरा हिसाब कर दें तो बहुत अच्छा हो। यह कह कर हिसाब के कागजात और उनके पत्र दिखलाये। मिस्टर रामरक्षा किसी गार्डन-पार्टी में सम्मिलित होने के लिए तैयार थे। बोले—इस समय क्षमा कीजिए; फिर देख लूँगा, जल्दी क्या है?

गिरधारी लाल को बाबू साहब की रुखाई पर क्रोध आ गया, वे रुष्ट होकर बोले—आपको जल्दी नहीं है, मुझे तो है ! दो सौ रुपये मासिक की मेरी हानि हो रही है ! मिस्टर रामरक्षा ने असंतोष प्रकट करते हुए घड़ी देखी। पार्टी का समय बहुत करीब था। वे बहुत विनीत भाव से बोले—भाई साहब, मैं बड़ी जल्दी में हूँ। इस समय मेरे ऊपर कृपा कीजिए। मैं कल स्वयं उपस्थित हूँगा।

सेठ जी एक माननीय और धन-सम्पन्न आदमी थे। वे रामरक्षा के इस कुरुचिपूर्ण व्यवहार पर जल गये। मैं इनका महाजन हूँ—इनसे धन में, मान में, ऐश्वर्य में, बढ़ा हुआ, चाहूँ तो ऐसों को नौकर रख लूँ, इनके दरवाजे पर आऊँ और आदर-सत्कार की जगह उलटे ऐसा रूखा बर्ताव ? वह हाथ बाँधे मेरे सामने न खड़ा रहे, किन्तु क्या मैं पान, इलायची, इत्र आदि से भी सम्मान करने के योग्य नहीं ? वे तिनक कर बोले—अच्छा, तो कल हिसाब साफ हो जाय।

रामरक्षा ने अकड़ कर उत्तर दिया—हो जायगा।

रामरक्षा के गौरवशील हृदय पर सेठ जी के इस बर्ताव के प्रभाव का कुछ खेद-जनक असर न हुआ। इस काठ के कुन्दे ने आज मेरी प्रतिष्ठा धूल में मिला दी। वह मेरा अपमान कर गया। अच्छा, तुम भी इसी दिल्ली में रहते हो और हम भी यहीं हैं। निदान दोनों में गाँठ पड़ गयी। बाबू साहब की तबीयत ऐसी गिरी और हृदय में ऐसी चिंता उत्पन्न हुई कि पार्टी में जाने का ध्यान जाता रहा, वे देर तक इसी उलझन में पड़े रहे। फिर सूट उतार दिया और सेवक से बोले—जा, मुनीम जी को बुला ला। मुनीम जी आये, उनका हिसाब देखा गया,

फिर बैंकों का एकाउंट देखा; किंतु ज्यों-ज्यों इस घाटी में उतरते गये, त्यों-त्यों अँधेरा बढ़ता गया। बहुत कुछ टटोला, कुछ हाथ न आया। अंत में निराश होकर वे आराम-कुर्सी पर पड़ गये और उन्होंने एक ठंडी साँस ले ली। दुकानों का माल बिका; किंतु रुपया बकाया में पड़ा हुआ था। कई ग्राहकों की दुकानें टूट गयीं। और उन पर जो नकद रुपया बकाया था, वह डूब गया। कलकत्ते के आढ़तियों से जो माल मँगाया था, रुपये चुकाने की तिथि सिर पर आ पहुँची और यहाँ रुपया वसूल न हुआ। दुकानों का यह हाल, बैंकों का इससे भी बुरा। रात भर वे इन्हीं चिंताओं में करवटें बदलते रहे। अब क्या करना चाहिए ? गिरधारी लाल सज्जन पुरुष हैं। यदि सारा कच्चा हाल उसे सुना दूँ, तो अवश्य मान जायगा, किंतु यह कष्टप्रद कार्य होगा कैसे ? ज्यों-ज्यों प्रातःकाल समीप आता था, त्यों-यों उनका दिल बैठा जाता था। कच्चे विद्यार्थी की जो दशा परीक्षा के सन्निकट आने पर होती है वही हाल इस समय रामरक्षा का था। वे पलंग से न उठे। मुंह-हाथ भी न धोया, खाने को कौन कहे। इतना जानते थे कि दुःख पड़ने पर कोई किसी का साथी नहीं होता। इसलिए एक आपत्ति मे बचने के लिए कई आपत्तियों का बोझा न उठाना पड़े, इस खयाल से मित्रों को इन मामलों की खबर तक न दी। जब दोपहर हो गयी और उनकी दशा ज्यों की त्यों रही, तो उनका छोटा लड़का बुलाने आया। उसने बाप का हाथ पकड़ कर कहा—लाला जी, आज दाने क्यों नहीं तलते ?

रामरक्षा—भूख नहीं है।

'क्या काया है ?'

'मन की मिठाई।'

'और क्या काया है ?'

'मार।'

'किसने मारा है ?'

'गिरधारी लाल ने।'

लड़का रोता हुआ घर में गया और इस मार की चोट से देर तक रोता रहा। अंत में तश्तरी में रखी हुई दूध की मलाई ने उसकी चोट पर मरहम का काम दिया।

3

रोगी को जब जीने की आशा नहीं रहती, तो औषधि छोड़ देता है। मिस्टर रामरक्षा जब इस गुत्थी को न सुलझा सके, तो चादर तान ली और मुँह लपेट कर सो रहे। शाम को एकाएक उठ कर सेठ जी के यहाँ पहुँचे और कुछ असावधानी से बोले—महाशय, मैं आपका हिसाब नहीं कर सकता।

सेठ जी घबरा कर बोले—क्यों ?

रामरक्षा—इसलिए कि मैं इस समय दरिद्र-निहंग हूँ। मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है। आप अपना रुपया जैसे चाहें वसूल कर लें।

सेठ—यह आप कैसी बातें कहते हैं ?

रामरक्षा—बहुत सच्ची।

सेठ—दुकानें नहीं हैं ?

रामरक्षा—दुकानें आप मुफ्त ले जाइए।

सेठ—बैंक के हिस्से ?

रामरक्षा—वह कब के उड़ गये।

सेठ—जब यह हाल था, तो आपको उचित नहीं था कि मेरे गले पर छुरी फेरते?

रामरक्षा—(अभिमान से) मैं आपके यहाँ उपदेश सुनने के लिए नहीं आया हूँ।

यह कह कर मिस्टर रामरक्षा वहाँ से चल दिये। सेठ जी ने तुरंत नालिश कर दी। बीस हजार मूल, पाँच हजार ब्याज। डिगरी हो गयी। मकान नीलाम पर चढ़ा। पंद्रह हजार की जायदाद पाँच हजार में निकल गयी। दस हजार की मोटर चार हजार में बिकी। सारी सम्पत्ति उड़ जाने पर कुल मिला कर सोलह हजार से अधिक रकम न खड़ी हो सकी। सारी गृहस्थी नष्ट हो गयी, तब भी दस हजार के ऋणी रह गये। मान-बड़ाई, धन-दौलत सभी मिट्टी में मिल गये। बहुत तेज दौड़ने वाला मनुष्य प्रायः मुँह के बल गिर पड़ता है।

4

इस घटना के कुछ दिनों पश्चात् दिल्ली म्यूनिसिपैलिटी के मेम्बरों का चुनाव आरम्भ हुआ। इस पद के अभिलाषी वोटरों की पूजाएँ करने लगे। दलालों के भाग्य उदय हुए। सम्पत्तियाँ मोतियों की तोल बिकने लगीं। उम्मेदवार मेम्बरों के सहायक अपने-अपने मुवक्किल के गुणगान करने लगे। चारों ओर चहल-पहल मच गयी। एक वकील महाशय ने भरी सभा मे मुवक्किल साहब के विषय में कहा—

'मैं जिस बुजरुग का पैरोकार हूँ, वह कोई मामूली आदमी नहीं है। यह वह शख्स है, जिसने फरजंद अकबर की शादी में पचीस हजार रुपया सिर्फ रक्स व सरूर में सर्फ कर दिया था।'

उपस्थित जनों में प्रशंसा की उच्च ध्वनि हुई।

एक दूसरे महाशय ने अपने मुहल्ले के वोटरों के सम्मुख मुवक्किल की प्रशंसा यों की—

"मैं यह नहीं कह सकता कि आप सेठ गिरधारीलाल को अपना मेम्बर बनाइए। आप अपना भला-बुरा स्वयं समझते हैं, और यह भी नहीं कि सेठ जी मेरे द्वारा अपनी प्रशंसा के भूखे हों। मेरा निवेदन केवल यही है कि आप जिसे मेम्बर बनायें, पहले उसके गुण-दोषों का भली-भाँति परिचय ले लें। दिल्ली में केवल एक मनुष्य है, जो गत दस वर्षों से आपकी सेवा कर रहा है। केवल एक आदमी है, जिसने पानी पहुँचाने और स्वच्छता-प्रबंधों में हार्दिक धर्म-भाव से सहायता दी है। केवल एक पुरुष है, जिसको श्रीमान् वायसराय के दरबार में कुर्सी पर बैठने का अधिकार प्राप्त है, और आप सब महाशय उसे जानते भी हैं।"

उपस्थित जनों ने तालियाँ बजायीं।

सेठ गिरधारीलाल के मुहल्ले में उनके एक प्रतिवादी थे। नाम था मुंशी फैजुलरहमान खाँ। बड़े जमींदार और प्रसिद्ध वकील थे। बाबू गमरक्षा ने अपनी दृढ़ता, साहस, बुद्धिमत्ता

और मृदु भाषण से मुंशी जी साहब की सेवा करनी आरम्भ की। सेठ जी को परास्त करने का यह अपूर्व अवसर हाथ आया। वे रात और दिन इसी धुन में लगे रहते। उनकी मीठी और रोचक बातों का प्रभाव उपस्थिति जनों पर बहुत अच्छा पड़ता। एक बार आपने असाधारण श्रद्धा-उमंग में आ कर कहा—मैं डंके की चोट पर कहता हूँ कि मुंशी फैजुल रहमान से अधिक योग्य आदमी आपको दिल्ली में न मिल सकेगा। यह वह आदमी है, जिसकी गजलों पर कविजनों में 'वाह-वाह' मच जाती है। ऐसे श्रेष्ठ आदमी की सहायता करना मैं अपना जातीय और सामाजिक धर्म समझता हूँ। अत्यंत शोक का विषय है कि बहुत-से लोग इस जातीय और पवित्र काम को व्यक्तिगत लाभ का साधन बनाते हैं। धन और वस्तु है, श्रीमान् वायसराय के दरबार में प्रतिष्ठित होना और वस्तु, किंतु सामाजिक सेवा तथा जातीय चाकरी और ही चीज है। वह मनुष्य, जिसका जीवन ब्याज-प्राप्ति, बेईमानी, कठोरता तथा निर्दयता और सुख-विलास में व्यतीत होता हो, इस सेवा के योग्य कदापि नहीं है।

5

सेठ गिरधारीलाल इस अन्योक्तिपूर्ण भाषण का हाल सुन कर क्रोध से आग हो गये। मैं बेईमान हूँ ! ब्याज का धन खानेवाला हूँ ! विषयी हूँ! कुशल हुई, जो तुमने मेरा नाम नहीं लिया; किंतु अब भी तुम मेरे हाथ में हो। मैं अब भी तुम्हें जिस तरह चाहूँ, नचा सकता हूँ। खुशामदियों ने आग पर तेल डाला। इधर रामरक्षा अपने काम में तत्पर रहे। यहाँ तक कि 'वोटिंग-डे' आ पहुँचा। मिस्टर रामरक्षा को उद्योग में बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई थी। आज वे बहुत प्रसन्न थे। आज गिरधारीलाल को नीचा दिखाऊँगा, आज उसको जान पड़ेगा कि धन संसार के सभी पदार्थों को इकट्ठा नहीं कर सकता। जिस समय फैजुल रहमान के वोट अधिक निकलेंगे और मैं तालियाँ बजाऊँगा, उस समय गिरधारीलाल का चेहरा देखने योग्य होगा, मुँह का रंग बदल जायगा, हवाइयाँ उड़ने लगेंगी, आँखें न मिला सकेगा। शायद, फिर मुझे मुँह न दिखा सके। इन्हीं विचारों में मग्न रामरक्षा शाम को टाउनहाल में पहुँचे। उपस्थित जनों ने बड़ी उमंग के साथ उनका स्वागत किया। थोड़ी देर बाद 'वोटिंग' आरम्भ हुआ। मेम्बरी मिलने की आशा रखनेवाले महानुभाव अपने-अपने भाग्य का अंतिम फल सुनने के लिए आतुर हो रहे थे। छह बजे चेयरमैन ने फैसला सुनाया। सेठ जी की हार हो गयी। फैजुलरहमान ने मैदान मार लिया। रामरक्षा ने हर्ष के आवेग में टोपी हवा में उछाल दी और स्वयं भी कई बार उछल पड़े। मुहल्लेवालों को अचम्भा हुआ। चाँदनी चौक से सेठ जी को हटाना मेरु को स्थान से उखाड़ना था। सेठ जी के चेहरे से रामरक्षा को जितनी आशाएँ थीं, वे सब पूरी हो गयीं। उनका रंग फीका पड़ गया था। खेद और लज्जा की मूर्ति बने हुए थे। एक वकील साहब ने उनसे सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—सेठ जी, मुझे आपकी हार का बहुत बड़ा शोक है। मैं जानता कि खुशी के बदले रंज होगा, तो कभी यहाँ न आता। मैं तो केवल आपके खयाल से यहाँ आया था। सेठ जी ने बहुत रोकना चाहा, परंतु आँखों में आँसू डबडबा ही गये। वे निःस्पृह बनाने का व्यर्थ प्रयत्न करके बोले—वकील साहब, मुझे इसकी कुछ चिंता नहीं, कौन रियासत निकल गयी ? व्यर्थ उलझन,

चिंता तथा झंझट रहती थी, चलो, अच्छा हुआ। अपने काम में हरज होता था। सत्य कहता हूँ, मुझे तो हृदय से प्रसन्नता ही हुई। यह काम तो बेकाम वालों के लिए है, घर न बैठे रहे, यही बेगार की। मेरी मूर्खता थी कि मैं इतने दिनों तक आँखें बंद किये बैठा रहा। परंतु सेठ जी की मुखाकृति ने इन विचारों का प्रमाण न दिया। मुखमंडल हृदय का दर्पण है, इसका निश्चय अलबत्ता हो गया।

किंतु बाबू रामरक्षा बहुत देर तक इस आनन्द का मजा न लूटने पाये और न सेठ जी को बदला लेने के लिए बहुत देर तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। सभा विसर्जित होते ही जब बाबू रामरक्षा सफलता की उमंग में ऐंठते, मोंछ पर ताव देते और चारों ओर गर्व की दृष्टि डालते हुए बाहर आये, तो दीवानी के तीन सिपाहियों ने आगे बढ़कर उन्हें गिरफ्तारी का वारंट दिखा दिया। अबकी बाबू रामरक्षा के चेहरे का रंग उतर जाने की, और सेठ जी के इस मनोवांछित दृश्य से आनन्द उठाने की बारी थी। गिरधारीलाल ने आनन्द की उमंग में तालियाँ तो न बजायीं, परंतु मुस्करा कर मुँह फेर लिया। रंग में भंग पड़ गया।

आज इस विषय के उपलक्ष्य में मुंशी फैजुलरहमान ने पहले ही से एक बड़े समारोह के साथ गार्डन पार्टी की तैयारियाँ की थीं। मिस्टर रामरक्षा इसके प्रबंधकर्ता थे। आज की 'आफ्टर डिनर' स्पीच उन्होंने बड़े परिश्रम से तैयार की थी; किंतु इस वारंट ने सारी कामनाओं का सत्यानाश कर दिया। यों तो बाबू साहब के मित्रों में ऐसा कोई भी न था, जो दस हजार रुपये जमानत दे देता; अदा कर देने का तो जिक्र ही क्या; किंतु कदाचित् ऐसा होता भी तो सेठ जी अपने को भाग्यहीन समझते। दस हजार रुपये और म्युनिस्पैलिटी की प्रतिष्ठित मेम्बरी खो कर इन्हें इस समय यह हर्ष प्राप्त हुआ था।

मिस्टर रामरक्षा के घर पर ज्यों ही यह खबर पहुँची, कुहराम मच गया। उनकी स्त्री पछाड़ खा कर पृथ्वी पर गिर पड़ी। जब कुछ होश में आयी तो रोने लगी। और रोने से छुट्टी मिली तो उसने गिरधारीलाल को कोसना आरम्भ किया। देवी-देवता मनाने लगी। उन्हें रिश्वतें देने पर तैयार हुई कि ये गिरधारीलाल को किसी प्रकार निगल जायँ। इस बड़े भारी काम में वह गंगा और यमुना से सहायता माँग रही थी, प्लेग और विसूचिका की खुशामदें कर रही थी कि ये दोनों मिल कर उस गिरधारीलाल को हड़प ले जायँ ! किंतु गिरधारी का कोई दोष नहीं। दोष तुम्हारा है। बहुत अच्छा हुआ ! तुम इसी पूजा के देवता थे। क्या अब दावतें न खिलाओगे ? मैंने तुम्हें कितना समझाया, रोयी, रूठी, बिगड़ी; किन्तु तुमने एक न सुनी। गिरधारीलाल ने अच्छा किया। तुम्हें शिक्षा तो मिल गयी; किंतु तुम्हारा भी दोष नहीं। यह सब आग मैंने ही लगायी है। मखमली स्लीपरों के बिना मेरे पाँव ही नहीं उठते थे। बिना जड़ाऊ कड़ों के मुझे नींद न आती थी। सेजगाड़ी मेरे ही लिए मँगवायी थी। अंगरेजी पढ़ने के लिए मेम साहब को मैंने ही रखा। ये सब काँटे मैंने ही बोये हैं।

मिसेज रामरक्षा बहुत देर तक इन्हीं विचारों में डूबी रही। जब रात भर करवटें बदलने के बाद वह सबेरे उठी, तो उसके विचार चारों ओर से ठोकर खा कर केवल एक केंद्र पर जम गये। गिरधारीलाल बड़ा बदमाश और घमंडी है। मेरा सब कुछ ले कर भी उसे संतोष नहीं हुआ। इतना भी इस निर्दयी कसाई से न देखा गया। भिन्न-भिन्न प्रकार के विचारों ने मिल कर एक रूप धारण किया और क्रोधाग्नि को दहला कर प्रबल कर दिया।

ज्वालामुखी शीशे में जब सूर्य की किरणें एक होती हैं, तब अग्नि प्रकट हो जाती है। इस स्त्री के हृदय में रह-रह कर क्रोध की एक असाधारण लहर उत्पन्न होती थी। बच्चे ने मिठाई के लिए हठ किया; उस पर बरस पड़ी; महरी ने चौका-बरतन करके चूल्हे में आग जला दी, उसके पीछे पड़ गयी—मैं तो अपने दुःखों को रो रही हूँ, इस चुड़ैल को रोटियों की धुन सवार है। निदान नौ बजे उससे न रहा गया। उसने यह पत्र लिख कर अपने हृदय की ज्वाला ठंडी की—

'सेठ जी, तुम्हें अब अपने धन के घमंड ने अंधा कर दिया है, किन्तु किसी का घमंड इसी तरह सदा नहीं रह सकता। कभी न कभी सिर अवश्य नीचा होता है। अफसोस कि कल शाम को, जब तुमने मेरे प्यारे पति को पकड़वाया है, मैं वहाँ मौजूद न थी; नहीं तो अपना और तुम्हारा रक्त एक कर देती। तुम धन के मद में भूले हुए हो। मैं उसी दम तुम्हारा नशा उतार देती। एक स्त्री के हाथों अपमानित हो कर तुम फिर किसी को मुँह दिखाने लायक न रहते। अच्छा, इसका बदला तुम्हें किसी न किसी तरह जरूर मिल जायगा। मेरा कलेजा उस दिन ठंडा होगा, जब तुम निर्वंश हो जाओगे और तुम्हारे कुल का नाम मिट जायगा।'

सेठ जी पर यह फटकार पड़ी तो वे क्रोध से आग हो गये। यद्यपि क्षुद्र हृदय के मनुष्य न थे, परंतु क्रोध के आवेग में सौजन्य का चिह्न भी शेष नहीं रहता। यह ध्यान न रहा कि यह एक दुखिनी की क्रंदन-ध्वनि है, एक सतायी हुई स्त्री की मानसिक दुर्बलता का विचार है। उसकी धन-हीनता और विवशता पर उन्हें तनिक भी दया न आयी। मरे हुए को मारने का उपाय सोचने लगे।

6

इसके तीसरे दिन सेठ गिरधारीलाल पूजा के आसन पर बैठे हुए थे, महरा ने आ कर कहा—सरकार, कोई स्त्री आप से मिलने आयी है। सेठ जी ने पूछा—कौन स्त्री है ? महरा ने कहा—सरकार, मुझे क्या मालूम ? लेकिन है कोई भलेमानुस ! रेशमी साड़ी पहने हुए। हाथ में सोने के कड़े हैं। पैरों में टाट के स्लीपर हैं। बड़े घर की स्त्री जान पड़ती है।

यों साधारणतः सेठ जी पूजा के समय किसी से नहीं मिलते थे। चाहे कैसा ही आवश्यक काम क्यों न हो, ईश्वरोपासना में सामाजिक बाधाओं को घुसने नहीं देते थे। किन्तु ऐसी दशा में जब कि किसी बड़े घर की स्त्री मिलने के लिए आये, तो थोड़ी देर के लिए पूजा में विलम्ब करना निंदनीय नहीं कहा जा सकता, ऐसा विचार करके वे नौकर से बोले—उन्हें बुला लाओ।

जब वह स्त्री आयी तो सेठ जी स्वागत के लिए उठ कर खड़े हो गये। तत्पश्चात् अत्यंत कोमल वचनों से कारुणिक शब्दों में बोले—माता, कहाँ से आना हुआ ? और जब यह उत्तर मिला कि वह अयोध्या से आयी है, तो आपने उसे फिर से दंडवत किया और चीनी तथा मिश्री से भी अधिक मधुर और नवनीत से भी अधिक चिकने शब्दों में कहा—अच्छा, आप श्री अयोध्या जी से आ रही हैं ? उस नगरी का क्या कहना ! देवताओं की पुरी है। बड़े भाग्य थे कि आपके दर्शन हुए। यहाँ आपका आगमन कैसे हुआ ? स्त्री ने

उत्तर दिया—घर तो मेरा यहीं है। सेठ जी का मुख पुनः मधुरता का चित्र बना। वे बोले—अच्छा, तो मकान आपका इसी शहर में है ? तो आपने माया-जंजाल को त्याग दिया ? यह तो मैं पहले ही समझ गया था। ऐसी पवित्र आत्माएँ संसार में बहुत थोड़ी हैं। ऐसी देवियों के दर्शन दुर्लभ होते हैं। आपने मुझे दर्शन दिया, बड़ी कृपा की। मैं इस योग्य नहीं, जो आप-जैसी विदुषियों की कुछ सेवा कर सकूँ ? किंतु जो काम मेरे योग्य हो—जो कुछ मेरे किये हो सकता हो—उसे करने के लिए मैं सब भाँति से तैयार हूँ। यहाँ सेठ-साहूकारों ने मुझे बहुत बदनाम कर रखा है, मैं सबकी आँखों में खटकता हूँ। उसका कारण सिवा इसके और कुछ नहीं कि जहाँ वे लोग लाभ का ध्यान रखते हैं, वहाँ मैं भलाई पर रखता हूँ। यदि कोई बड़ी अवस्था का वृद्ध मनुष्य मुझसे कुछ कहने-सुनने के लिए आता है, तो विश्वास मानो, मुझसे उसका वचन टाला नहीं जाता। कुछ बुढ़ापे का विचार; कुछ उसके दिल टूट जाने का डर; कुछ यह खयाल कि कहीं यह विश्वासघातियों के फंदे में न फँस जाय, मुझे उसकी इच्छाओं की पूर्ति के लिए विवश कर देता है। मेरा यह सिद्धान्त है कि अच्छी जायदाद और कम ब्याज। किंतु इस प्रकार बातें आपके सामने करना व्यर्थ है। आप से तो घर का मामला है। मेरे योग्य जो कुछ काम हो, उसके लिए मैं सिर-आँखों से तैयार हूँ।

वृद्ध स्त्री—मेरा काम आप ही से हो सकता है।

सेठ जी—(प्रसन्न हो कर) बहुत अच्छा; आज्ञा दो।

स्त्री—मैं आपके सामने भिखारिन बन कर आयी हूँ। आपको छोड़ कर कोई मेरा सवाल पूरा नहीं कर सकता।

सेठ जी—कहिए, कहिए।

स्त्री—आप रामरक्षा को छोड़ दीजिए।

सेठ जी के मुख का रंग उतर गया। सारे हवाई किले जो अभी-अभी तैयार हुए थे, गिर पड़े। वे बोले—उसने मेरी बहुत हानि की है। उसका घमंड तोड़ डालूँगा, तब छोड़ूँगा।

स्त्री—तो क्या कुछ मेरे बुढ़ापे का, मेरे हाथ फैलाने का, कुछ अपनी बड़ाई का विचार न करोगे ? बेटा ममता बुरी होती है। संसार से नाता टूट जाय, धन जाय; धर्म जाय, किंतु लड़के का स्नेह हृदय से नहीं जाता। संतोष सब कुछ कर सकता है। किंतु बेटे का प्रेम माँ के हृदय से नहीं निकल सकता। इस पर हाकिम का, राजा का, यहाँ तक कि ईश्वर का भी बस नहीं है। तुम मुझ पर तरस खाओ। मेरे लड़के की जान छोड़ दो, तुम्हें बड़ा यश मिलेगा। मैं जब तक जीऊँगी, तुम्हें आशीर्वाद देती रहूँगी।

सेठ जी का हृदय कुछ पसीजा। पत्थर की तह में पानी रहता है; किंतु तत्काल ही उन्हें मिसेज रामरक्षा के पत्र का ध्यान आ गया। वे बोले—मुझे रामरक्षा से कोई उतनी शत्रुता नहीं थी, यदि उन्होंने मुझे न छेड़ा होता, तो मैं न बोलता। आपके कहने से मैं अब भी उनका अपराध क्षमा कर सकता हूँ ! परन्तु उसकी बीवी साहबा ने जो पत्र मेरे पास भेजा है, उसे देख कर शरीर में आग लग जाती है। दिखाऊँ आपको ! रामरक्षा की माँ ने पत्र ले कर पढ़ा तो उनकी आँखों में आँसू भर आये। वे बोलीं—बेटा, इस स्त्री ने मुझे बहुत दुःख

दिया है। उसने मुझे देश से निकाल दिया। उसका मिजाज और जबान उसके वश में नहीं; किंतु इस समय उसने जो गर्व दिखाया है; उसका तुम्हें खयाल नहीं करना चाहिए। तुम इसे भुला दो। तुम्हारा देश-देश में नाम है। यह नेकी तुम्हारे नाम को और भी फैला देगी। मैं तुमसे प्रण करती हूँ कि सारा समाचार रामरक्षा से लिखवा कर किसी अच्छे समाचार-पत्र में छपवा दूँगी। रामरक्षा मेरा कहना नहीं टालेगा। तुम्हारे इस उपकार को वह कभी न भूलेगा। जिस समय ये समाचार संवादपत्रों में छपेंगे, उस समय हजारों मनुष्यों को तुम्हारे दर्शन की अभिलाषा होगी। सरकार में तुम्हारी बड़ाई होगी और मैं सच्चे हृदय से कहती हूँ कि शीघ्र ही तुम्हें कोई न कोई पदवी मिल जायगी। रामरक्षा की अँगरेजों से बहुत मित्रता है, वे उसकी बात कभी न टालेंगे।

सेठ जी के हृदय में गुदगुदी पैदा हो गयी। यदि इस व्यवहार में वह पवित्र और माननीय स्थान प्राप्त हो जाय—जिसके लिए हजारों खर्च किये, हजारों डालियाँ दीं, हजारों अनुनय-विनय कीं, हजारों खुशामदें कीं, खानसामों की झिड़कियाँ सहीं, बंगलों के चक्कर लगाये—तो इस सफलता के लिए ऐसे कई हजार मैं खर्च कर सकता हूँ। निःसंदेह मुझे इस काम में रामरक्षा से बहुत कुछ सहायता मिल सकती है; किंतु इन विचारों को प्रकट करने से क्या लाभ ? उन्होंने कहा—माता, मुझे नाम-नमूद की बहुत चाह नहीं है। बड़ों ने कहा है—नेकी कर दरिया में डाल। मुझे तो आपकी बात का खयाल है। पदवी मिले तो लेने से इनकार नहीं; न मिले तो तृष्णा नहीं, परंतु यह तो बताइए कि मेरे रुपयों का क्या प्रबंध होगा ? आपको मालूम होगा कि मेरे दस हजार रुपये आते हैं।

रामरक्षा की माँ ने कहा—तुम्हारे रुपये की जमानत मैं करती हूँ। यह देखो, बंगाल-बैंक की पास-बुक है। इसमें मेरा दस हजार रुपया जमा है। उस रुपये से तुम रामरक्षा को कोई व्यवसाय करा दो। तुम उस दुकान के मालिक रहोगे, रामरक्षा को उसका मैनेजर बना देना। जब तक वह तुम्हारे कहे पर चले, निभाना; नहीं तो दुकान तुम्हारी है। मुझे उसमें से कुछ नहीं चाहिए। मेरी खोज-खबर लेनेवाला ईश्वर है। रामरक्षा अच्छी तरह रहे, इससे अधिक मुझे और न चाहिए। यह कह कर पास-बुक सेठ जी को दे दी। माँ के इस अथाह प्रेम ने सेठ जी को विह्वल कर दिया। पानी उबल पड़ा और पत्थर के नीचे ढँक गया। ऐसे पवित्र दृश्य देखने के लिए जीवन में कम अवसर मिलते हैं। सेठ जी के हृदय में परोपकार की एक लहर-सी उठी; उनकी आँखें डबडबा आयीं। जिस प्रकार पानी के बहाव से कभी-कभी बाँध टूट जाता है; उसी प्रकार परोपकार की इस उमंग ने स्वार्थ और माया के बाँध को तोड़ दिया। वे पास-बुक वृद्ध स्त्री को वापस दे कर बोले—माता, यह अपनी किताब लो। मुझे अब अधिक लज्जित न करो। यह देखो, रामरक्षा का नाम बही से उड़ा देता हूँ। मुझे कुछ नहीं चाहिए, मैंने अपना सब कुछ पा लिया। आज तुम्हारा रामरक्षा तुम को मिल जायगा।

इस घटना के दो वर्ष उपरांत टाउनहाल में फिर एक बड़ा जलसा हुआ। बैंड बज रहा था, झंडियाँ और ध्वजाएँ वायु-मंडल में लहरा रही थीं। नगर के सभी माननीय पुरुष उपस्थित थे। लैंडो, फिटन और मोटरों से सारा हाता भरा हुआ था। एकाएक मुश्की घोड़ों की एक फिटन ने हाते में प्रवेश किया। सेठ गिरधारीलाल बहुमूल्य वस्त्रों से सजे हुए उसमें से उतरे। उनके साथ एक फैशनेबुल नवयुवक अंग्रेजी सूट पहने मुस्कराता हुआ उतरा। ये

मिस्टर रामरक्षा थे। वे अब सेठ जी की एक खास दुकान के मैनेजर हैं। केवल मैनेजर ही नहीं, किंतु उन्हें मैनेजिंग प्रोप्राइटर समझना चाहिए। दिल्ली-दरबार में सेठ जी को रायबहादुर का पद मिला है। आज डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट नियमानुसार इसकी घोषणा करेंगे और सूचित करेंगे कि नगर के माननीय पुरुषों की ओर से सेठ जी को धन्यवाद देने के लिए यह बैठक हुई है। सेठ जी की ओर से धन्यवाद का वक्तव्य मिस्टर रामरक्षा करेंगे। जिन लोगों ने उनकी वक्तृताएँ सुनी हैं, वे बहुत उत्सुकता से उस अवसर की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

बैठक समाप्त होने पर सेठ जी रामरक्षा के साथ अपने भवन पर पहुँचे, तो मालूम हुआ कि आज वही वृद्धा स्त्री उनसे फिर मिलने आयी है। सेठ जी दौड़ कर रामरक्षा की माँ के चरणों से लिपट गये। उनका हृदय इस समय नदी की भाँति उमड़ा हुआ था।

'रामरक्षा ऐंड फ्रेंड्स' नामक चीनी बनाने का कारखाना बहुत उन्नति पर है। रामरक्षा अब भी उसी ठाट-बाट से जीवन व्यतीत कर रहे हैं; किंतु पार्टियाँ कम देते हैं और दिन भर में तीन से अधिक सूट नहीं बदलते। वे अब उस पत्र को, जो उनकी स्त्री ने सेठ जी को लिखा था, संसार की एक बहुत अमूल्य वस्तु समझते हैं और मिसेज रामरक्षा को भी अब सेठ जी के नाम को मिटाने की अधिक चाह नहीं है। क्योंकि अभी हाल में जब लड़का पैदा हुआ था, मिसेज रामरक्षा ने अपना सुवर्ण-कंकण धाय को उपहार दिया था और मनों मिठाई बाँटी थी।

यह सब हो गया; किंतु वह बात, जो अब होनी चाहिए थी, न हुई। रामरक्षा की माँ अब भी अयोध्या में रहती हैं और अपनी पुत्रवधू की सूरत नहीं देखना चाहतीं।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में 'मामता' शीर्षक से, 'जमाना', फरवरी, 1912 में प्रकाशित। उर्दू 'प्रेम पचीसी' में संकलित। हिन्दी रूप 'ममता' 'मानसरोवर' भाग-5 में संकलित।]

नसीहतों का दफ्तर

बाबू अक्षयकुमार पटना के एक वकील थे और बड़े वकीलों में समझे जाते थे। यानी रायबहादुरी के करीब पहुंच चुके थे। जैसाकि अक्सर बड़े आदमियों के बारे में मशहूर है, इन बाबू साहब का लड़कपन भी बहुत गरीबी में बीता था। मां-बाप जब अपने शैतान लड़कों को डांटते-डपटते तो बाबू अक्षयकुमार का नाम मिसाल के तौर पर पेश किया जाता था—अक्षय बाबू को देखो, आज दरवाजे पर हाथी झूमता है, कल पढ़ने को तेल नहीं मयस्सर होता था, पुआल जलाकर उसकी आंच में पढ़ते, सड़क की लालटेनों की रोशनी में सबक याद करते। विद्या इस तरह आती है। कोई-कोई कल्पनाशील व्यक्ति इस बात के भी साक्षी थे कि उन्होंने अक्षय बाबू को जुगनू की रोशनी में पढ़ते देखा है। जुगनू की दमक या पुआल की आंच में स्थाई प्रकाश हो सकता है, इसका फैसला सुनने वालों की अक्ल पर था। कहने का आशय यह कि अक्षयकुमार का बचपन का जमाना बहुत ईर्ष्या करने योग्य न था और न वकालत का जमाना खुशनसीबियों की वह बाढ़ अपने साथ लाया जिसकी उम्मीद थी। बाढ़ का जिक्र ही क्या, बरसों तक अकाल की सूरत थी। यह आशा कि

सियाह गाउन कामधेनु साबित होगा और दुनिया की सारी नेमतें उसके सामने हाथ बांधे खड़ी रहेंगी, झूठ निकली। काला गाउन काले नसीब को रोशन न कर सका। अच्छे दिनों के इंतजार में बहुत दिन गुजर गए और आखिरकार जब अच्छे दिन आए, जब गार्डन पार्टियों में शरीक होने की दावतें आने लगीं, जब वह आम जलसों में सभापति की कुर्सी पर शोभायमान होने लगे तो जवानी विदा हो चुकी थी और बालों को खिजाब की जरूरत महसूस होने लगी थी। खासकर इस कारण से कि सुंदर और हंसमुख हेमवती की खातिरदारी जरूरी थी जिसके शुभ आगमन ने बाबू अक्षयकुमार के जीवन की अंतिम आकांक्षा को पूरा कर दिया था।

2

जिस तरह दानशीलता मनुष्य के दुर्गुणों को छिपा लेती है उसी तरह कृपणता उसके सद्गुणों पर पर्दा डाल देती है। कंजूस आदमी के दुश्मन सब होते हैं, दोस्त कोई नहीं होता। हर व्यक्ति को उससे नफरत होती है। वह गरीब किसी को नुकसान नहीं पहुंचाता, आमतौर पर वह बहुत ही शांतिप्रिय, गंभीर, सबसे मिलजुल कर रहने वाला और स्वाभिमानी व्यक्ति होता है, मगर कंजूसी काला रंग है जिस पर दूसरा कोई रंग, चाहे कितना ही चटख क्यों न हो, नहीं चढ़ सकता। बाबू अक्षयकुमार भी कंजूस मशहूर थे, हालांकि जैसा कायदा है, यह उपाधि उन्हें ईर्ष्या के दरबार से प्राप्त हुई थी। जो व्यक्ति कंजूस कहा जाता हो, समझ लो कि वह बहुत भाग्यशाली है और उससे डाह करने वाले बहुत हैं। अगर बाबू अक्षयकुमार कौड़ियों को दांत से पकड़ते थे तो किसी का क्या नुकसान था। अगर उनका मकान बहुत ठाट-बाट से नहीं सजा हुआ था, अगर उनके यहां मुफ्तखोर ऊंघने वाले नौकरों की फौज नहीं थी, अगर वह दो घोड़ों की फिटन पर कचहरी नहीं जाते थे तो किसी का क्या नुकसान था। उनकी जिंदगी का उसूल था कि कौड़ियों की तुम फिक्र रखो, रुपये अपनी फिक्र आप कर लेंगे। और इस सुनहरे उसूल का कठोरता से पालन करने का उन्हें पूरा अधिकार था। इन्हीं कौड़ियों पर जवानी की बहारें और दिल की उमंगें न्यौछावर की थीं। आंखों की रोशनी और सेहत जैसी बड़ी नेमत इन्हीं कौड़ियों पर चढ़ाई थी। उन्हें दांतों से पकड़ते थे तो बहुत अच्छा करते थे, पलकों से उठाना चाहिए था।

लेकिन सुंदर, हंसमुख हेमवती का स्वभाव इसके बिल्कुल उलटा था। अपनी दूसरी बहनों की तरह वह भी सुख-सुविधा पर जान देती थी और गो बाबू अक्षयकुमार ऐसे नादान और ऐसे रूखे-सूखे नहीं थे कि उसकी कद्र करने के काबिल कमजोरियों की कद्र न करते (नहीं, वह सिंगार और सजावट की चीजों को देखकर कभी-कभी खुश होने की कोशिश भी करते थे) मगर कभी-कभी जब हेमवती उनकी नेक सलाहों की परवाह न करके सीमा से आगे बढ़ जाती थी तो उस दिन बाबू साहब को उसकी खातिर अपनी वकालत की योग्यता का कुछ-न-कुछ हिस्सा जरूर खर्च करना पड़ता था।

एक रोज जब अक्षयकुमार कचहरी से आए तो सुंदर और हंसमुख हेमवती ने एक रंगीन लिफाफा उनके हाथ में रख दिया। उन्होंने देखा तो अंदर एक बहुत नफीस गुलाबी रंग का निमंत्रण था। हेमवती से बोले—इन लोगों को एक-न-एक खब्त सूझता ही रहता है। मेरे खयाल में इस ड्रामैटिक परफारमेंस की कोई जरूरत न थी।

हेमवती इन बातों के सुनने की आदी थी, मुस्कराकर बोली—क्यों, इससे बेहतर और कौन खुशी का मौका हो सकता है ?

अक्षयकुमार समझ गए कि अब बहस-मुबाहिसे की जरूरत आ गई, संभाल बैठे और बोले—मेरी जान, बी. ए. के इम्तहान में पास होना कोई गैर-मामूली बात नहीं है, हजारों नौजवान हर साल पास होते रहते हैं। अगर मेरा भाई होता तो मैं सिर्फ उसकी पीठ ठोंककर कहता कि शाबाश, खूब मेहनत की। मुझे ड्रामा खेलने का खयाल भी न पैदा होता। डॉक्टर साहब तो समझदार आदमी हैं, उन्हें क्या सूझी !

हेमवती—मुझे तो जाना ही पड़ेगा।

अक्षयकुमार—क्यों, क्या वादा कर लिया है ?

हेमवती—डॉक्टर साहब की बीवी खुद आई थीं।

अक्षयकुमार—तो मेरी जान, तुम भी कभी उनके घर चली जाना, परसों जाने की क्या जरूरत है ?

हेमवती—अब बता ही दूं, मुझे नायिका का पार्ट दिया गया है और मैंने उसे मंजूर कर लिया है।

यह कहकर हेमवती ने गर्व से अपने पति की तरफ देखा, मगर अक्षयकुमार को इस खबर से बहुत खुशी नहीं हुई। इससे पहले दो बार हेमवती शकुन्तला बन चुकी थी। इन दोनों मौकों पर बाबू साहब को काफी खर्च करना पड़ा था। उन्हें डर हुआ कि अब की हफ्ते में फिर घोष कंपनी दो सौ का बिल पेश करेगी। और इस बात की सख्त जरूरत थी कि अभी से रोक-थाम की जाए। उन्होंने बहुत मुलायमियत से हेमवती का हाथ पकड़ लिया और बहुत मीठे और मुहब्बत में लिपटे हुए लहजे में बोले—प्यारी, यह बला फिर तुमने अपने सर ले ली। अपनी तकलीफ और परेशानी का बिल्कुल खयाल नहीं किया। यह भी नहीं सोचा कि तुम्हारी परेशानी तुम्हारे इस प्रेमी को कितना परेशान करती है। मेरी जान, यह जलसे नैतिक दृष्टि से बहुत आपत्तिजनक होते हैं। इन्हीं मौकों पर दिलों में ईर्ष्या के बीज बोए जाते हैं, यहीं पीठ पीछे बुराई करने की आदत पड़ती है और यहीं तानेबाजी और नोकझोंक की मश्क होती है। फलां लेडी हसीन है, इसलिए उसकी दूसरी बहनों का फर्ज है कि उससे जलें। मेरी जान, ईश्वर न करे कि कोई डाही बने, मगर डाह करने के योग्य बनना तो अपने अख्तियार की बात नहीं। मुझे भय है कि तुम्हारा दाहक सौंदर्य कितने ही दिलों को जलाकर राख कर देगा। प्यारी हेमू, मुझे दुख है कि तुमने मुझसे पूछे बगैर यह निमंत्रण स्वीकार कर लिया। मुझे विश्वास है, अगर तुम्हें मालूम होता कि मैं इसे पसंद न करूंगा तो तुम हर्गिज स्वीकार न करतीं।

सुंदर और हंसमुख हेमवती इस मुहब्बत में लिपटी हुई तकरीर को बजाहिर बहुत गौर से सुनती रही। इसके बाद जान-बूझकर अनजान बनते हुए बोली—मैंने तो यह सोचकर मंजूर कर लिया था कि कपड़े सब पहले ही के रखे हुए हैं, ज्यादा सामान की जरूरत न होगी, सिर्फ चंद घंटों की तकलीफ है और एहसान मुफ्त। डॉक्टरों को नाराज करना भी तो अच्छी बात नहीं है। मगर अब न जाऊंगी। मैं अभी उनको अपनी मजबूरी लिखे देती हूं। सचमुच क्या फायदा, बेकार की उलझन !

यह सुनकर कि कपड़े सब पहले के रखे हुए हैं, कुछ ज्यादा खर्च न होगा, अक्षयकुमार के

दिल पर से एक बड़ा बोझ उठ गया। डॉक्टरों को नाराज करना भी तो अच्छी बात नहीं। यह जुमला भी मानों से खाली न था। बाबू साहब पछताए कि अगर पहले से यह हाल मालूम होता तो काहे को इस तरह रूखा-सूखा उपदेशक बनना पड़ता। गर्दन हिलाकर बोले—नहीं-नहीं मेरी जान, मेरा मंशा यह हर्गिज नहीं कि तुम जाओ ही मत। जब तुम निमंत्रण स्वीकार कर चुकी हो तो अब उससे मुकरना इंसानियत से हटी हुई बात मालूम होती है। मेरी सिर्फ यह मंशा थी कि जहां तक मुमकिन हो, ऐसे जलसों से दूर रहना चाहिए।

मगर हेमवती ने अपना फैसला बहाल रखा—अब मैं न जाऊंगी। तुम्हारी बातें गिरह में बांध लीं।

3

दूसरे दिन शाम को अक्षयकुमार हवाखोरी को निकले। आनंदबाग उस वक्त जोबन पर था। ऊंचे-ऊंचे सरो और अशोक की कतारों के बीच में लाल बजरी से सजी हुई सड़क ऐसी खूबसूरत मालूम होती थी कि जैसे कमल के पत्तों में फूल खिला हुआ है या नोकदार पलकों के बीच में लाल मतवाली आंखें जेब दे रही हैं। बाबू अक्षयकुमार इस क्यारी पर हवा के हल्के-हल्के ताजगी देने वाले झोंकों का मजा उठाते हुए एक सायेदार कुंज में जा बैठे। यह उनकी खास जगह थी। इस इनायतों की बस्ती में आकर थोड़ी देर के लिए उनके दिल पर फूलों के खिलेपन और पत्तों की हरियाली का बहुत ही नशीला असर होता था। थोड़ी देर के लिए उनका दिल भी फूल की तरह खिल जाता था। यहां बैठे उन्हें थोड़ी ही देर हुई थी कि उन्हें एक बूढ़ा आदमी अपनी तरफ आता हुआ दिखाई दिया। उसने सामने आकर सलाम किया और एक मोहरदार बंद लिफाफा देकर गायब हो गया। अक्षय बाबू ने लिफाफा खोला और उसकी अंबरी महक से रूह फड़क उठी। खत का मजमून यह था—

'मेरे प्यारे अक्षय बाबू, आप इस नाचीज के खत को पढ़कर बहुत हैरत में आएंगे, मगर मुझे आशा है कि आप मेरी इस ढिठाई को माफ करेंगे। आपके आचार-विचार, आपकी सुरुचि और आपके रहन-सहन की तारीफें सुन-सुनकर मेरे दिल में आपके लिए एक प्रेम और आदर का भाव पैदा हो गया है। आपके सादे रहन-सहन ने मुझे मोहित कर लिया है। अगर हया-शर्म मेरा दामन न पकड़े होती तो मैं अपनी भावनाओं को और भी स्पष्ट शब्दों में प्रकाशित करती। साल भर हुआ कि मैंने सामान्य पुरुषों की दुर्बलताओं से निराश होकर यह इरादा कर लिया था कि शेष जीवन खुशियों का सपना देखने में काटूंगी। मैंने ढूंढ़ा मगर जिस दिल की तलाश थी, न मिला। लेकिन जब से मैंने आपको देखा है, मुद्दतों की सोई हुई उमंगें जाग उठी हैं। आपके चेहरे पर सुंदरता और जवानी की रोशनी न सही मगर कल्पना की झलक मौजूद है, जिसकी मेरी निगाह में ज्यादा इज्जत है। हालांकि मेरा खयाल है कि अगर आपको अपने बहिरंग की चिंता होती तो शायद मेरे अस्तित्व का दुर्बल अंश ज्यादा प्रसन्न होता। मगर मैं रूप की भूखी नहीं हूं। मुझे एक सच्चे, प्रदर्शन से मुक्त, सीने में दिल रखने वाले इंसान की चाह है और मैंने उसे पा लिया। मैंने एक चतुर पनडुब्बे की तरह समुंदर की तह में बैठकर उस रतन को ढूंढ़ निकाला है, मेरी आपसे केवल यह प्रार्थना है कि आप कल रात को डॉक्टर किचलू के मकान पर तशरीफ लाएं। मैं

आपका बहुत एहसान मानूंगी। वहां एक हरे कपड़े पहने स्त्री अशोकों के कुंज में आपके लिए आंखें बिछाए बैठी नजर आएगी।'

इस खत को अक्षयकुमार ने दोबारा पढ़ा। इसका उनके दिल पर क्या असर हुआ, यह बयान करने की जरूरत नहीं। वह ऋषि नहीं थे, हालांकि ऐसे नाजुक मौके पर ऋषियों का फिसल जाना भी असंभव नहीं। उन्हें एक नशा-सा महसूस होने लगा। जरूर इस परी ने मुझे यहां बैठे देखा होगा। मैंने आज कई दिनों से आईना भी नहीं देखा, जाने चेहरे की क्या कैफियत हो रही है। इस खयाल से बेचैन होकर वह दौड़े हुए एक हौज पर गए और उसके साफ पानी में अपनी सूरत देखी, मगर संतोष न हुआ। बहुत तेजी से कदम बढ़ाते हुए मकान की तरफ चले और जाते ही आईने पर निगाह दौड़ाई। हजामत साफ नहीं है और साफा कम्बख्त खूबसूरती से नहीं बांधा। मगर तब भी मुझे कोई बदसूरत नहीं कह सकता। यह जरूर कोई आला दरजे की पढ़ी-लिखी, ऊंचे विचारों वाली स्त्री है। वर्ना मामूली औरतों की निगाह में तो दौलत और रूप के सिवा और कोई चीज जंचती ही नहीं। तो भी मेरा यह फूहड़पन किसी सुरुचि-संपन्न स्त्री को अच्छा नहीं मालूम हो सकता। मुझे अब इसका ज्यादा खयाल रखना होगा। आज मेरे भाग्य जागे हैं। बहुत मुद्दत के बाद मेरी कद्र करने वाला एक सच्चा जौहरी नजर आया है। भारतीय स्त्रियां शर्म और हया की पुतली होती हैं। जब तक कि अपने दिल की हलचलों से मजबूर न हो जाएं वह ऐसा खत लिखने का साहस नहीं कर सकतीं।

इन्हीं खयालों में बाबू अक्षयकुमार ने रात काटी। पलक तक नहीं झपकी।

दूसरे दिन सुबह दस बजे तक बाबू अक्षयकुमार ने शहर की सारी फैशनेबुल दुकानों की सैर की। दुकानदार हैरत में थे कि आज बाबू साहब यहां कैसे भूल पड़े। कभी भूलकर भी न झांकते थे, यह कायापलट क्योंकर हुई ? गरज आज उन्होंने बड़ी बेदर्दी से रुपया खर्च किया और जब घर चले तो फिटन पर बैठने की जगह न थी।

हेमवती ने उनके माथे पर से पसीना साफ करके पूछा—आज सवेरे से कहां गायब हो गए ? अक्षयकुमार ने चेहरे को जरा गंभीर बनाकर जवाब दिया—आज जिगर में कुछ दर्द था, डॉक्टर चड्ढा के पास चला गया था।

हेमवती के सुंदर हंसते हुए चेहरे पर मुस्कराहट-सी आ गई, बोली—तुमने मुझसे बिल्कुल जिक्र नहीं किया ? जिगर का दर्द भयानक मर्ज है।

अक्षयकुमार—डॉक्टर साहब ने कहा है, कोई डरने की बात नहीं है।

हेमवती—इसकी दवा डॉ. किचलू के यहां बहुत अच्छी मिलती है। मालूम नहीं डॉक्टर चड्ढा मर्ज की तह तक पहुंचे भी या नहीं।

अक्षयकुमार ने हेमवती की तरफ एक बार चुभती हुई निगाहों से देखा और खाना खाने लगे। इसके बाद अपने कमरे में जाकर लेटे। शाम को जब वह पार्क, घंटाघर, आनंदबाग की सैर करते हुए फिटन पर जा रहे थे तो उनके होंठों पर लाली और गालों पर जवानी की गुलाबी झलक मौजूद थी। तो भी प्रकृति के अन्याय पर, जिसने उन्हें रूप की संपदा से वंचित रखा था, उन्हें आज जितना गुस्सा आया, शायद और कभी न आया हो। आज वह पतली नाक के बदले अपना खूबसूरत गाउन और डिप्लोमा सब कुछ देने के लिए तैयार थे।

4

डॉक्टर किचलू का खूबसूरत लताओं से सजा हुआ बंगला रात के वक्त दिन का समां दिखा रहा था। फाटक के खंभे, बरामदे की मेहराबें, सरों के पेड़ों की कतारें सब बिजली के बल्बों से जगमगा रही थीं। इंसान की बिजली की कारीगरी अपना रंगारंग जादू दिखा रही थी। दरवाजे पर शुभागमन का बंदनवार, पेड़ों पर रंग-बिरंगे पक्षी, लताओं में खिले हुए फूल, यह सब इसी बिजली की रोशनी के जलवे हैं। इसी सुहानी रोशनी में शहर के रईस इठलाते फिर रहे हैं। अभी नाटक शुरू होने में कुछ देर है। मगर उत्कंठा लोगों को अधीर करने लगी है। डॉक्टर किचलू दरवाजे पर खड़े मेहमानों का स्वागत कर रहे हैं। आठ बजे होंगे कि बाबू अक्षयकुमार बड़ी आन-बान के साथ अपनी फिटन से उतरे। डॉक्टर साहब चौंक पड़े, यह आज गूलर में कैसे फूल लग गए। उन्होंने बड़े उत्साह से आगे बढ़कर बाबू साहब का स्वागत किया और सर से पांव तक उन्हें गौर से देखा। उन्हें कभी खयाल भी न हुआ था कि बाबू अक्षयकुमार ऐसे सुंदर-सजीले कपड़े पहने हुए गबरू नौजवान बन सकते हैं। कायाकल्प का स्पष्ट उदाहरण आंखों के सामने खड़ा था।

अक्षय बाबू को देखते ही इधर-उधर से लोग आकर उनके चारों ओर जमा हो गए। हर शख्स हैरत से एक-दूसरे का मुंह ताकता था। होंठ रूमाल की आड़ ढूंढ़ने लगे, आंखें सरगोशियां करने लगीं। हर शख्स ने गैरमामूली तपाक से उनका मिजाज पूछा। शराबियों की मजलिस और पीने की मनाही करने वाले हजरते वाइज की तशरीफ-आवरी का नजारा पेश हो गया।

अक्षय बाबू बहुत झेंप रहे थे। उनकी आंखें ऊपर को न उठती थीं। इसलिए जब मिजाजपुर्सियों का तूफान दूर हुआ तो उन्होंने अपनी हरे कपड़ों वाली स्त्री की तलाश में चारों तरफ एक निगाह दौड़ाई और दिल में कहा—यह शोहदे हैं, मसखरे, मगर अभी-अभी उनकी आंखें खुली जाती हैं। मैं दिखा दूंगा कि मुझ पर भी सुंदरियों की दृष्टि पड़ती है। ऐसी सुंदरियां भी हैं जो सच्चे दिल से मेरे मिजाज की कैफियत पूछती हैं और जिनसे अपना दर्दे दिल कहने में मैं भी रंगीन-बयान हो सकता हूं। मगर उस हरे कपड़ों वाली प्रेमिका का कहीं पता न था। निगाहें चारों तरफ से घूम-घामकर नाकाम वापस आईं।

आध घंटे के बाद नाटक शुरू हुआ। बाबू साहब निराश भाव से पैर उठाते हुए थियेटर हॉल में गए और कुर्सी पर बैठ गए। बैठ क्या गए, गिर पड़े। पर्दा उठा। शकुन्तला अपनी दोनों सखियों के साथ सिर पर घड़ा रखे पौदों को सींचती हुई दिखाई दी। दर्शक बाग-बाग हो गए। तारीफों के नारे बुलंद हुए। शकुन्तला का जो काल्पनिक चित्र खिंच सकता है, वह आंखों के सामने खड़ा था—वही प्रेमिका का खुलापन, वही आकर्षक गंभीरता, वही मतवाली चाल, वही शर्मीली आंखें। अक्षय बाबू पहचान गए, यह सुंदर हंसमुख हेमवती थी।

बाबू अक्षयकुमार का चेहरा गुस्से से लाल हो गया। इसने मुझसे वादा किया था कि मैं नाटक में न जाऊंगी। मैंने घंटों उसे समझाया। अपनी असमर्थता लिखने पर तैयार थी। मगर सिर्फ दूसरों को रिझाने और लुभाने के लिए, सिर्फ दूसरों के दिलों में अपने रूप और अपनी अदाओं का जादू फूंकने के लिए, सिर्फ दूसरी औरतों को जलाने के लिए उसने मेरी नसीहतों का और अपने वादे का, यहां तक कि मेरी अप्रसन्नता का जरा भी खयाल न किया !

हेमवती ने भी उड़ती हुई निगाहों से उनकी तरफ देखा। उनके बांकपन पर उसे जरा भी ताज्जुब न हुआ। कम-से-कम वह मुस्कराई नहीं।

सारी महफिल बेसुध हो रही थी, मगर अक्षय बाबू का जी वहां न लगता था। वह बार-बार उठकर बाहर जाते, इधर-उधर बेचैनी से आंखें फाड़-फाड़ देखते और हर बार झुंझलाकर वापस आते। यहां तक कि बारह बज गए और अब मायूस होकर उन्होंने अपने आपको कोसना शुरू किया—मैं भी कैसा अहमक हूं। एक शोख औरत के चकमे में आ गया। जरूर इन्हीं बदमाशों में से किसी की शरारत होगी। यह लोग मुझे देख-देखकर कैसा हंसते थे ! इन्हीं में से किसी मसखरे ने यह शिगूफा छोड़ा है। अफसोस ! सैकड़ों रुपये पर पानी फिर गया, लज्जित हुआ सो अलग। कई मुकदमे हाथ से गए। हेमवती की निगाहों में जलील हो गया और यह सब सिर्फ इन डाहियों की खातिर ! मुझसे बड़ा अहमक और कौन होगा !

इस तरह अपने ऊपर लानत भेजते, गुस्से में भरे हुए वे फिर महफिल की तरफ चले कि एकाएक एक सरो के पेड़ के नीचे वह हरित-वसना सुंदरी उन्हें इशारे से अपनी तरफ बुलाती हुई नजर आई। खुशी के मारे उनकी बाछें खिल गईं, दिलोदिमाग पर एक नशा-सा छा गया। मस्ती से कदम उठाते, झूमते और ऐंड़ते उस स्त्री के पास आए और आशिकाना जोश के साथ बोले—ऐ रूप की रानी, मैं तुम्हारी इस कृपा के लिए हृदय से तुम्हारा कृतज्ञ हूं। तुम्हें देखने के शौक में इस अधमरे प्रेमी की आंखें पथरा गई और अगर तुम्हें कुछ देर तक और यह आंखें देख न पातीं तो तुम्हें अपने रूप के मारे हुए की लाश पर हसरत के आंसू बहाने पड़ते। कल शाम ही से मेरे दिल की जो हालत हो रही है, उसका जिक्र बयान की ताकत से बाहर है। मेरी जान, मैं कल कचहरी न गया, और कई मुकदमे हाथ से खोए। मगर तुम्हारे दर्शन से आत्मा को जो आनंद मिल रहा है, उस पर मैं अपनी जान भी न्यौछावर कर सकता हूं। मुझे अब धैर्य नहीं है। प्रेम की आग ने संयम और धैर्य को जलाकर खाक कर दिया है। तुम्हें अपने हुस्न के दीवाने से यह पर्दा करना शोभा नहीं देता। शमा और परवाना में पर्दा कैसा। ऐ रूप की खान और ऐ सौंदर्य की आत्मा ! तेरी मुहब्बत-भरी बातों ने मेरे दिल में आरजुओं का तूफान पैदा कर दिया है। अब यह दिल तुम्हारे ऊपर न्यौछावर है और यह जान तुम्हारे चरणों पर अर्पित है।

यह कहते हुए बाबू अक्षयकुमार ने आशिकों जैसी ढिठाई से आगे बढ़कर उस हरित-वसना सुंदरी का घूंघट उठा दिया और हेमवती को मुस्कराते देखकर बेअख्तियार मुंह से निकला, अरे ! और फिर कुछ मुंह से न निकला। ऐसा मालूम हुआ कि जैसे आंखों के सामने से पर्दा हट गया। बोले—यह सब तुम्हारी शरारत थी ?

सुंदर, हंसमुख हेमवती मुस्कराई और कुछ जवाब देना चाहती थी, मगर बाबू अक्षयकुमार ने उस वक्त ज्यादा सवाल-जवाब का मौका न देखा। बहुत लज्जित होते हुए बोले—हेमवती, अब मुंह से कुछ मत कहो, तुम जीतीं और मैं हार गया। यह हार कभी न भूलेगी।

['आलिम-बेअमल' शीर्षक से उर्दू में प्रथम प्रकाशन, 'जमाना', मई-जून, 1912 में प्रकाशित। हिन्दी रूप 'नसीहतों का दफ्तर' शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-1 में संकलित।]

कैफ़रे-कर्दार (कर्म-दण्ड)

आज़मगढ़ जिले में सरजू नदी के किनारे एक छोटा-सा मैदान है। उसकी दूसरी तरफ़ एक बहुत बड़ी झील है, जो यहाँ से एक मील मशरिक (पूर्व) की तरफ़ चलकर सरजू नदी से मिल गयी है। तीसरी तरफ़ एक दुश्वार गुज़ार (पार होने में कठिन) अथाह दलदल है। चौथी तरफ़ नदी के नशेबो-फ़राज़ (ऊँची-नीची) में होती हुई एक पतली-सी पगडण्डी है, जिसने इस मैदान को दुनिया का एक हिस्सा बना रखा था। इसलिए गो यह मैदान जुगराफ़ी इस्तिलाह (भौगोलिक परिभाषा) में न जज़ीरा (द्वीप) था और न जज़ीरानुमा। शायद जुगराफ़िया (भूगोल) में इसके लिए कोई अस्तिलाह (परिभाषा) मौज़ूँ नहीं है, मगर फ़िलबाकेई (सचमुच) वह एक ग़ैरआबाद, वीरान जज़ीरा (द्वीप) था, जो दुनिया से बिलकुल अलग-थलग पड़ा हुआ था। कुछ अरसे से एक अहीर ने इस वीराने को आबाद कर रखा था। नहीं मालूम, ज़मीदार ने इसे गाँव से निकाल दिया या किसी वजह से इसे आबादी से दूर रहना पड़ा। इस ग़रीब ने इस दलदली मक़ाम (स्थान) में सुकूनत (निवास) इख़्तियार की थी। यहाँ एक छोटा-सा झोंपड़ा, चन्द गायें, भैसें, भेड़-बकरियों के ग़ल्ले (झुण्ड, रेवड़) चरते नज़र आते थे। इस हौसलामंद अहीर ने, जिसे शिवराम कहते थे, एक छोटी-सी किश्ती बना रखी थी, जिस पर बैठकर वह क़रीब के क़स्बे में ऊन, घी और दूध बेचने के लिए जाया करता था। कभी-कभी मछलियों का शिकार भी खेलता। शिवराम को उस वीराने को आबाद करना मुबारक न हुआ। यहाँ आने के थोड़े ही दिनों बाद उसकी बीवी मलेरिया की नज़र हो गयी। अब उसकी सिर्फ़ एक लड़की थी, जिसके सर पर गृहस्थी का सारा बोझा था। शिवराम इस ताक़ में था कि कहीं सगाई ठहर जाय तो बेचारी गोरा के सर से यह बला टले, मगर खुदा जाने क्यों, बिरादरी में लोग उसे इज़्ज़त की निगाह से नहीं देखते थे। यही सबब था कि गोरा की उसने अब तक शादी नहीं की थी। यह एक साँवले रंग की, भोली सूरत वाली नाज़नीन (सुकुमारी) थी, जिसे हसीन तो नहीं कह सकते, मगर दिलफ़रेब (मन को छलने वाली) ज़रूर कह सकते हैं। गौरा के लिए यह झोंपड़ा क़ैदख़ाना से कम न था। सुबह से शाम तक शिवराम या तो मवेशियों के साथ रहता या बाज़ार करने जाता या मछलियाँ पकड़ता और गोरा सारा दिन अकेली बैठी कभी घर का काम-काज करती, कभी लेटती, कभी उकता कर रोती, मगर झोंपड़े से बाहर उसे निकलने की मुमानियत थी और न वह निकल सकती थी। हाँ, अब इस क़ैदे-तन्हाई से जल्द रिहाई मिलने वाली थी, क्योंकि गोरा की मँगनी एक नौजवान अहीर से हो गई थी, जो सरजू के लबे-साहिल एक दूसरे गाँव में रहता था, लेकिन जब गोरा सोचती कि मुझे अब यहाँ से जाना पड़ेगा तो उसका दिल बैठ जाता और वह ईश्वर से मनाती कि यह क़ैदे-तन्हाई हमेशा क़ायम रहे।

एक दिन शाम के वक़्त गोरा अपने झोंपड़े में बैठी हुई आईने में अपना मुँह देख रही थी। उसके ससुराल से एक सुर्ख़ साड़ी उसके लिए आई थी। गोरा ने उसे जैबेतन (पहना) किया था और आईने में देख रही थी कि यह मुझ पर खिलती है या नहीं। कभी वह आँचल को आधे सर तक रखती, कभी माथे तक। उसका चेहरा बहुत शगुफ़्ता था, क्योंकि खुशरंग साड़ी उसने कभी नहीं पहनी थी और न वह खुद अपनी निगाहों में ऐसी हसीन मालूम हुई

थी। उसे अपने भोले-भाले हुस्न का आज बहुत थोड़ा-सा अन्दाज़ा हुआ, और आईने के सामने से हटी तो उसकी आँखों में इत्मीनान और ग़रूर की दिलआवेज़ झलक मौजूद थी। उसे याद नहीं आता था कि अपने से ज़्यादा अच्छी सूरत कभी देखी है या नहीं।

इतने में दरवाज़े पर किसी के पाँवों की आहट हुई। उसने समझा, मेरे पिता आ गये हैं। जल्दी से माथा छुपा लिया और आईने को उठाकर चारपाई के नीचे डाल दिया। मगर जब बजाय उसके बाप के एक अजनबी सूरत के नौजवान ने दरवाज़ा खोलकर कमरे में झाँका तो गोरा के मुँह से एक चीख़ निकल आई और दिल धड़कने लगा। उसने काँपती हुई आवाज़ से पूछा, "तुम कौन हो ?" और यह कहकर हाथ में एक सोटा लेकर खड़ी हो गई।

नौजवान कमरे के अंदर चला आया और बहुत मिन्नत-आमेज़ लहज़े से बोला, "तुम डरो मत। मैं तुम से कुछ नहीं बोलूँगा। मुझे बहुत भूख लगी है। कुछ खाने को दो। भूख से मरा जाता हूँ।"

गोरा, "तुम कौन हो ? कहाँ से आए हो ?"

नौजवान, "एक बदनसीब आदमी हूँ और कौन हूँ ! दिनभर से जंगल की ख़ाक छान रहा हूँ। सैकड़ों आदमी मेरी तलाश में घूम रहे हैं। गाँव-गाँव मेरे खून का प्यासा हो रहा है। कल रात को हरदतपुर में एक बड़ा डाका पड़ा। वहाँ का नम्बरदार इस डाके में मारा गया। अब मुझ ग़रीब पर लोग शुबा कर रहे हैं। मगर मैं ईश्वर से कहता हूँ कि मैं इस गुनाह में बिल्कुल नहीं शरीक था। यह मेरे दुश्मनों की शरारत है। इस वक़्त मुझे क़िस्मत यहाँ ले आई। मगर यहाँ से निकलने का कोई रास्ता नहीं मिलता। जिधर जाता हूँ पानी और दलदल के सिवा कुछ नहीं सूझता। अगर उसी रास्ते से लौट जाऊँ जिधर से आया हूँ तो ज़रूर गिरफ़्तार हो जाऊंगा, क्योंकि लोग मेरी घात में लगे हुए हैं। तुम मुझे कुछ खाने को दे दो और तब मुझे यहाँ से जान लेकर भाग निकलने का कोई रास्ता बता दो। तुम्हारे दिल में रहम है। ईश्वर तुम्हें इस नेकी का बदला देंगे।"

गोरा यह सरगुज़िश्त (घटना) सुनकर काँप उठी। उसे इस नौजवान की बेगुनाही का यक़ीन न आया–"ज़रूर यह क़ातिल है। और मैं इस सुनसान जगह में उसके सामने खड़ी हूँ। यह मुझे भी मार डाले और यहाँ की सारी चीज़ें उठा ले जाय तो क्या करूँगी ? फ़रियाद भी तो नहीं कर सकती। यहाँ कौन बैठा हुआ है ? दादा न मालूम कब तक आयेंगे। या ईश्वर, तू मेरी मदद कर।" इस तरह दिल में सोचकर उसने नौजवान से कहा, "मैं तुम्हें खाने को दे दूँ तो तुम भाग जाओगे न ? जगर जल्द न भागोगे तो मेरे बाप आकर तुम्हें पकड़ लेंगे ?"

नौजवान ने जवाब दिया, "क्या तुम्हारे बाप जल्द आ जायेंगे ?"

गोरा, "हाँ, वह आते ही होंगे। तुम खाना खा लो और फ़ौरन भाग जाओ।"

यह कहकर उसने थोड़ा-मा दूध और चन्द रोटियाँ एक थाली में रखकर उसे दे दीं। नौजवान खाने पर ऐसा टूटा, गोया कभी दाने की सूरत न देखी थी। जब तक वह खाता रहा, गोरा सोटा मजबूती से पकड़े हुए उसकी तरफ़ ग़ौर से देखती रही। उसका दिल धड़क रहा था और कान शिवराम के क़दमों की आहट सुनने के लिए बेक़रार हो रहे थे। जब नौजवान खा चुका तो गोरा ने देखा कि वह इधर-उधर शरारत-आमेज़ निगाहों से ताक रहा

है, गोया किसी लाठी की तलाश में है। गोरा ने डाँट कर कहा, "अब तुम यहाँ से चले जाओ।"

नौजवान, "जाने-मन ! मैं घुड़कियाँ सुनने का आदी नहीं हूँ। तुम्हारे हाथ में सोटा देखकर मैं ज़रा भी नहीं डरता। मैं चाहूँ तो अभी तुम्हारे हाथ से वह हथियार छीन लूँ। मगर तुमने मेरे साथ नेकी की है, इसलिए मैं तुम्हें ज़्यादा तकलीफ़ नहीं दूँगा। तुम चलकर मुझे रास्ता बता दो।"

गोरा का खून सर्द हो गया। नौजवान ने जो कुछ कहा, वह बिल्कुल सही था। बोली, "यहाँ से कहाँ जाओगे ? कहीं रास्ता नहीं है।"

नौजवान, "नदी के किनारे कोई नाव नहीं है ?"

गोरा, "मेरे बाप की नाव है। मगर तुम उसे ले जाओगे तो वापस कौन लायेगा ?"

नौजवान, "उससे मुझे कोई सरोकार नहीं है। बस, तुम मुझे उस नाव तक पहुँचा दो।"

गोरा के लिए मफ़र (बचाव) की कोई सूरत न थी। वह सोटा लिए हुए नदी के किनारे चली। नौजवान पीछे-पीछे उसके साथ चला। किनारे पर पहुँच कर यकायक वो दरशत (सख़्त) लहज़े में बोला, "अपने कपड़े उतारकर मुझे दे दो। ज़नाना लिबास में मुझे कोई न पहचान सकेगा। क्यों, क्या सोचती हो ? यह मेरी शराफ़त है कि जिस चीज़ को बज़ोर ले सकता हूँ, उसके लिए तुमसे फ़कीरों की तरह सवाल करता हूँ। क्या एक इन्सान की जान बचाने के लिए इतनी-सी तकलीफ़ भी बरदाश्त नहीं करोगी ?"

बेकस और बेबस गोरा ने उस नौजवान से ज़्यादा सवाल व जवाब करना फ़िज़ूल समझा। रोते हुए उसने अपनी खुशरंग साड़ी उतार कर उसे दे दी और जल्दी से उस साफ़े को, जिसे नौजवान ने इसकी तरफ़ फेंक दिया था, पहन लिया। तब उस ज़ालिम ने साड़ी पहनी और लम्बा घूँघट निकालकर किश्ती की तरफ़ चला। यकायक कुछ सोचकर वह मुड़ा और तेज़ी से लपक कर गोरा की हाथ से डंडे को छीन लिया। गोरा खौफ़ से बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़ी और तब नौजवान ने इस बेहोशी को देर तक क़ायम रखने के लिए ज़ोर से एक डंडा उसके सिर पर मारा और किश्ती पर बैठकर एक तरफ़ को चल दिया। "अब अगर तुम्हारा बाप आया भी तो तुम न बता सकोगी कि मैं कौन हूँ और किधर गया।"

2

नौजवान डाकू तेज़ी से डाँडा चलाता हुआ चार मील तक चला आया और तब उसे किनारे पर एक गाँव के आसार नज़र आये। जाबजा (जहाँ-तहाँ) धुँधली रोशनी के चिराग़ टिमटिमा रहे थे, जिनका अक्स पानी में गुल फ़िशानी (हिलता) करता हुआ मालूम होता था। घाट पर कुछ औरतें पानी भर रही थीं। कुछ नहा रही थीं। मल्लाहों के झोंपड़ों में चूल्हे जल रहे थे। किश्तियाँ मेखों (कीलों) से बँधी हुई पानी में हिलकोरें ले रही थीं। नौजवान ने यहाँ रात बसर करने की नीयत से किश्ती किनारे पर लगा दी और उसे एक मेख (कील) से बाँधकर लपकता हुआ गाँव में जा पहुँचा। गाँवों में बिलउमूम (प्रायः) लोग सरे-शाम ही से सो जाया करते हैं। हाँ, जाबजा (जगह-जगह) बूढ़े आदमी बैठे हुए अपने हुक्के से दिल बहलाते हुए नज़र आते थे, जिससे ज़्यादा हमदर्द और ग़मगुसार (सहानुभूति रखने वाला) आलमे-जईफ़ी (वृद्धावस्था) में और कोई नहीं हो सकता। डाकू की मंशा यह थी कि अँधेरे

में कोई भला-मानस मिल जाय तो उस पर हाथ साफ़ करूँ कि वहीं ठंडा हो जाय और क़िस्मत जो कुछ दिलाये उसे लेकर नदी के किनारे अपनी किश्ती पर जा बैठूँ और दो घंटे रात रहे, फिर उठकर आगे को चल दूँ। वह इन्हीं मंसूबों में था कि दफ़अतन (सहसा) एक नौजवान लालटेन हाथ में लिये सामने से आता हुआ दिखाई दिया। उसने इस ज़नाने डाकू को देखा तो चौंक पड़ा और बोला, "कौन है, गोरा ? तुम यहाँ कहाँ ? ख़ैरियत तो है ?" यह वही आदमी था जिससे गोरा की मँगनी हुई थी। वह खुशरंग (सुवर्ण) साड़ी जो इस वक़्त क़ातिल के गुनाहों पर परदा डाले हुए थी, उसने गोरा के लिए भेजी थी। गाँव में इस वज़ा (ढंग) की साड़ी किसी दूसरी औरत के पास नहीं थी। इसलिए उसे मअन (तत्क्षण) ख़्याल गुज़रा कि शायद वह गोरा है। उसका बाप किसी काम से यहाँ आया होगा। उसके साथ वह भी चली आई होगी। नौजवान डाकू यह आवाज़ सुनते ही चौंका और क़दम तेज कर दिये, ताकि किसी (तारीक) अँधेरी गली में पहुँच जाय, मगर इस देहाती नौजवान ने लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया और बोला, "गोरा ! इस वक़्त मत शरमाओ। तुम यहाँ कैसे आयीं ? तुम्हारे दादा भी आये हैं ?"

डाकू ने अपने हाथों को झटका दिया ताकि भाग जाए।

मगर उस देहकानी नौजवान ने उसे खूब मज़बूत पकड़ा था। उसने घूँघट हटा दिया और एक मरद का चेहरा देखकर कहकहा मार कर हँसा, "वाह ! आप तो कोई भगत जी मालूम होते हैं। यह ज़नाना भेस कब से लिया ? आइये चौकीदार के यहाँ ज़रा मिजाज़पुर्सी करूँ। आज आप किसी मनहूस आदमी का मुँह देखकर उठे थे। गोवर्धन के हाथ में फँस कर चोरों का कचूमर निकल जाता है। सर का एक बाल भी नहीं रहता। वही गत तुम्हारी होगी। प्यारी गोरा के घर में सेंध डाली है। यह वही साड़ी है जो मैंने कल उसके लिए भेजी थी। क्यों, है न यही बात ?"

डाकू समझ गया कि अब यहाँ से छुटकारा पाना ग़ैरमुमकिन है। क़िस्मत ने कहाँ लाकर पटका। बोला, "ईश्वर गवाह है गोरा ने मुझ पर तरस खाकर यह साड़ी मुझे दे दी है। मैंने उसके घर में सेंध नहीं मारी। मैं चोर नहीं हूँ। ऐसी भोली औरत को मैं नुक़सान नहीं पहुँचा सकता था, चाहे चोर या क़ातिल ही क्यों न होता। जिस आदमी की हालत पर गोरा ने रहम किया है, क्या गोरा का मँगेतर उसी आदमी के गले पर छुरी फेरेगा ? मैं क़िस्मत का सताया हुआ ग़रीब आदमी हूँ। भूलता-भटकता गोरा के झोंपड़े तक जा पहुंचा। उसने मेरी राम-कहानी सुनी। उसे रहम आ गया। यह साड़ी मुझे दे दी कि किसी तरह मेरी जान बच जाय। मैं बिल्कुल सच कहता हूँ, ज़रा भी झूठ नहीं है।"

गोवर्धन फिर हँसा और बोला, "बेशक, आप बहुत सच्चे और धरमात्मा आदमी हैं। कुछ अपना हाल मुझसे भी कहो। तुम्हारा घर कहाँ है ? शिवराम के मकान पर कैसे पहुँचे? यूँ मैं नहीं छोड़ने का, समझ गए।"

डाकू, "मैं सारी कहानी कह दूँगा। कल रात को हरदतपुर में एक डाका पड़ा। लम्बरदार मारा गया। डाकू भाग गये। मगर वहाँ लोगों का शुबहा है कि मैं भी उस डाके में शरीक था। मगर वह दुश्मनों की कारिस्तानी है। ख़ामख़्वाह मेरे सर पर यह इल्ज़ाम थोप दिया। मजबूर होकर मैं भाग निकला। कल सारा दिन नालों और गड्ढों में छिपता फिरा, वरना इस वक़्त तुम्हारे सामने खड़ा न होता।"

गोवर्धन, "अच्छा, तो आप हरदतपुर के डाकुओं में हैं, यह कहिए। गोरा शायद बड़ी रहमदिल है जो डकैतों की जान बचाती फिरती है। अच्छा, यही सही। मगर उसने अपनी पुरानी साड़ी क्यों नहीं दी ? वह नयी साड़ी क्यों दी जो मैं उसके लिए बरहलगंज से तीन रुपये में लाया हूँ और जिसे पहनकर वह रानी मालूम होती है। यह बताओ, कोई अपने मँगेतर की दी हुई चीज़ को यूँ लुटाता फिरता है ?"

डाकू कुछ सिटपिटा गया। मगर सँभल कर बोला, "तुम्हारी दी हुई साड़ी तो वह खुद पहने हुए है। वह भला मुझे क्यों देती ! यह साड़ी बिल्कुल उसी रंग की है। यह उसके बाप ने उसे दी है। दोनों साड़ियाँ बिल्कुल एक रंग की हैं।"

गोवर्धन, "अच्छा, यह भी सही। तो उसने अपने बाप की नाव तुम्हें क्यों दे दी ? क्या वह इतना नहीं जानती कि नाव आप ही आप अपने ठिकाने पर नहीं चली आती? इसका जवाब दीजिए। उसको अगर नुक़सान का ख़्याल नहीं हुआ तो क्या अपने बाप का ख़ौफ़ भी न हुआ ?"

डाकू अब चौकन्ना हो गया था। बोला, "उसने मुझे कहा कि तुम नाव ले जाओ। मेरे दादा पूछेंगे तो मैं कह दूँगी एक पुरानी नाव के खो जाने से अगर किसी बेगुनाह की जान बच जाय तो उसका अफ़सोस नहीं करना चाहिए। मैं तो खुद इसे नहीं लेता था, मगर उसने ज़बरदस्ती मुझे इस पर बैठा दिया और कहने लगी, "मेरे दादा ऐसे लालची और खुदग़र्ज़ नहीं हैं। तुम इसे ले जाओ। अगर हो सके तो कल तक किसी मोतबर (विश्वस्त) आदमी की मार्फ़त भेज देना।"

गोवर्धन को अपने एतराज़ात का जवाब तो मिला, मगर दिल को इत्मीनान न हुआ, बोला, "भाई सुनो ! मुझे तुम्हारी बातों पर विश्वास नहीं आता। मुझे शक है कि तुमने ज़रूर शिवराम महतो का घर लूटा और शायद गोरा को मार भी डाला हो तो ताज्जुब नहीं। तुम डाकू हो। तुम्हारा यही पेशा है। इसलिए जब तक उसकी ज़बान पर तुम्हारी बातों की तस्दीक नहीं होगी मैं हरगिज़ न मानूँगा। अभी बहुत रात नहीं गई है। दस बजते-बजते हम लोग पहुँच जायेंगे। मुझे गोरा के देखने का एक बहाना हाथ आ जायगा। दो-चार मीठी-मीठी बातें सुनूँगा। अच्छे-अच्छे खाने खाऊँगा, और सुबह लौट आऊँगा; लेकिन अगर तुमने उसका बाल भी बाँका किया है तो तुम्हारी जान की ख़ैर नहीं। कुत्तों से बोटी-बोटी नुचवा लूँगा।"

यह कहकर गोवर्धन ने अपनी माँ को घर में बुलाया और चन्द लफ़्ज़ों में सूरते-हाल बयान करके बोला कि मैं शिवराम महतो के घर तक जाता हूँ। रात को न आऊँगा। किवाड़ बन्द कर लेना। बुड्ढी औरत ने मना किया कि रात को मत जा। डाकू है, न जाने क्या पड़े, क्या न पड़े, सुबह को जाना। मगर गोवर्धन ने उसकी तशफ़्फ़ी (तसल्ली) की और डाकू को खींचता हुआ घाट तक लाया। उसकी किश्ती खोली और उसे उसमें बैठाकर खुद डाँडा हाथ में ले लिया। पानी की धारा तेज़ थी और किश्ती को चढ़ाव की तरफ़ जाना था। आहिस्ता-आहिस्ता चलने लगी।

आध घण्टे तक इन दो आदमियों में से एक भी न बोला। यकायक डाकू ने पूछा, "अगर तुम्हें साबित हो जायगा कि मैंने शिवराम के घर में सेंध नहीं मारी तो मुझे छोड़ दोगे न ?"

गोवर्धन, "मैं अभी कुछ नहीं कह सकता। वहाँ चलकर बताऊँगा।"

डाकू, "मैं वहाँ तक इस शर्त पर चलूँगा, अगर मैंने शिवराम के घर में सेंध नहीं मारी हो और

गोरा को कोई तकलीफ़ न दी हो तो तुम मुझे छोड़ दोगे। वरना मैं यहीं नदी में कूद पड़ूँगा और तैर के कहीं निकल जाऊँगा। पुलिस के हाथों में मैं नहीं जाना चाहता।"

गोवर्धन, "तुम्हारा इख़्तियार है, जी चाहे पानी में कूद पड़ो या अपना सर पटक लो, तुम्हारी ख़ातिर से इतना कहता हूँ कि अगर तुमने वहाँ कोई शरारत नहीं की है तो तुम्हें पुलिस के हवाले न करूँगा।"

डाकू, "कसम खाओ।"

गोवर्धन, "तुम्हारे सर की कसम।"

डाकू ख़ामोश हो गया। थोड़ी देर के बाद किश्ती किनारे पर लगी और एक आवाज़ सुनायी दी, "दादा, आज तुमने इतनी देर क्यों की ?"

गोवर्धन ने आवाज़ पहचान ली और खुश-खुश डाकू का हाथ पकड़े हुए किश्ती से उतर कर बोला, "क्या अभी तुम्हारे दादा नहीं आए ? आधी रात होने को आयी है, क्या तुम यहाँ देर से खड़ी हो ?"

गोरा ने गोवर्धन को डाकू के साथ देखा तो मारे शरम के अरक़-अरक़ (पानी-पानी) हो गई। उसने सर झुका लिया और वहाँ से ज़रा हट गयी। गोवर्धन ने देखा कि उसकी साड़ी घुटने से ऊपर तक आके रह गयी है। घूँघट निकालने की कोशिश में उसकी पीठ खुली जाती है। गोरा इस वक़्त वहाँ से भाग जाना चाहती थी। अपने मँगेतर के सामने इस बुरी हैसियत से वह कभी नहीं आई थी, मगर गोवर्धन डाकू का हाथ पकड़े हुए गोरा के सामने आया और बोला, "देखो गोरा ! इस वक़्त शरमाओ मत। जब महतो आवें तो जी भरकर लजा लेना। तुम इस औरत को जानती हो ?"

गोरा ने आहिस्ता से कहा, "हाँ।"

गोवर्धन, "इसने तुम्हारे यहाँ से कोई चीज़ चुराई ?"

गोरा, "नहीं।"

गोवर्धन, "तुमने अपनी साड़ी इसे दे दी ?"

गोरा, "इसने मुझसे छीन ली।"

डाकू ने बोलना चाहा, मगर गोवर्धन ने डाँट कर उसे ख़ामोश कर दिया और फिर गोरा से जिरह करने लगा, "तुमने अपनी नाव इसे दी ?"

गोरा, "इसने ज़बरदस्ती खोल ली। मैं तो मना करती रही।"

गोवर्धन, "तुम्हें इसने मारा तो नहीं ?"

गोरा ज़बान से नहीं बोली। मगर उसकी धीमी-धीमी सिसकियाँ सुनाई दीं। गोवर्धन से अब सब्र न हो सका। उसने वही डंडा उठा लिया जो डाकू ने गोरा से छीना था और डाकू के पीछे दौड़ा। डाकू जान बचाकर भागा और उस तरफ़ जिधर अथाह दलदल था, तेज़ी से भागा हुआ चला गया। सुबह को जब लोगों ने जाकर देखा तो दलदल में उन्हें उन्हीं पैरों के निशान नज़र आए। इसके बाद एक गड्ढा-सा दिखाई दिया। लोग समझ गये कि यही उस डाकू की क़ब्र है। जैसी करनी वैसी भरनी।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में, 'अदीब', जुलाई, 1912 में प्रकाशित। हिन्दी रूप इसी शीर्षक से 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित।]

मनावन

बाबू दयाशंकर उन लोगों में थे जिन्हें उस वक्त तक सोहबत का मजा नहीं मिलता जब तक कि वह प्रेमिका की जबान की तेजी का मजा न उठाएं। रूठे हुए को मनाने में उन्हें बड़ा आनंद मिलता। फिरी हुई निगाहें कभी-कभी मुहब्बत के नशे की मतवाली आंखों से भी ज्यादा मोहक जान पड़तीं। कभी-कभी प्रेमिका की बेरुखी और तुर्शियां जोश और उमंग से भी ज्यादा आकर्षक लगतीं। झगड़ों में मिलाप से ज्यादा मजा आता। पानी में हल्के-हल्के झकोले कैसा समां दिखा जाते हैं। जब तक दरिया में धीमी-धीमी हलचल न हो सैर का लुत्फ नहीं।

अगर बाबू दयाशंकर को इन दिलचस्पियों के कम मौके मिलते थे तो यह उनका कसूर न था। गिरिजा स्वभाव से बहुत नेक और गंभीर थी, तो भी चूंकि उसे अपने पति की रुचि का अनुभव हो चुका था इसलिए वह कभी-कभी अपनी तबीयत के खिलाफ सिर्फ उनकी खातिर से उनसे रूठ जाती थी। मगर यह बे-नींव की दीवार हवा का एक झोंका भी न संभाल सकती। उसकी आंखें, उसके होंठ और उसका दिल यह बहुरूपिये का खेल ज्यादा देर तक न चला सकते। आसमान पर घटाएं आतीं मगर सावन की नहीं, कुआर की। वह डरती, कहीं ऐसा न हो कि हंसी-हंसी में रोना आ जाए। आपस की बदमजगी के खयाल से उसकी जान निकल जाती थी, मगर इन मौकों पर बाबू साहब को जैसी-जैसी रिझाने वाली घातें सूझतीं, वह काश, विद्यार्थी-जीवन में सूझी होतीं तो वह कई साल तक कानून से सिर मारने के बाद भी मामूली क्लर्क न रहते।

2

दयाशंकर को कौमी जलसों से बहुत दिलचस्पी थी। इस दिलचस्पी की बुनियाद उसी जमाने में पड़ी जब वह कानून की दरगाह के मुजाविर थे और वह अब तक कायम थी। रुपयों की थैली गायब हो गई थी मगर कंधों में दर्द मौजूद था। इस साल कांफ्रेंस का जलसा सतारा में होने वाला था। नियत तारीख से एक रोज पहले बाबू साहब सतारा को रवाना हुए। सफर की तैयारियों में इतने व्यस्त थे कि गिरिजा से बातचीत करने की फुर्सत न मिलती थी। आने वाली खुशियों की उम्मीद उस क्षणिक वियोग के खयाल के ऊपर भारी थी।

कैसा शहर होगा ! बड़ी तारीफ सुनते हैं। दकन सौंदर्य और संपदा की खान है। खूब सैर रहेगी। हजरत तो इन दिल को खुश करने वाले खयालों में मस्त थे और गिरिजा आंखों में आंसू भरे अपने दरवाजे पर खड़ी यह कैफियत देख रही थी और ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी कि इन्हें खैरियत से लाना। वह खुद एक हफ्ता कैसे काटेगी, यह खयाल बहुत ही कष्ट देने वाला था।

गिरिजा इन विचारों में व्यस्त थी और दयाशंकर सफर की तैयारियों में। यहां तक कि सब तैयारियां पूरी हो गईं। इक्का दरवाजे पर आ गया। बिस्तर और ट्रंक उस पर रख दिए गए और तब विदाई भेंट की बातें होने लगीं। दयाशंकर गिरिजा के सामने आए और मुस्कराकर बोले—अब जाता हूं।

गिरिजा के कलेजे में एक बर्छी-सी लगी। बरबस जी चाहा कि उनके सीने से लिपटकर रोऊं। आंसुओं की एक बाढ़-सी आंखों में आती हुई मालूम हुई, मगर जब्त करके बोली—जाने को कैसे कहूं, क्या वक्त आ गया ?

दयाशंकर—हां, बल्कि देर हो रही है।

गिरिजा—मंगल को शाम की गाड़ी से आओगे न ?

दयाशंकर—जरूर, किसी तरह नहीं रुक सकता। तुम सिर्फ उसी दिन मेरा इंतजार करना।

गिरिजा—ऐसा न हो भूल जाओ। सतारा बहुत अच्छा शहर है।

दयाशंकर—(हंसकर) वह स्वर्ग ही क्यों न हो, मंगल को यहां जरूर आ जाऊंगा। दिल बराबर यहीं रहेगा। तुम जरा भी न घबराना।

यह कहकर गिरिजा को गले लगा लिया और मुस्कराते हुए बाहर निकल आए। इक्का रवाना हो गया। गिरिजा पलंग पर बैठ गई और खूब रोई। मगर इस वियोग के दुःख, आंसुओं की बाढ़, अकेलेपन के दर्द और तरह-तरह के भावों की भीड़ के साथ एक और खयाल दिल में बैठा हुआ था जिसे वह बार-बार हटाने की कोशिश करती थी—क्या इनके पहलू में दिल नहीं है ! या है तो उस पर उन्हें पूरा-पूरा अधिकार है? वह मुस्कराहट जो विदा होते वक्त दयाशंकर के चेहरे पर लग रही थी, गिरिजा की समझ में नहीं आती थी।

3

सतारा में बड़ी धूमधाम थी। दयाशंकर गाड़ी से उतरे तो वर्दीपोश वालंटियरों ने उनका स्वागत किया। एक फिटन उनके लिए तैयार खड़ी थी। उस पर बैठकर वह कांफ्रेंस पंडाल की तरफ चले। दोनों तरफ झंडियां लहरा रही थीं। दरवाजे पर बंदनवारें लटक रही थीं। औरतें अपने झरोखों से और मर्द बरामदों में खड़े हो-होकर खुशी से तालियां बजाते थे। इस शान-शौकत के साथ वह पंडाल में पहुंचे और एक खूबसूरत खेमे में उतरे। यहां सब तरह की सुविधाएं एकत्र थीं। दस बजे कांफ्रेंस शुरू हुई। वक्ता अपनी-अपनी भाषा के जलवे दिखाने लगे। किसी के हंसी-दिल्लगी से भरे हुए चुटकुलों पर वाह-वाह की धूम मच गई, किसी की आग बरसाने वाली तकरीर ने दिलों में जोश की एक लहर-सी पैदा कर दी। विद्वत्तापूर्ण भाषणों के मुकाबले में हंसी-दिल्लगी और बात कहने की खूबी को लोगों ने ज्यादा पसंद किया। श्रोताओं को उन भाषणों में थियेटर के गीतों का-सा आनंद आता था।

कई दिन तक यही हालत रही और भाषणों की दृष्टि से कांफ्रेंस को शानदार कामयाबी हासिल हुई। आखिरकार मंगल का दिन आया। बाबू साहब वापसी की तैयारियां करने लगे। मगर कुछ ऐसा संयोग हुआ कि आज उन्हें मजबूरन ठहरना पड़ा। बम्बई और यू. पी. के डेलीगेटों में एक हाकी मैच की ठहर गई। बाबू दयाशंकर हाकी के बहुत अच्छे खिलाड़ी थे। वह भी टीम में दाखिल कर लिए गए थे। उन्होंने बहुत कोशिश की कि अपना गला छुड़ा लूं मगर दोस्तों ने इनकी आनाकानी पर बिल्कुल ध्यान न दिया। एक साहब जो ज्यादा बेतकल्लुफ थे, बोले—आखिर तुम्हें इतनी जल्दी क्यों है ? तुम्हारा दफ्तर अभी हफ्ता भर बंद है। बीवी साहबा की नाराजगी के सिवा मुझे इस जल्दबाजी का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। दयाशंकर ने जब देखा कि जल्दी ही मुझ पर बीवी का गुलाम

होने की फबतियां कसी जाने वाली हैं, जिससे ज्यादा अपमानजनक बात मर्द की शान में कोई दूसरी नहीं कही जा सकती, तो उन्होंने बचाव की कोई सूरत न देखकर वापसी मुल्तवी कर दी और हाकी में शरीक हो गए। मगर दिल में यह पक्का इरादा कर लिया कि शाम की गाड़ी से जरूर चले जाएंगे, फिर चाहे कोई बीवी का गुलाम नहीं, बीवी के गुलाम का बाप कहे, एक न मानेंगे।

खैर, पांच बजे खेल शुरू हुआ। दोनों तरफ के खिलाड़ी बहुत तेज थे जिन्होंने हाकी खेलने के सिवा जिंदगी में और कोई काम ही नहीं किया। खेल बड़े जोश और सरगर्मी से होने लगा। कई हजार तमाशाई जमा थे। उनकी तालियां और बढ़ावे खिलाड़ियों पर मारू बाजे का काम कर रहे थे और गेंद किसी अभागे की किस्मत की तरह इधर-उधर ठोकरें खाती फिरती थी। दयाशंकर के हाथों में तेजी और सफाई, उनकी पकड़ और बेऐब निशानेबाजी पर लोग हैरान थे। यहां तक कि जब वक्त खत्म होने में सिर्फ एक मिनट बाकी रह गया था और दोनों तरफ के लोग हिम्मतें हार चुके थे तो दयाशंकर ने गेंद ली और बिजली की तरह विरोधी पक्ष के गोल पर पहुंच गए। एक पटाखे की आवाज हुई, चारों तरफ से गोल का नारा बुलंद हुआ। इलाहाबाद की जीत हुई और इस जीत का सेहरा दयाशंकर के सिर था—जिसका नतीजा यह हुआ कि बेचारे दयाशंकर को उस वक्त भी रुकना पड़ा और सिर्फ इतना ही नहीं, सतारा अमेचर क्लब की तरफ से इस जीत की बधाई में एक नाटक खेलने का प्रस्ताव हुआ जिससे बुध के रोज भी रवाना होने की कोई उम्मीद बाकी न रही। दयाशंकर ने दिल में बहुत पेचोताब खाया मगर जबान से क्या कहते। बीवी का गुलाम कहलाने का डर जबान बंद किए हुए था। हालांकि उनका दिल कह रहा था कि अबकी देवी रूठेंगी तो सिर्फ खुशामदों से न मानेंगी।

4

बाबू दयाशंकर वादे के रोज के तीन दिन बाद मकान पर पहुंचे। सतारा से गिरिजा के लिए कई अनूठे तोहफे लाए थे, मगर उसने इन चीजों को कुछ इस तरह देखा कि जैसे उनसे उसका जी भर गया है। उसका चेहरा उतरा हुआ था और होंठ सूखे थे। दो दिन से उसने कुछ नहीं खाया था। अगर चलते वक्त दयाशंकर की आंखों से आंसू की चंद बूंदें टपक पड़ी होतीं या कम-से-कम चेहरा कुछ उदास और आवाज कुछ भारी हो गई होती तो शायद गिरिजा उनसे न रूठती। आंसुओं की चंद बूंदें उसके दिल में इस खयाल को तरोताजा रखतीं कि उनके न आने का कारण चाहे और कुछ हो, निष्ठुरता हर्गिज नहीं है। शायद हाल पूछने के लिए उसने तार दिया होता और अपने पति को अपने सामने खैरियत से देखकर वह बरबस उनके सीने से जा चिमटती और देवताओं की कृतज्ञ होती। मगर आंखों की वह बेमौका कंजूसी और चेहरे की वह निष्ठुर मुस्कान इस वक्त उसके पहलू में खटक रही थी। दिल में यह खयाल जम गया था कि मैं चाहे इनके लिए मर भी मिटूं मगर इन्हें मेरी परवाह नहीं है। दोस्तों का आग्रह और जिद केवल बहाना है। कोई जबर्दस्ती किसी को रोक नहीं सकता। खूब ! मैं तो रात की रात बैठकर काटूं और वहां मजे उड़ाये जाएं !

बाबू दयाशंकर को रूठों को मनाने में विशेष दक्षता थी और इस मौके पर उन्होंने

कोई बात, कोई कोशिश उठा नहीं रखी। तोहफे तो लाए थे मगर उनका जादू न चला। तब हाथ जोड़कर एक पैर से खड़े हुए, गुदगुदाया, तलुए सहलाए, कुछ शोखी और शरारत की, दस बजे तक इन्हीं सब बातों में लगे रहे। इसके बाद खाने का वक्त आया। आज उन्होंने रूखी रोटियां बड़े शौक से और मामूली से कुछ ज्यादा खाईं— गिरिजा, आज हफ्ते-भर के बाद रोटियां नसीब हुई हैं, सतारे में रोटियों को तरस गए। पूड़ियां खाते-खाते आंतों में बायगोले पड़ गए। यकीन मानो गिरजन, वहां कोई आराम न था, न कोई सैर, न कोई लुत्फ। सैर और लुत्फ तो महज अपने दिल की कैफियत पर मुनहसर हैं। बेफिक्री हो तो चटियल मैदान में बाग का मजा आता है और तबीयत को कोई फिक्र हो तो बाग वीराने से भी ज्यादा उजाड़ मालूम होता है। कम्बख्त दिल तो हरदम यहीं धरा रहता था, वहां मजा क्या खाक आता। तुम चाहे इन बातों को केवल बनावट समझ लो, क्योंकि मैं तुम्हारे सामने दोषी हूं और तुम्हें अधिकार है कि मुझे झूठा, मक्कार, दगाबाज, बेवफा, बात बनाने वाला जो चाहे समझ लो, मगर सच्चाई यही है जो मैं कह रहा हूं। मैं जो अपना वादा पूरा नहीं कर सका, उसका कारण दोस्तों की जिद थी।

दयाशंकर ने रोटियों की खूब तारीफ की क्योंकि पहले कई बार यह तरकीब फायदेमंद साबित हुई थी, मगर आज यह मंत्र भी कारगर न हुआ और गिरिजा के तेवर बदले ही रहे।

तीसरे पहर दयाशंकर गिरिजा के कमरे में गए और पंखा झलने लगे; यहां तक कि गिरिजा झुंझलाकर बोल उठी—अपनी नाजबरदारियां अपने ही पास रखिए। मैंने हुजूर से भर पाया। मैं तुम्हें पहचान गई, अब धोखा नहीं खाने की। मुझे न मालूम था कि मुझसे आप यों दगा करेंगे। गरज जिन शब्दों में बेवफाइयों और निष्ठुरताओं की शिकायतें हुआ करती हैं वह सब इस वक्त गिरिजा ने खर्च कर डाले।

5

शाम हुई। शहर की गलियों में मोतिये और बेले की लपटें आने लगीं। सड़कों पर छिड़काव होने लगा और मिट्टी की सोंधी खुशबू उड़ने लगी। गिरिजा खाना पकाने जा रही थी कि इतने में उसके दरवाजे पर एक इक्का आकर रुका और उसमें से एक औरत उतर पड़ी। उसके साथ एक महरी थी। उसने ऊपर आकर गिरिजा से कहा—बहूजी, आपकी सखी आ रही हैं।

यह सखी पड़ोस में रहने वाली अहलमद साहब की बीवी थीं। अहलमद साहब बूढ़े आदमी थे। उनकी पहली शादी उस वक्त हुई थी, जब दूध के दांत न टूटे थे। दूसरी शादी संयोग से उस जमाने में हुई जब मुंह में एक दांत भी बाकी न था। लोगों ने बहुत समझाया कि अब आप बूढ़े हुए, शादी न कीजिए, ईश्वर ने लड़के दिए हैं, बहुएं हैं, आपको किसी बात की तकलीफ नहीं हो सकती। मगर अहलमद साहब खुद बुड्ढे और दुनिया देखे हुए आदमी थे, इन शुभचिंतकों की सलाहों का जवाब व्यावहारिक उदाहरणों से दिया करते थे—क्यों, क्या मौत को बूढ़ों से कोई दुश्मनी है? बूढ़े गरीब उसका क्या बिगाड़ते हैं। अब बाग में जाते हैं तो मुर्झाए हुए फूल नहीं तोड़ते, हमारी आंखें तरोताजा, हरे-भरे खूबसूरत फूलों पर पड़ती हैं। कभी-कभी गजरे वगैरह बनाने के लिए कलियां भी तोड़ ली जाती हैं।

यही हालत मौत की है। क्या यमराज को इतनी समझ भी नहीं है। मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि जवान और बच्चे बूढ़ों से ज्यादा मरते हैं। मैं अभी ज्यों का त्यों हूं, मेरे तीन जवान भाई, पांच बहनें, बहनों के पति, तीनों भावजें, चार बेटे, पांच बेटियां, कई भतीजे, सब मेरी आंखों के सामने इस दुनिया से चल बसे। मौत सबको निगल गई मगर मेरा बाल बांका न कर सकी। यह गलत, बिल्कुल गलत है कि बूढ़े आदमी जल्द मर जाते हैं। और असल बात तो यह है कि जवान बीवी की जरूरत बुढ़ापे में ही होती है। बहुएं मेरे समाने निकला न चाहें और न निकल सकती हैं, भावजें खुद बूढ़ी हुईं, छोटे भाई की बीवी मेरी परछाईं भी नहीं देख सकती है, बहनें अपने-अपने घर हैं, लड़के सीधे मुंह बात नहीं करते। मैं ठहरा बूढ़ा, बीमार पड़ूं तो पास कौन फटके, एक लोटा पानी कौन दे, देखूं किसकी आंख से, जी कैसे बहलाऊं ! क्या आत्महत्या कर लूं ! या कहीं डूब मरूं! इन दलीलों के मुकाबले में किसी की जबान न खुलती थी।

गरज इस नई अहलमदिन और गिरिजा में कुछ बहनापा-सा हो गया था, कभी-कभी उससे मिलने आ जाया करती थी। अपने भाग्य पर संतोष करने वाली स्त्री थी, कभी शिकायत या रंज की एक बात जबान से न निकालती। एक बार गिरिजा ने मजाक में कहा था कि बूढ़े और जवान का मेल अच्छा नहीं होता। इस पर वह नाराज हो गई और कई दिन तक न आई। गिरिजा महरी को देखते ही फौरन आंगन में निकल आई और गो उसे इस वक्त मेहमान का आना नागवार गुजरा मगर महरी से बोली—बहन, अच्छी आईं, दो घड़ी दिल बहलेगा।

जरा देर में अहलमदिन साहब गहने से लदी हुई, घूंघट निकाले, छमछम करती हुई आंगन में आकर खड़ी हो गई। गिरिजा ने करीब आकर कहा—वाह सखी, आज तो तुम दुल्हिन बनी हो। मुझसे पर्दा करने लगी हो क्या ? यह कहकर उसने घूंघट हटा दिया और सखी का मुंह देखते ही चौंककर एक कदम पीछे हट गई। दयाशंकर ने जोर से कहकहा लगाया और गिरिजा को सीने से लिपटा लिया और विनती के स्वर में बोले—गिरजन, अब मान जाओ, ऐसी खता फिर कभी न होगी। मगर गिरजन अलग हट गई और रुखाई से बोली—तुम्हारा बहुरूप बहुत देख चुकी, अब तुम्हारा असली रूप देखना चाहती हूं।

6

दयाशंकर प्रेम-नदी की हल्की-हल्की लहरों का आनंद तो जरूर उठाना चाहते थे मगर तूफान से उनकी तबीयत भी उतना ही घबराती थी जितना गिरिजा की, बल्कि शायद उससे भी ज्यादा। हृदय-परिवर्तन के जितने मंत्र उन्हें याद थे वह सब उन्होंने पढ़े और उन्हें कारगर न होते देखकर आखिर उनकी तबीयत को भी उलझन होने लगी। यह वे मानते थे कि बेशक मुझसे खता हुई है मगर खता उनके खयाल में ऐसी दिल जलाने वाली सजाओं के काबिल न थी। मनाने की कला में वह जरूर सिद्धहस्त थे मगर इस मौके पर उनकी अक्ल ने कुछ काम न दिया। उन्हें ऐसा कोई जादू नजर नहीं आता था जो उठती हुई काली घटाओं और जोर पकड़ते हुए झोंकों को रोक दे। कुछ देर तक वह इन्हीं खयालों में खामोश खड़े रहे और फिर बोले—आखिर गिरजन, अब तुम क्या चाहती हो ?

गिरिजा ने अत्यंत सहानुभूतिशून्य बेपरवाही से मुंह फेरकर कहा—कुछ नहीं।

दयाशंकर—नहीं, कुछ तो जरूर चाहती हो वर्ना चार दिन तक बिना दाना-पानी के रहने का क्या मतलब ? क्या मुझ पर जान देने की ठानी है ? अगर यही फैसला है तो बेहतर है तुम यों जान दो और मैं कत्ल के जुर्म में फांसी पाऊं, किस्सा तमाम हो जाए। अच्छा होगा, दुनिया की परेशानियों से छुटकारा हो जाएगा।

यह मंतर बिल्कुल बेअसर न रहा। गिरिजा आंखों में आंसू भरकर बोली—तुम खामखाह मुझसे झगड़ना चाहते हो और मुझे झगड़े से नफरत है। मैं न तुमसे बोलती हूं और न चाहती हूं कि तुम मुझसे बोलने की तकलीफ गवारा करो। क्या आज शहर में कहीं नाच नहीं होता, कहीं हाकी मैच नहीं है, कहीं शतरंज नहीं बिछी हुई है ? वहीं तुम्हारी तबीयत जमती है, आप वहीं जाइए, मुझे अपने हाल पर रहने दीजिए। मैं बहुत अच्छी तरह हूं।

दयाशंकर करुण स्वर में बोले—क्या तुमने मुझे ऐसा बेवफा समझ लिया है ?

गिरिजा—जी हां, मेरा तो यही तजुर्बा है।

दयाशंकर—तो तुम सख्त गलती पर हो। अगर तुम्हारा यही खयाल है तो मैं कह सकता हूं कि औरतों की अंतर्दृष्टि के बारे में जितनी बातें सुनी हैं वह सब गलत हैं। गिरजन, मेरे भी दिल है...

गिरिजा ने बात काटकर कहा—सच, आपके भी दिल है यह आज नई बात मालूम हुई !

दयाशंकर कुछ झेंपकर बोले—खैर, जैसा तुम समझो। मेरे दिल न सही, मेरे जिगर न सही, दिमाग तो साफ जाहिर है कि ईश्वर ने मुझे नहीं दिया वर्ना वकालत में फेल क्यों होता। तो गोया मेरे शरीर में सिर्फ पेट है, मैं सिर्फ खाना जानता हूं और सचमुच है भी ऐसा ही, तुमने मुझे कभी फाका करते नहीं देखा। तुमने कई बार दिन-दिन भर कुछ नहीं खाया है, मैं पेट भरने से कभी बाज नहीं आया। लेकिन कई बार ऐसा भी हुआ है कि दिल और जिगर जिस कोशिश में असफल रहे वह इसी पेट ने पूरी कर दिखाई या यों कहो कि कई बार इसी पेट ने दिल और दिमाग और जिगर का काम कर दिखाया है और मुझे अपने इस अजीब पेट पर कुछ गर्व होने लगा था मगर अब मालूम हुआ कि मेरे पेट की बेहयाइयां लोगों को बुरी मालूम होती हैं...इस वक्त मेरा खाना न बने। मैं कुछ न खाऊंगा।

गिरिजा ने पति की तरफ देखा, चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट थी, वह यह कह रही थी कि यह आखिरी बात तुम्हें ज्यादा संभलकर कहनी चाहिए थी। गिरिजा और औरतों की तरह यह भूल जाती थी कि मर्दों की आत्मा को भी कष्ट हो सकता है। उसके खयाल में कष्ट का मतलब शारीरिक कष्ट था। उसने दयाशंकर के साथ और चाहे जो रियायत की हो, खिलाने-पिलाने में उसने कभी भी रियायत नहीं की और जब तक खाने की दैनिक मात्रा उनके पेट में पहुंचती जाए उसे उनकी तरफ से कोई ज्यादा अंदेशा नहीं होता था। हजम करना दयाशंकर का काम था। सच पूछिए तो गिरिजा ही की सख्तियों ने उन्हें हाकी का शौक दिलाया वर्ना अपने और सैकड़ों भाइयों की तरह उन्हें दफ्तर से आकर हुक्के और शतरंज से ज्यादा मनोरंजन होता था। गिरिजा ने यह धमकी सुनी तो त्योरियां चढ़ाकर बोली—अच्छी बात है, न बनेगा।

दयाशंकर दिल में कुछ झेंप-से गए। उन्हें इस बेरहम जवाब की उम्मीद न थी।

अपने कमरे में जाकर अखबार पढ़ने लगे। इधर गिरिजा हमेशा की तरह खाना पकाने में लग गई। दयाशंकर का दिल इतना टूट गया था कि उन्हें खयाल भी न था कि गिरिजा खाना पका रही होगी। इसलिए जब नौ बजे के करीब उसने आकर कहा कि चलो खाना खा लो तो वह ताज्जुब से चौंक पड़े मगर यह यकीन आ गया कि मैंने बाजी मार ली। जी हरा हुआ, फिर भी ऊपर से रुखाई से कहा—मैंने तो तुमसे कह दिया था कि आज कुछ न खाऊंगा।

गिरिजा—चलो, थोड़ा-सा खा लो।

दयाशंकर—मुझे जरा भी भूख नहीं है।

गिरिजा—क्यों ? आज भूख क्यों नहीं लगी ?

दयाशंकर—तुम्हें तीन दिन से क्यों भूख नहीं लगी ?

गिरिजा—मुझे तो इस वजह से नहीं लगी कि तुमने मेरे दिल को चोट पहुंचाई थी।

दयाशंकर—मुझे भी इस वजह से नहीं लगी कि तुमने मुझे तकलीफ दी है।

दयाशंकर ने रुखाई के साथ यह बातें कहीं और अब गिरिजा उन्हें मनाने लगी। फौरन पांसा पलट गया। अभी एक ही क्षण पहले वह उसकी खुशामदें कर रहे थे, मुजरिम की तरह उसके सामने हाथ बांधे खड़े थे, गिड़गिड़ा रहे थे, मिन्नतें करते थे और अब बाजी पलटी हुई थी, मुजरिम इंसाफ की मसनद पर बैठा हुआ था। मुहब्बत की राहें मकड़ी के जालों से भी पेचीदा हैं।

दयाशंकर ने दिल में प्रतिज्ञा की थी कि मैं भी इसे इतना ही हैरान करूंगा जितना इसने मुझे किया है और थोड़ी देर तक वह योगियों की तरह स्थिरता के साथ बैठे रहे। गिरिजा ने उन्हें गुदगुदाया, तलुए खुजलाए, उनके बालों में कंघी की, कितनी ही लुभाने वाली अदाएं खर्च कीं मगर असर न हुआ। तब उसने अपनी दोनों बांहें उनकी गर्दन में डाल दीं और याचना और प्रेम से भरी हुई आंखें उठाकर बोली—चलो मेरी कसम खा लो।

फूस की बांध बह गई। दयाशंकर ने गिरिजा को गले से लगा लिया। उसके भोलेपन और भावों की सरलता ने उनके दिल पर एक अजीब दर्दनाक असर पैदा किया। उनकी आंखें भी गीली हो गई। आह ! मैं कैसा जालिम हूं, मेरी बेवफाइयों ने इसे कितना रुलाया है, तीन दिन तक इसके आंसू नहीं थमे, आंखें नहीं झपकीं, तीन दिन तक इसने दाने की सूरत नहीं देखी मगर मेरे एक जरा से इंकार ने, झूठे नकली इंकार ने, चमत्कार कर दिखाया। कैसा कोमल हृदय है। गुलाब की पंखुड़ी की तरह, जो मुरझा जाती है मगर मैली नहीं होती। कहां मेरा ओछापन, खुदगर्जी और कहां यह बेखुदी, यह त्याग, यह साहस।

दयाशंकर के सीने से लिपटी हुई गिरिजा उस वक्त अपने प्रबल आकर्षण से उनके दिल को खींचे लेती थी। उसने जीती हुई बाजी हारकर आज अपने पति के दिल पर कब्जा पा लिया। इतनी जबर्दस्त जीत उसे कभी न हुई थी। आज दयाशंकर को मुहब्बत और भोलेपन की इस मूरत पर जितना गर्व था उसका अनुमान लगाना कठिन है। जरा देर में वह उठ खड़े हुए और बोले—एक शर्त पर चलूंगा।

गिरिजा—क्या ?

दयाशंकर—अब कभी मत रूठना।

गिरिजा—यह तो टेढ़ी शर्त है मगर...मंजूर है।

दो-तीन कदम चलने के बाद गिरिजा ने उनका हाथ पकड़ लिया और बोली— तुम्हें भी मेरी एक शर्त माननी पड़ेगी।

दयाशंकर—मैं समझ गया। तुमसे सच कहता हूं, अब ऐसा न होगा।

दयाशंकर ने आज गिरिजा को भी अपने साथ खिलाया। वह बहुत लजाई, बहुत हीले किए, कोई सुनेगा तो क्या कहेगा, यह तुम्हें क्या हो गया है। मगर दयाशंकर ने एक न मानी और कई कौर गिरिजा को अपने हाथ से खिलाए और हर बार अपनी मुहब्बत का बेदर्दी के साथ मुआवजा लिया।

खाते-खाते उन्होंने हंसकर गिरिजा से कहा—मुझे न मालूम था कि तुम्हें मनाना इतना आसान है।

गिरिजा ने नीची निगाहों से देखा और मुस्कराई, मगर मुंह से कुछ न बोली।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में, 'जमाना', जुलाई, 1912 में प्रकाशित। उर्दू 'प्रेम पचीसी' में संकलित। हिन्दी रूप 'मनावन' 'गुप्तधन' भाग-1 में संकलित।]

राजहठ

दशहरे के दिन थे, अचलगढ़ में उत्सव की तैयारियां हो रही थीं। दरबारे आम में राज्य के मंत्रियों के स्थान पर अप्सराएं शोभायमान थीं। धर्मशालाओं और सरायों में घोड़े हिनहिना रहे थे। रियासत के नौकर क्या छोटे, क्या बड़े, रसद पहुंचाने के बहाने से दरबारे आम में जमे रहते थे। किसी तरह हटाए न हटते थे। दरबारे खास में पंडित, पुजारी और महंत लोग आसन जमाए पाठ करते हुए नजर आते थे। वहां किसी राज्य के कर्मचारी की शक्ल न दिखाई देती थी। घी और पूजा की सामग्री न होने के कारण सुबह की पूजा शाम को होती थी। रसद न मिलने की वजह से पंडित लोग हवन के घी और मेवों को भोग के अग्निकुंड में डालते थे। दरबारे आम में अंग्रेजी प्रबंध था और दरबारे खास में राज्य का।

राजा देवमल बड़े हौसलेमंद रईस थे। इस वार्षिक आनंदोत्सव में वह जी खोलकर रुपया खर्च करते। जिन दिनों अकाल पड़ा, राज्य के आधे आदमी भूखों तड़पकर मर गए। बुखार, हैजा और प्लेग में हजारों आदमी हर साल मृत्यु का ग्रास बन जाते थे। राज्य निर्धन था इसलिए न वहां पाठशालाएं थीं, न चिकित्सालय, न सड़कें। बरसात में रनिवास दलदल हो जाता और अंधेरी रातों में सरेशाम से घरों के दरवाजे बंद हो जाते। अंधेरी सड़कों पर चलना जान जोखिम था। यह सब और इनसे भी ज्यादा कष्टप्रद बातें स्वीकार थीं, मगर यह कठिन था, असम्भव था कि दुर्गा देवी का वार्षिक आनंदोत्सव न हो। इससे राज्य की शान में बट्टा लगने का भय था। राज्य मिट जाए, महलों की ईंटें बिक जाएं मगर यह उत्सव जरूर हो। आसपास के राजे-रईस आमंत्रित होते, उनके शामियानों से मीलों तक संगमरमर का एक शहर बस जाता, हफ्तों तक खूब चहल-पहल, धूम-धाम रहती। इसी की बदौलत अचलगढ़ का नाम अटल हो गया था।

2

मगर कुंवर इन्दरमल को राजा साहब की इन मस्ताना कार्रवाइयों में बिल्कुल आस्था न थी। वह प्रकृति से एक बहुत गंभीर और सीधा-सादा नवयुवक था। यों गजब का दिलेर, मौत के सामने भी ताल ठोंककर उतर पड़े, मगर उसकी बहादुरी खून की प्यास से पाक थी। उसके वार बिना पर की चिड़ियों या बेजबान जानवरों पर नहीं होते थे। उसकी तलवार कमजोरों पर नहीं उठती थी। गरीबों की हिमायत, अनाथों की सिफारिशें, निर्धनों की सहायता और भाग्य के मारे हुओं के घाव की मरहम-पट्टी इन कामों से उसकी आत्मा को सुख मिलता था। दो साल हुए वह इन्दौर कॉलेज से ऊंची शिक्षा पाकर लौटा था और तब से उसका यह जोश असाधारण रूप से बढ़ा हुआ था, इतना कि वह साधारण समझदारी की सीमाओं को लांघ गया था। चौबीस साल का लंबा-तड़ंगा, हैकल जवान, धन-ऐश्वर्य के बीच पला हुआ, जिसे चिंताओं की कभी हवा तक न लगी, अगर रुलाया तो हंसी ने, वह ऐसा नेक हो, उसके मर्दाना चेहरे पर चिंतन का पीलापन और झुर्रियां नजर आएं, यह एक असाधारण बात थी। उत्सव का शुभ दिन पास आ पहुंचा था, सिर्फ चार दिन बाकी थे। उत्सव का प्रबंध पूरा हो चुका था, सिर्फ अगर कसर थी तो कहीं-कहीं दोबारा नजर डाल लेने की। तीसरे पहर का वक्त था, राजा साहब रनिवास में बैठे हुए कुछ चुनी हुई अप्सराओं का गाना सुन रहे थे। उनकी सुरीली तानों से जो खुशी हो रही थी, उससे कहीं ज्यादा खुशी यह सोचकर हो रही थी कि यह तराने पोलिटिकल एजेंट को भड़का देंगे। वह आंखें बंद करके सुनेगा और मारे खुशी के उछल-उछल पड़ेगा।

इस विचार से जो प्रसन्नता होती थी वह तानसेन की तानों में भी नहीं हो सकती थी। आह ! उसकी जबान से अनजाने ही वाह-वाह निकल पड़ेगी। अजब नहीं कि उठकर मुझसे हाथ मिलाए और मेरे चुनाव की तारीफ करे। इतने में कुंवर इन्दरमल बहुत सादा कपड़े पहने सेवा में उपस्थित हुए और सर झुकाकर अभिवादन किया। राजा साहब की आंखें शर्म से झुक गईं, मगर कुंवर साहब का इस समय आना अच्छा नहीं लगा। गानेवालियों को वहां से उठ जाने का इशारा किया।

कुंवर इन्दरमल बोले—महाराज, क्या मेरी विनती पर बिल्कुल ध्यान न दिया जाएगा ?

राजा साहब गद्दी के उत्तराधिकारी राजकुमार की इज्जत करते थे और मुहब्बत तो कुदरती बात थी, तो भी उन्हें यह बेमौका हठ पसंद न आता था। वह इतने संकीर्ण बुद्धि न थे कि कुंवर साहब की नेक सलाहों की कद्र न करें। इससे निश्चय ही राज्य पर बोझ बढ़ता जाता था और रिआया पर बहुत जुल्म करना पड़ता था। मैं अंधा नहीं हूं कि ऐसी मोटी-मोटी बातें न समझ सकूं। मगर अच्छी बातें भी मौका-महल देखकर की जाती हैं। आखिरकार नाम और यश, इज्जत और आबरू भी तो कोई चीज है ? रियासत में संगमरमर की सड़कें बनवा दूं, गली-गली मदरसे खोल दूं, घर-घर कुएं खोदवा दूं, दवाओं की नहरें जारी कर दूं मगर दशहरे की धूम-धाम से रियासत की जो इज्जत और नाम है वह इन बातों से कभी हासिल नहीं हो सकता। यह हो सकता है कि धीरे-धीरे यह खर्च घटा दूं मगर एकबारगी ऐसा करना न तो उचित है और न सम्भव। जवाब दिया—आखिर तुम क्या चाहते हो ? क्या दशहरा बिल्कुल बंद कर दूं?

इन्दरमल ने राजा साहब के तेवर बदले हुए देखे, तो बड़े आदरपूर्वक बोले—मैंने

कभी दशहरे के उत्सव के खिलाफ मुंह से एक शब्द नहीं निकाली, यह हमारा जातीय पर्व है, यह विजय का शुभ दिन है, आज के दिन खुशियां मनाना हमारा जातीय कर्त्तव्य है। मुझे सिर्फ इन अप्सराओं से आपत्ति है, नाच-गाने से इस दिन की गंभीरता और महत्ता डूब जाती है।

राजा साहब ने व्यंग्य के स्वर में कहा—तुम्हारा मतलब है कि रो-रोकर जश्न मनाएं, मातम करें !

इन्दरमल ने तीखे होकर कहा—यह न्याय के सिद्धान्तों के खिलाफ बात है कि हम तो उत्सव मनाएं और हजारों आदमी उसकी बदौलत मातम करें। बीस हजार मजदूर एक महीने से मुफ्त में काम कर रहे हैं, क्या उनके घरों में खुशियां मनाई जा रही हैं? जो पसीना बहाएं, वह रोटियों को तरसें और जिन्होंने हरामकारी को अपना पेशा बना लिया है, वह हमारी महफिलों की शोभा बनें। मैं अपनी आंखों से यह अन्याय और अत्याचार नहीं देख सकता। मैं इस पाप-कर्म में योग नहीं दे सकता। इससे तो यही अच्छा है कि मुंह छिपाकर कहीं निकल जाऊं। ऐसे राज में रहना, मैं अपने उसूलों के खिलाफ और शर्मनाक समझता हूं।

इन्दरमल ने तैश में यह धृष्टतापूर्ण बातें कीं। मगर पिता के प्रेम को जगाने की कोशिश ने राजहठ के सोये हुए काले देव को जगा दिया। राजा साहब गुस्से से भरी हुई आंखों से देखकर बोले—हां, मैं भी यही समझता हूं। तुम अपने उसूलों के पक्के हो तो मैं भी अपनी धुन का पूरा हूं।

इन्दरमल ने मुस्कराकर राजा साहब को सलाम किया। उसका मुस्कराना घाव पर नमक हो गया। राजकुमार की आंखों में कुछ बूंदें शायद मरहम का काम देतीं।

3

राजकुमार ने इधर पीठ फेरी, उधर राजा साहब ने फिर अप्सराओं को बुलाया और फिर चित्त प्रफुल्लित करने वाले गानों की आवाजें गूंजने लगीं। उनके संगीत-प्रेम की नदी कभी इतने जोर-शोर से न उमड़ी थी, वाह-वाह की बाढ़ आई हुई थी, तालियां का शोर मचा हुआ था और सुर की किश्ती उस पुरशोर दरिया में हिंडोले की तरह झूल रही थी।

यहां तो नाच-गाने का हंगामा गरम था और रनिवास में रोने-पीटने का। रानी भानकुंवर दुर्गा की पूजा करके लौट रही थीं कि एक लौंडी ने आकर यह मर्मातक समाचार दिया। रानी ने आरती का थाल जमीन पर पटक दिया। वह एक हफ्ते से दुर्गा का व्रत रखती थीं। मृगछाला पर सोती और दूध का आहार करती थीं। पांव थर्राये, जमीन पर गिर पड़ीं। मुर्झाया हुआ फूल हवा के झोंके को न सह सका। चेरियां संभल गईं और रानी के चारों तरफ गोल बांधकर छाती और सिर पीटने लगीं। कोहराम मच गया। आंखों में आंसू न सही, आंचलों से उनका पर्दा छिपा हुआ था, मगर गले में आवाज तो थी। इस वक्त उसी की जरूरत थी। उसी की बुलंदी और गरज में इस समय भाग्य की झलक छिपी हुई थी।

लौंडियां तो इस प्रकार स्वामिभक्ति का परिचय देने में व्यस्त थीं और भानकुंवर अपने खयालों में डूबी हुई थी। कुंवर से ऐसी बेअदबी क्योंकर हुई, यह खयाल में नहीं आता। उसने कभी मेरी बातों का जवाब नहीं दिया, जरूर राजा की ज्यादती है।

उसने इस नाच-रंग का विरोध किया होगा, करना ही चाहिए। उन्हें क्या, जो कुछ बनेगी-बिगड़ेगी उसके जिम्मे लगेगी। यह गुस्सेवर हैं ही। झल्ला गए होंगे। उसे सख्त-सुस्त कहा होगा। बात की उसे कहां बर्दाश्त, यही तो उसमें बड़ा ऐब है, रूठकर कहीं चला गया होगा। मगर गया कहां ? दुर्गा ! तुम मेरे लाल की रक्षा करना, मैं उसे तुम्हारे सुपुर्द करती हूं। अफसोस, यह गजब हो गया। मेरा राज्य सूना हो गया और इन्हें अपने राग-रंग की सूझी हुई है। यह सोचते-सोचते रानी के शरीर में कंपकंपी आ गई, उठकर गुस्से से कांपती हुई वह बेधड़क नाच-गाने की महफिल की तरफ चली। करीब पहुंची तो सुरीली तानें सुनाई दीं। एक बरछी-सी जिगर में चुभ गई। आग पर तेल पड़ गया।

रानी को देखते ही गानेवालियों में एक हलचल-सी मच गई। कोई किसी कोने जा छिपी, कोई गिरती-पड़ती दरवाजे की तरफ भागी। राजा साहब ने रानी की तरफ घूरकर देखा। भयानक गुस्से का शोला सामने दहक रहा था। उनकी त्योरियों पर भी बल पड़ गए। खून बरसाती हुई आंखें आपस में मिलीं। मोम ने लोहे का सामना किया।

रानी थर्राई हुई आवाज में बोली—मेरा इन्दरमल कहां गया ? यह कहते-कहते उसकी आवाज रुक गई और होंठ कांपकर रह गए।

राजा ने बेरुखी से जवाब दिया—मैं नहीं जानता।

रानी सिसकियां भरकर बोली—आप नहीं जानते कि वह कल तीसरे पहर से गायब है और उसका कहीं पता नहीं ? आपकी इन जहरीली नागिनों ने यह विष बोया है। अगर उसका बाल भी बांका हुआ तो उसके जिम्मेदार आप होंगे।

राजा ने तुर्शी से कहा—वह बड़ा घमंडी और बिनकहा हो गया है, मैं उसका मुंह नहीं देखना चाहता।

रानी कुचले हुए सांप की तरह ऐंटकर बोली—राजा, तुम्हारी जबान से यह बातें निकल रही हैं ! हाय मेरा लाल, मेरी आंखों की पुतली, मेरे जिगर का टुकड़ा, मेरा सब कुछ यों अलोप हो जाए और इस बेरहम का दिल जरा भी न पसीजे ! मेरे घर में आग लग जाए और यहां इन्द्र का अखाड़ा सजा रहे ! मैं खून के आंसू रोऊं और यहां खुशी के राग अलापे जाएं !

राजा के नथुने फड़कने लगे, कड़ककर बोले—रानी भान कुंवर, अब जबान बंद करो। मैं इससे ज्यादा नहीं सुन सकता। बेहतर होगा कि तुम महल में चली जाओ।

रानी ने बिफरी हुई शेरनी की तरह गर्दन उठाकर कहा—हां, मैं खुद जाती हूं। मैं हुजूर की ऐश में विघ्न नहीं डालना चाहती, मगर आपको इसका भुगतान करना पड़ेगा। अचलगढ़ में या तो भान कुंवर रहेगी या आपकी जहरीली, विषैली परियां !

राजा पर इस धमकी का कोई असर न हुआ। गैंडे की ढाल पर कच्चे लोहे का असर क्या हो सकता है ! जी में आया कि साफ-साफ कह दें, भान कुंवर चाहे रहे या न रहे, यह परियां जरूर रहेंगी, लेकिन अपने को रोककर बोले—तुमको अख्तियार है, जो ठीक समझो, वह करो।

रानी कुछ कदम चलकर फिर लौटी और बोली—त्रियाहठ रहेगी या राजहठ ?

राजा ने निष्कंप स्वर में उत्तर दिया—इस वक्त तो राजहठ ही रहेगी।

4

रानी भान कुंवर के चले जाने के बाद राजा देवमल फिर अपने कमरे में आ बैठे, मगर चिंतित और मन बिल्कुल बुझा हुआ, मुर्दे के समान। रानी की सख्त बातों से दिल के सबसे नाजुक हिस्सों में टीस और जलन हो रही थी। पहले तो वह अपने ऊपर झुंझलाए कि मैंने उसकी बातों को क्यों इतने धीरज से सुना, मगर जब जरा गुस्से की आग धीमी हुई और दिमाग का संतुलन फिर असली हालत पर आया तो उन घटनाओं पर अपने मन में विचार करने लगे। न्यायप्रिय स्वभाव के लोगों के लिए क्रोध एक चेतावनी होता है, जिससे उन्हें अपने कथन और आचार की अच्छाई और बुराई को जांचने और आगे के लिए सावधान हो जाने का मौका मिलता है। इस कड़वी दवा से अक्सर अनुभव को शक्ति, दृष्टि को व्यापकता और चिंतन को सजगता प्राप्त होती है। राजा सोचने लगे—बेशक रियासत के अंदरूनी हालात के लिहाज से यह सब नाच-रंग बेमौका है। बेशक वह रिआया के साथ अपना फर्ज नहीं अदा कर रहे थे। वह इन खर्चो और इस नैतिक धब्बे को मिटाने के लिए तैयार थे, मगर इस तरह कि नुक्ताचीनी करने वाली आंखें उसमें कुछ और मतलब न निकाल सकें। रियासत की शान कायम रहे। इतना इन्दरमल से उन्होंने साफ कह दिया था कि अगर इतने पर भी वह अपनी जिद से बाज नहीं आता तो यह उसकी ढिठाई है। हर एक मुमकिन पहलू से गौर करने पर राजा साहब के इस फैसले में जरा भी फेर-फार न हुआ। कुंवर का यों गायब हो जाना जरूर चिंता की बात है और रियासत के लिए उसके खतरनाक नतीजे हो सकते हैं मगर वह अपने आपको इन नतीजों की जिम्मेदारियों से बिल्कुल बरी समझते थे। वह यह मानते थे कि इन्दरमल के चले जाने के बाद उनका यह महफिलें जमाना बेमौका और दूसरों को भड़काने वाला था मगर इसका कुंवर के आखिरी फैसले पर क्या असर पड़ सकता है। कुंवर ऐसा नादान, नातजुर्बेकार और बुजदिल तो नहीं है कि आत्महत्या कर ले, हां, वह दो-चार दिन इधर-उधर आवारा घूमेगा और अगर ईश्वर ने कुछ भी विवेक उसे दिया तो वह दुःखी और लज्जित होकर जरूर चला आएगा। मैं खुद उसे ढूंढ़ निकालूंगा। वह ऐसा कठोर नहीं है कि अपने बूढ़े बाप की मजबूरी पर कुछ भी ध्यान न दे।

इन्दरमल से फारिग होकर राजा साहब का ध्यान रानी की तरफ पहुंचा और जब उसकी आग की तरह दहकती हुई बातें याद आईं तो गुस्से से बदन में पसीना आ गया और वह बेताब होकर उठकर टहलने लगे। बेशक, मैं उसके साथ बेरहमी से पेश आया। मां को अपनी औलाद ईमान से भी ज्यादा प्यारी होती है और उसका रुष्ट होना उचित था मगर इन धमकियों के क्या माने ? इसके सिवा कि वह रूठकर मैके चली जाए और मुझे बदनाम करे, वह मेरा और क्या कर सकती है ? अक्लमंदों ने कहा है कि औरत की जात बेवफा होती है, वह मीठे पानी की चंचल, चुलबुली-चमकीली धारा है। जिसकी गोद में चहकती और चिमटती है उसे बालू का ढेर बनाकर छोड़ती है। यही भान कुंवर है जिसकी नाजबरदारियां मुहब्बत का दर्जा रखती हैं। आह ! क्या वह पिछली बातें भूल जाऊं ? क्या उन्हें किस्सा समझकर दिल को तस्कीन दूं ?

इसी बीच में एक लौंडी ने आकर कहा कि महारानी ने हाथी मंगवाया है और न जाने कहां जा रही हैं। कुछ बताती नहीं। राजा ने सुना और मुंह फेर लिया।

5

शहर इन्दौर से तीन मील उत्तर की तरफ घने पेड़ों के बीच में एक तालाब है जिसके चांदी-जैसे चेहरे से काई का हरा मखमली घूंघट कभी नहीं उटता। कहते हैं किसी जमाने में उसके चारों तरफ पक्के घाट बने हुए थे। मगर इस वक्त तो सिर्फ यह जनश्रुति बाकी थी जो कि इस दुनिया में अक्सर ईंट-पत्थर की यादगारों से ज्यादा टिकाऊ हुआ करती है।

तालाब के पूरब में एक पुराना मंदिर था, उसमें शिवजी राख की धूनी रमाये खामोश बैठे हुए थे। अबाबीलें और जंगली कबूतर उन्हें अपनी मीठी बोलियां सुनाया करते। मगर उस वीराने में भी उनके भक्तों की कमी न थी। मंदिर के अंदर भरा हुआ पानी और बाहर बदबूदार कीचड़, इस भक्ति के प्रमाण थे। वह मुसाफिर जो इस तालाब में नहाता उसके एक लोटे पानी से अपने ईश्वर की प्यास बुझाता था। शिवजी खाते कुछ न थे मगर पानी बहुत पीते थे। उनकी न बुझने वाली प्यास कभी न बुझती थी।

तीसरे पहर का वक्त था। क्वार की धूप तेज थी। कुंवर इन्दरमल अपने हवा की चाल वाले घोड़े पर सवार इन्दौर की तरफ से आए और एक पेड़ की छाया में ठहर गए। वह बहुत उदास थे। उन्होंने घोड़े को पेड़ से बांध दिया और खुद जीन के ऊपर डालने वाला कपड़ा बिछाकर लेट रहे। उन्हे अचलगढ़ से निकले आज तीसरा दिन है मगर चिंताओं ने पलक तक नहीं झपकने दी। रानी भान कुंवर उसके दिल से एक पल के लिए भी दूर न होती थी। इस वक्त ठंडी हवा लगी तो नींद आ गई। सपने में देखने लगा कि जैसे रानी आई हैं और उसे गले लगाकर रो रहीं हैं। चौंककर आंखें खोलीं तो रानी सचमुच सामने खड़ी उसकी तरफ आंसू भरी आंखों से ताक रही थीं। वह उठ बैठा और मां के पैरों को चूमा। मगर रानी ने ममता से उठाकर गले लगा लेने के बजाए अपने पांव हटा लिए और मुंह से कुछ न बोलीं।

इन्दरमल ने कहा—मांजी, आप मुझसे नाराज हैं ?

रानी ने रुखाई से जवाब दिया—मैं तुम्हारी कौन होती हूं !

कुंवर—आपको यकीन आए न आए, मैं जब से अचलगढ़ से चला हूं, एक पल के लिए भी आपका खयाल दिल से दूर नहीं हुआ। अभी आप ही को सपने में देख रहा था।

इन शब्दों ने रानी का गुस्सा ठंडा किया। कुंवर की ओर से निश्चिंत होकर अब वह राजा का ध्यान कर रही थी। उसने कुंवर से पूछा—तुम तीन दिन कहां रहे ?

कुंवर ने जवाब दिया—क्या बताऊं, कहां रहा। इन्दौर चला गया था। वहां पोलिटिकल एजेंट से सारी कथा कह सुनाई।

रानी ने यह सुना तो माथा पीटकर बोली—तुमने गजब कर दिया। आग लगा दी।

इन्दरमल—क्या करूं, खुद पछताता हूं। उस वक्त यही धुन सवार थी।

रानी—मुझे जिन बातों का डर था वह सब हो गई। अब कौन मुंह लेकर अचलगढ़ जाएंगे।

इन्दरमल—मेरा जी चाहता है कि अपना गला घोंट लूं।

रानी—गुस्सा बुरी बला है। तुम्हारे आने के बाद मैंने रार मचाई और कुछ यही इरादा करके इन्दौर जा रही थी, रास्ते में तुम मिल गए।

यह बातें हो ही रही थीं कि सामने से बहेलियों और सांड़नियों की एक लंबी कतार

आती हुई दिखाई दी। सांड़नियों पर मर्द सवार थे। सुरमा लगी आंखों वाले, पेचदार ज़ुल्फों वाले। बहलियों में हुस्न के जलवे थे। शोख निगाहें, बेधड़क चितवनें। यह उन नाच-रंग वालों का काफिला था जो अचलगढ़ से निराश और खिन्न चला आता था। उन्होंने रानी की सवारी देखी और कुंवर का घोड़ा पहचान लिया। घमंड से सलाम किया मगर बोले नहीं। जब वह दूर निकल गए तो कुंवर ने जोर से कहकहा मारा। यह विजय का नारा था।

रानी ने पूछा—यह क्या कायापलट हो गई ? यह सब अचलगढ़ से लौटे आते हैं और ऐन दशहरे के दिन ?

इन्दरमल बड़े गर्व से बोले—यह पोलिटिकल एजेंट के इंकारी तार के करिश्मे हैं। मेरी चाल बिल्कुल ठीक पड़ी।

रानी का संदेह दूर हो गया। जरूर यही बात है। यह इंकारी तार की करामात है। वह बड़ी देर तक बेसुध-सी जमीन की तरफ ताकती रही और उसके दिल में बार-बार यह सवाल पैदा होता था, क्या इसी का नाम राजहठ है ?

आखिर इन्दरमल ने खामोशी तोड़ी—क्या आज चलने का इरादा है कि कल ?

रानी—कल शाम तक हमको अचलगढ़ पहुंचना है, महाराज घबराते होंगे।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'जमाना', सितम्बर, 1912 में प्रकाशित। उर्दू 'प्रेम पचीसी' में संकलित। हिन्दी रूप इसी नाम से 'गुप्तधन' भाग-1 में संकलित।]

धोखे की टट्टी

लाल मिर्च देखने में कैसी खूबसूरत होती है, मगर खाने में कैसी कड़वी ! सुरेन्द्र की भी यही कैफ़ियत थी, देखने में बहुत खुशवज़ा (परम्परा पर दृढ़) खुशलिबास (चारु-वेष), ज़बान का बहुत मीठा, दोस्तों में बहुत हरदिल-अज़ीज़, मगर बला का नफ़्सपरवर (विषय-लोलुप, ऐयाश), बदइख़्लाक, शरीर (उपद्रवी)। मदरसे की एण्ट्रेंस जमात में पढ़ता था। सिन (आयु) सोलह साल से ज़ियादा न था, मगर मिज़ाज में अभी से आवारगी का दख़ल हो चला था। शराब की लज़्ज़तों (मज़े, लुत्फ़) से ज़बान मानूस (भयमुक्त) हो चुकी थी और घर के सन्दूक खोलकर रुपये चुरा लेना तो एक मामूली बात थी। वाल्देन समझा-बुझाकर हार गये, स्कूल मास्टरों ने मारपीट, जुर्माना, सब-कुछ अज़मा देखा, मगर सुरेन्द्र ने जो रविश (चाल-चलन, आचार-व्यवहार) अख़्तियार की थी, उसमें ज़रा भी न मुड़ा। शहर में कहीं बारात आये, कहीं नाच हो, कहीं ऐशो-तरब (भोग-विलास एवं आनन्द) की महफ़िल सजे, सुरेन्द्र का वहाँ पहुँचना शर्ती अम्र (अनिवार्य कार्य) था। उसे कभी किसी ने किताब पढ़ते न देखा, मगर ताज्जुब यह था कि वह हर साल इम्तिहान में कामयाब हो जाता था। इसका राज़ वजज़ (अतिरिक्त) उसके ख़ास दोस्तों को और कोई न जानता था। हाँ, इम्तिहान के दिनों में वह हेडमास्टर और दीगर मास्टरों के मुलाज़िमों से ज़ियादा रब्तोज़ब्त (मित्रता) कर लेता। आम वाल्देन उस वक़्त तक लड़कों की तरफ़ से मायूस नहीं होते, जब तक वो एक ही दर्जे में बराबर फेल न हों। सुरेन्द्र ये नौबत नहीं आने देता था और इसलिए उसके

वालिद, जो एक बहुत मुत्मइन (बेफ़िक्र) आदमी थे, उससे ज़ियादा बाज़पुर्स (पूछताछ) न करते। सुरेन्द्र में एक बड़ा वस्फ़ (गुण) यह था की उसकी निगाह इंसान के कमज़ोर हिस्से पर बहुत जल्द जा पहुँचती थी और इस वस्फ़ से उसका बहुत काम निकलता। कोई स्कूल-मास्टर ऐसा न था, जिसके दाग़ और धब्बे उस पर रोशन न हों। इस गुर ने उसे एण्ट्रेंस तक निभाहा। यहाँ तक कि एण्ट्रेंस का सालाना इम्तिहान आया, सुरेन्द्र ने इस मौक़े के लिए बड़े एहतिमाम (प्रबन्ध) किये थे। अब स्कूल-मास्टर उसके ख़ैर-अंदेश (शुभचिन्तक) बन गये थे। कामयाबी की सब सूरतें उसके मुआफ़िक़ (अनुकूल) थीं। मगर ऐन उस वक़्त जबकि उसकी दुज़्दीदी निगाहें (चुराई हुई नज़रें) दौड़-दौड़कर बरसों का काम लम्हों में पूरा किये देती थीं, एक गरजती हुई आवाज़ उसके कान में आई, ''सुरेन्द्र, कलम रख दो। तुम्हें अब लिखने की इज़ाज़त नहीं है।''

सुरेन्द्र ने माथा पीट लिया। यह हेडमास्टर साहब थे। इश्तहारी मुज़रिम गिरफ़्तार हो गया और उसका नाम स्कूल से खारिज कर दिया गया।

2

सुरेन्द्र के लिए अब वजज़ (अतिरिक्त) इसके और कोई चारा न था कि कहीं और तालीम का सिलसिला क़ायम करे, मगर इस हादिसे ने उसके दिल पर कोई इस्लाहबख़्श (सुधारपूर्ण) असर नहीं पैदा किया। इसने तो मुँह माँगी मुराद पाई। उसे अब नई दुनिया देखने का, नई दिलचस्पियों के लुत्फ़ उठाने का, नये दोस्तों की सोहबत का मौक़ा हाथ आया। किसी दूसरी सूरत में ये आरज़ुएँ मुश्किल से पूरी होतीं। अब वो खुद-ब-खुद उसके रूबरू दस्तबस्ता (हाथ बाँधे हुए) खड़ी थीं। वह जिस वक़्त मदरसे से चला, उसका चेहरा कुछ तमतमाया हुआ था, मगर ये गुस्सा बहुत जल्द ठण्डा हो गया। खुश होकर कहा, ''मुल्के खुदा तंगनेस्त (ईवर की दृष्टि इतनी संकुचित नहीं है)।'' लेकिन अब कलकत्ता-यूनिवर्सिटी में दाख़िला ग़ैर-मुमकिन था और इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी में कोई सूरत न निकली, इसलिए सीधा लाहौर जा पहुँचा और वहाँ एक मदरसे में शरीक हो गया। क्रिकेट का ज़बरदस्त खिलाड़ी, फुटबॉल में मुशाक (सिद्धहस्त), शक्लो-सूरत का जण्टलमैंन, फ़राख़दिल (दिल खोलकर खर्च करने वाला, बुलन्द-हौसला)। ऐसा तालिबे-इल्म (विद्यार्थी) जहाँ जाये, उसे दोस्तों की कमी न रहेगी। लाहौर में बहुत जल्द दोस्तों की काफ़ी तादाद हो गई और फिर वही चहचहे और कहकहे उड़ने लगे, मगर ज़रा एतिहात के साथ, शर्म का पर्दा रक्खे हुए। सुबह को बाग़ों की सैर, शाम को क्रिकेट और फुटबॉल। रात को रिंदी-ओ-मेनोशी (शराब के दौर), फिर तरन्नुम परवाजियों के मशग़ले (वेश्या-नृत्यों में तल्लीनता)। कभी-कभी इन्हीं अगशल (धंधों) में रातें गुज़र जातीं, मगर ये सब आज़ादियाँ और मस्तियाँ चंद वर्जिदा (अभ्यस्त), मोत्तेमद (विश्वासी) अहबाब (मित्रों) तक मरदूद थीं, वरना आमतौर पर ये हज़रत बहुत फिरिश्तासिफ़्त (दैवीय गुण-संपन्न), मोहतात (सँभलकर चलने वाला), हलीम-ओ-सलीम (सहनशील एवं शांतिप्रिय) मशहूर थे। यहाँ तक कि कॉलेज के प्रिंसिपल मि. काटन, जबकि लड़कियों के मदरसे का मुआइना करने जाते तो कभी-कभी सुरेन्द्र को अपनी इम्दाद के लिए साथ ले जाते। मुबारक होता वो दिन जब बाँका, सजीला सुरेन्द्र लड़कियों के मदरसे में दाख़िल होता, हेड मिस्ट्रेस मिस गुप्ता का

मुस्कराकर उससे हाथ मिलाना, आह ! उस कफ़े-बलोरीन (नर्म हथेलियों) का उसके हाथ में आना आँखों में नशे के एक तूफ़ान का आना था। उसका दिल उमंग से फूल उठता और दिल की फ़रहत (प्रसन्नता) और शिगुफ़्तगी (खिलावट) उसकी सूरते-ज़ेबा (मनोरम आकृति) का रंग और भी चोखा कर देती। फिर ये एक कुदरती बात थी कि मिस गुप्ता को उसकी होने वाली बीवी पर रश्क़ आता।

एक दिन सुरेन्द्र कॉलेज से आ रहा था कि कलकत्ता के एक पुराने रफ़ीक़ (दोस्त) से आँखें चार हुईं। ये बाबू हरिमोहन थे। उन्हें देखते ही सुरेन्द्र का खून सर्द हो गया। हरिमोहन उसकी नाहमवारियों (अशिटताओं, उजड्डपन) के करिमे अपनी आँखों से देख चुके थे। बहुत घबराया, मगर तपाक से बढ़कर सलाम किया और ख़ैरो-आफ़ियत पूछीं। हरिमोहन ने उसे सिर से पैर तक देखा। ख़ाका वही था, मगर रंग नया। कुछ इधर-उधर की बातें हुई। जब अलेहदा होने लगे तो सुरेन्द्र ने बहुत मिन्नत-आमेज़ लहज़े में कहा, "भाई साहब, जिसे खुदा ने ख़राब बनाया है, वह कभी अच्छा नहीं हो सकता। मैंने बहुत कोशिश की कि नेकबख़्त बन जाऊँ, मगर ना बन सका। हॉ, नेकबख़्ती की शोहरत हासिल कर ली। यहाँ बजज़ आपके कोई दूसरा मेरे हालात से वाक़िफ़ नहीं है। इसलिए मुझ ग़रीब पर नज़रे-इनायत रखियेगा। आप चाहें तो बात की बात में मेरा रंग फीका कर सकते हैं। मैं बिल्कुल आपके बस में हूँ, मगर मुझे आप पर भरोसा है। आपको मैं हमेशा अपना बुज़ुर्ग और ख़ैर-अंदेश समझता रहा हूँ।"

सुरेन्द्र की बारीक निगाहें हरिमोहन के कमज़ोर हिस्से पर जा पहुँचीं। उनके चेहरे पर हमदर्दाना (सहानुभूतिपूर्ण) मुस्कराहट नज़र आई। बोले, "मुझे तुम हमेशा अपना दोस्त समझना।"

3

सुरेन्द्र ने लाहौर में एक बड़ा काम सर-अंजाम किया। उसने एक 'यंगमैन यूनियन' कायम कर ली और खुद उसका सेक्रेटरी बन बैठा। इस यूनियन के मक़सद (उद्देश्य) बहुत आला थे, नौजवानों के आदाब-ओ-इख़्लाक़ की तहज़ीब, इल्मी और अमली तरक्क़ी, इत्तिफ़ाके-बाहमी। (पारस्परिक एकता और मैत्री) की इशाअत (प्रचार-प्रसार) वग़ैरा। मेम्बरों को कुछ माहवारी चन्दा देना पड़ता और अज़रुए-हल्फ़ (शपथ के अनुसार) इक़रार करना पड़ता कि मैं इस यूनियन के किसी मेम्बर को किसी आफ़त में देखूँगा। तो हर मुमकिन सूरत से उसकी मदद करूँगा। चन्दा की रक़म से चन्द अख़बार आते और जो कुछ बचता वो कारे-ख़ैर (भलाई के कामों) में सर्फ़ होता। इस काम में सुरेन्द्र को शानदार कामयाबी हासिल हुई। एक माह के अन्दर यूनियन में पचास से ज़ियादा मेम्बर हो गये। पच्चीस रुपये माहवार चन्दा आने लगा। पाँच यतीमों और कई बेवाओं की परवरिश होने लगी। इस कामयाबी का सेहरा मिस्टर सेक्रेटरी के सिर था, जिसकी शोहरत दिन दूनी और रात चौगुनी हुई जाती थी। प्रिंसिपल कॉटन उसे पहले ही से मानते थे, अब मुरीद (भक्त) हो गये। शहर में यूनियन की चर्चा होने लगा, मगर ये शानदार नाम का यूनियन बजज़ शोहदों की एक जमात के और कुछ नहीं था। मुख़्तलिफ़ कॉलेजों के जितने औबश (लम्पट लोग, शोहदे), आवारामिज़ाज, बदवज़ा (अशिष्ट शील-स्वभाव), बदकुमाश (दुराचारी), सैलानी तुलबा

(विद्यार्थीगण) ये सब इसके मेम्बर थे। यूनियन का कमरा उनकी दिलबस्तगियों (मनोरंजन) का अखाड़ा था। यहाँ वो गाते-बजाते और यहाँ ही रिन्दाना मजलिसें आरास्ता होतीं, क्यूँ कि फ़ने-मौसीक़ी (संगीत-कला) की इशाअत (प्रचार-प्रसार) भी यूनियन के प्रोग्राम में शामिल थी। यूनियन के सारे मेम्बर सुरेन्द्रू को अपना रहबर और पेशवा तस्लीम करते थे। उसने हरेक के दिल में यह बात जमा दी थी कि अगर तुम बिला मेहनत और मशक़्क़त (कष्ट) के इम्तिहान पास करना चाहते हो तो वजज़ इसके कोई इलाज़ नहीं कि यूनियन के रुकन (सदस्य) बन जाओ। सुरेन्द्रू इम्तिहानी पर्चों की सुराग़सानी में यदेतूला (अत्यधिक कुशल) था और यही उसके असर और दबाव का राज़ था। कॉलेज में सुरेन्द्रू की वही इज़्ज़त थी जो किसी प्रोफ़ेसर की। शहर में उसके आगे अच्छे-अच्छों के सिर झुक जाते, चूँकि कई वार उसे इस माक़ूला के अमली सबूत देने का मौक़ा मिल चुका था कि इत्तिफ़ाक़ एक ज़बरदस्त ताक़त है।

यूनियन के मेम्बरों की ज़िन्दगी वाक़ई क़ाबिले-रश्क़ थी। इम्तिहान के दिन सिर पर आ गए थे। आम तुलबा (छात्रों) पर ख़्वाबोख़ोर (गहरी नींद) हराम हो गया था। रात-की-रात और दिन-के-दिन मशक़्क़ते और मुताला (परिश्रम और अध्ययन) के सिवा कोई काम न था। वर्जिश का मैदान, क्लब, लाइब्रेरी सब वीरान पड़े हुए थे। हर उम्मीदवार किसी संन्यासी की तरह मुराकबा (समाधि, अन्तर्लीन) में बैठा हुआ नज़र आता था। जिसे देखिये अपनी कोठरी में समाधि लगाये बैठा है। इस शबानारोज़ (रात-दिन) की दीदारेज़ी (आँखों पर ज़ोर डालना, बहुत सोच-विचार) और दिमाग़सोज़ी (माथा-पच्ची) ने दर्दे-सर, दर्दे-चश्म (आँखों में दर्द), शिकले-हज़्म (अपाचनता), बुख़ार और दीगर अवारिज़ (अन्य बीमारियों) का एक तूफ़ान बरपा कर दिया है। आँखें फोड़े की तरह दुख रही हैं, मगर किताब हाथ में है। मारे दर्द के सिर फटा जाता है, मगर पैंसिल हाथ से नहीं छूटती। बुख़ार से बदन तवा हो रहा है, मगर ज़बान दर्द से मसरूफ़ है। इधर तो ये आफ़तें थीं, उधर यूनियन के मेम्बर चैन की बाँसुरी बजाते थे। कभी गाना हो रहा है, कभी चाय-पार्टी, कभी पिकनिक, जिसे देखिये बेग़म और बेफ़िक्र गुलछर्रे उड़ाता नज़र आता है। किसी को इम्तिहान की ज़र्रा-बराबर फ़िक्र नहीं। यहाँ तक कि इम्तिहान के दिन आए और यूनियन के भाग्य जाग उठे। कॉलेज के आम तुलबा बमुश्किल बीस फ़ीसदी कामयाब हुए। यूनियन के सौ मेम्बरों में सिर्फ़ पच्चीस फेल थे। लोगों को अचम्भा हो गया, मगर असल राज़ किसी की समझ में ना आया। वो सुरेन्द्रू, जिसने ख़्वाब में भी किताब की सूरत न देखी, अव्वल दर्जा में पास हुआ।

4

इसी अस्ना (बीच) में मिस गुप्ता का तबादला हुआ और मिस रोहिणी सरकार कलकत्ता से उनकी जगह पर मुक़र्रर होकर आयीं। रोहिणी हुस्नोअदा में मिस गुप्ता की नेमलबदल (पूर्णतः अनुरूप) थीं, उस पर तुर्रा ये कि दोशीज़ा (कुमारी)। सुरेन्द्रू ने पहली निगाह से अपने शिकार को ताड़ लिया और रोहिणी भी पहली ही मुलाक़ात में उसकी मर्दाना वज़ा (ढंग), शरीफ़ाना बशरा (चेहरा) और दिलफ़रेब बेतकल्लुफ़ी से हद दर्जा मुतासिर (प्रभावित) हुई। मिस गुप्ता ने उससे सुरेन्द्रू की बेइन्तिहा तारीफ़ें की थीं और इस तज़किरा (ज़िक्र) ने उसके दिल में सुरेन्द्रू से एक लगाव-सा पैदा कर दिया था। उसने उसे उन तमाम

औसाफ़-ओ-कमालात (गुणों, खूबियों) से आरास्ता (विभूषित) पाया, जिनका अपने शौहर में मौजूद रहना वो ज़रूरी समझती थी। सर्वो नमाक़द (ऊँचा क़द), छरेरा बदन, मुस्कराता हुआ चेहरा, खुश-इख़्लाक़, खुशबयान (मधुरभाषी), गो एक या दो मुलाक़ातें एक ऐसे अहम मामले में तस्फ़िया (निर्णय) करने के लिए काफ़ी नहीं हो सकतीं, मगर सुरेन्द्र ने इतने दिनों भाड़ नहीं झोंकी थी। जब से होश सँभाला, उसने इसी कूचे की ख़ाक छानी। इसी बहर (ढंग) की ख़्वाही की। उसने देख लिया कि मछली चारा कुतरने लगी, अब फँसने में देर नहीं है।

रोहिणी दिन भर सुरेन्द्र की तारीफ़ें सुनती। यूनियन के एक सौ मेम्बरों में से हरेक शख़्स मौक़ा और महल देखकर सुरेन्द्र का ज़िक्रे-ख़ैर उससे कर जाता। उनकी बीवियाँ, बहनें आतीं और उसका बखान करतीं। गर्ज़ सुबह से शाम तक इस तरह की बातें उसके कान में पड़ती रहतीं। यहाँ तक कि इन अमलीयात ने उस सादा बेलौस लड़की को मुहब्बत से दीवाना बना दिया। ये वशीकरण मन्तर अपना काम कर गया। अब रोहिणी को दर्दे-तन्हाई की कसम महसूस होने लगी। हर वक़्त अकेलेपन का ख़्याल दिल को सताने लगा। मकान और बाग़ और सैरगाहें सूनी मालूम होने लगीं। गर्ज़ आँखें आठों पहर सुरेन्द्र के इंतज़ार में रहने लगीं। एक भोला-भाला दिल नुमाइशात (छल-कपट) के नज़र हो गया।

जब ये मंज़िल दुश्वार तय हो गयी तो मँगनी और ब्याह में क्या देर लगती ? ये दोनों मरासम (रस्में) बहुत सादगी और मतानत (संजीदगी) के साथ अदा किये गये। जिस वक़्त आचार्य रस्ते-निकाह (विवाह-संस्कार) अदा कर रहे थे, सुरेन्द्र ऐसा मुताइयन (संजीदा) और मरऊब (दबा हुआ) नज़र आता था, गोया वो इस नयी ज़िन्दगी की जिम्मेदारियों के ख़्याल से दबा जाता है। जब दुआ-निकाह ख़त्म हुई तो सारे मजमा (भीड़, सभा) ने 'आमीन' (तथास्तु) कहा। सिर्फ़ हरिमोहन की ज़बान से ये दुआ न निकली। यूनियन के मेम्बरों ने शादी की खुशी में एक ज़बर्दस्त और पुरशोर महफ़िल सजाई। रात भर हूहक हुआ की। शराब के खुम के खुम (मटके पर मटके) खाली हो गये। खुशक़िस्मती से सुरेन्द्र इसी साल बी. ए. में कामयाब हो गया। यूनियन की हैरतअंगेज़ कामयाबी ने सबको हैरत में डाल दिया। एक मेम्बर भी फेल न हुआ।

5

शादी हो गयी। दोस्तों ने खूब दिल खोलकर मुबारकबाद दी। बिलखुसूस (मुख्यतः) मिस गुप्ता तो फूली न समायीं। वो देहली से इस तक़रीब (विवाह) में शामिल होने के लिए आयीं। हफ़्ता भर तक जश्न होते रहे। इसके बाद मियाँ-बीवी शिमला की सैर को रवाना हुए। यूनियन के मेम्बर, गर्ल्स स्कूल का स्टाफ़ और दीगर अहबाब रुख़सत करने के लिए स्टेशन तक आये। इसमें बाबू हरिमोहन भी थे। जब सब लोग रुख़सत हो गये और इंजन ने चीख़कर गाड़ी खींची तो हरिमोहन ने भी बिदाई-मसाफ़ा किया। उनकी आँखों में आँसू और दिल में अफ़सोसनाक ख़्यालात भरे हुए थे। वो वहाँ ख़ामोश गाड़ी की तरफ़ टकटकी लगाये देर तक खड़े रहे। यहाँ तक कि वो नज़रों से ओझल हो गयी। उनका दिल कहता था कि ये मुसर्रत का सफ़र नहीं, रंजोग़म का सफ़र है।

महीना भर तक रोहिणी और सुरेन्द्र शिमला में रहे और इस महीने भर में

उन्हें एक-दूसरे की खू-बू का पूरा तजुर्बा हो गया। शुरू में रोहिणी ने मिस गुप्ता को जो ख़तूत लिखे, वो इश्को-मुहब्बत के जज़्बात से भरे हुए थे। मिस गुप्ता इन ख़तूत को बार-बार पढ़तीं और सैर (सन्तुष्ट) ना होतीं, मगर रफ़्ता-रफ़्ता इन ख़तूत का रंग अंदो-वो-हसरत (क्लेह और निराशा) की तरफ़ माइल होने लगा। यहाँ तक कि आख़िरी ख़त, जिसमें लिखा था, "आज हम लोग यहाँ से लाहौर रवाना हो रहे हैं", बहुत दिलशिकन (हृदयद्रावक) था। उसमें आख़िरी अल्फ़ाज़ ये थे, "प्यारी बहन, मुझे ऐसा खौफ़ होता है कि इस ख़्वाबे-मुसर्रत (आनन्द के स्वप्न) से बहुत जल्द बेदार होना (जागना) पड़ेगा। जिस चीज़ को मैंने ख़ालिस सोना समझा, वो महज़ चमकता हुआ पीतल निकला। अफ़सोस, मैंने अपनी मुहब्बत की दीवार बालू पर खड़ी की थी। खुदा करे, मेरे शुब्हे ग़लत हों। खुदा न करे, मेरे ये बशोसे (निराशापूर्ण शक) सही हों, मगर प्यारी बहन, मेरा दिल बार-बार कहता है कि और क़ुराइन (हालात) उसकी तस्दीक़ (प्रमाणित) करता हैं कि हस्ती (अस्तित्व) का सर्माया ख़त्म हो गया। अब बक़इया ज़िन्दगी रोने में कटेगी।"

मिस गुप्ता इस पुरदर्द ख़त को पढ़कर बहुत रोई। लाहौर में जब मालूम हुआ कि ये लोग वापस आ रहे हैं जो लोगों को ताज़्जुब हुआ। दो महीने का सामान करके चले थे और क़ियास (अनुमान) से [illegible] था कि वहाँ की दिलफ़रेबियों से इतनी जल्दी तबीयत आसूदा (सन्तुष्ट) न हो, मगर इसके बरअक्स (प्रतिकूल) ये लोग एक ही माह में उकता गये। ज़रूर कोई-न-कोई बात है। आख़िर मुक़र्रा वक़्त आया। अहबाब उनका खैर-मक़दम करने के लिए स्टेशन पर पहुँचे। गाड़ी आयी ओर मियाँ-बीवी उसमें से उतर पड़े। न कपड़ों का बक्स था, न ट्रंक, न बिस्तर। सुरेन्द्र की आँखें शराब से सुर्ख़ हो रही थीं और रोहिणी, आह! वो नाशुगुफ़्ता (नया खिला) फूल अब मुर्झा कर ज़र्द (पीला) हो गया था। चेहरा ऐसा पसमुर्दा और अफ़्सुर्दा (निचुड़ा हुआ) था, गोया (अतृप्ति और निराशा) की तस्वीर थी। बाद को मालूम हुआ कि सारा असबाब शराब की नज़र हुआ और ज़ेवर जुए के। कान के आवेज़े (बुंदे) तक न बचे।

6

लाहौर में आकर रोहिणी तो अपने दर्सोतालीम (शिक्षा देने में) मसरूफ़ हुई और सुरेन्द्र मएक़सी (शराब पीने में) में। यूनियन का शीराज़ा (संगठन) अब बिखर गया था, इसलिए वजज़ शराब के दिलबस्तगी (मनोरंजन) का और कोई ज़रिया बाक़ी न रहा। अगर कभी रोहिणी समझाने की कोशिश करती तो सुरेन्द्र के तेवर बदल जाते। प्रिंसिपल कॉटन ने ये समझकर कि बेकारी ने उसकी ये गत बना रक्खी है, उसे अकाउण्टेण्ट के दफ्तर में एक बहुत माकूल जगह दिला दी, मगर जिस शख़्स की तहसील का ज़माना (हासिल करने का समय) ख़रमस्तियों (गधे की तरह मस्तियों) में गुज़रा हो, वो सुबह से शाम तक दफ़्तर में खुष्क काग़ज़ों और रूहफ़र्सा एदाद (आत्मा को तंग करने वाले हिसाब) के साथ क्यों कर सर मारता ? एक रोज़ हेड क्लर्क ने उसे चन्द एदाद (गिनतियों) का मिज़ान मरत्तब (तैयार) करने का हुक्म दिया। मिज़ान लाखों तक पहुँचता था। सुरेन्द्र एदाद की लामिन्तनाही (अन्तहीन) क़तारों को देखकर ऐसा घबराया कि दफ़्तर से बेतहाशा भागा कि घर पर आकर दम लिया। इसके बाद कई माह तक वो मुख़्तलिफ़ दफ़ातर (दफ़्तरों) की ख़ाक

छानता रहा, मगर तलून और वहात (अनिच्छा और मूर्खता) ने कहीं क़दम न जमने दिया। यहाँ तक कि प्रिंसिपल साहब मायूस हो गये और जुमला दफ़ातर (सभी दफ़्तरों) के दरवाज़े उसके लिए बन्द हो गये।

ग़रीब, बेकस रोहिणी अब अपने क़िये पर पछताती थी, मगर दिल पर जो गुज़रता, ख़ामोशी के साथ झेलती। कभी हर्फ़े-शिक़ायत ज़बान पर ना लाती। जब उसने देखा कि सुरेन्द्रू को समझाने-बुझाने की कोशिश हमेशा सख़्त क़लामियों (कठोर शब्दों) का बाइस होती है तो क़िस्मत पर शाकिर (ईवर को धन्यवाद देकर) होकर बैठ रही। क़िस्मत मायूसों की आड़ और बदनसीबों का सहारा है। अख़राज़ात (ख़र्चों) के बाइस मुलाज़िमों को जवाब देना पड़ा। बेचारी बेज़बान औरत दिन भर लड़कियों को पढ़ाती और गिरिस्ती का सारा काम करती। इन मुसीबतों ने उसकी सूरत को यहाँ तक मंसख़ (बिगाड़) कर दिया था कि बाबू हरिमोहन जब मद्रास से साल भर के बाद लौटे, तो उसे मुश्किल से पहचान सके। इसके बाद मालूम नहीं उन बदनसीबों पर क्या गुज़री। प्रिंसिपल कॉटन ने आये दिन की हुज़्ज़त-ओ तक़रार से तंग आकर रोहिणी से इस्तीफ़ा ले लिया और खुदा जाने किस-किस देश की ख़ाक छानते हुए बाला आख़िर वो काश्मीर पहुँची। वहाँ से रोहिणी ने मिस गुप्ता को जो ख़त लिखा वो निहायत दर्दनाक और जिगरदोज़ था, "बहन, मेरा हाल क्या पूछती हो ? अब ज़िन्दगी से जी भर गया। मुझे अपनी कुछ फ़िक्र नहीं, मगर तुम्हारे बहनोई साहब की हालत निहायत खराब है। खुदा गवाह है, मैं अब भी उनकी परस्तिश (पूजा) करती हूँ। मैंने अपना सब कुछ उन पर निछावर कर दिया, मगर हाय ! शराब तेरा सत्यानाश हो, हाय ! जुआ तेरा बुरा हो। ये दो मर्ज़ उनकी जान के गाहक हो रहे हैं। बस और ज़्यादा न कहूँगी।–तुमसे कहते शर्म आती है, और शर्म की तो इतनी परवाह नहीं, क्यूँ कि मुद्दत हुई उसे रुख़सत कर चुकी, मगर तुम्हें सुनकर रंज होगा। बस यही समझ लो कि तुम्हारी भोली-भाली रोहिणी अब अपने किये पर पछताती और खून के आँसू रोती है।"

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'अदीब' (उर्दू मासिक पत्रिका), नवम्बर, 1912 में प्रकाशित। हिन्दी रूप इसी शीर्षक से 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित।]

त्रिया-चरित्र

सेठ लगनदास जी के जीवन की बगिया फलहीन थी। कोई ऐसा मानवीय, आध्यात्मिक या चिकित्सात्मक प्रयत्न न था जो उन्होंने न किया हो। यों शादी में एक-पत्नीव्रत के कायल थे मगर जरूरत और आग्रह से विवश होकर एक-दो नहीं पांच शादियां कीं, यहां तक कि उम्र के चालीस साल गुजर गए और अंधेरे घर में उजाला न हुआ। बेचारे बहुत रंजीदा रहते। यह धन-संपत्ति, यह ठाट-बाट, यह वैभव और ऐश्वर्य क्या होंगे। मेरे बाद इनका क्या हाल होगा, कौन इनको भोगेगा। यह खयाल बहुत अफसोसनाक था। आखिर यह सलाह हुई कि किसी लड़के को गोद लेना चाहिए मगर यह मसला पारिवारिक झगड़ों के

कारण कई सालों तक स्थगित रहा। जब सेठजी ने देखा कि बीवियों में अब तक बदस्तूर कशमकश हो रही है तो उन्होंने नैतिक साहस से काम लिया और एक होनहार अनाथ लड़के को गोद ले लिया। उसका नाम रखा गया मगनदास। उसकी उम्र पांच-छः साल से ज्यादा न थी। बला का जहीन और तमीजदार। मगर औरतें सब कुछ कर सकती हैं, दूसरे के बच्चे को अपना नहीं समझ सकतीं। यहां तो पांच औरतों का साझा था। अगर एक उसे प्यार करती तो बाकी चार औरतों का फर्ज था कि उससे नफरत करें। हां, सेठजी उसके साथ बिल्कुल अपने लड़के की-सी मुहब्बत करते थे। पढ़ाने को मास्टर रखे, सवारी के लिए घोड़े। रईसी ख्याल के आदमी थे। राग-रंग का सामान भी मुहैया था। गाना सीखने का लड़के ने शौक किया तो उसका भी इंतजाम हो गया। गरज जब मगनदास जवानी पर पहुंचा तो रईसाना दिलचस्पियों से उसे कमाल हासिल था। उसका गाना सुनकर उस्ताद लोग कानों पर हाथ रखते। शहसवार ऐसा कि दौड़ते हुए घोड़े पर सवार हो जाता। डीलडौल, शक्ल-सूरत में उसका-सा अलबेला जवान दिल्ली में कम होगा। शादी का मसला पेश हुआ। नागपुर के करोड़पति सेठ मक्खनलाल बहुत लहराए हुए थे। उनकी लड़की से शादी हो गई। धूमधाम का जिक्र किया जाए तो किस्सा वियोग की रात से भी लंबा हो जाए। मक्खनलाल का उसी शादी में दीवाला निकल गया। इस वक्त मगनदास से ज्यादा ईर्ष्या के योग्य आदमी और कौन होगा ? उसकी जिंदगी की बहार उमंगों पर थी और मुरादों के फूल अपनी शबनमी ताजगी में खिल-खिलकर हुस्न और ताजगी का समां दिखा रहे थे। मगर तकदीर की देवी कुछ और ही सामान कर रही थी। वह सैर-सपाटे के इरादे से जापान गया हुआ था कि दिल्ली से खबर आई कि ईश्वर ने तुम्हें एक भाई दिया है। मुझे इतनी खुशी है कि ज्यादा अर्से तक जिंदा न रह सकूं। तुम बहुत जल्द लौट आओ।

मगनदास के हाथ से तार का कागज छूट गया और सर में ऐसा चक्कर आया जैसे किसी ऊंचाई से गिर पड़ा है।

2

मगनदास का किताबी ज्ञान बहुत कम था। मगर स्वभाव की सज्जनता से वह खाली न था। हाथों की उदारता ने जो समृद्धि का वरदान है, हृदय को भी उदार बना दिया था। उसे घटनाओं की इस कायापलट से दुख तो जरूर हुआ, आखिर इंसान ही था, मगर उसने धीरज से काम लिया और एक आशा और भय की मिली-जुली हालत में देश को रवाना हुआ।

रात का वक्त था। जब अपने दरवाजे पर पहुंचा तो नाच-गाने की महफिल सजी देखी। उसके कदम आगे न बढ़े, लौट पड़ा और एक दुकान के चबूतरे पर बैठकर सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। इतना तो उसे यकीन था कि सेठजी उसके साथ उसी भलमनसी और मुहब्बत से पेश आएंगे बल्कि शायद अब और भी कृपा करने लगें। सेठानियां भी अब उसके साथ गैरों का-सा वर्ताव न करेंगी। मुमकिन है मझली बहू जो इस बच्चे की खुशनसीब मां थीं, उससे दूर-दूर रहें मगर बाकी चारों सेठानियों की तरफ से सेवा-सत्कार में कोई शक नहीं था। उनकी डाह से वह फायदा उठा सकता था। ताहम उसके स्वाभिमान ने गवारा न किया कि जिस घर में मालिक की हैसियत से रहता था उसी घर में अब एक आश्रित की हैसियत से जिंदगी बसर करे। उसने फैसला कर लिया कि

अब यहां रहना न मुनासिब है, न मसलहत। मगर जाऊं कहां? न कोई ऐसा फन सीखा, न कोई ऐसा इल्म हासिल किया जिससे रोजी कमाने की सूरत पैदा होती। रईसाना दिलचस्पियां उसी वक्त तक कद्र की निगाह से देखी जाती हैं जब तक कि वे रईसों के आभूषण रहें। जीविका बनकर वे सम्मान के पद से गिर जाती हैं। अपनी रोजी हासिल करना तो उसके लिए कोई ऐसा मुश्किल काम न था। किसी सेठ-साहूकार के यहां मुनीम बन सकता था, किसी कारखाने की तरफ से एजेंट हो सकता था, मगर उसके कंधे पर एक भारी जुआ रखा हुआ था, उसे क्या करे। एक बड़े सेठ की लड़की, जिसने लाड़-प्यार में परिवरिश पाई, उससे यह कंगाली की तकलीफें क्योंकर झेली जाएंगी। क्या मक्खनलाल की लाड़ली बेटी एक ऐसे आदमी के साथ रहना पसंद करेगी जिसे रात की रोटी का भी ठिकाना नहीं ! मगर इस फिक्र में अपनी जान क्यों खपाऊं। मैंने अपनी मर्जी से शादी नहीं की। मैं बराबर इंकार करता रहा। सेठजी ने जबर्दस्ती मेरे पैरों में बेड़ी डाली है। अब वही इसके जिम्मेदार हैं। मुझसे कोई वास्ता नहीं। लेकिन जब उसने दुबारा ठंडे दिल से इस मसले पर गौर किया तो बचाव की कोई सूरत नजर न आई। आखिरकार उसने यह फैसला किया कि पहले नागपुर चलूं, जरा उन महारानी के तौर-तरीके को देखूं, बाहर ही बाहर उनके स्वभाव का, मिजाज की जांच करूं। उस वक्त तय करूंगा कि मुझे क्या करना चाहिए। अगर रईसी की बू उनके दिमाग से निकल गई है और मेरे साथ रूखी रोटियां खाना उन्हें मंजूर है, तो इससे अच्छा फिर और क्या, लेकिन अगर वह अमीरी ठाट-बाट के हाथों बिकी हुई हैं तो मेरे लिए रास्ता साफ है। फिर मैं हूं और दुनिया का गम। ऐसी जगह जाऊं जहां किसी परिचित की सूरत सपने में भी न दिखाई दे। गरीबी की जिल्लत जिल्लत नहीं रहती, अगर अजनबियों में जिंदगी बसर की जाए। यह जानने-पहचानने वालों की कनखियां और कनबतियां हैं जो गरीबी को यंत्रणा बना देती हैं। इस तरह दिल में जिंदगी का नक्शा बनाकर मगनदास अपनी मर्दाना हिम्मत के भरोसे पर नागपुर की तरफ चला, उस मल्लाह की तरह जो किश्ती और पाल के बगैर नदी की उमड़ती हुई लहरों में अपने को डाल दे।

3

शाम के वक्त सेठ मक्खनलाल के सुंदर बागीचे में सूरज की पीली किरणें मुर्झाए हुए फूलों से गले मिलकर विदा हो रही थीं। बाग के बीच में एक पक्का कुआं था और एक मौलसिरी का पेड़। कुएं के मुंह पर अंधेरे की नीली-सी नकाब थी, पेड़ के सिर पर रोशनी की सुनहरी चादर। इसी पेड़ के नीचे एक बुढ़िया मालिन बैठी हुई फूलों के हार और गजरे गूंध रही थी। इतने में एक नौजवान थका-मांदा कुएं पर आया और लोटे से पानी भरकर पीने के बाद जगत पर बैठ गया। मालिन ने पूछा—कहां जाओगे? मगनदास ने जवाब दिया कि जाना तो था बहुत दूर, मगर यहीं रात हो गई। यहां कहीं ठहरने का ठिकाना मिल जाएगा ?

मालिन—चले जाओ सेठजी के धर्मशाले में, बड़े आराम की जगह है।

मगनदास—धर्मशाले में तो मुझे ठहरने का कभी संयोग नहीं हुआ। कोई हर्ज न हो तो यहीं पड़ रहूं। यहां कोई रात को रहता है ?

मालिन—भाई, मैं यहां ठहरने को न कहूंगी। यह मिली हुई बाईजी की बैठक है।

झरोखे में बैठकर सैर किया करती हैं। कहीं देख-भाल लें तो मेरे सिर में एक बाल भी न रहे।

मगनदास—बाईजी कौन ?

मालिन—यही सेठजी की बेटी। इन्दिरा बाई।

मगनदास—यह गजरे उन्हीं के लिए बना रही हो क्या ?

मालिन—हां, और सेठजी के यहां है ही कौन ? फूलों के गहने बहुत पसंद करती हैं।

मगनदास—शौकीन औरत मालूम होती हैं ?

मालिन—भाई, यही तो बड़े आदमियों की बातें हैं। वह शौक न करें तो हमारा-तुम्हारा निबाह कैसे हो ? और धन है किसलिए। अकेली जान पर दस लौंडियां हैं। सुना करती थी कि भागवान आदमी का हल भूत जोतता है, वह आंखों देखा। आप ही आप पंखा चलने लगे। आप ही आप सारे घर में दिन का-सा उजाला हो जाए। तुम झूठ समझते होंगे, मगर मैं आंखों देखी बात कहती हूं।

उस गर्व की चेतना के साथ जो किसी नादान आदमी के सामने अपनी जानकारी के बयान करने में होता है, बूढ़ी मालिन अपनी सर्वज्ञता का प्रदर्शन करने लगी। मगनदास ने उकसाया—होगा भाई, बड़े आदमी की बातें निराली होती है। लक्ष्मी के बस में सब कुछ है। मगर अकेली जान पर दस लौंडियां ? समझ में नहीं आता।

मालिन ने बुढ़ापे के चिड़चिड़ेपन से जवाब दिया—तुम्हारी समझ मोटी हो तो कोई क्या करे ! कोई पान लगाती है, कोई पंखा झलती है, कोई कपड़े पहनाती है, दो हजार रुपये में तो सेजगाड़ी आई थी, चाहो तो मुंह देख लो, उस पर हवा खान जाती हैं। एक बंगालिन गाना-बजाना सिखाती है, मेम पढ़ाने आती है, शास्त्रीजी संस्कृत पढ़ाते हैं, कागद पर ऐसी मूरत बनाती हैं कि अब बोली और अब बोली। दिल की रानी है, बेचारी के भाग फूट गए। दिल्ली के सेठ लगनदास के गोद लिये हुए लड़के से ब्याह हुआ था। मगर रामजी की लीला, सत्तर बरस के मुर्दे को लड़का दिया, कौन पतियाएगा। जब से यह सुनावनी आई है, तब से बहुत उदास रहती हैं। एक दिन रोती थीं। मेरे सामने की बात है। बाप ने देख लिया। समझाने लगे। लड़की को बहुत चाहते हैं। सुनती हूं, दामाद को यहीं बुलाकर रखेंगे। नारायन करे, मेरी रानी दूधों नहाय पूतों फले। माली मर गया था। उन्होंने आड़ न ली होती तो घर-भर के टुकड़े मांगती।

मगनदास ने एक ठंडी सांस ली। बेहतर है, अब यहां से अपनी इज्जत-आबरू लिए हुए चल दो। यहां मेरा निबाह न होगा। इन्दिरा रईसजादी है। तुम इस काबिल नहीं हो कि उसके शौहर बन सको। मालिन से बोला—तो धर्मशाले में जाता हूं। जाने वहां खाट-वाट मिल जाती है कि नहीं, मगर रात ही तो काटनी है, किसी तरह कट ही जाएगी। रईसों के लिए मखमली गद्दे चाहिए, हम मजदूरों के लिए पुआल ही बहुत है।

यह कहकर उसने लुटिया उठाई, डंडा संभाला और दर्द भरे दिल से एक तरफ को चल दिया।

उस वक्त इन्दिरा अपने झरोखे पर बैठी हुई इन दोनों की बातें सुन रही थी। कैसा संयोग है कि स्त्री को स्वर्ग की सब सिद्धियां प्राप्त हैं और उसका पति आवारों की तरह मारा-मारा फिर रहा है। उसे रात काटने का ठिकाना नहीं।

4

मगनदास निराश विचारों में डूबा हुआ शहर से बाहर निकल आया और एक सराय में ठहरा जो सिर्फ इसलिए मशहूर थी कि वहां शराब की एक दुकान थी। यहां आस-पास से मजदूर लोग आ-आकर अपने दुख को भुलाया करते थे। जो भूले-भटके मुसाफिर यहां ठहरते, उन्हें होशियारी और चौकसी का व्यावहारिक पाठ मिल जाता था। मगनदास थका-मांदा था ही, एक पेड़ के नीचे चादर बिछाकर सो रहा और जब सुबह को नींद खुली तो उसे किसी पीर-औलिया के ज्ञान की सजीव दीक्षा का चमत्कार दिखाई पड़ा जिसकी पहली मंजिल वैराग्य है। उसकी छोटी-सी पोटली जिसमें दो-एक कपड़े और थोड़ा-सा रास्ते का खाना और लुटिया-डोर बंधी हुई थी, गायब हो गई। उन कपड़ों को छोड़कर, जो उसके बदन पर थे, अब उसके पास कुछ भी न था और भूख जो कंगाली में और भी तेज हो जाती है उसे बेचैन कर रही थी। मगर दृढ़ स्वभाव का आदमी था, उसने किस्मत का रोना नहीं रोया, किसी तरह गुजर करने की तदबीरें सोचने लगा। लिखने और गणित में उसे अच्छा अभ्यास था मगर इस हैसियत में उससे फायदा उठाना असंभव था। उसने संगीत का बहुत अभ्यास किया था। किसी रसिक रईस के दरबार में उसकी कदर हो सकती थी। मगर उसके पुरुषोचित अभिमान ने इस पेशे को अख्तियार करने की इजाजत न दी। हां, वह आला दर्जे का घुड़सवार था और यह फन मजे में पूरी शान के साथ उसकी रोजी का साधन बन सकता था। यह पक्का इरादा करके उसने हिम्मत से कदम आगे बढ़ाए। ऊपर से देखने पर यह बात यकीन के काबिल नहीं मालूम होती मगर वह अपना बोझ हल्का हो जाने से इस वक्त बहुत उदास नहीं था। मर्दाना हिम्मत का आदमी ऐसी मुसीबतों को उसी निगाह से देखता है जिससे एक होशियार विद्यार्थी परीक्षा के प्रश्नों को देखता है। उसे अपनी हिम्मत आजमाने का, एक मुश्किल से जूझने का मौका मिल जाता है। उसकी हिम्मत अनजाने ही मजबूत हो जाती है। अक्सर ऐसे मार्के मर्दाना हौसले के लिए प्रेरणा का काम देते हैं। मगनदास इस जोश से कदम बढ़ाता चला जाता था कि जैसे कामयाबी की मंजिल सामने नजर आ रही है। मगर शायद वहां के घोड़ों ने शरारत और बिगड़ैलपन से तोबा कर ली थी या वे स्वाभाविक रूप से बहुत मजे में धीमे-धीमे चलने वाले थे। वह जिस गांव में जाता निराशा को उकसाने वाला जवाब पाता। आखिरकार शाम के वक्त जब सूरज अपनी आखिरी मंजिल पर जा पहुंचा था, उसकी कठिन मंजिल तमाम हुई। नागरघाट के ठाकुर अटलसिंह ने उसकी जीविका की चिंता को समाप्त किया।

यह एक बड़ा गांव था। पक्के मकान बहुत थे। मगर उनमें प्रेतात्माएं आबाद थीं। कई साल पहले प्लेग ने आबादी के बड़े हिस्से को इस क्षणभंगुर संसार से उठाकर स्वर्ग में पहुंचा दिया था। इस वक्त प्लग के बचे-खुचे लोग गांव के नौजवान और शौकीन जमींदार साहब और हल्के के कारगुजार और रोबीले थानेदार साहब थे। उनकी मिली-जुली कोशिशों से गांव में सतयुग का राज था। धन-दौलत को लोग जान का अजाब समझते थे। उसे गुनाह की तरह छिपाते थे। घर-घर में रुपये रहते हुए लोग कर्ज ले-लेकर खाते और फटेहाल रहते थे। इसी में निबाह था। काजल की कोठरी थी, सफेद कपड़े पहनना उन पर धब्बा लगाना था। हुकूमत और जबर्दस्ती का बाजार गर्म था। अहीरों के यहां आंजन के

लिए भी दूध न था। थाने में दूध की नदी बहती थी। मवेशीखाने के मुहर्रिर दूध की कुल्लियां करते थे। इसी अंधेरनगरी को मगनदास ने अपना घर बनाया। ठाकुर साहब ने असाधारण उदारता से काम लेकर उसे रहने के लिए एक मकान भी दे दिया, जो केवल व्यापक अर्थों में मकान कहा जा सकता था। इसी झोंपड़ी में वह एक हफ्ते से जिंदगी के दिन काट रहा है। उसका चेहरा जर्द है और कपड़े मैले हो रहे हैं। मगर ऐसा मालूम होता है कि उसे अब इन बातों की अनुभूति ही नहीं रही। जिंदा है मगर जिंदगी रुखसत हो गई। हिम्मत और हौसला मुश्किल को आसान कर सकते हैं, आंधी और तूफान से बचा सकते हैं मगर चेहरे को खिला सकना उनके सामर्थ्य से बाहर है। टूटी हुई नाव पर बैठकर मल्हार गाना हिम्मत का काम नहीं, हिमाकत का काम है।

एक रोज जब शाम के वक्त वह अंधेरे में खाट पर पड़ा हुआ था, एक औरत उसके दरवाजे पर आकर भीख मांगने लगी। मगनदास को आवाज परिचित जान पड़ी। बाहर आकर देखा तो वही चम्पा मालिन थी। कपड़े तार-तार, मुसीबत की रोती हुई तस्वीर। बोला—मालिन ? तुम्हारी यह क्या हालत है ? मुझे पहचानती हो ?

मालिन ने चौंककर देखा और पहचान गई। रोकर बोली—बेटा, अब बताओ मेरा कहां ठिकाना लगे ? तुमने मेरा बना-बनाया घर उजाड़ दिया। न उस दिन तुमसे बातें करती न मुझ पर यह बिपत पड़ती। बाई ने तुम्हें बैठे देख लिया, बातें भी सुनीं, सुबह होते ही मुझे बुलाया और बरस पड़ीं—नाक कटवा लूंगी, मुंह में कालिख लगवा दूंगी, चुड़ैल, कुटनी, तू मेरी बात किसी गैर आदमी से क्यों चलाए ? तू दूसरों से मेरी चर्चा क्यों करे ? वह क्या तेरा दामाद था, जो तू उससे मेरा दुखड़ा रोती थी ? जो कुछ मुंह में आया बकती रही। मुझसे भी न सहा गया। रानी रूठेंगी अपना सुहाग लेंगी ! बोली—बाईजी, मुझसे कसूर हुआ, लीजिए अब जाती हूं। छींकते नाक कटती है तो मेरा निबाह यहां न होगा। ईश्वर ने मुंह दिया है तो आहार भी देगा। चार घर से मांगूंगी तो मेरे पेट को हो जाएगा। उस छोकरी ने मुझे खड़े-खड़े निकलवा दिया। बताओ, मैंने तुमसे उनकी कौन-सी शिकायत की थी। उसकी क्या चर्चा की थी ? मैं तो उसका बखान कर रही थी। मगर बड़े आदमियों का गुस्सा भी बड़ा होता है। अब बताओ मैं किसकी होकर रहूं ? आठ दिन इसी तरह टुकड़े मांगते हो गए। एक भतीजी उन्हीं के यहां लौंडियों में नौकर थी, उसी दिन उसे भी निकाल दिया। तुम्हारी बदौलत, जो कभी न किया था, वह करना पड़ा। तुम्हें काहे को दोष लगाऊं, किस्मत में जो कुछ लिखा था, वह देखना पड़ा।

मगनदास सन्नाटे में आ गया। आह, मिजाज का यह हाल है, यह घमंड, यह शान ! मालिन को इत्मीनान दिलाया। उसके पास अगर दौलत होती तो उसे मालामाल कर देता। सेठ मक्खनलाल की बेटी को भी मालूम हो जाता कि रोजी की कुंजी उसी के हाथ में है। बोला—तुम फिक्र न करो, मेरे घर में आराम से रहो। अकेले मेरा जी भी नहीं लगता। सच कहो तो मुझे तुम्हारी तरह एक औरत की तलाश थी, अच्छा हुआ तुम आ गईं।

मालिन ने आंचल फैलाकर असीस दिया—बेटा, तुम जुग-जुग जियो, बड़ी उमिर हो, यहां कोई घर मिले तो मुझे दिलवा दो। मैं यहां रहूंगी तो मेरी भतीजी कहां जाएगी ? वह बेचारी शहर में किसके आसरे रहेगी ?

मगनदास के खून में जोश आया। उसके स्वाभिमान को चोट लगी। उन पर यह आफत मेरी लाई हुई है। उनकी इस आवारागर्दी का जिम्मेदार मैं हूं। बोला—कोई हर्ज न हो तो उसे भी यहीं ले आओ। मैं दिन को यहां बहुत कम रहता हूं। रात को बाहर चारपाई डालकर पड़ रहा करूंगा। मेरी वजह से तुम लोगों को कोई तकलीफ न होगी। यहां दूसरा मकान मिलना मुश्किल है। यही झोंपड़ा बड़ी मुश्किलों से मिला है। यह अंधेरनगरी है। जब तुम्हारा सुभीता कहीं लग जाए तो चली जाना।

मगनदास को क्या मालूम था कि हजरत इश्क उसकी जबान पर बैठे हुए उससे यह बातें कहलवा रहे हैं। क्या यह ठीक है कि इश्क पहले माशूक के दिल में पैदा होता है ?

5

नागपुर इस गांव से बीस मील की दूरी पर था। चम्पा उसी दिन चली गई और तीसरे दिन रम्भा के साथ लौट आई। यह उसकी भतीजी का नाम था। उसके आने से झोंपड़े में जान-सी पड़ गई। मगनदास के दिमाग में मालिन की लड़की की जो तस्वीर थी उसका रम्भा से कोई मेल न था। वह सौंदर्य नाम की चीज का अनुभवी जौहरी था मगर ऐसी सूरत जिस पर जवानी की ऐसी मस्ती और दिल का चैन छीन लेने वाला ऐसा आकर्षण हो उसने पहले कभी न देखा था। उसकी जवानी का चांद अपनी सुनहरी और गंभीर शान के साथ चमक रहा था। सुबह का वक्त था। मगनदास दरवाजे पर पड़ा ठंडी-ठंडी हवा का मजा उठा रहा था। रम्भा सिर पर घड़ा रखे पानी भरने को निकली। मगनदास ने उसे देखा और एक लंबी सांस खींचकर उठ बैठा। चेहरा-मोहरा बहुत ही मोहक। ताजे फूल की तरह खिला हुआ चेहरा, आंखों में गंभीर सरलता। मगनदास को उसने भी देखा। चेहरे पर लाज की लाली दौड़ गई। प्रेम ने पहला वार किया।

मगनदास सोचने लगा—क्या तकदीर यहां कोई और गुल खिलाने वाली है ? क्या दिल मुझे यहां भी चैन न लेने देगा ? रम्भा, तू यहां नाहक आई, नाहक एक गरीब का खून तेरे मर पर होगा। मैं तो अब तेरे हाथों बिक चुका, मगर क्या तू मेरी हो सकती है ? लेकिन नहीं, इतनी जल्दबाजी ठीक नहीं। दिल का सौदा सोच-समझकर करना चाहिए। तुमको अभी जब्त करना होगा। रम्भा सुंदरी है मगर झूठे मोती की आब और ताव उसे सच्चा नहीं बना सकती। तुम्हें क्या खबर कि उस भोली लड़की के कान प्रेम के शब्द से परिचित नहीं हो चुके हैं। कौन कह सकता है कि उसके सौंदर्य की वाटिका पर किसी फूल चुनने वाले के हाथ नहीं पड़ चुके हैं। अगर कुछ दिनों की दिलबस्तगी के लिए कुछ चाहिए तो तुम आजाद हो मगर यह नाजुक मामला है, जरा संभल के कदम रखना। पेशेवर जातों में दिखाई पड़ने वाला सौंदर्य अक्सर नैतिक बंधनों से मुक्त होता है।

तीन महीने गुजर गए। मगनदास रम्भा को ज्यों-ज्यों बारीक से बारीक निगाहों से देखता, त्यों-त्यों उस पर प्रेम का रंग गाढ़ा होता जाता था। वह रोज उसे कुएं से पानी निकालते देखता, वह रोज घर में झाड़ू देती, रोज खाना पकाती। आह, मगनदास को उन ज्वार की रोटियों में जो मजा आता था वह अच्छे से अच्छे व्यंजनों में भी न आया था। उसे अपनी कोठरी हमेशा साफ-सुथरी मिलती। न जाने कौन उसके बिस्तर बिछा देता। क्या

यह रम्भा की कृपा थी ? उसकी निगाहें कैसी शर्मीली थीं। उसने उसे कभी अपनी तरफ चंचल आंखों से ताकते नहीं देखा। आवाज कैसी मीठी ! उसकी हंसी की आवाज कभी उसके कान में नहीं आई। अगर मगनदास उसके प्रेम में मतवाला हो रहा था तो कोई ताज्जुब की बात नहीं थी। उसकी भूखी निगाहें बेचैनी और लालसा में डूबी हुई हमेशा रम्भा को ढूंढ़ा करतीं। वह जब किसी दूसरे गांव को जाता तो मीलों तक उसकी जिद्दी और बेताब आंखें मुड़-मुड़कर झोंपड़े के दरवाजे की तरफ आतीं। उसकी ख्याति आस-पास फैल गई थी मगर उसके स्वभाव की मुरौवत और उदार-हृदयता से अक्सर लोग अनुचित लाभ उठाते थे। इंसाफ-पसंद लोग तो स्वागत-सत्कार से काम निकाल लेते और जो लोग ज्यादा समझदार थे वे लगातार तकाजों का इंतजार करते। चूंकि मगनदास इस फन को बिल्कुल न जानता था, बावजूद दिन-रात की दौड़-धूप के गरीबी से उसका गला न छूटता। जब वह रम्भा को चक्की पीसते हुए देखता तो गेहूं के साथ उसका दिल भी पिस जाता था। वह कुएं से पानी निकालती तो उसका कलेजा निकल आता। जब वह पड़ोस की औरतों के कपड़े सीती तो कपड़ों के साथ मगनदास का दिल छिद जाता। मगर न कुछ बस था न काबू।

मगनदास की हृदयवेधी दृष्टि को इसमें तो कोई संदेह नहीं था कि उसके प्रेम का आकर्षण बिल्कुल बेअसर नहीं है वर्ना रम्भा की उन वफा से भरी हुई खातिरदारियों की तुक कैसे बिठाता। वफा ही वह जादू है जो रूप के गर्व का सिर नीचा कर सकता है। मगर प्रेमिका के दिल में बैठने का माद्दा उसमें बहुत कम था। कोई दूसरा मनचला प्रेमी अब तक अपने वशीकरण में कामयाब हो चुका होता लेकिन मगनदास ने दिल आशिक का पाया था और जबान माशूक की।

एक रोज शाम के वक्त चम्पा किसी काम से बाजार गई हुई थी और मगनदास हमेशा की तरह चारपाई पर पड़ा सपने देख रहा था कि रम्भा अद्भुत छटा के साथ आकर उसके सामने खड़ी हो गई। उसका भोला चेहरा कमल की तरह खिला हुआ था और आंखों से सहानुभूति का भाव झलक रहा था। मगनदास ने उसकी तरफ पहले आश्चर्य और फिर प्रेम की निगाहों से देखा और दिल पर जोर डालकर बोला—आओ रम्भा, तुम्हें देखने को बहुत दिन से आंखें तरस रही थीं।

रम्भा ने भोलेपन से कहा—मैं यहां न आती तो तुम मुझसे कभी न बोलते।

मगनदास का हौसला बढ़ा, बोला—बिना मर्जी पाए तो कुत्ता भी नहीं आता।

रम्भा मुस्कराई, कली खिल गई—मैं तो आप ही चली आई।

मगनदास का कलेजा उछल पड़ा। उसने हिम्मत करके रम्भा का हाथ पकड़ लिया और भावावेश से कांपती हुई आवाज में बोला—नहीं रम्भा, ऐसा नहीं है। यह मेरी महीनों की तपस्या का फल है।

मगनदास ने बेताब होकर उसे गले से लगा लिया। जब वह चलने लगी तो अपने प्रेमी की ओर प्रेम भरी दृष्टि से देखकर बोली—अब यह प्रीत हमको निभानी होगी।

पौ फटने के वक्त जब सूर्य देवता के आगमन की तैयारियां हो रही थीं, मगनदास की आंखें खुलीं। रम्भा आटा पीस रही थी। उस शांतिपूर्ण सन्नाटे में चक्की की घुमर-घुमर बहुत सुहानी मालूम होती थी और उससे सुर मिलाकर अपने प्यारे ढंग से गाती थी—

झुलनियां मोरी पानी में गिरी
मैं जानूं पिया मोको मनैहैं
उलटी मनावन मोको पड़ी
झुलनियां मोरी पानी में गिरी

साल भर गुजर गया। मगनदास की मुहब्बत और रम्भा के सलीके ने मिलकर उस वीरान झोंपड़े को कुंज बाग बना दिया। अब वहां गायें थीं, फूलों की क्यारियां थीं और कई देहाती ढंग के मोढ़े थे। सुख-सुविधा की अनेक चीजें दिखाई पड़ती थीं।

एक रोज सुबह के वक्त मगनदास कहीं जाने के लिए तैयार हो रहा था कि एक सम्भ्रांत व्यक्ति अंग्रेजी पोशाक पहने उसे ढूंढ़ता हुआ आ पहुंचा और उसे देखते ही दौड़कर गले से लिपट गया। मगनदास और वह दोनों एक साथ पढ़ा करते थे। वह अब वकील हो गया था। मगनदास ने भी अब उसे पहचाना और कुछ झेंपता और कुछ झिझकता उससे गले लिपट गया। बड़ी देर तक दोनों दोस्त बातें करते रहे। बातें क्या थीं, घटनाओं और संयोगों की एक लंबी कहानी थी। कई महीने हुए सेठ लगन का छोटा बच्चा चेचक की नजर हो गया। सेठजी ने दुःख के मारे आत्महत्या कर ली और अब मगनदास सारी जायदाद, कोठी, इलाके और मकानों का एकछत्र स्वामी था। सेठानियों में आपसी झगड़े हो रहे थे। कर्मचारियों ने गबन को अपना ढंग बना रखा था। बड़ी सेठानी उसे बुलाने के लिए खुद आने को तैयार थीं, मगर वकील साहब ने उन्हें रोका था। जब मगनदास ने मुस्कराकर पूछा—तुम्हें क्योंकर मालूम हुआ कि मैं यहां हूं, तो वकील साहब ने फरमाया—महीने भर से तुम्हारी ही टोह में हूं। सेठ मक्खनलाल ने अता-पता बतलाया। तुम दिल्ली पहुंचे और मैंने अपना महीने भर का बिल पेश किया।

रम्भा अधीर हो रही थी कि यह कौन है और इनमें क्या बातें हो रहीं हैं ? दस बजते-बजते वकील साहब मगनदास से एक हफ्ते के अंदर आने का वादा लेकर विदा हुए। उसी वक्त रम्भा आ पहुंची और पूछने लगी—यह कौन थे ? इनका तुमसे क्या काम था ?

मगनदास ने जवाब दिया—यमराज का दूत।

रम्भा—क्या असगुन बकते हो !

मगन—नहीं रम्भा, यह असगुन नहीं है, यह सचमुच मेरी मौत का दूत था। मेरी खुशियों के बाग को रौंदने वाला, मेरी हरी-भरी खेती को उजाड़ने वाला, रम्भा मैंने तुम्हारे साथ दगा की है, मैंने तुम्हें अपने फरेब के जाल में फंसाया है, मुझे माफ करो। मुहब्बत ने मुझसे यह सब करवाया। मैं मगनसिंह ठाकुर नहीं हूं; मैं सेठ लगनदास का बेटा और सेठ मक्खनलाल का दामाद हूं।

मगनदास को डर था कि रम्भा यह सुनते ही चौंक पड़ेगी और शायद उसे जालिम, दगाबाज कहने लगे, मगर उसका खयाल गलत निकला। रम्भा ने आंखों में आंसू भरकर सिर्फ इतना कहा—तो क्या तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे ?

मगनदास ने उसे गले लगाकर कहा—हां।

रम्भा—क्यों ?

मगन—इसलिए कि इन्दिरा बहुत होशियार, सुंदर और धनी है।

रम्भा—मैं तुम्हें न छोडूंगी। कभी इन्दिरा की लौंडी थी, अब उनकी सौत बनूंगी। तुम

जितनी मेरी मुहब्बत करोगे उतनी इन्दिरा की तो न करोगे, क्यों ?

मगनदास इस भोलेपन पर मतवाला हो गया। मुस्कराकर बोला—अब इन्दिरा तुम्हारी लौंडी बनेगी, मगर सुनता हूं वह बहुत सुंदर है। कहीं मैं उसकी सूरत पर लुभा न जाऊं। मर्दों का हाल तुम नहीं जानतीं, मुझे अपने ही से डर लगता है।

रम्भा ने विश्वास भरी आंखों से देखकर कहा—क्या तुम भी ऐसा करोगे ? उंह, जो जी में आए करना, मैं तुम्हें न छोड़ूंगी। इन्दिरा रानी बने, मैं लौंडी हूंगी क्या इतने पर भी मुझे छोड़ दोगे ?

मगनदास की आंखें डबडबा गई, बोला—प्यारी, मैंने फैसला कर लिया है कि दिल्ली न जाऊंगा। यह तो मैं कहने ही न पाया कि सेठजी का स्वर्गवास हो गया। बच्चा उनसे पहले ही चल बसा था। अफसोस, सेठजी के आखिरी दर्शन भी न कर सका। अपना बाप भी इतनी मुहब्बत नहीं कर सकता। उन्होंने मुझे अपना वारिस बनाया है। वकील साहब कहते थे कि सेठानियों में अनबन है। नौकर-चाकर लूटमार मचा रहे हैं। वहां का यह हाल है और मेरा दिल वहां जाने पर राजी नहीं होता। दिल तो यहां है, वहां कौन जाए।

रम्भा जरा देर तक सोचती रही, फिर बोली—तो मैं तुम्हें छोड़ दूंगी। इतने दिन तुम्हारे साथ रही, जिंदगी का सुख लूटा, अब जब तक जिऊंगी इस सुख का ध्यान करती रहूंगी। मगर तुम मुझे भूल तो न जाओगे ? साल में एक बार देख लिया करना और इसी झोंपड़े में।

मगनदास ने बहुत रोका मगर आंसू न रुक सके, बोले—रम्भा, यह बातें न करो, कलेजा बैठा जाता है। मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता, इसलिए नही कि तुम्हारे ऊपर कोई एहसान है। तुम्हारी खातिर नहीं, अपनी खातिर। वह शांति, वह प्रेम, वह आनंद जो मुझे यहां मिलता है और कहीं नहीं मिल सकता। खुशी के साथ जिंदगी बसर हो, यही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है। मुझे ईश्वर ने वह खुशी यहां दे रखी है तो मैं उसे क्यों छोड़ूं। धन-दौलत को मेरा सलाम है, मुझे उसकी हवस नहीं है।

रम्भा फिर गंभीर स्वर में बोली—मैं तुम्हारे पांव की बेड़ी न बनूंगी। चाहे तुम अभी मुझे न छोड़ो लेकिन थोड़े दिनों में तुम्हारी यह मुहब्बत न रहेगी।

मगनदास को कोड़ा लगा। जोश से बोला—तुम्हारे सिवा इस दिल में अब कोई और जगह नहीं पा सकता।

रात ज्यादा आ गई थी। अष्टमी का चांद सोने जा चुका था। दोपहर के कमल की तरह साफ आसमान के सितारे खिले हुए थे। किसी खेत के रखवाले की बांसुरी की आवाज, जिसे दूरी ने तासीर, सन्नाटे ने सुरीलापन और अंधेरे ने आत्मिकता का आकर्षण दे दिया था, कानों में आ रही थी कि जैसे कोई पवित्र आत्मा नदी के किनारे बैठी हुई पानी की लहरों से या दूसरे किनारे के खामोश और अपनी तरफ खींचने वाले पेड़ों से अपनी जिंदगी की गम की कहानी सुना रही है।

मगनदास सो गया, मगर रम्भा की आंखों में नींद न आई।

6

सुबह हुई तो मगनदास उठा और रम्भा, रम्भा पुकारने लगा। मगर रम्भा रात ही को अपनी

चाची के साथ वहां से कहीं चली गई। मगनदास को उस मकान के दरो-दीवार पर एक हसरत-सी छाई हुई मालूम हुई कि जैसे घर की जान निकल गई हो। वह घबराकर उस कोठरी में गया जहां रम्भा रोज चक्की पीसती थी, मगर अफसोस आज चक्की एकदम निश्चल थी। फिर वह कुएं की तरफ दौड़ा गया लेकिन ऐसा मालूम हुआ कि कुएं ने उसे निगल जाने के लिए अपना मुंह खोल दिया है। तब वह बच्चों की तरह चीख उठा और रोता हुआ फिर उसी झोंपड़ी में आया जहां कल रात तक प्रेम का वास था। मगर आह, उस वक्त वह शोक का घर बना हुआ था। जब जरा आंसू थमे तो उसने घर में चारों तरफ निगाह दौड़ाई। रम्भा की साड़ी अरगनी पर पड़ी हुई थी। एक पिटारी में वह कंगन रखा हुआ था जो मगनदास ने उसे दिया था। बर्तन सब रखे हुए थे, साफ और सुथरे। मगनदास सोचने लगा—रम्भा, तूने रात को कहा था—मैं तुम्हें छोड़ दूंगी। क्या तूने वह बात दिल से कही थी ? मैंने तो समझा था, तू दिल्लगी कर रही है, नहीं तो मैं तुझे कलेजे में छिपा लेता। मैं तो तेरे लिए सब कुछ छोड़े बैठा था। तेरा प्रेम मेरे लिए सब कुछ था। आह, मैं यों बेचैन हूं, क्या तू बेचैन नहीं है ? हाय, तू रो रही है। मुझे यकीन है कि तू अब भी लौट आएगी। फिर सजीव कल्पनाओं का एक जमघट उसके सामने आया—वह नाजुक अदाएं, वह मतवाली आंखें, वह भोली-भोली बातें, वह अपने को भूली हुई-सी मेहरबानियां, वह जीवनदायी मुस्कान, वह आशिकों जैसी दिलजोइयां, वह प्रेम का नशा, वह हमेशा खिला रहने वाला चेहरा, वह लचक-लचककर कुएं से पानी लाना, वह इंतजार की सूरत, वह मुहब्बत से भरी हुई बेचैनी—यह सब तस्वीरें उसकी निगाहों के सामने हसरतनाक बेताबी के साथ फिरने लगीं। मगनदास ने एक ठंडी सांस ली और आंसुओं और दर्द की उमड़ती हुई नदी को मर्दाना जब्त से रोककर उठ खड़ा हुआ। नागपुर जाने का पक्का फैसला हो गया। तकिए के नीचे से संदूक की कुंजी उठाई तो कागज का एक टुकड़ा निकल आया। यह रम्भा की विदा की चिट्ठी थी—

प्यारे,

मैं बहुत रो रही हूं। मेरे पैर नहीं उठते, मगर मेरा जाना जरूरी है। तुम्हें जगाऊंगी तो तुम जाने न दोगे। आह, कैसे जाऊं, अपने प्यारे पति को कैसे छोड़ूं ! किस्मत मुझसे यह आनंद का घर छुड़वा रही है, मुझे बेवफा न कहना, मैं तुमसे फिर कभी मिलूंगी। मैं जानती हूं कि तुमने मेरे लिए यह सब कुछ त्याग दिया है। मगर तुम्हारे लिए जिंदगी में बहुत कुछ उम्मीदें हैं। मैं अपनी मुहब्बत की धुन में तुम्हें उन उम्मीदों से क्यों दूर रखूं। अब तुमसे जुदा होती हूं। मेरी सुध मत भूलना। मैं तुम्हें हमेशा याद रखूंगी। यह आनंद के दिन कभी न भूलेंगे। क्या तुम मुझे भूल सकोगे ?

तुम्हारी प्यारी
रम्भा

7

मगनदास को दिल्ली आए तीन महीने गुजर चुके हैं। इस बीच उसे सबसे बड़ा जो निजी अनुभव हुआ वह यह था कि रोजी की फ़िक्र और धंधों की बहुतायत से उमड़ती हुई

भावनाओं का जोर कम किया जा सकता है। डेढ़ साल पहले का बेफिक्र नौजवान अब एक समझदार और सूझ-बूझ रखने वाला आदमी बन गया था। सागर घाट के उस कुछ दिनों के रहने से उसे रिआया की उन तकलीफों का निजी ज्ञान हो गया था जो कारिंदों और मुख्तारों की सख्तियों की बदौलत उन्हें उठानी पड़ती हैं। उसने उसे रियासत के इंतजाम में बहुत मदद दी और गो कर्मचारी दबी जबान से उसकी शिकायत करते थे और अपनी किस्मतों और जमाने के उलट-फेर को कोसते थे मगर रिआया खुश थी। हां, जब वह सब धंधों से फुर्सत पाता तो एक भोली-भाली सूरत वाली लड़की उसके खयाल के पहलू में आ बैठती और थोड़ी देर के लिए सागर घाट का वह हरा-भरा झोंपड़ा और उसकी मस्तियां आंखों के सामने आ जातीं। सारी बातें एक सुहाने सपने की तरह याद आ-आकर उसके दिल को मसोसने लगतीं लेकिन कभी-कभी खुद-ब-खुद उसका खयाल इन्दिरा की तरफ भी जा पहुंचता। गो उसके दिल में रम्भा की वही जगह थी मगर किसी तरह उसमें इन्दिरा के लिए भी एक कोना निकल आया था। जिन हालतों और आफतों ने उसे इन्दिरा से बेजार कर दिया था वह अब रुखसत हो गई थीं। अब उसे इन्दिरा से कुछ हमदर्दी हो गई थी। अगर उसके मिजाज में घमंड है, हकमत है, तकल्लुफ है, शान है तो यह उसका कसूर नहीं, यह रईसजादों की आम कमजोरियां हैं। यही उनकी शिक्षा है। वे बिल्कुल बेबस और मजबूर हैं। इन बदले हुए और संतुलित भावों के साथ जहां वह बेचैनी के साथ रम्भा की याद को ताजा किया करता था वहां इन्दिरा का स्वागत करने और उसे अपने दिल में जगह देने के लिए तैयार था। वह दिन भी दूर नहीं था जब उसे उस आजमाइश का सामना करना पड़ेगा। उसके कई आत्मीय अमीराना शान-शौकत के साथ इन्दिरा को विदा कराने के लिए नागपुर गए हुए थे। मगनदास की तबीयत आज तरह-तरह के भावों के कारण, जिनमें प्रतीक्षा और मिलन की उत्कंठा विशेष थी, उचाट-सी हो रही थी। जब कोई नौकर आता तो वह संभल बैठता कि शायद इन्दिरा आ पहुंची। आखिर शाम के वक्त, जब दिन और रात गले मिल रहे थे, जनानखाने में जोर-शोर के गाने की आवाजों ने बहू के पहुंचने की सूचना दी।

सुहाग की सुहानी रात थी। दस बज गए थे। खुले हुए हवादार सहन म चांदनी छिटकी हुई थी, वह चांदनी जिसमें नशा है, आरजू है और खिंचाव है। गमलों में खिले हुए गुलाब और चम्पे के फूल चांद की सुनहरी रोशनी में ज्यादा गंभीर और खामोश नजर आते थे। मगनदास इन्दिरा से मिलने के लिए चला। उसके दिल में लालसाएं जरूर थीं मगर एक पीड़ा भी थी। दर्शन की उत्कंठा थी मगर प्यास से खाली। मुहब्बत नहीं, प्राणों का खिंचाव था जो उसे खींचे लिए जाता था। उसके दिल में बैठी हुई रम्भा शायद बार-बार बाहर निकलने की कोशिश कर रही थी। इसीलिए दिल में धड़कन हो रही थी। वह सोने के कमरे के दरवाजे पर पहुंचा। रेशमी पर्दा पड़ा हुआ था। उसने पर्दा उठा दिया। अंदर एक औरत सफेद साड़ी पहने खड़ी थी। हाथ में चंद खूबसूरत चूड़ियों के सिवा उसके बदन पर एक जेवर भी न था। ज्योंही पर्दा उठा और मगनदास ने अंदर कदम रखा, वह मुस्कराती हुई उसकी तरफ बढ़ी। मगनदास ने उसे देखा और चकित होकर बोला, 'रम्भा !' और दोनों प्रेमावेश से लिपट गए। दिल में बैठी हुई रम्भा बाहर निकल आई थी।

साल भर गुजरने के बाद एक दिन इन्दिरा ने अपने पति से कहा—क्या रम्भा को बिल्कुल

भूल गए ? कैसे बेवफा हो ! कुछ याद है, उसने चलते वक्त तुमसे क्या विनती की थी ?

मगनदास ने कहा—खूब याद है। वह आवाज भी कानों में गूंज रही है। मैं रम्भा को भोली-भाली लड़की समझता था। यह नहीं जानता था कि यह त्रिया-चरित्र का जादू है। मैं अपनी रम्भा को अब भी इन्दिरा से ज्यादा प्यार करता हूं। तुम्हें डाह तो नहीं होती ?

इन्दिरा ने हंसकर जवाब दिया—डाह क्यों हो ? तुम्हें रम्भा है तो क्या मेरा मगनसिंह नहीं है ? मैं अब भी उस पर मरती हूं।

दूसरे दिन दोनों दिल्ली से एक राष्ट्रीय समारोह में शरीक होने का बहाना करके रवाना हो गए और सागर घाट जा पहुंचे। वह झोंपड़ा, वह मुहब्बत का मंदिर, यह प्रेम-भवन फूल और हरियाली से लहरा रहा था। चम्पा मालिन उन्हें वहां मिली। गांव के जमींदार उनसे मिलने के लिए आए, कई दिन तक फिर मगनसिंह को घोड़े निकालने पड़े। रम्भा कुएं से पानी लाती, खाना पकाती, फिर चक्की पीसती और गाती। गांव की औरतें फिर उससे अपने कुर्ते और बच्चों की लेसदार टोपियां सिलातीं। हां, इतना जरूर कहतीं कि उसका रंग कैसा निखर आया है, हाथ-पांव कैसे मुलायम पड़ गए हैं, किसी बड़े घर की रानी मालूम होती है। मगर स्वभाव वही है, वही मीठी बोली है, वही मुरौवत, वही हंसमुख चेहरा।

इस तरह एक हफ्ते तक इस सरल और पवित्र जीवन का आनंद उठाने के बाद दोनों दिल्ली वापस आए और अब दस साल गुजरने पर भी साल में एक बार उस झोंपड़े के नसीब जागते हैं। वह मुहब्बत की दीवार अभी तक उन दोनों प्रेमियों को अपनी छाया मे आराम देने के लिए खड़ी है।

[उर्दू में 'तिरिया-चरित्तर' शीर्षक से प्रथम प्रकाशन। 'जमाना', जनवरी, 1913 में प्रकाशित। उर्दू 'प्रेम पचीसी' में संकलित। हिन्दी रूप 'त्रिया-चरित्र' शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-1 में संकलित।]

अमृत

मेरी उठती जवानी थी जब मेरा दिल दर्द के मजे से परिचित हुआ। कुछ दिनों तक शायरी का अभ्यास करता रहा और धीरे-धीरे इस शौक ने तल्लीनता का रूप ले लिया। सारे सांसारिक संबंधों से मुंह मोड़कर अपनी शायरी की दुनिया में आ बैठा और तीन ही साल की मश्क ने मेरी कल्पना के जौहर खोल दिए। कभी-कभी मेरी शायरी उस्तादों के मशहूर कलाम से टक्कर खा जाती थी। मेरे कलम ने किसी उस्ताद के सामने सर नहीं झुकाया। मेरी कल्पना एक अपने आप बढ़ने वाले पौधे की तरह छंद और पिंगल की कैदों से आजाद बढ़ती रही और मेरे कलाम का ढंग बिल्कुल निराला था। मैंने अपनी शायरी को फारस से बाहर निकालकर योरोप तक पहुंचा दिया। यह मेरा अपना रंग था। इस मैदान में न मेरा कोई प्रतिद्वंद्वी था, न बराबरी करने वाला। बावजूद इस शायरों जैसी तल्लीनता के मुझे मुशायरों की वाह-वाह और सुभानअल्लाह से नफरत थी। हां, काव्य-रसिकों से बिना अपना नाम बताए हुए अक्सर अपनी शायरों की अच्छाइयों और बुराइयों पर बहस किया करता।

गो मुझे शायरी का दावा न था मगर धीरे-धीरे मेरी शोहरत होने लगी और जब मेरी मसनवी 'दुनियाए हुस्न' प्रकाशित हुई तो साहित्य की दुनिया में हलचल-सी मच गई। पुराने शायरों ने काव्य-मर्मज्ञों की प्रशंसा-कृपणता में पोथे के पोथे रंग दिए हैं मगर मेरा अनुभव इसके बिल्कुल विपरीत था। मुझे कभी-कभी यह खयाल सताया करता कि मेरे कद्रदानों की यह उदारता दूसरे कवियों की लेखनी की दरिद्रता का प्रमाण है। यह खयाल हौसला तोड़ने वाला था। बहरहाल, जो कुछ हुआ 'दुनियाए हुस्न' ने मुझे शायरी का बादशाह बना दिया। मेरा नाम हरेक जबान पर था। मेरी चर्चा हर एक अखबार में थी। शोहरत अपने साथ दौलत भी लाई। मुझे दिन-रात शेरो-शायरी के अलावा और कोई काम न था। अक्सर बैठे-बैठे रातें गुजर जातीं और जब कोई चुभता हुआ शेर कलम से निकल जाता तो मैं खुशी के मारे उछल पड़ता। मैं अब तक शादी-ब्याह की कैदों से आजाद था या यों कहिए कि मैं उसके उन मजों से अपरिचित था जिनमें रंज की तल्खी भी है और खुशी की नमकीनी भी। अक्सर पश्चिमी साहित्यकारों की तरह मेरा भी खयाल था कि साहित्य के उन्माद और सौंदर्य के उन्माद में पुराना वैर है। मुझे अपनी जबान से कहते हुए शर्मिंदा होना पड़ता है कि मुझे अपनी तबीयत पर भरोसा न था। जब कभी मेरी आंखों में कोई मोहिनी सूरत खुब जाती तो मेरे दिल-दिमाग पर एक पागलपन-सा छा जाता। हफ्तों तक अपने को भूला हुआ-सा रहता। लिखने की तरफ तबीयत किसी तरह न झुकती। ऐसे कमजोर दिल में सिर्फ एक इश्क की जगह थी। इसी डर से मैं अपनी रंगीन तबीयत के खिलाफ आचरण शुद्ध रखने पर मजबूर था। कमल की एक पंखुड़ी, श्यामा के एक गीत, लहलहाते हुए एक मैदान में मेरे लिए जादू का-सा आकर्षण था मगर किसी औरत के दिलफरेब हुस्न को मैं चित्रकार या मूर्तिकार की बेलौस आंखों से नहीं देख सकता था। सुंदर स्त्री मेरे लिए एक रंगीन, कातिल नागिन थी जिसे देखकर आंखें खुश होती हैं मगर दिल डर से सिमट जाता है।

खैर, 'दुनियाए हुस्न' को प्रकाशित हुए दो साल गुजर चुके थे। मेरी ख्याति बरसात की उमड़ी हुई नदी की तरह बढ़ती चली जाती थी। ऐसा मालूम होता था कि जैसे मैंने साहित्य की दुनिया पर कोई वशीकरण कर दिया है। इसी दौरान में मैंने फुटकर शेर तो बहुत कहे मगर दावतों और अभिनंदन-पत्रों की भीड़ ने मार्मिक भावों को उभरने न दिया। प्रदर्शन और ख्याति एक राजनीतिज्ञ के लिए कोड़े का काम दे सकते हैं, मगर शायर की तबीयत अकेले शांति से एक कोने में बैठकर ही अपना जौहर दिखलाती है। चुनांचे मैं इन रोज ब रोज बढ़ती हुई बेहूदा बातों से गला छुड़ाकर भागा और पहाड़ के एक कोने में जा छिपा। 'नैरंग' ने वहीं जन्म लिया।

2

'नैरंग' के शुरू करते ही मुझे एक आश्चर्यजनक और दिल तोड़ने वाला अनुभव हुआ। ईश्वर जाने क्यों मेरी अक्ल और मेरे चिन्तन पर एक पर्दा पड़ गया। घंटों तबीयत पर जोर डालता मगर एक शेर भी ऐसा न निकलता कि दिल फड़क उठे। सूझते भी तो दरिद्र, पिटे हुए विषय, जिनसे मेरी आत्मा भागती थी। मैं अक्सर झुंझलाकर उठ बैठता, कागज फाड़ डालता और बड़ी बेदिली की हालत में सोचने लगता कि क्या मेरी काव्यशक्ति का अंत हो

गया, क्या मैंने वह खजाना जो प्रकृति ने मुझे सारी उम्र के लिए दिया था, इतनी जल्दी मिटा दिया ? कहां वह हालत थी कि विषयों की बहुतायत और नाजुक खयालों की रवानी कलम को दम नहीं लेने देती थी। कल्पना का पंछी उड़ता तो आसमान का तारा बन जाता था और कहां अब यह पस्ती ! यह करुण दरिद्रता ! मगर इसका कारण क्या है ? यह किस कसूर की सजा है ? कारण और कार्य का दूसरा नाम दुनिया है। जब तक हमको क्यों का जवाब न मिले, दिल को किसी तरह सब्र नहीं होता, यहां तक कि मौत को भी इस क्यों का जवाब देना पड़ता है। आखिर मैंने एक डॉक्टर से सलाह ली। उसने आम डॉक्टरों की तरह आबहवा बदलने की सलाह दी। मेरी अक्ल में भी यह बात आई कि मुमकिन है नैनीताल की ठंडी आबहवा से शायरी की आग ठंडी पड़ गई हो। छः महीने तक लगातार घूमता-फिरता रहा। अनेक आकर्षक दृश्य देखे, मगर उनसे आत्मा पर वह शायराना कैफियत न छाती थी कि प्याला छलक पड़े और खामोश कल्पना खुद ब खुद चहकने लगे। मुझे अपना खोया हुआ लाल न मिला। अब मैं जिंदगी से तंग था। जिंदगी अब मुझे सूखे रेगिस्तान जैसी मालूम होती जहां कोई जान नहीं, ताजगी नहीं, दिलचस्पी नहीं। हरदम दिल पर एक मायूसी-सी छायी रहती और दिल खोया-खोया रहता। दिल में यह सवाल पैदा होता कि क्या वह चार दिन की चांदनी खतम हो गई और अंधेरा पाख आ गया ? आदमी की संगत से बेजार, हमजिंस की सूरत से नफरत, मैं एक गुमनाम कोने में पड़ा हुआ जिंदगी के दिन पूरे कर रहा था। पेड़ों की चोटियों पर बैठने वाली, मीठे राग गाने वाली चिड़िया क्या पिंजरे में जिंदा रह सकती है ? मुमकिन है कि वह दाना खाए, पानी पिए मगर उसकी इस जिंदगी और मौत में कोई फर्क नहीं है।

आखिर जब मुझे अपनी शायरी के लौटने की कोई उम्मीद न रही, तो मेरे दिल मे यह इरादा पक्का हो गया कि अब मेरे लिए शायरी की दुनिया से मर-जाना ही बेहतर होगा। मुर्दा तो हूं ही, इस हालत में अपने को जिंदा समझना बेवकूफी है। आखिर मैंने एक रोज कुछ दैनिक पत्रों को अपने मरने की खबर दे दी। उसके छपते ही मुल्क में कोहराम मच गया, एक तहलका पड़ गया। उस वक्त मुझे अपनी लोकप्रियता का कुछ अंदाजा हुआ। यह आम पुकार थी, कि शायरी की दुनिया की किश्ती मझधार में डूब गई। शायरी की महफिल उखड़ गई। पत्र-पत्रिकाओं में मेरे जीवन-चरित्र प्रकाशित हुए जिनको पढ़कर मुझे उनके एडीटरों की आविष्कारबुद्धि का कायल होना पड़ा। न तो मैं किसी रईस का बेटा था और न मैंने रईसी की मसनद छोड़कर फरीकी अख्तियार की थी। उनकी कल्पना वास्तविकता पर छा गई थी। मेरे मित्रों में एक साहब ने, जिन्हें मुझसे आत्मीयता का दावा था, मुझे पीने-पिलाने का प्रेमी बना दिया था। वह जब कभी मुझसे मिलते, उन्हें मेरी आंखें नशे से लाल नजर आतीं। अगरचे इसी लेख में आगे चलकर उन्होंने मेरी इस बुरी आदत की बहुत उदारहृदयता से सफाई दी थी क्योंकि रूखा-सूखा आदमी ऐसी मस्ती के शेर नहीं कह सकता था। ताहम हैरत है कि उन्हें यह सरीहन गलत बात कहने की हिम्मत कैसे हुई?

खैर, इन गलत-बयानियों की तो मुझे परवाह न थी। अलबत्ता यह बड़ी फिक्र थी, फिक्र नहीं एक प्रबल जिज्ञासा थी कि मेरी शायरी पर लोगों की जबान से क्या फतवा निकलता है। हमारी जिंदगी के कारनामे की सच्ची दाद मरने के बाद ही मिलती है

क्योंकि उस वक्त वह खुशामद और बुराइयों से पाक-साफ होती है। मरने वाले की खुशी या रंज की कौन परवाह करता है। इसीलिए मेरी कविता पर जितनी आलोचनाएं निकली हैं उनको मैंने बहुत ही ठंडे दिल से पढ़ना शुरू किया। मगर कविता को समझने वाली दृष्टि की व्यापकता और उसके मर्म को समझने वाली रुचि का चारों तरफ अकाल-सा मालूम होता था। अधिकांश जौहरियों ने एक-एक शेर को लेकर उनसे बहस की थी, और इसमें शक नहीं कि वे पाठक की हैसियत से उस शेर के पहलुओं को खूब समझते थे। मगर आलोचक का कहीं पता न था। नजर की गहराई गायब थी। समग्र कविता पर निगाह डालने वाला, कवि के गहरे भावों तक पहुंचने वाला कोई आलोचक न दिखाई दिया।

3

एक रोज मैं प्रेतों की दुनिया से निकलकर घूमता हुआ अजमेर की पब्लिक लाइब्रेरी में जा पहुंचा। दोपहर का वक्त था। मैंने मेज पर झुककर देखा कि कोई नई रचना हाथ आ जाए तो दिल बहलाऊं। यकायक मेरी निगाह एक सुंदर पत्र की ओर गई जिसका नाम था 'कलामे अख्तर'। जैसे भोला बच्चा खिलौने की तरफ लपकता है उसी तरह झपटकर मैंने उस किताब को उठा लिया। उसकी लेखिका मिस आयशा आरिफ थीं। दिलचस्पी और भी ज्यादा हुई। मैं इत्मीनान से बैठकर उस किताब को पढ़ने लगा। एक ही पन्ना पढ़ने के बाद दिलचस्पी ने बेताबी की सूरत अख्तियार की। फिर तो मैं बेसुधी की दुनिया में पहुंच गया। मेरे सामने गोया सूक्ष्म अर्थों की एक नदी लहरें मार रही थी। कल्पना की उठान, रुचि की स्वच्छता, भाषा की नर्मी, काव्य-दृष्टि की व्यापकता, किस-किसकी तारीफ करूं। उसकी एक-एक कल्पना ऐसी थी कि हृदय धन्य-धन्य कह उठता। मैं एक पैराग्राफ पढ़ता, फिर विचार की ताजगी से प्रभावित होकर एक लंबी सांस लेता और तब सोचने लगता। इस किताब को सरसरी तौर पर पढ़ना असंभव था। यह औरत थी या सुरुचि की देवी। इसके इशारों से मेरा कलाम बहुत कम बचा था मगर जहां उसने मुझे दाद दी थी वहां सच्चाई के मोती बरसा दिए थे। उसके एतराजों में हमदर्दी और प्रशंसा में भक्ति थी। शायर के कलाम को दोषों की दृष्टि से नहीं, खूबियों की दृष्टि से देखना चाहिए। उसने क्या नहीं किया, यह ठीक कसौटी नहीं। उसने क्या किया, यह ठीक कसौटी है। बस, यही जी चाहता था कि लेखिका के हाथ और कलम चूम लूं। 'सफीर' भोपाल के दफ्तर से यह पत्रिका प्रकाशित हुई थी। मेरा पक्का इरादा हो गया। तीसरे दिन शाम के वक्त मैं मिस आयशा के खूबसूरत बंगले के सामने हरी-हरी घास पर टहल रहा था। मैं नौकरानी के साथ एक कमरे में दाखिल हुआ। उसकी सजावट बहुत सादी थी। पहली चीज जिस पर मेरी निगाह पड़ी वह मेरी तस्वीर थी जो दीवार से लटक रही थी। सामने एक आईना रखा हुआ था। मैंने खुदा जाने क्यों उसमें अपनी सूरत देखी। मेरा चेहरा पीला और कुम्हलाया हुआ था, बाल उलझे हुए, कपड़ों पर गर्द की एक मोटी तह जमी हुई, परेशानी की जिंदा तस्वीर खड़ी थी।

उस वक्त मुझे अपनी बुरी शक्ल पर सख्त शर्मिंदगी हुई। मैं सुंदर न सही मगर इस वक्त तो सचमुच चेहरे पर फटकार बरस रही थी। अपने लिबास के ठीक होने का यकीन

हमें खुशी देता है। अपने फूहड़पन का जिस्म पर इतना असर नहीं होता जितना दिल पर। हम बुजदिल और बेहौसला हो जाते हैं।

मुझे मुश्किल से पांच मिनट गुजरे होंगे कि मिस आयशा तशरीफ लाई। सांवला रंग था, चेहरा एक गंभीर घुलावट से चमक रहा था। बड़ी-बड़ी नरगिसी आंखों से सदाचार की, संस्कृति की रोशनी झलकती थी। कद मझोले से कुछ कम। अंग-प्रत्यंग छरहरे, सुथरे, ऐसी हल्की-फुल्की कि जैसे प्रकृति ने उसे इस भौतिक संसार के लिए नहीं, किसी काल्पनिक संसार के लिए सिरजा है। कोई चित्रकार कला की उससे अच्छी तस्वीर नहीं खींच सकता था।

मिस आयशा ने मेरी तरफ दबी निगाहों से देखा मगर देखते-देखते उसकी गर्दन झुक गई और उसके गालों पर लाज की एक हल्की-सी परछाई नाचती हुई मालूम हुई। जमीन से उठकर उसकी आंखें मेरी तस्वीर की तरफ गईं और फिर सामने पर्दे की तरफ जा पहुंचीं। शायद उसकी आड़ में छिपना चाहती थीं।

मिस आयशा ने मेरी तरफ दबी निगाहों से देखकर पूछा—आप स्वर्गीय अख्तर के दोस्तों में हैं ?

मैंने सर नीचा किए हुए जवाब दिया—मैं ही बदनसीब अख्तर हूं।

आयशा एक बेखुदी के आलम में कुर्सी पर से उठ खड़ी हुई और मेरी तरफ हैरत से देखकर बोली—'दुनियाए हुस्न' के लिखने वाले ?

अंधविश्वास के सिवा और किसने इस दुनिया से चले जाने वाले को देखा है। आयशा ने मेरी तरफ कई बार शक से भरी हुई निगाहों से देखा। उनमें अब शर्म और हया की जगह के बजाय हैरत समाई हुई थी। मेरे कब्र से निकलकर भागने का तो उसे यकीन आ ही नहीं सकता था, शायद वह मुझे दीवाना समझ रही थी। उसने दिल में फैसला किया कि यह आदमी मरहूम शायर का कोई करीबी अजीज है। शक्ल जिस तरह मिल रही थी वह दोनों के एक खानदान के होने का सबूत थी। मुमकिन है कि भाई हों। इस अचानक सदमे से पागल हो गया है। शायद उसने मेरी किताब देखी होगी और हाल पूछने के लिए चला आया। अचानक उसे खयाल गुजरा कि किसी ने अखबारों को मेरे मरने की झूठी खबर दे दी हो और मुझे उस खबर को काटने का मौका न मिला हो। इस खयाल से उसकी उलझन दूर हुई, बोली—अखबारों में आपके बारे में एक निहायत मनहूस खबर छप गई थी? मैंने जवाब दिया—वह खबर सही थी।

अगर पहले आयशा को मेरे दीवानेपन में कुछ शक था तो वह दूर हो गया। आखिर मैंने थोड़े लफ्जों में अपनी दास्तान सुनाई और जब उसको यकीन हो गया कि 'दुनियाए हुस्न' का लिखने वाला अख्तर अपने इंसानी चोले में है तो उसके चेहरे पर खुशी की एक हल्की सुर्खी दिखाई दी और यह हल्का रंग बहुत जल्द खुद्दारी और रूप-गर्व के शोख रंग से मिलकर कुछ का कुछ हो गया। गालिबन वह शर्मिंदा थी कि क्यों उसने अपनी कद्रदानी को हद से बाहर जाने दिया। कुछ देर की शर्मीली खामोशी के बाद उसने कहा—मुझे अफसोस है कि आपको ऐसी मनहूस खबर निकालने की जरूरत हुई।

मैंने जोश में भरकर जवाब दिया—आपके कलम की जबान से दाद पाने की कोई सूरत न थी। इस तनकीद के लिए मैं ऐसी-ऐसी कई मौतें मर सकता था।

मेरे इस बेधड़क अंदाज ने आयशा की जबान को भी शिष्टाचार और संकोच की कैद से आजाद किया, मुस्कराकर बोली—मुझे बनावट पसंद नहीं है। डॉक्टरों ने कुछ बतलाया नहीं ? उसकी इस मुस्कराहट ने मुझे दिल्लगी करने पर आमादा किया, बोला—अब मसीह के सिवा इस मर्ज का इलाज और किसी के हाथ से नहीं हो सकता।

आयशा इशारा समझ गई, हंसकर बोली—मसीह चौथे आसमान पर रहते हैं।

मेरी हिम्मत ने अब और क़दम बढ़ाए—रूहों की दुनिया से चौथा आसमान बहुत दूर नहीं है।

आयशा के खिले हुए चेहरे से संजीदगी और अजनबियत का हल्का रंग उड़ गया। ताहम, मेरे इन बेधड़क इशारों को हद से बढ़ते देखकर उसे मेरी जबान पर रोक लगाने के लिए किसी कदर खुद्दारी बरतनी पड़ी। जब मैं कोई घंटेभर के बाद उस कमरे से निकला तो बजाय इसके कि वह मेरी तरफ अपनी अंग्रेजी तहजीब के मुताबिक हाथ बढ़ाए उसने चोरी-चोरी मेरी तरफ देखा। फैला हुआ पानी जब सिमटकर किसी जगह से निकलता है तो उसका बहाव बहुत तेज और ताकत कई गुना ज्यादा हो जाती है। आयशा की उन निगाहों में अस्मत की तासीर थी। उनमें दिल मुस्कराता था और जज्बा नाचता था। आह, उनमें मेरे लिए दावत का एक पुरजोश पैगाम भरा हुआ था। जब मैं मुस्लिम होटल में पहुंचकर इन वाकयात पर गौर करने लगा तो मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि गो मैं ऊपर से देखने पर यहां अब तक अपरिचित था, लेकिन भीतरी तौर पर शायद मैं उसके दिल के कोने तक पहुंच चुका था।

4

जब मैं खाना खाकर पलंग पर लेटा तो बावजूद दो दिन रात-रात भर जागने के नींद आंखों से कोसों दूर थी। जज्बात की कशमकश में नींद कहां। आयशा की सूरत, उसकी खातिरदारियां और उसकी वह छिपी-छिपी निगाह दिल में एहसासों का तूफान सा बरपा कर रही थी। उस आखिरी निगाह ने दिल में तमन्नाओं की रूम-धूम मचा दी। वह आरजुएं, जो बहुत अरसा हुआ, मर मिटी थीं फिर जाग उठीं और आरजुओं के साथ कल्पना ने भी मुंदी हुई आंखें खोल दीं।

दिल में जज्बात और कैफियत का एक नया बेचैन करने वाला जोश महसूस हुआ। यही आरजुएं, यही बेचैनियां और यही शोरिशें कल्पना के दीपक के लिए तेल हैं। जज्बात की हरारत ने कल्पना को गर्माया। मैं कलम लेकर बैठ गया और एक ऐसी नज्म लिखी जिसे मैं अपनी सबसे शानदार दौलत समझता हूं।

मैं एक होटल में रह रहा था, मगर किसी न किसी हीले से दिन में कम-से-कम एक बार जरूर उसके दर्शन का आनंद उठाता। गो आयशा ने कभी मेरे यहां तक आने की तकलीफ नहीं की तो भी मुझे यह यकीन करने के लिए शहादतों की जरूरत न थी कि वहां किसी कदर सरगर्मी से मेरा इंतजार किया जाता था। मेरे कदमों की पहचानी हुई आहट पाते ही उसका चेहरा कमल की तरह खिल जाता था और आंखों से कामना की किरणें निकलने लगती थीं।

यहां छः महीने गुजर गए। इस जमाने को मेरी जिंदगी की बहार समझना चाहिए।

मुझे वह दिन भी याद है जब मैं आरजुओं और हसरतों के गम से आजाद था। मगर दरिया की शांतिपूर्ण रवानी में थिरकती हुई लहरों की बहार कहां। अब अगर मुहब्बत का दर्द था तो उसका प्राणदायी मजा भी था। अगर आरजुओं की घुलावट थी तो उनकी उमंग भी थी। आह, मेरी यह प्यासी आंखें उस रूप के स्रोत से किसी तरह तृप्त न होतीं। जब मैं अपनी नशे में डूबी हुई आंखों से उसे देखता तो मुझे एक आत्मिक तरावट-सी महसूस होती। मैं उसके दीदार के नशे से बेसुध-सा हो जाता और मेरी रचना-शक्ति का तो कुछ हद-हिसाब न था। ऐसा मालूम होता था कि जैसे दिल में मीठे भावों का सोता खुल गया था। अपनी कवित्व शक्ति पर खुद अचंभा होता था। कलम हाथ में ली और रचना का सोता-सा बह निकला। 'नैरंग' में ऊंची कल्पनाएं न हों, बड़ी गूढ़ बातें न हों, मगर उसका एक-एक शेर प्रवाह और रस, गर्मी और घुलावट की दाद दे रहा है। यह उस दीपक का वरदान है, जो अब मेरे दिल में जल गया था और रोशनी दे रहा था। यह उस फूल की महक थी जो मेरे दिल में खिला हुआ था। मुहब्बत रूह की खूराक है। यह वह अमृत की बूंद है जो मरे हुए भावों को जिंदा कर देती है। मुहब्बत आत्मिक वरदान है। यह जिंदगी की सबसे पाक, सबसे ऊंची, सबसे मुबारक बरकत है। यही अक्सीर थी जिसकी अनजाने ही मुझे तलाश थी। वह रात कभी न भूलेगी जब आयशा दुल्हन बनी हुई मेरे घर में आई। 'नैरंग' उसी मुबारक जिंदगी को यादगार है। 'दुनियाए हुस्न' एक कली थी, 'नैरंग' खिला हुआ फूल है और उस कली को खिलाने वाली कौन-सी चीज है ? वही, जिसकी मुझे अनजाने ही तलाश थी और जिसे मैं अब पा गया था।

['मौत और जिन्दगी' शीर्षक से उर्दू में प्रथम प्रकाशन, 'जमाना', मार्च, 1913 में। उर्दू 'प्रेम पचीसी' में 'अमरित' शीर्षक से संकलित। हिन्दी रूप 'अमृत' शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-1 में संकलित।]

अमावस्या की रात्रि

दीवाली की संध्या थी। श्रीनगर के घूरों और खंडहरों के भी भाग्य चमक उठे थे। कस्बे के लड़के और लड़कियाँ श्वेत थालियों में दीपक लिये मंदिर की ओर जा रही थीं। दीपों से उनके मुखारविंद प्रकाशमान थे। प्रत्येक गृह रोशनी से जगमगा रहा था। केवल पंडित देवदत्त का सतधारा भवन काली घटा के अंधकार में गंभीर और भयंकर रूप में खड़ा था। देवदत्त का सतधारा भवन काली घटा के अंधकार में गंभीर और भयंकर रूप में खड़ा था। गंभीर इसलिए कि उसे अपनी उन्नति के दिन भूले न थे, भयंकर इसलिए कि यह जगमगाहट मानो उसे चिढ़ा रही थी। एक समय वह था जब कि ईर्ष्या भी उसे देख-देखकर हाथ मलती थी और एक समय यह है जब कि घृणा भी उस पर कटाक्ष करती है। द्वार पर द्वारपाल की जगह अब मदार और एरंड के वृक्ष खड़े थे। दीवानखाने में एक मतंग साँड अकड़ता था। ऊपर के घरों में जहाँ सुन्दर रमणियाँ मनोहर संगीत गाती थीं, वहाँ आज जंगली कबूतरों के मधुर स्वर सुनायी देते थे। किसी अँग्रेजी मदरसे के विद्यार्थी के आचरण

की भाँति उसकी जड़ें हिल गयी थीं और उसकी दीवारें किसी विधवा स्त्री के हृदय की भाँति विदीर्ण हो रही थीं, पर समय को हम कुछ नहीं कह सकते। समय की निंदा व्यर्थ और भूल है, यह मूर्खता और अदूरदर्शिता का फल था।

अमावस्या की रात्रि थी। प्रकाश से पराजित हो कर मानो अंधकार ने उसी विशाल भवन में शरण ली थी। पंडित अपने अर्द्ध अंधकारवाले कमरे में मौन, परंतु चिंता से निमग्न थे। आज एक महीने से उनकी पत्नी गिरिजा की जिंदगी को निर्दय काल ने खिलवाड़ बना लिया है। पंडित जी दरिद्रता और दुःख को भुगतने के लिए तैयार थे। भाग्य का भरोसा उन्हें धैर्य बँधाता था; किंतु यह नयी विपत्ति सहन-शक्ति से बाहर थी। बेचारे दिन के दिन गिरिजा के सिरहाने बैठे हुए उसके मुरझाये हुए मुख को देख कर कुढ़ते और रोते थे। गिरिजा जब अपने जीवन से निराश हो कर रोती तो वह उसे समझाते--गिरिजा, रोओ मत, शीघ्र ही अच्छी हो जाओगी।

पंडित देवदत्त के पूर्वजों का कारोबार बहुत विस्तृत था। वे लेन-देन किया करते थे। अधिकतर उनके व्यवहार बड़े-बड़े चकलेदारों और रजवाड़ों के साथ थे। उस समय ईमान इतना सस्ता नहीं बिकता था। सादे पत्रों पर लाखों की बातें हो जाती थीं। मगर सन् सत्तावन ईस्वी के बलवे ने कितनी ही रियासतों और राज्यों को मिटा दिया और उनके साथ तिवारियों का यह अन्न-धन-पूर्ण परिवार भी मिट्टी में मिल गया। खजाना लुट गया, वही-खाते पंसारियों के काम आये। जब कुछ शांति हुई, रियासतें फिर सँभलीं तो समय पलट चुका था। वचन लेख के अधीन हो रहा था, तथा लेख में भी सादे और रंगीन का भेद होने लगा था।

जब देवदत्त ने होश सँभाला तब उनके पास इस खंडहर के अतिरिक्त और कोई सम्पत्ति न थी। अब निर्वाह के लिए कोई उपाय न था। कृषि में परिश्रम और कष्ट था। वाणिज्य के लिए धन और बुद्धि की आवश्यकता थी। विद्या भी ऐसी नहीं थी कि कहीं नौकरी करते, परिवार की प्रतिष्ठा दान लेने में बाधक थी। अस्तु, साल में दो-तीन बार अपने पुराने व्यवहारियों के घर बिना बुलाये पाहुनों की भाँति जाते और कुछ विदाई तथा मार्ग-व्यय पाते उसी पर गुजारा करते। पैतृक प्रतिष्ठा का चिह्न यदि कुछ शेष था, तो वह पुरानी चिट्ठी-पत्रियों का ढेर तथा हुँडियों का पुलिंदा, जिनकी स्याही भी उनके मंद भाग्य की भाँति फीकी पड़ गयी थी। पंडित देवदत्त उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय समझते। द्वितीया के दिन जब घर-घर लक्ष्मी की पूजा होती है, पंडित जी ठाट-बाट से इन पुलिंदों की पूजा करते। लक्ष्मी न सही, लक्ष्मी का स्मारक-चिह्न ही सही। दूज का दिन पंडित जी के प्रतिष्ठा के श्रद्धा का दिन था। इसे चाहे विडंबना कहो, चाहे मूर्खता, परंतु श्रीमान् पंडित महाशय को उन पत्रों पर बड़ा अभिमान था। जब गाँव में कोई विवाद छिड़ जाता तो यह सड़े-गले कागजों की सेना ही बहुत काम कर जाती और प्रतिवादी शत्रु को हार माननी पड़ती। यदि सत्तर पीढ़ियों से शस्त्र की सूरत न देखने पर भी लोग क्षत्रिय होने का अभिमान करते हैं, तो पंडित देवदत्त का उन लेखों पर अभिमान करना अनुचित नहीं कहा जा सकता, जिसमें सत्तर लाख रुपयों की रकम छिपी हुई थी।

2

वही अमावस्या की रात्रि थी किंतु दीपमालिका अपनी अल्प जीवनी समाप्त कर चुकी थी। चारों ओर जुआरियों के लिए यह शकुन की रात्रि थी ? क्योंकि आज की हार साल भर की हार होती है। लक्ष्मी के आगमन की धूम थी। कौड़ियों पर अशर्फियाँ लुट रही थीं। भट्टियों में शराब के बदले पानी बिक रहा था। पंडित देवदत्त के अतिरिक्त कस्बे में कोई ऐसा मनुष्य नहीं था, जो कि दूसरों की कमाई समेटने की धुन में न हो। आज भोर से ही गिरिजा की अवस्था शोचनीय थी। विषम ज्वर उसे एक-एक क्षण में मूर्च्छित कर रहा था। एकाएक उसने चौंक कर आँखें खोलीं और अत्यंत क्षीण स्वर में कहा—आज तो दीवाली है।

देवदत्त ऐसा निराश हो रहा था कि गिरिजा को चैतन्य देख कर भी उसे आनंद नहीं हुआ। बोला—हाँ, आज दीवाली है।

गिरिजा ने आँसू-भरी दृष्टि से इधर-उधर देख कर कहा—हमारे घर में क्या दीपक न जलेंगे?

देवदत्त फूट-फूट कर रोने लगा। गिरिजा ने फिर उसी स्वर में कहा—देखो, आज बरस-भर के दिन भी घर अँधेरा रह गया। मुझे उठा दो, मैं भी अपने घर दिये जलाऊँगी।

ये बातें देवदत्त के हृदय में चुभी जाती थीं। मनुष्य की अंतिम घड़ी लालसाओं और भावनाओं में व्यतीत होती है।

इस नगर में लाला शंकरदास अच्छे प्रसिद्ध वैद्य थे। अपने प्राणसंजीवन औषधालय में दवाओं के स्थान पर छापने का प्रेस रखे हुए थे। दवाइयाँ कम बनती थीं, इश्तहार अधिक प्रकाशित होते थे।

वे कहा करते थे कि बीमारी केवल रईसों का ढकोसला है और पोलिटिकल एकानोमी के (राजनीतिक अर्थशास्त्र के) अनुसार इस विलास-पदार्थ से जितना अधिक सम्भव हो, टैक्स लेना चाहिए। यदि कोई निर्धन है तो हो। यदि कोई मरता है तो मरे। उसे क्या अधिकार है कि बीमार पड़े और मुफ्त में दवा कराये ? भारतवर्ष की यह दशा अधिकतर मुफ्त दवा कराने से हुई है। इसने मनुष्यों को असावधान और बलहीन बना दिया है। देवदत्त महीने भर नित्य उनके निकट दवा लेने आता था; परंतु वैद्यजी कभी उसकी ओर इतना ध्यान नहीं देते थे कि वह अपनी शोचनीय दशा प्रकट कर सके। वैद्यजी के हृदय के कोमल भाग तक पहुँचने के लिए देवदत्त ने बहुत कुछ हाथ-पैर चलाये। वह आँखों में आँसू भरे आता, किन्तु वैद्य जी का हृदय ठोस था, उसमें कोमल भाव था ही नहीं।

वही अमावस्या की डरावनी रात थी। गगन-मंडल में तारे आधी रात के बीतने पर और भी अधिक प्रकाशित हो रहे थे मानो श्रीनगर की बुझी हुई दीवाली पर कटाक्षयुक्त आनंद के साथ मुस्करा रहे थे। देवदत्त बेचैनी की दशा में गिरिजा के सिरहाने से उठे और वैद्य जी के मकान की ओर चले। वे जानते थे कि लाला जी बिना फीस लिये कदापि नहीं आयेंगे, किंतु हताश होने पर भी आशा पीछा नहीं छोड़ती। देवदत्त कदम आगे बढ़ाते चले जाते थे।

3

हकीम जी उस समय अपने 'रामबाण बिंदु' का विज्ञापन लिखने में व्यस्त थे। उस विज्ञापन

की भावप्रद भाषा तथा आकर्षण-शक्ति देख कर कह नहीं सकते कि वे वैद्य-शिरोमणि थे या सुलेखक विद्यावारिधि।

पाठक, आप उनके उर्दू विज्ञापन का साक्षात् दर्शन कर लें–

'नाजरीन, आप जानते हैं कि मैं कौन हूँ ? आपका जर्द चेहरा, आपका तने लागिर, आपका जरा-सी मेहनत में बेदम हो जाना, आपका लज्जात दुनिया में महरूम रहना, आपका खाना तरीकी, यह सब इस सवाल का नफी में जवाब देते हैं। सुनिए, मैं कौन हूँ? मैं वह शख्स हूँ, जिसने इमराज इन्सानी को पर्दे दुनिया से गायब कर देने का बीड़ा उठाया है, जिसने इश्तिहारबाज, जा फरोश, गंदुमनुमा बने हुए हकीमों को बेखबर व बुन से खोद कर दुनिया को पाक कर देने का अज्म विल् जज्म कर लिया है। मैं वह हैरतअंगेज इन्सान जईफ-उल-बयान हूँ जो नाशाद को दिलशाद, नामुराद को बामुराद, भगोड़े को दिलेर, गीदड़ को शेर बनाता है। और यह किसी जादू से नहीं, मंत्र से नहीं, वह मेरी ईजाद करदा 'अमृतबिंदु' के अदना करिश्मे हैं। अमृतबिंदु क्या है, इसे कुछ मैं ही जानता हूँ। महर्षि अगस्त ने धन्वनतरि के कानों में इसका नुस्खा बतलाया था। जिस वक्त आप वी. पी. पार्सल खोलेंगे, आप पर उसकी हकीकत रौशन हो जायगी। यह आबेहयात है। यह मर्दानगी का जौहर, फरजानगी का अक्सीर, अक्ल का मुरब्बा और जेहन का सकील है। अगर वर्षो की मुशायराबाजी ने भी आपको शायर नहीं बनाया, अगर शवे रोज के रटंत पर भी आप इम्तहान में कामयाब नहीं हो सके, अगर दल्लालों की खुशामद और मुवक्किलों की नाजबर्दारी के बावजूद भी आप अहाते अदालत में भूखे कुत्ते की तरह चक्कर लगाते फिरते हैं, अगर आप गला फाड़-फाड़ चीखने, मेज पर हाथ-पैर पटकने पर भी अपनी तकरीर से कोई असर पैदा नहीं कर सकते तो आप 'अमृतबिंदु' का इस्तेमाल कीजिए। इसका सबसे बड़ा फायदा जो पहले ही दिन मालूम हो जायगा, यह है कि आपकी आँखें खुल जायँगी और आप फिर कभी इश्तहारबाज हकीमों के दाम फरेब में न फँसेंगे।'

वैद्य जी इस विज्ञापन को समाप्त कर उच्च स्वर से पढ़ रहे थे; उनके नेत्रों में उचित अभिमान और आशा झलक रही थी कि इतने में देवदत्त ने बाहर से आवाज दी। वैद्य जी बहुत खुश हुए। रात के समय उनकी फीस दुगुनी थी। लालटेन लिये बाहर निकले तो देवदत्त रोता हुआ उनके पैरों से लिपट गया और बोला–वैद्य जी, इस समय मुझ पर दया कीजिए। गिरिजा अब कोई सायत की पाहुनी है। अब आप ही उसे बचा सकते हैं। यों तो मेरे भाग्य में जो लिखा है, वही होगा; किंतु इस समय तनिक चल कर आप देख लें तो मेरे दिल का दाह मिट जायगा। मुझे धैर्य हो जायगा कि उसके लिए मुझसे जो कुछ हो सकता था, मैंने किया। परमात्मा जानता है कि मैं इस योग्य नहीं हूँ कि आपकी कुछ सेवा कर सकूँ; किंतु जब तक जीऊँगा, आपका यश गाऊँगा और आपके इशारों का गुलाम बना रहूँगा !

हकीम जी को पहले कुछ तरस आया, किंतु वह जुगनू की चमक थी जो शीघ्र स्वार्थ के विशाल अंधकार में विलीन हो गयी।

4

वही अमावस्या की रात्रि थी। वृक्षों पर सन्नाटा छा गया था। जीतने वाले अपने बच्चों को नींद से जगा कर इनाम देते थे। हारने वाले अपनी रुष्ट और क्रोधित स्त्रियों से क्षमा के लिए प्रार्थना कर रहे थे। इतने में घंटी के लगातार शब्द वायु और अंधकार को चीरते हुए कान में आने लगे। उनकी सुहावनी ध्वनि इस निस्तब्ध अवस्था में अत्यंत भली प्रतीत होती थी। यह शब्द समीप हो गये और अंत में पंडित देवदत्त के समीप आ कर उस खँडहर में डूब गये। पंडित जी उस समय निराशा के अथाह समुद्र में गोते खा रहे थे। शोक में इस योग्य भी नहीं थे कि प्राणों से भी अधिक प्यारी गिरिजा की दवा दरपन कर सकें। क्या करें? इस निष्ठुर वैद्य को यहाँ कैसे लायें ? —जालिम, मैं सारी उमर तेरी गुलामी करता। तेरे इश्तिहार छापता। तेरी दवाइयाँ कूटता। आज पंडित जी को यह ज्ञात हुआ है कि सत्तर लाख की चिट्ठी-पत्रियाँ इतनी कौड़ियों के मोल भी नहीं। पैतृक प्रतिष्ठा का अहंकार अब आँखों से दूर हो गया। उन्होंने उस मखमली थैले को संदूक से बाहर निकाला और उन चिट्ठी-पत्रियों को, जो बाप-दादों की कमाई का शेषांश थीं और प्रतिष्ठा की भाँति जिनकी रक्षा की जाती थी, एक-एक करके दीया को अर्पण करने लगे। जिस तरह सुख और आनंद से पालित शरीर चिता की भेंट हो जाती है, उसी प्रकार वह कागजी पुतलियाँ भी उस प्रज्वलित दीया के धधकते हुए मुँह का ग्रास बनती थीं। इतने में किसी ने बाहर से पंडित जी को पुकारा। उन्होंने चौंक कर सिर उठाया। वे नींद से, अँधेरे में टटोलते हुए दरवाजे तक आये। देखा कि कई आदमी हाथ में मशाल लिये हुए खड़े हैं और एक हाथी अपनी सूँड़ से उन एरंड के वृक्षों को उखाड़ रहा है, जो द्वार पर द्वारपालों की भाँति खड़े थे। हाथी पर एक सुंदर युवक बैठा है। जिसके सिर पर केसरिया रंग की रेशमी पाग है। माथे पर अर्धचंद्राकार चंदन, भाले की तरह तनी हुई नोकदार मूँछें, मुखारविंद से प्रभाव और प्रकाश टपकता हुआ, कोई सरदार मालूम पड़ता था। उसका कलीदार अँगरखा और चुनावदार पैजामा, कमर में लटकती हुई तलवार और गर्दन में सुनहरे कंठे और जंजीर उसके सजीले शरीर पर अत्यंत शोभा पा रहे थे। पंडित जी को देखते ही उसने रकाब पर पैर रखा और नीचे उतर कर उनकी वंदना की। उसके इस विनीत भाव से कुछ लज्जित हो कर पंडित जी बोले—आपका आगमन कहाँ से हुआ ?

नवयुवक ने बड़े नम्र शब्दों में जवाब दिया। उसके चेहरे से भलमनसाहत बरसती थी—मैं आपका पुराना सेवक हूँ। दास का घर राजनगर है। मैं वहाँ का जागीरदार हूँ। मेरे पूर्वजों पर आपके पूर्वजों ने बड़े अनुग्रह किये हैं। मेरी इस समय जो कुछ प्रतिष्ठा तथा सम्पदा है, सब आपके पूर्वजों की कृपा और दया का परिणाम है। मैंने अपने अनेक स्वजनों से आपका नाम सुना था और मुझे बहुत दिनों से आपके दर्शनों की आकांक्षा थी। आज वह सुअवसर भी मिल गया। अब मेरा जन्म सफल हुआ।

पंडित देवदत्त की आँखों में आँसू भर आये। पैतृक प्रतिष्ठा का अभिमान उनके हृदय का कोमल भाग था।

वह दीनता जो उनके मुख पर छायी हुई थी, थोड़ी देर के लिए विदा हो गयी। वे गम्भीर भाव धारण करके बोले—यह आपका अनुग्रह है जो ऐसा कहते हैं। नहीं तो मुझ जैसे कपूत में तो इतनी भी योग्यता नहीं है जो अपने को उन लोगों की संतति कह सकूँ।

इतने में नौकरों ने आँगन में फर्श बिछा दिया। दोनों आदमी उस पर बैठे और बातें होने लगीं। वे बातें जिनका प्रत्येक शब्द पंडित जी के मुख को इस तरह प्रफुल्लित कर रहा था जिस तरह प्रातःकाल की वायु फूलों को खिला देती है। पंडित जी के पितामह ने नवयुवक ठाकुर के पितामह को पच्चीस सहस्र रुपये कर्ज दिये थे। ठाकुर अब गया में जा कर अपने पूर्वजों का श्राद्ध करना चाहता था, इसलिए जरूरी था कि उसके जिम्मे जो कुछ ऋण हो उसकी एक-एक कौड़ी चुका दी जाय। ठाकुर को पुराने बहीखाते में यह ऋण दिखायी दिया। पच्चीस के अब पचहत्तर हजार हो चुके। वही ऋण चुका देने के लिए ठाकुर आया था। धर्म ही वह शक्ति है जो अंतःकरण में ओजस्वी विचारों को पैदा करती है। हाँ, इस विचार को कार्य में लाने के लिए पवित्र और बलवान् आत्मा की आवश्यकता है। नहीं तो वे ही विचार क्रूर और पापमय हो जाते हैं। अंत में ठाकुर ने कहा—आपके पास तो वे चिट्ठियाँ होंगी ?

देवदत्त का दिल बैठ गया। वे सँभल कर बोले—सम्भवतः हां। कुछ कह नहीं सकते।

ठाकुर ने लापरवाही से कहा—ढूँढिए, यदि मिल जायँ तो हम लेते जायँगे।

पंडित देवदत्त उठे, लेकिन हृदय ठंडा हो रहा था। शंका होने लगी कि कहीं भाग्य हरे बाग न दिखा रहा हो। कौन जाने वह पुर्जा जल कर राख हो गया या नहीं। यदि न मिला तो रुपये कौन देता है। शोक कि दूध का प्याला सामने आ कर हाथ से छूट जाता है ! —हे भगवान् ! वह पत्री मिल जाय। हमने अनेक कष्ट पाये हैं, अब हम पर दया करो। इस प्रकार आशा और निराशा की दशा में देवदत्त भीतर गये और दीया के टिमटिमाते हुए प्रकाश में बचे हुए पत्रों को उलट-पुलट कर देखने लगे। वे उछल पड़े और उमंग में भरे हुए पागलों की भाँति आनंद की अवस्था में दो-तीन बार कूदे। तब दौड़ कर गिरिजा को गले से लगा लिया और बोले—प्यारी, यदि ईश्वर ने चाहा तो तू अब बच जायगी। उन्मत्तता में उन्हें एकदम यह नहीं जान पड़ा कि 'गिरिजा' अब नहीं है, केवल उसकी लोथ है।

देवदत्त ने पत्री को उठा लिया और द्वार तक वे इसी तेजी से आये मानो पाँवों में पर लग गये। परंतु यहाँ उन्होंने अपने को रोका और हृदय में आनंद की उमड़ती हुई तरंग को रोक कर कहा—यह लीजिए, वह पत्री मिल गयी। संयोग की बात है, नहीं तो सत्तर लाख के कागज दीमकों के आहार बन गये ?

आकस्मिक सफलता में कभी-कभी संदेह बाधा डालता है। जब ठाकुर ने उस पत्री के लेने को हाथ बढ़ाया तो देवदत्त को संदेह हुआ कि कहीं वह उसे फाड़ कर फेंक न दे। यद्यपि यह संदेह निरर्थक था, किंतु मनुष्य कमजोरियों का पुतला है। ठाकुर ने उनके मन के भाव को ताड़ लिया। उसने बेपरवाही से पत्री को लिया और मशाल के प्रकाश में देख कर कहा—अब मुझे विश्वास हुआ। यह लीजिए, आपका रुपया आपके समक्ष है, आशीर्वाद दीजिए कि मेरे पूर्वजों की मुक्ति हो जाय।

यह कह कर उसने अपनी कमर से एक थैला निकाला और उसमें से एक-एक हजार के पचहत्तर नोट निकाल कर देवदत्त को दे दिये। पंडित जी का हृदय बड़े वेग से धड़क रहा था। नाड़ी तीव्र-गति से कूद रही थी। उन्होंने चारों ओर चौकन्नी दृष्टि से देखा कि कहीं कोई दूसरा तो नहीं खड़ा है और तब काँपते हुए हाथों से नोटों को ले लिया। अपनी उच्चता

प्रकट करने की व्यर्थ चेष्टा में उन्होंने नोटों की गणना भी नहीं की। केवल उड़ती हुई दृष्टि से देख कर उन्हें समेटा और जेब में डाल लिया।

5

वही अमावस्या की रात्रि थी। स्वर्गीय दीपक भी धुँधले हो चले थे। उनकी यात्रा सूर्यनारायण के आने की सूचना दे रही थी। उदयाचल फिरोजी बाना पहन चुका था। अस्ताचल में भी हलके श्वेत रंग की आभा दिखायी दे रही थी। पंडित देवदत्त ठाकुर को विदा करके घर चले। उस समय उनका हृदय उदारता के निर्मल प्रकाश से प्रकाशित हो रहा था। कोई प्रार्थी उस समय उनके घर से निराश नहीं जा सकता था। सत्यनारायण की कथा धूमधाम से सुनने का निश्चय हो चुका था। गिरिजा के लिए कपड़े और गहने के विचार ठीक हो गये। अंतःपुर में ही उन्होंने शालिग्राम के सम्मुख मनसा-वाचा-कर्मणा सिर झुकाया और तब शेष चिट्ठी-पत्रियों को समेट कर उसी मखमली थैले में रख दिया। किंतु अब उनका यह विचार नहीं था कि संभवतः उन मुर्दों में भी कोई जीवित हो उठे। वरन् जीविका से निश्चिंत हो अब वे पैतृक प्रतिष्ठा पर अभिमान कर सकते थे। उस समय वे धैर्य और उत्साह के नशे में मस्त थे। बस, अब मुझे जिंदगी में अधिक सम्पदा की जरूरत नहीं। ईश्वर ने मुझे इतना दे दिया है। इसमें मेरी और गिरिजा की जिंदगी आनंद से कट जायगी। उन्हें क्या खबर थी कि गिरिजा की जिंदगी पहले कट चुकी है। उनके दिल में यह विचार गुदगुदा रहा था कि जिस समय गिरिजा इस आनंद-समाचार को सुनेगी उस समय अवश्य उठ बैठेगी। चिंता और कष्ट ने ही उसकी ऐसी दुर्गति बना दी है। जिसे भरपेट कभी रोटी नसीब न हुई, जो कभी नैराश्यमय धैर्य और निर्धनता के हृदय-विदारक बंधन से मुक्त न हुई, उसकी दशा इसके सिवा और हो ही क्या सकती है ? यह सोचते हुए वे गिरिजा के पास गये और आहिस्ता से हिला कर बोले—गिरिजा, आँखें खोलो। देखो ईश्वर ने तुम्हारी विनती सुन ली और हमारे ऊपर दया की। कैसी तबीयत है ?

किंतु जब गिरिजा तनिक भी न मिनकी तब उन्होंने चादर उठा दी और उसके मुँह की ओर देखा। हृदय से एक करुणात्मक ठंडी आह निकली। वे वहीं सिर थाम कर बैठ गये। आँखों से शोणित की बूँदें-सी टपक पड़ीं। आह क्या यह सम्पदा इतने महँगे मूल्य पर मिली है ? क्या परमात्मा के दरबार से मुझे इस प्यारी जान का मूल्य दिया गया है ? ईश्वर, तुम खूब न्याय करते हो। मुझे गिरिजा की आवश्यकता है, रुपयों की आवश्यकता नहीं। यह सौदा बड़ा महँगा है।

6

अमावस्या की अँधेरी रात गिरिजा के अंधकारमय जीवन की भाँति समाप्त हो चुकी थी। खेतों में हल चलाने वाले किसान ऊँचे और सुहावने स्वर से गा रहे थे। सर्दी से काँपते हुए बच्चे सूर्य देवता से बाहर निकलने की प्रार्थना कर रहे थे। पनघट पर गाँव की अलबेली स्त्रियाँ जमा हो गयी थीं। पानी भरने के लिए नहीं; हँसने के लिए। कोई घड़े को कुएँ में

डाले हुए अपनी पोपली सास की नकल कर रही थी, कोई खम्भों से चिपटी हुई अपनी सहेली से मुस्करा कर प्रेमरहस्य की बातें करती थी। बूढ़ी स्त्रियाँ पोतों को गोद में लिये अपनी बहुओं को कोस रही थीं कि घंटे भर हुए अब तक कुएँ से नहीं लौटीं। किंतु राजवैद्य लाला शंकरदास अभी तक मीठी नींद ले रहे थे। खाँसते हुए बच्चे और कराहते हुए बूढ़े उनके औषधालय के द्वार पर जमा हो चले थे। इस भीड़-भभ्भड़ से कुछ दूर पर दो-तीन सुंदर किंतु मुर्झाए हुए नवयुवक टहल रहे थे और वैद्य जी से एकांत में कुछ बातें किया चाहते थे। इतने में पंडित देवदत्त नंगे सिर, नंगे बदन, लाल आँखें, डरावनी सूरत, कागज का एक पुलिंदा लिये दौड़ते हुए आये और औषधालय के द्वार पर इतने जोर से हाँक लगाने लगे कि वैद्य जी चौंक पड़े और कहार को पुकार कर बोले कि दरवाजा खोल दे। कहार महात्मा बड़ी रात गये किसी बिरादरी की पंचायत से लौटे थे। उन्हें दीर्घ-निद्रा का रोग था जो वैद्य जी के लगातार भाषण और फटकार की औषधियों से भी कम न होता था। आप ऐंठते हुए उठे और किवाड़ खोल कर हुक्का-चिलम की चिंता में आग ढूँढ़ने चले गये। हकीम जी उठने की चेष्टा कर रहे थे कि सहसा देवदत्त उनके सम्मुख जा कर खड़ हो गये और नोटों का पुलिंदा उनके आगे पटक कर बोले—वैद्य जी, ये पचहत्तर हजार के नोट हैं। यह आपका पुरस्कार और आपकी फीस है। आप चल कर गिरिजा को देख लीजिए और ऐसा कुछ कीजिए कि वह केवल एक बार आँखें खोल दे। यह उसकी एक दृष्टि पर न्योछावर है—केवल एक दृष्टि पर। आपको रुपये मनुष्य की जान से प्यारे हैं। वे आपके समक्ष हैं। मुझे गिरिजा की एक चितवन इन रुपयों से कई गुनी प्यारी है।

वैद्य जी ने लज्जामय सहानुभूति से देवदत्त की ओर देखा और केवल इतना कहा—मुझे अत्यंत शोक है, सदैव के लिए तुम्हारा अपराधी हूँ। किंतु तुमने मुझे शिक्षा दे दी। ईश्वर ने चाहा तो ऐसी भूल कदापि न होगी। मुझे शोक है। सचमुच है !

ये बातें वैद्य जी के अंतःकरण से निकली थीं।

[‘अमावस की रात’ शीर्षक से उर्दू में प्रथम प्रकाशन, ‘जमाना’, अप्रैल, 1913 में प्रकाशित। हिन्दी रूप ‘अमावस्या की रात्रि’ शीर्षक से ‘मानसरोवर’ भाग-6 मे संकलित।]

सगे-लैला (लैला का कुत्ता)

मिस लैला ने अपने आशिक-ज़ार मिस्टर बारटन ने कहा, “आज की चाँदनी रात कैसी सुहानी है।”

बारटन ने किसी कदर शायराना नसरफ़ के साथ जवाब दिया, “हाँ, ऐसा मालूम होता है कि आफ़ताब मुँह पर एक सुनहरी नक़ाब डाले है !”

इतने में एक तीसरा शख़्स कमरे में दाखिल हुआ। वह एक निहायत खुशवजा (परम्परावादी) और सजीला जवान था, जिसके बशरा (चेहरे) से अमारात और रियासत की आसार नुमायाँ थे। आते ही उसने मिस लैला को मुख़ातिब होकर कहा, “इस वक़्त अफ़रीका के रेगिस्तान में अज़ब बहार होगी।”

बारटन तो ऐसा खुशलबास आदमी न था, जैसा यह ताज़ावारिद (नवागत) नौजवान लार्ड हरबर्ट, मगर उसके चेहरे से मतानत (धीरता) और शराफ़त टपक रही थी। उसके ख़्यालात शायराना ज़रूर थे, मगर जबान में लसानी न थी, यही वजह थी कि साल भर से मिस लैला के इश्क में घुल रहा था, लेकिन यह हौसला न हुआ कि उससे अपने दरदे-दिल की दास्तान कहता, और जख़्मे-ज़िगर पर मरहम रखवाता। या तो इसे कभी मुनासिब मौक़ा ही न मिलता या ख़्यालात दिल से निकल कर होंठों तक आते और वहीं से लौट जाते।

अलावा बरी (इसके) इसकी जबान में वह शोख़ी व तरारी भी न थी जो बेसाख़्ता दिलों को अपनी तरफ़ खींच लेती है। इसकी बरअक्स लार्ड हरबर्ट निहायत रंगीन-मिजाज और रसीला आदमी था। जबान में वो रवानी थी कि घंटो गुफ़्तग़ानी (समृद्ध बातचीत) किया करता। मिजाज़ में शोख़ी और जुर्रत का मादा भरा हुआ था। वो सैयाह (यात्री) भी था और रूहे-ज़मीन के बेश्तर मुक़ामात के हालात से वाकिफ़ था। यह सैयाहत (यात्रा-वृत्ति) उसके सिलसिलाए-तक़रीर की ताज़गी और रूवानी में बहुत मदद करती थी। उसने मिल लैला को पेरिस में देखा था। जब से साया की तरह उसके पीछे लगा हुआ था। बारटन को रोज-बरोज़ अपना पहलू कमज़ोर होता नज़र आता था। जिस वक़्त हरबर्ट कमरे में आता, लैला उसकी तरफ़ हमातनगो (आकर्षित) हो जाती और उसकी सैयाहत के वाक़्ये बड़े ग़ौर से सुनती व उसकी एक-एक बात पर मुस्कराती। इसके आते ही लैला का चेहरा शगुफ़्ता हो जाता और वह बुलबुल की तरह चहकने लगती। बारटन इन्हीं वजू से हरबर्ट की हरक़त से बेज़ार था। उसने कई बार हरबर्ट से ड्यूलबाज़ी का इरादा किया, लेकिन महज़ लैला के ख़ौफ़ से बाज़ रहा। जिस वक़्त लार्ड हरबर्ट मौजूद होता, बारटन के होंठों पर सुकूत (चुप्पी) की एक मज़बूत मुहर लग जाती थी। वह गहरे ख़्याल में डूब जाता और दिल-ही-दिल में कहने लगता, "क्या यह हुस्नपरस्त लौंडा मेरी सारी ज़िन्दगी की आरज़ूँओं को ख़ाक में मिला देगा। मैं यह खूब जानता हूँ कि इसके दिल में लैला की मुहब्बत नहीं है। उसमें अब इश्क की काबलियत ही नहीं। वो सिर्फ़ लैला की दौलत का आशिक है, मगर अफ़सोस है कि लैला उसके दम में रोज-बरोज़ आती रहती है। क्या वह इतना भी नहीं देख सकती ? इसे इतनी भी तमीज़ नहीं ? अगर इसमें इतना अहसास नहीं है तो वह इस क़ाबिल नहीं कि मैं इस पर जान दूँ। मगर अब मैं ज़ल्द तस्फ़िया (फैसला) कर लूँगा। अब यह आये-दिन की कोफ़्त मुझ से नहीं सही जाती। हरबर्ट की चालों का एक बार मैं उससे ज़रूर ज़िक्र करूँगा। लैला को शायद मालूम नहीं कि यह हज़रत फ़ाक़ामस्त हैं। जो कुछ रियासत और दौलत है वह लस्सानी (लफ़्फ़ाजी) है। वह उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों, तुमतुराक (शानो-शौक़त) और नुमायशी हरक़तों पर फ़रेफ़्ता (आसक्त) हो गई है। मैं अब इस तिलिस्म को खोले बग़ैर नहीं रह सकता।

2

एक रोज बारटन अपने कमरे में बैठा हुआ था कि मिस लैला का ख़ानसामा दौड़ा हुआ आया और कहने लगा, "मिस्टर बारटन ज़रा बाहर आइये, आपको एक तमाशा दिखाऊँ। लार्ड हरबर्ट की सूरत इस वक़्त देखने के क़ाबिल है।"

बारटन, "क्यों ? बात क्या है ? हरबर्ट को क्या हो गया ?"

ख़ानसामा (हँसकर), "आपके कुत्ते ने उनका काफ़िया तंग कर रखा है। ये हज़रत कुत्तों से डरते बहुत हैं। मैं इन्हें बचपन से जानता हूँ। कुत्तों की सूरत देखी और लर्ज़ा (कॅपकॅपी) आ गई। इस वक़्त आपका राबिन चुपचाप चला आता था।"

लार्ड साहब इसे देखते ही भागे। भागना था कि राबिन ने देख लिया और पीछे पड़ गया। एक घुड़दौड़-सी हो गयी। आगे-आगे ज़ाते-शरीफ़ (महापुरुष), परेशान चेहरा फक़, बदहवास। भागते जाते हैं, पीछे-पीछे कुत्ता गुर्राता हुआ तेज़ी से दौड़ता चला जाता है। डर के मारे अब गिरे जब गिरे। ख़ैरियत हुई कि सामने एक दरख़्त मिल गया। फिर क्या था। आप बड़ी फ़ुर्ती से उस दरख़्त पर चढ़ गये। चलकर ज़रा आप उनकी क़ता (हालत) तो देखिए।"

बारटन को इस वक़्त बड़ी खुशी हुई, जो अपने रक़ीब की ज़िल्लत पर हर इन्सान के दिल में हुआ करती है। बाहर आये और लपके हुए बाग़ में जा पहुँचे। देखते क्या हैं कि लार्ड हरबर्ट दोनों हाथों से एक ठूँठ पकड़े दरख़्त से चिपके बैठे हैं और राबिन ऊपर सर उठाये उन्हें नीचे से ललकार-ललकार कर इशारा कर रहा है। "यह क्या आसमान पर जा बैठे। दम-खम हो तो आ जाओ नीचे।" अपनी पुरखुरोश (कोलाहलपूर्ण) आवाज़ में राबिन इन्हीं ख़्यालात की तस्वीर खींच रहा था। बारटन को देखना था कि लार्ड साहब भर्राई हुई आवाज़ में चीखकर बोले, "बारटन। इस मूज़ी (ज़ालिम) को किसी तरह यहाँ से दूर करो। तुमने अच्छा जानवर पाल रखा है। अगर मैं इस दरख़्त पर न चढ़ जाता तो इसने मेरी टाँग पकड़ ली होती। इसे ज़ल्द यहाँ से दफ़ा करो। खुदा के लिए मुझ पर यह करम करो।"

बारटन (हँसकर), "आप नाहक इससे डरते हैं। यह ग़रीब कभी किसी को नहीं काटता। बच्चे तो इससे खेला करते हैं।"

हरबर्ट (लजाजत से), "भाई जान, बातें न बनाओ। मेरी रूह फ़ना हुई जाती है। (दबी जबान से) और तुम्हें दिल्लगी सूझी हुई है।"

राबिन ने अपने आका को देखा तो दुम हिलाता हुआ उसके पास आ गया। बारटन ने उसके गले का तस्मा पकड़कर इसे वहाँ से हटाया और हरबर्ट की इस दुरगत का क़िस्सा सुनाने के लिए वह मिस लैला के पास जाना चाहता था कि तार वाले ने आकर उसके हाथों में एक लिफ़ाफ़ा रख दिया। बारटन ने खोलकर पढ़ा तो चेहरा ज़र्द हो गया। लिखा था, "जल्द आओ, तुम्हारे वालिद सख़्त बीमार हैं।"

बारटन अपने कमरे में आया और अपना सामान तैयार करके मिस लैला से रुखसत लेने गया। मोटरकार दरवाज़ा पर खड़ा था। लैला ने यह खबर सुनी तो मायूस होकर बोली, "अब कब तक आओगे ?"

बारटन, "ज़ल्द ही आऊँगा।"

लैला, "मगर राबिन को न ले जाओ। इसे यहीं मेरे पास छोड़ जाओ। इस प्यारे रफ़ीक़ (दोस्त) के बग़ैर मुझे लम्हा भर चैन न आयगा। मुत्मइन (बेफ़िक्र) रहो, इसे मैं बहुत आराम से रखूँगी। ऐसा प्यारा कुत्ता मैंने नहीं देखा।"

बारटन खुशी से फूल गया और दिल-ही-दिल कहने लगा, "अगर तुम्हारी मर्जी पाऊँ तो तुम्हारे कदमों पर मैं खुद कुरबान हो जाऊँ। यह कुत्ता क्या चीज़ है। काश, मुझे भी

राबिन की-सी किस्मत मिली होती ? प्यारे राबिन। मुझे तुझ पर रश्क आता है।" (लैला से मुख़ातिब होकर) "मुझे इसको छोड़े जाने में कोई हर्ज़ नहीं है। यह मेरे लिए ऐन खुशी का बाइस है।"

लैला, "मिस्टर बारटन। मैं तुम्हारी इस इनायत का काफ़ी शुक्रिया नहीं अदा कर सकती।"

मोटरकार तैयार था। बारटन उमसें बैठ गया। इसकी झिझक ने उसे इस वक़्त फिर धोखा दिया और इज़हारे-मुहब्बत का एक नादिर (उत्तम) मौक़ा फिर हाथ से निकल गया। मगर इस वक़्त अपनी परेशानियों में इसे अब इन बातों को सोचने को कहाँ फ़ुरसत थी।

3

लार्ड हरबर्ट को जब जॉन बारटन की रुखसत हो जाने की ख़बर मिली तो उसके दिल से एक बोझ-सा उतर गया। उसने ख़्याल किया कि राबिन को वह अपने साथ ले गया होगा। ये दो हफ़्ते आफ़ियत (सुख-चैन) से गुज़रेंगे। किस्मत ने यावरी (मदद) की तो इस अरसे में मैं अपने दिल के अरमान निकाल लूँगा और कमबख़्त राबिन की सूरत देखने की मुझे कोई ज़रूरत न होगी। यह सोचते हुए आप मिस लैला के कमरे में आये और चेहरे को रंजीदा बनाकर बोले, "मिस लैला। मुझे सुनकर कमाल (बहुत) अफ़सोस हुआ कि जान बारटन के वालिद सख़्त बीमार हैं। मैंने अभी उन्हें मोटरकार....।"

यह कहते-कहते लार्ड हरबर्ट चौंक पड़ा, क्योंकि उसने राबिन को बाहर से आते देखा। उसका रंग फ़क़्क़ हो गया और इधर-उधर बगलें झाँकने लगा। मगर मिस लैला ने कुत्ते को गोद में ले लिया और बोली, "तू अब तक कहाँ था ? यह नाक में मिट्टी कहाँ लगाई। आ, तेरी नाक साफ़ कर दूँ।" यह कहकर उसने अपना रेशमी रूमाल निकाल लिया और उससे राबिन के नथुने साफ़ करने लगी। फिर लार्ड हरबर्ट से बोली, "क्यों, आप इस कुत्ते को पसन्द करते हैं या नहीं ? बारटन इसे लिए जाते थे, मगर मैंने रोक लिया। देखिए, कैसी प्यारी सूरत है। आप इससे खुश हैं ?"

हरबर्ट (खौफ़ज़दगी को ज़ब्त करते हुए), "जी हाँ, बेशक-बेशक, जी हाँ, आप सही कहती हैं।"

लैला, "आप इस ख़्याल को कहाँ तक सही समझते हैं कि हरएक इन्सान की शराफ़त का अन्दाज़ा उससे किया जा सकता है कि कुत्ते उससे किस क़दर मानूस (निर्भय) हो जाते हैं ?"

हरबर्ट (साबिक की तरह ज़ब्त करते हुए), "आपका ख़्याल सही है। बेशक यह कुत्ता अब मिस्टर बारटन के आने तक यहीं रहेगा, ग़ालेबन अस्तबल इसके लिए बहुत अच्छी जगह होगी।

लैला (चीं ब जबीं होकर), "यह आप क्या कहते हैं ? मेरा प्यारा राबिन अस्तबल के कुत्तों में नहीं रहेगा, मैं उसे हमेशा अपने साथ रखूँगी। क्यों, आपका चेहरा उदास क्यों हो गया ?" हरबर्ट, "कुछ नहीं। मुझे मकान पर एक ज़रूरी काम करना है। अभी-अभी ख़्याल आ गया। माफ़ कीजिएगा, मैं फिर ज़ल्द हाज़िरे खिदमत होऊँगा।"

यह कहकर लार्ड साहब उठे। राबिन उनकी तरफ़ घूरकर खों-खों करने लगा। इस गुरगुराहट को सुनते ही हरबर्ट के होश उड़ गये। अपनी क़िस्मत को और इस मनहूस कुत्ते को कोसते हुए आप फ़ौरन बाहर निकल आये। अहाते में लैला के ख़ानसामे से मुलाक़ात हो गई। उनका बशरा (चेहरा) देखते ही वह ताड़ गया कि इस वक़्त हज़रत के होश उड़े हुए हैं। कुत्ते से यक़ीनी पाला पड़ा है। हमदर्द बनकर लगा कहने, "लार्ड हरबर्ट साहब। आप इस वक़्त कहाँ तशरीफ़ लिए जाते हैं। आज कम्बख़्त राबिन ने आपको बहुत दिक़ किया। अगर ठूँठ पर न जा बैठते तो वह ज़रूर आपको काट लेता।"

हरबर्ट, "मिस्टर काक सच कहते हो। तुम तो तेरे पुराने रफ़ीक़ (दोस्त) हो।"

काक, "जी, मैं आपका नमकख़्वार हूँ। आप मुझे अपना गुलाम समझें। मेरे लायक जो काम हो वह बेतकल्लुफ़ फरमायें।"

हरबर्ट, "तुम तो जानते हो मुझे कुत्तों की सूरत से नफ़रत है।"

काक, "जी हाँ, मैं खूब जानता हूँ। इन्हें देखते ही आपकी रूह काँपने लगती है।"

हरबर्ट, "खैर, यूँ ही सही। इस शैतान राबिन ने मेरा नाक में दम कर रखा है। इसे किसी तरह यहाँ से दफ़ा कर दो।"

काक, "यह क्योंकर हो सकता है ?"

हरबर्ट, "बस, ज़हर दे दो।"

काक, "अरे हुजूर, यह क्या फरमाते हैं ?"

हरबर्ट, "मैं दस पाउण्ड दूँगा, समझे।"

काक, "हुजूर...."

हरबर्ट, "अच्छा बीस पाउण्ड सही।"

काक, "हुजूर, बहुत मुश्किल काम है।"

हरबर्ट, "इन्कार मत करो। पच्चीस पाउण्ड मिल जायेंगे।"

इतने में उधर से मिस लैला के चचा को आते देखकर हरबर्ट जल्दी से बाहर चला गया।

4

इसके दो दिन बाद लार्ड हरबर्ट के पास काक गया। लार्ड साहब बहुत अफ्सुर्दा ख़ातिर (उदास मन) नज़र आते थे। किसी फलसफी का कौल है कि बाज़औक़ात बहुत खफ़ीफ़ (अधम) वाक़्यात इन्सान की ज़िन्दगी में बड़ी-बडी तबदीलियाँ कर देते हैं। लार्ड हरबर्ट की ज़िन्दगी की आरजूएँ, हौसले और खुशियाँ सब एक मनहूस कुत्ते के हाथों तबाह हुई जाती थीं। इन्हें अपनी क़ामयाबी में कोई शक बाक़ी न रहा था। लैला उसकी बातों से कैसी महफ़ूज़ (निरापद) होती थी। मगर इस राबिन ने सारा ख़्वाब परेशान कर दिया। यह क्योंकर मुमकिन था कि इस खौफ़नाक कुत्ते की तेज़ चमकीली आँखों के सामने उनकी रुआनी तक़रीर जारी रहती। ऐसी हालत में गुफ़्तगूँ का मज़ा किरकिरा हुआ जाता है। काक ने लार्ड साहब के बहुत ताज़ीम (आदर) से सर झुका लिया और कहने लगा, "हुजूर ने एक काम के लिए मुझे पच्चीस पाउण्ड देने का वायदा फ़रमाया था।"

लार्ड हरबर्ट का चेहरा खिला उठा। मकसद बरारी की सूरत निकलती हुई मालूम हुई

है। बेसब्री के साथ बोले, ''हाँ-हाँ, मुझे याद है।''

काक, ''मैंने इस मसले पर ग़ौर किया, मगर इसे ख़तरे से भरा हुआ पाता हूँ। खुदा जाने, बाद को क्या हो-कहीं-मुआमला खुल जाय तो लेने के देने पड़ जायें, इसलिए मैंने एक दूसरी तरकीब सोची है कि साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे। मेरा एक दोस्त है—राबर्ट। वह ऐसा कारीगर है कि जिस जानवर की सूरत चाहता है, तबदील कर देता है। ऐसे रंग-रोगन लगाता है कि बड़े-बड़े भी नहीं भाँप सकते। इसके पास राबिन के कद्दोकामात (कद और शरीर) का एक खूबसूरत कुत्ता है बहुत अच्छा। लड़के इससे खेला करते हैं। इसका रंग इस वक़्त सफ़ेद है। मगर राबर्ट कहता है कि मैं इसे बिलकुल राबिन से मिला दूँगा। कोई पहचान न कर सकेगा। बस, जब दूसरा राबिन तैयार हो जाएगा तो असल राबिन को जंजीर में बाँधकर राबर्ट के घर में क़ैद कर दूँगा और नकली राबिन मिस लैला को दे दिया जायगा।''

हरबर्ट ने सोचकर जवाब दिया, ''क्या ऐसा मुमकिन है ?''

काक, ''हुजूर, मैंने खुद अपनी आँखों से राबर्ट को घोड़ों की सूरत तबदील करते देखा है।''

हरबर्ट, ''मगर लैला पहचान गयी तो ?''

काक, ''यह सिर्फ़ मुमकिन है, राबर्ट निहायत होशियार आदमी है। बस सिर्फ मुआवज़ा तय हो जाना चाहिए।''

हरबर्ट, ''अगर मेरी खातिरख़्वाह (मनोवांछित) काम हो गया तो तुम दोनों को चार-चार पाउण्ड दूँगा।''

काक (हँसकर), ''हुजूर दिल्लगी करते हैं। पच्चीस पाउण्ड तो महज़ ज़हर खिलाने के लिए देते थे जो बिलकुल सीधा-सा आसान काम है। हुलिया पेंट निहायत मुश्किल काम है। सौ पौण्ड से कम में नहीं चलेगा।''

हरबर्ट, ''ओफ्फ़ो, सौ पाउण्ड और इतने से काम के लिए ?''

काक, ''हुजूर, पच्चीस पाउंड तो सिर्फ़ रोगन और मसाला में लग जायेंगे।''

हरबर्ट, ''नहीं, भई इस क़दर मैं नहीं दे सकता, यह सौदा न पटेगा।''

काक, ''अच्छा तो रहने दीजिए। बंदा अब जाता है।''

हरबर्ट (घबड़ा कर), ''नहीं-नहीं, जाओ मत। ठहरो। पचास पाउण्ड में तय कर लो।''

काक, ''न, सौ से कौड़ी कम नहीं।''

हरबर्ट, ''अच्छा फिर पचहत्तर....अस्सी....इसे लो, तुम्हारा ही कहना सही। मगर मैं पहले इस कुत्ते को देख लूँगा।''

काक (खुश होकर), ''हुजूर-ग़ौर से देख लीजिएगा। क्या मजाल कि ज़रा भी कोई पहचान सके।''

हरबर्ट, ''और वह राबर्ट वाला कुत्ता सीधा है न ?''

काक, ''हुजूर, ऐसा सीधा और नेक जैसे गाय। इसके मुँह में उँगली डाल दीजिए तो भी न काटेगा और गुर्राना तो सीखा ही नहीं। लाकर दिखाऊँ हुजूर को।''

हरबर्ट, "हाँ-हाँ, ज़रूर लाओ। पहले ज़रा मैं भी इससे मिल लूँ।"

थोड़ी देर में चालाक काक एक सफ़ेद रंग का मैला-कुचैला कुत्ता लेकर हाज़िर हुआ। हरबर्ट ने कहा, "यह कुत्ता राबिन नहीं बन सकता।"

काक, "इसे हुजूर, रोगन तो लग जाने दीजिए। हिम्मत क्यों हारते हैं। हाँ, आशिकी में तो हिम्मत ही दरकार है।"

हरबर्ट, "अच्छा, इसके सर पर हाथ तो रखो।"

काक, "हुजूर खुद ही रख लें। ज़रा भी न बोलेगा।"

यह कहकर उसने डरते-डरते उस कुत्ते का पहले एक कान पकड़ लिया। फिर ज़रा डीठ होकर उठा लिया, मगर कुत्ते के मुँह से आवाज़ तक न निकली। तब लार्ड साहब को और जुर्रत हुई। आपने डरते-डरते (गोया शेर का बच्चा है) आहिस्ता से उसके सर पर हाथ रखा। कुत्ते ने ख़ाइफ़ (भयभीत) और दुज़्दीदा निगाहों (कनखियों) से देखा और ज़रा दुम हिलाकर रह गया। हरबर्ट मारे खुशी के उछल पड़े और कहा, "आज शाम तक काम बन जाय, वरना फिर एक पौण्ड भी न दूँगा।"

काक, "बस, आज ही शाम को लीजिए।"

5

एक दिन की बजाए दो दिन गुज़र गये और काक आता ही नहीं है। अड़तालीस घण्टे लार्ड हरबर्ट ने बड़ी उम्मीद-ओ-पैहम (निरन्तर आशा) में काटे। कभी तो बिलकुल यक़ीन न आता और वह सोचते कि काक ने मुझसे शरारत की है और कभी उम्मीद ज़्यादा खुशगवार सूरत अख़्तयार कर लेती। आख़िर तीसरे दिन काक आ धमका तो आप कहने लगा, "सुना जी, हमारा-तुम्हारा वायदा एक दिन का था। आज तीसरा दिन है। अब मैं एक कौड़ी भी न दूँगा, समझे।"

काक, "हुजूर, काम मुकम्मिल हो गया।"

हरबर्ट (उछलकर), "सच, ज़ाहिर तो नहीं होता।"

काक, "अब हुजूर खुद इसका फैसला कर लें।"

दोनों आदमी मिस लैला के अहाते में आये। राबिन की शक्ल-सूरत और रंग का एक कुत्ता पड़ा सो रहा था। हरबर्ट इसे देखकर बोले, "बखुदा, यह तो राबिन है, तू मुझे धोखा दे रहा है।"

काक, "हुजूर, धोखा क्या दूँगा, यह कारीगर की उस्तादी है। इससे दो दिन लग गये। ज़रा इसके सर पर हाथ तो रखिये।"

हरबर्ट, "तुम खुद रखो। मुझे यक़ीन नहीं आता।"

काक ने नकली राबिन के सर पर हाथ रखा। उसने पड़े-पड़े एक बार आँख खोली और फिर बन्द कर ली। अब लार्ड साहब ने फ़िर जुर्रत करके गरदन थपथपायी। कुत्ते ने भी आहिस्ता से दुम हिलाने के आलवा और कोई बेज़ा हरक़त नहीं की। लार्ड साहब का चेहरा खुशी से फूल पड़ा। बोले, "बेशक, कमाल किया है। कमाल। किसको दुआ दूँ।"

काक, "हुजूर, अब पाउण्ड...."

हरबर्ट, "ऐसी क्या जल्दी है।"

काक, "हुज़ूर, राबर्ट सख़्त तकाज़ा कर रहा है। मुझे तो ऐसी कोई ज़रूरत नहीं है।"

लार्ड हरबर्ट ने बड़ी फ़राख़दिली से सौ पौण्ड का एक चैक निकालकर काक के हवाले कर दिया और थोड़ी देर के बाद ग़ैर-मामूली सज-धज के साथ अकड़ते-झूमते आप मिस लैला के कमरे में दाखिल हुए। लैला ने इन्हें देखते ही शिकायत की, "लार्ड हरबर्ट। मेरे कुत्ते को आज खुदा जाने क्या हो गया है। न मेरे बुलाने से आता है, न मेरे पास बैठता है। बस बरामदे में चुपचाप पड़ा हुआ है।"

लार्ड हरबर्ट (निहायत हमदर्दाना लहजा में दिलदिही के तौर पर), "बदहज़मी हो गयी होगी। दो-एक दिन में अच्छा हो जायगा।" यह कहकर आपने जाकर राबिन के सर पर हाथ रखा और बहुत ग़मगुसारी (सहानुभूति) के साथ बोले, "बेचारा बहुत निडाल हो गया है। वरना क्या हरदम खेलता रहता था। मगर आप घबड़ाएँ नहीं। दो-एक दिन में इसकी तबियत साफ़ हो जायेगी।"

आज शाम तक मिस लैला के साथ रहे और एक लम्हे के लिए भी जबान बन्द नहीं की। कभी अपनी जवाँमरदी का, कभी अपनी सैरों-सफ़र का, कभी अजीबो-ग़रीब मुनाज़र (शास्त्रार्थ) का तज़्करा करते रहे और लैला भी कोई रफ़ीक़ न रहने के सबब से या सनकी सज-धज की कशिश के बाइस आज उनसे ग़ैरमामूली अखलाक़ (शिष्टाचार) से पेश आयी।

दूसरे दिन आप अल्लसबा सुबह ही फ़र्ते मसर्रत (हर्षातिरेक) से हैट हिलाते हुए, मिस लैला के कमरे में दाखिल हुए तो देखा कि वह बागीचा की तरफ़ खरामे-खरामे जा रही है और राबिन उसके पीछे चला जाता है। आप फौरन बाग़ीचा की तरफ़ चले और लपक कर लैला के सामने जा पहुँचे। 'गुड मार्निंग'; के बाद पहला सवाल आपने यही किया, "राबिन की तबियत अब कैसी है ?"

लैला, "कुछ अचछी नहीं मालूम होती। रात भर बहुत सुस्त रहा।"

हरबर्ट, "वाकई ?"

लैला, "जी हाँ, नहीं मालूम क्या खा गया है या खुदा जाने क्या बीमारी पैदा हो गई है। अगर यही हाल रहा तो मैं मिस्टर बारटन को क्या जवाव दूँगी ?"

हरबर्ट ने दर्दमन्द निगाहों से राबिन को देखा और नज़दीक आकर दिलेरी के साथ उसका कान पकड़कर खींचा, गोया नींद से जगाने की कोशिश कर रहे हैं। यह एक बहुत मामूली बात थी, मगर दूसरा एक निहायत ग़ैरमामूली नतीज़ा निकला। एक बम का गोला फट गया और हवा अज़ीबो-ग़रीब आवाज़ से गूँज उठी। राबिन एक रबड़ की गेंद की तरह उछल पड़ा और हरवर्ट की तरफ़ लपका। लार्ड हरबर्ट को अब बग़ैर चारों खाने चित्त गिरने के और कोई सूरत नज़र न आई। आप गिरे नीचे, आप ऊपर कुर्सी और जब इस बम के गोले के सदमे के बाद होश आया तो क्या देखते हैं कि राबिन शोलाबाज़ आँखों से इनकी तरफ़ घूर-घूर कर गुर्रा रहा है और लैला ज़ोर से इसके गरदन का तसमा पकड़कर रोके हुए है। आप ज़ल्दी से उठ खड़े हुए।

मिस लैला ने बिगड़कर कहा, "आपने क्यों इसका कान खींचा ? मैंने कहा नहीं था

कि वह बीमार है ?"

लार्ड हरबर्ट (बदहवासी से), "मुझे मुझे ख़्याल...."

लैला ने हाँफकर कहा, "भागो, दौड़ो–मैं छोड़े देती हूँ। मुझसे नहीं सँभल सकता। और तेज़ भागो, तेज़, निकल जाओ।" लार्ड हरबर्ट भागे। पसीना में सराबोर। हाथ-पाँव थर-थर काँप रहे थे। और दिल धड़क रहा था दिल ही दिल कहते जाते हैं, "आज सख़्त ख़फ़ीफ़ (लज्जित) हुए। अब मेरा रंग जमना मुहाल (नामुमकिन) है। अब बाज़ी हाथ से जाती रही। यह सब बदमाश हरामख़ोर काक की शरारत है।"

यह ख़्याल आते ही आप बाहर निकल आए। सिगरेट जलाया और काक के मकान की तरफ़ चले तो क्या देखा कि वह सफ़ेद कुत्ता, जिसे काक ने कल दिखाया था, आहिस्ता-आहिस्ता सर झुकाये चला जा रहा है। पूरा यक़ीन हो गया कि ज़ालिम काक ने पटेबाज़ी की, मगर क़हरे दरवेश बर जाने दरवेश–(ग़रीब का गुस्सा ग़रीब की जान पर)। फिर भी वो काक के पास गये। झल्लाये, चिल्लाये। लानत-ओ-मलामत की, धमकाया, दग़ाबाज़, हरामख़ोर, सब-कुछ कहा, मगर यह सब हारे हुए जुआरी का गुस्सा था।

काक ने परवाह तक न की। बोला, "हुज़ूर, मैंने रंग तबदीली करने के लिए रुपये लिये थे। मिजाज़ को तबदील करना इंसान के अख़्तियार से बाहर है। खुदा जाने मिस साहब कुत्तों को क्या सिखा देती हैं कि कैसा ही सीधा कुत्ता हो, उनके साथ रहते ही शेर हो जाता है।"

6

दो हफ़्ते के बाद एक मोटरकार मिस लिली के दरवाज़े पर आकर रुकी और जान बारटन नीचे उतरा। ख़ानसामा ने आकर ताज़ीम (अदब) से सलाम किया। बारटन ने पूछा, "कहो, यहाँ का क्या हाल है ?"

काक, "हुज़ूर सब खैरियत है। मिस साहिबा झील के किनारे टहलने गयी हैं। राबिन भी उनके साथ है। आप तो खैरियत से हैं ?"

बारटन, "और लार्ड हरबर्ट कहाँ हैं ?"

काक (मुस्कराकर), "उनका कुछ हाल न पूछिये। राबिन ने उनका मोरचा हटा दिया।"

बारटन, "क्या अब वो यहाँ नहीं हैं ?"

काक, "जी, उन्हें गये तो आज आठवाँ दिन है।"

बारटन की जान में जान आयी। उसने झील तक जाकर मिस लिली से मुलाक़ात करने का इरादा किया और झिझकता हुआ जा पहुँचा। मिस लिली झील के किनारे खड़ी राबिन को बत्तखों पर दौड़ने के लिए इशारा कर रही थी। बारटन को देखकर उसने सर्दमेहरी (बेदिली) के साथ, जो बारटन के हौसलों को ख़ाक में मिला दिया करता था, इसके सलाम का जवाब दिया। मगर राबिन दौड़ा-दौड़ा दुम हिलाकर बड़ी सरगर्मी से इज़हार-मुसर्रत करने लगा। लिली की यही मतानत (संजीदगी), यही रुखाई बारटन को सर्द कर दिया करती थी।

मिस लिली ने कहा, "कहिये मिस्टर बारटन। मिजाज़ कैसा है ? मैंने आपके कुत्ते

को बड़े आराम से रखा है।"

लाज़िम था कि इसके जवाब में बारटन कोई पुरमानी (अनेकार्थी), पुरमज़ाक (ज़िन्दादिल) जुमला कहता, मगर ऐसा न पहले कभी हुआ था, और न इस वक़्त हो सका।

मिस लिली ने राबिन को प्यार करके कहा, "अब तुम मिस्टर बारटन के पास न जाने पाओगे। क्यों, मेरे पास रहेगा न ? तुझे बड़े आराम से रखूँगी।"

यह अल्फाज़ बहुत सादा और बेरंग थे और बिला किसी ख़ास निशाने के कहे गये थे, मगर उन्होंने जान बारटन पर गज़ब का असर पैदा किया। उन्होंने इस रूखी मतानत का ख़्याल दूर कर दिया जो इसकी हिम्मतों को तोड़ दिया करती थी। उन अल्फाज़ में इसे एक खुशगुवार इशारा, एक महशर-अंगेज़ तहरीक (प्रलयंकारी प्रवृत्ति) का असर महसूस हुआ, जिसने इसकी झिझक और शर्मीलेपन को ग़ायब कर दिया। खौफ़ की बजाय दिल में उम्मीद की ताक़त महसूस हुई। इसने जल्दी से झुक कर मिस लिली को प्यार किया और नशाए-मुहब्बत से मखमूर (उन्मत्त) होकर बोला, "राबिन अकेला नहीं रह सकता, मैं भी इसके साथ हूँ।"

लिली ने शर्मीली अदा से सर झुकाकर जवाब दिया, "ख़ैर, कुत्ता तुम्हारा रहनुमा तो साबित हुआ।"

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में, 'अदीब' (उर्दू पत्रिका), अप्रैल, 1913 में प्रकाशित। हिन्दी रूप 'सगे-लैला' (लैला का कुत्ता) शीर्षक से 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित।]

धर्म संकट

'पुरुषों और स्त्रियों में बड़ा अंतर है। तुम लोगों का हृदय शीशे की तरह कठोर होता है और हमारा हृदय नरम। वह विरह की आँच नहीं सह सकता।'

'शीशा ठेस लगते ही टूट जाता है। नरम वस्तुओं में लचक होती है।'

'चलो बातें न बनाओ। दिन भर तुम्हारी राह देखूँ, रात भर घड़ी की सुइयाँ। तब कहीं आपके दर्शन होते हैं।'

'मैं तो सदैव तुम्हें अपने हृदय-मंदिर में छिपाये रखता हूँ।'

'ठीक बतलाओ, कब आओगे ?'

'ग्यारह बजे, परन्तु पिछला दरवाजा खुला रखना।'

'उसे मेरे नयन समझो।'

'अच्छा तो अब विदा।'

2

पंडित कैलाशनाथ लखनऊ के प्रतिष्ठित बैरिस्टरों में से थे। कई सभाओं के मंत्री, कई समितियों के सभापति, पत्रों में अच्छे लेख लिखते, प्लेटफार्म पर सारगर्भित व्याख्यान

देते। पहले-पहल जब वह यूरप से लौटे थे तो यह उत्साह अपनी पूरी उमंग पर था, परन्तु ज्यों-ज्यों बैरिस्टरी चमकने लगी, इस उत्साह में कमी आने लगी। और वह ठीक भी था; क्योंकि अब बेकार न थे जो बेगार करते। हाँ, क्रिकेट का शौक अब तक ज्यों का ज्यों बना था। वह कैसर क्लब के संस्थापक और क्रिकेट के प्रसिद्ध खिलाड़ी थे।

यदि मि. कैलाश को क्रिकेट की धुन थी तो उनकी बहन कामिनी को टेनिस का शौक था। इन्हें नित नवीन आमोद-प्रमोद की चाह रहती थी। शहर में कहीं नाटक हो, कोई थियेटर आवे, कोई सरकस, कोई बायसकोप हो कामिनी उसमें न सम्मिलित हो, यह असम्भव बात थी। मनोविनोद की कोई भी सामग्री उसके लिए उतनी ही आवश्यक थी जितनी वायु और प्रकाश।

मि. कैलाश पश्चिमीय सभ्यता के प्रवाह में बहने वाले अपने अन्य सहयोगियों की भाँति हिंदू जाति, हिंदू सभ्यता, हिंदी भाषा और हिन्दुस्तान के कट्टर विरोधी थे। हिंदू सभ्यता उन्हें दोषपूर्ण दिखायी देती थी। अपने इन विचारों को वे अपने ही तक परिमित न रखते थे, बल्कि बड़ी ही ओजस्विनी भाषा में इन विषयों पर लिखते और बोलते थे। हिंदू सभ्यता के विवेकी भगत उनके इन विवेकशून्य विचारों पर हँसते थे; परन्तु उपहास और विरोधी तो सुधारक के पुरस्कार हैं ! मि. कैलाश उनकी कुछ परवा न करते थे। वे कोरे वाक्यवीर ही न थे, कर्मवीर भी पूरे थे। कामिनी की स्वतंत्रता उनके विचारों का प्रत्यक्ष स्वरूप थी। सौभाग्यवश कामिनी के पति गोपालनारायण भी इन्हीं विचारों में रंगे हुए थे। वे साल भर से अमेरिका में विद्याध्ययन करते थे। कामिनी, भाई और पति के उपदेशों से पूरा-पूरा लाभ उठाने में कमी न करती थी।

3

लखनऊ में अलफ्रेड थियेटर कम्पनी आयी हुई थी, शहर में जहाँ देखिए उसी के तमाशे की चर्चा थी। कामिनी की रातें बड़े आनन्द से कटती थीं। रात भर थियेटर देखती। दिन को कुछ सोती और कुछ देर वही थियेटर के गीत अलापती। सौन्दर्य और प्रीति के नव रमणीय संसार में रमण करती थी, जहाँ का दुःख और क्लेश भी इस संसार के सुख और आनन्द से बढ़कर मोददायी है। यहाँ तक कि तीन महीने बीत गये। प्रणय की नित्य नयी मनोहर शिक्षा और प्रेम के आनन्दमय अलाप-विलाप का हृदय पर कुछ न कुछ असर होना चाहिए था सो भी इस चढ़ती जवानी में। वह असर हुआ। इसका श्रीगणेश उसी तरह हुआ जैसा कि बहुधा हुआ करता है।

थियेटर हॉल में एक सुघर सजीले युवक की आँखें कामिनी की ओर उठने लगीं। वह रूपवती और चंचला थी, अतएव पहले उसे इस चितवन में किसी रहस्य का ज्ञान न हुआ। नेत्रों का सुन्दरता से बड़ा घना सम्बन्ध है। घूरना पुरुषों का और लजाना स्त्रियों का स्वभाव है। कुछ दिनों के बाद कामिनी को इस चितवन में कुछ गुप्त भाव झलकने लगे। मन्त्र अपना काम करने लगा। फिर नयनों में परस्पर बातें होने लगीं। नयन मिल गये। प्रीति गाढ़ी हो गयी। कामिनी एक दिन के लिए भी यदि किसी दूसरे उत्सव में चली जाती तो वहाँ उसका मन न लगता। जी उचटने लगता। आँखें किसी को ढूँढ़ा करतीं।

अंत में लज्जा का बाँध टूट गया। हृदय के विचार स्वरूपवान् हुए। मौन का ताला टूटा।

प्रेमालाप होने लगा। पद्य के बाद गद्य की बारी आयी और फिर दोनों मिलन-मन्दिर के द्वार पर आ पहुँचे। इसके पश्चात् जो कुछ हुआ, उसकी झलक हम पहले ही देख चुके हैं।

4

इस नवयुवक का नाम रूपचंद था। पंजाब का रहने वाला, संस्कृत का शास्त्री, हिन्दी-साहित्य का पूर्ण पंडित, अंगरेजी का एम. ए., लखनऊ के एक बड़े लोहे के कारखाने का मैनेजर था। घर में रूपवती स्त्री, दो प्यारे बच्चे थे। अपने साथियों में सदाचरण के लिए प्रसिद्ध था। न जवानी की उमंग, न स्वभाव का छिछोरापन। घर गृहस्थी में जकड़ा हुआ था। मालूम नहीं वह कौन-सा आकर्षण था, जिसने उसे इस तिलिस्म में फँसा लिया, जहाँ की भूमि, अग्नि और आकाश ज्वाला है, जहाँ घृणा और पाप है। और अभागी कामिनी को क्या कहा जाय, जिसकी प्रीति की बाढ़ ने वीरता और विवेक का बाँध तोड़ कर अपनी तरल तरंग में नीति और मर्यादा की टूटी-फूटी झोंपड़ी को डुबो दिया। यह पूर्व जन्म के संस्कार थे।

रात को दस बज गये थे। कामिनी लैम्प के सामने बैठी हुई चिट्ठियाँ लिख रही थी। पहला पत्र रूपचन्द के नाम था।

कैलाश भवन, लखनऊ।

प्राणाधार !

तुम्हारे पत्र को पढ़ कर प्राण निकल गये। उफ ! अभी एक महीना लगेगा। इतने दिनों में कदाचित् तुम्हें यहाँ मेरी राख भी न मिलेगी। तुमसे अपने दुःख क्या रोऊँ। बनावट के दोषारोपण से डरती हूँ। जो कुछ बीत रही है, वह मैं ही जानती हूँ। लेकिन बिना विरह-कथा सुनाये दिल की जलन कैसे जायगी ? यह आग कैसे ठंडी होगी ? अब मुझे मालूम हुआ कि यदि प्रेम दहकती हुई आग है तो वियोग उसके लिए घृत है। थियेटर अब भी जाती हूँ, पर विनोद के लिए नहीं, रोने और विसूरने के लिए। रोने में ही चित्त को कुछ शान्ति मिलती है। आँसू उमड़े चले आते हैं। मेरा जीवन शुष्क और नीरस हो गया है। न किसी से मिलने को जी चाहता है, न आमोद-प्रमोद में मन लगता है। परसों डाक्टर केलकर का व्याख्यान था, भाई साहब ने बहुत आग्रह किया, पर मैं न जा सकी। प्यारे, मौत से पहले मत मारो। आनंद के इन गिने-गिनाये क्षणों में वियोग का दुःख मत दो। आओ, यथासाध्य शीघ्र आओ, और गले से लग कर मेरे हृदय की ताप बुझाओ। अन्यथा आश्चर्य नहीं कि विरह का यह अथाह सागर मुझे निगल जाय।

तुम्हारी—कामिनी

इसके बाद कामिनी ने दूसरा पत्र पति को लिखा।

कैलाश भवन, लखनऊ।

माई डियर गोपाल !

अब तक तुम्हारे दो पत्र आये, परंतु खेद है कि मैं उनका उत्तर न दे सकी। दो सप्ताह से सिर की पीड़ा से असह्य वेदना सह रही हूँ। किसी भाँति चित्त को शांति नहीं मिलती; पर अब कुछ स्वस्थ हूँ। कुछ चिंता मत करना। तुमने जो नाटक भेजे, उनके लिए मैं हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। स्वस्थ हो जाने पर पढ़ना आरम्भ करूँगी। तुम वहाँ के मनोहर दृश्यों का वर्णन मत किया करो।

मुझे तुम पर ईर्ष्या होती है। यदि मैं आग्रह करूँ तो भाई साहब वहाँ तक पहुँचा तो देंगे, परंतु इनके खर्च इतने अधिक हैं कि इनसे नियमित रूप से साहाय्य मिलना कठिन है और इस समय तुम पर भार देना भी ठीक नहीं है। ईश्वर चाहेगा तो वह दिन शीघ्र देखने में आवेगा, जब मैं तुम्हारे साथ आनंदपूर्वक वहाँ की सैर करूँगी। मैं इस समय तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं देना चाहती; पर अपनी आवश्यकताएँ किससे कहूँ! मेरे पास अब कोई अच्छा गाउन नहीं रहा। किसी उत्सव में जाते लजाती हूँ। यदि तुमसे हो सके तो मेरे लिए एक अपने पसंद का गाउन बनवा कर भेज दो। आवश्यकता तो और भी कई चीजों की है, परन्तु इस समय तुम्हें अधिक कष्ट नहीं देना चाहती। आशा है, तुम सकुशल होगे।

तुम्हारी—कामिनी

5

लखनऊ के सेशन जज के इजलास में बड़ी भीड़ थी। अदालत के कमरे ठसाठस भर गये थे। तिल रखने की जगह न थी। सबकी दृष्टि बड़ी उत्सुकता के साथ जज के सम्मुख खड़ी एक सुन्दर लावण्यमयी मूर्ति पर लगी हुई थी। यह कामिनी थी। उसका मुँह धूमिल हो रहा था। ललाट पर स्वेद-बिंदु झलक रहे थे ! कमरे में घोर निःस्तब्धता थी। केवल वकीलों की कानाफूसी और सैन कभी-कभी इस निस्तब्धता को भंग कर देती थी। अदालत का हाता आदमियों से इस तरह भर गया था कि जान पड़ता था मानो सारा शहर सिमट कर यहीं आ गया है। था भी ऐसा ही। शहर की प्रायः दुकानें बंद थीं और जो एक-आध खुली भी थीं उन पर लडके बैठे ताश खेल रहे थे। क्योंकि कोई गाहक न था। शहर से कचहरी तक आदमियों का ताँता लगा हुआ था। कामिनी को निमिष-मात्र देखने के लिए, उसके मुँह से एक बात सुनने के लिए, इस समय प्रत्येक आदमी अपना सर्वस्व निछावर करने पर तैयार था। वे लोग जो कभी पं. दातादयाल शर्मा जैसे प्रभावशाली वक्ता की वक्तृता सुनने के लिए घर से बाहर नहीं निकले, वे जिन्होंने नवजवान मनचले बेटों को अलफ्रेड थियेटर में जाने की आज्ञा नहीं दी, वे एकांतप्रिय जिन्हें वायसराय के शुभागमन तक की ख़बर न हुई थी, शांति के उपासक जो मुहर्रम की चहल-पहल देखने को अपनी कुटिया से बाहर न निकलते थे, वे सभी आज गिरते-पड़ते; उठते-बैठते कचहरी की ओर दौड़े चले आ रहे थे। बेचारी स्त्रियाँ अपने भाग्य को कोसती हुई अपनी-अपनी अटारियों पर चढ़ विवशतापूर्ण उत्सुक दृष्टि से उस तरफ ताक रही थीं, जिधर उनके विचार में कचहरी थी। पर उनकी गरीब आँखें निर्दय अट्टालिकाओं की दीवारों से टकरा कर लौट आती थीं। यह सब कुछ इसलिए हो रहा था कि आज अदालत में एक बड़ा मनोहर, अद्भुत अभिनय होने वाला था, जिस पर अलफ्रेड थियेटर के हजारों अभिनय बलिदान थे। आज एक गुप्त रहस्य खुलने वाला था, जो अँधेरे में राई है पर प्रकाश में पर्वताकार हो जाता है। इस घटना के सम्बन्ध में लोग टीका-टिप्पणी कर रहे थे। कोई कहता था, यह असंभव है कि रूपचंद जैसा शिक्षित व्यक्ति ऐसा दूषित कर्म करे। पुलिस का यह बयान है तो हुआ करे। गवाह पुलिस के बयान का समर्थन करते हैं तो किया करें। यह पुलिस का अत्याचार है, अन्याय है; कोई कहता था, भाई सत्य तो यह है कि यह रूप-लावण्य, यह 'खंजन गंजन नयन' और यह हृदय-हारिणी सुंदर सलोनी छवि जो कुछ न करे वह थोड़ा है। श्रोता इन बातों को बड़े चाव

से इस तरह आश्चर्यान्वित हो मुँह बा कर सुनते थे मानो देववाणी हो रही हो। सबकी जीभ पर यही चर्चा थी। खूब नमक-मिरच लपेटा जाता था। परंतु इसमें सहानुभूति या समवेदना के लिए जरा भी स्थान न था।

6

पंडित कैलाशनाथ का बयान खतम हो गया। और कामिनी इजलास पर पधारी। इसका बयान बहुत संक्षिप्त था, मैं अपने कमरे में रात को सो रही थी। कोई एक बजे के करीब चोर-चोर का हल्ला सुन कर मैं चौंक पड़ी और अपनी चारपाई के पास चार आदमियों को हाथापाई करते देखा। मेरे भाई साहब अपने दो चौकीदारों के साथ अभियुक्त को पकड़ते थे और वह जान छुड़ा कर भागना चाहता था। मैं शीघ्रता से उठकर बरामदे में निकल आयी। इसके बाद मैंने चौकीदारों को अपराधी के साथ पुलिस स्टेशन की ओर जाते देखा।

रूपचंद ने कामिनी का बयान सुना और एक ठंडी साँस ली। नेत्रों के आगे से पर्दा हट गया। कामिनी, तू ऐसी कृतघ्न, ऐसी अन्यायी, ऐसी पिशाचिनी, ऐसी दुरात्मा है। क्या तेरी वह प्रीति, वह विरह-वेदना, वह प्रेमोद्‌गार, सब धोखे की टट्टी थी ? तूने कितनी बार कहा है कि दृढ़ता प्रेम मंदिर की पहली सीढ़ी है। तूने कितनी वार नयनों में आँसू भर कर इस गोद में मुँह छिपा कर मुझसे कहा है कि मैं तुम्हारी हो गयी। मेरी लाज अब तुम्हारे हाथ है। परंतु हाय ! आज प्रेम-परीक्षा के समय तेरी वह सब बातें खोटी उतरीं। आह ! तूने दगा दिया और मेरा जीवन मिट्टी में मिला दिया।

रूपचंद विचार-तरंगों में निमग्न था। उसके वकील ने कामिनी से जिरह करना प्रारम्भ किया।

वकील—क्या तुम सत्यनिष्ठा के साथ कह सकती हो कि रूपचंद तुम्हारे मकान पर अक्सर नहीं जाया करता था !

कामिनी—मैंने कभी उसे अपने घर पर नहीं देखा।

वकील—क्या तुम शपथ-पूर्वक कह सकती हो कि तुम उसके साथ कभी थियेटर देखने नहीं गयीं ?

कामिनी—मैंने उसे कभी नहीं देखा।

वकील—क्या तुम शपथ लेकर कह सकती हो कि तुमने उसे प्रेम-पत्र नहीं लिखे ?

शिकारी के चंगुल में फँसे हुए पक्षी की तरह पत्र का नाम सुनते ही कामिनी के होश-हवास उड़ गये, हाथ-पैर फूल गये। मुँह न खुल सका। जज ने, वकील ने और दो सहस्र आँखों ने उसकी तरफ उत्सुकता से देखा।

रूपचंद का मुँह खिल गया। उसके हृदय में आशा का उदय हुआ। जहाँ फूल था वहाँ काँटा पैदा हुआ। मन में कहने लगा, कुलटा कामिनी ! अपने सुख और अपने कपट मान-प्रतिष्ठा पर मेरे और मेरे परिवार की हत्या करने वाली कामिनी ! ! तू अब भी मेरे हाथ में है। मैं अब भी तुझे इस कृतघ्नता और कपट का दंड दे सकता हूँ। तेरे पत्र जिन्हें तूने हृदय से लिखा है या नहीं, मालूम नहीं, परन्तु जो मेरे हृदय के ताप को शीतल करने के लिए मोहिनी मंत्र थे, वह सब मेरे पास हैं। और वह इसी समय तेरा सब भेद खोलेंगे। इस

क्रोध से उन्मत्त हो कर रूपचंद ने अपने कोट के पाकेट में हाथ डाला ! जज ने, वकीलों ने, और दो सहस्र नेत्रों ने उसकी तरफ चातक की भाँति देखा।

तब कामिनी की विकल आँखें चारों ओर से हताश होकर रूपचंद की ओर पहुँचीं। उनमें इस समय लज्जा थी; दया-भिक्षा की प्रार्थना थी और व्याकुलता थी, वह मन ही मन कहती थी, मैं स्त्री हूँ, अबला हूँ, ओछी हूँ। तुम पुरुष हो, बलवान हो, साहसी हो; यह तुम्हारे स्वभाव के विपरीत है। मैं कभी तुम्हारी थी और यद्यपि समझ मुझे तुमसे अलग किये देती है किंतु मेरी लाज तुम्हारे हाथ में है। तुम मेरी रक्षा करो। आँख मिलते ही रूपचंद उसके मन की बात ताड़ गये। उनके नेत्रों ने उत्तर दिया—यदि तुम्हारी लाज मेरे हाथों में है तो इस पर कोई आँच नहीं आने पावेगी। तुम्हारी लाज पर आज मेरा सर्वस्व निछावर है।

अभियुक्त के वकील ने कामिनी से पुनः वही प्रश्न किया—क्या तुम शपथपूर्वक कह सकती हो कि तुम रूपचंद को प्रेम-पत्र नहीं लिखी ?

कामिनी ने कातर स्वर में उत्तर दिया—मैं शपथपूर्वक कहती हूँ कि मैंने उन्हें कभी कोई पत्र नहीं लिखा और अदालत से अपील करती हूँ कि वह मुझे इन घृणास्पद अश्लील आक्रमणों से बचावे।

अभियोग की कार्रवाई समाप्त हो गयी। अब अपराधी के बयान की बारी आयी। उसकी तरफ के कोई गवाह न थे। परन्तु वकीलों को, जज को, और अधीर जनता को पूरा-पूरा विश्वास था कि अभियुक्त का बयान पुलिस के मायावी महल को क्षणमात्र में छिन्न-भिन्न कर देगा। रूपचंद इजलास के सम्मुख आया। उसके मुखारविंद पर आत्म-बल का तेज झलक रहा था और नेत्रों में साहस और शान्ति। दर्शक-मंडली उतावली हो कर अदालत के कमरे में घुस पड़ी। रूपचंद इस समय का चांद था या देवलोक का दूत; सहस्रों नयन उसकी ओर लगे थे। किंतु हृदय को कितना कौतूहल हुआ जब रूपचंद ने अत्यंत शान्तचित्त से अपना अपराध स्वीकार कर लिया ! लोग एक दूसरे का मुँह ताकने लगे।

अभियुक्त का बयान समाप्त होते ही कोलाहल मच गया। सभी इसकी आलोचना-प्रत्यालोचना करने लगे। सबके मुँह पर आश्चर्य था, संदेह था, और निराशा थी। कामिनी की कृतघ्नता और निष्ठुरता पर धिक्कार हो रही थी। प्रत्येक मनुष्य शपथ खाने पर तैयार था कि रूपचंद सर्वथा निर्दोष है। प्रेम ने उसके मुँह पर ताला लगा दिया है। पर कुछ ऐसे भी दूसरे के दुःख में प्रसन्न होने वाले स्वभाव के लोग थे जो उसके इस साहस पर हँसते और मजाक उड़ाते थे।

दो घंटे बीत गये। अदालत में पुनः एक बार शान्ति का राज्य हुआ। जज साहब फैसला सुनाने के लिए खड़े हुए। फैसला बहुत संक्षिप्त था। अभियुक्त जवान है, शिक्षित है और सभ्य है। अतएव आँखों वाला अंधा है। उसे शिक्षाप्रद दण्ड देना आवश्यक है। अपराध स्वीकार करने से उसका दण्ड कम नहीं होता है। अतः मैं उसे पाँच वर्ष के सपरिश्रम कारावास की सजा देता हूँ।

दो हजार मनुष्यों ने हृदय थाम कर फैसला सुना। मालूम होता था कि कलेजे में भाले चुभ गये हैं ! सभी का मुँह निराशाजनक क्रोध से रक्त-वर्ण हो रहा था। यह अन्याय है,

कठोरता और बेरहमी है। परन्तु रूपचंद के मुँह पर शान्ति विराज रही थी।

['निगाहे-नाज' शीर्षक से उर्दू में प्रथम प्रकाशन। 'जमाना', मई, 1913 में प्रकाशित। 'प्रेम पचीसी' में संकलित। हिन्दी रूप 'धर्म संकट' शीर्षक से 'मानसरोवर' भाग-8 में संकलित।]

मिलाप

लाला ज्ञानचंद बैठे हुए हिसाब-किताब जांच रहे थे कि उनके सुपुत्र बाबू नानकचंद आए और बोले—दादा, अब यहां पड़े-पड़े जी उकता गया, आपकी आज्ञा हो तो मैं सैर को निकल जाऊं ? दो-एक महीने में लौट आऊंगा।

नानकचंद बहुत सुशील और सुंदर नवयुवक था। रंग पीला, आंखों के गिर्द हल्के, कंधे झुके हुए। ज्ञानचंद ने उनकी तरफ तीखी निगाह से देखा और व्यंग्यपूर्ण स्वर में बोले—क्यों, क्या यहां तुम्हारे लिए कुछ कम दिलचस्पियां हैं ?

ज्ञान ने बेटे को सीधे रास्ते पर लाने की बहुत कोशिश की थी, मगर सफल न हुए। उनकी डांट-फटकार और समझाना-बुझाना बिल्कुल बेकार हुआ। उनकी संगति अच्छी न थी, पीने-पिलाने और राग-रंग में डूबा रहता था। उन्हें यह नया प्रस्ताव क्यों पसंद आने लगा, लेकिन नानकचंद उनके स्वभाव से परिचित था। बेधड़क बोला—अब यहां जी नहीं लगता। कश्मीर की बहुत तारीफ सुनी है, अब वहीं जाने की सोचता हूं।

ज्ञानचंद—बेहतर है, तशरीफ ले जाइए।

नानकचंद—(हंसकर) रुपये तो दिलवाइए। इस वक्त पांच सौ रुपये की सख्त जरूरत है।

ज्ञानचंद—ऐसी फिजूल बातों का मुझसे जिक्र न किया करो, मैं तुमको बार-बार समझा चुका।

नानकचंद ने हठ करना शुरू किया और बूढ़े लाला इंकार करते रहे, यहां तक कि नानकचंद झुंझलाकर बोला—अच्छा, कुछ मत दीजिए, मैं यों ही चला जाऊंगा।

ज्ञानचंद ने कलेजा मजबूत करके कहा—बेशक तुम ऐसे ही हिम्मतवर हो। वहां भी तुम्हारे भाई-बंद बैठे हुए हैं न !

नानकचंद—मुझे किसी की परवाह नहीं है। आपका रुपया आपको मुबारक रहे।

नानकचंद की यह चाल कभी पट नहीं पड़ती थी। अकेला लड़का था। बूढ़े लाला साहब ढीले पड़ गए। रुपया दिया, खुशामद की और उसी दिन नानकचंद कश्मीर की सैर के लिए रवाना हुआ।

2

मगर नानकचंद यहां से अकेला न चला। उसकी प्रेम की घातें आज सफल हो गई थीं। पड़ोस में बाबू रामदास रहते थे। बेचारे सीधे-सादे आदमी थे, सुबह को दफ्तर जाते और शाम को आते और इस बीच नानकचंद अपने कोठे पर बैठा हुआ उनकी बेवा लड़की से

मुहब्बत के इशारे किया करता। यहां तक कि अभागी ललिता उसके जाल में आ फंसी। भाग जाने के मंसूबे हुए।

आधी रात का वक्त था, ललिता एक साड़ी पहने अपनी चारपाई पर करवटें बदल रही थी। जेवरों को उतारकर उसने एक संदूकचे में रख दिया था। उसके दिल में इस वक्त तरह-तरह के खयाल दौड़ रहे थे और कलेजा जोर-जोर से धड़क रहा था। मगर चाहे और कुछ न हो, नानकचंद की तरफ से उसे बेवफाई का जरा भी गुमान न था। जवानी की सबसे बड़ी नेमत मुहब्बत है और इस नेमत को पाकर ललिता अपने को खुशनसीब समझ रही थी। रामदास बेसुध सो रहे थे कि इतने में कुंडी खटकी। ललिता चौंककर उठ खड़ी हुई। उसने जेवरों का संदूकचा उठा लिया। एक बार इधर-उधर हसरत भरी निगाहों से देखा और दबे पांव चौंक-चौंककर कदम उठाती देहलीज में आई और कुंडी खोल दी। नानकचंद ने उसे गले से लगा लिया। बग्घी तैयार थी, दोनों उस पर जा बैठे।

सुबह को बाबू रामदास उठे, ललिता न दिखाई दी। घबराए, सारा घर छान मारा, कुछ पता न चला। बाहर की कुंडी खुली देखी। बग्घी के निशान नजर आए। सर पीटकर बैठ गए। मगर अपने दिल का दर्द किससे कहते। हंसी और बदनामी का डर जबान पर मोहर हो गया। मशहूर किया कि वह अपने ननिहाल चली गई, मगर लाला ज्ञानचंद सुनते ही भांप गए कि कश्मीर की सैर के कुछ और ही माने थे। धीरे-धीरे यह बात सारे मुहल्ले में फैल गई। यहां तक कि बाबू रामदास ने शर्म के मारे आत्महत्या कर ली।

3

मुहब्बत की सरगर्मियां नतीजे की तरफ से बिल्कुल बेखबर होती हैं। नानकचंद जिस वक्त बग्घी में ललिता के साथ बैठा तो उसे इसके सिवाय और कोई खयाल न था कि एक युवती मेरे बगल में बैठी है, जिसके दिल का मैं मालिक हूं। उसी धुन में वह मस्त था। बदनामी का डर, कानून का खटका, जीविका के साधन, इन समस्याओं पर विचार करने की उसे उस वक्त फुर्सत न थी। हां, उसने कश्मीर का इरादा छोड़ दिया। कलकत्ते जा पहुंचा। किफायतशारी का सबक न पढ़ा था। जो कुछ जमा-जथा थी, दो महीनों में खर्च हो गई। ललिता के गहनों पर नौबत आई। लेकिन नानकचंद में इतनी शराफत बाकी थी। दिल मजबूत करके बाप को खत लिखा, मुहब्बत को गालियां दीं और विश्वास दिलाया कि अब आपके पैर चूमने के लिए जी बेकरार है, कुछ खर्च भेजिए। लाला साहब ने खत पढ़ा, तस्कीन हो गई कि चलो जिंदा है और खैरियत से है। धूम-धाम से सत्यनारायण की कथा सुनी। रुपया रवाना कर दिया, लेकिन जवाब में लिखा—खैर, जो कुछ तुम्हारी किस्मत में था वह हुआ। अभी इधर आने का इरादा मत करो। बहुत बदनाम हो रहे हो। तुम्हारी वजह से मुझे भी बिरादरी से नाता तोड़ना पड़ेगा। इस तूफान को उतर जाने दो। तुम्हें खर्च की तकलीफ न होगी। मगर इस औरत की बांह पकड़ी है तो उसका निबाह करना, उसे अपनी ब्याहता स्त्री समझो।

नानकचंद के दिल पर से चिंता का बोझ उतर गया। बनारस से माहवार वजीफा मिलने लगा। इधर ललिता की कोशिश ने भी कुछ दिल को खींचा और गो शराब की लत

न छूटी और हफ्ते में दो दिन जरूर थियेटर देखने जाता तो भी तबीयत में स्थिरता और कुछ संयम आ चला था। इस तरह कलकत्ते में उसने तीन साल काटे। इसी बीच उसे एक प्यारी लड़की के बाप बनने का सौभाग्य हुआ जिसका नाम उसने कमला रखा।

4

तीसरा साल गुजरा ही था कि नानकचंद के उस शांतिमय जीवन में हलचल पैदा हुई। लाला ज्ञानचंद का पचासवां साल था जो हिंदोस्तानी रईसों की प्राकृतिक आयु है। उनका स्वर्गवास हो गया और ज्योंही यह खबर नानकचंद को मिली वह ललिता के पास जाकर चीखें मार-मारकर रोने लगा। जिंदगी के नए-नए मसले अब उसके सामने आए। इस तीन साल की संभली हुई जिंदगी ने उसके दिल से शोहदेपन और नशेबाजी के खयाल बहुत कुछ दूर कर दिए थे। उसे अब यह फिक्र सवार हुई कि चलकर बनारस में अपनी जायदाद का कुछ इंतजाम करना चाहिए, वर्ना सारा कारोबार धूल में मिल जाएगा। लेकिन ललिता को क्या करूं ! अगर इसे वहां लिए चलता हूं तो तीन साल की पुरानी घटनाएं ताजी हो जाएंगी और फिर एक हलचल पैदा होगी जो मुझे हुक्काम और हमजोलियों में जलील कर देगी। इसके अलावा उसे अब कानूनी औलाद की जरूरत भी नजर आने लगी। यह हो सकता था कि वह ललिता को अपनी ब्याहता स्त्री मशहूर कर देता लेकिन इस आम खयाल को दूर करना असंभव था कि उसने उसे भगाया है। ललिता से नानकचंद को अब वह मुहब्बत न थी जिसमें दर्द होता है और बेचैनी होती है। वह अब एक साधारण पति था जो गले में पड़े हुए ढोल को पीटना ही अपना धर्म समझता है, जिसे बीवी की मुहब्बत उसी वक्त याद आती है, जब वह बीमार होती है। और इसमें अचरज की कोई बात नहीं है अगर जिंदगी की नई-नई उमंगों ने उसे उकसाना शुरू किया। वे मंसूबे पैदा होने लगे जिनका दौलत और बड़े लोगों के मेलजोल से संबंध है। मानव भावनाओं की यही साधारण दशा है। नानकचंद अब मजबूत इरादे के साथ सोचने लगा कि यहां से क्योंकर भागूं। अगर इजाजत लेकर जाता हूं तो दो-चार दिन में सारा पर्दाफाश हो जाएगा। अगर हीला किए जाता हूं, तो आज के तीसरे दिन ललिता बनारस में मेरे सर पर सवार होगी। कोई ऐसी तरकीब निकालूं कि इन संभावनाओं से मुक्ति मिले। सोचते-सोचते उसे आखिर एक तदबीर सूझी। वह एक दिन शाम को दरिया की सैर का बहाना करके चला और रात को घर पर न आया। दूसरे दिन सुबह को एक चौकीदार ललिता के पास आया और उसे थाने में ले गया। ललिता हैरान थी कि क्या माजरा है। दिल में तरह-तरह की दुश्चिंताएं पैदा हो रही थीं। वहां जाकर जो कैफियत देखी, तो दुनिया आंखों में अंधेरी हो गई। नानकचंद के कपड़े खून में तर-ब-तर पड़े थे। उसकी वही सुनहरी घड़ी, वही खूबसूरत छतरी, वही रेशमी साफा, सब वहां मौजूद था। जेब में उसके नाम के छपे हुए कार्ड थे। कोई संदेह न रहा कि नानकचंद को किसी ने कत्ल कर डाला। दो-तीन हफ्ते तक थाने में तहकीकातें होती रहीं और आखिरकार खूनी का पता चल गया। पुलिस के अफसरों को बड़े-बड़े इनाम मिले, इसको जासूसी का एक बड़ा आश्चर्य समझा गया। खूनी ने प्रेम की प्रतिद्वन्द्विता के जोश में यह काम किया। मगर इधर तो गरीब, बेगुनाह खूनी सूली पर चढ़ा हुआ था और यहां

बनारस में नानकचंद की शादी रचाई जा रही थी।

5

लाला नानकचंद की शादी एक रईस घराने में हुई और तब धीरे-धीरे फिर वही पुराने उठने-बैठने वाले आने शुरू हुए। फिर वही मजलिसें जमीं और फिर वही सागर- ओ-मीना के दौर चलने लगे। संयम का कमजोर अहाता इन विषय-वासना के बटमारों को न रोक सका। हां, अब इस पीने-पिलाने में कुछ परदा रखा जाता है और ऊपर से थोड़ी-सी गंभीरता बनाये रखी जाती है। साल भर इसी बहार में गुजरा। नवेली बहू घर में कुढ़-कुढ़कर मर गई। तपेदिक ने उसका काम तमाम कर दिया। तब दूसरी शादी हुई। मगर इस स्त्री में नानकचंद की सौंदर्य-प्रेमी आंखों के लिए कोई आकर्षण न था। इसका भी वही हाल हुआ। कभी बिना रोये कौर मुंह में नहीं दिया। तीन साल में चल बसी। तब तीसरी शादी हुई। यह औरत वहुत सुंदर थी, अच्छे आभूषणों से सुसज्जित। उसने नानकचंद के दिल में जगह कर ली। एक बच्चा भी पैदा हुआ और नानकचंद गार्हस्थिक आनंदों से परिचित होने लगा, दुनिया के नाते-रिश्ते अपना दामन खींचने लगे। मगर प्लेग के एक ही हमले ने सारे मंसूबे धूल में मिला दिए। पतिप्राणा स्त्री मरी, तीन बरस का प्यारा लड़का हाथ से गया और दिल पर ऐसा दाग छोड़ गया जिसका कोई मरहम न था। उच्छृंखलता भी चली गई, ऐयाशी का भी खात्मा हुआ। दिल पर रंजोगम छा गया और तबीयत संसार से विरक्त हो गई।

6

जीवन की दुर्घटनाओं में अक्सर बड़े महत्त्व के नैतिक पहलू छिपे हुआ करते हैं। इन सदमों ने नानकचंद के दिल में मरे हुए इंसान को जगा दिया। जब वह निराशा के यातनापूर्ण अकेलेपन में पड़ा हुआ इन घटनाओं को याद करता तो उसका दिल रोने लगता और ऐसा मालूम होता कि ईश्वर ने मुझे मेरे पापों की सजा दी है। धीरे-धीरे यह खयाल उसके दिल में मजबूत हो गया—उफ्, मैंने उस मासूस औरत पर कैसा जुल्म किया ! कैसी बेरहमी की! यह उसी का दंड है। यह सोचते-सोचते ललिता की मासूम तस्वीर उसकी आंखों के सामने खड़ी हो जाती और प्यारे मुखड़े वाली कमला अपने मरे हुए सौतेले भाई के साथ उसकी तरफ प्यार से दौड़ती हुई दिखाई देती। इस लंबी अवधि में नानकचंद को ललिता की याद तो कई बार आई थी मगर भोग-विलास, पीने-पिलाने की उन कैफियतों ने कभी उस खयाल को जमने न दिया। एक धुंधला-सा सपना दिखाई दिया और बिखर गया। मालूम नहीं, दोनों मर गईं या जिंदा हैं। अफसोस ! ऐसी बेकसी की हालत में छोड़कर मैंने उनकी सुध तक न ली। उस नेकनामी पर धिक्कार है, जिसके लिए ऐसी निदयता की कीमत देनी पड़े। यह खयाल आखिर उसके दिल पर इस बुरी तरह बैठा कि एक रोज वह कलकत्ता के लिए रवाना हो गया।

सुबह का वक्त था। वह कलकत्ते पहुंचा और अपने उसी पुराने घर को चला। सारा शहर कुछ से कुछ हो गया था। बहुत तलाश के बाद उसे अपना पुराना घर नजर आया।

उसके दिल में जोर से धड़कन होने लगी और भावनाओं में हलचल पैदा हो गई। उसने एक पड़ोसी से पूछा—इस मकान में कौन रहता है ?

बूढ़ा बंगाली था, बोला—हाम यह नहीं कह सकता, कौन है, कौन नहीं है। इतना बड़ा मुलुक में कौन किसको जानता है ? हां, एक लड़की और उसका बूढ़ा मां, दो औरत रहता है। विधवा है, कपड़े की सिलाई करता है। जब से उसका आदमी मर गया, तब से यही काम करके अपना पेट पालता है।

इतने में दरवाजा खुला और एक तेरह-चौदह साल की सुंदर लड़की किताब लिए हुए बाहर निकली। नानकचंद पहचान गया कि यह कमला है। उसकी आंखों में आंसू उमड़ आए, बेअख्तियार जी चाहा कि उस लड़की को छाती से लगा ले। कुबेर की दौलत मिल गई। आवाज को संभालकर बोला—बेटी, जाकर अपनी अम्मां से कह दो कि बनारस से एक आदमी आया है। लड़की अंदर चली गई और थोड़ी देर में ललिता दरवाजे पर आई। उसके चेहरे पर घूंघट था और गो सौंदर्य की ताजगी न थी मगर आकर्षण अब भी था। नानकचंद ने उसे देखा और एक ठंडी सांस ली। पतिव्रत और धैर्य और निराशा की सजीव मूर्ति सामने खड़ी थी। उसने बहुत जोर लगाया, मगर जब्त न हो सका, बरबस रोने लगा। ललिता ने घूंघट की आड़ से उसे देखा और आश्चर्य के सागर में डूब गई। वह चित्र जो हृदय-पट पर अंकित था और जो जीवन के अल्पकालिक आनंदों की याद दिलाता रहता था, जो सपनों में सामने आ-आकर कभी खुशी के गीत सुनाता था और कभी रंज के तीर चुभाता था, इस वक्त सजीव, सचल सामने खड़ा था। ललिता पर एक बेहोशी-सी छा गई, कुछ वही हालत जो आदमी को सपने में होती है। वह व्यग्र होकर नानकचंद की तरफ बढ़ी और रोती हुई बोली—मुझे भी अपने साथ ले चलो। मुझे अकेले किस पर छोड़ दिया है ! मुझसे अब यहां नहीं रहा जाता।

ललिता को इस बात की जरा भी चेतना न थी कि वह उस व्यक्ति के सामने खड़ी है जो एक जमाना हुआ मर चुका, वर्ना शायद वह चीखकर भागती। उस पर एक सपने की-सी हालत छाई हुई थी, मगर जब नानकचंद ने उसे सीने से लगाकर कहा, 'ललिता, अब तुमको अकेले न रहना पड़ेगा, तुम्हें इन आंखों की पुतली बनाकर रखूंगा। मैं इसीलिए तुम्हारे पास आया हूं। मैं अब तक नरक में था, अब तुम्हारे साथ स्वर्ग का सुख भोगूंगा।' तो ललिता चौंकी और छिटककर अलग हटती हुई बोली—आंखों को तो यकीन आ गया मगर दिल को नहीं आता। ईश्वर करे यह सपना न हो !

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'जमाना', जून, 1913 में प्रकाशित। हिन्दी रूप 'मिलाप' 'गुप्तधन' भाग-1 में संकलित।]

अंधेर

नागपंचमी आई। साठे के जिंदादिल नौजवानों ने रंग-बिरंगे जांघिए बनवाए। अखाड़े में ढोल की मर्दाना सदाएं गूंजने लगीं। आसपास के पहलवान इकट्ठे हुए और अखाड़े पर

तंबोलियों ने अपनी दुकानें सजाईं क्योंकि आज कुश्ती और दोस्ताना मुकाबले का दिन है। औरतों ने गोबर से अपने आंगन लीपे और गाती-बजाती कटोरों में दूध-चावल लिए नाग पूजने चलीं।

साठे और पाठे दो लगे हुए मौजे थे। दोनों गंगा के किनारे। खेती में ज्यादा मशक्कत नहीं करनी पड़ती थी इसीलिए आपस में फौजदारियां खूब होती थीं। आदिकाल से उनके बीच होड़ चली आती थी। साठे वालों को यह घमंड था कि उन्होंने पाठे वालों को कभी सिर न उठाने दिया। उसी तरह पाठे वाले अपने प्रतिद्वंद्वियों को नीचा दिखलाना ही जिंदगी का सबसे बड़ा काम समझते थे। उनका इतिहास विजयों की कहानियों से भरा हुआ था। पाठे के चरवाहे यह गीत गाते हुए चलते थे—

साठे वाले कायर सगरे पाठे वाले हैं सरदार

और साठे के धोबी गाते—

साठे वाले साठ हाथ के जिनके हाथ सदा तरवार।
उन लोगन के जनम नसाये जिन पाठे मान लीन अवतार।।

गरज आपसी होड़ का यह जोश बच्चों में मां के दूध के साथ दाखिल होता था और उसके प्रदर्शन का सबसे अच्छा और ऐतिहासिक मौका यही नागपंचमी का दिन था। इस दिन के लिए साल भर तैयारियां होती रहती थीं। आज उनमें मार्के की कुश्ती होने वाली थी। साठे को गोपाल पर नाज था, पाठे को बलदेव का गर्रा। दोनों सूरमा अपने-अपने फरीक की दुआएं और आरजुएं लिए हुए अखाड़े में उतरे। तमाशाइयों पर चुंबक का-सा असर हुआ। मौजे के चौकीदारों ने लट्ठ और डंडों का यह जमघट देखा और मर्दों की अंगारे की तरह लाल आंखें तो पिछले अनुभव के आधार पर बेपता हो गए। इधर अखाड़े में दाव-पेंच होते रहे। बलदेव उलझता था, गोपाल पैंतरे बदलता था। उसे अपनी ताकत का जोम था, इसे अपने करतब का भरोसा। कुछ देर तक अखाड़े से ताल ठोंकने की आवाजें आती रहीं, तब यकायक बहुत-से आदमी खुशी के मारे मार-मार उछलने लगे, कपड़े और बर्तन और पैसे और बताशे लुटाए जाने लगे। किसी ने अपना पुराना साफा फेंका, किसी ने अपनी बोसीदा टोपी हवा में उड़ा दी। साठे के मनचले जवान अखाड़े में पिल पड़े और गोपाल को गोद में उठा लाए। बलदेव और उसके साथियों ने गोपाल को लहू की आंखों से देखा और दांत पीसकर रह गए।

2

दस बजे रात का वक्त और सावन का महीना। आसमान पर काली घटाएं छाई हुई थीं। अंधेरे का यह हाल था कि जैसे रोशनी का अस्तित्व ही नहीं रहा। कभी-कभी बिजली चमकती थी मगर अंधेरे को और ज्यादा अंधेरा करने के लिए। मेंढकों की आवाजें जिंदगी का पता देती थीं वर्ना चारों तरफ मौत थी। खामोश, डरावने और गंभीर साठे के झोंपड़े और मकान इस अंधेरे में बहुत गौर से देखने पर काली-काली भेड़ों की तरह नजर आते थे। न बच्चे रोते थे, न औरतें गाती थीं। पवित्रात्मा बुड्ढे राम नाम न जपते थे।

मगर आबादी से बहुत दूर कई पुरशोर नालों और ढाक के जंगलों से गुजरकर ज्वार

और बाजरे के खेत थे और उनकी मेंड़ों पर साठे के किसान जगह-जगह मड़ैया डाले खेतों की रखवाली कर रहे थे। तले जमीन, ऊपर अंधेरा, मीलों तक सन्नाटा छाया हुआ। कहीं जंगली सुअरों के गोल, कहीं नीलगायों के रेवड़, चिलम के सिवा कोई साथी नहीं, आग के सिवा कोई मददगार नहीं। जरा खटका हुआ और चौंक पड़े। अंधेरा भय का दूसरा नाम है, जब मिट्टी का एक ढेर, एक ठूंठा पेड़ और घास का एक ढेर भी जानदार चीजें बन जाती हैं। अंधेरा उनमें ज़ान डाल देता है। लेकिन यह मजबूत हाथों वाले, मजबूत जिगर वाले, मजबूत इरादे वाले किसान हैं कि यह सब सख्तियां झेलते हैं ताकि अपने ज्यादा भाग्यशाली भाइयों के लिए भोग-विलास के सामान तैयार करें। इन्हीं रखवालों में आज का हीरो, साठे का गौरव गोपाल भी है जो अपनी मड़ैया में बैठा हुआ है और नींद को भगाने के लिए धीमे सुरों में यह गीत गा रहा है—

मैं तो तोसे नैना लगाय पछतायी रे

अचानक उसे किसी के पांव की आहट मालूम हुई। जैसे हिरन कुत्तों की आवाजों को कान लगाकर सुनता है उसी तरह गोपाल ने भी कान लगाकर सुना। नींद की औंघाई दूर हो गई। लट्ठ कंधे पर रखा और मड़ैया से बाहर निकल आया। चारों तरफ कालिमा छाई हुई थी और हल्की-हल्की बूंदें पड़ रही थीं। वह बाहर निकला ही था कि उसके सर पर लाठी का भरपूर हाथ पड़ा। वह त्योराकर गिरा और रात भर वहीं बेसुध पड़ा रहा। मालूम नहीं उस पर कितनी चोटें पड़ीं। हमला करने वालों ने तो अपनी समझ में उसका काम तमाम कर डाला। लेकिन जिंदगी बाकी थी। यह पाठे के गैरतमंद लोग थे जिन्होंने अंधेरे की आड़ में अपनी हार का बदला लिया था।

3

गोपाल जाति का अहीर था, न पढ़ा न लिखा, बिल्कुल अक्खड़। दिमाग रौशन ही नहीं हुआ तो शरीर का दीपक क्यों घुलता। पूरे छः फुट का कद, गठा हुआ बदन, ललकारकर गाता तो सुनने वाले मील-भर पर बैठे हुए उसकी तानों का मजा लेते। गाने-बजाने का आशिक, होली के दिनों में महीने-भर तक गाता, सावन में मलार और भजन तो रोज का शगल था। निडर ऐसा कि भूत और पिशाच के अस्तित्व पर उसे विद्वानों जैसे संदेह थे। लेकिन जिस तरह शेर और चीते भी लाल लपटों से डरते हैं उसी तरह लाल पगड़ी से उसकी रूह कांपने लगती थी। अगरचे साठे के एक हिम्मती सूरमा के लिए यह बेमतलब डर असाधारण बात थी लेकिन उसका कुछ बस न था। सिपाही की वह डरावनी तस्वीर जो बचपन में उसके दिल पर खींची गई थी, पत्थर की लकीर बन गई थी। शरारतें गईं, बचपन गया, मिठाई की भूख गई लेकिन सिपाही की तस्वीर अभी तक कायम थी। आज उसके दरवाजे पर लाल पगड़ी वालों की एक फौज जमा थी लेकिन गोपाल जख्मों से चूर, दर्द से बेचैन होने पर भी अपने मकान के एक अंधेरे कोने में छिपा हुआ बैठा था। नंबरदार और मुखिया, पटवारी और चौकीदार रोब खाए हुए ढंग से खड़े दारोगा की खुशामद कर रहे थे। कहीं अहीर की फरियाद सुनाई देती थी, कहीं मोदी का रोना-धोना, कहीं तेली की चीख-पुकार, कहीं कसाई की आंखों से लहू जारी। कलवार खड़ा अपनी किस्मत को रो रहा था। फोहश और गंदी बातों की गर्मबाजारी थी। दारोगाजी निहायत कारगुजार अफसर थे, गालियों में

बात करते थे। सुबह को चारपाई से उठते ही गालियों का वजीफा पढ़ते थे। मेहतर ने आकर फरियाद की—हुजूर, अंडे नहीं हैं, दारोगाजी हंटर लेकर दौड़े और उस गरीब का भुरकुस निकाल दिया। सारे गांव में हलचल पड़ी थी। कानिस्टिबिल और चौकीदार रास्तों पर यों अकड़ते चलते थे गोया अपनी ससुराल में आए हैं। जब गांव के सारे आदमी आ गए तो दारोगाजी ने अफसरी शान से फरमाया—मौजे में ऐसी संगीन वारदात हुई और इस कम्बख्त गोपाल ने रपट तक न की।

मुखिया साहब बेद की तरह कांपते हुए बोले—हुजूर, अब माफी दी जाए।

दारोगाजी ने गजबनाक निगाहों से उसकी तरफ देखकर कहा—यह उसकी शरारत है। दुनिया जानती है कि जुर्म को छुपाना जुर्म करने के बराबर है। मैं इस बदमाश को इसका मजा चखा दूंगा। वह अपनी ताकत के जोश में भूला हुआ है, और कोई बात नहीं। लातों के भूत बातों से नहीं मानते।

मुखिया साहब ने सिर झुकाकर कहा—हुजूर, अब माफी दी जाए।

दारोगाजी की त्योरियां चढ़ गई और झुंझलाकर बोले—अरे हजूर के बच्चे, कुछ सठिया तो नहीं गया है। अगर इसी तरह माफी देनी होती तो मुझे क्या कुत्ते ने काटा था कि यहां तक दौड़ा आता। न कोई मामला, न मामले की बात, बस माफी की रट लगा रखी है। मुझे ज्यादा फुर्सत नहीं है। मैं नमाज पढ़ता हूं, तब तक तुम अपना सलाह-मशविरा कर लो और मुझे हंसी-खुशी रुखसत करो वर्ना गौस खां को जानते हो, उसका मारा पानी भी नहीं मांगता।

दारोगा तकवे व तहारत के बड़े पाबंद थे। पांचों वक्त की नमाज पढ़ते और तीसों रोजे रखते, ईदों में धूमधाम से कुर्बानियां होतीं। इससे अच्छा आचरण किसी आदमी में और क्या हो सकता है !

4

मुखिया साहब दबे पांव गुपचुप ढंग से गौरा के पास आए और बोले—यह दारोगा बड़ा काफिर है, पचास से नीचे तो बात ही नहीं करता। अव्वल दर्जे का थानेदार है। मैंने बहुत कहा, हजूर गरीब आदमी है, घर में कुछ सुभीता नहीं, मगर वह एक नहीं सुनता।

गौरा ने घूंघट में मुंह छिपाकर कहा—दादा, उसकी जान बच जाए, कोई तरह की आंच न आने पाए, रुपये-पैसे की कौन बात है, इसी दिन के लिए तो कमाया जाता है।

गोपाल खाट पर पड़ा यह सब बातें सुन रहा था। अब उससे न रहा गया। लकड़ी गांठ ही पर टूटती है। जो गुनाह किया नहीं गया वह दबता है मगर कुचला नहीं जा सकता। वह जोश से उठ बैठा और बोला—पचास रुपये की कौन कहे, मैं पचास कौड़ियां भी न दूंगा। कोई गदर है, मैंने कसूर क्या किया है ?

मुखिया का चेहरा फक हो गया। बड़प्पन के स्वर में बोले—धीरे बोलो, कहीं सुन ले तो गजब हो जाए।

लेकिन गोपाल बिफरा हुआ था, अकड़कर बोला—मै एक कौड़ी भी न दूंगा। देखें कौन मेरे फांसी लगा देता है।

गौरा ने बहलाने के स्वर में कहा—अच्छा, जब मैं तुमरो रुपये मांगू ता मत देना। यह

कहकर गौरा ने, जो इस वक्त लौंडी के बजाय रानी बनी हुई थी, छप्पर के एक कोने में से रुपयों की एक पोटली निकाली और मुखिया के हाथ में रख दी। गोपाल दांत पीसकर उठा, लेकिन मुखिया साहब फौरन से पहले सरक गए। दारोगाजी ने गोपाल की बातें सुन ली थीं और दुआ कर रहे थे कि ऐ खुदा, इस मरदूद के दिल को पलट। इतने में मुखिया ने बाहर आकर पच्चीस रुपये की पोटली दिखाई। पच्चीस रास्ते ही में गायब हो गए थे। दारोगाजी ने खुदा का शुक्र किया। दुआ सुनी गई। रुपया जेब में रखा और रसद पहुंचाने वालों की भीड़ को रोते और बिलबिलाते छोड़कर हवा हो गए। मोदी का गला घुंट गया। कसाई के गले पर छुरी फिर गई। तेली पिस गया। मुखिया साहब ने गोपाल की गर्दन पर एहसान रखा गोया रसद के दाम गिरह से दिए। गांव में सुर्खरू हो गया, प्रतिष्ठा बढ़ गई। इधर गोपाल ने गौरा की खूब खबर ली। गांव में रात भर यही चर्चा रही। गोपाल बहुत बचा और इसका सेहरा मुखिया के सिर था। बड़ी विपत्ति आई थी। वह टल गई। पितरों ने, दीवान हरदौल ने, नीम तले वाली देवी ने, तालाब के किनारे वाली सती ने गोपाल की रक्षा की। यह उन्हीं का प्रताप था। देवी की पूजा होनी जरूरी थी। सत्यनारायण की कथा भी लाजिमी हो गई।

5

फिर सुबह हुई लेकिन गोपाल के दरवाजे पर आज लाल पगड़ियों के बजाय लाल साड़ियों का जमघट था। गौरा आज देवी की पूजा करने जाती थी और गांव की औरतें उसका साथ देने आई थीं। उसका घर सोंधी-सोंधी मिट्टी की खुशबू से महक रहा था जो खस और गुलाब से कम मोहक न थी। औरतें सुहाने गीत गा रही थीं। बच्चे खुश हो-होकर दौड़ते थे। देवी के चबूतरे पर उसने मिट्टी का हाथी चढ़ाया। सती की मांग में सेंदुर डाला। दीवान साहब को बताशे और हलुआ खिलाया। हनुमानजी को लड्डू से ज्यादा प्रेम है, उन्हें लड्डू चढ़ाए तब गाती बजाती घर को आई और सत्यनारायण की कथा की तैयारियां होने लगीं। मालिन फूल के हार, केले की शाखें और बंदनवारें लाई। कुम्हार नए-नए दीए और हांड़ियां दे गया। बारी हरे ढाक के पत्तल और दोने रख गया। कहार ने आकर मटकों में पानी भरा। बढ़ई ने आकर गोपाल और गौरा के लिए दो नई-नई पीढ़ियां बनाई। नाइन ने आंगन लीपा और चौक बनाई। दरवाजे पर बंदनवारें बंध गईं। आंगन में केले की शाखें गड़ गईं। पंडितजी के लिए सिंहासन सज गया। आपस के कामों की व्यवस्था खुद-ब-खुद अपने निश्चित दायरे पर चलने लगी। यही व्यवस्था संस्कृति है जिसने देहात की जिंदगी को आडंबर की ओर से उदासीन बना रखा है। लेकिन अफसोस है कि अब ऊंच-नीच की बेमतलब और बेहूदा कैदों ने इन आपसी कर्त्तव्यों को सौहार्द-सहयोग के पद से हटाकर उन पर अपमान और नीचता का दाग लगा दिया है।

शाम हुई। पंडित मोटेरामजी ने कंधे पर झोली डाली, हाथ में शंख लिया और खड़ाऊं पर खटपट करते गोपाल के घर आ पहुंचे। आंगन में टाट बिछा हुआ था। गांव के प्रतिष्ठित लोग कथा सुनने के लिए आ बैठे। घंटी बजी, शंख फूंका गया और कथा शुरू हुई। गोपाल भी गाढ़े की चादर ओढ़े एक कोने में दीवार के सहारे बैठा हुआ था। मुखिया, नंबरदार और पटवारी ने मारे हमदर्दी के उससे कहा--सत्यनारायण की महिमा थी कि तुम

पर कोई आंच न आई !

गोपाल ने अंगड़ाई लेकर कहा—सत्यनारायण की महिमा नहीं, यह अंधेर है।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'जमाना', जुलाई, 1913 में प्रकाशित। उर्दू कहानी संग्रह 'प्रेम पचीसी' तथा 'देहात के अफसाने' में संकलित। हिन्दी रूप 'अंधेर' 'गुप्तधन' भाग-1 में संकलित।]

दारू-ए-तल्ख़ (कड़वी सचाई)

यूनिवर्सिटी के इम्तहान ख़त्म हो गये थे और क्वींस कॉलेज का बोर्डिंग हाउस बिल्कुल सुनसान नज़र आता था। सिर्फ़ दो मुत्फ़क्कर (चिन्तामग्न) सूरतें एक कमरे में बैठी हुई दिखायी देती थीं। इनमें बहुत गाढ़ी दोस्ती थी। चार साल की रफ़ाक़त (निकटता) ने दोस्ती की जड़ मजबूत कर दी थी। आज इम्तहान को ख़त्म हुए पूरा एक हफ़्ता गुज़र गया था, मगर जुदाई का ख़ौफ़ इन्हें जदा नहीं होने देता। कई बार इनका असबाब बाँधा गया, रेल का वक़्त देखा गया, कई बार फाटक तक किराये की गाड़ी बुलायी गयी, मगर चलने का वक़्त आया तो दोनों दोस्त गले लिपट गये और रवानगी का इरादा मंसख़ (बदल) हो गया। रात को यह सलाह करके सोये कि अब सुबह को ज़रूर चलेंगे। यह जुदाई की मुसीबत तो एक दिन झेलनी ही है ! आख़िर कब तक टालेंगे, मगर कल आते ही उनके दिलों की वही कैफ़ीयत हो जाती, जो मौत को बुलाने वाले लकड़हारे की होती थी। आख़िर जब खुश-नसीब लक्ष्मीदत्त के वालिद डॉक्टर हरिदत्त ने झाड़कर लिखा, "तुम्हारे इस ताख़ीर (विलम्ब) में मुझे अन्देशा होता है कि तुम वहाँ अपने पैरों में कोई नयी जंजीर ना डाल बैठो।" तो गोविन्दराम को अपना दिल छोटा करना पड़ता। गोविन्दराम के घर से भी ऐसे ही मज़मून का ख़त आया। बाप तो कब के सिधार चुके थे। बीवी ने लिखा, "प्यारे, तुम क्यों नहीं आते ? मुझे यह इत्मिनान दिलाओ कि मुझे सौकन का जलापा तो न सहना पड़ेगा ?"

अब बनारस में रुकना ग़ैरमुमकिन था। तीस अप्रैल को इम्तहान ख़त्म हुआ था। पन्द्रह मई को उनकी रवानगी की साअत (कार्यक्रम) आयी। दोनों के चेहरे अफ़्सुर्दा (दुःखी) थे और गोविन्द की आँखों में आँसू थे, मगर किनारा-ए-सागर की खुश्क बालू की तरह उन्हें सिर्फ़ झाड़ने की देर थी, सतह के नीचे पानी छुपा हुआ था।

लक्ष्मीदत्त अपने मकान पर पहुँचकर अपने वालिद के साथ नैनीताल गया। डॉक्टर हरिदत्त बहुत बारसूख आदमी थे। बेटे को जंगलात के सींगा में एक अच्छी जगह दिला दी और आषाढ़ के महीना में जब कि आसमान बादलों से सियाह और ज़मीन पानी से लबरेज़ थी, उसे तराई में जाना पड़ा। आबादी से सैकड़ों मील दूर, जहाँ महीने में मुश्किल से चार मरतबा ही डाक पहुँच सकती थी। तनख़्वाह माकूल और अख़्तियारात वसीह थे। कुछ दिनों तक तो वह बहुत घबराया और गोविन्दराम की सोहबतों को याद करके वह कई बार रोया। ना कोई सोसाइटी, न कोई मुरब्बी (दोस्त), तमाम दिन एक जंगली मुक़ाम में मक़ीद (कैद) रहना पड़ता, मगर बाला आख़िर कारगुजारी की ख़्वाईश और तरक़्क़ी की उम्मीद और

दुनिया की तरग़ीबात (प्रेरणा), दोस्ती और मुआफ़क़त (अनुकूल बातें) की दिलगुदाज़ ज़ज़्बात (मन को आकर्षित करने वाली भावनाएँ) पर ग़ालिब (अधिकार) आ गयीं। दोस्तों की याद और रफ़ीक़ी की दिलजोइयां फरामोश (विस्तृत) हो गई। दिल में लज़्ज़ते-दर्द का ज़ोक़ बाक़ी ना रहा और दुनियाबी आम अख़राज़ (दैनिक व्यय) की आख़िरी क़िस्त वसूल कर ली।

मगर गोविन्दराम की ज़िन्दगी का रास्ता ऐसा हमवार (समतल) न था। ऐसा कोई सींग़ा (विभाग) न था, जहाँ उसने मुलाज़मत (नौकरी) के लिए दस्ते-सवाल (हाथ फैलाना, प्रार्थना-पत्र) ना फैलाया हो। महीनों उसका यही काम था कि सुबह को अहकाम (अधिकारियों) के बँगलों पर हाज़िरी देता। दिन भर सरकारी दफ्तरों के चक्कर लगाता, शाम को मायूस और मग्मूम (दुःखित) मुँह लपेटकर पड़ा रहता। न कोई बसीला (आधार) था, न कोई सिफारिश। कॉलेज की आला तालीम ने मिजाज़ में खुद्दारी (आत्म-गौरव, स्वाभिमान) का वह अहसास पैदा कर दिया था, जो उसकी मौजूदा हैसियत में ऊँचा था। इसलिए जब उसे रूखे और दिलशिकन अल्फ़ाज़ में इन्कार में जवाब मिलते, या अपनी ज़मीर का खून करके दूसरों की तारीफ़ में रत्बुल्लिसान (प्रशंसक, खुशामद) होना पड़ता तो उसकी रू को बहुत सदमा होता।

कभी-कभी उसे लक्ष्मीदत्त पर रश्क आता, "मैं उससे किस बात में कम था ? मेरी मदद से ही उसने डिग्री पायी, मगर वह तीन सौ रुपये माहवार का अफ़सर है, और मैं तीन रुपये की गुलामी के लिए ठोकरें खाता फिरता हूँ। रसूख़ और अहकाम के मुक़ाबले में लियाक़त की यह गुलामी ?"

एक बार सख़्त मायूसी के आलम में उसने ललिता से इन्हीं अल्फ़ाज में अपनी तक़दीर का शिकवा किया, मगर ललिता ने उसकी तरफ़ कुछ ऐसी निगाहों से देखा कि गोविन्दराम पर घड़ों पानी पड़ गया। मारे नदामत (शर्म) के सर न उठा सका। आख़िर तीन महीने की दौड़-धूप के बाद एक मदरसा में उसे पचास रुपये की जगह मिल गयी।

2

गोविन्दराम ने यह खिलअत (बख़्शीश) बहुत खुशी से मंजूर की। फूला न समाया, गोया कोई दफ़ीना (ख़जाना) हाथ आ गया। तकदीर को सलवातों (गालियों, कोसने) से नजात मिली, मगर बहुत थोड़े दिनों के लिए। खड़े होने की जगह पायी थी, बैठने की फ़िक्र हुई। तमन्नाओं ने पाँव फैलाया, नौजवान आदमी था, दिल में उमंग मौजूद थी, क़ानून का इम्तहान देने का इरादा मुसम्मम (पक्का) हो गया, मगर कलील तनख़्वाह (कम वेतन), उसमें क़ानूनी फ़ीस और किताबों का ख़र्च निकालकर खांगी मुसारफ (घरेलू ख़र्च) के लिए इतनी बचत न होती कि आये-दिन की उलझनों से छूटे। यह क़ानून का जोश यहाँ तक बढ़ा कि कभी-कभी उसमें फ़रायज़े-मनसबी (करणीय कर्त्तव्य) में हर्ज़ वाक़ा होता। एक बार हेडमास्टर साहब बरहम (क्रोधित) भी हुए, मगर गोविन्दराम वक़ालत का ख़्वाब देख रहा था। उसने हेडमास्टर की कुछ परवा न की, बल्कि उनके कमरे में से गाता हुआ निकला और बाहर आकर दूसरे मास्टरों में डींग मारने लगा, "अजी, हमने कौन-सा हमेशा गुलामी करनी है। यहाँ तो चन्द दिनों के और मेहमान हैं, फिर तो इस मदरसे में आग लगा दूँगा।

चार घण्टे का नौकर हूँ, कुछ काम का ठेका नहीं लिया है। तर्जुमा की कॉपियाँ घर पर नहीं ले जा सकता। मदरसा का काम मदरसा में होगा। ख़्वाह, किसी को बुरा लगे या भला। चेखुश मेरा तो कापियाँ देखते ही जी भर गया है।''

मास्टरों ने बढ़ावा दिया, ''शेर है, शेर। इसका नाम जवाँमर्दी (शूरता) है।'' मगर जब कनकइयों में देखा कि हेडमास्टर साहब आ रहे हैं, तो मैदान साफ़ हो गया।

तीन साल गोविन्दराम ने यूँ ही काढ़े, मगर इन्हीं दिनों में उसे सबसे बड़ा जो तजुर्बा हुआ, वह यह था कि दुविधा में न माया मिलती है न राम। वह यकसोई (एकाग्रता), जोश, जवाँमर्दी, जो कामयाबी का राज-मन्त्र है, किसी-न-किसी वजह से मुझमें बक़द्रे जरूरत मौजूद नहीं। आये-दिन ऐसी फ़िक्रें पैदा होती रहती थीं, जो इत्मिनाने क़ल्ब (मन की शान्ति) के मुनाफ़ी (विरोधी) हैं। उसकी आँखों के सामने ऐसी कितनी ही ज़िन्दा मिसालें मौजूद थीं, जिन्होंने सिलसिलाए-मुदर्रस (अध्यापन-कार्य) को वकालत का जीना बनाया था। यह कोई अनहोनी बात न थी। जोश में आकर वह दो-चार दिन ग़ैर-मामूली मेहनत से काम करता मगर फिर जोश कमज़ोर हो जाता। हौसला बुलन्द मज़बूत इरादे के बग़ैर बुढ़ापे का ही इश्क है। जब किताब खोलकर बैठता तो उसका दिमाग़ मुतालहा (अध्ययन) के मुक़ाबले में वकालत की बरकतों के ख़्याल से ज़्यादा खुश होता। यह मकान मसमार (ध्वस्त) कर दूँगा, इस जगह एक आलीशान मकान बनाऊँगा। उसका नक़्शा उसकी निगाहों में खिंचा हुआ था। कई बार वह सचमुच पेंसिल और काग़ज़ लेकर इस मज़ूज़ा (विचारणीय) मकान का नक़्शा बनाने लगता। ऐसा मकान हो कि हर एक मौसम में आराम मिले, मेहमान आयें तो उन्हें आसाइश (आराम) के साथ ठहराया जा सके। इस तरह ख़्याली क़िले बनाने में उसका वक़्त सर्फ़ हो जाता और मदरसा का वक़्त आ पहुँचता।

यह तीन साल तपस्या के दिन थे। ललिता को घर का सब काम-काज अपने ही हाथों करना पड़ता, पर चूड़ियाँ बहुत टूटतीं और उसकी चूड़ियों का हफ़्तावार ख़र्च भी तनख़्वाह से कुछ ज़्यादा ही हो जाता था। गोविन्दराम मुँह-अँधेरे उठता और पानी की कलसी खीच लाता। रोटी खाते-खाते और मोटे कपड़े पहनते, मगर मोटेपन का जिस्म पर उलटा असर होता था। कभी-कभी खासकर त्योहारों के दिन ललिता झुँझला उठती और अपना गुस्सा अपनी क़िस्मत पर उतारती, क्योंकि इससे ज़्यादा कमज़ोर उसे और कोई चीज़ नज़र न आती थी। यूँ ही ललिता काम करती, गाढ़ा पहनती और ज़रा भी मन ना मैला होता, मगर अपनी सुबुकी (अपमान, लज्जा) उससे ज़रा भी बरदाश्त न हो सकती थी। एक बार उसने अपनी पड़ोसिन से कुछ दुपट्टे कर्ज़ लिये, तनख़्वाह का वायदा था, मगर गोविन्दराम ने ज़िद की कि मुझे कानून की चन्द क़िताबें मँगानी ज़रूरी हैं। मुबाहसा (वाद-विवाद) शुरू हुआ और हस्बेमामूल (पूर्ववत्) क़ानून ने हक़ पर फ़तह पायी। ललिता का वायदा झूठा पड़ गया, फिर क्या था ? लड़ाई शुरू हो गयी, मगर खुले मैदान में नहीं। ललिता ने मुक़ाबला मज़्हूल (काहिली) को ज़्यादा कारगर समझा, जो दौरे-जदीद (आधुनिक युग) की बेहतरीन हर्बी-ईजाद (लड़ाई का आविष्कार) है।

तीन दिन घर में आग न जली और पड़ोसियों ने यह फैसला किया कि आजकल

लौज़ियात (बादामों) पर बसर हो रही है। ऐसे भी लोगों के नसीब में इफ़्लास (कंगाली) अपने असली रूप में उबर (उतर) कर आया, मगर फ़राग़त (फुर्सत, खुशहाली) का भेस बदलकर। वह बड़ा जालिम और बेरहम होता है।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'हमदर्द' (उर्दू पत्रिका), 17 जुलाई, 1913 में प्रकाशित। हिन्दी रूप 'दारू-ए-तल्ख' (कड़वी सचाई) शीर्षक से 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित।]

सिर्फ एक आवाज

सुबह का वक्त था। ठाकुर दर्शनसिंह के घर में एक हंगामा बरपा था। आज रात को चंद्रग्रहण होने वाला था। ठाकुर साहब अपनी बूढ़ी ठकुराइन के साथ गंगाजी जाते थे इसीलिए सारा घर उनकी पुरशोर तैयारी में लगा हुआ था। एक बहू उनका फटा हुआ कुर्ता टांक रही थी, दूसरी बहू उनकी पगड़ी लिए सोचती थी, कि कैसे इसकी मरम्मत करूं। दोनों लड़कियां नाश्ता तैयार करने में तल्लीन थीं, जो ज्यादा दिलचस्प काम था और बच्चों ने अपनी आदत के अनुसार एक कुहराम मचा रखा था क्योंकि हर एक आने-जाने के मौके पर उनका रोने का जोश उमंग पर होता था। जाने के वक्त साथ जाने के लिए रोते, आने के वक्त इसलिए रोते कि शीरीनी का बांट-बखरा मनोनुकूल नहीं हुआ। बूढ़ी ठकुराइन बच्चों को फुसलाती थीं और बीच-बीच में अपनी बहुओं को समझाती थीं—देखो खबरदार! जब तक उग्रह न हो जाए, घर से बाहर न निकलना। हंसिया, छुरी, कुल्हाड़ी, इन्हें हाथ से मत छूना। समझाए देती हूं, मानना चाहे न मानना। तुम्हें मेरी बात की कौन परवाह है। मुंह में पानी की बूंद न पड़े। नारायण के घर विपत पड़ी है। जो साधू-भिखारी दरवाजे पर आ जाए उसे फेरना मत। बहुओं ने सुना और नहीं सुना। वे मना रही थीं कि किसी तरह यह यहां से टलें। फागुन का महीना है, गाने को तरस गए। आज खूब गाना-बजाना होगा।

ठाकुर साहब थे तो बूढ़े, लेकिन बुढ़ापे का असर दिल तक नहीं पहुचा था। उन्हें इस बात का गर्व था कि कोई ग्रहण गंगा-स्नान के बगैर नहीं छूटा। उनका ज्ञान आश्चर्यजनक था। सिर्फ पत्रों को देखकर महीनों पहले सूर्यग्रहण और दूसरे पर्वों के दिन बता देते थे। इसलिए गांव वालों की निगाह में उनकी इज्जत अगर पंडितों से ज्यादा न थी तो कम भी न थी। जवानी में कुछ दिनों फौज में नौकरी भी की थी। उसकी गर्मी अब तक बाकी थी, मजाल न थी कि कोई उनकी तरफ सीधी आंख से देख सके। सम्मन लाने वाले एक चपरासी को ऐसी व्यावहारिक चेतावनी दी थी जिसका उदाहरण आस-पास के दस-पांच गांव में भी नहीं मिल सकता। हिम्मत और हौसले के कामों में अब भी आगे-आगे रहते थे। किसी काम को मुश्किल बता देना उनकी हिम्मत को प्रेरित कर देना था। जहां सबकी जबानें बंद हो जाएं वहां वे शेरों की तरह गरजते थे। जब कभी गांव में दारोगाजी तशरीफ लाते तो ठाकुर साहब ही का दिल-गुर्दा था कि उनसे आंखें मिलाकर आमने-सामने बात कर सकें। ज्ञान की बातों को लेकर छिड़ने वाली बहसों के मैदान में भी उनके कारनामे कुछ कम शानदार न थे। झगड़ा पंडित हमेशा उनसे मुंह छिपाया करते। गरज ठाकुर साहब का

स्वभावगत गर्व और आत्म-विश्वास उन्हें हर बरात में दूल्हा बनने पर मजबूर कर देता था। हां, कमजोरी इतनी थी कि अपना आल्हा भी आप ही गा लेते और मजे ले-लेकर क्योंकि रचना को रचनाकार ही खूब बयान करता है !

2

जब दोपहर होते-होते ठाकुर और ठकुराइन गांव से चले तो सैकड़ों आदमी उनके साथ थे और पक्की सड़क पर पहुंचे, तो यात्रियों का ऐसा तांता लगा हुआ था कि जैसे कोई बाजार है। ऐसे-ऐसे बूढ़े लाठियां टेकते या डोलियों पर सवार चले जाते थे जिन्हें तकलीफ देने की यमराज ने भी कोई जरूरत न समझी थी। अंधे दूसरों की लकड़ी के सहारे कदम बढ़ाए आते थे। कुछ आदमियों ने अपनी बूढ़ी माताओं को पीठ पर लाद लिया था। किसी के सर पर कपड़ों की पोटली, किसी के कंधे पर लोटा-डोर, किसी के कंधे पर कांवर। कितने ही आदमियों ने पैरों पर चिथड़े लपेट लिए थे, जूते कहां से लाएं। मगर धार्मिक उत्साह का यह वरदान था कि मन किसी का मैला न था। सबके चेहरे खिले हुए, हंसते-हंसते बातें करते चले जा रहे थे। कुछ औरतें गा रही थीं–

चांद सूरज दूनो लोक के मालिक
एक दिना उनहूं पर बनती
हम जानी हमहीं पर बनती

ऐसा मालूम होता था, यह आदमियों की एक नदी थी, जो सैकड़ों छोटे-छोटे नालों और धारों को लेती हुई समुद्र से मिलने के लिए जा रही थी।

जब यह लोग गंगा के किनारे पहुंचे तो तीसरे पहर का वक्त था लेकिन मीलों तक कहीं तिल रखने की जगह न थी। इस शानदार दृश्य से दिलों पर ऐसा रोब और भक्ति का ऐसा भाव छा जाता था कि बरबस 'गंगा माता की जय' की सदायें बुलंद हो जाती थीं। लोगों के विश्वास उसी नदी की तरह उमड़े हुए थे और वह नदी ! वह लहराता हुआ नीला मैदान ! वह प्यासों की प्यास बुझाने वाली ! वह निराशों की आशा! वह वरदानों की देवी ! वह पवित्रता का स्रोत ! वह मुट्ठी भर खाक को आश्रय देने वाली गंगा हंसती-मुस्कराती थी ओर उछलती थी। क्या इसलिए कि आज वह अपनी चौतरफा इज्जत पर फूली न समाती थी या इसलिए कि वह उछल-उछलकर अपने प्रेमियों से गले मिलना चाहती थी जो उसके दर्शनों के लिए मंजिलें तय करके आए थे। और उसके परिधान की प्रशंसा किस जबान से हो, जिस पर सूरज ने चमकते हुए तारे टांके थे और जिसके किनारों को उसकी किरणों ने रंग-बिरंगे, सुंदर और गतिशील फूलों से सजाया था।

अभी ग्रहण लगने में घंटों की देर थी। लोग इधर-उधर टहल रहे थे। कहीं मदारियों के खेल थे, कहीं चूरन वाले की लच्छेदार बातों के चमत्कार। कुछ लोग मेढ़ों की कुश्ती देखने के लिए जमा थे। ठाकुर साहब भी अपने कुछ भक्तों के साथ सैर को निकले। उनकी हिम्मत ने गवारा न किया कि इन बाजारू दिलचस्पियों में शरीक हों। यकायक उन्हें एक बड़ा-सा शामियाना तना हुआ नजर आया, जहां ज्यादातर पढ़े-लिखे लोगों की भीड़ थी। ठाकुर साहब ने अपने साथियों को एक किनारे खड़ा कर दिया और खुद बड़े गर्व से

ताकते हुए फर्श पर जा बैठे क्योंकि उन्हें विश्वास था कि यहां उन पर देहातियों की ईर्ष्या-दृष्टि पड़ेगी और संभव है कुछ ऐसी बारीक बातें भी मालूम हो जाएं जो उनके भक्तों को उनकी सर्वज्ञता का विश्वास दिलाने में काम दे सकें।

यह एक नैतिक अनुष्ठान था। दो-ढाई हजार आदमी बैठे हुए एक मधुरभाषी वक्ता का भाषण सुन रहे थे। फैशनेबुल लोग ज्यादातर अगली पंक्तियों में बैठे हुए थे जिन्हें कनबतियों का इससे अच्छा मौका नहीं मिल सकता था। कितने ही अच्छे कपड़े पहने हुए लोग इसलिए दुःखी नजर आते थे कि उनकी बगल में निम्न श्रेणी के लोग बैठे हुए थे। भाषण दिलचस्प मालूम पड़ता था। वजन ज्यादा था और चटखारे कम, इसलिए तालियां नहीं बजती थीं।

3

वक्ता ने अपने भाषण में कहा—

मेरे प्यारे दोस्तो, यह हमारा और आपका कर्त्तव्य है। इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण, ज्यादा परिणामदायक और कौम के लिए ज्यादा शुभ और कोई कर्त्तव्य नहीं है। हम मानते हैं कि उनके आचार-व्यवहार की दशा अत्यंत करुण है। मगर विश्वास मानिए यह सब हमारी करनी है। उनकी इस लज्जाजनक सांस्कृतिक स्थिति का जिम्मेदार हमारे सिवा और कौन हो सकता है ? अब इसके सिवा इसका और कोई इलाज नहीं है कि हम उस घृणा और उपेक्षा को, जो उनकी तरफ से हमारे दिलों में बैठी हुई है, धोएं और खूब मलकर धोएं। यह आसान काम नहीं है। जो कालिख कई हजार वर्षों से जमी हुई है, वह आसानी से नहीं मिट सकती। जिन लोगों की छाया से हम बचते आए हैं, जिन्हें हमने जानवरों से भी जलील समझ रखा है, उनसे गले मिलने में हमको त्याग और साहस और परमार्थ से काम लेना पड़ेगा। उस त्याग से जो कृष्ण में था, उस हिम्मत से जो राम में थी, उस परमार्थ से जो चैतन्य और गोविन्द में था। मैं यह नहीं कहता कि आप आज ही उनसे शादी के रिश्ते जोड़ें या उनके साथ बैठकर खाएं-पिएं। मगर क्या यह भी मुमकिन नहीं है कि आप उनके साथ सामान्य सहानुभूति, सामान्य मनुष्यता, सामान्य सदाचार से पेश आएं ? क्या यह सचमुच असंभव बात है ? आपने कभी ईसाई मिशनरियों को देखा है ? आह, जब मैं एक उच्चकोटि की, सुंदर, सुकुमार, गौरवर्ण लेडी को अपनी गोद में एक काला-कलूटा बच्चा लिए हुए देखता हूं जिसके बदन पर फोड़े हैं, खून है और गंदगी है—वह सुंदरी उस बच्चे को चूमती है, प्यार करती है, छाती से लगाती है—तो मेरा जी चाहता है कि उस देवी के कदमों पर सिर रख दूं। अपनी नीचता, अपना कमीनापन, अपनी झूठी बड़ाई, अपने हृदय की संकीर्णता मुझे कभी इतनी सफाई से नजर नहीं आती। इन देवियों के लिए जिंदगी में क्या-क्या संपदाएं नहीं थीं, खुशियां बांहें पसारे हुए उनके इंतजार में खड़ी थीं। उनके लिए दौलत की सब सुख-सुविधाएं थीं। प्रेम के आकर्षण थे। अपने आत्मीयों और स्वजनों की सहानुभूतियां थीं और अपनी प्यारी मातृभूमि का आकर्षण था। लेकिन इन देवियों ने उन तमाम नेमतों, उन सब सांसारिक संपदाओं को सेवा, सच्ची निःस्वार्थ सेवा पर बलिदान कर दिया है। वे ऐसी बड़ी कुर्बानियां कर सकती हैं, तो हम क्या इतना भी नहीं कर सकते कि अपने अछूत भाइयों से हमदर्दी का सलूक कर सकें ? क्या हम सचमुच ऐसे पस्त-हिम्मत,

ऐसे बांदे, ऐसे बेरहम हैं ? इसे खूब समझ लीजिए कि आप उनके साथ कोई रियायत, कोई मेहरबानी नहीं कर रहे हैं। यह उन पर कोई एहसान नहीं है। यह आप ही के लिए जिंदगी और मौत का सवाल है। इसलिए मेरे भाइयो और दोस्तो, आइए इस मौके पर शाम के वक्त पवित्र गंगा नदी के किनारे काशी के पवित्र स्थान में हम मजबूत दिल से प्रतीज्ञा करें कि आज से हम अछूतों के साथ भाईचारे का सलूक करेंगे, उनके तीज-त्योहार में शरीक होंगे और अपने त्योहारों में उन्हें बुलायेंगे। उनके गले मिलेंगे और उन्हें गले लगाएंगे। उनकी खुशियों में खुश और उनके दर्दों में दर्दमंद होंगे, और चाहे कुछ ही क्यों न हो जाए, चाहे तानों-तिश्नों और जिल्लत का सामना ही क्यों न करना पड़े हम इस प्रतिज्ञा पर कायम रहेंगे। आपमें सैकड़ों जोशीले नौजवान हैं जो बात के धनी और इरादे के मजबूत हैं। कौन यह प्रतिज्ञा करता है ? कौन अपने नैतिक साहस का परिचय देता है ? वह अपनी जगह पर खड़ा हो जाए और ललकारकर कहे कि मैं यह प्रतीज्ञा करता हूं और मरते दम तक इस पर दृढ़ता से कायम रहूंगा।

4

सूरज गंगा की गोद में जा बैठा था और मां प्रेम और गर्व से मतवाली जोश से उमड़ी हुई, रंग में केसर को शरमाती और चमक में सोने को लजाती थी। चारों तरफ एक रोबीली खामोशी छाई थी। उस सन्नाटे में सन्यासी की गर्मी और जोश से भरी हुई दा.ते गंगा की लहरों और गगनचुंबी मंदिरों में समा गई। गंगा एक गंभीर मां की निराशा के साथ हंसी और देवताओं ने अफसोस से सिर झुका लिया, मगर मुंह से कुछ न बोले।

संन्यासी की जोशीली पुकार फिजा में जाकर गायब हो गई, मगर उस मजमे में किसी आदमी के दिल तक न पहुंची। वहां कौम पर जान देने वालों की कमी न थी, स्टेजों पर कौमी तमाशे खेलने वाले कॉलेजों के होनहार नौजवान, कौम के नाम पर मिटने वाले पत्रकार, कौमी संस्थाओं के मेंबर, सेक्रेटरी और प्रेसिडेंट, राम और कृष्ण के सामने सिर झुकाने वाले सेठ और साहूकार, कौमी कॉलेजों के ऊंचे होसले वाले प्रोफेसर और अखबारों में कौमी तरक्कियों की खबरें पढ़कर खुश होने वाले दफ्तरों के कर्मचारी हजारों की तादाद में मौजूद थे। आंखों पर सुनहरी ऐनक लगाए, मोटे-मोटे वकीलों की एक पूरी फौज जमा थी मगर संन्यासी के उस गर्म भाषण से एक दिल भी न पिघला क्योंकि वह पत्थर के दिल थे जिनमें दर्द और घुलावट न थी, जिनमें सदिच्छा थी मगर कार्य-शक्ति न थी, जिनमें बच्चों की-सी इच्छा थी मगर मर्दों का-सा इरादा न था।

सारी मजलिस पर सन्नाटा छाया हुआ था। हर आदमी सिर झुकाए फिक्र में डूबा हुआ नजर आता था। शर्मिंदगी किसी को सर उठाने न देती थी और आंखें झेंप के मारे जमीन में गड़ी हुई थीं। यह वही सर हैं जो कौमी चर्चों पर उछल पड़ते थे, यह वही आंखें हैं जो किसी वक्त राष्ट्रीय गौरव की लाली से भर जाती थीं। मगर कथनी और करनी में आदि और अंत का अंतर है। एक व्यक्ति को भी खड़े होने का साहस न हुआ। कैंची की तरह चलने वाली जबानें भी ऐसे महान् उत्तरदायित्व के भय से बंद हो गई।

5

ठाकुर दर्शनसिंह अपनी जगह पर बैठे हुए इस दृश्य को बहुत गौर और दिलचस्पी से देख रहे थे। वे अपने धार्मिक विश्वासों में चाहे कट्टर हों या न हों, लेकिन सांस्कृतिक मामलों में वे कभी अगुआई करने के दोषी नहीं हुए थे। इस पेचीदा और डरावने रास्ते में उन्हें अपनी बुद्धि और विवेक पर भरोसा नहीं होता था। यहां तर्क और युक्ति को भी उनसे हार माननी पड़ती थी। इस मैदान में वे अपने घर की स्त्रियों की इच्छा पूरी करना ही अपना कर्त्तव्य समझते थे और चाहे उन्हें खुद किसी मामले में कुछ एतराज भी हो लेकिन यह औरतों का मामला था और इसमें वे हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे क्योंकि इससे परिवार की व्यवस्था में हलचल और गड़बड़ी पैदा हो जाने की जबर्दस्त आशंका रहती थी। अगर किसी वक्त उनके कुछ जोशीले नौजवान दोस्त इस कमजोरी पर उन्हें आड़े हाथों लेते तो वे बड़ी बुद्धिमत्ता से कहा करते थे—भई, यह औरतों के मामले हैं, उनका जैसा दिल चाहता है करती हैं, मैं बोलने वाला कौन हूं। गरज यहां उनकी फौजी गर्म-मिजाजी उनका साथ छोड़ देती थी। यह उनके लिए तिलिस्म की घाटी थी जहां होश-हवास बिगड़ जाते थे और अंधे अनुकरण का पैर बंधी हुई गर्दन पर सवार हो जाता था।

लेकिन यह ललकार सुनकर वे अपने को काबू में न रख सके। यही वह मौका था जब उनकी हिम्मतें आसमान पर जा पहुंचती थीं। जिस बीड़े को कोई न उठाए उसे उठाना उनका काम था। वर्जनाओं से उनको आत्मिक प्रेम था। ऐसे मौके पर वे नतीजे और मसलहत से बगावत कर जाते थे और उनके इस हौसले में यश के लोभ को उतना दखल नहीं था जितना उनके नैसर्गिक स्वभाव को। वर्ना यह असंभव था कि एक ऐसे जलसे में जहां ज्ञान और सभ्यता की धूमधाम थी, जहां सोने की ऐनकों से रोशनी और तरह-तरह के परिधानों से दीप्त चिंतन की किरणे निकल रही थीं, जहां कपड़े-लत्ते की नफासत से रोब और मोटापे से प्रतिष्ठा की झलक आती थी, वहां एक देहाती किसान को जबान खोलने का हौसला होता। ठाकुर ने इस दृश्य को गौर और दिलचस्पी से देखा। उसके पहलू में गुदगुदी-सी हुई। जिंदादिली का जोश रगों में दौड़ा। वह अपनी जगह से उठा और मर्दाना लहजे में ललकारकर बोला—मैं यह प्रतिज्ञा करता हूं और मरते दम तक उस पर कायम रहूंगा।

6

इतना सुनना था कि दो हजार आंखें अचंभे से उसकी तरफ ताकने लगीं। सुभानअल्लाह, क्या हुलिया था—गाढ़े की ढीली मिर्जई, घुटनों तक चढ़ी हुई धोती, सर पर एक भारी-सा उलझा हुआ साफा, कंधे पर चुनौटी और तंबाकू का वजनी बटुआ, मगर चेहरे से गंभीरता और दृढ़ता स्पष्ट थी। गर्व आंखों के तंग घेरे से बाहर निकल पड़ता था। उसके दिल में अब इस शानदार मजमे की इज्जत बाकी न रही थी। वह पुराने वक्तों का आदमी था जो अगर पत्थर को पूजता था तो उसी पत्थर से डरता भी था, जिसके लिए एकादशी का व्रत केवल स्वास्थ्य-रक्षा की एक युक्ति और गंगा केवल स्वास्थ्यप्रद पानी की एक धारा न थी। उसके विश्वासों में जागृति न हो लेकिन दुविधा नहीं थी। यानी कि उसकी कथनी और करनी में

अंतर न था और उसकी बुनियाद कुछ अनुकरण और देखादेखी पर थी मगर अधिकांशतः भय पर, जो ज्ञान के आलोक के बाद वृत्तियों के संस्कार की सबसे बड़ी शक्ति है। गेरुए बाने का आदर और भक्ति करना उसके धर्म और विश्वास का एक अंग था। संन्यास में उसकी आत्मा को अपना अनुचर बनाने की एक सजीव शक्ति छिपी हुई थी और उस ताकत ने अपना असर दिखाया। लेकिन मजमे की इस हैरत ने बहुत जल्द मजाक की सूरत अख्तियार की। मतलब-भरी निगाहें आपस में कहने लगीं—आखिर गंवार ही तो ठहरा ! देहाती है, ऐसे भाषण कभी काहे को सुने होंगे, बस उछल पड़ा। उथले गड्ढे में इतना पानी भी न समा सका ! कौन नहीं जानता कि ऐसे भाषणों का उद्देश्य मनोरंजन होता है ! दस आदमी आए, इकट्ठे बैठे, कुछ सुना, कुछ गप-शप मारी और अपने-अपने घर लौटे, न यह कि कौल-करार करने बैठें, अमल करने के लिए कसमें खाएं!

मगर निराश संन्यासी सोच रहा था—अफसोस, जिस मुल्क की रोशनी में इतना अंधेरा है, वहां कभी रोशनी का उदय होना मुश्किल नजर आता है। इस रोशनी पर, इस अंधेरी, मुर्दा और बेजान रोशनी पर मैं जहालत को, अज्ञान को ज्यादा ऊंची जगह देता हूं। अज्ञान में सफाई है और हिम्मत है उसके दिल और जबान में पर्दा नहीं होता, न कथनी और करनी में विरोध। क्या यह अफसोस की बात नहीं है कि ज्ञान अज्ञान के आगे सिर झुकाए? इस सारे मजमे में सिर्फ एक आदमी है, जिसके पहलू में मर्दो का दिल है और गो उसे बहुत सजग होने का दावा नहीं लेकिन मैं उसके अज्ञान पर ऐसी हजारों जागृतियों को कुर्बान कर सकता हूं। तब वह प्लेटफार्म से नीचे उतरे और दर्शनसिंह को गले से लगाकर कहा—ईश्वर तुम्हें प्रतिज्ञा पर कायम रखे।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'जमाना', अगस्त-सितम्बर, 1913 में प्रकाशित। उर्दू कहानी संग्रह 'प्रेम पचीसी' में संकलित। हिन्दी रूप 'सिर्फ एक आवाज' 'गुप्तधन' भाग-1 में संकलित।]

बांका जमींदार

ठाकुर प्रद्युम्नसिंह एक प्रतिष्ठित वकील थे और अपने हौसले और हिम्मत के लिए सारे शहर में मशहूर। उनके दोस्त अक्सर कहा करते कि अदालत की इजलास में उनके मर्दाना कमाल ज्यादा साफ तरीके पर जाहिर हुआ करते हैं। इसी की बरकत थी कि बावजूद इसके कि उन्हें शायद ही कभी किसी मामले में सुर्खरूई हासिल होती थी, उनके मुवक्किलों की भक्ति-भावना में जर्रा भर भी फर्क नहीं आता था। इंसाफ की कुर्सी पर बैठने वाले बड़े लोगों की निडर आजादी पर किसी प्रकार का संदेह करना पाप ही क्यों हो, मगर शहर के जानकार लोग ऐलानिया कहते थे कि ठाकुर साहब जब किसी मामले में जिद पकड़ लेते हैं तो उनका बदला हुआ तेवर और तमतमाया हुआ चेहरा इंसाफ को भी अपने वश में कर लेता है। एक से ज्यादा मौकों पर उनके जीवट और जिगरे ने वे चमत्कार कर दिखाए थे जहां कि इंसाफ और कानून ने जवाब दे दिया। इसके साथ ही ठाकुर साहब मर्दाना गुणों के सच्चे जौहरी थे। अगर मुवक्किल को कुश्ती में कुछ पैठ हो तो यह जरूरी नहीं था कि

वह उनकी सेवाएं प्राप्त करने के लिए रुपया-पैसा दे। इसीलिए उनके यहां शहर के पहलवानों और फेकैतों का हमेशा जमघट रहता था और यही वह जबर्दस्त प्रभावशाली और व्यावहारिक कानूनी बारीकी थी जिसकी काट करने में इंसाफ को भी आगा-पीछा सोचना पड़ता। वे गर्व और सच्चे गर्व की दिल से कदर करते थे। उनके बेतकल्लुफ घर की ड्योढ़ियां बहुत ऊंची थीं। वहां झुकने की जरूरत न थी। इंसान खूब सिर उठाकर जा सकता था। यह एक विश्वस्त कहानी है कि एक बार उन्होंने किसी मुकदमे को बावजूद बहुत विनती और आग्रह के हाथ में लेने से इंकार किया। मुवक्किल कोई अक्खड़ देहाती था। उसने जब आरजू-मिन्नत से काम निकलते न देखा तो हिम्मत से काम लिया। वकील साहब कुर्सी से नीचे गिर पड़े और बिफरे हुए देहाती को सीने से लगा लिया।

2

धन और धरती के बीच आदिकाल से एक आकर्षण है। धरती में साधारण गुरुत्वाकर्षण के अलावा एक खास ताकत होती है जो हमेशा धन को अपनी तरफ खींचती है। सूद और तमस्सुक और व्यापार, यह दौलत की बीच की मंजिलें हैं, जमीन उसकी आखिरी मंजिल है। ठाकुर प्रद्युम्नसिंह की निगाहें बहुत अर्से से एक बहुत उपजाऊ मौजे पर लगी हुई थीं लेकिन बैंक का एकाउंट कभी हौसले को कदम नहीं बढ़ाने देता था। यहां तक कि एक दफा उसी मौजे का जमींदार एक कत्ल के मामले में पकड़ा गया। उसने सिर्फ रस्मो रिवाज के माफिक एक असामी को दिन भर धूप और जेठ की जलती हुई धूप में खड़ा रखा था लेकिन अगर सूरज की गर्मी या जिस्म की कमजोरी या प्यास की तेजी उसकी जानलेवा बन जाए तो इसमें जमींदार की क्या खता थी। यह शहर के वकीलों की ज्यादती थी कि कोई उसकी हिमायत पर आमादा न हुआ या मुमकिन है जमींदार के हाथ की तंगी को भी इसमें कुछ दखल हो। बहरहाल, उसने चारों तरफ से ठोकरें खाकर ठाकुर साहब की शरण ली। मुकदमा निहायत कमजोर था। पुलिस ने अपनी पूरी ताकत से धावा किया था और उसकी कुमुक के लिए शासन और अधिकार के ताजे से ताजे रिसाले तैयार थे। ठाकुर साहब अनुभवी सपेरों की तरह सांप के बिल में हाथ नहीं डालते थे। लेकिन इस मौके पर उन्हें रूखी-सूखी मसलहत के मुकाबले में अपनी मुरादों का पल्ला झुकता हुआ नजर आया। जमींदार को इत्मीनान दिलाया और वकालतनामा दाखिल कर दिया और फिर इस तरह जी-जान से मुकदमे की पैरवी की, कुछ इस तरह जान लड़ाई कि मैदान से जीत का डंका बजाते हुए निकले। जनता की जबान इस जीत का सेहरा उनकी कानूनी पैठ के सर नहीं, उनके मर्दाना गुणों के सर रखती है क्योंकि उन दिनों वकील साहब नजीरों और दफाओं की हिम्मत तोड़ पेचीदगियों में उलझने के बजाय दंगल की उत्साहवर्धक दिलचस्पियों में ज्यादा लगे रहते थे लेकिन यह बात जरा भी यकीन करने के काबिल नहीं मालूम होती। ज्यादा जानकार लोग कहते हैं कि अनार के बमगोलों और सेब और अंगूर की गोलियों ने पुलिस के इस पुरशोर हमले को तोड़कर बिखेर दिया। गरज कि मैदान हमारे ठाकुर साहब के हाथ रहा। जमींदार की जान बची। मौत के मुंह से निकल आया। उनके पैरों पर गिर पड़ा और बोला—ठाकुर साहब, मैं इस काबिल तो नहीं कि आपकी खिदमत कर सकूं। ईश्वर ने

आपको बहुत कुछ दिया है लेकिन कृष्ण भगवान् ने गरीब सुदामा के सूखे चावल खुशी से कबूल किए थे। मेरे पास बुजुर्गों की यादगार एक छोटा-सा वीरान मौजा है, उसे आपकी भेंट करता हूं। आपके लायक तो नहीं लेकिन मेरी खातिर से इसे कबूल कीजिए। मैं आपका जस कभी न भूलूंगा। वकील साहब भड़क उठे। दो-चार बार निस्पृह वैरागियों की तरह इंकार करने के बाद इस भेंट को कबूल कर लिया, मुंहमांगी मुराद मिली।

3

इस मौजे के लोग बेहद सरकश और झगड़ालू थे, जिन्हें इस बात का गर्व था कि कभी कोई जमींदार उन्हें बस में नहीं कर सका। लेकिन जब उन्होंने अपनी बागडोर प्रद्युम्नसिंह के हाथों में जाते देखी तो चौकड़ियां भूल गए, एक बदलगाम घोड़े की तरह सवार को कनखियों से देखा, कनौतियां खड़ी कीं, कुछ हिनहिनाए और तब गर्दनें झुका दीं। समझ गए कि यह जिगर का मजबूत और आसन का पक्का शहसवार है।

आषाढ़ का महीना था। किसान गहने और बर्तन बेच-बेचकर बैलों की तलाश में दर-ब-दर फिरते थे। गांवों की बूढ़ी बनियाइन नवेली दुल्हिन बनी हुई थी और फाका करने वाला कुम्हार बारात का दूल्हा था। मजदूर मौके के बादशाह बने हुए थे। टपकती हुई छतें उनकी कृपादृष्टि की राह देख रही थीं। घास से ढके हुए खेत उनके ममतापूर्ण हाथों के मुहताज। जिसे चाहते थे बसाते थे, जिसे चाहते उजाड़ते थे। आम और जामुन के पेड़ों पर आठों पहर निशानेबाज मनचले लड़कों का धावा रहता था। बूढ़े गर्दनों में झोलियां लटकाए पहर रात से टपके की खोज में घूमते नजर आते थे जो बुढ़ापे के बावजूद भोजन और जाप से ज्यादा दिलचस्प और मजेदार काम था। नाले पुरशोर, नदियां अथाह, चारों तरफ हरियाली और खुशहाली। इन्हीं दिनों ठाकुर साहब मौत की तरह, जिसके आने की पहले से कोई सूचना नहीं होती, गांव में आए। एक सजी हुई बरात थी, हाथी और घोड़े और साज-सामान, लठैतों का एक रिसाला-सा था। गांव ने यह तूमतड़ाक और आन-बान देखा तो रहे-सहे होश उड़ गए। घोड़े खेतों में ऐंड़ने लगे और गुंडे गलियों में। शाम के वक्त ठाकुर साहब ने अपने असामियों को बुलाया और बुलंद आवाज में बोले—मैंने सुना है कि तुम लोग बड़े सरकश हो और मेरी सरकशी का हाल तुमको मालूम ही है। अब ईंट और पत्थर का सामना है। बोलो, क्या मंजूर है?

एक बूढ़े किसान ने बेद के पेड़ की तरह कांपते हुए जवाब दिया—सरकार, आप हमारे राजा हैं। हम आपसे ऐंठकर कहां जाएंगे।

ठाकुर साहब तेवर बदलकर बोले—तो तुम लोग सब-के-सब कल सुबह तक तीन साल का पेशगी लगान दाखिल कर दो और खूब ध्यान देकर सुन लो कि मैं हुक्म को दुहराना नहीं जानता वर्ना मैं गांव में हल चलवा दूंगा और घरों को खेत बना दूंगा।

सारे गांव में कोहराम मच गया। तीन साल का पेशगी लगान और इतनी जल्दी जुटाना असंभव था। रात इसी हैस-बैस में कटी। अभी तक आरजू-मिन्नत के बिजली जैसे असर की उम्मीद बाकी थी। सुबह बड़ी इंतजार के बाद आई तो प्रलय बनकर आई। एक तरफ तो जोर-जबर्दस्ती और अन्याय-अत्याचार का बाजार गर्म था, दूसरी तरफ रोती हुई

आंखों, सर्द आहों और चीख-पुकार का, जिन्हें सुनने वाला कोई न था। गरीब किसान अपनी-अपनी पोटलियां लादे, बेकस अंदाज से ताकते, आंखों में याचना भरे, बीवी-बच्चों को साथ लिए रोते-बिलखते किसी अज्ञात देश को चले जाते थे। शाम हुई तो गांव उजड़ गया था।

4

यह खबर बहुत जल्द चारों तरफ फैल गई। लोगों को ठाकुर साहब के इंसान होने पर संदेह होने लगा। गांव वीरान पड़ा हुआ था। कौन उसे आबाद करे। किसके बच्चे उसकी गलियों में खेलें। किसकी औरतें कुओं पर पानी भरें ! राह चलते मुसाफिर तबाही का यह दृश्य आंखों से देखते और अफसोस करते। नहीं मालूम उस वीराने देश में पड़े हुए गरीबों पर क्या गुजरी। आह, जो मेहनत की कमाई खाते थे और सर उठाकर चलते थे, अब दूसरों की गुलामी कर रहे हैं।

इस तरह एक पूरा साल गुजर गया। तब गांव के नसीब जागे। जमीन उपजाऊ थी। मकान मौजूद। धीरे-धीरे जुल्म की यह दास्तान फीकी पड़ गई। मनचले किसानों की लोभ-दृष्टि उस पर पड़ने लगी। बला से जमींदार जालिम है, बेरहम है, सख्तियां करता है, हम उसे मना लेंगे। तीन साल की पेशगी लगान का क्या जिक्र वह जैसे खुश होगा, खुश करेंगे। उसकी गालियों को दुआ समझेंगे, उसके जूते अपने सर आंखों पर रखेंगे। वह राजा हैं, हम उनके चाकर हैं। जिंदगी की कशमकश और लड़ाई में आत्मसम्मान को निबाहना कैसा मुश्किल काम है ! दूसरा आषाढ़ आया तो वह गांव फिर बगीचा बना हुआ था। बच्चे फिर अपने दरवाजों पर घरौंदे बनाने लगे, मर्दों के बुलंद आवाज के गाने खेतों में सुनाई दिए व औरतों के सुहाने गीत चक्कियों पर। जिंदगी के मोहक दृश्य दिखाई देने लगे।

साल भर और गुजरा। जब रबी की दूसरी फसल आई तो सुनहरी बालों को खेतों में लहराते देखकर किसानों के दिल लहराने लगते थे। साल भर की परती जमीन ने सोना उगल दिया था। औरतें खुश थीं कि अबकी नए-नए गहने बनवायेंगे, मर्द खुश थे कि अच्छे-अच्छे बैल मोल लेंगे और दारोगाजी की खुशी का तो अंत ही न था। ठाकुर साहब ने यह खुशखबरी सुनी और देहात की सैर को चले। वही शान-शौकत, वही लठैतों का रिसाला, वही गुंडों की फौज ! गांव वालों ने उनके आदर-सत्कार की तैयारियां करनी शुरू कीं। मोटे-ताजे बकरों का एक पूरा गल्ला चौपाल के दरवाजे पर बांधा। लकड़ी के अंबार लगा दिए, दूध के हौज भर दिए। ठाकुर साहब गांव की मेंड़ पर पहुंचे तो पूरे एक सौ आदमी उनकी अगवानी के लिए हाथ बांधे खड़े थे। लेकिन पहली चीज जिसकी फर्माइश हुई वह लेमनेड और बर्फ था। असामियों के हाथों के तोते उड़ गए। यह पानी की बोतल इस वक्त वहां अमृत के दामों बिक सकती थी। मगर बेचारे देहाती अमीरों के चोंचले क्या जानें। मुजरिमों की तरह सिर झुकाए भौंचक खड़े थे। चेहरों पर झेंप और शर्म थी। दिलों में धड़कन और भय। ईश्वर ! बात बिगड़ गई है, अब तुम्हीं संभालो।

बर्फ की ठंडक न मिली तो ठाकुर साहब की प्यास की आग और भी तेज हुई, गुस्सा भड़क उठा, कड़ककर बोले—मैं शैतान नहीं हूं कि बकरों के खून से प्यास बुझाऊं, मुझे ठंडा

बर्फ चाहिए और यह प्यास तुम्हारे और तुम्हारी औरतों के आंसुओं से ही बुझेगी। एहसानफरामोश, नीच, मैंने तुम्हें जमीन दी, मकान दिए और हैसियत दी और इसके बदले में तुम ये दे रहे हो कि मैं खड़ा पानी को तरसता हूं ! तुम इस काबिल नहीं हो कि तुम्हारे साथ कोई रियायत की जाए। कल शाम तक मैं तुममें से किसी आदमी की सूरत इस गांव में न देखूं वर्ना प्रलय हो जाएगी। तुम जानते हो कि मुझे अपना हुक्म दुहराने की आदत नहीं है। रात तुम्हारी है, जो कुछ ले जा सको, ले जाओ। लेकिन शाम को मैं किसी की मनहूस सूरत न देखूं। यह रोना और चीखना फिजूल है, मेरा दिल पत्थर का है और कलेजा लोहे का, आंसुओं से नहीं पसीजता।

और ऐसा ही हुआ। दूसरी रात को सारे गांव में कोई दीया जलाने वाला तक न रहा। फूलता-फलता गांव भूत का डेरा बन गया।

5

बहुत दिनों तक यह घटना आसपास के मनचले किस्सागोयों के लिए दिलचस्पियों का खजाना बनी रही। एक साहब ने उस पर अपनी कलम भी चलाई। बेचारे ठाकुर साहब ऐसे बदनाम हुए कि घर से निकलना मुश्किल हो गया। बहुत कोशिश की कि गांव आबाद हो जाए लेकिन किसकी जान भारी थी कि इस अंधेर नगरी में कदम रखता जहां मोटापे की सजा फांसी थी। कुछ मजदूर-पेशा लोग किस्मत का जुआ खेलने आए मगर कुछ महीनों से ज्यादा न जम सके। उजड़ा हुआ गांव खोया हुआ एतबार है जो बहुत मुश्किल से जमता है। आखिर जब कोई बस न चला तो ठाकुर साहब ने मजबूर होकर आराजी माफ करने का आम ऐलान कर दिया लेकिन इस रियायत ने रही-सही साख भी खो दी। इस तरह तीन साल गुजर जाने के बाद एक रोज वहां बंजारों का काफिला आया। शाम हो गई थी और पूरब तरफ से अंधेरे की लहर बढ़ती चली आती थी। बंजारों ने देखा तो सारा गांव वीरान पड़ा हुआ है, जहां आदमियों के घरों में गिद्ध और गीदड़ रहते थे। इस तिलिस्म का भेद समझ में न आया। मकान मौजूद हैं, जमीन उपजाऊ है, हरियाली से लहराते हुए खेत हैं और इंसान का नाम नहीं ! कोई और गांव पास न था। वहीं पड़ाव डाल दिया। जब सुबह हुई, बैलों के गलों की घंटियों ने फिर अपना रजत-संगीत अलापना शुरू किया और काफिला गांव से कुछ दूर निकल गया तो एक चरवाहे ने जोर- जबर्दस्ती की यह लंबी कहानी उन्हें सुनाई। दुनिया भर में घूमने-फिरने ने उन्हें मुश्किलों का आदी बना दिया था। आपस में कुछ मशविरा किया और फैसला हो गया। ठाकुर साहब की ड्योढ़ी पर जा पहुंचे और नजराने दाखिल कर दिए। गांव फिर आबाद हुआ।

यह बंजारे बला के चीमड़, लोहे की-सी हिम्मत और इरादे के लोग थे जिनके आते ही गांव में लक्ष्मी का राज हो गया। फिर घरों में से धुएं के बादल उठे, कोल्हाड़ों ने फिर धुएं और भाप की चादरें पहनीं, तुलसी के चबूतरे पर फिर से चिराग जले। रात को रंगीन-तबियत नौजवानों की अलापें सुनाई देने लगीं। चरागाहों में फिर मवेशियों के गल्ले दिखाई दिए और किसी पेड़ के नीचे बैठे हुए चरवाहे की बांसुरी की मद्धिम और रसीली आवाज दर्द और असर में डूबी हुई इस प्राकृतिक दृश्य में जादू का आकर्षण पैदा करने लगी।

भादों का महीना था। कपास के फूलों की सुर्ख और सफेद चिकनाई, तिल की ऊदी बहार और सन का शोख पीलापन अपने रूप का जलवा दिखाता था। किसानों की मड़ैयों और छप्परों पर भी फल-फूल की रंगीनी दिखाई देती थी। उस पर पानी की हल्की-हल्की फुहारें प्रकृति के सौंदर्य के लिए सिंगार करने वाली का काम दे रही थीं। जिस तरह साधुओं के दिल सत्य की ज्योति से भरे होते हैं, उसी तरह सागर और तालाब साफ-शफ्फाक पानी से भरे थे। शायद राजा इन्द्र कैलाश की तरावट भरी ऊंचाइयों से उतरकर अब मैदानों में आने वाले थे। इसीलिए प्रकृति ने सौंदर्य और सिद्धियों और आशाओं के भी भंडार खोल दिए थे। वकील साहब को भी सैर की तमन्ना ने गुदगुदाया। हमेशा की तरह अपने रईसाना ठाट-बाट के साथ गांव में आ पहुंचे। देखा तो संतोष और निश्चिंतता के वरदान चारों तरफ स्पष्ट थे।

6

गांव वालों ने उनके शुभागमन का समाचार सुना, सलाम को हाजिर हुए। वकील साहब ने उन्हें अच्छे-अच्छे कपड़े पहने, स्वाभिमान के साथ कदम मिलाते हुए देखा। उनसे बहुत मुस्कराकर मिले। फसल का हालचाल पूछा। बूढ़े हरदास ने एक ऐसे लहजे में जिससे पूरी जिम्मेदारी और चौधरपे की शान टपकती थी, जवाब दिया—हुजूर के कदमों की बरकत से सब चैन है। किसी तरह की तकलीफ नहीं। आपकी दी हुई नेमत खाते हैं और आपका जस गाते हैं। हमारे राजा और सरकार जो कुछ हैं, आप हैं और आपके लिए जान तक हाजिर है।

ठाकुर साहब ने तेवर बदलकर कहा—मैं अपनी खुशामद सुनने का आदी नहीं हूं।

बूढ़े हरदास के माथे पर बल पड़े, अभिमान को चोट लगी। बोला—मुझे भी खुशामद करने की आदत नहीं है।

ठाकुर साहब ने ऐंठकर जवाब दिया—तुम्हें रईसों से बात करने की तमीज नहीं। ताकत की तरह तुम्हारी अक्ल भी बुढ़ापे की भेंट चढ़ गई।

हरदास ने अपने साथियों की तरफ देखा। गुस्से की गर्मी से सबकी आंखें फैली हुई और धीरज की सर्दी से माथे सिकुड़े हुए थे। बोला—हम आपकी रैयत हैं लेकिन हमको अपनी आबरू प्यारी है और चाहे अपने जमींदार को अपना सिर दे दें, आबरू नहीं दे सकते।

हरदास के कई मनचले साथियों ने बुलंद आवाज में ताईद की—आबरू जान के पीछे है।

ठाकुर साहब के गुस्से की आग भड़क उठी और चेहरा लाल हो गया। और जोर से बोले—तुम लोग जबान संभालकर बातें करो वर्ना जिस तरह गले में झोलियां लटकाए आए थे उसी तरह निकाल दिए जाओगे। मैं प्रद्युम्नसिंह हूं जिसने तुम जैसे कितने ही हेकड़ों को इसी जगह कुचलवा डाला है। यह कहकर उन्होंने अपने रिसाले के सरदार अर्जुनसिंह को बुलाकर कहा—ठाकुर, अब इन चींटियों के पर निकल आए हैं, कल शाम तक इन लोगों से मेरा गांव साफ हो जाए।

हरदास खड़ा हो गया। गुस्सा अब चिंगारी बनकर आंखों से निकल रहा था। बोला—हमने इस गांव को छोड़ने के लिए नहीं बसाया है। जब तक जिएंगे इसी गांव में रहेंगे, यहीं पैदा होंगे और यहीं मरेंगे। आप बड़े आदमी हैं और बड़ों की समझ भी बड़ी होती है। हम लोग अक्खड़ गंवार हैं। नाहक गरीबों की जान के पीछे न पड़िए। खून-खराबा हो जाएगा। लेकिन आपको यही मंजूर है तो हमारी तरफ से आपके सिपाहियों को चुनौती है, जब चाहे दिल के अरमान निकाल लें।

इतना कहकर ठाकुर साहब को सलाम किया और चल दिया। उसके साथी भी गर्व के साथ अकड़ते हुए चले। अर्जुनसिंह ने उनके तेवर देखे। समझ गया कि यह लोहे के चने हैं लेकिन शोहदों का सरदार था, कुछ अपने नाम की लाज थी। दूसरे दिन शाम के वक्त जब रात और दिन में मुठभेड़ हो रही थी, इन दोनों जमातों का सामना हुआ। फिर वह धौल-धप्पा हुआ कि जमीन थर्रा गई। जबानों ने मुंह के अंदर वह मार्के दिखाए कि सूरज डर के मारे पश्चिम में जा छिपा। तब लाठियों ने सिर उठाया लेकिन इसके पहले कि वह डॉक्टर साहब की दुआ और शुक्रिये की मुस्तहक हों, अर्जुनसिंह ने समझदारी से काम लिया। ताहम उनके चंद आदमियों के लिए गुड़ और हल्दी पीने का सामान हो चुका था।

वकील साहब ने अपनी फौज की यह बुरी हालत देखी, किसी के कपड़े फटे हुए, किसी के जिस्म पर गर्द जमी हुई, कोई हांफते-हांफते बेदम (खून बहुत कम नजर आया क्योंकि यह एक अनमोल चीज है और इसे डंडों की मार से बचा लिया गया) तो उन्होंने अर्जुनसिंह की पीठ ठोंकी और उसकी बहादुरी और जांबाजी की खूब तारीफ की। रात को उनके सामने लड्डू और इमरतियों की ऐसी वर्षा हुई कि यह सब गर्द-गुबार धुल गया। सुबह को इस रिसाले ने टर्र-टर्र घर की राह ली और कसम खा गए कि अब भूलकर भी इस गांव का रुख न करेंगे।

तब ठाकुर साहब ने गांव के आदमियों को चौपाल में तलब किया। उनके इशारे की देर थी। सब लोग इकट्ठे हो गए। अख्तियार और हुकूमत अगर घमंड की मसनद से उतर आए तो दुश्मनों को भी दोस्त बना सकती है। जब सब आदमी आ गए तो ठाकुर साहब एक-एक करके उनसे बगलगीर हुए और बोले—मैं ईश्वर का बहुत ऋणी हूं कि मुझे इस गांव के लिए जिन आदमियों की तलाश थी, वह लोग मिल गए। आपको मालूम है कि यह गांव कई बार उजड़ा और कई बार बसा। उसका कारण यही था कि वे लोग मेरी कसौटी पर पूरे न उतरते थे। मैं उनका दुश्मन नहीं था लेकिन मेरी दिली आरजू यह थी कि इस गांव में वे लोग आबाद हों जो जुल्म का मर्दों की तरह सामना करें, जो अपने अधिकारों और रिआयतों की मर्दों की तरह हिफाजत करें, जो हुकूमत के गुलाम न हों, जो रोब और अख्तियार की तेज निगाह देखकर बच्चों की तरह डर से सहम न जाएं। मुझे इत्मीनान है कि बहुत नुकसान और शर्मिंदगी और बदनामी के बाद मेरी तमन्नाएं पूरी हो गईं। मुझे इत्मीनान है कि आप उल्टी हवाओं और ऊंची-ऊंची उठने वाली लहरों का मुकाबला कामयाबी से करेंगे, मैं आज इस गांव से अपना हाथ खींचता हूं। आज से यह आपकी मिल्कियत है। आप ही इसके जमींदार और मालिक हैं। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि आप फूलें-फलें और सरसब्ज हों।

इन शब्दों ने दिलों पर जादू का काम किया। लोग स्वामिभक्ति के आवेश से मस्त हो-होकर ठाकुर साहब के पैरों से लिपट गए और कहने लगे—हम आपके कदमों से जीते-जी जुदा न होंगे। आपका-सा कद्रदान और रिआया-परवर बुजुर्ग हम कहां पायेंगे। वीरों की भक्ति और सहानुभूति, वफादारी और एहसान का एक बड़ा दर्दनाक और असर पैदा करने वाला दृश्य आंखों के सामने पेश हो गया। लेकिन ठाकुर साहब अपने उदार निश्चय पर दृढ़ रहे और गो पचास साल से ज्यादा गुजर गए हैं लेकिन उन्हीं बंजारों के वारिस अभी तक मौजा साहबगंज के माफीदार हैं। औरतें अभी तक ठाकुर प्रद्युम्नसिंह की पूजा और मन्नतें करती हैं और गो अब इस मौजे के कई नौजवान दौलत और हुकूमत की बुलंदी पर पहुंच गए हैं लेकिन बूढ़े और अक्खड़ हरदास के नाम पर अब भी गर्व करते हैं। और भादों सुदी एकादशी के दिन अब भी उसी मुबारक फतेह की यादगार में जश्न मनाए जाते हैं।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'जमाना', अक्टूबर, 1913 में प्रकाशित। हिन्दी रूप इसी शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-1 में सकलित।]

नमक का दारोगा

जब नमक का नया विभाग बना और ईश्वरप्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया तो लोग चोरी-छिपे इसका व्यापार करने लगे। अनेक प्रकार के छल-प्रपंचों का सूत्रपात हुआ, कोई घूस से काम निकालता था, कोई चालाकी से। अधिकारियों के पौ-बारह थे। पटवारीगिरी का सर्वसम्मानित पद छोड़-छोड़ कर लोग इस विभाग की बरकंदाजी करते थे। इसके दारोगा पद के लिए तो वकीलों का भी जी ललचाता था। यह वह समय था जब अँगरेजी शिक्षा और ईसाई मत को लोग एक ही वस्तु समझते थे। फारसी का प्राबल्य था। प्रेम की कथाएँ और शृंगार रस के काव्य पढ़ कर फारसी दाँ लोग सर्वोच्च पदों पर नियुक्त हो जाया करते थे। मुंशी वंशीधर भी जुलेखा की विरहकथा समाप्त करके मजनूं और फरहाद के प्रेम-वृत्तांत को नल और नील की लड़ाई और अमेरिका के आविष्कार से अधिक महत्त्व की बातें समझते हुए रोजगार की खोज में निकले। उनके पिता एक अनुभवी पुरुष थे। समझाने लगे, बेटा ! घर की दुर्दशा देख रहे हो। ऋण के बोझ से दबे हुए हैं। लड़कियाँ हैं, वह घास-फूस की तरह बढ़ती चली जाती हैं। मैं कगारे पर का वृक्ष हो रहा हूँ, न मालूम कब गिर पड़ूं ! अब तुम्हीं घर के मालिक मुख्तार हो। नौकरी में ओहदे की ओर ध्यान मत देना, यह तो पीर का मजार है। निगाह चढ़ावे और चादर पर रखनी चाहिए। ऐसा काम ढूँढ़ना जहाँ कुछ ऊपरी आय हो। मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चाँद है, जो एक दिन दिखायी देता है और घटते-घटते लुप्त हो जाता है। ऊपरी आय बहता हुआ स्रोत है जिससे सदैव प्यास बुझती है। वेतन मनुष्य देता है, इसी से उसमें वृद्धि नहीं होती। ऊपरी आमदनी ईश्वर देता है, इसी से उसकी बरकत होती है, तुम स्वयं विद्वान् हो, तुम्हें क्या समझाऊं। इस विषय में विवेक की बड़ी आवश्यकता है। मनुष्य को

देखो, उसकी आवश्यकता को देखो और अवसर देखो, उसके उपरांत जो उचित समझो, करो। गरजवाले आदमी के साथ कठोरता करने में लाभ ही लाभ है। लेकिन बेगरज को दाँव पर पाना जरा कठिन है। इन बातों को निगाह में बाँध लो। यह मेरी जन्म भर की कमाई है।

इस उपदेश के बाद पिता जी ने आर्शीर्वाद दिया। वंशीधर आज्ञाकारी पुत्र थे। ये बातें ध्यान से सुनीं और तब घर से चल खड़े हुए। इस विस्तृत संसार में उनके लिए धैर्य अपना मित्र, बुद्धि अपनी पथप्रदर्शक और आत्मावलम्बन ही अपना सहायक था। लेकिन अच्छे शकुन से चले थे, जाते ही जाते नमक विभाग के दारोगा पद पर प्रतिष्ठित हो गये। वेतन अच्छा और ऊपरी आय का तो ठिकाना ही न था। वृद्ध मुंशी जी को सुख-संवाद मिला तो फूले न समाये। महाजन कुछ नरम पड़े, कलवार की आशालता लहलहाई। पड़ोसियों के हृदय में शूल उठने लगे।

2

जाड़े के दिन थे और रात का समय। नमक के सिपाही, चौकीदार नशे में मस्त थे। मुंशी वंशीधर को यहाँ आये अभी छह महीनों से अधिक न हुए थे, लेकिन इस थोड़े समय में ही उन्होंने अपनी कार्यकुशलता और उत्तम आचार से अफसरों को मोहित कर लिया था। अफसर लोग उन पर बहुत विश्वास करने लगे। नमक के दफ्तर से एक मील पूर्व की ओर जमुना बहती थी, उस पर नावों का एक पुल बना हुआ था। दारोगा जी किवाड़ बंद किये मीठी नींद से सो रहे थे। अचानक आँख खुली तो नदी के प्रवाह की जगह गाड़ियों की गड़गड़ाहट तथा मल्लाहों का कोलाहल सुनायी दिया। उठ बैठे। इतनी रात गये गाड़ियाँ क्यों नदी के पार जाती हैं ? अवश्य कुछ न कुछ गोलमाल है। तर्क ने भ्रम को पुष्ट किया। वरदी पहनी, तमंचा जेब में रखा और बात की बात में घोड़ा बढ़ाये हुए पुल पर आ पहुँचे। गाड़ियों की एक लम्बी कतार पुल के पार जाती देखी। डाँट कर पूछा, किसकी गाड़ियाँ हैं।

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। आदमियों में कुछ कानाफूसी हुई तब आगे वाले ने कहा—पंडित अलोपीदीन की।

"कौन पंडित अलोपीदीन ?"

"दातागंज के।"

मुंशी वंशीधर चौंके। पंडित अलोपीदीन इस इलाके के सबसे प्रतिष्ठित जमींदार थे। लाखों रुपये का लेन-देन करते थे, इधर छोटे से बड़े कौन ऐसे थे जो उनके ऋणी न हों। व्यापार भी बड़ा लम्बा-चौड़ा था। बड़े चलते-पुरजे आदमी थे। अँगरेज अफसर उनके इलाके में शिकार खेलने आते और उनके मेहमान होते। बारहों मास सदाव्रत चलता था।

मुंशीजी ने पूछा, गाड़ियाँ कहाँ जायंगी ? उत्तर मिला, कानपुर। लेकिन इस प्रश्न पर कि इनमें क्या है, सन्नाटा छा गया। दारोगा साहब का संदेह और भी बढ़ा। कुछ देर तक उत्तर की बाट देख कर वह जोर से बोले, क्या गूँगे हो गये हो ? हम पूछते हैं, इनमें क्या लदा है ?

जब इस बार भी कोई उत्तर न मिला तो उन्होंने घोड़े को एक गाड़ी से मिला कर बोरे

को टटोला ! भ्रम दूर हो गया। यह नमक के ढेले थे।

3

पंडित अलोपीदीन अपने सजीले रथ पर सवार, कुछ सोते, कुछ जागते चले आते थे। अचानक कई गाड़ीवानों ने घबराये हुए आ कर जगाया और बोले—महाराज ! दारोगा ने गाड़ियाँ रोक दी हैं और घाट पर खड़े आपको बुलाते हैं।

पंडित अलोपीदीन का लक्ष्मी जी पर अखंड विश्वास था। वह कहा करते थे कि संसार का तो कहना ही क्या, स्वर्ग में भी लक्ष्मी का ही राज्य है। उनका यह कहना यथार्थ ही था। न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं, इन्हें वह जैसे चाहती है नचाती है। लेटे ही लेटे गर्व से बोले, चलो हम आते हैं। यह कह कर पंडित जी ने बड़ी निश्चिंतता से पान के बीड़े लगा कर खाये। फिर लिहाफ ओढ़े हुए दारोगा के पास आ कर बोले, बाबू जी आशीर्वाद ! कहिए, हमसे ऐसा कौन-सा अपराध हुआ कि गाड़ियाँ रोक दी गयीं। हम ब्राह्मणों पर तो आपकी कृपा दृष्टि रहनी चाहिए।

वंशीधर रुखाई से बोले, सरकारी हुक्म !

पं. अलोपीदीन ने हँस कर कहा, हम सरकारी हुक्म को नहीं जानते और न सरकार को। हमारे सरकार तो आप ही हैं। हमारा और आपका तो घर का मामला है, हम कभी आपसे बाहर हो सकते हैं ? आपने व्यर्थ का कष्ट उठाया। यह हो नहीं सकता कि इधर से जायें और इस घाट के देवता को भेंट न चढ़ावें। मैं तो आपकी सेवा में स्वयं ही आ रहा था। वंशीधर पर ऐश्वर्य की मोहिनी वंशी का कुछ प्रभाव न पड़ा। ईमानदारी की नयी उमंग थी। कड़क कर बोले, हम उन नमकहरामों में नहीं हैं जो कौड़ियों पर अपना ईमान बेचते फिरते हैं। आप इस समय हिरासत में हैं। आपका कायदे के अनुसार चालान होगा। बस, मुझे अधिक बातों की फुर्सत नहीं है। जमादार बदलूसिंह ! तुम इन्हें हिरासत में ले चलो, मैं हुक्म देता हूँ।

पं. अलोपीदीन स्तम्भित हो गये। गाड़ीवानों में हलचल मच गयी। पंडित जी के जीवन में कदाचित् यह पहला ही अवसर था कि पंडित को ऐसी कठोर बातें सुननी पड़ीं। बदलूसिंह आगे बढ़ा, किन्तु रोब के मारे यह साहस न हुआ कि उनका हाथ पकड़ सके। पंडित जी ने धर्म को धन का ऐसा निरादर करते कभी न देखा था। विचार किया कि यह अभी उद्दंड लड़का है। माया-मोह के जाल में अभी नहीं पड़ा। अल्हड़ है, झिझकता है। बहुत दीन-भाव से बोले, बाबू साहब, ऐसा न कीजिए, हम मिट जायेंगे। इज्जत धूल में मिल जायगी। हमारा अपमान करने से आपके हाथ क्या आयेगा। हम किसी तरह आपसे बाहर थोड़े ही हैं !

वंशीधर ने कठोर स्वर में कहा, हम ऐसी बातें नहीं सुनना चाहते।

अलोपीदीन ने जिस सहारे को चट्टान समझ रखा था, वह पैरों के नीचे खिसकता हुआ मालूम हुआ। स्वाभिमान और धन ऐश्वर्य को कड़ी चोट लगी। किन्तु अभी तक धन की सांख्यिक शक्ति का पूरा भरोसा था। अपने मुख्तार से बोले, लाला जी, एक हजार के नोट बाबू साहब को भेंट करो, आप इस समय भूखे सिंह हो रहे हैं।

वंशीधर ने गरम होकर कहा, एक हजार नहीं, एक लाख भी मुझे सच्चे मार्ग से नहीं हटा सकते।

धर्म की इस बुद्धिहीन दृढ़ता और देव-दुर्लभ त्याग पर मन बहुत झुँझलाया। अब दोनों शक्तियों में संग्राम होने लगा। धन ने उछल-उछल कर आक्रमण करने शुरू किये। एक से पाँच, पाँच से दस, दस से पंद्रह और पंद्रह से बीस हजार तक नौबत पहुँची, किन्तु धर्म अलौकिक वीरता के साथ इस बहुसंख्यक सेना के सम्मुख अकेला पर्वत की भाँति अटल, अविचलित खड़ा था।

अलोपीदीन निराश होकर बोले, अब इससे अधिक मेरा साहस नहीं। आगे आपको अधिकार है।

वंशीधर ने अपने जमादार को ललकारा। बदलूसिंह मन में दारोगा जी को गालियाँ देता हुआ पंडित अलोपीदीन की ओर बढ़ा। पंडित जी घबड़ा कर दो-तीन कदम पीछे हट गये। अत्यंत दीनता से बोले, बाबू साहब, ईश्वर के लिए मुझ पर दया कीजिए, मैं पच्चीस हजार पर निपटारा करने को तैयार हूँ।

"असम्भव बात है।"

"तीस हजार पर ?"

"किसी तरह भी सम्भव नहीं।"

"क्या चालीस हजार पर भी नहीं ?"

"चालीस हजार नहीं, चालीस लाख पर भी असम्भव है।"

"बदलूसिंह, इस आदमी को अभी हिरासत में ले लो। अब मैं एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता।"

धर्म ने धन को पैरों तले कुचल डाला। अलोपीदीन ने एक हृष्ट-पुष्ट मनुष्य को हथकड़ियाँ लिए हुए अपनी तरफ आते देखा। चारों ओर निराश और कातर दृष्टि से देखने लगे। इसके बाद मूर्छित हो कर गिर पड़े।

।

दुनिया सोती थी पर दुनिया की जीभ जागती थी। सवेरे देखिए तो बालक-वृद्ध सब के मुँह से यही बात सुनायी देती थी। जिसे देखिए वही पंडित जी के इस व्यवहार पर टीका-टिप्पणी कर रहा था, निंदा की बौछारें हो रही थीं, मानो संसार से अब पापी का पाप कट गया। पानी को दूध के नाम से बेचने वाला ग्वाला, कल्पित रोजनामचे भरने वाले अधिकारी वर्ग, रेल में बिना टिकट सफर करने वाले बाबू लोग, जाली दस्तावेज बनानेवाले सेठ और साहूकार यह सब के सब देवताओं की भाँति गर्दनें चला रहे थे। जब दूसरे दिन पंडित अलोपीदीन अभियुक्त हो कर कांस्टेबलों के साथ, हाथों में हथकड़ियाँ, हृदय में ग्लानि और क्षोभ भरे, लज्जा से गर्दन झुकाये अदालत की तरफ चले तो सारे शहर में हलचल मच गयी। मेलों में कदाचित् आँखें इतनी व्यग्र न होती होंगी। भीड़ के मारे छत और दीवार में कोई भेद न रहा।

किंतु अदालत में पहुँचने की देर थी। पंडित अलोपीदीन इस अगाध वन के सिंह थे। अधिकारी वर्ग उनके भक्त, अमले उनके सेवक, वकील-मुख्तार उनके आज्ञा पालक और

अरदली, चपरासी तथा चौकीदार तो उनके बिना मोल के गुलाम थे। उन्हें देखते ही लोग चारों तरफ से दौड़े। सभी लोग विस्मित हो रहे थे। इसलिए नहीं कि अलोपीदीन ने क्यों यह कर्म किया बल्कि इसलिए कि वह कानून के पजे में कैसे आये। ऐसा मनुष्य जिसके पास असाध्य साधन करने वाला धन और अनन्य वाचालता हो, वह क्यों कानून के पंजे में आये। प्रत्येक मनुष्य उनसे सहानुभूति प्रकट करता था। बड़ी तत्परता से इस आक्रमण को रोकने के निमित्त वकीलों की एक सेना तैयार की गयी। न्याय के मैदान में धर्म और धन में युद्ध ठन गया। वंशीधर चुपचाप खड़े थे। उनके पास सत्य के सिवा न कोई बल था, न स्पष्ट भाषण के अतिरिक्त कोई शस्त्र। गवाह थे, किंतु लोभ से डावाँडोल।

यहाँ तक कि मुंशी जी को न्याय भी अपनी ओर से कुछ खिंचा हुआ दीख पड़ता था। वह न्याय का दरबार था, परन्तु उसके कर्मचारियों पर पक्षपात का नशा छाया हुआ था। किंतु पक्षपात और न्याय का क्या मेल ? जहाँ पक्षपात हो, वहाँ न्याय की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मुकदमा शीघ्र ही समाप्त हो गया। डिप्टी मजिस्ट्रेट ने अपनी तजवीज में लिखा, पंडित अलोपीदीन के विरुद्ध दिये गये प्रमाण निर्मूल और भ्रमात्मक हैं। वह एक बड़े भारी आदमी हैं। यह बात कल्पना के बाहर है कि उन्होंने थोड़े लाभ के लिए ऐसा दुस्साहस किया हो। यद्यपि नमक के दारोगा मुंशी वंशीधर का अधिक दोष नहीं, लेकिन यह बड़े खेद की बात है कि उनकी उद्दंडता और विचारहीनता के कारण एक भलेमानुस को कष्ट झेलना पड़ा। हम प्रसन्न हैं कि वह अपने काम से सजग और सचेत रहता है, किंतु नमक से मुकदमे की बढ़ी हुई नमकहलाली ने उसके विवेक और बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया। भविष्य में उसे होशियार रहना चाहिए।

वकीलों ने यह फैसला सुना और उछल पड़े। पंडित अलोपीदीन मुस्कुराते हुए बाहर निकले। स्वजन बांधवों ने रुपयों क़ी लूट की। उदारता का सागर उमड़ पड़ा। उसकी लहरों ने अदालत की नींव तक हिला दी। जब वंशीधर बाहर निकले तो चारों ओर से उनके ऊपर व्यंगबाणों की वर्षा होने लगी। चपरासियों ने झुक-झुक कर सलाम किये। किंतु इस समय एक-एक कटुवाक्य, एक-एक संकेत उनकी गर्वाग्नि को प्रज्वलित कर रहा था। कदाचित् इस मुकदमे में सफल हो कर वह इस तरह अकड़ते हुए न चलते। आज उन्हें संसार का एक खेदजनक विचित्र अनुभव हुआ। न्याय और विद्वत्ता, लम्बी-चौड़ी उपाधियाँ, बड़ी-बड़ी दाढ़ियाँ और ढीले चोंगे एक भी सच्चे आदर के पात्र नहीं हैं।

वंशीधर ने धन से बैर मोल लिया था, उसका मूल्य चुकाना अनिवार्य था। कठिनता से एक सप्ताह बीता होगा कि मुअत्तली का परवाना आ पहुँचा। कार्यपरायणता का दंड मिला। बेचारे भग्न हृदय, शोक और खेद से व्यथित घर को चले। बूढ़े मुंशी जी तो पहले ही से कुड़-बुड़ा रहे थे कि चलते-चलते इस लड़के को समझाया था, लेकिन इसने एक न सुनी। सब मनमानी करता है। हम तो कलवार और कसाई के तगादे सहें, बुढ़ापे में भगत बन कर बैठें और वहाँ बस वही सूखी तनख्वाह! हमने भी तो नौकरी की है और कोई ओहदेदार नहीं थे, लेकिन काम किया, दिल खोल कर किया और आप ईमानदार बनने चले हैं। घर में चाहे अँधेरा हो, मस्जिद में अवश्य दीया जलायेंगे। खेद ऐसी समझ पर ! पढ़ना-लिखना सब अकारथ गया। इसके थोड़े ही दिनों बाद, जब मुंशी वंशीधर इस दुरावस्था में घर पहुँचे और बूढ़े पिता जी ने समाचार सुना तो सिर पीट

लिया। बोले, जी चाहता है कि तुम्हारा और अपना सिर फोड़ लूँ। बहुत देर तक पछता-पछता कर हाथ मलते रहे। क्रोध में कुछ कठोर बातें भी कहीं और यदि वंशीधर वहाँ से टल न जाते जो अवश्य ही यह क्रोध विकट रूप धारण करता। वृद्धा माता को भी दुःख हुआ। जगन्नाथ और रामेश्वर की यात्रा की कामनाएँ मिट्टी में मिल गयीं। पत्नी ने तो कई दिन तक सीधे मुँह से बात भी नहीं की।

इस प्रकार एक सप्ताह बीत गया। संध्या का समय था। बूढ़े मुंशी जी बैठे राम-नाम की माला जप रहे थे। इसी समय उनके द्वार पर सजा हुआ रथ आ कर रुका। हरे और गुलाबी परदे, पछाहियें बैलों की जोड़ी, उनकी गर्दनों में नीले धागे, सींगे पीतल से जड़ी हुई। कई नौकर लाठियाँ कंधों पर रखे साथ थे। मुंशी जी अगवानी को दौड़े। देखा तो पंडित अलोपीदीन हैं। झुक कर दंडवत की और लल्लो-चप्पो की बातें करने लगे, हमारा भाग्य उदय हुआ जो आपके चरण इस द्वार पर आये। आप हमारे पूज्य देवता हैं, आपको कौन-सा मुँह दिखावें, मुँह में तो कालिख लगी हुई है। किन्तु क्या करें, लड़का अभागा कपूत है, नहीं तो आपसे क्यों मुँह छिपाना पड़ता ? ईश्वर निस्संतान चाहे रखे पर ऐसी संतान न दे।

अलोपीदीन ने कहा–नहीं भाई साहब, ऐसा न कहिए।

मुंशी जी ने चकित हो कर कहा–ऐसी संतान को और क्या कहूं।

अलोपीदीन ने वात्सल्यपूर्ण स्वर में कहा–कुलतिलक और पुरुषों की कीर्ति उज्ज्वल करने वाले संसार में ऐसे कितने धर्मपरायण मनुष्य हैं जो धर्म पर अपना सब कुछ अर्पण कर सकें ?

पं. अलोपीदीन ने वंशीधर से कहा–दारोगा जी, इसे खुशामद न समझिए, खुशामद करने के लिए मुझे इतना कष्ट उठाने की जरूरत न थी। उस रात को आपने अपने अधिकार-बल से मुझे अपनी हिरासत में लिया था, किंतु आज मैं स्वेच्छा से आपकी हिरासत में आया हूँ। मैंने हजारों रईस और अमीर देखे, हजारों उच्च पदाधिकारियों से काम पड़ा, किन्तु मुझे परास्त किया तो आपने। मैंने सबको अपना और अपने धन का गुलाम बना कर छोड़ दिया। मुझे आज्ञा दीजिए कि आपसे कुछ विनय करूँ।

वंशीधर ने अलोपीदीन को आते देखा तो उठ कर सत्कार किया; किंतु स्वाभिमान सहित। समझ गये कि यह महाशय मुझे लज्जित करने और जलाने आये हैं। क्षमा-प्रार्थना की चेष्टा नहीं की; वरन् उन्हें अपने पिता की यह ठकुरसुहाती की बात असह्य-सी प्रतीत हुई। पर पंडित जी की बातें सुनीं तो मन की मैल मिट गयी। पंडित जी की ओर उड़ती हुई दृष्टि से देखा। सद्भाव झलक रहा था। गर्व ने लज्जा के सामने सिर झुका दिया। शर्माते हुए बोले--यह आपकी उदारता है जो ऐसा कहते हैं। मुझसे जो कुछ अविनय हुई है, उसे क्षमा कीजिए। मैं धर्म की बेड़ी में जकड़ा हुआ था, नहीं तो वैसे मैं आपका दास हूँ। जो आज्ञा होगी, वह मेरे सिर-माथे पर।

अलोपीदीन ने विनीत भाव से कहा–नदी तट पर आपने मेरी प्रार्थना नहीं स्वीकार की थी, किंतु आज स्वीकार करनी पड़ेगी।

वंशीधर बोले–मैं किस योग्य हूँ, किंतु जो कुछ सेवा मुझसे हो सकती है उसमें त्रुटि न होगी।

अलोपीदीन ने एक स्टाम्प लगा हुआ पत्र निकाला और उसे वंशीधर के सामने रख

कर बोले—इस पद को स्वीकार कीजिए और अपने हस्ताक्षर कर दीजिए। मैं ब्राह्मण हूँ, जब तक यह सवाल पूरा न कीजिएगा, द्वार से न हटूँगा।

मुंशी वंशीधर ने उस कागज को पढ़ा तो कृतज्ञता से आँखों में आँसू भर आये। पंडित अलोपीदीन ने उनको अपनी सारी जायदाद का स्थायी मैनेजर नियत किया था। छह हजार वार्षिक वेतन के अतिरिक्त रोजाना खर्च अलग, सवारी के लिए घोड़ा, रहने को बंगला, नौकर-चाकर मुफ्त। कम्पित स्वर में बोले—पंडित जी, मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि आपकी उदारता की प्रशंसा कर सकूँ। किंतु ऐसे उच्च पद के योग्य नहीं हूँ।

अलोपीदीन हँस कर बोले—मुझे इस समय एक अयोग्य मनुष्य की ही जरूरत है।

वंशीधर ने गम्भीर भाव से कहा—यों मैं आपका दास हूँ। आप जैसे कीर्तिवान, सज्जन पुरुष की सेवा करना मेरे लिए सौभाग्य की बात है। किंतु मुझमें न विद्या है, न बुद्धि, न वह स्वभाव जो इन त्रुटियों की पूर्ति कर देता है। ऐसे महान् कार्य के लिए एक बड़े मर्मज्ञ अनुभवी मनुष्य की जरूरत है।

अलोपीदीन ने कलमदान से कलम निकाली और उसे वंशीधर के हाथ में दे कर बोले, न मुझे विद्वता की चाह है, न अनुभव की, न मर्मज्ञता की, न कार्य-कुशलता की। इन गुणों के महत्त्व का परिचय खूब पा चुका हूँ। अब सौभाग्य और सुअवसर ने मुझे वह मोती दे दिया है जिसके सामने योग्यता और विद्वता की चमक फीकी पड़ जाती है। यह कलम लीजिए, अधिक सोच-विचार न कीजिए, दस्तखत कर दीजिए। परमात्मा से यही प्रार्थना है कि वह आपको सदैव वही नदी के किनारे वाला, बेमुरौवत, उद्दंड, कठोर परन्तु धर्मनिष्ट दारोगा बनाये रखे।

वंशीधर की आंखें डबडबा आयीं। हृदय के संकुचित पात्र में इतना एहसान न समा सका। एक बार फिर पंडित जी की ओर भक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से देखा और कांपते हुए हाथ से मैनेजरी पर हस्ताक्षर कर दिये।

अलोपीदीन ने प्रफुल्लित हो कर उन्हें गले लगा लिया।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। प्रकाशन तिथि निश्चित नहीं है। 'कलम का सिपाही' (अमृतराय) के अनुसार 'नमक का दारोगा' का प्रकाशन 1914 के पूर्व हो चुका था। दयानारायण निगम को लिखे गए प्रेमचंद के पत्र दिनांक 10 दिसम्बर, 1913 से स्पष्ट है कि कहानी तब तक छप चुकी थी। बाद में अक्तूबर, 1914 में प्रकाशित 'प्रेम पचीसी', उर्दू कहानी-संग्रह, में संकलित की गई। हिन्दी रूप 'मानसरोवर' भाग-8 में संकलित।]

अनाथ लड़की

सेठ पुरुषोत्तमदास पूना की सरस्वती पाठशाला का मुआयना करने के बाद बाहर निकले तो एक लड़की ने दौड़कर उनका दामन पकड़ लिया। सेठजी रुक गए और मुहब्बत से उसकी तरफ देखकर पूछा—तुम्हारा क्या नाम है ?

लड़की ने जवाब दिया—रोहिणी।

सेठजी ने उसे गोद में उठा लिया और बोले—तुम्हें कुछ इनाम मिला ?

लड़की ने उनकी तरफ बच्चों जैसी गंभीरता से देखकर कहा—तुम चले जाते हो, मुझे रोना आता है, मुझे भी साथ लेते चलो।

सेठजी ने हंसकर कहा—मुझे बड़ी दूर जाना है, तुम कैसे चलोगी ?

रोहिणी ने प्यार से उनकी गर्दन में हाथ डाल दिए और बोली—जहां तुम जाओगे वहीं मैं भी चलूंगी। मैं तुम्हारी बेटी हूंगी।

मदरसे के अफसर ने आगे बढ़कर कहा—इसका बाप साल भर हुआ नहीं रहा। मां कपड़े सीती है, बड़ी मुश्किल से गुजर होती है।

सेठजी के स्वभाव में करुणा बहुत थी। यह सुनकर उनकी आंखें भर आईं। उस भोली प्रार्थना में वह दर्द था जो पत्थर-से दिल को पिघला सकता है। बेकसी और यतीमी को इससे ज्यादा दर्दनाक ढंग से जाहिर करना नामुमकिन था। उन्होंने सोचा—इस नन्हे-से दिल में न जाने क्या-क्या अरमान होंगे। और लड़कियां अपने खिलौने दिखाकर कहती होंगी, यह मेरे बाप ने दिया है। वह अपने बाप के साथ मदरसे आती होंगी, उसके साथ मेलों में जाती होंगी और उनकी दिलचस्पियों का जिक्र करती होंगी। यह सब बातें सुन-सुनकर इस भोली लड़की को भी ख्वाहिश होती होगी कि मेरे बाप होता। मां की मुहब्बत में गहराई और आत्मिकता होती है जिसे बच्चे समझ नहीं सकते। बाप की मुहब्बत में खुशी और चाव होता है जिसे बच्चे खूब समझते हैं।

सेठजी ने रोहिणी को प्यार से गले लगा लिया और बोले—अच्छा, मैं तुम्हें अपनी बेटी बनाऊंगा। लेकिन खूब जी लगाकर पढ़ना। अब छुट्टी का वक्त आ गया है, मेरे साथ आओ, तुम्हारे घर पहुंचा दूं।

यह कहकर उन्होंने रोहिणी को अपनी मोटरकार में बिठा लिया। रोहिणी ने बड़े इत्मीनान और बड़े गर्व से अपनी सहेलियों की तरफ देखा। उसकी बडी-बड़ी आंखें खुशी से चमक रही थीं और चेहरा चांदनी रात की तरह खिला हुआ था।

2

सेठजी ने रोहिणी को बाजार की खूब सैर कराई और कुछ उसकी पसंद से, कुछ अपनी पसंद से बहुत-सी चीजें खरीदीं, यहां तक कि रोहिणी बातें करते-करते कुछ थक-सी गई और खामोश हो गई। उसने इतनी चीजें देखीं और इतनी बातें सुनीं कि उसका जी भर गया। शाम होते-होते रोहिणी के घर पहुंचे और मोटरकार से उतरकर रोहिणी को अब कुछ आराम मिला। दरवाजा बंद था। उसकी मां किसी ग्राहक के घर कपड़े देने गई थी। रोहिणी ने अपने तोहफों को उलटना-पलटना शुरू किया—खूबसूरत रबड़ के खिलौने, चीनी की गुड़ियां जरा दबाने से चूं-चूं करने लगतीं और रोहिणी यह प्यारा संगीत सुनकर फूली न समाती थी। रेशमी कपड़े और रंग-बिरंगी साड़ियों के कई बंडल थे लेकिन मखमली बूटे की गुलकारियों ने उसे खूब लुभाया था। उसे उन चीजों के पाने की जितनी खुशी थी, उससे ज्यादा उन्हें अपनी सहेलियों को दिखाने की बेचैनी थी। सुंदरी के जूते अच्छे सही लेकिन उनमें ऐसे फूल कहां हैं। ऐसी गुड़ियां उसने कभी देखी भी न होंगी। इन खयालों से उसके दिल में उमंग भर आई और वह अपनी मोहिनी आवाज में एक गीत गाने लगी। सेठजी

दरवाजे पर खड़े इस पवित्र दृश्य का हार्दिक आनंद उठा रहे थे। इतने में रोहिणी की मां रुक्मिणी कपड़ों की पोटली लिए हुए आती दिखाई दी। रोहिणी ने खुशी से पागल होकर एक छलांग भरी और उसके पैरों से लिपट गई। रुक्मिणी का चेहरा पीला था, आंखों में हसरत और बेकसी छिपी हुई थी, गुप्त चिंता का सजीव चित्र मालूम होती थी, जिसके लिए जिंदगी में कोई सहारा नहीं।

मगर रोहिणी को जब उसने गोद में उठाकर प्यार से चूमा तो जरा देर के लिए उसकी आंखों में उम्मीद और जिंदगी की झलक दिखाई दी। मुर्झाया हुआ फूल खिल गया। बोली—आज तू इतनी देर तक कहां रही, मैं तुझे ढूंढ़ने पाठशाला गई थी।

रोहिणी ने हुमककर कहा—मैं मोटरकार पर बैठकर बाजार गई थी। वहां से बहुत अच्छी-अच्छी चीजें लाई हूं। वह देखो कौन खड़ा है ?

मां ने सेठजी की तरफ ताका और लजाकर सिर झुका लिया।

बरामदे में पहुंचते ही रोहिणी मां की गोद से उतरकर सेठजी के पास गई और अपनी मां को यकीन दिलाने के लिए भोलेपन से बोली—क्यों, तुम मेरे बाप हो न ?

सेठजी ने उसे प्यार करके कहा—हां, तुम मेरी प्यारी बेटी हो।

रोहिणी ने उनके मुंह की तरफ याचना-भरी आंखों से देखकर कहा—अब तुम रोज यहीं रहा करोगे ?

सेठजी ने उसके बाल सुलझाकर जवाब दिया—मैं यहां रहूंगा तो काम कौन करेगा ? मैं कभी-कभी तुम्हें देखने आया करूंगा, लेकिन वहां से तुम्हारे लिए अच्छी-अच्छी चीजें भेजूंगा।

रोहिणी कुछ उदास-सी हो गई। इतने में उसकी मां ने मकान का दरवाजा खोला और बड़ी फुर्ती से मैले बिछावन और फटे हुए कपड़े समेटकर कोने में डाल दिए कि कहीं सेठजी की निगाह उन पर न पड़ जाए। यह स्वाभिमान स्त्रियों की खास अपनी चीज है।

रुक्मिणी अब इस सोच में पड़ी थी कि मैं इनकी क्या खातिर-तवाजो करूं। उसने सेठजी का नाम सुना था, उसका पति हमेशा उनकी बड़ाई किया करता था। वह उनकी दया और उदारता की चर्चाएं अनेकों बार सुन चुकी थी। वह उन्हें अपने मन का देवता समझा करती थी। उसे क्या उम्मीद थी कि कभी उसका घर भी उनके कदमों से रोशन होगा। लेकिन आज जब वह शुभ दिन संयोग से आया तो वह इस काबिल भी नहीं कि उन्हें बैठने के लिए एक मोढ़ा दे सके। घर में पान और इलायची भी नहीं। वह अपने आंसुओं को किसी तरह न रोक सकी।

आखिर जब अंधेरा हो गया और पास के ठाकुरद्वारे से घंटों और नगाड़ों की आवाजें आने लगीं तो उन्होंने जरा ऊंची आवाज में कहा—बाईजी, अब मैं जाता हूं। मुझे अभी यहां बहुत काम करना है। मेरी रोहिणी को कोई तकलीफ न हो। मुझे जब मौका मिलेगा, उसे देखने आऊंगा। उसके पालने-पोसने का काम मेरा है और मैं उसे बहुत खुशी से पूरा करूंगा। उसके लिए अब तुम कोई फिक्र मत करो। मैंने उसका वजीफा बांध दिया है और यह उसकी पहली किस्त है।

यह कहकर उन्होंने अपना खूबसूरत बटुआ निकाला और रुक्मिणी के सामने रख

दिया। गरीब औरत की आंखों से आंसू जारी थे। उसका जी बरबस चाहता था कि उनके पैरों को पकड़कर खूब रोए। आज बहुत दिनों के बाद एक सच्चे हमदर्द की आवाज उसके कान में आई थी।

जब सेठजी चले तो उसने दोनों हाथों से प्रणाम किया। उसके हृदय की गहराइयों से प्रार्थना निकली—आपने एक बेबस पर दया की है, ईश्वर आपको इसका बदला दे।

दूसरे दिन रोहिणी पाठशाला गई तो उसकी बांकी सज-धज आंखों में खुबी जाती थी। उस्तानियों ने उसे बारी-बारी प्यार किया और उसकी सहेलियां उसकी एक-एक चीज को आश्चर्य से देखती और ललचाती थीं। अच्छे कपड़ों में कुछ स्वाभिमान का अनुभव होता है। आज रोहिणी वह गरीब लड़की न रही जो दूसरों की तरफ विवश नेत्रों से देखा करती थी। आज उसकी एक-एक क्रिया से शैशवोचित गर्व और चंचलता टपकती थी और उसकी जबान एकदम के लिए भी न रुकती थी। कभी मोटर की तेजी का जिक्र था, कभी बाजार की दिलचस्पियों का बयान, कभी अपनी गुड़ियों के कुशल-मंगल की चर्चा थी और कभी अपने बाप की मुहब्बत की दास्तान। दिल था कि उमंगों से भरा हुआ था।

एक महीने के बाद सेठ पुरुषोत्तमदास ने रोहिणी के लिए फिर तोहफे और रुपये रवाना किए। बेचारी विधवा को उनकी कृपा से जीविका की चिंता से छुट्टी मिली। वह भी रोहिणी के साथ पाठशाला आती और दोनों मां-बेटियां एक ही दरजे में साथ-साथ पढ़तीं, लेकिन रोहिणी का नंबर हमेशा मां से अव्वल रहा। सेठजी जब पूना की तरफ से निकलते तो रोहिणी को देखने जरूर आते और उनका आगमन उसकी प्रसन्नता और मनोरंजन के लिए महीनों का सामान इकट्ठा कर देता।

इसी तरह कई साल गुजर गए और रोहिणी ने जवानी के सुहाने हरे-भरे मैदान में पैर रखा, जबकि बचपन की भोली-भाली अदाओं में एक खास मतलब और इरादों का दखल हो जाता है।

रोहिणी अब आंतरिक और बाह्य सौंदर्य में अपनी पाठशाला की नाक थी। हाव-भाव में आकर्षक गंभीरता, बातों में गीत का-सा खिंचाव और गीत का-सा आत्मिक रस था। कपड़ों में रंगीन सादगी, आंखों में लाज-संकोच, विचारों में पवित्रता। जवानी थी मगर घमंड और बनावट और चंचलता से मुक्त। उसमें एक एकाग्रता थी जो ऊंचे इरादों से पैदा होती है। स्त्रियोचित उत्कर्ष की मंजिलें वह धीरे-धीरे तय करती चली जाती थी।

3

सेठजी के बड़े बेटे नरोत्तमदास कई साल तक अमेरिका और जर्मनी की युनिवर्सिटियों की खाक छानने के बाद इंजीनियरिंग विभाग में कमाल हासिल करके वापस आए थे। अमेरिका के सबसे प्रतिष्ठित कॉलेज में उन्होंने सम्मान का पद प्राप्त किया था। अमेरिका के अखबार एक हिंदोस्तानी नौजवान की इस शानदार कामयाबी पर चकित थे। उन्हीं का स्वागत करने के लिए बंबई में एक बड़ा जलसा किया गया था। इस उत्सव में शरीक होने के लिए लोग दूर-दूर से आए थे। सरस्वती पाठशाला को भी निमंत्रण मिला और रोहिणी

को सेठानीजी ने विशेष रूप से आमंत्रित किया। पाठशाला में हफ्तों तैयारियां हुईं। रोहिणी को एकदम के लिए भी चैन न था। यह पहला मौका था कि उसने अपने लिए बहुत अच्छे-अच्छे कपड़े बनवाए। रंगों के चुनाव में वह मिठास थी, काट-छांट में वह फबन जिससे उसकी सुंदरता चमक उठी। सेठानी कौशल्यादेवी उसे लेने के लिए रेलवे स्टेशन पर मौजूद थीं। रोहिणी गाड़ी से उतरते ही उनके पैरों की तरफ झुकी लेकिन उन्होंने उसे छाती से लगा लिया और इस तरह प्यार किया कि जैसे वह उनकी बेटी है। वह उसे बार-बार देखती थीं और आंखों से गर्व और प्रेम टपका पड़ता था।

इस जलसे के लिए ठीक समुंदर के किनारे एक हरे-भरे सुहाने मैदान में एक लम्बा-चौड़ा शामियाना लगाया गया था। एक तरफ आदमियों का समुद्र उमड़ा हुआ था, दूसरी तरफ समुद्र की लहरें उछल रही थीं, गोया वह भी इस खुशी में शरीक थीं।

जब उपस्थित लोगों ने रोहिणी बाई के आने की खबर सुनी तो हजारों आदमी उसे देखने के लिए खड़े हो गए। यही तो वह लड़की है जिसने अबकी शास्त्री की परीक्षा पास की है। जरा उसके दर्शन करने चाहिए। अब भी इस देश की स्त्रियों में ऐसे रतन मौजूद हैं। भोले-भाले देश-प्रेमियों में इस तरह की बातें होने लगीं। शहर की कई प्रतिष्ठित महिलाओं ने आकर रोहिणी को गले लगाया और आपस में उसके सौंदर्य और उसके कपड़ों की चर्चा होने लगी।

आखिर मिस्टर पुरुषोत्तमदास तशरीफ लाए। हालांकि वह बड़ा शिष्ट और गंभीर उत्सव था लेकिन उस वक्त दर्शन की उत्कंठा पागलपन की हद तक जा पहुंची थी। एक भगदड़-सी मच गई। कुर्सियों की कतारें गड़बड़ हो गईं। कोई कुर्सी पर खड़ा हुआ, कोई उसके हत्थों पर। कुछ मनचले लोगों ने शामियाने की रस्सियां पकड़ीं और उन पर जा लटके। कई मिनट तक यही तूफान मचा रहा। कहीं कुर्सियां टूटीं, कहीं कुर्सियां उलटीं, कोई किसी के ऊपर गिरा, कोई नीचे। ज्यादा तेज लोगों में धौल-धप्पा होने लगा।

तब बीन की सुहानी आवाजें आने लगीं। रोहिणी ने अपनी मंडली के साथ देश-प्रेम में डूबा हुआ गीत शुरू किया। सारे उपस्थित लोग बिल्कुल शांत थे और उस समय वह सुरीला राग, उसकी कोमलता और स्वच्छता, उसकी प्रभावशाली मधुरता, उसकी उत्साह भरी वाणी दिलों पर वह नशा-सा पैदा कर रही थी जिससे प्रेम की लहरें उठती हैं, जो दिल से बुराइयों को मिटाता है और जिससे जिंदगी की हमेशा याद रहने वाली यादगारें पैदा हो जाती हैं। गीत बंद होने पर तारीफ की एक आवाज न आई। वही तानें कानों में अब तक गूंज रही थीं।

गाने के बाद विभिन्न संस्थाओं की तरफ से अभिनंदन पेश हुए और तब नरोत्तमदास लोगों को धन्यवाद देने के लिए खड़े हुए। लेकिन उनके भाषण से लोगों को थोड़ी निराशा हुई। यों दोस्तों की मंडली में उनकी वक्तृता के आवेग और प्रवाह की कोई सीमा न थी लेकिन सार्वजनिक सभा के सामने खड़े होते ही शब्द और विचार दोनों ही उनसे बेवफाई कर जाते थे। उन्होंने बड़ी मुश्किल से धन्यवाद के कुछ शब्द कहे और तब अपनी योग्यता पर ज्ञानियों की तरह सिर हिलाने लगे।

अब जलसा खतम होने का वक्त आया। वह रेशमी हार जो सरस्वती पाठशाला की

ओर से भेजा गया था, मेज पर रखा हुआ था। उसे हीरो के गले में कौन डाले ? प्रेसिडेंट ने महिलाओं की पंक्ति की ओर नजर दौड़ाई। चुकने वाली आंख रोहिणी पर पड़ी और ठहर गई। उसकी छाती धड़कने लगी। लेकिन उत्सव के सभापति के आदेश का पालन आवश्यक था। वह सर झुकाए हुए मेज के पास आई और कांपते हुए हाथों से हार को उठा लिया। एक क्षण के लिए दोनों की आंखें मिलीं और रोहिणी ने नरोत्तमदास के गले में हार डाल दिया।

दूसरे दिन सरस्वती पाठशाला के मेहमान विदा हुए लेकिन कौशल्यादेवी ने रोहिणी को न जाने दिया। बोलीं—अभी तुम्हें देखने से जी नहीं भरा, तुम्हें यहां एक हफ्ता रहना होगा। आखिर मैं भी तो तुम्हारी मां हूं। एक मां से इतना प्यार और दूसरी मां से इतना अलगाव !

रोहिणी कुछ जवाब न दे सकी।

यह सारा हफ्ता कौशल्यादेवी ने उसकी विदाई की तैयारियों में खर्च किया। सातवें दिन उसे विदा करने के लिए स्टेशन तक आई। चलते वक्त उससे गले मिलीं और बहुत कोशिश करने पर भी आंसुओं को न रोक सकीं। नरोत्तमदास भी आए थे। उनका चेहरा उदास था। कौशल्या ने उनकी तरफ सहानुभूतिपूर्ण आंखों से देखकर कहा—मुझे यह तो खयाल ही न रहा, रोहिणी क्या यहां से पूना तक अकेली जाएगी? क्या हर्ज है, तुम्हीं चले जाओ, शाम की गाड़ी से लौट आना।

नरोत्तमदास के चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ गई, जो इन शब्दों में न छिप सकी—अच्छा, मैं ही चला जाऊंगा। वह इस फिक्र में थे कि देखें विदाई की बातचीत का मौका भी मिलता है या नहीं। अब वह खूब जी भरकर अपना दर्दे दिल सुनाएंगे और मुमकिन हुआ तो उस लाज-संकोच को, जो उदासीनता के परदे में छिपी हुई है, मिटा देंगे।

4

रुक्मिणी को अब रोहिणी की शादी की फिक्र पैदा हुई। पड़ोस की औरतों में इसकी चर्चा होने लगी थी। लड़की इतनी सयानी हो गई है, अब क्या बुढ़ापे में ब्याह होगा? कई जगह से बात आई, उनमें कुछ बड़े प्रतिष्ठित घराने थे। लेकिन जब रुक्मिणी उन पैगामों को सेठजी के पास भेजती तो वे यही जवाब देते कि मैं खुद फिक्र में हूं। रुक्मिणी को उनकी यह टालमटोल बुरी मालूम होती थी।

रोहिणी को बंबई से लौटे महीना भर हो चुका था कि एक दिन वह पाठशाला से लौटी तो उसे अपनी अम्मां की चारपाई पर एक खत पड़ा हुआ मिला। रोहिणी पढ़ने लगी, लिखा था—बहन, जब से मैंने तुम्हारी लड़की को बंबई में देखा है, मैं उस पर रीझ गई हूं। अब उसके बगैर मुझे चैन नहीं है। क्या मेरा भाग्य ऐसा होगा कि वह मेरी बहू बन सके ? मैं गरीब हूं लेकिन मैंने सेठजी को राजी कर लिया है। तुम भी मेरी यह विनती कबूल करो। मैं तुम्हारी लड़की को चाहे फूलों की सेज पर न सुला सकूं, लेकिन इस घर का एक-एक आदमी उसे आंखों की पुतली बनाकर रखेगा। अब रहा लड़का। मां के मुंह से लड़के का बखान कुछ अच्छा नहीं मालूम होता। लेकिन यह कह सकती हूं कि परमात्मा ने यह जोड़ी

अपने हाथों से बनाई है। सूरत में, स्वभाव में, विद्या में, हर दृष्टि से वह रोहिणी के योग्य है। तुम जैसे चाहे अपना इत्मीनान कर सकती हो। जवाब जल्द देना और ज्यादा क्या लिखूं। नीचे थोड़े से शब्दों में सेठजी ने उस पैगाम की सिफारिश की थी।

रोहिणी गालों पर हाथ रखकर सोचने लगी। नरोत्तमदास की तस्वीर उसकी आंखों के सामने आ खड़ी हुई। उनकी वह प्रेम की बातें, जिनका सिलसिला बंबई से पूना तक नहीं टूटा था, कानों में गूंजने लगीं। उसने एक ठंडी सांस ली और उदास होकर चारपाई पर लेट गई।

5

सरस्वती पाठशाला में एक बार फिर सजावट और सफाई के दृश्य दिखाई दे रहे हैं। आज रोहिणी की शादी का शुभ दिन है। शाम का वक्त, वसंत का सुहाना मौसम, पाठशाला के दरो-दीवार मुस्करा रहे हैं और हरा-भरा बगीचा फूला नहीं समाता।

चंद्रमा अपनी बारात लेकर पूरब की तरफ से निकला। उसी वक्त मंगलाचरण का सुहाना राग उस रूपहली चांदनी और हल्के-हल्के हवा के झोंकों में लहरें मारने लगा। दूल्हा आया, उसे देखते ही लोग हैरत में आ गए। यह नरोत्तमदास थे।

दूल्हा मंडप के नीचे गया। रोहिणी की मां अपने को रोक न सकी, वह उसी वक्त जाकर सेठजी के पैरों पर गिर पड़ी। रोहिणी की आंखों से प्रेम और आनंद के आंसू बहने लगे।

मंडप के नीचे हवन-कुंड बना हुआ था। हवन शुरू हुआ, खुशबू की लपटें हवा में उठीं और सारा मैदान महक गया। लोगों के दिलो-दिमाग में ताजगी की उमंग पैदा हुई।

फिर संस्कार की बारी आई। दूल्हा और दुल्हिन ने आपस में हमदर्दी, जिम्मेदारी और वफादारी के पवित्र शब्द अपनी जबानों से कहे। विवाह की वह मुबारक जंजीर गले में पड़ी जिसमें वजन है, सख्ती है, पाबंदियां हैं, लेकिन वजन के साथ सुख और पाबंदियों के साथ विश्वास है। दोनों दिलों में उस वक्त एक नई, बलवान, आत्मिक शक्ति की अनुभूति हो रही थी।

जब शादी की रस्में खत्म हो गईं तो नाच-गाने की मजलिस का दौर आया। मोहक गीत गूंजने लगे। सेठजी थककर चूर हो गए थे। जरा दम लेने के लिए बगीचे में जाकर एक बेंच पर बैठ गए। ठंडी-ठंडी हवा आ रही थी। एक नशा-सा पैदा करने वाली शांति चारों तरफ छाई हुई थी। उसी वक्त रोहिणी उनके पास आई और उनके पैरों से लिपट गई। सेठजी ने उसे उठाकर गले से लगा लिया और हंसकर बोले—क्यों, अब तो तुम मेरी अपनी बेटी हो गईं ?

[उर्दू कहानी। प्रथम प्रकाशन उर्दू में। उर्दू मासिक पत्रिका 'जमाना' जून, 1914 में प्रकाशित। 'प्रेम बत्तीसी', उर्दू कहानी-संग्रह में संकलित। हिन्दी रूप इसी नाम से 'गुप्तधन' भाग-1 में संकलित।]

खून सफेद

चैत का महीना था, लेकिन वे खलिहान, जहाँ अनाज की ढेरियाँ लगी रहती थीं, पशुओं के शरणस्थल बने हुए थे, जहाँ घरों से फाग और वसंत की अलाप सुनायी पड़ती, वहाँ आज भाग्य का रोना था। सारा चौमासा बीत गया पानी की एक बूँद न गिरी। जेठ में एक बार मूसलाधार वृष्टि हुई थी, किसान फूले न समाये, खरीफ की फसल बो दी, लेकिन इंद्रदेव ने अपना सर्वस्व शायद एक ही बार लुटा दिया था। पौधे उगे, बढ़े और सूख गये। गोचर भूमि में घास जमी ! बादल आते, घटायें उमड़तीं, ऐसा मालूम होता कि जल-थल एक हो जायगा, परंतु वे आशा की नहीं, दुःख की घटायें थीं। किसानों ने बहुतेरे जप-तप किये, ईट और पत्थर देवी-देवताओं के नाम से पुजाये, बलिदान किये, पानी की अभिलाषा में रक्त के पनाले बह गये, लेकिन इंद्रदेव किसी तरह न पसीजे। न खेतों में पौधे थे, न गोचरों में घास, न तालाबों में पानी, बड़ी मुसीबत का सामना था। जिधर देखिए धूल उड़ रही थी। दरिद्रता और क्षुधा-पीड़ा के दारुण दृश्य दिखायी देते थे। लोगों ने पहले तो गहने और बरतन गिरवी रखे, और अंत में बेच डाले। फिर जानवरों की बारी आयी और जब जीविका का अन्य कोई सहारा न रहा तब जन्मभूमि पर जान देनेवाले किसान बाल-बच्चों को ले कर मजदूरी करने निकल पड़े। अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए कहीं-कहीं सरकार की सहायता से काम खुल गया था। बहुतेरे वहीं जा कर जमे। जहाँ जिसको सुभीता हुआ, वह उधर ही जा निकला।

2

संध्या का समय था। जादोराय थका-माँदा आ कर बैठ गया और स्त्री से उदास होकर बोला—दरखास्त नामंजूर हो गयी। यह कहते-कहते वह आँगन में जमीन पर लेट गया। उसका मुख पीला पड़ रहा था और आँतें सिकुड़ी जा रही थीं। आज दो दिन से उसने दाने की सूरत नही देखी। घर में जो कुछ विभूति थी—गहने, कपड़े, बरतन, भाँड़े सब पेट में समा गये। गाँव का साहूकार भी पतिव्रता स्त्रियों की भाँति आँखें चुराने लगा। केवल तकाबी का सहारा था, उसी के लिए दरखास्त दी थी, लेकिन आज वह भी नामंजूर हो गयी, आशा का झिलमिलाता हुआ दीपक बुझ गया।

देवकी ने पति को करुण दृष्टि से देखा। उसकी आँखों में आँसू उमड़ आये। पति दिन भर का थका-माँदा घर आया है। उसे क्या खिलावे ? लज्जा के मारे वह हाथ-पैर धोने के लिए पानी भी न लायी। जब हाथ-पैर धो कर आशा-भरी चितवन से वह उसकी ओर देखेगा तब वह उसे क्या खाने को देगी ? उसने आज कई दिन से दाने की सूरत नहीं देखी थी। लेकिन इस समय उसे जो दुःख हुआ, वह क्षुधातुरता के कष्ट से कई गुना अधिक था। स्त्री घर की लक्ष्मी है। घर के प्राणियों को खिलाना-पिलाना वह अपना कर्तव्य समझती है। और चाहे यह उसका अन्याय ही क्यों न हो, लेकिन अपनी दीन-हीन दशा पर जो मानसिक वेदना उसे होती है, वह पुरुषों को नहीं हो सकती।

हठात् उसका बच्चा साधो नींद से चौंका और मिठाई के लालच में आ कर वह बाप से

लिपट गया। इस बच्चे ने आज प्रातःकाल चने की रोटी का एक टुकड़ा खाया था, और तब से कई बार उठा और कई बार रोते-रोते सो गया। चार वर्ष का नादान बच्चा, उसे वर्षा और मिठाइयों में कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई देता था। जादोराय ने उसे गोद में उठा लिया, उसकी ओर दुःखभरी दृष्टि से देखा। गर्दन झुक गयी और हृदय पीड़ा आँखों में न समा सकी।

दूसरे दिन यह परिवार भी घर से बाहर निकला। जिस तरह पुरुषों के चित्त से अभिमान और स्त्री की आँख से लज्जा नहीं निकलती, उसी तरह अपनी मेहनत से रोटी कमाने वाला किसान भी मजदूरी की खोज में घर से बाहर नहीं निकलता। लेकिन हा पापी पेट, तू सब कुछ कर सकता है ! मान और अभिमान, ग्लानि और लज्जा ये सब चमकते हुए तारे तेरी काली घटाओं में छिप जाते हैं।

प्रभात का समय था। वे दोनों विपत्ति के सताये घर से निकले। जादोराय ने लड़के को पीठ पर लिया। देवकी ने फटे-पुराने कपड़ों की वह गठरी सिर पर रखी, जिस पर विपत्ति को भी तरस आता। दोनों की आँखें आँसुओं से भरी थीं। देवकी रोती थी। जादोराय चुपचाप था। गाँव के दो-चार आदमियों से रास्ते में भेंट भी हुई, किंतु किसी ने इतना भी न पूछा कि कहाँ जाते हो ? किसी के हृदय में सहानुभूति का वास न था।

जब ये लोग लालगंज पहुँचे, उस समय सूर्य ठीक सिर पर था। देखा, मीलों तक आदमी ही आदमी दिखाई देते थे। लेकिन हर चेहरे पर दीनता और दुःख के चिह्न झलक रहे थे।

बैसाख की जलती हुई धूप थी। आग के झोंके जोर-जोर से हरहराते हुए चल रहे थे। ऐसे समय में हड्डियों के अगणित ढाँचे जिनके शरीर पर किसी प्रकार का कपड़ा न था, मिट्टी खोदने में लगे हुए थे। मानों वह मरघट भूमि थी, जहाँ मुर्दे अपने हाथों अपनी क़ब्रें खोद रहे थे। बूढ़े और जवान, मर्द और बच्चे, सब के सब ऐसे निराश और विवश होकर काम में लगे हुए थे मानो मृत्यु और भूख उसके सामने बैठी घूर रही है। इस आफत में न कोई किसी का मित्र था न हितू। दया, सहृदयता और प्रेम ये सब मानवीय भाव हैं, जिनका कर्त्ता मनुष्य है। प्रकृति ने हमको केवल एक भाव प्रदान किया है और वह स्वार्थ है। मानवीय भाव बहुधा कपटी मित्रों की भाँति हमारा साथ छोड़ देते हैं, पर यह ईश्वरप्रदत्त गुण कभी हमारा गला नहीं छोड़ता।

आठ दिन बीत गये थे। संध्या समय काम समाप्त हो चुका था। डेरे से कुछ दूर आम का एक बाग था। वहीं एक पेड़ के नीचे जादोराय और देवकी बैठी हुई थी। दोनों ऐसे कृश हो रहे थे कि उनकी सूरत नहीं पहचानी जाती थी। अब वह स्वाधीन कृषक नहीं रहे। समय के हेरफेर से आज दोनों मजदूर बने बैठे हैं।

जादोराय ने बच्चे को जमीन पर सुला दिया। उसे कई दिन से बुखार आ रहा है।

कमल-सा चेहरा मुरझा गया। देवकी ने धीरे से हिला कर कहा—बेटा ! आँखें खोलो। देखो साँझ हो गयी।

साधो ने आँखें खोल दीं, बुखार उतर गया था। बोला—क्या हम घर आ गये माँ ?

घर की याद आ गयी। देवकी की आँखें डबडबा आयीं। उसने कहा—नहीं बेटा ! तुम अच्छे हो जाओगे, तो घर चलेंगे। उठ कर देखो, कैसा अच्छा बाग है।

साधो माँ के हाथों के सहारे उठा, और बोला—माँ ! मुझे बड़ी भूख लगी है, लेकिन तुम्हारे पास तो कुछ नहीं है। मुझे क्या खाने को दोगी ?

देवकी के हृदय में चोट लगी, पर धीरज धर के बोली—नहीं बेटा, तुम्हारे खाने को मेरे पास सब कुछ है। तुम्हारे दादा पानी लाते हैं तो मैं नरम-नरम रोटियाँ अभी बनाये देती हूँ।

साधो ने माँ की गोद में सिर रख लिया और बोला—माँ ! मैं न होता तो तुम्हें इतना दुःख तो न होता। यह कह कर वह फूट-फूट कर रोने लगा। यह वही बेसमझ बच्चा है, जो दो सप्ताह पहले मिठाइयों के लिए दुनिया सिर पर उठा लेता था। दुःख और चिंता ने कैसा अनर्थ कर दिया है। यह विपत्ति का फल है। कितना दुःखपूर्ण. कितना करुणाजनक व्यापार है।

इसी बीच में कई आदमी लालटेन लिये हुए वहाँ आये। फिर गाड़ियाँ आयीं। उन पर डेरे और खेमे लदे हुए थे। दम के दम वहाँ खेमे गड़ गये। सारे बाग में चहल-पहल नजर आने लगी। देवकी रोटियाँ सेंक रही थी, साधो धीरे-धीरे उठा और आश्चर्य से देखता हुआ एक डेरे के नजदीक जा कर खड़ा हो गया !

5

पादरी मोहनदास खेमे से बाहर निकले तो साधो उन्हें खड़ा दिखायी दिया। उसकी सूरत पर उन्हें तरस आ गया। प्रेम की नदी उमड़ आयी। बच्चे को गोद मे लेकर खेमे में एक गद्देदार कोच पर बैठा दिया और तब उसे बिस्कुट और केले खाने को दिये। लड़के ने अपनी जिन्दगी में इन स्वादिष्ट चीजों को कभी न देखा। बुखार की बेचैन करने वाली भूख अलग मार रही थी। उसने खूब मनभर खाया और तब कृतज्ञ नेत्रों से देखते हुए पादरी साहब के पास जा कर बोला—तुम हमको रोज ऐसी चीजें खिलाओगे।

पादरी साहब इस भोलेपन पर मुस्करा के बोले—मेरे पास इससे भी अच्छी-अच्छी चीजें हैं। इस पर साधोराय ने कहा—अब मैं रोज तुम्हारे पास आऊँगा। माँ के पास ऐसी अच्छी चीजें कहाँ ? वह तो मुझे चने की रोटियाँ खिलाती है।

उधर देवकी ने रोटियाँ बनायीं और साधो को पुकारने लगी। साधो ने माँ के पास जा कर कहा—मुझे साहब ने अच्छी-अच्छी चीजें खाने को दी हैं। साहब बड़े अच्छे हैं।

देवकी ने कहा—मैंने तुम्हारे लिए नरम-नरम रोटियाँ बनायी हैं। आओ तुम्हें खिलाऊँ।

साधो बोला—अब मैं न खाऊँगा। साहब कहते थे कि मैं तुम्हें रोज अच्छी-अच्छी चीजें खिलाऊँगा। मैं अब उनके साथ रहा करूँगा। माँ ने समझा कि लड़का हँसी कर रहा है। उसे छाती से लगा कर बोली—क्यों बेटा, हमको भूल जाओगे ? देखो मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूँ।

साधो तुतला कर बोला—तुम तो मुझे रोज चने की रोटियाँ दिया करती हो। तुम्हारे पास तो कुछ नहीं है। साहब मुझे केले और आम खिलावेंगे। यह कह कर वह फिर खेमे की ओर भागा और रात को वहीं सो रहा !

पादरी मोहनदास का पड़ाव वहाँ तीन दिन रहा। साधो दिन भर उन्हीं के पास रहता। साहब ने उसे मीठी दवाइयाँ दीं। उसका बुखार जाता रहा। वह भोले-भाले किसान यह देख कर साहब को आशीर्वाद देने लगे। लड़का भला-चंगा हो गया और आराम से है। साहब को परमात्मा सुखी रखे। उन्होंने बच्चे की जान रख ली।

चौथे दिन रात को ही वहाँ से पादरी साहब ने कूच किया। सुबह को जब देवकी उठी तो साधो का वहाँ पता न था। उसने समझा, कहीं टपके ढूँढ़ने गया होगा, किंतु थोड़ी देर देख कर उसने जादोराय से कहा—लल्लू यहाँ नहीं है। उसने भी यही कहा—यहीं कहीं टपके ढूँढ़ता होगा।

लेकिन जब सूरज निकल आया और काम पर चलने का वक्त हुआ तब जादोराय को कुछ संशय हुआ। उसने कहा—तुम यहीं बैठी रहना, मैं अभी उसे लिये आता हूँ।

जादोराय ने आस-पास के सब बागों को छान डाला और अन्त में जब दस बज गये तो निराश लौट आया। साधो न मिला, यह देख कर देवी ढाढ़ें मार कर रोने लगी।

फिर दो·ों अपने लाल की तलाश में निकले। अनेक विचार चित्त में आने-जाने लगे। देवकी को पूरा विश्वास था कि साहब ने उस पर कोई मंत्र डालकर वश में कर लिया। लेकिन जादो को इस कल्पना के मान लेने में कुछ संदेह था। बच्चा इतनी दूर अनजान रास्ते पर अकेले नहीं आ सकता। फिर दोनों गाड़ी के पहियों और घोड़े की टापों के निशान देखते चले जाते थे। यहाँ तक कि वे एक सड़क पर आ पहुँचें। वहाँ गाड़ी के बहुत से निशान थे। उस विशेष लीक की पहचान न हो सकती थी। घोड़े के टाप भी एक झाड़ी की तरफ जा कर गायब हो गये। आशा का सहारा टूट गया। दोपहर हो गयी थी। दोनों धूप के मारे बेचैन और निराशा से पागल हो रहे थे। वहीं एक वृक्ष की छाया में बैठ गये। देवकी विलाप करने लगी। जादोराय ने उसे समझाना शुरू किया।

जब जरा धूप की तेजी कम हुई तो दोनों फिर आगे चले। किंतु अब आशा की जगह निराशा साथ थी। घोड़े की टापों के साथ उम्मीद का धुँधला निशान गायब हो गया था।

शाम हो गयी। इधर-उधर गायों-बैलों के झुंड निर्जीव से पड़े दिखायी देते थे। यह दोनों दुखिया हिम्मत हार कर एक पेड़ के नीचे टिक रहे। उसी वृक्ष पर मैने का एक जोड़ा बसेरा लिये था। उनका नन्हा-सा शावक आज ही एक शिकारी के चंगुल में फँस गया था। दोनों दिन भर उसे खोजते फिरे। इस समय निराश हो कर बैठ रहे। देवकी और जादो को अभी तक आशा की झलक दिखायी देती थी, इसलिए वे बेचैन थे।

तीन दिन तक ये दोनों खोये हुए लाल की तलाश करते रहे। दाने से भेंट नहीं, प्यास से बेचैन होते तो दो-चार घूँट पानी गले के नीचे उतार लेते।

आशा की जगह निराशा का सहारा था। दुःख और करुणा के सिवाय और कोई वस्तु नहीं। किसी बच्चे के पैरों के निशान देखते तो उनके दिलों में आशा तथा भय की लहरें उठने लगती थीं।

लेकिन प्रत्येक पग उन्हें अभीष्ट स्थान से दूर लिये जाता था।

6

इस घटना को हुए चौदह वर्ष बीत गये। इन चौदह वर्षों में सारी काया पलट गयी। चारों ओर रामराज्य दिखायी देने लगा। इंद्रदेव ने कभी उस तरह अपनी निर्दयता न दिखायी और न जमीन ने ही। उमड़ी हुई नदियों की तरह अनाज से ढेकियाँ भर चलीं। उजड़े हुए गाँव बस गये। मजदूर किसान बन बैठे और किसान जायदाद की तलाश में नज़रें दौड़ाने लगे। वही चैत के दिन थे। खलिहानों में अनाज के पहाड़ खड़े थे। भाट और भिखमंगे किसानों की बढ़ती के तराने गा रहे थे। सुनारों के दरवाजे पर सारे दिन और आधी रात तक गाहकों का जमघट बना रहता था। दरजी को सिर उठाने की फ़ुरसत न थी। इधर-उधर दरवाजों पर घोड़े हिनहिना रहे थे। देवी के पुजारियों को अजीर्ण हो रहा था। जादोराय के दिन भी फिरे। उसके घर पर छप्पर की जगह खपरैल हो गया। दरवाजे पर अच्छे बैलों की जोड़ी बँधी हुई है। वह अब अपनी बहली पर सवार होकर बाजार जाया करता है। उसका बदन अब उतना सुडौल नहीं है। पेट पर इस सुदशा का विशेष प्रभाव पड़ा है और बाल भी सफेद हो चले हैं। देवकी की गिनती भी गाँव की बूढ़ी औरतों में होने लगी है। व्यावहारिक बातों में उसकी बड़ी पूछ हुआ करती है। जब वह किसी पड़ोसिन के घर जाती है तो वहाँ की बहुएँ भय के मारे थरथराने लगती हैं। उसके कटु-वाक्य, तीव्र आलोचना की सारे गाँव में धाक बँधी हुई है। महीन कपड़े अब उसे अच्छे नहीं लगते, लेकिन गहनों के बारे में वह इतनी उदासीन नहीं है।

उसके जीवन का दूसरा भाग इससे कम उज्ज्वल नहीं। उनकी दो संतानें हैं। लड़का माधोसिंह अब खेती-बारी के काम में बाप की मदद करता है। लड़की का नाम शिवगौरी है। वह भी माँ को चक्की पीसने में सहायता दिया करती है और खूब गाती है। बर्तन धोना उसे पसंद नहीं, लेकिन चौका लगाने में निपुण है। गुड़ियों के ब्याह करने से उसका जी कभी नहीं भरता। आये दिन गुड़ियों के विवाह होते रहते है। हाँ, इनमें किफायत का पूरा ध्यान रहता है। खोये हुए साधो की याद अभी तक बाकी है। उसकी चर्चा नित्य हुआ करती है और कभी बिना रुलाये नहीं रहती। देवकी कभी-कभी सारे दिन उस लाड़ले बेटे की सुध में अधीर रहा करती है।

साँझ हो गयी थी। बैल दिन भर के थके-माँदे सिर झुकाये चले आते थे। पुजारी ने ठाकुरद्वारे में घंटा बजाना शुरू किया। आजकल फसल के दिन हैं। रोज पूजा होती है। जादोराय खाट पर बैठे नारियल पी रहे थे। शिवगौरी रास्ते में खड़ी उन बैलों को कोस रही थी, जो उसके भूमिस्थ विशाल भवन का निरादर करके उसे रौंदते चले जाते थे। घड़ियाल और घंटे की आवाज सुनते ही जादोराय भगवान् का चरणामृत लेने के लिए उठे ही थे कि उन्हें अकस्मात् एक नवयुवक दिखायी पड़ा, जो भूँकते हुए कुत्तों को दुतकारता बाइसिकल को आगे बढ़ाता हुआ चला आ रहा था। उसने उनके चरणों पर अपना सिर रख दिया। जादोराय ने गौर से देखा और तब दोनों एक दूसरे से लिपट गये। माधो भौंचक होकर बाइसिकल को देखने लगा। शिवगौरी रोती हुई घर में भागी और देवकी से बोली—दादा को

साहब ने पकड़ लिया है। देवकी घबरायी हुई बाहर आयी। साधो उसे देखते ही उसके पैरों पर गिर पड़ा। देवकी लड़के को छाती से लगाकर रोने लगी। गाँव में मर्द, औरतें और बच्चे सब जमा हो गये। मेला-सा लग गया।

7

साधो ने अपने माता-पिता से कहा—मुझ अभागे से जो कुछ अपराध हुआ हो, उसे क्षमा कीजिए। मैंने अपनी नादानी से स्वयं बहुत कष्ट उठाये और आप लोगों को भी दुःख दिया, लेकिन अब मुझे अपनी गोद में लीजिए। देवकी ने रो कर कहा—जब तुम हमको छोड़कर भागे थे तो हम लोग तुम्हें तीन दिन तक बेदाना-पानी के ढूँढ़ते रहे, पर जब निराश हो गये तब अपने भाग्य को रो कर बैठ रहे। तब से आज तक कोई ऐसा दिन न गया होगा कि तुम्हारी सुधि न आयी हो। रोते-रोते एक युग बीत गया अब तुमने खबर ली है ! बताओ बेटा ! उस दिन तुम कैसे भागे और कहाँ जा कर रहे ? साधो ने लज्जित होकर उत्तर दिया—माता जी, अपना हाल क्या कहूँ ? मैं पहर रात रहे आपके पास से उठ कर भागा। पादरी साहब के पड़ाव का पता शाम ही को पूछ लिया था। बस, पूछता हुआ दोपहर को उनके पास पहुँच गया। साहब ने मुझे पहले समझाया कि अपने घर लौट जाओ, लेकिन जब मैं किसी तरह राजी न हुआ तो उन्होंने मुझे पूना भेज दिया। मेरी तरह वहाँ सैकड़ों लड़के थे। वहाँ बिस्कुट और नारंगियों का भला क्या जिक्र ! अब मुझे आप लोगों की याद आती, मैं अक्सर रोया करता। मगर बचपन की उम्र थी, धीरे-धीरे उन्हीं लोगों से हिल-मिल गया। हाँ, जब से कुछ होश हुआ और अपना-पराया समझने लगा हूँ तब से अपनी नादानी पर हाथ मलता रहा हूँ। रात-दिन आप लोगों की रट लगी हुई थी। आज आप लोगों के आशीर्वाद से यह शुभ दिन देखने को मिला। दूसरों में बहुत दिन काटे, बहुत दिनों तक अनाथ रहा। अब मुझे अपनी सेवा में रखिए। मुझे अपनी गोद में लीजिए। मैं प्रेम का भूखा हूँ। बरसों से मुझे जो सौभाग्य नहीं मिला, वह अब दीजिए।

गाँव के बहुत से बूढ़े जमा थे। उनमें से जगतसिंह बोले—तो क्यों बेटा, तुम इतने दिनों तक पादरियों के साथ रहे। उन्होंने तुमको भी पादरी बना लिया होगा ?

साधो ने सिर झुका कर कहा—जी हाँ, यह तो उनका दस्तूर ही है।

जगतसिंह ने जादोराय की तरफ देखकर कहा—यह बड़ी कठिन बात है।

साधो बोला—बिरादरी का अपराध हुआ है, नादानी से हुआ है, लेकिन मैं उसका दंड भोगने के लिए तैयार हूँ।

जगतसिंह ने फिर जादोराय की तरफ कनखियों से देखा और गम्भीरता से बोले—हिंदू धर्म में ऐसा कभी नहीं हुआ है। यों तुम्हारें माँ-बाप तुम्हें अपने घर में रख लें, तुम उनके लड़के हो, मगर बिरादरी कभी इस काम में शरीक न होगी। बोलो जादोराय, क्या कहते हो, कुछ तुम्हारे मन की भी तो सुन ले।

जादोराय बड़ी द्विविधा में था। एक ओर तो अपने प्यारे बेटे की प्रीति थी, दूसरी ओर बिरादरी का भय मारे डालता था। जिस लड़के के लिए रोते-रोते आँखें फूट गयीं, आज वही सामने खड़ा आँखों में आँसू भरे कहता है, पिता जी ! मुझे अपनी गोद में लीजिए और मैं

पत्थर की तरह अचल खड़ा हूँ। शोक ! इन निर्दयी भाइयों को किस तरह समझाऊँ, क्या करूँ क्या न करूँ।

लेकिन माँ की ममता उमड़ आयी, देवकी से न रहा गया। उसने अधीर हो कर कहा–मैं अपने लाल को अपने घर रखूँगी और कलेजे से लगाऊँगी। इतने दिनों के बाद मैंने उसे पाया है, अब उसे नहीं छोड़ सकती।

जगतसिंह रुष्ट हो कर बोले–चाहे बिरादरी छूट ही क्यों न जाय ?

देवकी ने भी गरम होकर जवाब दिया–हाँ, चाहे बिरादरी छूट ही जाय। लड़के-बालों ही के लिए आदमी आड़ पकड़ता है। जब लड़का ही न रहा तो भला बिरादरी किस काम आवेगी ?

इस पर कई ठाकुर लाल-लाल आँखें निकालकर बोले–ठकुराइन ? बिरादरी की तो तुम खूब मर्यादा करती हो। लड़का चाहे किसी रास्ते पर जाय, लेकिन बिरादरी चूँ तक न करे ! ऐसी बिरादरी कहीं और होगी ! हम साफ़-साफ़ कहे दते हैं कि अगर यह लड़का तुम्हारे घर में रहा तो बिरादरी भी बता देगी कि वह क्या कर सकती है?

जगतसिंह कभी-कभी जादोराय से रुपये उधार लिया करते थे। मधुर स्वर से बोले–भाभी ! बिरादरी थोड़े ही कहती है कि तुम लड़के को घर से निकाल दो। लड़का इतने दिनों के बाद घर आया है, हमारे सिर, आँखों पर रहे। बस, ज़रा खाने-पीने और छूत-छात का बचाव बना रहना चाहिए। बोलो, जादो भाई अब बिरादरी को कहाँ तक दबाना चाहते हो?

जादोराय ने साधो की तरफ करुणा-भरे नेत्रों से देख कर कहा–बेटा ! जहाँ तुमने हमारे साथ इतना सलूक किया है, वहाँ जगत भाई की इतनी कही और मान लो।

साधो ने कुछ तीक्ष्ण शब्दों में कहा–क्या मान लूँ ? यही कि अपनों में गैर बन कर रहूँ, अपमान सहूँ, मिट्टी का घड़ा भी मेरे छूने से अशुद्ध हो जाय ! न यह मेरा किया न होगा, मैं इतना निर्लज्ज नहीं हूँ। जादोराय को पुत्र की यह कठोरता अप्रिय मालूम हुई। वे चाहते थे कि इस वक्त बिरादरी के लोग जमा हैं, उनके सामने किसी तरह समझौता हो जाय, फिर कौन देखता है कि हम उसे किस तरह रखते हैं। चिढ़ कर बोले–इतनी बात तो तुम्हें माननी ही पड़ेगी।

साधोराय इस रहस्य को न समझ सका। बाप की इस बात में उसे निष्ठुरता की झलक दिखायी पड़ी। बोला–मैं आपका लड़का हूँ। आपके लड़के की तरह रहूँगा। आपके प्रेम और भक्ति की प्रेरणा मुझे यहाँ तक लायी है। मैं अपने घर में रहने आया हूँ। अगर यह नहीं है तो मेरे लिए इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है कि मैं जितनी जल्दी हो सके, यहाँ से भाग जाऊँ। जिनका खून सफेद है, उनके बीच में रहना व्यर्थ है। देवकी ने रो कर कहा –लल्लू, मैं तुम्हें अब न जाने दूँगी। साधो की आँखें भर आयीं, पर मुस्करा कर बोला–मैं तो तेरी थाली में खाऊँगा।

देवकी ने उसे ममता और प्रेम की दृष्टि से देख कर कहा–मैंने तो तुझे छाती से दूध पिलाया है, तू मेरी थाली में खायगा तो क्या ? मेरा बेटा ही तो है, कोई और तो नहीं हो गया!

साधो इन बातों को सुनकर मतवाला हो गया। इनमें कितना स्नेह, कितना अपनापन था। बोला–माँ, आया तो मैं इसी इरादे से था कि अब कहीं न जाऊँगा, लेकिन बिरादरी ने मेरे कारण यदि तुम्हें जाति-च्युत कर दिया तो मुझसे न सहा जायगा। मुझसे इन गँवारों का

कोरा अभिमान न देखा जायगा, इसलिए इस वक्त मुझे जाने दो। जब मुझे अवसर मिला करेगा, तुम्हें देख जाया करूँगा। तुम्हारा प्रेम मेरे चित्त से नहीं जा सकता। लेकिन यह असम्भव है कि मैं इस घर में रहूँ और अलग खाना खाऊँ, अलग बैठूँ। इसके लिए मुझे क्षमा करना।

देवकी घर में से पानी लायी। साधो हाथ-मुँह धोने लगा। शिवगौरी ने माँ का इशारा पाया तो डरते-डरते साधो के पास गयी। साधो ने आदरपूर्वक दंडवत की। साधो ने पहले उन दोनों को आश्चर्य से देखा, फिर अपनी माँ को मुस्कराते देख कर समझ गया। दोनों लड़कों को छाती से लगा लिया और तीनों भाई-बहन प्रेम से हँसने-खेलने लगे। माँ खड़ी यह दृश्य देखती थी और उमंग से फूली न समाती थी।

जलपान करके साधो ने बाइसिकल सँभाली और माँ-बाप के सामने सिर झुका कर चल खड़ा हुआ। वहीं, जहाँ से तंग हो कर आया था, उसी क्षेत्र में, जहाँ कोई अपना न था! देवकी फूट-फूटकर रो रही थी और जादोराय आँखों में आँसू भरे, हृदय में एक ऐंठन-सी अनुभव करता हुआ सोचता था, हाय ! मेरे लाल, तू मुझसे अलग हुआ जाता है। ऐसा योग्य और होनहार लड़का हाथ से निकला जाता है और केवल इसलिए कि अब हमारा खून सफेद हो गया है।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'जमाना', जुलाई, 1914 में 'खून सफेद' शीर्षक से प्रकाशित। उर्दू 'प्रेम पचीसी' में संकलित। हिन्दी रूप इसी नाम से 'मानसरोवर' भाग-8 में संकलित।]

शिकारी राजकुमार

मई का महीना और मध्याह्न का समय था। सूर्य की आँखें सामने से हट कर सिर पर जा पहुँची थीं, इसलिए उनमें शील न था। ऐसा विदित होता था मानो पृथ्वी उसके भय से थर-थर काँप रही थी। ठीक ऐसे ही समय एक मनुष्य एक हिरन के पीछे उन्मत्त भाव से घोड़ा फेंके चला आता था। उसका मुँह लाल हो रहा था और घोड़ा पसीने से लथ-पथ। किन्तु मृग भी ऐसा भागता था मानो वायुवेग से जा रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि उसके पद स्पर्श नहीं करते। इसी दौड़ की जीत-हार पर उसका जीवन निर्भर था।

पछुवा हवा बड़े जोर से चल रही थी। ऐसा जान पड़ता था मानो अग्नि और धूल की वर्षा हो रही हो। घोड़े के नेत्र रक्तवर्ण हो रहे थे और अश्वारोही के सारे शरीर का रुधिर उबल-सा रहा था। किंतु मृग का भागना उसे इस बात का अवसर न देता था कि वह अपनी बन्दूक को सम्हाले। कितने ही ऊख के खेत, ढाक के वन और पहाड़ सामने पड़े और तुरन्त ही 'सपने की सम्पत्ति' की भाँति अदृश्य हो गये।

क्रमशः मृग पीछे की ओर मुड़ा। सामने एक नदी का बड़ा ही ऊँचा कगार, दीवार की भाँति खड़ा था। आगे भागने की राह बंद थी, और उस पर से कूदना मानो मृत्यु के मुख में कूदना था। हिरन का शरीर शिथिल पड़ गया। उसने एक करुणा-भरी दृष्टि चारों ओर फेरी। किंतु उसे हर तरफ मृत्यु ही मृत्यु दृष्टिगोचर होती थी। अश्वारोही के लिए इतना

समय बहुत था। उसकी बन्दूक से गोली क्या छूटी मानो मृत्यु ने एक महा भयंकर जयध्वनि के साथ अग्नि की एक प्रचंड ज्वाला उगल दी। हिरन भूमि पर लोट गया।

2

मृग पृथ्वी पर पड़ा तड़प रहा था और अश्वारोही की भयंकर और हिंसाप्रिय आँखों से प्रसन्नता की ज्योति निकल रही थी। ऐसा जान पड़ता था कि उसने असाध्य साधन कर लिया। उसने उस पशु के शव को नापने के बाद उसके सींगों को बड़े ध्यान से देखा और मन ही मन प्रसन्न हो रहा था कि इससे कमरे की सजावट दूनी हो जायगी और नेत्र सर्वदा उस सजावट का आनन्द सुख से भोगेंगे।

जब तक वह इस ध्यान में मग्न था उसको सूर्य की प्रचंड किरणों का लेशमात्र भी ध्यान न था; किंतु ज्यों ही उसका ध्यान उधर से फिरा, वह उष्णता से विह्वल हो उठा और करुणापूर्ण आँखें नदी की ओर डालीं; लेकिन वहाँ तक पहुँचने का कोई भी मार्ग न देख पड़ा और न कोई वृक्ष ही देख पड़ा, जिसकी छाँह में जरा विश्राम करता।

इसी चिंतावस्था में एक अति दीर्घकाय पुरुष नीचे से उछल कर कगारे के ऊपर आया और अश्वारोही के सम्मुख खड़ा हो गया। अश्वारोही उसको देख बहुत अचंभित हुआ। नवागंतुक एक बहुत ही सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट मनुष्य था। मुख के भाव उसके हृदय की स्वच्छता और चरित्र की निर्मलता का पता देते थे। वह बहुत ही दृढ़प्रतिज्ञ, आशा-निराशा तथा भय से बिलकुल बेपरवाह-सा जान पड़ता था।

मृग को देख कर उस संन्यासी ने बड़े स्वाधीन भाव से कहा—राजकुमार, तुम्हें आज बहुत ही अच्छा शिकार हाथ लगा। इतना बड़ा मृग इस सीमा में कदाचित् ही दिखायी पड़ता है।

राजकुमार के अचम्भे की सीमा न रही। उसने देखा कि साधु उसे पहचानता है।

राजकुमार बोला—जी हाँ, मैं भी यही खयाल करता हूँ। मैंने भी आज तक इतना बड़ा हिरन नहीं देखा। लेकिन उसके पीछे आज बहुत हैरान होना पड़ा।

संन्यासी ने दयापूर्वक कहा—निःसंदेह तुम्हें दुःख उठाना पड़ा होगा। तुम्हारा मुख लाल हो रहा है और घोड़ा भी बेदम हो गया है। क्या तुम्हारे संगी बहुत पीछे रह गये ?

इसका उत्तर राजकुमार ने बिलकुल बेपरवाही से दिया, मानो उसे इसकी कुछ भी चिंता न थी।

संन्यासी ने कहा—यहाँ ऐसी कड़ी धूप और आँधी में खड़े तुम कब तक उनकी राह देखोगे ? मेरी कुटी में चल कर जरा विश्राम कर लो। तुम्हें परमात्मा ने ऐश्वर्य दिया है, लेकिन कुछ देर के लिए संन्यासाश्रम का रंग भी देखो और वनस्पतियों और नदी के शीतल जल का स्वाद लो।

यह कह कर संन्यासी ने उस मृग के रक्तमय मृत शरीर को ऐसी सुगमता से उठा कर कंधे पर धर लिया मानो वह एक घास का गट्ठा था, और राजकुमार से कहा—मैं तो प्रायः कगार से ही नीचे उतर जाया करता हूँ, किंतु तुम्हारा घोड़ा सम्भव है, न उतर सके। अतएव एक दिन की राह छोड़ कर छह मास की राह चलेंगे। घाट यहाँ से थोड़ी ही दूर है

और वहीं मेरी कुटी है।

राजकुमार संन्यासी के पीछे चला। उसे संन्यासी के शारीरिक बल पर अचम्भा हो रहा था। आध घण्टे तक दोनों चुपचाप चलते रहे। इसके बाद ढालू भूमि मिलनी शुरू हुई और थोड़ी देर में घाट आ पहुँचा। वहीं कदम्बकुंज की घनी छाया में जहाँ सर्वदा मृगों की सभा सुशोभित रहती, नदी की तरंगों का मधुर स्वर सर्वदा सुनायी दिया करता है, जहाँ हरियाली पर मयूर थिरकता, कपोतादि पक्षी मस्त हो कर झूमते, लता-द्रुमादि से सुशोभित संन्यासी की एक छोटी-सी कुटी थी।

3

संन्यासी की कुटी हरे-भरे वृक्षों के नीचे सरलता और संतोष का चित्र बन रही थी। राजकुमार की अवस्था वहाँ पहुँचते ही बदल गयी थी। यहाँ की शीतल वायु का प्रभाव उस पर ऐसा पड़ा जैसा मुरझाते हुए वृक्ष पर वर्षा का। उसे आज विदित हुआ कि तृप्ति कुछ स्वादिष्ट व्यंजनों ही पर निर्भर नहीं है और न निद्रा सुनहरे तकियों की ही आवश्यकता रखती है।

शीतल, मंद, सुगंध वायु चल रही थी। सूर्य भगवान् अस्ताचल को पयान करते हुए इस लोक को तृषित नेत्रों से देखते जाते थे और संन्यासी एक वृक्ष के नीचे बैठा हुआ गा रहा था—

'उधो कर्मन की गति न्यारी'

राजकुमार के कानों में स्वर की भनक पड़ी, उठ बैठा और सुनने लगा। उसने बड़े-बड़े कलावंतों के गाने सुने थे, किंतु आज जैसा आनंद उसे कभी प्राप्त नहीं हुआ था। इस पद ने उसके ऊपर मानो मोहिनी-मंत्र का जाल बिछा दिया वह बिलकुल बेसुध हो गया। संन्यासी की धुन में कोयल की कूक सरीखी मधुरता थी।

सम्मुख नदी का जल गुलाबी चादर की भाँति प्रतीत होता था। कूलद्वय की रेत चंदन की चौकी-सी दीखती थी। राजकुमार को यह दृश्य स्वर्गीय-सा जान पड़ने लगा। उस पर तैरने वाले जल-जंतु ज्योतिर्मय आत्मा के सदृश देख पड़ते थे, जो गाने का आनंद उठा कर मत्त से हो गये थे।

जब गाना समाप्त हो गया, राजकुमार जा कर संन्यासी के सामने बैठ गया और भक्तिपूर्वक बोला—महात्मन् ! आपका प्रेम और वैराग्य सराहनीय है। मेरे हृदय पर इसका जो प्रभाव पड़ा है, वह चिरस्थायी रहेगा। यद्यपि सम्मुख प्रशंसा करना सर्वथा अनुचित है, किंतु इतना मैं अवश्य कहूँगा कि आपके प्रेम की गम्भीरता सराहनीय है। यदि मैं गृहस्थी के बंधन में न पड़ा होता तो आपके चरणों से पृथक् होने का ध्यान स्वप्न में भी न करता।

इसी अनुरागावस्था में राजकुमार कितनी ही ऐसी बातें कह गया जो कि स्पष्ट रूप से उसके आंतरिक भावों का विरोध करती थीं। संन्यासी मुस्कराकर बोला—तुम्हारी बातों से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। और मेरी उत्कट इच्छा है कि तुमको कुछ ठहराऊँ, किंतु यदि मैं जाने भी दूँ तो इस सूर्यास्त के समय तुम जा नहीं सकते। तुम्हारा रीवाँ पहुँचना दुष्कर हो जायगा।

तुम जैसे आखेट-प्रिय हो वैसा मैं भी हूँ। हम दोनों को अपने-अपने गुण दिखाने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ है। कदाचित् तुम भय से न रुकते, किंतु शिकार के लालच से अवश्य रहोगे।

राजकुमार को तुरंत ही मालूम हो गया कि जो बातें उन्होंने अभी-अभी संन्यासी से कही थीं, वे बिल्कुल ऊपरी और दिखावे की थीं और हार्दिक भाव उनसे प्रकट नहीं हुए थे। आजन्म संन्यासी के समीप रहना तो दूर, वहाँ एक रात बिताना उसको कठिन जान पड़ने लगा। घरवाले उद्विग्न हो जायँगे और मालूम नहीं क्या सोचेंगे। साथियों की जान संकट में होगी। घोड़ा बेदम हो रहा है। उस पर चालीस मील जाना बहुत ही कठिन और बड़े साहस का काम है। लेकिन यह महात्मा शिकार खेलते हैं—यह बड़ी अजीब बात है। कदाचित् यह वेदांती हैं, ऐसे वेदांती जो जीवन और मृत्यु मनुष्य के हाथ नहीं मानते। इनके साथ शिकार में बड़ा आनंद आवेगा।

यह सब सोच-विचार कर उन्होंने संन्यासी का आतिथ्य स्वीकार किया उन्हें धन्यवाद दिया और अपने भाग्य की प्रशंसा की, जिसने उन्हें कुछ काल तक और साधु संग से लाभ उठाने का अवसर दिया।

4

रात दस बजे का समय था। घनी अँधियारी छायी हुई थी। संन्यासी ने कहा—अब हमारे चलने का समय हो गया है।

राजकुमार पहले ही से प्रस्तुत था। बंदूक कंधे पर रख कर बोला—इस अंधकार में शूकर अधिकतर मिलेंगे; किंतु ये पशु बड़े भयानक हैं।

संन्यासी ने एक मोटा हाथ में लिया और कहा—कदाचित् इससे भी अच्छे शिकार हाथ आवें। मैं जब अकेला जाता हूँ, तो कभी खाली नहीं लौटता। आज तो हम दो हैं।

दोनों शिकारी नदी के तट पर नालों और रेतों के टीलों को पार करते और झाड़ियों से अटकते चुपचाप चले जा रहे थे। एक ओर श्यामवर्ण नदी थी, जिसमें नक्षत्रों का प्रतिबिम्ब नाचता दिखायी देता था और लहरें गान कर रही थीं। दूसरी ओर घनघोर अंधकार, जिसमें कभी-कभी केवल खद्योतों के चमकने से एक क्षण स्थायी प्रकाश फैल जाता था। मालूम होता था कि वे भी अँधेरे में निकलने से डरते हैं।

ऐसी अवस्था में कोई एक घंटा चलने के बाद वह एक ऐसे स्थान पर पहुँचे, जहाँ एक ऊँचे टीले पर घने वृक्षों के नीचे आग जलती दिखायी पड़ी। उसी समय इन लोगों को मालूम हुआ कि संसार में इनके अतिरिक्त और भी कई वस्तुएँ हैं।

संन्यासी ने ठहरने का संकेत किया। दोनों एक पेड़ की ओट में खड़े हो कर ध्यानपूर्वक देखने लगे। राजकुमार ने बंदूक भर ली। टीले पर एक बड़ा छायादार वट-वृक्ष था। उसी के नीचे अंधकार में दस-बारह मनुष्य अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित मिर्जई पहने चरस का दम लगा रहे थे। इनमें से प्रायः सभी लम्बे थे। सभी के सीने चौड़े और सभी हृष्ट-पुष्ट। मालूम होता था कि सैनिकों का एक दल विश्राम कर रहा है।

राजकुमार ने कहा—यह लोग शिकारी हैं? संन्यासी ने धीरे से कहा—बड़े शिकारी

हैं। ये राह चलते यात्रियों का शिकार करते हैं। ये बड़े भयानक हिंस्र पशु हैं; इनके अत्याचार से गाँव के गाँव बर्बाद हो गये और जितनों को इन्होंने मारा है, उनका हिसाब परमात्मा ही जानता है। यदि आपको शिकार करना हो तो इनका शिकार कीजिए। ऐसा शिकार आप बहुत प्रयत्न करने पर भी नहीं पा सकते। यही पशु हैं, जिन पर आपको शस्त्रों का प्रहार करना उचित है। राजाओं और अधिकारियों के शिकार यही हैं। इससे आपका नाम और यश फैलेगा।

राजकुमार के जी में आया कि दो-एक को मार डालें, किंतु संन्यासी ने रोका और कहा—इन्हें छेड़ना ठीक नहीं। अगर यह कुछ उपद्रव न करें, तो भी बच कर निकल जायँगे। आगे चलो, सम्भव है कि इससे भी अच्छे शिकार हाथ आवें।

तिथि सप्तमी थी। चंद्रमा भी उदय हो गया। इन लोगों ने नदी का किनारा छोड़ दिया था। जंगल भी पीछे रह गया था। सामने एक कच्ची सड़क दिखायी पड़ी और थोड़ी देर में कुछ बस्ती भी देख पड़ने लगी। संन्यासी एक विशाल प्रासाद के सामने आ कर रुक गये और राजकुमार से बोले—आओ, इस मौलसरी के वृक्ष पर बैठें। परन्तु देखो, बोलना मत। नहीं तो दोनों की जान के लाले पड़ जायेंगे। इसमें एक बड़ा भयानक हिंस्र जीव रहता है, जिसने अनगिनत जीवधारियों का वध किया है। कदाचित् हम लोग आज इसको संसार से मुक्त कर दें।

राजकुमार बहुत प्रसन्न हुआ। सोचने लगा, चलो, रात भर की दौड़ें तो सुफल हुई। दोनों मौलसरी पर चढ़ कर बैठ गये। राजकुमार ने अपनी बंदूक सँभाल ली। और शिकार की, जिसे वह तेंदुआ समझे हुए था, बाट देखने लगा।

रात आधी से अधिक व्यतीत हो चुकी थी। यकायक महल के समीप कुछ हलचल मालूम हुई और बैठक के द्वार खुल गये। मोमबत्तियों के जलाने से सारा हाता प्रकाशमान हो गया। कमरे के हर कोने में सुख की सामग्री दिखायी दे रही थी। बीच में एक हृष्ट-पुष्ट मनुष्य गले में रेशमी चादर डाले, माथे पर केसर का अर्ध लम्बाकार तिलक लगाये, मसनद के सहारे बैठा सुनहरी मुँहनाल से लच्छेदार धुआँ फेंक रहा था। इतने ही में उन्होंने देखा कि नर्तकियों के दल के दल चले आ रहे हैं। उसके हाव-भाव व कटाक्ष के शर चलने लगे। समाजियों ने सुर मिलाया। गाना आरम्भ हुआ और साथ ही साथ मद्यपान भी चलने लगा।

राजकुमार ने अचंभित हो कर पूछा—यह तो कोई बहुत बड़ा रईस जान पड़ता है ?

संन्यासी ने उत्तर दिया—नहीं, यह रईस नहीं हैं, एक बड़े मंदिर के महंत हैं, साधु हैं। संसार का त्याग कर चुके हैं। सांसारिक वस्तुओं की ओर आँख नहीं उठाते, पूर्ण ब्रह्मज्ञान की बातें करते हैं। यह सब सामान इनकी आत्मा की प्रसन्नता के लिए है। इंद्रियों को वश में किये हुए इन्हें बहुत दिन हुए। सहस्रों सीधे-सादे मनुष्य इन पर विश्वास करते हैं। इनको अपना देवता समझते हैं—यदि आप शिकार करना चाहते हैं तो इनका कीजिए। यही राजाओं और अधिकारियों के शिकार हैं। ऐसे रँगे हुए सियारों से संसार को मुक्त करना आपका परम धर्म है। इससे आपकी प्रजा का हित होगा तथा आपका नाम और यश फैलेगा।

5

दोनों शिकारी नीचे उतरे। संन्यासी ने कहा–अब रात अधिक बीत चुकी है। तुम बहुत थक गये होंगे। किंतु राजकुमारों के साथ आखेट करने का अवसर मुझे बहुत कम प्राप्त होता है। अतएव एक शिकार का पता और लगा कर तब लौटेंगे।

राजकुमार को इन शिकारों में सच्चे उपदेश का सुख प्राप्त हो रहा था। बोला–स्वामी जी, थकने का नाम न लीजिए। यदि मैं वर्षों आपकी सेवा में रहता तो और न जाने कितने ऐसे आखेट करना सीख जाता !

दोनों फिर आगे बढ़े। अब रास्ता स्वच्छ और चौड़ा था। हाँ, सड़क कदाचित् कच्ची ही थी। सड़क के दोनों ओर वृक्षों की पंक्तियाँ थीं। किसी-किसी आम्र वृक्ष के नीचे रखवाले सो रहे थे। घंटे भर बाद दोनों शिकारियों ने एक ऐसी बस्ती में प्रवेश किया, जहाँ की सड़कों, लालटेनों ओर अट्टालिकाओं से मालूम होता था कि कोई बड़ा नगर है। संन्यासी जी एक विशाल भवन के सामने एक वृक्ष के नीचे ठहर गये और राजकुमार से बोले–यह सरकारी कचहरी है। यहाँ राज्य का एक बड़ा कर्मचारी रहता है। उसे सूबेदार कहते हैं। इसकी कचहरी दिन को भी लगती है और रात को भी। यहाँ न्याय सुवर्ण और रत्नादिकों के मोल बिकता है। यहाँ की न्यायप्रियना द्रव्य पर निर्भर है। धनवान दरिद्रों को पैरों तले कुचलते हैं और उनकी गोहार कोई भी नहीं सुनता।

यही बातें हो रही थीं कि यकायक कोठे पर दो आदमी दिखलायी पड़े। दोनों शिकारी वृक्ष के ओट में छिप गये। संन्यासी ने कहा–शायद सूबेदार साहब कोई मामला तय कर रहे हैं।

ऊपर से आवाज आयी, तुमने एक विधवा स्त्री की जायदाद ले ली है, मैं इसे भली-भाँति जानता हूँ। यह कोई छोटा मामला नहीं है। इसमें एक सहस्र से कम पर मैं बातचीत करना नहीं चाहता।

राजकुमार में इससे अधिक सुनने की शक्ति न रही। क्रोध के मारे नेत्र लाल हो गये। यही जी चाहता था कि इस निर्दयी का अभी वध कर दें; किंतु संन्यासी जी ने रोका। बोले–आज इस शिकार का समय नहीं है। यदि आप ढूँढ़ेंगे तो ऐसे शिकार बहुत मिलेंगे। मैंने इनके कुछ ठिकाने बतला दिये हैं। अब प्रातःकाल होने में अधिक विलम्ब नहीं है। कुटी अभी यहाँ से दस मील होगी। आइए. शीघ्र चलें।

6

दोनों शिकारी तीन बजते-बजते फिर कुटी में लौट आये। उस समय बड़ी सुहावनी रात थी। शीतल समीर ने हिला-हिला कर वृक्षों और पत्तों की निद्रा भंग करना आरम्भ कर दिया था।

आध घंटे में राजकुमार तैयार हो गये। संन्यासी को अपना विश्वास और कृतज्ञता प्रकट करते हुए उनके चरणों पर अपना मस्तक नवाया और घोड़े पर सवार हो गये।

संन्यासी ने उनकी पीठ पर कृपा-पूर्वक हाथ फेरा। आशीर्वाद दे कर बोले–राजकुमार, तुमसे भेंट होने से मेरा चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। परमात्मा ने तुम्हें अपनी सृष्टि पर राज

करने हेतु जन्म दिया है। तुम्हारा धर्म है कि सदा प्रजापालक बनो। तुम्हें पशुओं का वध करना उचित नहीं। इन दीन पशुओं के वध करने में कोई बहादुरी नहीं, कोई साहस नहीं। सच्चा साहस और सच्ची बहादुरी दोनों की रक्षा और उनकी सहायता करने में है। विश्वास मानो, जो मनुष्य केवल चित्त-विनोदार्थ जीव-हिंसा करता है, वह निर्दयी घातक से भी कठोर-हृदय है। वह घातक के लिए जीविका है, किंतु शिकारी के लिए केवल दिल बहलाने का एक सामान। तुम्हारे लिए ऐसे शिकारों की आवश्यकता है, जिससे तुम्हारी प्रजा को सुख पहुँचे। निःशब्द पशुओं का वध न करके तुमको उन हिसंकों के पीछे दौड़ना चाहिए, जो धोखाधड़ी से दूसरों का वध करते हैं। ऐसे आखेट करो जिससे तुम्हारी आत्मा को शांति मिले। तुम्हारी कीर्ति संसार में फैले। तुम्हारा काम वध करना नहीं, जीवित रखना है। यदि वध करो तो केवल जीवित रखने के लिए। यही तुम्हारा धर्म है। जाओ, परमात्मा तुम्हारा कल्याण करें।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू। 'जमाना', अगस्त, 1914 में प्रकाशित। उर्दू 'प्रेम पचीसी' में संकलित। हिन्दी रूप 'शिकारी राजकुमार' शीर्षक से 'स्वदेश', 18 अगस्त, 1919 मे प्रकाशित। इसी नाम से बाद में 'मानसरोवर' भाग-8 में संकलित।]

अपनी करनी

आह, अभागा मैं ! मेरे कर्मो के फल ने आज यह दिन दिखाए कि अपमान भी मेरे ऊपर हंसता है। और यह सब मैंने अपने हाथों किया। शैतान के सिर इल्जाम क्यों दूं, किस्मत को खरी-खोटी क्यों सुनाऊं, होनी को क्यों रोऊं। जो कुछ किया मैंने जानते और बूझते हुए किया। अभी एक साल गुजरा जब मैं भाग्यशाली था, प्रतिष्ठित था और समृद्धि मेरी चेरी थी। दुनिया की नेमतें मेरे सामने हाथ बांधे खड़ी थीं लेकिन आज बदनामी और कंगाली और शर्मिंदगी मेरी दुर्दशा पर आंसू बहाती हैं। मैं ऊंचे खानदान का, बहुत पढ़ा-लिखा आदमी था, फारसी का मुल्ला, संस्कृत का पंडित, अंग्रेजी का ग्रेजुएट। अपने मुंह मियां मिट्ठू क्या बनूं लेकिन रूप भी मुझको मिला था, इतना कि दूसरे मुझसे ईर्ष्या कर सकते थे। गरज एक इंसान को खुशी के साथ जिंदगी बसर करने के लिए जितनी अच्छी चीजों की जरूरत हो सकती है वह सब मुझे हासिल थीं। सेहत का यह हाल कि मुझे कभी सरदर्द की भी शिकायत नहीं हुई। फिटन की सैर, दरिया की दिलफरेबियां, पहाड़ के सुंदर दृश्य—उन खुशियों का जिक्र ही तकलीफदेह है। क्या मजे की जिंदगी थी !

आह, यहां तक तो अपना दर्देदिल सुना सकता हूं लेकिन इसके आगे फिर होंठों पर खामोशी की मुहर लगी हुई है। एक सती-साध्वी, पतिप्राणा स्त्री और दो गुलाब के फूल-से बच्चे इंसान के लिए जिन खुशियों, आरजुओं, हौसलों और दिलफरेबियों का खजाना हो सकते हैं वह सब मुझे प्राप्त था। मैं इस योग्य नहीं कि उस पवित्र स्त्री का नाम जबान पर लाऊं। मैं इस योग्य नहीं कि अपने को उन लड़कों का बाप कह सकूं। मगर नसीब का कुछ ऐसा खेल था कि मैंने उन बिहिश्ती नेमतों की कद्र न की। जिस औरत ने मेरे हुक्म

और अपनी इच्छा में कभी कोई भेद नहीं किया, जो मेरी सारी बुराइयों के बावजूद कभी शिकायत का एक हर्फ जबान पर नहीं लाई, जिसका गुस्सा कभी आंखों से आगे नहीं बढ़ने पाया—गुस्सा क्या था कुआर की बरखा थी, दो-चार हल्की-हल्की बूंदें पड़ीं और फिर आसमान साफ हो गया—अपनी दीवानगी के नशे में मैंने उस देवी की कद्र न की। मैंने उसे जलाया, रुलाया, तड़पाया। मैंने उसके साथ दगा की। आह ! जब मैं दो-दो बजे रात को घर लौटता था तो मुझे कैसे-कैसे बहाने सूझते थे, नित नए हीले गढ़ता था, शायद विद्यार्थी जीवन में जब बैंड के मजे मदरसे जाने की इजाजत न देते थे, उस वक्त भी बुद्धि इतनी प्रखर न थी। और क्या उस क्षमा की देवी को मेरी बातों पर यकीन आता था ? वह भोली थी मगर ऐसी नादान न थी। मेरी खुमार भरी आंखें और मेरे उथले भाव और मेरे झूठे प्रेम-प्रदर्शन का रहस्य क्या उससे छिपा रह सकता था ? लेकिन उसकी रग-रग में शराफत भरी हुई थी, कोई कमीना खयाल उसकी जबान पर नहीं आ सकता था। वह उन बातों का जिक्र करके या अपने संदेहों को खुलेआम दिखलाकर हमारे पवित्र संबंध में खिंचाव या बदमजगी पैदा करना बहुत अनुचित समझती थी। मुझे उसके विचार, उसके माथे पर लिखे मालूम होते थे। उन बदमजगियों के मुकाबले में उसे जलना और रोना ज्यादा पसंद था, शायद वह समझती थी कि मेरा नशा खुद-ब-खुद उतर जाएगा। काश, इस शराफत के बदले उसके स्वभाव में कुछ ओछापन और अनुदारता भी होती। काश, वह अपने अधिकारों को अपने हाथ में रखना जानती। काश, वह इतनी सीधी न होती। काश, वह अपने मन के भावों को छिपाने में इतनी कुशल न होती। काश, वह इतनी मक्कार न होती। लेकिन मेरी मक्कारी और उसकी मक्कारी में कितना अंतर था, मेरी मक्कारी हरामकारी थी, उसकी मक्कारी आत्म-बलिदान।

एक रोज मैं अपने काम से फुर्सत पाकर शाम के वक्त मनोरंजन के लिए आनंदवाटिका में जा पहुंचा और संगमरमर के हौज पर बैठकर मछलियों का तमाशा देखने लगा। एकाएक निगाह ऊपर उठी तो मैंने एक औरत को बेले की झाड़ियों में फूल चुनते देखा। उसके कपड़े मैले थे और जवानी की ताजगी और गर्व को छोड़कर उसके चेहरे में कोई खास बात न थी। उसने मेरी तरफ आंखें उठाई और फिर अपने फूल चुनने में लग गई, गोया उसने कुछ देखा ही नहीं। उसके इस अंदाज ने, चाहे वह उसकी सरलता ही क्यों न रही हो, मेरी वासना को और भी उद्दीप्त कर दिया। मेरे लिए यह एक नई बात थी कि कोई औरत इस तरह देखे कि जैसे उसने नहीं देखा। मैं उठा और धीरे-धीरे, कभी जमीन और कभी आसमान की तरफ ताकते हुए बेले की झाड़ियों के पास जाकर खुद भी फूल चुनने लगा। इस ढिठाई का नतीजा यह हुआ कि वह मालिन की लड़की वहां से तेजी से इस बाग के दूसरे हिस्से में चली गई।

उस दिन से मालूम नहीं वह कौन-सा आकर्षण था जो मुझे रोज शाम के वक्त आनंदवाटिका की तरफ खींच ले जाता। उसे मुहब्बत हर्गिज नहीं कह सकते। अगर मुझे उस वक्त भगवान् न करे, उस लड़की के बारे में कोई शोक-समाचार मिलता तो शायद मेरी आंखों से आंसू भी न निकलते, जोगिया धारण करने की तो चर्चा ही व्यर्थ है। मैं रोज जाता और नए-नए रूप धरकर जाता लेकिन जिस प्रकृति ने मुझे अच्छा रूप-रंग दिया था उसी

ने मुझे वाचालता से वंचित भी कर रखा था। मैं रोज जाता और रोज लौट आता, प्रेम की मंजिल में एक कदम भी आगे न बढ़ पाता था। हां, इतना अलबत्ता हो गया कि उसे वह पहली-सी झिझक न रही।

आखिर इस शांतिपूर्ण नीति को सफल न होते देखकर मैंने एक नई युक्ति सोची। एक रोज मैं अपने साथ अपने शैतान बुलडॉग टामी को भी साथ लेता गया। जब शाम हो गई और वह मेरे धैर्य का नाश करने वाली फूलों से आंचल भरकर अपने घर की ओर चली तो मैंने अपने बुलडॉग को धीरे-से इशारा कर दिया। बुलडॉग उसकी तरफ बाज की तरह झपटा, फूलमती ने एक चीख मारी, दो-चार कदम दौड़ी और जमीन पर गिर पड़ी। अब मैं छड़ी हिलाता, बुलडॉग की तरफ गुस्से भरी आंखों से देखता और हांय- हांय चिल्लाता हुआ दौड़ा और उसे जोर से दो-तीन डंडे लगाए। फिर मैंने बिखरे हुए फूलों को समेटा, सहमी हुई औरत का हाथ पकड़कर उसे बिठा दिया और बहुत लज्जित और दुखी भाव से बोला—यह कितना बड़ा बदमाश है, अब इसे अपने साथ कभी न लाऊंगा। तुम्हें इसने काट तो नहीं लिया ?

फूलमती ने चादर से सर को ढांकते हुए कहा—तुम न आ जाते तो वह मुझे नोच डालता। मेरे तो जैसे मन-मन भर के पैर हो गए थे। मेरा कलेजा तो अभी तक धड़क रहा है।

यह तीर लक्ष्य पर बैठा, खामोशी की मुहर टूट गई, बातचीत का सिलसिला कायम हुआ। बांध में एक दरार हो जाने की देर थी, फिर तो मन की उमंगों ने खुद-ब- खुद काम करना शुरू किया। मैंने जैसे-जैसे जाल फैलाए, जैसे-जैसे स्वांग रचे, वह रंगीन तबीयत के लोग खूब जानते हैं। और यह सब क्यों ? मुहब्बत से नहीं, सिर्फ जरा देर दिल को खुश करने के लिए, सिर्फ उसके भरे-पूरे शरीर और भोलेपन पर रीझकर। यों मैं बहुत नीच प्रकृति का आदमी नहीं हूं। रूप-रंग में फूलमती का इन्दु से मुकाबला न था। वह सुंदरता के सांचे में ढली हुई थी। कवियों ने सौंदर्य की जो कसौटियां बनाई हैं वह सब वहां दिखाई देती थीं। लेकिन पता नहीं क्यों मैंने फूलमती की घुसी हुई आंखों और फूले हुए गालों और मोटे-मोटे होंठों की तरफ अपने दिल का ज्यादा खिंचाव देखा। आना-जाना बढ़ा और महीना भर भी गुजरने न पाया था कि मैं उसकी मुहब्बत के जाल में पूरी तरह फंस गया। मुझे अब घर की सादा जिंदगी में कोई आनंद न आता था। लेकिन दिल ज्यों-ज्यों घर से उचटता जाता था त्यों-त्यों मैं पत्नी के प्रति प्रेम का प्रदर्शन और भी अधिक करता था। मैं उसकी फर्माइशों का इंतजार करता रहता और कभी उसका दिल दुखाने वाली कोई बात मेरी जबान पर न आती। शायद मैं अपनी आंतरिक उदासीनता को शिष्टाचार के पर्दे में छिपाना चाहता था।

धीरे-धीरे दिल की यह कैफियत भी बदल गई और बीवी की तरफ से उदासीनता दिखाई देने लगी। घर में कपड़े नहीं हैं लेकिन मुझसे इतना न होता कि पूछ लूं। सच यह है कि मुझे अब उसकी खातिरदारी करते हुए एक डर-सा मालूम होता था कि कहीं उसकी खामोशी की दीवार टूट न जाए और उसके मन के भाव जबान पर न आ जाएं। यहां तक कि मैंने गिरस्ती की जरूरतों की तरफ से भी आंखें बंद कर लीं। अब मेरा दिल और जान

और रुपया-पैसा सब फूलमती के लिए था। मैं खुद कभी सुनार की दुकान पर न गया था लेकिन आजकल कोई मुझे पहर रात गए एक मशहूर सुनार के मकान पर बैठा हुआ देख सकता था। बजाज की दुकान में भी मुझे रुचि हो गई।

2

एक रोज शाम के वक्त रोज की तरह मैं आनंदवाटिका में सैर कर रहा था और फूलमती सोलहो सिंगार किये, मेरी सुनहरी-रूपहली भेटों से लदी हुई, एक रेशमी साड़ी पहने बाग की क्यारियों में फूल तोड़ रही थी, बल्कि यों कहो कि अपनी चुटकियों में मेरे दिल को मसल रही थी। उसकी छोटी-छोटी आंखें उस वक्त हुस्न के नशे से फैल गई थीं और उनमें शोखी और मुस्कराहट की झलक नजर आती थी।

अचानक महाराजा साहब भी अपने कुछ दोस्तों के साथ मोटर पर सवार आ पहुंचे। मैं उन्हें देखते ही अगवानी के लिए दौड़ा और आदाब बजा लाया। बेचारी फूलमती महाराजा साहब को पहचानती थी लेकिन उसे एक घने कुंज के अलावा और कोई छिपने की जगह न मिल सकी। महाराजा साहब चले तो हौज की तरफ लेकिन मेरा दुर्भाग्य उन्हें उसी क्यारी पर ले चला जिधर फूलमती छिपी हुई थर-थर कांप रही थी।

महाराजा साहब ने उसकी तरफ आश्चर्य से देखा और बोले—यह कौन औरत है ? सब लोग मेरी ओर प्रश्न भरी आंखों से देखने लगे और मुझे भी उस वक्त यही ठीक मालूम हुआ कि इसका जवाब मैं ही दूं वर्ना फूलमती न जाने क्या आफत ढा दे। लापरवाही के अंदाज से बोला—इसी बाग के माली की लड़की है, यहां फूल तोड़ने आई होगी।

फूलमती लज्जा और भय के मारे जमीन में धंसी जाती थी। महाराजा साहब ने उसे सर से पांव तक गौर से देखा और तब संदेहशील भाव से मेरी तरफ देखकर बोले—यह माली की लड़की है।

मैं इसका क्या जवाब देता। इसी बीच कम्बख्त दुर्जन माली भी अपनी फटी हुई पाग संभालता, हाथ में कुदाल लिए दौड़ता हुआ आया और सर को घुटनों से मिलाकर महाराज को प्रणाम किया। महाराज ने जरा तेज लहजे में पूछा—यह तेरी लड़की है ?

माली के होश उड़ गए, कांपता हुआ बोला—हुजूर !

महाराज—तेरी तनख्वाह क्या है ?

दुर्जन—हुजूर, पांच रुपये।

महाराज—यह लड़की कुंआरी है या ब्याही ?

दुर्जन—हुजूर, अभी कुंआरी है।

महाराज ने गुस्से में कहा—या तो तू चोरी करता है या डाका मारता है वर्ना यह कभी नहीं हो सकता कि तेरी लड़की अमीरजादी बनकर रह सके। मुझे इसी वक्त इसका जवाब देना होगा वर्ना मैं तुझे पुलिस के सुपुर्द कर दूंगा। ऐसे चाल-चलन के आदमी को मैं अपने यहां नहीं रख सकता।

माली की तो घिग्घी बंध गई और मेरी यह हालत थी कि काटो तो बदन में लहू नहीं। दुनिया अंधेरी मालूम होती थी। मैं समझ गया कि आज मेरी शामत सर पर सवार है। वह

मुझे जड़ से उखाड़कर दम लेगी। महाराजा साहब ने माली को जोर से डांटकर पूछा—तू खामोश क्यों है, बोलता क्यों नहीं ?

दुर्जन फूट-फूटकर रोने लगा। जब जरा आवाज सुधरी तो बोला—हुजूर, बाप-दादे से सरकार का नमक खाता हूं, अब मेरे बुढ़ापे पर दया कीजिए, यह सब मेरे फूटे नसीबों का फेर है धर्मावतार। इस छोकरी ने मेरी नाक कटा दी, कुल का नाम मिटा दिया। अब मैं कहीं मुंह दिखाने लायक नहीं हूं। इसको सब तरह से समझा-बुझाकर हार गए हुजूर, लेकिन मेरी बात सुनती ही नहीं तो क्या करूं। हुजूर माई-बाप हैं, आपसे क्या पर्दा करूं, उसे अब अमीरों के साथ रहना अच्छा लगता है और आजकल के रईसों और अमीरों को क्या कहूं, दीनबंधु सब जानते हैं।

महाराजा साहब ने जरा देर गौर करके पूछा—क्या उसका किसी सरकारी नौकर से संबंध है ?

दुर्जन ने सर झुकाकर कहा—हुजूर।

महाराजा साहब—वह कौन आदमी है, तुम्हें उसे बतलाना होगा।

दुर्जन—महाराज जब पूछेंगे बता दूंगा, सांच को आंच क्या।

मैंने तो समझा था कि शायद इसी वक्त सारा पर्दाफाश हुआ जाता है लेकिन महाराजा साहब ने अपने दरबार के किसी मुलाजिम की इज्जत को इस तरह मिट्टी में मिलाना ठीक नहीं समझा। वे वहां से टहलते हुए मोटर पर बैठकर महल की तरफ चले।

3

इस मनहूस वाकये के एक हफ्ते बाद एक रोज मैं दरबार से लौटा तो मुझे अपने घर में से एक बूढ़ी औरत बाहर निकलती हुई दिखाई दी। उसे देखकर मैं ठिठका। उसके चेहरे पर वह बनावटी भोलापन था जो कुटनियों के चेहरे की खास बात है। मैंने उसे डांटकर पूछा—तू कौन है, यहां क्यों आई है ?

बुढ़िया ने दोनों हाथ उठाकर मेरी बलाएं लीं और बोली—बेटा, नाराज न हो, गरीब भिखारी हूं, मालकिन का सुहाग भरपूर रहे, उसे जैसा सुनती थी वैसा ही पाया। यह कहकर उसने जल्दी से कदम उठाए और बाहर चली गई। मेरे गुस्से का पारा चढ़ा, मैंने घर में जाकर पूछा—यह कौन औरत आई थी ?

मेरी बीवी ने सर झुकाए हुए धीरे-से जवाब दिया—क्या जानूं, कोई भिखारिन थी।

मैंने कहा—भिखारिनों की सूरत ऐसी नहीं हुआ करती, यह तो मुझे कुटनी-सी नजर आती है। साफ-साफ बताओ उसके यहां आने का क्या मतलब था ?

लेकिन बजाय इसके कि इन संदेह भरी बातों को सुनकर मेरी बीवी गर्व से सिर उठाए और मेरी तरफ उपेक्षा भरी आंखों से देखकर अपनी साफदिली का सुबूत दे, उसने सर झुकाए हुए जवाब दिया—मैं उसके पेट में थोड़े ही बैठी थी। भीख मांगने आई थी, भीख दे दी, किसी के दिल का हाल कोई क्या जाने !

उसके लहजे और अंदाज से पता चलता था कि वह जितना जबान से कहती है उससे बहुत ज्यादा उसके दिल में है। झूठा आरोप लगाने की कला में वह अभी बिल्कुल

कच्ची थी वर्ना तिरिया चरित्तर की थाह किसे मिलती है। मैं देख रहा था कि उसके हाथ-पांव थरथरा रहे हैं। मैंने झपटकर उसका हाथ पकड़ा और उसके सर को ऊपर उठाकर बड़े गंभीर क्रोध से बोला—इन्दु, तुम जानती हो कि मुझे तुम्हारा कितना एतबार है लेकिन अगर तुमने इसी वक्त सारी घटना सच-सच न बतला दी तो मैं नहीं कह सकता कि इसका नतीजा क्या होगा। तुम्हारा ढंग बतलाता है कि कुछ-न-कुछ दाल में काला जरूर है। यह खूब समझ रखो कि मैं अपनी इज्जत को तुम्हारी और अपनी जानों से ज्यादा अजीज समझता हूं। मेरे लिए यह डूब मरने की जगह है कि मैं अपनी बीवी से इस तरह की बातें करूं, उसकी ओर से मेरे दिल में संदेह पैदा हो। मुझे अब ज्यादा सब्र की गुंजाइश नहीं है। बोलो, क्या बात है ?

इन्दुमती मेरे पैरों पर गिर पड़ी और रोकर बोली—मेरा कुसूर माफ कर दो।

मैंने गरजकर कहा—वह कौन-सा कुसूर है ?

इन्दुमती ने संभलकर जवाब दिया—तुम अपने दिल में इस वक्त जो खयाल कर रहे हो उसे एक पल के लिए भी वहां न रहने दो, वर्ना समझ लो कि आज ही इस जिंदगी का खात्मा है। मुझे नहीं मालूम था कि तुम मेरी तरफ से ऐसे खयाल रखते हो। मेरा परमात्मा जानता है कि तुमने मेरे ऊपर जो जुल्म किए हैं उन्हें मैंने किस तरह झेला है और अब भी सब कुछ झेलने के लिए तैयार हूं। मेरा सर तुम्हारे पैरों पर है, जिस तरह रखोगे, रहूंगी। लेकिन आज मुझे मालूम हुआ कि तुम जैसे खुद हो वैसा ही दूसरों को समझते हो। मुझसे भूल अवश्य हुई है लेकिन उस भूल की यह सजा नहीं कि तुम मुझ पर ऐसे संदेह करो। मैंने उस औरत की बातों में आकर अपने घर का सारा कच्चा चिट्ठा बयान कर दिया। मैं समझती थी कि मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए लेकिन कुछ तो उस औरत की हमदर्दी और कुछ मेरे अंदर सुलगती हुई आग ने मुझसे यह भूल करवाई और इसके लिए तुम जो सजा दो वह मेरे सर आंखों पर।

मेरा गुस्सा जरा धीमा हुआ। बोला—तुमने उससे क्या कहा ?

इन्दुमती ने जवाब दिया—घर का जो कुछ हाल है, तुम्हारी बेवफाई, तुम्हारी लापरवाही, तुम्हारी घर की जरूरतों की फिक्र न रखना। अपनी बेवकूफी को क्या कहूं, मैंने उससे यहां तक कह दिया कि इधर तीन महीने से उन्होंने घर के लिए कुछ खर्च भी नहीं दिया और इसकी चोट मेरे गहनों पर पड़ी। तुम्हें शायद मालूम नहीं कि इन तीन महीनों में मेरे साढ़े चार सौ रुपये के जेवर बिक गए। न मालूम क्यों मैं उससे यह सब कुछ कह गई। जब इंसान का दिल जलता है तो जबान तक उसकी आंच आ ही जाती है। मगर मुझसे जो कुछ खता हुई उससे कई गुनी सख्त सजा तुमने मुझे दी है, मेरा बयान लेने का भी सब्र न हुआ। खैर, तुम्हारे दिल की कैफियत मुझे मालूम हो गई, तुम्हारा दिल मेरी तरफ से साफ नहीं है, तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं रहा वर्ना एक भिखारिन औरत के घर से निकलने पर तुम्हें ऐसे शुबहे क्यों होते।

मैं सर पर हाथ रखकर बैठ गया। मालूम हो गया कि तबाही के सामान पूरे हुए जाते हैं।

4

दूसरे दिन मैं ज्यों ही दफ्तर पहुंचा चोबदार ने आकर कहा—महाराजा साहब ने आपको

याद किया है।

मैं तो अपनी किस्मत का फैसला पहले से ही किए बैठा था। मैं खूब समझ गया था कि वह बुढ़िया खुफिया पुलिस की कोई मुखबिर है जो मेरे घरेलू मामलों की जांच के लिए तैनात हुई होगी। कल उसकी रिपोर्ट आई होगी और आज मेरी तलबी है। खौफ से सहमा हुआ लेकिन दिल को किसी तरह संभाले हुए कि जो कुछ सर पर पड़ेगी देखा जाएगा, अभी से क्यों जान दूं, मैं महाराजा की खिदमत में पहुंचा। वह इस वक्त अपने पूजा के कमरे में अकेले बैठे हुए थे, कागजों का एक ढेर इधर-उधर फैला हुआ था और वह खुद किसी खयाल में डूबे हुए थे। मुझे देखते ही वह मेरी तरफ मुखातिब हुए, उनके चेहरे पर नाराजगी के लक्षण दिखाई दिए, बोले—कुंअर श्यामसिंह, मुझे बहुत अफसोस है कि तुम्हारी बाबत मुझे जो बातें मालूम हुई हैं वह मुझे इस बात के लिए मजबूर करती हैं कि तुम्हारे साथ सख्ती का बर्ताव किया जाए। तुम मेरे पुराने वसीकादार हो और तुम्हें यह गौरव कई पीढ़ियों से प्राप्त है। तुम्हारे बुजुर्गों ने हमारे खानदान की जान लगाकर सेवाएं की हैं और उन्हीं के सिले में यह वसीका दिया गया था लेकिन तुमने अपनी हरकतों से अपने को इस कृपा के योग्य नहीं रखा। तुम्हें इसलिए वसीका मिलता था कि तुम अपने खानदान की परवरिश करो, अपने लड़कों को इस योग्य बनाओ कि वह राज्य की कुछ खिदमत कर सकें, उन्हें शारीरिक और नैतिक शिक्षा दो ताकि तुम्हारी जात से रियासत की भलाई हो, न कि इसलिए कि तुम इस रुपये को बेहूदा ऐशपरस्ती और हरामकारी में खर्च करो। मुझे इस बात से बहुत ही तकलीफ होती है कि तुमने अब अपने बाल-बच्चों की परवरिश की जिम्मेदारी से भी अपने को मुक्त समझ लिया है। अगर तुम्हारा यही ढंग रहा तो यकीनन वसीकादारों का एक पुराना खानदान मिट जाएगा। इसलिए आज से हमने तुम्हारा नाम वसीकादारों की फेहरिस्त से खारिज कर दिया और तुम्हारी जगह तुम्हारी बीवी का नाम दर्ज किया गया। वह अपने लड़कों को पालने-पोसने की जिम्मेदार है। तुम्हारा नाम रियासत के मालियों की फेहरिस्त में लिखा जाएगा, तुमने अपने को इसी के योग्य सिद्ध किया है और मुझे उम्मीद है कि यह तबादला तुम्हें नागवार न होगा। बस, जाओ और मुमकिन हो तो अपने किए पर पछताओ।

5

मुझे कुछ कहने का साहस न हुआ। मैंने बहुत धैर्यपूर्वक अपनी किस्मत का यह फैसला सुना और घर की तरफ चला। लेकिन दो ही चार कदम चला था कि अचानक खयाल आया किसके घर जा रहे हो, तुम्हारा घर अब कहां है ? मैं उलटे कदम लौटा। जिस घर का मैं राजा था वहां दूसरों का आश्रित बनकर मुझसे नहीं रहा जाएगा और रहा भी जाए तो मुझे रहना नहीं चाहिए। मेरा आचरण निश्चय ही अनुचित था लेकिन मेरी नैतिक संवेदना अभी इतनी भोंथी न हुई थी। मैंने पक्का इरादा कर लिया कि इसी वक्त इस शहर से भाग जाना मुनासिब है वर्ना बात फैलते ही हमदर्दों और बुरा चेतने वालों का एक जमघट हालचाल पूछने के लिए आ जाएगा, दूसरों की सूखी हमदर्दियां सुननी पड़ेंगी जिनके पर्दे में खुशी झलकती होगी। एक बार, सिर्फ एक बार, मुझे फूलमती का खयाल आया। उसके

कारण यह सब दुर्गत हो रही है, उससे तो मिल ही लूं। मगर दिल ने रोका, क्या एक वैभवशाली आदमी की जो इज्जत होती थी वह अब मुझे हासिल हो सकती है ? हर्गिज नहीं। रूप की मंडी में वफा और मुहब्बत के मुकाबले में रुपया-पैसा ज्यादा कीमती चीज है। मुमकिन है इस वक्त मुझ पर तरस खाकर या क्षणिक आवेश में आकर फूलमती मेरे साथ चलने पर आमादा हो जाए लेकिन उसे लेकर कहां जाऊंगा ? पांवों में बेड़ियां डालकर चलना तो और भी मुश्किल है। इस तरह सोच-विचारकर मैंने बंबई की राह ली और अब दो साल से एक मिल में नौकर हूं, तनख्वाह सिर्फ इतनी है कि ज्यों-त्यों जिंदगी का सिलसिला चलता रहे लेकिन ईश्वर को धन्यवाद देता हूं और इसी को यथेष्ट समझता हूं। मैं एक बार गुप्त रूप से अपने घर गया था। फूलमती ने एक दूसरे रईस से रूप का सौदा कर लिया है, लेकिन मेरी पत्नी ने अपने प्रबंध-कौशल से घर की हालत खूब संभाल ली है। मैंने अपने मकान को रात के समय लालसा भरी आंखों से देखा—दरवाजे पर दो लालटेनें जल रही थीं और बच्चे इधर-उधर खेल रहे थे, हर तरफ सफाई और सुथरापन दिखाई देता था। मुझे कुछ अखबारों के देखने से मालूम हुआ कि महीनों तक मेरे पते-निशान के बारे में अखबारों में इश्तहार छपते रहे। लेकिन अब यह सूरत लेकर मैं वहां क्या जाऊंगा और यह कालिख-लगा मुंह किसको दिखाऊंगा। अब तो मुझे इसी गिरी-पड़ी हालत में जिंदगी के दिन काटने हैं, चाहे रोकर काटूं या हंसकर। मैं अपनी हरकतों पर अब बहुत शर्मिंदा हूं। अफसोस, मैंने उन नेमतों की कद्र न की, उन्हें लात से ठोकर मारी, यह उसी की सजा है कि आज मुझे यह दिन देखना पड़ रहा है। मैं वह परवाना हूं जिसकी खाक भी हवा के झोंकों से न बची।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'जमाना', सितम्बर-अक्टूबर, 1914 मे शामते आमाल' (शामते-एमाल) शीर्षक से प्रकाशित। बाद में 'खाके परवाना' शीर्षक से उर्दू कहानी सग्रह 'खाके परवाना' में सकलित। हिन्दी रूप 'अपनी करनी' शीर्षक मे 'गुप्तधन' भाग-1 में संकलित।]

पछतावा

पंडित दुर्गानाथ जब कालेज से निकले तो उन्हें जीवन-निर्वाह की चिंता उपस्थित हुई। वे दयालु और धार्मिक थे। इच्छा थी कि ऐसा काम करना चाहिए जिससे अपना जीवन भी साधारणतः सुखपूर्वक व्यतीत हो और दूसरों के साथ भलाई और सदाचरण का भी अवसर मिले। वे सोचने लगे—यदि किसी कार्यालय में क्लर्क बन जाऊँ तो अपना निर्वाह हो सकता है, किन्तु सर्वसाधारण से कुछ भी सम्बन्ध न रहेगा। वकालत में प्रविष्ट हो जाऊँ तो दोनों बातें सम्भव हैं, किंतु अनेकानेक यत्न करने पर भी अपने को पवित्र रखना कठिन होगा। पुलिस-विभाग में दीन-पालन और परोपकार के लिए बहुत-से अवसर मिलते रहते हैं; किंतु एक स्वतंत्र और सद्विचार-प्रिय मनुष्य के लिए वहाँ की हवा हानिप्रद है। शासन-विभाग में नियम और नीतियों की भरमार रहती है। कितना ही चाहो, पर वहाँ कड़ाई और डाँट-डपट से बचे रहना असम्भव है। इसी प्रकार बहुत सोच-विचार के पश्चात्

उन्होंने निश्चय किया कि किसी जमींदार के यहाँ 'मुख्तारआम' बन जाना चाहिए। वेतन तो अवश्य कम मिलेगा; किंतु दीन खेतिहरों से रात-दिन सम्बन्ध रहेगा, उनके साथ सद्व्यवहार का अवसर मिलेगा। साधारण जीवन-निर्वाह होगा और विचार दृढ़ होंगे।

कुँवर विशालसिंह जी एक सम्पत्तिशाली जमींदार थे। पं. दुर्गानाथ ने उनके पास जा कर प्रार्थना की कि मुझे भी अपनी सेवा में रख कर कृतार्थ कीजिए। कुँवर साहब ने इन्हें सिर से पैर तक देखा और कहा—पंडित जी, आपको अपने यहाँ रखने में मुझे बड़ी प्रसन्नता होती, किंतु आपके योग्य मेरे यहाँ कोई स्थान नहीं देख पड़ता।

दुर्गानाथ ने कहा—मेरे लिए किसी विशेष स्थान की आवश्यकता नहीं है। मैं हर एक काम कर सकता हूँ। वेतन आप जो कुछ प्रसन्नतापूर्वक देंगे, मैं स्वीकार करूँगा। मैंने तो यह संकल्प कर लिया है कि सिवा किसी रईस के और किसी की नौकरी न करूँगा। कुंवर विशालसिंह ने अभिमान से कहा—रईस की नौकरी नौकरी नहीं, राज्य है। मैं अपने चपरासियों को दो रुपया माहवार देता हूँ और वे तंजेब के अंगरखे पहन कर निकलते हैं। उनके दरवाजों पर घोड़े बँधे हुए हैं। मेरे कारिंदे पाँच रुपये से अधिक नहीं पाते, किंतु शादी-विवाह वकीलों के यहाँ करते हैं। न जाने उनकी कमाई में क्या बरकत होती है। बरसों तनख्वाह का हिसाब नहीं करते। कितने ऐसे हैं जो बिना तनख्वाह के कारिंदगी या चपरासगिरी को तैयार बैठे हैं। परंतु अपना यह नियम नहीं। समझ लीजिए, मुख्तारआम अपने इलाके में एक बड़े जमींदार से अधिक रोब रखता है, उसका ठाट-बाट और उसकी हुकूमत छोटे-छोटे राजाओं से कम नहीं। जिसे इस नौकरी का चसका लग गया है, उसके सामने तहसीलदारी झूठी है।

पंडित दुर्गानाथ ने कुँवर साहब की बातों का समर्थन किया, जैसा कि करना उनकी सभ्यतानुसार उचित था। वे दुनियादारी में अभी कच्चे थे, बोले—मुझे अब तक किसी रईस की नौकरी का चसका नहीं लगा है। मैं तो अभी कालेज से निकला आता हूँ। और न मैं इन कारणों से नौकरी करना चाहता हूँ जिनका कि आपने वर्णन किया। किंतु इतने कम वेतन में मेरा निर्वाह न होगा। आपके और नौकर असामियों का गला दबाते होंगे मुझसे मरते समय तक ऐसे कार्य न होंगे। यदि सच्चे नौकर का सम्मान होना निश्चय है, तो मुझे विश्वास है कि बहुत शीघ्र आप मुझसे प्रसन्न हो जायँगे।

कुँवर साहब ने बड़ी दृढ़ता से कहा—हाँ, यह तो निश्चय है कि सत्यवादी मनुष्य का आदर सब कहीं होता है, किंतु मेरे यहाँ तनख्वाह अधिक नहीं दी जाती।

जमींदार के इस प्रतिष्ठा-शून्य उत्तर को सुन कर पंडित जी कुछ खिन्न हृदय से बोले—तो फिर मजबूरी है। मेरे द्वारा इस समय कुछ कष्ट आपको हो तो क्षमा कीजिएगा। किंतु मैं आप से कह सकता हूँ कि ईमानदार आदमी आपको सस्ता न मिलेगा।

कुँवर साहब ने मन में सोचा कि मेरे यहाँ सदा अदालत-कचहरी लगी ही रहती है, सैकड़ों रुपये तो डिगरी और तजवीजों तथा और-और अँगरेजी कागजों के अनुवाद में लग जाते हैं। एक अँगरेजी का पूर्ण पंडित सहज ही में मिल रहा है। सो भी अधिक तनख्वाह नहीं देनी पड़ेगी। इसे रख लेना ही उचित है। लेकिन पंडित जी की बात का उत्तर देना आवश्यक था, अतः कहा—महाशय, सत्यवादी मनुष्य को कितना ही कम वेतन दिया जाये,

वह सत्य को न छोड़ेगा, और न अधिक वेतन पाने से बेईमान सच्चा बन सकता है। सच्चाई का रुपये से कुछ सम्बन्ध नहीं। मैंने ईमानदार कुली देखे हैं और बेईमान बड़े-बड़े धनाढ्य पुरुष। परंतु अच्छा, आप एक सज्जन पुरुष हैं। आप मेरे यहाँ प्रसन्नतापूर्वक रहिए। मैं आपको एक इलाके का अधिकारी बना दूँगा और आपका काम देख कर तरक्की भी कर दूंगा।

दुर्गानाथ जी ने बीस रुपये मासिक पर रहना स्वीकार कर लिया। यहाँ से कोई ढाई मील पर कई गाँवों का एक इलाका चाँदपार के नाम से विख्यात था। पडित जी इसी इलाके के कारिंदे नियत हुए।

2

पंडित दुर्गानाथ ने चाँदपार के इलाके में पहुँच कर अपने निवास-स्थान को देखा तो उन्होंने कुँवर साहब के कथन को बिलकुल सत्य पाया। यथार्थ में रियासत की नौकरी सुख-सम्पत्ति का घर है। रहने के लिए सुंदर बँगला है, जिसमें बहुमूल्य बिछौना बिछा हुआ था, सैकड़ों बीघे की सीर, कई नौकर चाकर, कितने ही चपरासी, सवारी के लिए एक सुंदर टाँगन, सुख ठाट-बाट के सारे सामान उपस्थित। किंतु इस प्रकार की सजावट और विलास की सामग्री देख कर उन्हें उतनी प्रसन्नता न हुई। क्योंकि इसी सजे हुए बँगले के चारों ओर किसानों के झोंपड़े थे। फूस के घरों में मिट्टी के बर्तनों के सिवा और सामान ही क्या था ! वहाँ के लोगों में वह बँगला कोट के नाम से विख्यात था। लडके उसे भय की दृष्टि से देखते। उसके चबूतरे पर पैर रखने का उन्हें साहस न पड़ता। इस दीनता के बीच में इतना बड़ा ऐश्वर्ययुक्त दृश्य उनके लिए अत्यंत हृदय-विदारक था। किसानों की यह दशा थी कि सामने आते हुए थर-थर काँपते थे। चपरासी लोग उनसे ऐसा बर्ताव करते थे कि पशुओं के साथ भी वैसा नहीं होता।

पहले ही दिन कई सौ किसानों ने पंडित जी को अनेक प्रकार के पदार्थ भेंट के रूप में उपस्थित किये, किंतु जब वे सब लौटा दिये गये तो उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। किसान प्रसन्न हुए, किंतु चपरासियों का रक्त उबलने लगा। नाई और कहार खिदमत को आये, किंतु लौटा दिये गये। अहीरों के घरों से दूध से भरा हुआ मटका आया, वह भी वापस हुआ। तमोली एक ढोली पान लाया, किंतु वह भी स्वीकार न हुआ। असामी आपस में कहने लगे कि कोई धर्मात्मा पुरुष आये हैं। परंतु चपरासियों को तो ये नयी बातें असह्य हो गयीं। उन्होंने कहा–हुजूर, अगर आपको ये चीजें पसंद न हों तो न लें, मगर रस्म को तो न मिटायें। अगर कोई दूसरा आदमी यहाँ आयेगा तो उसे नये सिरे से यह रस्म बाँधने में कितनी दिक्कत होगी ? यह सब सुन कर पंडित जी ने केवल यही उत्तर दिया–जिसके सिर पर पड़ेगा वह भुगत लेगा। मुझे इसकी चिन्ता करने की क्या आवश्यकता ? एक चपरासी ने साहस बाँध कर कहा–इन असामियों को आप जितना गरीब समझते हैं उतने गरीब ये नहीं हैं। इनका ढंग ही ऐसा है। भेष बनाये रहते हैं। देखने में ऐसे सीधे-सादे मानो बेसींग की गाय हैं, लेकिन सच मानिए, इनमें का एक-एक आदमी हाईकोरट का वकील है।

चपरासियों के इस वाद-विवाद का प्रभाव पंडित जी पर कुछ न हुआ। उन्होंने प्रत्येक गृहस्थ से दयालुता और भाईचारे का आचरण करना आरम्भ किया। सबेरे से आठ बजे तक तो गरीबों को बिना दाम औषधियाँ देते, फिर हिसाब-किताब का काम देखते। उनके सदाचरण ने असामियों को मोह लिया। मालगुजारी का रुपया, जिसके लिए प्रति वर्ष कुरकी तथा नीलामी की आवश्यकता होती थी, इस वर्ष एक इशारे पर वसूल हो गया। किसानों ने अपने भाग सराहे और वे मनाने लगे कि हमारे सरकार की दिनोंदिन बढ़ती हो।

3

कुँवर विशालसिंह अपनी प्रजा के पालन-पोषण पर बहुत ध्यान रखते थे। वे बीज के लिए अनाज देते और मजूरी और बैलों के लिए रुपये। फसल कटने पर एक का डेढ़ वसूल कर लेते ! चाँदपार के कितने ही असामी इनके ऋणी थे। चैत का महीना था। फसल कट-कट कर खलियानों में आ रही थी। खलियान में से कुछ अनाज घर में आने लगा था। इसी अवसर पर कुँवर साहब ने चाँदपार वालों को बुलाया और कहा—हमारा अनाज और रुपया बेबाक कर दो। यह चैत का महीना है। जब तक कड़ाई न की जाय, तुम लोग डकार नहीं लेते। इस तरह काम नहीं चलेगा। बूढ़े मलूका ने कहा—सरकार, भला असामी कभी अपने मालिक से बेबाक हो सकता है ! कुछ अभी ले लिया जाय, कुछ फिर दे देंगे। हमारी गर्दन तो सरकार की मुट्ठी में है।

कुँवर साहब—आज कौड़ी-कौड़ी चुका कर यहाँ से उठने पाओगे। तुम लोग हमेशा इसी तरह हीला-हवाला किया करते हो।

मलूका (विनय के साथ)—हमारा पेट है, सरकार की रोटियाँ हैं, हमको और क्या चाहिए ? जो कुछ उपज है वह सब सरकार ही की है।

कुँवर साहब से मलूका की यह वाचालता सही न गयी। उन्हें इस पर क्रोध आ गया; राजा-रईस ठहरे। उन्होंने बहुत कुछ खरी-खोटी सुनायी और कहा—कोई है ? जरा इस बुड्ढे का कान तो गरम करो, यह बहुत बढ़-बढ़ कर बातें करता है। उन्होंने तो कदाचित् धमकाने की इच्छा से कहा, किन्तु चपरासी कादिर खाँ ने लपक कर बूढ़े की गर्दन पकडी और ऐसा धक्का दिया कि बेचारा जमीन पर जा गिरा। मलूका के दो जवान बेटे वहाँ चुपचाप खड़े थे। बाप की ऐसी दशा देख कर उनका रक्त गरम हो उठा। वे दोनों झपटे और कादिर खाँ पर टूट पड़े। धमाधम शब्द सुनायी पड़ने लगा। खाँ साहब का पानी उतर गया, साफा अलग जा गिरा। अचकन के टुकड़े-टुकड़े हो गये। किन्तु जबान चलती रही।

मलूका ने देखा, बात बिगड़ गयी। वह उठा और कादिर खाँ को छुड़ा कर अपने लड़कों को गालियाँ देने लगा। जब लड़कों ने उसी को डाँटा तब दौड़ कर कुँवर साहब के चरणों पर गिर पड़ा। पर बात यथार्थ में बिगड़ गयी थी। बूढ़े के इस विनीत भाव का कुछ प्रभाव न हुआ। कुँवर साहब की आँखों मे मानो आग के अंगारे निकल रहे थे। वे बोले—बेईमान, आँखों के सामने से दूर हो जा। नहीं तो तेरा खून पी जाऊँगा।

बूढ़े के शरीर में रक्त तो अब वैसा न रहा था, किन्तु कुछ गर्मी अवश्य थी। समझता था कि ये कुछ न्याय करेंगे, परंतु यह फटकार सुन कर बोला—सरकार, बुढ़ापे में आपके

दरवाजे पर पानी उतर गया और तिस पर सरकार हमी को डाँटते हैं। कुँवर साहब ने कहा—तुम्हारी इज्जत अभी क्या उतरी है, अब उतरेगी।

दोनों लड़के सरोष बोले—सरकार अपना रुपया लेंगे कि किसी की इज्जत लेंगे?

कुँवर साहब (ऐंठ कर)—रुपया पीछे लेंगे, पहले देखेंगे कि तुम्हारी इज्जत कितनी है!

4

चाँदपार के किसान अपने गाँव पर पहुँच कर पंडित दुर्गानाथ से अपनी रामकहानी कह ही रहे थे कि कुँवर साहब का दूत पहुँचा और खबर दी कि सरकार ने आपको अभी-अभी बुलाया है।

दुर्गानाथ ने असामियों को परितोष दिया और आप घोड़े पर सवार हो कर दरबार में हाजिर हुए।

कुँवर साहब की आँखें लाल थीं। मुख की आकृति भयकर हो रही थी। कई मुख्तार और चपरासी बैठे हुए आग पर तेल डाल रहे थे। पंडित जी को देखते ही कुँवर साहब बोले—चाँदपार वालों की हरकत आपने देखी?

पंडित जी ने नम्र भाव से कहा—जी हाँ, सुन कर बहुत शोक हुआ। ये तो ऐसे सरकश न थे।

कुँवर साहब—यह सब आप ही के आगमन का फल है। आप अभी स्कूल के लड़के हैं। आप क्या जानें कि संसार में कैसे रहना होता है। यदि आपका बर्ताव असामियों के साथ ऐसा ही रहा तो फिर मैं जमीदारी कर चुका। यह सब आपकी करनी है। मैंने इसी दरवाजे पर असामियों को बाँध-बाँध कर उलटे लटका दिया है और किसी ने चूँ तक न की। आज उनका यह साहस मेरे ही आदमी पर हाथ चलायें।

दुर्गानाथ (कुछ दबते हुए)—महाशय, इसमें मेरा क्या अपराध? मैंने तो जब से सुना है तभी से स्वयं सोच में पड़ा हूँ।

कुँवर साहब—आपका अपराध नहीं तो किसका है? आप ही ने तो इनको सिर चढ़ाया। बेगार बन्द कर दी, आप ही उनके साथ भाईचारे का बर्ताव करते हैं, उनके साथ हँसी-मजाक करते हैं। ये छोटे आदमी इस बर्ताव की कदर क्या जानें, किताबी बातें स्कूलों ही के लिए हैं। दुनिया के व्यवहार का कानून दूसरा है। अच्छा, जो हुआ सो हुआ। अब मैं चाहता हूँ कि इन बदमाशों को इस सरकशी का मजा चखाया जाय। असामियों को आपने मालगुजारी की रसीदें तो नहीं दी हैं?

दुर्गानाथ (कुछ डरते हुए)—जी नहीं, रसीदें तैयार हैं, लेकिन आपके हस्ताक्षरों की देर है।

कुँवर साहब (कुछ संतुष्ट हो कर)—यह बहुत अच्छा हुआ। शकुन अच्छे हैं। अब आप इन रसीदों को चिरागअली के सिपुर्द कीजिए। इन लोगों पर बकाया लगान की नालिश की जायगी, फसल नीलाम कर लूँगा। जब भूखे मरेंगे तब सूझेगी। जो रुपया अब तक वसूल हो चुका है, वह बीज और ऋण के खाते में चढ़ा लीजिए। आपको केवल यह

गवाही देनी होगी कि यह रुपया मालगुजारी के मद में नहीं, कर्ज में वसूल हुआ है। बस।

दुर्गानाथ चिंतित हो गये। सोचने लगे कि क्या यहाँ भी उसी आपत्ति का सामना करना पड़ेगा जिससे बचने के लिए इतने सोच-विचार के बाद, इस शांति-कुटीर को ग्रहण किया था ? क्या जान-बूझ कर इन गरीबों की गर्दन पर छुरी फेरूँ, इसलिए कि मेरी नौकरी बनी रहे ? नहीं, यह मुझसे न होगा। बोले—क्या मेरी शहादत बिना काम न चलेगा ?

कुँवर साहब (क्रोध से)—क्या इतना कहने में भी आपको कोई उज्र है ?

दुर्गानाथ (द्विविधा में पड़े हुए)—जी, यों तो मैंने आपका नमक खाया है। आपकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करना मुझे उचित है, किंतु न्यायालय में मैंने गवाही नहीं दी है। संभव है कि यह कार्य मुझसे न हो सके, अतः मुझे तो क्षमा ही कर दिया जाय।

कुँवर साहब (शासन के ढंग से)—यह काम आपको करना पड़ेगा, इसमें 'हाँ-नहीं' की कोई आवश्यकता नहीं। आग आपने लगायी है। बुझायेगा कौन ?

दुर्गानाथ (दृढ़ता के साथ)—मैं झूठ कदापि नहीं बोल सकता, और न इस प्रकार की शहादत दे सकता हूँ !

कुँवर साहब (कोमल शब्दों में)—कृपानिधान, यह झूठ नहीं है। मैंने झूठ का व्यापार नहीं किया है। मैं यह नहीं कहता कि आप रुपये का वसूल होना अस्वीकार कर दीजिए। अब असामी मेरे ऋणी हैं, तो मुझे अधिकार है कि चाहे रुपया ऋण की मद में वसूल करूँ या मालगुजारी की मद में। यदि इतनी-सी बात को आप झूठ समझते हैं तो आपकी जबरदस्ती है। अभी आपने संसार देखा नहीं। ऐसी सच्चाई के लिए संसार में स्थान नहीं। आप मेरे यहाँ नौकरी कर रहे हैं। इस सेवक-धर्म पर विचार कीजिए। आप शिक्षित और होनहार पुरुष हैं। अभी आपको संसार में बहुत दिन तक रहना है और बहुत काम करना है। अभी से आप यह धर्म और सत्यता धारण करेंगे तो अपने जीवन में आपको आपत्ति और निराशा के सिवा और कुछ प्राप्त न होगा। सत्यप्रियता अवश्य उत्तम वस्तु है, किंतु उसकी भी सीमा है, 'अति सर्वत्रवर्जयेत् !' अब अधिक सोच-विचार की आवश्यकता नहीं। यह अवसर ऐसा ही है।

कुँवर साहब पुराने खुर्राट थे। इस फेंकनैत से युवक खिलाड़ी हार गया।

5

इस घटना के तीसरे दिन चाँदपार के असामियों पर बकाया लगान की नालिश हुई। सम्मन आये। घर-घर उदासी छा गयी। सम्मन क्या थे, यम के दूत थे। देवी-देवताओं की मिन्नतें होने लगीं। स्त्रियाँ अपने घरवालों को कोसने लगीं और पुरुष अपने भाग्य को। नियत तारीख के दिन गाँव के गँवार कंधे पर लोटा-डोर रखे और अँगोछे में चबेना बाँधे कचहरी को चले। सैकड़ों स्त्रियाँ और बालक रोते हुए उनके पीछे-पीछे जाते थे। मानो अब वे फिर उनसे न मिलेंगे।

पंडित दुर्गानाथ के तीन दिन कठिन परीक्षा के थे। एक ओर कुँवर साहब की प्रभावशालिनी बातें, दूसरी ओर किसानों की हाय-हाय; परन्तु विचार-सागर में तीन दिन निमग्न रहने के पश्चात् उन्हें धरती का सहारा मिल गया। उनकी आत्मा ने कहा—यह

पहली परीक्षा है। यदि इसमें अनुत्तीर्ण रहे तो फिर आत्मिक दुर्बलता ही हाथ रह जायगी। निदान निश्चय हो गया कि मैं अपने लाभ के लिए इतने गरीबों को हानि न पहुँचाऊँगा।

दस बजे दिन का समय था। न्यायालय के सामने मेला-सा लगा हुआ था। जहाँ-तहाँ श्यामवस्त्राच्छादित देवताओं की पूजा हो रही थी। चाँदपार के किसान झुंड के झुंड एक पेड़ के नीचे आकर बैठे। उनसे कुछ दूर पर कुँवर साहब के मुख्तारआम, सिपाहियों और गवाहों की भीड़ थी। ये लोग अत्यंत विनोद में थे। जिस प्रकार मछलियाँ पानी में पहुँच कर किलोलें करती हैं, उसी भाँति ये लोग भी आनंद में चूर थे। कोई पान खा रहा था। कोई हलवाई की दुकान से पूरियों की पत्तल लिये चला आता था। उधर बेचारे किसान पेड़ के नीचे चुपचाप उदास बैठे थे कि आज न जाने क्या होगा, कौन आफत आयेगी ! भगवान का भरोसा है। मुकदमे की पेशी हुई। कुँवर साहब की ओर के गवाह गवाही देने लगे कि असामी बड़े सरकश हैं। जब लगान माँगा जाता है तो लड़ाई-झगड़े पर तैयार हो जाते हैं। अबकी इन्होंने एक कौड़ी भी नहीं दी।

कादिर खाँ ने रो कर अपने सिर की चोट दिखायी। सबसे पीछे पंडित दुर्गानाथ की पुकार हुई। उन्हीं के बयान पर निपटारा होना था। वकील साहब ने उन्हें खूब तोते की भाँति पढ़ा रखा था, किंतु उनके मुख से पहला वाक्य निकला ही था कि मजिस्ट्रेट ने उनकी ओर तीव्र दृष्टि से देखा। वकील साहब बगलें झाँकने लगे। मुख्तारआम ने उनकी ओर घूर कर देखा। अहलमद-पेशकार आदि सब के सब उनकी ओर आश्चर्य की दृष्टि से देखने लगे।

न्यायाधीश ने तीव्र स्वर से कहा—तुम जानते हो कि मैजिस्ट्रेट के सामने खड़े हो ?

दुर्गानाथ (दृढ़तापूर्वक)—जी हाँ, भली-भाँति जानता हूँ।

न्यायाधीश—तुम्हारे ऊपर असत्य भाषण का अभियोग लगाया जा सकता है।

दुर्गानाथ—अवश्य, यदि मेरा कथन झूठा हो।

वकील ने कहा—जान पड़ता है, किसानों के दूध, घी और भेंट आदि ने यह काया-पलट कर दी है। और न्यायाधीश की ओर सार्थक दृष्टि से देखा।

दुर्गानाथ—आपको इन वस्तुओं का अधिक तजुर्बा होगा। मुझे तो अपनी रूखी रोटियाँ ही अधिक प्यारी हैं।

न्यायाधीश—तो इन असामियों ने सब रुपया बेबाक कर दिया है ?

दुर्गानाथ—जी हाँ, इनके जिम्मे लगान की एक कौड़ी भी बाकी नहीं है।

न्यायाधीश—रसीदें क्यों नहीं दीं ?

दुर्गानाथ—मेरे मालिक की आज्ञा।

6

मैजिस्ट्रेट ने नालिशें डिसमिस कर दीं। कुँवर साहब को ज्यों ही इस पराजय की खबर मिली, उनके कोप की मात्रा सीमा से बाहर हो गयी। उन्होंने पंडित दुर्गानाथ को सैकड़ों कुवाक्य कहे—नमकहराम, विश्वासघाती, दुष्ट। मैंने उसका कितना आदर किया, किंतु कुत्ते की पूँछ कहीं सीधी हो सकती है ! अंत में विश्वासघात कर ही गया। यह अच्छा हुआ

कि पं. दुर्गानाथ मैजिस्ट्रेट का फैसला सुनते ही मुख्तारआम को कुंजियाँ और कागजपत्र सुपुर्द कर चलते हुए। नहीं तो उन्हें इस कार्य के फल में कुछ दिन हल्दी और गुड़ पीने की आवश्यकता पड़ती।

कुँवर साहब का लेन-देन विशेष अधिक था। चाँदपार बहुत बड़ा इलाका था। वहाँ के असामियों पर कई सौ रुपये बाकी थे। उन्हें विश्वास हो गया कि अब रुपया डूब जायगा। वसूल होने की कोई आशा नहीं। इस पंडित ने असामियों को बिलकुल बिगाड़ दिया। अब उन्हें मेरा क्या डर ? अपने कारिंदों और मंत्रियों से सम्मति ली। उन्होंने भी यही कहा—अब वसूल होने की कोई सूरत नहीं। कागजात न्यायालय में पेश किये जायँ तो इनकम टैक्स लग जायगा। किंतु रुपया वसूल होना कठिन है। उजरदारियाँ होंगी। कहीं हिसाब में कोई भूल निकल आयी तो रही-सही साख भी जाती रहेगी और दूसरे इलाकों का रुपया भी मारा जायगा।

दूसरे दिन कुँवर साहब पूजा-पाठ से निश्चिंत हो अपने चौपाल में बैठे, तो क्या देखते हैं कि चाँदपार के असामी झुंड के झुंड चले आ रहे हैं। उन्हें यह देख कर भय हुआ कि कहीं ये सब कुछ उपद्रव तो न करेंगे, किंतु किसी के हाथ में एक छड़ी तक न थी। मलूका आगे-आगे आता था। उसने दूर ही से झुक कर वंदना की। ठाकुर साहब को ऐसा आश्चर्य हुआ, मानो वे कोई स्वप्न देख रहे हों।

7

मलूका ने सामने आ कर विनयपूर्वक कहा—सरकार, हम लोगों से जो कुछ भूल-चूक हुई हो उसे क्षमा किया जाय। हम लोग सब हुजूर के चाकर हैं; सरकार ने हमको पाला-पोसा है। अब भी हमारे ऊपर यही निगाह रहे।

कुँवर साहब का उत्साह बढ़ा। समझे कि पंडित के चले जाने से इन सबों के होश ठिकाने हुए हैं। आज किसका सहारा लेंगे। उसी खुर्राट ने इन सबों को बहका दिया था। कड़क कर बोले—वे तुम्हारे सहायक पंडित कहाँ गये ? वे आ जाते तो जरा उनकी खबर ली जाती।

यह सुन कर मलूका की आँखों में आँसू भर आये। वह बोला—सरकार, उनको कुछ न कहें। वे आदमी नहीं देवता थे। जवानी की सौगंध है, जो उन्होंने आपकी निंदा की हो। वे बेचारे तो हम लोगों को बार-बार समझाते थे कि देखो, मालिक से बिगाड़ करना अच्छी बात नहीं। हमसे कभी एक लोटा पानी के रवादार नहीं हुए। चलते-चलते हमसे कह गये कि मालिक का जो कुछ तुम्हारे जिम्मे निकले, चुका देना। आप हमारे मालिक हैं। हमने आपका बहुत खाया-पिया है। अब हमारी यही विनती सरकार से है कि हमारा हिसाब-किताब देख कर जो कुछ हमारे ऊपर निकले बताया जाय। हम एक-एक कौड़ी चुका देंगे, तब पानी पियेंगे।

कुँवर साहब प्रसन्न हो गये। इन्हीं रुपयों के लिए कई बार खेत कटवाने पड़े थे। कितनी बार घरों में आग लगवायी। अनेक बार मार-पीट की। कैसे-कैसे दंड दिये। आज ये सब आप से आप सारा हिसाब-किताब साफ करने आये हैं। यह क्या जादू है।

मुख्तारआम साहब ने कागजात खोले और असामियों ने अपनी-अपनी पोटलियाँ। जिसके जिम्मे जितना निकला, बे-कान-पूँछ हिलाये उतना द्रव्य सामने रख दिया। देखते-

देखते सामने रुपयों का ढेर लग गया। छः सौ रुपया बात की बात में वसूल हो गया। किसी के जिम्मे कुछ बाकी न रहा। यह सत्यता और न्याय की विजय थी। कठोरता और निर्दयता से जो काम कभी न हुआ, वह धर्म और न्याय ने पूरा कर दिखाया।

जब से ये लोग मुकदमा जीत आये तभी से उनको रुपया चुकाने की धुन सवार थी। पंडित जी को वे यथार्थ में देवता समझते थे। रुपया चुका देने के लिये उनकी विशेष आज्ञा थी। किसी ने बैल, किसी ने गहने बंधक रखे। यह सब कुछ सहन किया, परंतु पंडित जी की बात न टाली। कुँवर साहब के मन में पंडित जी के प्रति जो बुरे विचार थे, सब मिट गये। उन्होंने सदा से कठोरता से काम लेना सीखा था। उन्हीं नियमों पर वे चलते थे। न्याय तथा सत्यता पर उनका विश्वास न था। किंतु आज उन्हें प्रत्यक्ष देख पड़ा कि सत्यता और कोमलता में बहुत बड़ी शक्ति है।

ये असामी मेरे हाथ से निकल गये थे। मैं इनका क्या बिगाड़ सकता था ? अवश्य वह पंडित सच्चा और धर्मात्मा पुरुष था। उसमें दूरदर्शिता न हो, काल-ज्ञान न हो, किंतु इसमें संदेह नहीं कि वह निःस्पृह और सच्चा पुरुष था।

8

कैसी ही अच्छी वस्तु क्यों न हो, जब तक हमको उसकी आवश्यकता नहीं होती तब तक हमारी दृष्टि में उसका गौरव नहीं होता। हरी दूब भी किसी समय अशर्फियों के मोल बिक जाती है। कुँवर साहब का काम एक निःस्पृह मनुष्य के बिना नहीं रुक सकता था। अतएव पंडित जी के इस सर्वोत्तम कार्य की प्रशंसा किसी कवि की कविता से अधिक न हुई। चांदपार के असामियों ने तो अपने मालिक को कभी किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचाया, किंतु अन्य इलाकों वाले असामी उसी पुराने ढंग से चलते थे। उन इलाकों में रगड़-झगड़ सदैव मची रहती थी। अदालत, मार-पीट, डाँट-डपट सदा लगी रहती थी। किंतु ये सब तो जमींदार के शृंगार हैं। बिना इन सब बातों के जमींदारी कैसी ? क्या दिन भर बैठे-बैठे वे मक्खियाँ मारें ?

कुँवर साहब इसी प्रकार पुराने ढंग से अपना प्रबंध सँभालते जाते थे। कई वर्ष व्यतीत हो गये। कुँवर साहब का कारोबार दिनोंदिन चमकता ही गया। यद्यपि उन्होंने पाँच लड़कियों के विवाह बड़ी धूम-धाम के साथ किये, परंतु तिस पर भी उनकी बढ़ती में किसी प्रकार की कमी न हुई। हाँ, शारीरिक शक्तियाँ अवश्य कुछ-कुछ ढीली पड़ती गयीं। बडी भारी चिंता यही थी कि इतनी बड़ी सम्पत्ति और ऐश्वर्य का भोगने वाला कोई उत्पन्न न हुआ। भानजे, भतीजे और नवासे इस रियासत पर दाँत लगाये हुए थे

कुँवर साहब का मन अब इन सांसारिक झगड़ों से फिरता जाता था। आखिर यह रोना-धोना किसके लिए ? अब उनके जीवन-नियम में एक परिवर्तन हुआ। द्वार पर कभी-कभी साधु-संत धूनी रमाये हुए देख पड़ते। स्वयं भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम पढ़ते थे। पारलौकिक चिंता अब नित्य रहने लगी। परमात्मा की कृपा और साधु-संतों के आशीर्वाद से बुढ़ापे में उनको एक लड़का पैदा हुआ। जीवन की आशाएँ सफल हुईं; पर दुर्भाग्यवश पुत्र के जन्म ही से कुँवर साहब शारीरिक व्याधियों से ग्रस्त रहने लगे। सदा

वैद्यों और डाक्टरों का ताँता लगा रहता था; लेकिन दवाओं का उल्टा प्रभाव पड़ता। ज्यों-त्यों करके उन्होंने ढाई वर्ष बिताये। अंत में उनकी शक्तियों ने जवाब दे दिया। उन्हें मालूम हो गया कि अब संसार से नाता टूट जायगा। अब चिंता ने और धर दबाया, यह सारा माल-असबाब, इतनी बड़ी सम्पत्ति किस पर छोड़ जाऊँ ? मन की इच्छाएँ मन ही मन रह गयीं। लड़के का विवाह भी न देख सका। उसकी तोतली बातें सुनने का भी सौभाग्य न हुआ। हाय, अब इस कलेजे के टुकड़े को किसे सौंपूँ, जो इसे अपना पुत्र समझे। लड़के की माँ स्त्री-जाति, न कुछ जाने, न समझे। उससे कारबार सँभलना कठिन है। मुख्तारआम, गुमाश्ते, कारिंदे कितने हैं, परन्तु सब के सब स्वार्थी—विश्वासघाती। एक भी ऐसा पुरुष नहीं जिस पर मेरा विश्वास जमे ! कोर्ट आफ् वार्डस के सुपुर्द करूँ तो वहाँ भी वे ही सब आपत्तियाँ। कोई इधर दबायेगा, कोई उधर। अनाथ बालक को कौन पूछेगा ? हाय, मैंने आदमी नहीं पहचाना। मुझे हीरा मिल गया था, मैंने उसे ठीकरा समझा ! कैसा सच्चा, कैसा वीर, दृढ़प्रतिज्ञ पुरुष था ! यदि वह कहीं मिल जाये तो इस अनाथ बालक के दिन फिर जायँ। उसके हृदय में करुणा है, दया है। वह अनाथ बालक पर तरस खायगा। हाँ ! क्या मुझे उसके दर्शन मिलेंगे ? मैं उस देवता के चरण धो कर माथे पर चढ़ाता। आँसुओं से उसके चरण धोता। वही यदि हाथ लगाये तो यह मेरी डूबती नाव पार लगे।

9

ठाकुर साहब की दशा दिन पर दिन बिगड़ती गयी। अब अंतकाल आ पहुँचा। उन्हें पंडित दुर्गानाथ की रट लगी हुई थी। बच्चे का मुँह देखते और कलेजे से एक आह निकल जाती। बार-बार पछताते और हाथ मलते। हाय ! उस देवता को कहाँ पाऊँ? जो कोई उसके दर्शन करा दे, आधी जायदाद उस पर न्योछावर कर दूँ—प्यारे पंडित ! मेरे अपराध क्षमा करो। मैं अंधा था, अज्ञान था। अब मेरी बाँह पकड़ो। मुझे डूबने से बचाओ। इस अनाथ बालक पर तरस खाओ।

हितार्थी और सम्बन्धियों का समूह सामने खड़ा था। कुँवर साहब ने उनकी ओर अधखुली आँखों से देखा। सच्चा हितैषी कहीं देख न पड़ा। सबके चेहरे पर स्वार्थ की झलक थी। निराशा से आँखें मूँद लीं। उनकी स्त्री फूट-फूटकर रो रही थी। निदान उसे लज्जा त्यागनी पड़ी। वह रोती हुई पास जा कर बोली—प्राणनाथ, मुझे और इस असहाय बालक को किस पर छोड़े जाते हो ?

कुँवर साहब ने धीरे से कहा—पंडित दुर्गानाथ पर। वे जल्द आयेंगे। उनसे कह देना कि मैंने सब कुछ उनका भेंट कर दिया। यह अंतिम वसीयत है।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'जमाना', नवम्बर 1914 में प्रकाशित। उर्दू कहानी-संग्रह 'प्रेम बत्तीसी' में संकलित। हिन्दी रूप इसी नाम से 'मानसरोवर' भाग-6 में संकलित।]

परीक्षा-1

नादिरशाह की सेना ने दिल्ली में कत्लेआम कर रखा है। गलियों में खून की नदियाँ बह रही हैं। चारों तरफ हाहाकार मचा हुआ है। बाज़ार बंद है। दिल्ली के लोग घरों के द्वार बंद किये जान की खैर मना रहे हैं। किसी की जान सलामत नहीं है। कहीं घरों में आग लगी हुई है, कहीं बाज़ार लुट रहा है; कोई किसी की फरियाद नहीं सुनता। रईसों की बेगमें महलों से निकाली जा रही हैं और उनकी बेहुरमती की जाती है। ईरानी सिपाहियों की रक्तपिपासा किसी तरह नहीं बुझती। मानव हृदय की क्रूरता, कठोरता और पैशाचिकता अपना विकरालतम रूप धारण किये हुए है। इसी समय नादिरशाह ने बादशाही महल में प्रवेश किया।

दिल्ली उन दिनों भोगविलास की केंद्र बनी हुई थी। सजावट और तकल्लुफ़ के सामानों से रईसों के भवन भरे रहते थे। स्त्रियों को बनाव-सिंगार के सिवा कोई काम न था। पुरुषों को सुख-भोग के सिवा और कोई चिंता न थी। राजनीति का स्थान शैर-शायरी ने ले लिया था। समस्त प्रान्तों से धन खिंच-खिंच कर दिल्ली आता था। और पानी की भाँति बहाया जाता था। वेश्याओं की चाँदी थी। कहीं तीतरों के जोड़ होते थे, कहीं बटेरों और बुलबुलों की पालियाँ ठनती थीं। सारा नगर विलास-निद्रा में मग्न था। नादिरशाह शाही महल में पहुँचा तो वहाँ का सामान देख कर उसकी आँखें खुल गयीं। उसका जन्म दरिद्र-घर में हुआ था। उसका समस्त जीवन रणभूमि में ही कटा था। भोग-विलास का उसे चसका न लगा था। कहाँ रणक्षेत्र के कष्ट और कहाँ यह सुख-साम्राज्य। जिधर आँख उठती थी, उधर से हटने का नाम न लेती थी।

संध्या हो गयी थी। नादिरशाह अपने सरदारों के साथ महल की सैर करता और अपनी पसंद की चीज़ों को बटोरता हुआ दीवाने-खास में आ कर कारचोबी मसनद पर बैठ गया, सरदारों को वहाँ से चले जाने का हुक्म दे दिया, अपने सब हथियार खोल कर रख दिये और महल के दारोगा को बुला कर हुक्म दिया—मैं शाही बेगमों का नाच देखना चाहता हूँ। तुम इसी वक्त उनको सुंदर वस्त्राभूषणों से सजा कर मेरे सामने लाओ। खबरदार, ज़रा भी देर न हो ! मैं कोई उज्र या इंकार नहीं सुन सकता।

2

दारोगा ने यह नादिरशाही हुक्म सुना तो होश उड़ गये। वह महिलाएँ जिन पर कभी सूर्य की दृष्टि भी नहीं पड़ी कैसे इस मजलिस में आयेंगी ! नाचने का तो कहना ही क्या ! शाही बेगमों का इतना अपमान कभी न हुआ था। हा नरपिशाच ! दिल्ली को खून से रँग कर भी तेरा चित्त शांत नहीं हुआ। मगर नादिरशाह के सम्मुख एक शब्द भी जबान से निकालना अग्नि के मुख में कूदना था। सिर झुका कर आदाब बजा लाना और आ कर रनिवास में सब बेगमों को नादिरशाही हुक्म सुना दिया; उसके साथ ही यह इत्तला भी दे दी कि ज़रा भी ताम्मुल न हो, नादिरशाह कोई उज्र या हीला न सुनेगा! शाही खानदान पर इतनी बड़ी विपत्ति कभी नहीं पड़ी; पर इस समय विजयी बादशाह की आज्ञा को शिरोधार्य करने के

सिवा प्राण-रक्षा का अन्य कोई उपाय नहीं था।

बेगमों ने यह आज्ञा सुनी तो हतबुद्धि-सी हो गयीं। सारे रनिवास में मातम-सा छा गया। वह चहल-पहल गायब हो गयी। सैकड़ों हृदयों से इस अत्याचारी के प्रति एक शाप निकल गया। किसी ने आकाश की ओर सहायता-याचक लोचनों से देखा, किसी ने खुदा और रसूल का सुमिरन किया; पर ऐसी एक महिला भी न थी जिसकी निगाह कटार या तलवार की तरफ गयी हो। यद्यपि इनमें कितनी ही बेगमों के नसों में राजपूतानियों का रक्त प्रवाहित हो रहा था; पर इंद्रियलिप्सा ने 'जौहर' की पुरानी आग ठंडी कर दी थी। सुख-भोग की लालसा आत्म-सम्मान का सर्वनाश कर देती है। आपस में सलाह करके मर्यादा की रक्षा का कोई उपाय सोचने की मुहलत न थी। एक-एक पल भाग्य का निर्णय कर रहा था। हताश होकर सभी ललनाओं ने पापी के सम्मुख जाने का निश्चय किया। आँखों से आँसू जारी थे, दिलों से आहें निकल रही थीं; रत्न-जटित आभूषण पहने जा रहे थे, अश्रु-सिंचित नेत्रों में सुरमा लगाया जा रहा था और शोक-व्यथित हृदयों पर सुगंध का लेप किया जा रहा था। कोई केश गूँथती थीं, कोई माँगों में मोतियाँ पिरोती थीं। एक भी ऐसे पक्के इरादे की स्त्री न थी, जो ईश्वर पर अथवा अपनी टेक पर, इस आज्ञा का उल्लंघन करने का साहस कर सके।

एक घंटा भी न गुजरने पाया था कि बेगमात पूरे-के-पूरे आभूषणों से जगमगाती, अपने मुख की काँति से बेले और गुलाब की कलियों को लजाती, सुगंध की लपटें उड़ातीं, छमछम करती हुई दीवाने-खास में आकर नादिरशाह के सामने खड़ी हो गयीं।

3

नादिरशाह ने एक बार कनखियों से परियों के इस दल को देखा और तब मसनद की टेक लगा कर लेट गया। अपनी तलवार और कटार सामने रख दीं। एक क्षण में उसकी आँखें झपकने लगीं। उसने एक अँगड़ाई ली और करवट बदल ली। ज़रा देर में उसके खर्राटों की आवाज़ें सुनायी देने लगीं। ऐसा जान पड़ा कि वह गहरी निद्रा में मग्न हो गया है। आध घंटे तक वह पड़ा सोता रहा और बेगमें ज्यों-की-त्यों सिर नीचा किये दीवार के चित्रों की भाँति खड़ी रहीं। उनमें दो-एक महिलाएँ जो ढीठ थीं, घूँघट की ओट से नादिरशाह को देख भी रही थीं और आपस में दबी जबान में कानाफूसी कर रही थीं—कैसा भयंकर स्वरूप है ! कितनी रणोन्मत्त आँखें हैं ! कितना भारी शरीर है ! आदमी काहे को है, देव है !

सहसा नादिरशाह की आँखें खुल गयीं। परियों का दल पूर्ववत् खड़ा था। उसे जागते देख कर बेगमों ने सिर नीचे कर लिये और अंग समेट कर भेड़ों की भाँति एक दूसरे से मिल गयीं। सबके दिल धड़क रहे थे कि अब यह जालिम नाचने-गाने को कहेगा, तब कैसे क्या होगा ! खुदा इस जालिम से समझे ! मगर नाचा तो न जायगा। चाहे जान ही क्यों न जाय। इससे ज्यादा जिल्लत अब न सही जायगी।

सहसा नादिरशाह कठोर शब्दों में बोला—ऐ खुदा की बंदियों, मैंने तुम्हारा इम्तहान लेने के लिए बुलाया था और अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि तुम्हारी निसबत मेरा जो गुमान था, वह हर्फ-ब-हर्फ सच निकला। जब किसी कौम की औरतों में ग़ैरत नहीं

रहती तो वह कौम मुरदा हो जाती है।

देखना चाहता था कि तुम लोगों में अभी कुछ ग़ैरत बाकी है या नहीं। इसलिए मैंने तुम्हें यहाँ बुलाया था। मैं तुम्हारी बेहुरमती नहीं करना चाहता था। मैं इतना ऐश का बंदा नहीं हूँ, वरना आज भेड़ों के गल्ले चराता होता। न इतना हवसपरस्त हूँ, वरना आज फारस में सरोद और सितार की तानें सुनता होता, जिसका मजा मैं हिंदुस्तानी गाने से कहीं ज्यादा उठा सकता हूँ। मुझे सिर्फ तुम्हारा इम्तहान लेना था। मुझे यह देख कर सच्चा मलाल हो रहा है कि तुममें ग़ैरत का जौहर बाकी न रहा। क्या यह मुमकिन न था कि तुम मेरे हुक्म को पैरों तले कुचल देतीं ? जब तुम यहाँ आ गयीं तो मैंने तुम्हें एक और मौका दिया। मैंने नींद का बहाना किया। क्या यह मुमकिन न था कि तुम में से कोई खुदा की बंदी इस कटार को उठा कर मेरे जिगर में चुभा देती। मैं कलामेपाक की कसम खा कर कहता हूँ कि तुम में से किसी को कटार पर हाथ रखते देख कर मुझे बेहद खुशी होती, मैं उन नाजुक हाथों के सामने गरदन झुका देता ! पर अफसोस है कि आज तैमूरी खानदान की एक बेटी भी यहाँ ऐसी नहीं निकली जो अपनी हुरमत बिगाड़ने पर हाथ उठाती ! अब यह सल्तनत जिंदा नहीं रह सकती। इसकी हस्ती के दिन गिने हुए हैं। इसका निशान बहुत जल्द दुनिया से मिट जाएगा। तुम लोग जाओ और हो सके तो अब भी सल्तनत को बचाओ वरना इसी तरह हवस की गुलामी करते हुए दुनिया से रुखसत हो जाओगी।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'अलअस्र', दिसम्बर, 1914 में 'हुस्ने-इन्तिखाब' शीर्षक से प्रकाशित। हिन्दी रूप 'चाँद', जनवरी, 1923 में 'परीक्षा' शीर्षक से प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-3 में संकलित।]

विस्मृति

चित्रकूट के सन्निकट धनगढ़ नामक एक गाँव है। कुछ दिन हुए वहाँ शानसिंह और गुमानसिंह दो भाई रहते थे। ये जाति के ठाकुर (क्षत्रिय) थे। युद्धस्थल में वीरता के कारण उनके पूर्वजों को भूमि का एक भाग मुआफी प्राप्त हुआ था। खेती करते थे, भैंसें पाल रखी थीं, घी बेचते थे, मट्ठा खाते थे और प्रसन्नतापूर्वक समय व्यतीत करते थे। उनकी एक बहिन थी, जिसका नाम दूजी था। यथा नाम तथा गुण। दोनों भाई परिश्रमी और अत्यंत साहसी थे। बहिन अत्यंत कोमल, सुकुमारी, सिर पर घड़ा रख कर चलती तो उसकी कमर बल खाती थी; किन्तु तीनों अभी तक कुँवारे थे। प्रकटतः उन्हें विवाह की चिंता न थी। बड़े भाई शानसिंह सोचते, छोटे भाई के रहते हुए अब मैं अपना विवाह कैसे करूँ। छोटे भाई गुमानसिंह लज्जावश अपनी अभिलाषा प्रकट न करते थे कि बड़े भाई से पहले मैं अपना ब्याह कर लूँ ? वे लोगों से कहा करते थे कि–'भाई हम बड़े आनंद में हैं, आनंदपूर्ण भोजन कर मीठी नींद सोते हैं। कौन यह झंझट सिर पर ले ?' किंतु लग्न के दिनों में कोई नाई या ब्राह्मण गाँव में वर ढूँढ़ने आ जाता तो उसकी सेवा-सत्कार में यह कोई बात न उठा रखते थे। पुराने चावल निकाले जाते, पालतू बकरे देवी को भेंट होते, और दूध की नदियाँ बहने

लगती थीं। यहाँ तक कि कभी-कभी उसका भ्रातृ-स्नेह प्रतिद्वंद्विता एवं द्वेष भाव के रूप में परिणत हो जाता था। इन दिनों में इनकी उदारता उमंग पर आ जाती थी, और इसमें लाभ उठाने वालों की भी कमी न थी। कितने ही नाई और ब्राह्मण ब्याह के असत्य समाचार ले कर उनके यहाँ आते, और दो-चार दिन पूड़ी-कचौड़ी खा कुछ विदाई ले कर वरक्षा (फलदान) भेजने का वादा करके अपने घर की राह लेते। किंतु दूसरे लग्न तक वह अपना दर्शन तक न देते थे। किसी न किसी कारण भाइयों का यह परिश्रम निष्फल हो जाता था। अब कुछ आशा थी, तो दूजी से। भाइयों ने यह निश्चय कर लिया था कि इसका विवाह वहीं पर किया जाये जहाँ से एक बहू प्राप्त हो सके।

2

इसी बीच में गाँव का बूढ़ा कारिन्दा परलोक सिधारा। उसकी जगह पर एक नवयुवक ललनसिंह नियुक्त हुआ जो अँगरेज़ी की शिक्षा पाया हुआ शौकीन, रंगीन और रसीला आदमी था। दो-चार ही दिनों में उसने पनघटों, तालाबों और झरोखों की देखभाल भली-भाँति कर ली। अंत में उसकी रसभरी दृष्टि दूजी पर पड़ी। उसकी सुकुमारता और रूपलावण्य पर मुग्ध हो गया। भाइयों से प्रेम और परस्पर मेल-जोल पैदा किया। कुछ विवाह-सम्बन्धी बातचीत छेड़ दी। यहाँ तक कि हुक्का-पानी भी साथ-साथ होने लगा। सायं-प्रातः इनके घर पर आया करता। भाइयों ने भी उसके आदर-सम्मान की सामग्रियाँ जमा कीं। पानदान मोल लाये, कालीन खरीदी। वह दरवाजे पर आता तो दूजी तुरंत पान के बीड़े बनाकर भेजती। बड़े भाई कालीन बिछा देते और छोटे भाई तश्तरी में मिठाइयाँ रख लाते। एक दिन श्रीमान ने कहा—भैया शानसिंह, ईश्वर की कृपा हुई तो अब की लग्न में भाभीजी आ जायेंगी। मैंने सब बातें ठीक कर ली हैं।

शानसिंह की बाछें खिल गयीं। अनुग्रहपूर्ण दृष्टि से देख कर कहा—मैं अब इस अवस्था में क्या करूँगा। हाँ, गुमानसिंह की बातचीत कहीं ठीक हो जाती, तो पाप कट जाता।

गुमानसिंह ने ताड़ का पंखा उठा लिया और झलते हुए बोले—वाह भैया ! कैसी बात कहते हो ?

ललनसिंह ने अकड़कर शानसिंह की ओर देखते हुए कहा—भाई साहब, क्या कहते हो, अबकी लग्न में दोनों भाभियाँ छमाछम करती हुई घर में आवें तो बात ! मैं ऐसा कच्चा मामला नहीं रखता। तुम तो अभी से बुड्ढों की भाँति बातें करने लगे। तुम्हारी अवस्था यद्यपि पचास से भी अधिक हो गयी; पर देखने में चालीस वर्ष से भी कम मालूम होती है। अब दोनों विवाह होंगे, बीच खेत होंगे। यह तो बताओ, वस्त्राभूषण का समुचित प्रबंध है न ?

शानसिंह ने उनके जूतों को सीधा करते हुए कहा—भाई साहब ! आप की यदि ऐसी कृपा-दृष्टि है, तो सब कुछ हो जायेगा। आखिर इतने दिन कमा-कमा कर क्या किया है।

गुमानसिंह घर में गये, हुक्का ताजा किया, तम्बाकू में दो-तीन बूँद इत्र के डाले, चिलम भरी, दूजी से कहा, कि शरबत घोल दे और हुक्का ला कर ललनसिंह के सामने रख दिया।

ललनसिंह ने दो-चार दम लगाये और बोले—नाई दो-चार दिन में आने वाला है।

ऐसा घर चुना है कि चित्त प्रसन्न हो जाये, एक विधवा है। दो कन्यायें एक से एक सुंदर। विधवा दो-एक वर्ष में संसार को त्याग देगी और तुम एक सम्पूर्ण गाँव में दो आने के हिस्सेदार बन जाओगे। गाँव वाले जो अभी हँसी करते हैं, पीछे जल-जल मरेंगे। हाँ, भय इतना ही है कि कोई बुढ़िया के कान न भर दे कि सारा बना-बनाया खेल बिगड़ जाये।

शानसिंह के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। गुमानसिंह की मुखकांति मलिन हो गयी। कुछ देर बाद शानसिंह बोले—अब तो आपकी ही आशा है, आपकी जैसी राय हो, किया जाय।

जब कोई पुरुष हमारे साथ अकारण मित्रता का व्यवहार करने लगे तो हमको सोचना चाहिए कि इसमें उसका कोई स्वार्थ तो नहीं छिपा है। यदि हम अपने सीधेपन से इस भ्रम में पड़ जायँ कि कोई मनुष्य हमको केवल अनुगृहीत करने के लिए हमारी सहायता करने पर तत्पर है तो हमें धोखा खाना पड़ेगा। किन्तु अपने स्वार्थ की धुन में ये मोटी-मोटी बातें भी हमारी निगाहों से छिप जाती हैं और हमें छल अपने रँग हुए भेष में आकर हमको सर्वदा के लिए परस्पर व्यवहार का उपदेश देता है। शानसिंह और गुमानसिंह ने विचार से कुछ भी काम न लिया और ललनसिंह के फंदे नित्यप्रति गाढ़े होते गये। मित्रता ने यहाँ तक पाँव पसारे कि भाइयों की अनुपस्थिति में भी वह बेधड़क घर में घुस जाते और आँगन में खड़े हो कर छोटी बहन से पान-हुक्का माँगते। दूजी उन्हें देखते ही अति प्रसन्नता से पान बनाती। फिर आँखें मिलतीं, एक प्रेमाकांक्षा से बेचैन, दूसरी लज्जावश सकुची हुई। फिर मुस्कराहट की झलक होंठों पर आती। चितवनों की शीतलता कलियों को खिला देती। हृदय नेत्रों द्वारा बातें कर लेते।

इस प्रकार प्रेमलिप्सा बढ़ती गयी। उस नेत्रालिंगन में, जो मनोभावों का बाह्यरूप था, उद्विग्नता और विकलता की दशा उत्पन्न हुई। वह दूजी, जिसे कभी मनिहारे और बिसाती की रुचिकर ध्वनि भी चौखट से बाहर न निकाल सकती थी, अब एक प्रेम-विह्वलता की दशा में प्रतीक्षा की मूर्ति बनी हुई घंटों दरवाजों पर खड़ी रहती। उन दोहे और गीतों में, जिन्हें वह कभी विनोदार्थ गाया करती थी, अब उसे विशेष अनुराग और विरह-वेदना का अनुभव होता ? तात्पर्य यह कि प्रेम का रंग गाढ़ा हो गया।

शनैः-शनैः गाँव में चर्चा होने लगी। घास और कास स्वयं उगते हैं। उखाड़ने से भी नहीं जाते। अच्छे पौधे बड़ी देख-रेख से उगते हैं। इसी प्रकार बुरे समाचार स्वयं फैलते हैं, छिपाने से भी नहीं छिपते। पनघटों और तालाबों के किनारे इस विषय पर कानाफूसी होने लगी। गाँव की बनियाइन, जो अपनी तराजू पर हृदयों को तोलती थी और ग्वालिन जो जल में प्रेम का रंग देकर दूध का दाम लेती थी और तम्बोलिन जो पान के बीड़ों से दिलों पर रंग जमाती थी, बैठ कर दूजी की लोलुपता और निर्लज्जता का राग अलापने लगी। बेचारी दूजी को घर से निकलना दुर्लभ हो गया। सखी-सहेलियाँ एवं ब. बूढ़ियाँ सभी उनको ताने मारतीं। सखी-सहेलियाँ हँसी से छेड़तीं और वृद्धा स्त्रियाँ हृदय विदारक व्यंग्यों से।

मर्दों तक बातें फैलीं। ठाकुरों का गाँव था। उनकी क्रोधाग्नि भड़की। आपस में सम्मति हुई कि ललनसिंह को इस दुष्टता का दंड देना उचित है। दोनों भाइयों को बुलाया और बोले—भैया, क्या अपनी मर्यादा का नाश करके विवाह करोगे ?

दोनों भाई चौंक पड़े। उन्हें विवाह की उमंग में यह सुधि ही नहीं थी कि घर में क्या हो रहा है। शानसिंह ने कहा—तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आयी। साफ-साफ क्यों नहीं कहते।

एक ठाकुर ने जवाब दिया—साफ-साफ क्या कहलाते हो। इस शोहदे ललनसिंह का अपने यहाँ आना-जाना बंद कर दो, तुम तो अपनी आँखों पर पट्टी बाँधे ही हो, पर उसकी जान की कुशल नहीं। हमने अभी तक इसीलिए तरह दिया है कि कदाचित् तुम्हारी आँखें खुलें, किंतु ज्ञात होता है कि तुम्हारे ऊपर उसने मुर्दे का भस्म डाल दिया है। ब्याह क्या अपनी आबरू बेच कर करोगे ? तुम लोग खेत में रहते हो और हम लोग अपनी आँखों से देखते हैं कि वह शोहदा अपना बनाव-सँवार किये आता है और तुम्हारे घर में घंटों घुसा रहता है। तुम उसे अपना भाई समझते हो तो समझा करो, हम तो ऐसे भाई का गला काट लें जो विश्वासघात करे।

भाइयों के नेत्रपट खुले। दूजी के ज्वर के सम्बन्ध में जो ज्वर का संदेह था, वह प्रेम का ज्वर निकला। रुधिर में उबाल आया। नेत्रों में चिनगारियाँ उड़ीं। तेवर बदले। दोनों भाइयों ने एक दूसरे की ओर क्रोधमय दृष्टि से देखा। मनोगत भाव जिह्वा तक न आ सके। अपने घर आये; किंतु दर पर पाँव रखा ही था कि ललनसिंह से मुठभेड़ हो गयी।

ललनसिंह ने हँस कर कहा—वाह भैया ! वाह ! हम तुम्हारी खोज में बार-बार आते हैं, किन्तु तुम्हारे दर्शन तक नहीं मिलते। मैंने समझा, आखिर रात्रि में तो कुछ काम न होगा। किन्तु देखता हूँ, आपको इस समय भी छुट्टी नहीं है।

शानसिंह ने हृदय के भीतर क्रोधाग्नि को दबा कर कहा—हाँ, इस समय वास्तव में छुट्टी नहीं है।

ललनसिंह—आख़िर क्या काम है ? मैं भी सुनूँ।

शानसिंह—बहुत बड़ा काम है, आपसे छिपा न रहेगा।

ललनसिंह—कुछ वस्त्राभूषण का भी प्रबंध कर रहे हो ? अब लग्न सिर पर आ गया है।

शानसिंह—अब बड़ा लग्न सिर पर आ पहुँचा है, पहले इसका प्रबंध करना।

ललनसिंह—क्या किसी से ठन गयी।

शानसिंह—भली-भाँति।

ललनसिंह—किससे ?

शानसिंह—इस समय जाइये, प्रातःकाल बतलाऊँगा।

3

दूजी भी ललनसिंह के साथ दरवाजे की चौखट तक आयी थी। भाइयों की आहट पाते ही ठिठक गयी और यह बातें सुनीं। उसका माथा ठनका कि आज यह क्या मामला है। ललनसिंह का कुछ आदर-सत्कार नहीं हुआ। न हुक्का, न पान। क्या भाइयों के कानों में कुछ भनक तो नहीं पड़ी। किसी ने कुछ लगा तो नहीं दिया। यदि ऐसा हुआ तो कुशल नहीं।

इसी उधेड़बुन में पड़ी थी कि भाइयों ने भोजन परोसने की आज्ञा दी। जब वह भोजन

करने बैठे तो दूजी ने अपनी निर्दोषिता और पवित्रता प्रकट करने के लिए एवं अपने भाइयों के दिल का भेद लेने के लिए कुछ कहना चाहा। त्रिया-चरित्र में अभी निपुण न थी। बोली —भैया, ललनसिंह से कह दो, घर में न आया करें। आप घर में रहिए तो कोई बात नहीं, किंतु कभी-कभी आप नहीं रहते तो मुझे अत्यंत लज्जा आती है। आज ही वह आपको पूछते हुए चले आये, अब मैं उनसे क्या कहूं। आपको नहीं देखा तो लौट गये !

शानसिंह ने बहिन की तरफ ताने-भरे नेत्रों से देख कर कहा—अब वह घर में न आयेंगे।

गुमानसिंह बोले—हम इसी समय जा कर उन्हें समझा देंगे।

भाइयों ने भोजन कर लिया। दूजी को पुनः कुछ कहने का साहस न हुआ। उसे उनके तेवर आज कुछ बदले हुए मालूम होते थे। भोजनोपरांत दोनों भाई दीपक ले कर भंडारे की कोठरी में गये। अनावश्यक बर्तन, पुराने सामान, पुरुषाओं के समय के अस्त्र-शस्त्र आदि इसी कोठरी में रखे थे। गाँव में जब कोई बकरा देवी जी को भेंट दिया जाता तो यह कोठरी खुलती थी ? आज तो कोई ऐसी बात नहीं है। इतनी रात गये यह कोठरी क्यों खोली जाती है ? दूजी को किसी भावी दुर्घटना का संदेह हुआ। वह दबे पाँव दरवाजे पर गयी तो देखती क्या है कि गुमानसिंह एक भुजाली लिये पत्थर पर रगड़ रहा है। उसका कलेजा धक्-धक् करने लगा और पांव थर्राने लगे। वह उल्टे पाँव लौटना चाहती थी कि शानसिंह की आवाज सुनायी दी—"इसी समय एक घड़ी में चलना ठीक है। पहली नींद बड़ी गहरी होती है। बेधड़क सोता होगा।" गुमानसिंह बोले—"अच्छी बात है, देखो, भुजाली की धार ? एक हाथ में काम तमाम हो जायेगा।"

दूजी को ऐसा ज्ञात हुआ मानो किसी ने पहाड पर से ढकेल दिया। सारी बातें उसकी समझ में आ गयीं। वह भय की दशा में घर से निकली और ललनसिंह के चौपाल की ओर चली। किंतु वह अँधेरी रात प्रेम की घाटी थी और वह रास्ता प्रेम का कठिन मार्ग। वह इस सुनसान अँधेरी रात में चौकन्ने नेत्रों से इधर-उधर देखती, विह्वलता की दशा में शीघ्रतापूर्वक चली जाती थी। किंतु हाय निराशा ! एक-एक पल उसे प्रेम-भवन से दूर लिये जाता था। उस अँधेरी भयानक रात्रि में भटकती, न जाने वह कहाँ चली जाती थी, किससे पूछे। लज्जावश किसी से कुछ न पूछ सकती थी। कहीं चूड़ियों का झनझनाना भेद न खोल दे। क्या इन अभागे आभूषणों को आज ही झनझना है ? अंत में एक वृक्ष के तले वह बैठ गयी। सब चूड़ियाँ चूर-चूर कर दीं, आभूषण उतार कर आँचल में बाँध लिये। किंतु हाय ! यह चूड़ियाँ सुहाग की चूड़ियाँ थीं और यह गहने सुहाग के गहने थे जो एक बार उतार कर फिर न पहने गये।

उसी वृक्ष के नीचे पयस्विनी नदी पत्थर के टुकड़ों से टकराती हुई बहती थी। यहाँ नौकाओं का निर्वाह दुस्तर था। दूजी बैठी हुई सोचती, क्या मेरे जीवन की नदी में प्रेम की नौका दुःख की शिलाओं से टक्कर खा कर डूब जायेगी !

4

प्रातःकाल ग्रामवासियों ने आश्चर्यपूर्वक सुना कि ठाकुर ललनसिंह की किसी ने हत्या कर

डाली। सारे गाँव के स्त्री-पुरुष, वृद्धा-युवा सहस्रों की संख्या में चौपाल के सामने जमा हो गये। स्त्रियाँ पनघटों को जाती हुई रुक गयीं। किसान हल-बैल लिये ज्यों के त्यों खड़े रह गये। किसी की समझ में न आता था कि यह हत्या किसने की। कैसा मिलनसार, हँसमुख सज्जन मनुष्य था। उनका कौन ऐसा शत्रु था। बेचारे ने किसी पर इजाफा लगान या बेदखली की नालिश तक नहीं की। किसी को दो बात तक नहीं कही। दोनों भाइयों के नेत्रों से आँसू की धारा बहती थी। उनका घर उजड़ गया। सारी आशाओं पर तुषारपात हो गया। गुमानसिंह ने रोकर कहा—हम तीन भाई थे, अब दो ही रह गये। हमसे तो दाँत-काटी रोटी थी। साथ उठना, हँसी-दिल्लगी, भोजन-छाजन एक हो गया था। हत्यारे से इतना भी नहीं देखा गया। हाय ! अब हमको कौन सहारा देगा ?

शानसिंह ने आँसू पोंछते हुए कहा—हम दोनों भाई कपास निराने जा रहे थे। ललनसिंह से कई दिन से भेंट नहीं हुई थी। सोचे कि इधर से होते चलें, किंतु पिछवाड़े आते ही सेंध दिखायी पड़ी। हाथों के तोते उड़ गये। दरवाजों पर जाकर देखा तो चौकीदार-सिपाही सब सो रहे थे। उन्हें जगा कर ललनसिंह के किवाड़ खटखटाने लगे। परंतु बहुत बल करने पर भी किवाड़ अंदर से न खुले तो सेंध के रास्ते से झाँका। आह? कलेजे में तीर लग गया ! संसार अँधेरा दिखायी दिया। प्यारे ललनसिंह का सिर धड़ से अलग था। रक्त की नदी बह रही थी। शोक ! भैया सदा के लिए बिछुड़ गये।

मध्याह्न काल तक इसी प्रकार विलाप होता रहा। दरवाजे पर मेला लगा हुआ था। दूर-दूर से लोग इस दुर्घटना का समाचार पाकर इकट्ठे होते जाते थे। संध्या होते-होते हल्के के दारोगा साहब भी चौकीदार और सिपाहियों का एक झुंड लिये आ पहुँचे। कढ़ाही चढ़ गयी। पूड़ियाँ छनने लगीं। दारोगा जी ने जाँच करनी शुरू की। घटनास्थल देखा। चौकीदारों का बयान हुआ। दोनों भाइयों के बयान लिखे। आस-पास के पासी और चमार पकड़े गये और उन पर मार पड़ने लगी। ललनसिंह की लाश लेकर थाने पर गये। हत्यारे का पता न चला। दूसरे दिन इन्स्पेक्टर-पुलिस का आगमन हुआ। उन्होंने भी गाँव का चक्कर लगाया, चमारों और पासियों की मरम्मत हुई। हलुआ-मोहन, गोश्त-पूड़ी के स्वाद लेकर सायंकाल को उन्होंने भी अपनी राह ली। कुछ पासियों पर जो कि कई बार डाके-चोरी में पकड़े जा चुके थे, संदेह हुआ। उनका चालान किया। मजिस्ट्रेट ने गवाही पुष्ट पाकर अपराधियों को सेशन सुपुर्द किया और मुकदमे की पेशी होने लगी।

मध्याम्न का समय था। आकाश पर मेघ छाये हुए थे। कुछ बूँदें भी पड़ रही थीं। सेशन जज कुँवर विनयकृष्ण बघेल के इजलास में मुकदमा पेश था। कुँवर साहब बड़े सोच-विचार में थे कि क्या करूँ। अभियुक्तों के विरुद्ध साक्षी निर्बल थी। किंतु सरकारी वकील, जो एक प्रसिद्ध नीतिज्ञ थे, नजीरों पर नजीर पेश करते जाते थे कि अचानक दूजी श्वेत साड़ी पहने, घूँघट निकाले हुए निर्भय न्यायालय में आ पहुँची और हाथ जोड़ कर बोली—श्रीमान् ! मैं शानसिंह और गुमानसिंह की बहन हूँ। इस मामले में जो कुछ जानती हूँ वह मुझसे भी सुन लिया जाये, इसके बाद सरकार जो फैसला चाहें, करें।

कुँवर साहब ने आश्चर्य से दूजी की तरफ दृष्टि फेरी। शानसिंह और गुमानसिंह के शरीर में काटो तो रक्त नहीं। वकीलों ने आश्चर्य की दृष्टि से उसकी ओर देखना शुरू

किया। दूजी के चेहरे पर दृढ़ता झलक रही थी। भय का लेशमात्र न था। नदी आँधी के पश्चात् स्थिर दशा में थी। उसने उसी प्रवाह में कहना प्रारम्भ किया—ठाकुर ललनसिंह की हत्या करने वाले मेरे दोनों भाई हैं।

कुँवर साहब के नेत्रों से पर्दा हट गया। सारी कचहरी दंग हो गयी और सब टकटकी बाँधे दूजी की तरफ देखने लगे।

दूजी बोली—यह वह भुजाली है, जो ललनसिंह की गर्दन पर फेरी गयी है। अभी इसका खून ताजा है। मैंने अपनी आँखों से भाइयों को इसे पत्थर पर रगड़ते देखा; उनकी बातें सुनीं। मैं उसी समय घर से बाहर निकली कि ललनसिंह को सावधान कर दूँ; किंतु मेरा भाग्य खोटा था; चौपाल का पता न लगा। मेरे दोनों भाई सामने खड़े हैं। वह मर्द हैं, मेरे सामने असत्य कदापि न कहेंगे। इनसे पूछ लिया जाय। और सच पूछिए तो यह छुरी मैंने चलायी है। मेरे भाइयों का अपराध नहीं है। यह सब मेरे भाग्य का खेल है। यह सब मेरे कारण हुआ और न्याय की तलवार मेरी ही गर्दन पर पड़नी चाहिए। मैं ही अपराधिनी हूँ और हाथ जोड़ कर कहती हूँ कि इस भुजाली से मेरी गर्दन काट ली जाय।

5

न्यायालय में एक स्त्री का आना बाजार में भानमती का आना है। अब तक अभियोग नीरस और अरुचिकर था। दूजी के आगमन ने उसमें प्राण डाल दिये। न्यायालय में एक भीड़ लग गयी। मुवक्किल और वकील, अमले और दुकानदार, असावधानी की दशा में इधर-उधर दौड़ते हुए चले जाते थे। प्रत्येक पुरुष उसको देखने का इच्छुक था। सहस्रों नेत्र उसके मुखड़े की तरफ देखते थे और वह जन-समूह में शांति की मूर्ति बनी हुई निश्चल खड़ी थी।

इस घटना की प्रत्येक पुरुष अपनी-अपनी समझ के अनसार आलोचना करता था। वृद्धजन कहते थे—बेहया है, ऐसी लड़की का सिर काट लेना चाहिए। भाइयों ने वही किया, जो मर्दों का काम था। इस निर्लज्ज को तो देखो कि अपना परदा ढाँकने के बदले उसका डंका बजा रही है और भाइयों को भी डुबोये देती है। आँखों का पानी गिर गया है। ऐसी न होती तो यह दिन ही क्यों आता ?

मगर नवयुवकों, स्वतंत्रता पर जान न्योछावर कर देने वाले वकीलों और अमलों में उसके साहस और निर्भयता की प्रशंसा हो रही थी। उसकी समझ में जब यहाँ तक नौबत आ गयी थी तो भाइयों का धर्म था कि दोनों का ब्याह कर देते।

कई वृद्ध वकीलों की अपने नवयुवक मित्रों से कुछ छेड़छाड़ हो गयी। एक फैशनेबुल बैरिस्टर साहब ने हँस कर कहा—मित्र, और तो जो कुछ है सो है, यह स्त्री सहस्रों में एक है, रानी मालूम होती है। सर्वसाधारण ने इनका समर्थन किया। कुँवर विनयकृष्ण इस समय कचहरी से उठे थे। बैरिस्टर साहब की बात सुनी और घृणा से मुँह फेर लिया। वह सोच रहे थे कि जिस स्त्री के क्रोध में इतनी ज्वाला है, क्या उसका प्रेम भी इसी प्रकार ज्वालापूर्ण होगा।

6

दूसरे दिन फिर दस बजे मुकदमा पेश हुआ। कमरे में तिल रखने की भी जगह न थी। दूजी कटघरे के पास सिर झुकाये खड़ी थी। दोनों भाई कई कांस्टेबलों के बीच में चुपचाप खड़े थे। कुँअर विनयकृष्ण ने उन्हें संबोधित करके उच्च स्वर से कहा—ठाकुर शानसिंह, गुमानसिंह। तुम्हारी बहिन ने तुम्हारे सम्बन्ध में अदालत में जो कुछ बयान दिया है, उसका तुम्हारे पास क्या उत्तर है?

शानसिंह ने गर्वपूर्ण भाव से उत्तर दिया—बहिन ने जो कुछ बयान किया है वह सब सत्य है। हमने अपना अपराध इसलिए छुपाया था कि हम बदनामी, बेइज्जती से डरते थे। किंतु अब जब हमारी बदनामी जो कुछ होनी थी, हो चुकी तो हमको अपनी सफाई देने की कोई आवश्यकता नहीं। ऐसे जीवन से अब मृत्यु ही उत्तम है। ललनसिंह से हमारी हार्दिक मित्रता थी। आपस में कोई विभेद न था। हम उसे अपना भाई समझते थे, किंतु उसने हमको धोखा दिया। उसने हमारे कुल में कलंक लगा दिया और हमने उसका बदला लिया। उसने चिकनी-चुपड़ी बातों द्वारा हमारी इज्जत लेनी चाही। किंतु हम अपने कुल की मर्यादा इतनी सस्ती नहीं बेच सकते थे। स्त्रियाँ ही कुल-मर्यादा की संपत्ति होती हैं। मर्द उसके रक्षक होते हैं। जब इस संपत्ति पर कपट का हाथ उठे तो मर्दों का धर्म है कि रक्षा करें। इस पूँजी को अदालत का कानून, परमात्मा का भय या सद्विचार नहीं बचा सकता। हमको इसके लिए न्यायालय से जो दंड प्राप्त हो, वह शिरोधार्य है।

जज ने शानसिंह की बात सुनी। कचहरी में सन्नाटा छा गया और सन्नाटे की दशा में उन्होंने अपना फैसला सुनाया। दोनों भाइयों को हत्या के अपराध में 14 वर्ष कालेपानी का दंड मिला।

7

सायंकाल हो गया था। दोनों भाई कांस्टेबलों के बीच में कचहरी से बाहर निकले। हाथों में हथकड़ियाँ थीं, पाँवों में बेड़ियाँ। हृदय अपमान से संकुचित और सिर लज्जा के बोझ से झुके हुए थे। मालूम होता था मानो सारी पृथ्वी हम पर हँस रही है।

दूजी पृथ्वी पर बैठी हुई थी कि उसने कैदियों के आने की आहट सुनी और उठ खड़ी हुई। भाइयों ने भी उसकी ओर देखा। परंतु हाय! उन्हें ऐसा ज्ञात हुआ कि यह भी हमारे ऊपर हँस रही है। घृणा से नेत्र फेर लिये। दूजी ने भी उन्हें देखा; किंतु क्रोध और घृणा से नहीं; केवल एक उदासीन भाव से। जिन भाइयों की गोद में खेली और जिनके कंधों पर चढ़ कर बाल्यावस्था व्यतीत की; जिन भाइयों पर न्योछावर करती थी, आज वही दोनों भाई कालेपानी को जा रहे हैं जहाँ से कोई लौट कर नहीं आता और उसके रक्त में तनिक भी गति नहीं होती! रुधिर भी द्वेष से जल की भाँति जम जाता है। सूर्य की किरणें वृक्षों की डालियों से मिलीं, फिर जड़ों को चूमती हुई चल दीं। उनके लिए अंधकार गोद फैलाये हुए था। क्या इस अभागिनी स्त्री के लिए भी संसार में कोई ऐसा आश्रय नहीं था।

आकाश की लालिमा नीलावरण हो गयी। तारों के कँवल खिले। वायु के लिए पुष्प-शय्या बिछ गयी। ओस के लिए हरी मखमल का फर्श बिछ गया, किंतु अभागिनी

दूजी उसी वृक्ष के नीचे शिथिल बैठी थी। उसके लिए संसार में कोई स्थान न था। अब तक जिसे वह अपना घर समझती थी, उसके दरवाजे उसके लिए बंद थे। वहाँ क्या मुँह ले कर जाती ? नदी को अपने उद्गम से चल कर अथाह समुद्र के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं ठिकाना नहीं है।

दूजी उसी तरह निराशा के समुद्र में निमग्न हो रही थी, कि एक वृद्ध स्त्री उसके सामने आ कर खड़ी हो गयी। दूजी चौंक कर उठ बैठी। वृद्ध स्त्री ने उसकी ओर आश्चर्यान्वित हो कर कहा—इतनी रात बीत गयी, अभी तक तुम यहीं बैठी हो ?

दूजी ने चमकते हुए तारों की ओर देख कर कहा—कहाँ जाऊँ ? इन शब्दों में कैसा हृदय-विदारक आशय छिपा हुआ था ! कहाँ जाय ? संसार में उसके लिए अपमान की गली के सिवा और कोई स्थान नहीं था।

बुढ़िया ने प्रेममय स्वर में कहा—बेटी, भाग्य में जो कुछ लिखा है, वह तो हो कर ही रहेगा, किन्तु तुम कब तक यहाँ बैठी रहोगी ? मैं दीन ब्राह्मणी हूँ। चलो मेरे घर रहो; जो कुछ भिक्षा-भवन माँगे मिलेगा, उसी में हम दोनों निर्वाह कर लेंगी। न जाने पूर्वजन्म में हमसे-तुमसे क्या सम्बन्ध था। जब से तुम्हारी दशा सुनी है, बेचैन हूँ। सारे शहर में आज घर-घर तुम्हारी चर्चा हो रही है। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। बस अब उठो, यहाँ सन्नाटे में पड़े रहना अच्छा नहीं है। समय बुरा है। मेरा घर यहाँ से थोड़ी ही दूर पर है। नारायण का दिया बहुत कुछ है। मैं भी अकेली से दुकेली हो जाऊँगी। भगवान् किसी न किसी प्रकार दिन काट ही देंगे।

एक घने, सुनसान, भयानक वन में भटका हुआ मनुष्य जिधर पगडंडियों का चिन्ह पाता है, उसी मार्ग को पकड़ लेता है। वह सोच-विचार नहीं करता कि मार्ग मुझे कहाँ ले जायेगा। दूजी इस बुढ़िया के साथ चली। इतनी ही प्रसन्नता से वह कुएँ में भी कूद पड़ती। वायु में उड़नेवाली चिड़िया दाने पर गिरी। क्या इन दानों के बीच जाल बिछा हुआ था ?

४

दूजी को बूढ़ी कैलासी के साथ रहते हुए एक मास बीत गया। कैलासी देखने में दीन, किन्तु मन की धनी थी। उसके पास संतोष रूपी धन था जो किसी के सामने हाथ नहीं फैलाता। रीवाँ के महाराजा के यहाँ से कुछ सहायता मिलती थी। यही उसके जीवन का अवलम्ब था। वह सर्वदा दूजी को ढाढ़स देती रहती थी। ज्ञात होता था कि यह दोनों माँ-बेटी हैं। एक ओर से पूर्ण सहानुभूति और, दूसरी ओर से सच्ची सेवकायी और विश्वास।

कैलासी कुछ हिंदी जानती थी। दूजी को रामायण और सीता-चरित्र सुनाती। दूजी इन कथाओं को बड़े प्रेम से सुनती। उज्ज्वल वस्त्र पर रंग भली-भाँति चढ़ता है। जिस दिन उसने सीता-वनवास की कथा सुनी, वह सारे दिन रोती रही। सोयी तो सीता की मूर्ति उसके सामने खड़ी थी। उसके शरीर पर उज्ज्वल साड़ी थी, आँखों और आँसू की ओट में प्यार छिपा हुआ था। दूजी हाथ फैलाये हुए लड़कों की भाँति उनकी तरफ दौड़ी। माता, मुझको भी साथ लेती चलो। मैं वन में तुम्हारी सेवा करूँगी। तुम्हारे लिये पुष्प-शय्या

बिछाऊँगी, तुमको कमल के थालों में फलों का भोजन कराऊँगी। तुम वहाँ अकेली एक बुड्ढे साधु के साथ कैसे रहोगी ? मैं तुम्हारे चित्त को प्रसन्न रखूँगी। जिस समय हम और तुम वन में किसी सागर के किनारे घने वृक्षों की छाया में बैठेंगी उस समय मैं वायु की धीमी-धीमी लहरों के साथ गाऊँगी।

सीता ने उसको तिरस्कार से देख कर कहा—तू कलंकिनी है, मैं तुझे स्पर्श नहीं कर सकती। तपस्या की आँच में अपने को पवित्र कर।

दूजी की आँखें खुल गयीं। उसने निश्चय किया, मैं इस कलंक को मिटाऊँगी।

आकाश के नीचे समुद्र में तारागण पानी के बुलबुलों की भाँति मिटते जाते थे। दूजी ने उन झिलमिलाते हुए तारों को देखा। मैं भी उन्हीं तारों की तरह सबके नेत्रों में छिप जाऊँगी। उन्हीं बुलबुलों की भाँति मिट जाऊँगी।

विलासियों की रात हुई। संयोगी जागे। चक्कियों ने अपने सुहावने राग छेड़े। कैलासी स्नान करने चली। तब दूजी उठी और जंगल की ओर चल दी। चिड़िया पंख-हीन होने पर भी सुनहरे पिंजड़े में न रह सकी।

9

प्रकाश की धुँधली-सी झलक में कितनी आशा, कितना बल, कितना आश्वासन है, यह उस मनुष्य से पूछो जिसे अँधेरे ने एक घने वन में घेर लिया है। प्रकाश की वह प्रभा उसके लड़खड़ाते हुए पैरों को शीघ्रगामी बना देती है; उसके शिथिल शरीर में जान डाल देती है। जहाँ एक-एक पग रखना दुस्तर था, वहाँ इस जीवन-प्रकाश को देखते हुए यह मीलों और कोसों तक प्रेम की उमंगों से उछलता हुआ चला जाता है।

परंतु दूजी के लिए आशा की यह प्रभा कहाँ थी ? वह भूखी-प्यासी, उन्माद की दशा में चली जाती थी।

शहर पीछे छूटा। बाग और खेत आये। खेतों में हरियाली थी, वाटिकाओं में वसन्त की छटा। मैदान और पर्वत मिले। मैदानों से बाँसुरी की सुरीली तानें आती थीं। पर्वतों के शिखर मोरों की झनकार से गूँज रहे थे।

दिन चढ़ने लगा। सूर्य उसकी ओर आता हुआ दिखाई पड़ा। कुछ काल तक उसके साथ रहा। कदाचित् रूठे को मनाता था। पुनः अपनी राह चला गया। वसंत ऋतु की शीतल, मंद, सुगन्धित वायु चलने लगी; खेतों ने कुहरे की चादरें ओढ़ लीं। रात हो गयी और दूजी एक पर्वत के किनारे झाड़ियों से उलझती, चट्टानों से टकराती चली जाती थी, मानो किसी झील की मंद-मंद लहरों में किनारे पर उगे हुए झाऊ के पौधों का साया थरथरा रहा हो। इस प्रकार अज्ञात की खोज में अकेली निर्भय वह गिरती-पड़ती चली जाती थी। यहाँ तक कि भूख-प्यास और अधिक श्रम के कारण उसकी शक्तियों ने जवाब दे दिया। वह एक शिला पर बैठ गयी और भयभीत दृष्टि से इधर-उधर देखने लगी। दाहिने-बायें घोर अंधकार था। उच्च पर्वतशिखाओं पर तारे जगमगा रहे थे। सामने एक टीला मार्ग रोके खड़ा था और समीप ही किसी जलधारा से दबी हुई सायँ-सायँ की आवाज़ सुनायी देती थी।

10

दूजी थक कर चूर हो गयी थी; पर उसे नींद न आयी। सर्दी से कलेजा काँप रहा था। वायु के निर्दयी झोंके लेशमात्र भी चैन न लेने देते थे। कभी-कभी एक क्षण के लिए आँखें झपक जातीं और फिर चौंक पड़ती। रात्रि ज्यों-त्यों व्यतीन हुई। सबेरा हुआ। चट्टान से कुछ दूर एक घना पाकर का वृक्ष था, जिसकी जड़ें सूखे पत्थरों से चिमट कर यों रस खींचती थीं जैसे कोई महाजन दीन असामियों को बाँध कर उनसे ब्याज के रुपये वसूल करता है। इस वृक्ष के सामने कई छोटी-छोटी चट्टानों ने मिल कर एक कोठरी की आकृति बना रखी थी। दाहिनी ओर लगभग दो सौ गज की दूरी पर नीचे की ओर पयस्विनी नदी चट्टानों और पाषाण-शिलाओं से उलझती, घूमती-घामती बह रही थी, जैसे कोई दृढ़प्रतिज्ञ मनुष्य बाधाओं का ध्यान न कर अपने इष्ट-साधन के मार्ग पर बढ़ता चला जाता है। नदी के किनारे साधु-प्रकृति बकुले चुपचाप मौनव्रत धारण किये हुए बैठे थे। संतोषी जल-पक्षी पानी में तैर रहे थे। लोभी टिटिहरियाँ नदी पर मँडराती थीं और रह-रह कर मछलियों की खोज में टूटती थीं। खिलाड़ी मैने निःशंक अपने परों को खुजला-खुजला स्नान कर रहे थे। और चतुर कौवे झुंड-के-झुंड भोजन-सम्बन्धी प्रश्न को हल कर रहे थे। एक वृक्ष के नीचे मोरों की सभा सुसज्जित थी और वृक्षों की शाखाओं पर कबूतर आनन्द कर रहे थे। एक दूसरे वृक्ष पर महाशय काग एवं श्रीमान पं. नीलकंठ जी घोर शास्त्रार्थ में प्रवृत्त थे। महाशय काग ने छेड़ने के लिए पंडित जी के निवासस्थान की ओर दृष्टि डाली थी। इस पर पंडित जी इतने क्रोधित हुए कि महाशय काग के पीछे पड़ गये। महाशय काग अपनी स्वाभाविक बुद्धिमत्ता को काम में ला कर सहज ही में भाग खड़े हुए। श्रीमान् पंडित जी बुरा-भला कहते हुए काग के पीछे पड़े। किसी भाँति महाशय जी की सर्वज्ञता ने उनकी जान बचायी।

थोड़ी देर में जंगली नील गायों का एक झुंड आया। किसी ने पानी पिया, किसी ने सूँघ कर छोड़ दिया। दो-चार युवावस्था के मतवाले हिरन आपस में सींग मिलाने लगे। फिर एक काला हिरन अभिमान-भरे नेत्रों से देखता ऐंड-ऐंड़ कर पग उठाता कुछ मृगनयनियों को साथ लिये नदी के किनारे आया। बच्चे थोड़ी दूर पर खेलते हुए चले आते थे। कुछ और हट कर एक वृक्ष के नीचे बन्दरों ने अपने डेरे डाल रखे थे। बच्चे क्रीड़ा करते थे। पुरुषों में छेड़छाड़ हो रही थी। रमणियां सानन्द बैठी हुई एक-दूसरी के बालों से जुएँ निकालती थीं और उन्हें अपने मुँह में रखती जाती थी। दूजी एक चट्टान पर अर्द्धनिद्रा की दशा में बैठी हुई यह दृश्य देख रही थी। घाम के कारण निद्रा आ गयी। नेत्रपट बन्द हो गये।

11

प्रकृति की इस रंग भूमि में दूजी ने अपने चौदह वर्ष व्यतीत किये। वह प्रतिदिन प्रातःकाल इसी नदी के किनारे शिलाओं पर बैठी यही दृश्य देखती और लहरों की कारुणिक ध्वनि सुनती। उसी नदी की भाँति उसके मन में लहरें उठतीं, जो कभी धैर्य और साहस के किनारों पर चढ़ कर नेत्रों द्वारा बह निकलतीं। उसे मालूम होता कि वन के वृक्ष तथा जीव-जन्तु

सब मेरी ओर व्यंग्यपूर्ण नेत्रों से देख रहे हैं। नदी भी उसे देख कर क्रोध से मुँह में फेन भर लेती। जब यहाँ बैठे-बैठे उसका जी ऊब जाता तो वह पर्वत पर चढ़ जाती और दूर तक देखती। पर्वतों के बीच में कहीं-कहीं मिट्टी के घरौंदों की भाँति छोटे-छोटे मकान दिखायी देते, कहीं लहलहाती हुई हरियाली। सारा दृश्य एक नवीन वाटिका की भाँति मनोरम था। उसके दिल में एक तीव्र इच्छा होती कि उड़ कर उन चोटियों पर जा पहुँचूँ। नदी के किनारे या पाकर की घनी छाया में बैठी हुई घंटों सोचा करती। बचपन के दिन याद आ जाते जब वह सहेलियों के गले में बाँहें डाल कर महुए चुनने जाया करती थी। फिर गुड़ियों के व्याह का स्मरण हो जाता। पुनः अपनी प्यारी मातृभूमि की पनघट आँखों में फिर जाती। आज भी वहाँ वही भीड़ होगी, वही हास्य, चहल-पहल। पुनः अपना घर ध्यान में आता और वह गाय स्मरण आती जो कि उसको देख कर हुँकारती हुई अपने प्रेम का परिचय देती थी। मुन्नू स्मरण हो आता, जो उसके पीछे-पीछे छलाँगें मारता हुआ खेतों में जाया करता, जो बर्तन धोते समय बार-बार बर्तनों में मुँह डालता। तब ललनसिंह नेत्रों के सामने आ खड़े हो जाते थे। होंठों पर वही मुस्कराहट, नेत्र में वही चंचलता। तब वह उठ खड़ी होती और अपना मन दूसरी ओर ले जाने की चेष्टा करती।

दिन गुजरते थे, किंतु बहुत धीरे-धीरे। वसंत आया। सेलम की लालिमा एवं कचनार की ऊदी पुष्पमाला अपनी यौवन-छटा दिखलाने लगी। मकोय के फल महके। गरमी का प्रारम्भ हुआ; प्रातःकाल समीर के झोंके, दोपहर की लू, जलती हुई लपट। डालियाँ फूलों से लदीं। फिर वह समय आया कि जब न दिन को सुख था और न रात को नींद। दिन तड़पता था, रात जलती थी। नदियाँ बधिकों के हृदयों की भाँति सूख गयीं। वन के पशु मध्यास्न की धूप में प्यास के कारण जिस्वा निकाले पानी की खोज में इधर-उधर दौड़ते फिरते थे। जिस प्रकार द्वेष से भरे हुए दिल तनिक-तनिक-सी बातों पर जल उठते हैं उसी प्रकार गर्मी से जलते हुए वन-वृंक्ष कभी-कभी वायु के झोंकों से परस्पर रगड़ खा कर जल उठते हैं। ज्वाला ऊँची उठती थी, मानो अग्निदेव ने तारागणों पर धावा मारा है। वन में एक भगदड़-सी पड़ जाती। फिर आँधी और तूफान के दिन आये। वायु की देवी गरजती हुई आती। पृथ्वी और आकाश थर्रा उठते, सूर्य छिप जाता, पर्वत भी काँप उठते। पुनः वर्षा ऋतु का जन्म हुआ। वर्षा की झड़ी लगी। वन लहराये, नदियों ने पुनः-पुनः अपने सुरीले राग छेड़े। पर्वतों के कलेजे ठंडे हुए। मैदान में हरियाली छायी। सारस की ध्वनि पर्वतों में गूँजने लगी। आषाढ़ मास में बाल्यावस्था का अल्हड़पन था। श्रावण में युवावस्था के पग बढ़े, फुहारें पड़ने लगीं। भादों कमाई के दिन थे, जिसने झीलों के कोष भर दिये। पर्वतों को धनाढ्य कर दिया। अंत में बुढ़ापा आया। कास के उज्ज्वल बाल लहराने लगे। जाड़ा आ पहुँचा।

12

इस प्रकार ऋतु परिवर्तन हुआ। दिन और महीने गुजरे। वर्ष आये और गये; किंतु दूजी ने विंध्याचल के उस किनारे को न छोड़ा। गर्मियों के भयानक दिन और वर्षा की भयावनी रातें सब उसी स्थान पर काट दीं। क्या भोजन करती थी, क्या पहनती थी; इसकी चर्चा व्यर्थ है।

मन पर चाहे जो बीते किंतु भूख और ऋतु संबंधी कष्ट का निवारण करना ही पड़ता है। प्रकृति की थाल सजी हुई थी। कभी बनवेरी और शरीफों के पकवान थे, कभी तेंदू, कभी मकोय और कभी राम का नाम। वस्त्रों के लिए चित्रकूट के मेले में साल में केवल एक बार जाती, मोरों के पर, हिरणों के सींग, वन औषधियाँ महँगे दामों में बिकतीं। कपड़ा भी आया, बर्तन भी आये। यहाँ तक कि दीपक जैसी विलास-वस्तु भी एकत्र हो गयी। एक छोटी-सी गृहस्थी जम गयी।

दूजी ने निराशा की दशा में संसार से विमुख होकर जीवन व्यतीत करना जितना सहज समझा था, उससे कहीं कठिन मालूम हुआ। आत्मानुराग में निमग्न वैरागी तो वन में रह सकता है, परंतु एक स्त्री जिसकी अवस्था हँसने-खेलने में व्यतीत हुई हो, बिना किसी नौका के सहारे विराट सागर को किस प्रकार पार करने में समर्थ हो सकती है ? दो वर्ष के पश्चात् दूजी को एक-एक दिन वहाँ वर्ष-सा प्रतीत होने लगा। कालक्षेप करना दुस्तर हो गया। घर की सुधि एक क्षण भी विस्मृत न होती। कभी-कभी वह इतनी व्यग्र होती कि क्षणमात्र के लिए अपमान का भी भय न रहता। वह दृढ़ विचार करके उन पहाड़ियों के बीच शीघ्रता से पग बढ़ाती, घर की ओर चलती, मानो कोई अपराधी कारागार से भागा जा रहा हो। किन्तु पहाड़ियों की सीमा से बाहर आते ही उसके पग स्वयं रुक जाते। वही आगे न बढ़ सकती। तब वह ठंडी साँस भर कर एक शिला पर बैठ जाती और फूट-फूट कर रोती। फिर वह भयानक रात्रि और वही सघन कुंज, वही नदी की भयावनी गरज और शृगालों की वही विकराल ध्वनि !

''ज्यों-ज्यों भीजे कामरी, त्यों-त्यों भारी होय'' भाग्य को धिक्कारते-धिक्कारते उसने ललनसिंह को धिक्कारना आरम्भ किया। एकांतवास ने उसमें आलोचना और विवेचना की शक्ति पैदा कर दी। मैं क्यों इस वन में मुँह छिपाये दुःख के दिन व्यतीत कर रही हूँ ? यह उसी निर्दयी ललनसिंह की लगायी आग है। कैसे सुख से रहती थी। इसी ने आकर मेरे झोंपड़े में आग लगा दी। मैं अबोध और अनजान थी। उसने जान-बूझ कर मेरा जीवन नष्ट कर डाला। मुझे अपने आमोद का केवल एक खिलौना बनाया था। यदि उसे मुझसे प्रेम होता तो क्या वह मुझसे विवाह न कर लेता ? वह भी तो चंदेल ठाकुर था। हाय ! मैं कैसी अज्ञान थी। अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारी। इस प्रकार मन से बातें करते-करते ललनसिंह की मूर्ति उसके नेत्रों के सम्मुख आ जाती तो वह घृणा से मुँह फेर लेती। वह मुस्कराहट जो उसका मन हर लिया करती थी, वह प्रेममय मृदुभाषण जो उसकी नसों में सनसनाहट पैदा कर देता था, वह क्रीड़ामय हाव-भाव जिन पर मतवाली हो जाती थी, अब उसे एक दूसरे ही रूप में दृष्टिगोचर होते। उनमें अब प्रेम की झलक न थी। अब वह कपट-प्रेम और काम-तृष्णा के गाढ़े रंग में रँगे हुए दिखायी देते थे। वह प्रेम का कच्चा घरौंदा, जिसमें वह गुड़िया बन बैठी थी, वायु के झोंके में सँभाला; किन्तु जल के प्रबल प्रवाह में न सँभल सका। अब वह अभागी गुड़िया निर्दयी चट्टान पर पटक दी गयी है कि रो-रोकर जीवन के दिन काटे। उन गुड़ियों की भाँति जो गोटे-पट्ठे और आभूषणों से सजी हुई, मखमली पिटारे में भोग-विलास करने के पश्चात् नदी और तालाब में बहा दी जाती हैं, डूबने के लिए तरंगों में थपेड़े खाने के लिए।

ललनसिंह की तरफ से फिरते ही दूजी का मन एक अधीरता के साथ भाइयों की ओर मुड़ा। मैं अपने साथ उन बेचारों को व्यर्थ ले डूबी। मेरे सिर पर उस घड़ी न जाने कौन-सा भूत सवार था। उन बेचारों ने तो जो कुछ किया; मेरी ही मर्यादा रखने के लिए किया। मैं तो उन्मत्त हो रही थी। समझाने-बुझाने से क्या काम चलता ! और समझाना-बुझाना तो स्त्रियों का काम है। मर्दों का समझाना तो उसी ढंग का होना चाहिए, और होता ही है। नहीं मालूम, उन बेचारों पर क्या बीती ! क्या मैं उन्हें फिर कभी देखूँगी ? यह विचारते-विचारते भाइयों की वह मूर्ति उसके नेत्रों में फिर जाती, जो उसने अंतिम बार देखी थी, अब वह उस देश को जा रहे थे, जहाँ से लौट कर फिर आना मानो मृत्यु के मुख से निकल आना है—वह रक्तवर्ण नेत्र, वह अभिमान से भरी हुई चाल, वह फिरे हुए नेत्र जो एक बार उसकी ओर उठ गये थे। आह ! उनमें क्रोध या द्वेष न था, केवल क्षमा थी। वह मुझ पर क्रोध क्या करते! फिर अदालत के इजलास का चित्र नेत्रों के सामने खिंच जाता। भाइयों के वह तेवर, उनकी वह आँखें, जो क्षणमात्र के लिए क्रोधाग्नि से फैल गयी थीं, फिर उनकी प्यार की बातें, उनका प्रेम स्मरण आता । पुनः वे दिन याद आते जब वह उनकी गोद में खेलती थी, जब वह उनकी उँगली पकड़ कर खेतों को जाया करती थी। हाय ! क्या वह दिन भी आयेंगे कि मैं उनको पुनः देखूँगी।

एक दिन वह था कि दूजी अपने भाइयों के रक्त की प्यासी थी; निदान एक दिन आया कि वह पयस्विनी नदी के तट पर कंकड़ियों द्वारा दिनों की गणना करती थी। एक कृपण जिस सावधानी से रुपयों को गिन-गिन कर इकट्ठा करता है, उसी सावधानी से दूजी इन कंकड़ियों को गिन-गिन कर इकट्ठा करती थी। नित्य संध्याकाल वह इस ढेर में पत्थर का एक टुकड़ा और रख देती तो उसे क्षण-मात्र के लिए मानसिक सुख प्राप्त होता। इन कंकड़ियों का ढेर अब उसका जीवन-धन है। दिन में अनेक बार इन टुकड़ों को देखती और गिनती। असहाय पक्षी पत्थर के ढेरों से आशा के खोंते बनाता था।

यदि किसी को चिंता और शोक की मूर्ति देखनी हो तो वह पयस्विनी नदी के तट पर प्रतिदिन सायंकाल देख पड़ती है। डूबे हुए सूर्य की किरणों की भाँति उसका मुख-मंडल पीला है। वह अपने दुःखमय विचारों में डूबी हुई, तरंगों की ओर दृष्टि लगाये बैठी रहती है। यह तरंगें इतनी शीघ्रता से कहाँ जा रही हैं ? मुझे भी अपने साथ क्यों नहीं ले जातीं ? क्या मेरे लिए वहाँ भी स्थान नहीं है। कदाचित् शोक क्रन्दन में यह भी मेरी संगिनी हैं। तरंगों की ओर देखते-देखते उसे ऐसा ज्ञात होता है कि मानो वह स्थिर हो गयीं और मैं शीघ्रता से बही जा रही हूँ। तब वह चौंक पड़ती है और अँधेरी शिलाओं के बीच मार्ग खोजती हुई फिर अपने शोक-स्थल पर आ जाती है।

इसी प्रकार दूजी ने अपने दुःख के दिन व्यतीत किये। तीस-तीस ढेलों के बारह ढेर बन गये; तब उसने उन्हें एक स्थान पर इकट्ठा कर दिया। वह आशा का मंदिर उसी हार्दिक अनुराग से बनता रहा जो किसी भक्त को अपने इष्ट देव के साथ होता है। रात्रि के बारह घंटे बीत गये। पूर्व की ओर प्रातःकाल का प्रकाश दिखायी देने लगा। मिलाप का समय निकट आया। इच्छा-रूपी अग्नि की लपट बढ़ी। दूजी उन ढेरों को बार-बार गिनती, महीनों के दिनों की गणना करती। कदाचित् एक दिन भी कम हो जाय। हाय ! आजकल उसके

मन की वह दशा थी जो प्रातःकाल सूर्य के सुनहरे प्रकाश में हलकोरें लेनेवाले सागर की होती है, जिसमें वायु की तरंगों से मुस्कराता हुआ कमल झूलता है।

13

आज दूजी इन पर्वतों और वनों से विदा होती है। वह दिन भी आ पहुँचा जिसकी राह देखते-देखते एक पूरा युग बीत गया। आज चौदह वर्ष के पश्चात् उसकी प्यासी पलकें नदी में लहरा रही हैं। बरगद की जटाएँ नागिन बन गयी हैं।

उस सुनसान वन से उसका चित्त कितना दुःखित था। किन्तु आज उससे पृथक् होते हुए दूजी के नेत्र भर-भर आते हैं। जिस पाकर की छाया में उसने दुःख के दिन बिताये, जिस गुफा में उसने रो-रो कर रातें काटीं, उसे छोड़ते आज शोक हो रहा है। यह दुःख के साथी हैं।

सूर्य की किरणें दूजी की आशाओं की भाँति कुहरा की घटाओं को हटाती चली जाती थीं। उसने अपने दुःख के मित्रों को अब पूर्ण नेत्रों से देखा। पुनः ढेरों के पास गयी, जो उसके चौदह वर्ष की तपस्या के स्मारक चिन्ह थे। उन्हें एक-एक कर चूमा, मानो वह देवी जी के चबूतरे हैं, तब वह रोती हुई चली जैसे लड़कियाँ ससुराल को चलती हैं।

संध्या समय उसने शहर में प्रवेश किया और पता लगाते हुए कैलासी के घर आयी। घर सूना पड़ा था। तब वह विनयकृष्ण बघेल का घर पूछते-पूछते उनके बँगले पर आयी। कुँवर महाशय टहल कर आये ही थे कि उसे खड़ी देखा। पास आये। उसके मुख पर घूँघट था। दूजी ने कहा—महाराज, मैं एक अनाथ दुखिया हूँ।

कुँवर साहब ने आश्चर्य से पूछा—तुम दूजी हो ! तुम इतने दिनों तक कहाँ रहीं।

कुँवर साहब के प्रेम-भाव ने घूँघट और बढ़ा दिया। इन्हें मेरा नाम स्मरण है, यह सोच कर दूजी का कलेजा धड़कने लगा। लज्जा से सिर नीचे झुक गया। लजाती हुई बोली—जिसका कोई हितू नहीं है उसका वन के सिवा अन्यत्र कहाँ ठिकाना है। मैं भी वनों में रही। पयस्विनी नदी के किनारे एक गुफा में पड़ी रही।

कुँवर साहब विस्मित हो गये। चौदह वर्ष और नदी के किनारे गुफा में। क्या कोई सन्यासी इससे अधिक त्याग कर सकता है। वह आश्चर्य से कुछ न बोल सके।

दूजी उन्हें चुपचाप देख कर बोली—मैं कैलासी के घर से सीधे पर्वत में चली गयी और वहीं इतने दिन व्यतीत किये। चौदह वर्ष पूरे हो गये। जिन भाइयों की गरदन पर छुरी चलायी उनके छूटने के दिन अब आये हैं। नारायण उन्हें अब कुशलपूर्वक लावें। मैं चाहती हूँ कि उनके दर्शन करूँ और उनकी ओर से मेरे दिल में जो इच्छाएँ हैं पूर्ण हो जायें।

कुँवर साहब बोले—तुम्हारा हिसाब बहुत ठीक है। मेरे पास आज कलकत्ते से सरकारी पत्र आया है कि दोनों भाई चौदह तारीख को कलकत्ता पहुचेंगे, उनके सम्बन्धियों को सूचना दी जाय। यहाँ कदाचित् दो-तीन दिन में आ जायेंगे। मैं सोच ही रहा था कि सूचना किसे दूँ।

दूजी ने विनयपूर्वक कहा—मेरा जी चाहता है कि वे जहाज पर से उतरें तो मैं उनके पैरों पर माथा नवाऊँ, उसके पश्चात् मुझे संसार में कोई अभिलाषा न रहेगी। इसी लालसा

ने मुझे इतने दिनों तक जिलाया है। नहीं तो मैं आपके सम्मुख कदापि न खड़ी होती।

कुँवर विनयकृष्ण गम्भीर स्वभाव के मनुष्य थे। दूजी के आंतरिक रहस्य उनके चित्त पर एक गहरा प्रभाव डालते जाते थे। जब सारी अदालत दूजी पर हँसती थी तब उन्हें उसके साथ सहानुभूति थी और आज इसके वृत्तांत सुन कर वे इस ग्रामीण स्त्री के भक्त हो गये। बोले—यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं स्वयं तुम्हें कलकत्ता पहुँचा दूँगा। तुमने उनसे मिलने की जो रीति सोची है उससे उत्तम ध्यान में नहीं आ सकती; परंतु तुम खड़ी हो और मैं बैठा हूँ, यह अच्छा नहीं लगता दूजी, मैं बनावट नहीं करता; जिसमें इतना त्याग और संकल्प हो वह यदि पुरुष है तो देवता, स्त्री है तो देवी। जब मैंने तुम्हें पहले देखा उसी समय मैंने समझ लिया था कि तुम साधारण स्त्री नहीं हो। जब तुम कैलासी के घर से चली गयीं तो सब लोग कहते थे कि तुम जान पर खेल गयीं। परंतु मेरा मन कहता था कि तुम जीवित हो। नेत्रों से पृथक् हो कर भी तुम मेरे ध्यान से बाहर न हो सकीं। मैंने वर्षों तुम्हारी खोज की, मगर तुम ऐसी खोह में जा छिपी थीं कि तुम्हारा कुछ पता न चला।

इन बातों में कितना अनुराग था ! दूजी को रोमांच हो गया। हृदय बल्लियों उछलने लगा। उस समय उसका मन चाहता था कि इनके पैरों पर सिर रख दूँ। कैलासी ने एक बार जो बात उससे कही थी, वह बात उसे इस समय स्मरण आयी। उसने भोलेपन से पूछा—क्या आप ही के कहने से कैलासी ने मुझे अपने घर में रख लिया था ?

कुँवर साहब लज्जित हो कर बोले—मैं इसका उत्तर कुछ न दूँगा।

रात को जब दूजी एक ब्राह्मणी के घर में नर्म बिछावन पर लेटी हुई थी तो उसके मन की वह दशा हो रही थी जो आश्विन मास के आकाश की होती है। एक ओर चंद्र प्रकाश, दूसरी ओर घनी घटा और तीसरी ओर झिलमिलाते हुए तारे।

14

प्रातःकाल का समय था। गंगा नामक स्टीमर बंगाल की खाड़ी में अभिमान से गर्दन उठाये, समुद्र की लहरों को पैरों से कुचलता हुगली के बंदरगाह की ओर चला आता था। डेढ़ सहस्र से अधिक आदमी उसकी गोद में थे। अधिकतर व्यापारी थे। कुछ वैज्ञानिक तत्त्वों के अनुरागी, कुछ भ्रमण करने वाले और कुछ ऐसे हिंदुस्तानी मजदूर जिनको अपनी मातृभूमि आकर्षित कर रही थी। उसी में दोनों भाई शानसिंह और गुमानसिंह एक कोने में बैठे निराशा की दृष्टि से किनारे की ओर देख रहे थे। दोनों हड्डियों के दो ढाँचे थे, उन्हें पहचानना कठिन था।

जहाज घाट पर पहुँचा। यात्रियों के मित्र और परिचित जन किनारे पर स्वागत करने के लिए अधीर हो रहे थे। जहाज पर से उतरते ही प्रेम की बाढ़ आ गयी। मित्रगण परस्पर हाथ मिलाते थे। उनके नेत्र प्रेमाश्रु से परिपूर्ण थे। यह दोनों भाई शनैः-शनैः जहाज से उतरे, मानो किसी ने ढकेल कर उतार दिया। उनके लिए जहाज के तख्ते और मातृभूमि में कोई अंतर न था। वे आये नहीं, बल्कि लाये गये। चिरकाल के कष्ट और शोक ने जीवन का ज्ञान भी शेष न छोड़ा था। साहस लेशमात्र भी न था। इच्छाओं का अंत हो चुका था। वह

तट पर खड़े विस्मित दृष्टि से सामने देखते थे। कहाँ जायँ ? उनके लिए इस संसार-क्षेत्र में कोई स्थान न दिखायी देता था।

तब दूजी उस भीड़ में से निकल कर आती दिखायी दी। उसने भाइयों को खड़े देखा। तब जिस भाँति जल खाल की ओर गिरता है, उसी प्रकार अधीरता की उमंग में रोती हुई वह उनके चरणों में चिपट गयी। दाहिने हाथ में शानसिंह के चरण थे, बायें हाथ में गुमानसिंह के, और नेत्रों से अश्रुधाराएँ प्रवाहित थीं; मानो दो सूखे वृक्षों की जड़ों में एक मुरझायी बेल चिपटी हुई है या दो संन्यासी माया और मोह की बेड़ी में बँधे खड़े हैं। भाइयों के नेत्रों से भी आँसू बहने लगे। उनके मुख-मंडल बादलों में से निकलने वाले तारों की भाँति प्रकाशित हो गये। वह दोनों पृथ्वी पर बैठ गये और तीनों भाई-बहन परस्पर गले मिल कर बिलख-बिलख रोये। वह गहरी खाड़ी जो भाइयों और बहन के बीच में थी, अश्रुधाराओं से परिपूर्ण हो गयी। आज चौदह वर्ष के पश्चात् भाई और बहन में मिलाप हुआ और वह घाव जिसने मांस को मांस से, रक्त को रक्त से, विलग कर दिया था, परिपूर्ण हो गया और वह उस मरहम का काम था जिससे अधिक लाभकारी और कोई मरहम नहीं होता, जो मन के मैल को साफ करता है, जो दुःख को भुलाने वाला और हृदय की दाह को शांत करने वाला है, जो व्यंग विषैले घावों को भर देता है। यह काल का मरहम है।

दोनों भाई घर को लौटे। पट्टीदारों के स्वप्न भंग हो गये। हित-मित्र इकट्ठे हुए। ब्रह्मभोज का दिन निश्चित हुआ। पूड़ियाँ पकने लगीं, घी की सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणों के लिए, तेल की पासी-चमारों के लिए। कालेपानी का पाप इस घी के साथ भस्म हो गया।

दूजी भी कलकत्ते से भाइयों के साथ चली; प्रयाग तक आयी। कुँवर विनयकृष्ण भी उनके साथ थे। भाइयों से कुँवर साहब ने दूजी के सम्बन्ध में कुछ बातें कीं; उनकी भनक दूजी के कानों में पड़ी। प्रयाग में दोनों भाई-बहन रुक गये कि त्रिवेणी में स्नान करते चलें। कुँवर विनयकृष्ण अपने ध्यान में सब ठीक करके मन प्रसन्न करने वाली आशाओं का स्वप्न देखते हुए चले गये, किंतु फिर वहाँ से दूजी का पता न चला। मालूम नहीं क्या हुई, कहाँ चली गयी। कदाचित् गंगा जी ने उसे अपनी गोद में लेकर सदा के दुःख से मुक्त कर दिया। भाई बहुत रोये-पीटे किन्तु क्या करते। जिस स्थान पर दूजी ने अपने वनवास के चौदह वर्ष व्यतीत किये थे वहाँ दोनों भाई प्रतिवर्ष जाते हैं और उन पत्थरों के ढेरों से चिमट-चिमट कर रोते हैं।

कुँवर साहब ने भी पेंशन ले ली। अब चित्रकूट में रहते हैं। दार्शनिक विचारों के पुरुष थे, जिस प्रेम की खोज थी वह न मिला। एक बार कुछ आशा दिखायी दी थी, जो चौदह वर्ष एक विचार के रूप में स्थित रही। एकाएक आशा की धुँधली झलक भी एक बार झिलमिलाते हुए दीपक की भाँति हँस कर सदा के लिए अदृश्य हो गयी।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू। 'जमाना', जनवरी-फरवरी, 1915 में 'मरहम' शीर्षक से प्रकाशित। उर्दू 'प्रेम पचीसी' में संकलित। हिन्दी रूप 'विस्मृति' शीर्षक से 'मानसरोवर' भाग-7 में संकलित।]

गैरत की कटार

कितनी अफसोसनाक, कितनी दर्द भरी बात है कि वही औरत जो कभी हमारे पहलू में बसती थी उसी के पहलू में चुभने के लिए हमारा तेज खंजर बेचैन हो रहा है। जिसकी आंखें हमारे लिए अमृत के छलकते हुए प्याले थीं वही आंखें हमारे दिल में आग और तूफान पैदा करें ! रूप उसी वक्त तक राहत और खुशी देता है जब तक उसके भीतर एक रूहानी नेमत होती है और जब तक उसके अंदर औरत की वफा की रूह हरकत कर रही हो वर्ना वह एक तकलीफ देने वाली चीज है, जहर और बदबू से भरी हुई, इसी काबिल कि वह हमारी निगाहों से दूर रहे और पंजे और नाखून का शिकार बने। एक जमाना वह था कि नईमा हैदर की आरजुओं की देवी थी, यह समझना मुश्किल था कि कौन तलबगार है और कौन उस तलब को पूरा करने वाला। एक तरफ पूरी-पूरी दिलजोई थी, दूसरी तरफ पूरी-पूरी रजा। तब तकदीर ने पांसा पलटा। गुली-बुलबुल में सुबह की हवा की शरारतें शुरू हुईं। शाम का वक्त था। आसमान पर लाली छाई हुई थी। नईमा उमंग और ताजगी और शौक से उमड़ी हुई कोठे पर आई। शफक की तरह उसका चेहरा भी उस वक्त खिला हुआ था। ऐन उसी वक्त वहां का सूबेदार नासिर अपने हवा की तरह तेज घोड़े पर सवार उधर से निकला। ऊपर निगाह उठी तो हुस्न का करिश्मा नजर आया कि जैसे चांद शफक के हौज में नहाकर निकला है। तेज निगाह जिगर के पार हुई। कलेजा थामकर रह गया। अपने महल को लौटा, अधमरा, टूटा हुआ। मुसाहिबों ने हकीम की तलाश की और तब राह-रस्म पैदा हुई। फिर इश्क की दुश्वार मंजिलें तय हुईं। वफा और हया ने बहुत बेरुखी दिखाई। मगर मुहब्बत के शिकवे और इश्क की कुफ्र तोड़ने वाली धमकियां आखिर जीतीं। अस्मत का खजाना लुट गया। उसके बाद वही हुआ जो हो सकता था। एक तरफ से बदगुमानी, दूसरी तरफ से बनावट और मक्कारी। मनमुटाव की नौबत आई, फिर एक-दूसरे के दिल को चोट पहुंचाना शुरू हुआ। यहां तक कि दिलों में मैल पड़ गई। एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गए। नईमा ने नासिर की मुहब्बत की गोद में पनाह ली और आज एक महीने की बेचैन इंतजारी के बाद हैदर अपने जज्बात के साथ नंगी तलवार पहलू में छिपाये अपने जिगर के भड़कते हुए शोलों को नईमा के खून से बुझाने के लिए आया हुआ है।

2

आधी रात का वक्त था और अंधेरी रात थी। जिस तरह आसमान के हरमसरा में हुस्न के सितारे जगमगा रहे थे, उसी तरह नासिर का हरम भी हुस्न के दीपों से रौशन था। नासिर एक हफ्ते से किसी मोर्चे पर गया हुआ है। इसलिए दरबान गाफिल हैं। उन्होंने हैदर को देखा मगर उनके मुंह सोने-चांदी से बंद थे। ख्वाजासराओं की निगाह पड़ी लेकिन वह पहले ही एहसान के बोझ से दब चुके थे। खवासों और कनीजों ने भी मतलब-भरी निगाहों से उसका स्वागत किया और हैदर बदला लेने के नशे में गुनहगार नईमा के सोने के कमरे में जा पहुंचा, जहां की हवा संदल और गुलाब से बसी हुई थी।

कमरे में एक मोमी चिराग जल रहा था और उसी की भेद भरी रोशनी में आराम और तकल्लुफ की सजावटें नजर आती थीं जो सतीत्व जैसी अनमोल चीज के बदले में खरीदी गई थीं। वहीं वैभव और ऐश्वर्य की गोद में लेटी हुई नईमा सो रही थी।

हैदर ने एक बार नईमा को आंख भर देखा। वही मोहिनी सूरत थी, वही आकर्षक लावण्य और वही इच्छाओं को जगाने वाली ताजगी। वही युवती जिसे एक बार देखकर भूलना असंभव था।

हां, वही नईमा थी, वही गोरी बांहें जो कभी उसके गले का हार बनती थीं, वही कस्तूरी में बसे हुए बाल जो कभी उसके कंधों पर लहराते थे, वही फूल जैसे गाल जो उसकी प्रेम-भरी आंखों के सामने लाल हो जाते थे। इन्हीं गोरी-गोरी कलाइयों में उसने अभी-अभी खिली हुई कलियों के कंगन पहनाए थे और जिन्हें वह वफा के कंगन समझा था। इसी गले में उसने फूलों के हार सजाए थे और उन्हें प्रेम का हार खयाल किया था। लेकिन उसे क्या मालूम था कि फूलों के हार और कलियों के कंगन के साथ वफा के कंगन और प्रे [illegible] के हार भी मुर्झा जाएंगे।

हां, यह वही गुलाब के-से होंठ हैं जो कभी उसकी मुहब्बत में फूल की तरह खिल जाते थे, जिनसे मुहब्बत की सुहानी महक उड़ती थी और यह वही सीना है जिसमें कभी उसकी मुहब्बत और वफा का जलवा था, जो कभी उसकी मुहब्बत का घर था।

मगर जिस फूल में दिल की महक थी, उसमें दगा के कांटे हैं।

3

हैदर ने तेज कटार पहलू से निकाली और दबे पांव नईमा की तरफ आया लेकिन उसके हाथ न उठ सके। जिसके साथ उम्र भर जिंदगी की सैर की उसकी गर्दन पर छुरी चलाते हुए उसका हृदय द्रवित हो गया। उसकी आंखें भीग गईं, दिल में हसरत भरी यादगारों का एक तूफान-सा आ गया। तकदीर की क्या खूबी है कि जिस प्रेम का आरंभ ऐसा खुशी से भरपूर हो उसका अंत इतना पीड़ाजनक हो। उसके पैर थरथराने लगे। लेकिन स्वाभिमान ने ललकारा, दीवार पर लटकी हुई तस्वीरें उसकी इस कमजोरी पर मुस्कराईं।

मगर कमजोर इरादा हमेशा सवाल और दलील की आड़ लिया करता है। हैदर के दिल में खयाल पैदा हुआ, क्या इस मुहब्बत के बाग को उजाड़ने का इल्जाम मेरे ऊपर नहीं है ? जिस वक्त बदगुमानियों के अंखुए निकले, अगर मैंने तानों और धिक्कारों के बजाय मुहब्बत से काम लिया होता तो आज यह दिन न आता। मेरे ही जुल्मों ने मुहब्बत और वफा की जड़ काटी। औरत कमजोर होती है, किसी सहारे के बगैर नहीं रह सकती। जिस औरत ने मुहब्बत के मजे उठाए हों और उल्फत की नाजबरदारियां देखी हों वह तानों और जिल्लतों की आंच क्या सह सकती है ? लेकिन फिर गैरत ने उकसाया कि जैसे वह धुंधला चिराग भी उसकी कमजोरियों पर हंसने लगा।

स्वाभिमान और तर्क में सवाल-जवाब हो रहा था कि अचानक नईमा ने करवट बदली और अंगड़ाई ली। हैदर ने फौरन तलवार उठाई, जान के खतरे में आगा-पीछा कहां। दिल ने फैसला कर लिया, तलवार अपना काम करने वाली ही थी कि नईमा ने आंखें खोल

दीं। मौत की कटार सिर पर नजर आई। वह घबराकर उठ बैठी। हैदर को देखा, परिस्थिति समझ में आ गई। बोली—हैदर !

4

हैदर ने अपनी झेंप को गुस्से के पर्दे में छिपाकर कहा—हां, मैं हूं हैदर।

नईमा सिर झुकाकर हसरत-भरे ढंग से बोली—तुम्हारे हाथों में यह चमकती हुई तलवार देखकर मेरा कलेजा थरथरा रहा है। तुम्हीं ने मुझे नाजबरदारियों का आदी बना दिया है। जरा देर के लिए इस कटार को मेरी आंखों से छिपा लो। मैं जानती हूं कि तुम मेरे खून के प्यासे हो, लेकिन मुझे न मालूम था कि तुम इतने बेरहम और संगदिल हो। मैंने तुमसे दगा की है, तुम्हारी खतावार हूं लेकिन हैदर यकीन मानो, अगर मुझे चंद आखिरी बातें कहने का मौका न मिलता तो शायद मेरी रूह को दोजख में भी यही आरजू रहती। मौत की सजा से पहले अपने घर वालों से आखिरी मुलाकात की इजाजत होती है। क्या तुम मेरे लिए इतनी रियायत के भी रवादार न थे ? माना कि अब तुम मेरे कोई नहीं हो मगर किसी वक्त थे और तुम चाहे अपने दिल में समझते हो कि मैं सब कुछ भूल गई लेकिन मैं मुहब्बत को इतनी भूल जाने वाली नहीं हूं। अपने ही दिल से फैसला करो। तुम मेरी बेवफाइयां चाहे भूल जाओ लेकिन मेरी मुहब्बत की दिल तोड़ने वाली यादगारें नहीं मिटा सकते। मेरी आखिरी बातें सुन लो और इस नापाक जिंदगी का किस्सा पाक करो। मैं साफ-साफ कहती हूं, इस आखिरी वक्त मैं क्यों डरूं। मेरी जो कुछ दुर्गत हुई है उसके जिम्मेदार तुम हो। नाराज न हो। अगर तुम्हारा खयाल है कि मैं यहां फूलों की सेज पर सोती हूं तो वह गलत है। मैंने औरत की शर्म खोकर उसकी कद्र जानी है। मैं हसीन हूं, नाजुक हूं, दुनिया की नेमतें मेरे लिए हाजिर हैं, नासिर मेरी इच्छा का गुलाम है लेकिन मेरे दिल से यह खयाल कभी दूर नहीं होता कि वह सिर्फ मेरे हुस्न और अदा का बंदा है। मेरी इज्जत उसके दिल में कभी हो भी नहीं सकती। क्या तुम जानते हो कि यहां खवासों और दूसरी बीवियों के मतलब भरे इशारे मेरे खून और जिगर को नहीं जलाते। ओफ्, मैंने अस्मत खोकर अस्मत की कद्र जानी है लेकिन मैं कह चुकी हूं और फिर कहती हूं कि इसके तुम जिम्मेदार हो।

हैदर ने पहलू बदलकर पूछा—क्योंकर ?

नईमा ने उसी अंदाज से जवाब दिया—तुमने मुझे बीवी बनाकर नहीं, माशूक बनाकर रखा। तुमने मुझे नाजबरदारियों का आदी बनाया लेकिन फर्ज का सबक नहीं पढ़ाया। तुमने कभी न अपनी बातों से, न कामों से मुझे यह खयाल करने का मौका दिया कि इस मुहब्बत की बुनियाद फर्ज पर है। तुमने मुझे हमेशा हुस्न और मस्तियों के तिलिस्म में फंसा रखा और मुझे ख्वाहिशों का गुलाम बना दिया। किसी किश्ती पर अगर फर्ज का मल्लाह न हो तो फिर उसे दरिया में डूब जाने के सिवा और कोई चारा नहीं। लेकिन अब बातों से क्या हासिल, अब तो तुम्हारी गैरत की कटार मेरे खून की प्यासी है और यह लो मेरा सिर उसके सामने झुका हुआ है। हां, मेरी एक आखिरी तमन्ना है, अगर तुम्हारी इजाजत पाऊं तो कहूं।

यह कहते-कहते नईमा की आंखों में आंसुओं की बाढ़ आ गई और हैदर की गैरत उसके सामने न ठहर सकी। उदास स्वर में बोला—क्या कहती हो ?

नईमा ने कहा—अच्छा, इजाजत दी है तो इंकार न करना। मुझे एक बार फिर उन अच्छे दिनों की याद ताजा कर लेने दो जब मौत की कटार नहीं, मुहब्बत के तीर जिगर को छेदा करते थे, एक बार फिर मुझे अपनी मुहब्बत की बांहों में ले लो। मेरी आखिरी विनती है, एक बार फिर अपने हाथों को मेरी गर्दन का हार बना दो। भूल जाओ कि मैंने तुम्हारे साथ दगा की है, भूल जाओ कि यह जिस्म गंदा और नापाक है, मुझे मुहब्बत से गले लगा लो और यह मुझे दे दो। तुम्हारे हाथों में यह अच्छी नहीं मालूम होती। तुम्हारे हाथ मेरे ऊपर न उठेंगे। देखो कि एक कमजोर औरत किस तरह गैरत की कटार को अपने जिगर में रख लेती है।

यह कहकर नईमा ने हैदर के कमजोर हाथों से वह चमकती हुई तलवार छीन ली और उसके सीने से लिपट गई। हैदर झिझका लेकिन वह सिर्फ ऊपरी झिझक थी। अभिमान और प्रतिशोध-भावना की दीवार टूट गई। आलिंगन-पाश में बंध गए और दोनों की आंखें उमड़ आईं।

नईमा के चेहरे पर एक सुहानी, प्राणदायिनी मुस्कराहट दिखाई दी और मतवाली आंखों में खुशी की लाली झलकने लगी। बोली—आज कैसा मुबारक दिन है कि दिल की सब आरजुएं पूरी होती जाती हैं लेकिन यह कम्बख्त आरजुएं कभी पूरी नहीं होतीं। इस सीने से लिपटकर मुहब्बत की शराब के बगैर नहीं रहा जाता। तुमने मुझे कितनी बार प्रेम के प्याले पिलाए हैं। उस सुराही और उस प्याले की याद नहीं भूलता। आज एक बार फिर उल्फत की शराब के दौर चलने दो। मौत की शराब से पहले उल्फत की शराब पिला दो। एक बार फिर मेरे हाथों से प्याला ले लो। मेरी तरफ उन्हीं प्यार की निगाहों से देखकर, जो कभी आंखों से न उतरती थीं, पी जाओ। मरती हूं तो खुशी से मरूं।

नईमा ने अगर सतीत्व खोकर सतीत्व का मूल्य जाना था, तो हैदर ने भी प्रेम खोकर प्रेम का मूल्य जाना था। उस पर इस समय एक मदहोशी छाई हुई थी। लज्जा और याचना और झुका हुआ सिर, यह गुस्से और प्रतिशोध के जानी दुश्मन हैं और एक औरत के नाजुक हाथों में तो उनकी काट तेज तलवार को मात कर देती है। अंगूरी शराब के दौर चले और हैदर ने मस्त होकर प्याले पर प्याले खाली करने शुरू किए। उसके जी में बार-बार आता था कि नईमा के पैरों पर सिर रख दूं और उस उजड़े हुए आशियाने को आबाद कर दूं। फिर मस्ती की कैफियत पैदा हुई और अपनी बातों पर और अपने कामों पर उसे अख्तियार न रहा। वह रोया, गिड़गिड़ाया, मिन्नतें कीं, यहां तक कि उन दगा के प्यालों ने उसका सिर झुका दिया।

5

हैदर कई घंटे तक बेसुध पड़ा रहा। वह चौंका तो रात बहुत कम बाकी रह गई थी। उसने उठना चाहा लेकिन उसके हाथ-पैर रेशम की डोरियों से मजबूत बंधे हुए थे। उसने भौंचक होकर इधर-उधर देखा। नईमा उसके सामने वही तेज कटार लिए खड़ी थी। उसके चेहरे पर

एक कातिलों जैसी मुस्कराहट की लाली थी। फर्जी माशूक के खूनीपन और खंजरबाजी के तराने वह बहुत बार गा चुका था मगर इस वक्त उसे इस नजारे से शायराना लुत्फ उठाने का जीवट न था। जान का खतरा, नशे के लिए तुर्शी से भी ज्यादा कातिल है। घबराकर बोला—नईमा !

नईमा ने तेज लहजे में कहा—हां, मैं हूं नईमा।

हैदर गुस्से से बोला—क्या फिर दगा का वार किया ?

नईमा ने जवाब दिया—जब वह मर्द जिसे खुदा ने बहादुरी और कूवत और हौसला दिया है, दगा का वार करता है तो उसे मुझसे यह सवाल करने का कोई हक नहीं। दगा और फरेब औरतों के हथियार हैं क्योंकि औरत कमजोर होती है। लेकिन तुमको मालूम हो गया होगा कि औरत के नाजुक हाथों में ये हथियार कैसी काट करते हैं। यह देखो यह वही आबदार शमशीर है, जिसे तुम गैरत की कटार कहते थे। अब यह गैरत की कटार मेरे जिगर में नहीं, तुम्हारे जिगर में चुभेगी। हैदर, इंसान थोड़ा खोकर बहुत कुछ सीखता है। तुमने इज्जत और आबरू सब कुछ खोकर भी कुछ न सीखा। तुम मर्द थे। नासिर से तुम्हारी होड़ थी। तुम्हें उसके मुकाबले में अपनी तलवार के जौहर दिखाना था लेकिन तुमने निराला ढंग अख्तियार किया और एक बेकस औरत पर दगा का वार करना चाहा और अब तुम उसी औरत के सामने बिना हाथ-पैर के पड़े हुए हो। तुम्हारी जान बिल्कुल मेरी मुट्ठी में है। मैं एक लमहे में उसे मसल सकती हूं और अगर मैं ऐसा करूं तो तुम्हें मेरा शुक्रगुजार होना चाहिए क्योंकि एक मर्द के लिए गैरत की मौत बेगैरती की जिंदगी से अच्छी है। लेकिन मैं तुम्हारे ऊपर रहम करूंगी। मैं तुम्हारे साथ फैयाजी का बर्ताव करूंगी क्योंकि तुम गैरत की मौत पाने के हकदार नहीं हो। जो गैरत चंद मीठी बातों और एक प्याला शराब के हाथों बिक जाए वह असली गैरत नहीं है। हैदर, तुम कितने बेवकूफ हो, क्या तुम इतना भी नहीं समझते कि जिस औरत ने अपनी अस्मत जैसी अनमोल चीज देकर यह ऐश और तकल्लुफ पाया, वह जिंदा रहकर इन नेमतों का सुख लूटना चाहती है। जब तुम सब कुछ खोकर जिंदगी से तंग नहीं हो तो मैं सब कुछ पाकर क्यों मौत की ख्वाहिश करूं? अब रात बहुत कम रह गई है। यहां से जान लेकर भागो वर्ना मेरी सिफारिश भी तुम्हें नासिर के गुस्से की आग से न बचा सकेगी। तुम्हारी यह गैरत की कटार मेरे कब्जे में रहेगी और तुम्हें याद दिलाती रहेगी कि तुमने इज्जत के साथ गैरत भी खो दी।

['गैरत की कटार' शीर्षक से उर्दू में प्रथम प्रकाशन। 'जमाना', जुलाई, 1915 में प्रकाशित। उर्दू में 'प्रेम पचीसी' में संकलित। हिन्दी रूप इसी शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-1 में संकलित।]

बेटी का धन

बेतवा नदी दो ऊँचे कगारों के बीच इस तरह मुँह छिपाये हुए थी जैसे निर्मल हृदयों में साहस और उत्साह की मद्धम ज्योति छिपी रहती है। इसके एक कगार पर एक छोटा-सा गाँव बसा है जो अपने भग्न जातीय चिह्नों के लिए बहुत ही प्रसिद्ध है। जातीय गाथाओं

और चिह्नों पर मर मिटने वाले लोग इस भावना स्थान पर बड़े प्रेम और श्रद्धा के साथ आते और गाँव का बूढ़ा केवट सुक्खू चौधरी उन्हें उसकी परिक्रमा कराता और रानी के महल, राजा का दरबार और कुँवर के बैठक के मिटे हुए चिह्नों को दिखाता। वह एक उच्छ्वास लेकर रुँधे हुए गले से कहता, महाशय ! एक वह समय था कि केवटों को मछलियों के इनाम में अशर्फियाँ मिलती थीं। कहार महल में झाड़ू देते हुए अशर्फियाँ बटोर ले जाते थे। बेतवा नदी रोज चढ़ कर महाराज के चरण छूने आती थी। यह प्रताप और यह तेज था, परन्तु आज इसकी यह दशा है। इन सुन्दर उक्तियों पर किसी का विश्वास जमाना चौधरी के वश की बात न थी, पर सुनने वाले उसकी सहृदयता तथा अनुराग के जरूर कायल हो जाते थे।

सुक्खू चौधरी उदार पुरुष थे, परन्तु जितना बड़ा मुँह था, उतना बड़ा ग्रास न था। तीन लड़के, तीन बहुएँ और कई पौत्र-पौत्रियाँ थीं। लड़की केवल एक गंगाजली थी जिसका अभी तक गौना नहीं हुआ था। चौधरी की यह सबसे पिछली संतान थी। स्त्री के मर जाने पर उसने इसको बकरी का दूध पिला-पिला कर पाला था। परिवार में खाने वाले तो इतने थे, पर खेती सिर्फ एक हल की होती थी। ज्यों-त्यों कर निर्वाह होता था, परन्तु सुक्खू की वृद्धावस्था और पुरातत्त्वज्ञान ने उसे गाँव में वह मान और प्रतिष्ठा प्रदान कर रखी थी, जिसे देख कर झगड़ू साहु भीतर ही भीतर जलते थे। सुक्खू जब गाँव वालों के समक्ष, हाकिमों से हाथ फेंक-फेंक कर बातें करने लगता और खंडहरों को घुमा-फिरा कर दिखाने लगता था तो झगड़ू साहु--जो चपरासियों के धक्के खाने के डर से करीब नहीं फटकते थे--तड़प-तड़प कर रह जाते थे। अतः वे सदा इस शुभ अवसर की प्रतीक्षा करते रहते थे, जब सुक्खू पर अपने धन द्वारा प्रभुत्व जमा सकें।

2

इस गाँव के जमींदार ठाकुर जीतनसिंह थे, जिनकी बेगार के मार गांव वालों का नाकों दम था। उस साल जब जिला मजिस्ट्रेट का दौरा हुआ और वह यहाँ के पुरातन चिह्नों की सैर करने के लिए पधारे, तो सुक्खू चौधरी ने दबी जबान से अपने गाँव वालों की दु:ख-कहानी उन्हें सुनायी। हाकिमों से वार्तालाप करने में उसे तनिक भी भय न होता था। सुक्खू चौधरी को खूब मालूम था कि जीतनसिंह से रार मचाना सिंह के मुँह में सिर देना है। किंतु जब गाँव वाले कहते थे कि चौधरी तुम्हारी ऐसे-ऐसे हाकिमों से मिताई है और हम लोगों को रात-दिन रोते कटता है तो फिर तुम्हारी यह मित्रता किस दिन काम आवेगी। परोपकाराय सताम् विभूतयः। तब सुक्खू का मिज़ाज आसमान पर चढ़ जाता था। घड़ी भर के लिए वह जीतनसिंह को भूल जाता था। मजिस्ट्रेट ने जीतनसिंह से इसका उत्तर माँगा। उधर झगड़ू साहु ने चौधरी के इस साहसपूर्ण स्वामीद्रोह की रिपोर्ट जीतनसिंह को दी। ठाकुर साहब जल कर आग हो गये। अपने कारिंदे से बक़ाया लगान की बही माँगी। संयोगवश चौधरी के जिम्मे इस साल का कुछ लगान बाकी था। कुछ तो पैदावार कम हुई; उस पर गंगाजली का ब्याह करना पड़ा। छोटी बहू नथ की रट लगाये हुए थी; वह बनवानी पड़ी। इन सब खर्चों ने हाथ बिलकुल खाली कर दिया था। लगान के लिए कुछ अधिक चिंता नहीं थी।

वह इस अभिमान में भूला हुआ था कि जिस ज़बान में हाकिमों को प्रसन्न करने की शक्ति है, क्या वह ठाकुर साहब को अपना लक्ष्य न बना सकेगी ? बूढ़े चौधरी इधर तो अपने गर्व में निश्चिंत थे और उधर उन पर बक़ाया लगान की नालिश ठुक गयी। सम्मन आ पहुँचा। दूसरे दिन पेशी की तारीख पड़ गयी। चौधरी को अपना जादू चलाने का अवसर न मिला।

जिन लोगों के बढ़ावे में आ कर सुक्खू ने ठाकुर से छेड़छाड़ की थी, उनका दर्शन मिलना दुर्लभ हो गया। ठाकुर साहब के सहने और प्यादे गाँव में चील की तरह मँडराने लगे। उनके भय से किसी को चौधरी को परछाईं काटने का साहस न होता था। कचहरी वहाँ से तीन मील पर थी। बरसात के दिन, रास्ते में ठौर-ठौर पानी, उमड़ी हुई नदियाँ, रास्ता कच्चा, बैलगाड़ी का निबाह नहीं, पैरों में बल नहीं, अतः अदमपैरवी में मुकदमा एकतरफा फैसला हो गया।

3

कुर्की का नोटिस पहुँचा तो चौधरी के हाथ-पाँव फूल गये। सारी चतुराई भूल गयी। चुपचाप अपनी खाट पर पड़ा-पड़ा नदी की ओर ताकता और अपने मन में कहता, क्या मेरे जीते जी घर मिट्टी में मिल जायगा। मेरे इन बैलों की सुंदर जोड़ी के गले में आह ! क्या दूसरों का जुआ पड़ेगा ? यह सोचते-सोचते उसकी आँखें भर आतीं। वह बैलों से लिपट कर रोने लगा, परंतु बैलों की आँखों से क्यों आँसू जारी थे ? वे नाँद में मुँह क्यों नहीं डालते थे ? क्या उनके हृदय पर भी अपने स्वामी के दुःख की चोट पहुँच रही थी !

फिर वह अपने झोंपड़े को विकल नयनों से निहार कर देखता। और मन में सोचता, क्या हमको इस घर से निकलना पड़ेगा ? यह पूर्वजों की निशानी क्या हमारे जीते जी छिन जायगी ?

कुछ लोग परीक्षा में दृढ़ रहते हैं और कुछ लोग इसकी हल्की आँच भी नहीं सह सकते। चौधरी अपनी खाट पर उदास पड़े घंटों अपने कुलदेव महावीर और महादेव को मनाया करता और उनका गुण गाया करता। उसकी चिंतादग्ध आत्मा को और कोई सहारा न था।

इसमें कोई संदेह न था कि चौधरी की तीनों बहुओं के पास गहने थे, पर स्त्री का गहना ऊख का रस है, जो पेरने ही से निकलता है। चौधरी जाति का ओछा पर स्वभाव का ऊँचा था। उसे ऐसी नीच बात बहुओं से कहते संकोच होता था। कदाचित् यह नीच विचार उसके हृदय में उत्पन्न ही नहीं हुआ था, किंतु तीनों बेटे यदि ज़रा भी बुद्धि से काम लेते तो बूढ़े को देवताओं की शरण लेने की आवश्यकता न होती। परंतु यहाँ तो बात ही निराली थी। बड़े लड़के को घाट के काम से फुरसत न थी। बाकी दो लड़के इस जटिल प्रश्न को विचित्र रूप से हल करने के मंसूबे बाँध रहे थे।

मँझले झींगुर ने मुँह बना कर कहा—उँह ! इस गाँव में क्या धरा है। जहाँ ही कमाऊँगा, वहीं खाऊँगा पर जीतनसिंह की मूँछें एक-एक करके चुन लूँगा।

छोटे फक्कड़ ऐंठ कर बोले—मूँछें तुम चुन लेना ! नाक मैं उड़ा दूँगा। नकटा बना घूमेगा।

इस पर दोनों खूब हँसे और मछली मारने चल दिये।

इस गाँव में एक बूढ़े ब्राह्मण भी रहते थे। मंदिर में पूजा करते और नित्य अपने यजमानों को दर्शन देने नदी पार जाते, पर खेवे के पैसे न देते। तीसरे दिन वह जमींदार के गुप्तचरों की आँख बचाकर सुक्खू के पास आये और सहानुभूति के स्वर में बोले—चौधरी ! कल ही तक मियाद है और तुम अभी तक पड़े-पड़े सो रहे हो। क्यों नहीं घर की चीज ढूंढ़-ढाँढ़ कर किसी और जगह भेज देते ? न हो समधियाने पठवा दो। जो कुछ बच रहे, वही सही। घर की मिट्टी खोद कर थोड़े ही कोई ले जायगा।

चौधरी लेटा था, उठ बैठा और आकाश की ओर निहार कर बोला—जो कुछ उसकी इच्छा है, वह होगा। मुझसे यह जाल न होगा।

इधर कई दिन की निरंतर भक्ति और उपासना के कारण चौधरी का मन शुद्ध और पवित्र हो गया था। उसे छल-प्रपंच से घृणा हो गयी थी। पंडित जी जो इस काम में सिद्धहस्त थे, लज्जित हो गये।

परंतु चौधरी के घर के अन्य लोगों को ईश्वरेच्छा पर इतना भरोसा न था। धीरे-धीरे घर के बर्तन-भाँड़े खिसकाये जाते थे। अनाज का एक दाना भी घर में न रहने पाया। रात को नाव लदी हुई जाती और उधर से खाली लौटती थी। तीन दिन तक घर में चूल्हा न जला। बूढ़े चौधरी के मुँह में अन्न की कौन कहे पानी का एक बूँद भी न पड़ा। स्त्रियाँ भाड़ से चने भुना कर चबातीं, और लड़के मछलियाँ भून-भून कर उड़ाते। परंतु बूढ़े की इस एकादशी में यदि कोई शरीक था तो वह उसकी बेटी गंगाजली थी। यह बेचारी अपने बूढ़े बाप को चारपाई पर निर्जल छटपटाते देख बिलख-बिलख कर रोती।

लड़कों को अपने माता-पिता से वह प्रेम नहीं होता जो लड़कियों को होता है। गंगाजली इस सोच-विचार में मग्न रहती कि दादा की किस भाँति सहायता करूँ। यदि हम सब भाई-बहन मिल कर जीतनसिंह के पास जाकर दया-भिक्षा की प्रार्थना करें तो वे अवश्य मान जायँगे; परंतु दादा को कब यह स्वीकार होगा। वह यदि एक दिन बड़े साहब के पास चले जायँ तो सब कुछ बात की बात में बन जाय। किंतु उनकी तो जैसे बुद्धि ही मारी गयी है। इसी उधेड़बुन में उसे एक उपाय सूझ पड़ा, कुम्हलाया हुआ मुखारविंद खिल उठा।

पुजारी जी सुक्खू चौधरी के पास से उठ कर चले गये थे और चौधरी उच्च स्वर से अपने सोये हुए देवताओं को पुकार-पुकार कर बुला रहे थे। निदान गंगाजली उनके पास जा कर खड़ी हो गयी। चौधरी ने उसे देख कर विस्मित स्वर में पूछा—क्यों बेटी ? इतनी रात गये क्यों बाहर आयी ?

गंगाजली ने कहा—बाहर रहना तो भाग्य में लिखा है, घर में कैसे रहूँ।

सुक्खू ने जोर से हाँक लगायी, कहाँ गये तुम कृष्णमुरारी, मेरे दुःख हरो।

गंगाजली खड़ी थी, बैठ गयी और धीरे-से बोली—भजन गाते तो आज तीन दिन हो गये। घर बचाने का भी कुछ उपाय सोचा कि इसे यों ही मिट्टी में मिला दोगे ? हम लोगों को क्या पेड़ तले रखोगे ?

चौधरी ने व्यथित स्वर से कहा—बेटी, मुझे तो कोई उपाय नहीं सूझता। भगवान् जो चाहेंगे, होगा। वेग चलो गिरधर गोपाल, काहे विलम्ब करो।

गंगाजली ने कहा—मैंने एक उपाय सोचा है, कहो तो कहूँ।

चौधरी उठ कर बैठ गये और पूछा—कौन उपाय है बेटी ? गंगाजली ने कहा—मेरे गहने झगड़ू साहु के यहाँ गिरों रख दो। मैंने जोड़ लिया है। देने भर के रुपये हो जायँगे।

चौधरी ने ठंडी साँस ले कर कहा—बेटी ! तुमको मुझसे यह बात कहते लाज नहीं आती। वेद-शास्त्र में मुझे तुम्हारे गाँव के कुएँ का पानी पीना भी मना है। तुम्हारी ड्योढ़ी में भी पैर रखने का निषेध है। क्या तुम मुझे नरक में ढकेलना चाहती हो ?

गंगाजली उत्तर के लिए पहले ही से तैयार थी। बोली—मैं अपने गहने तुम्हें दिये थोड़े ही देती हूँ। इस समय ले कर काम चलाओ, चैत में छुड़ा देना। चौधरी ने कड़क कर कहा—यह मुझसे न होगा।

गंगाजली उत्तेजित हो कर बोली—तुमसे यह न होगा तो मैं आप ही जाऊँगी, मुझसे घर की यह दुर्दशा नहीं देखी जाती।

चौधरी ने झुँझला कर कहा—बिरादरी में कौन मुँह दिखाऊँगा ?

गंगाजली ने चिढ़ कर कहा—बिरादरी में कौन ढिंढोरा पीटने जाता है।

चौधरी ने फैसला सुनाया—जगहँसाई के लिए मैं अपना धर्म न बिगाड़ूँगा।

गंगाजली बिगड़कर बोली—मेरी बात नहीं मानोगे तो तुम्हारे ऊपर मेरी हत्या पड़ेगी। मैं आज ही इस बेतवा नदी में कूद पड़ूँगी। तुमसे चाहे घर में आग लगते देखा जाय, पर मुझसे तो न देखा जायगा।

चौधरी ने ठंडी साँस ले कर कातर स्वर में कहा—बेटी, मेरा धर्म नाश मत करो। यदि ऐसा ही है तो अपनी किसी भावज के गहने माँग कर लाओ।

गंगाजली ने गम्भीर स्वर में कहा—भावजों से कौन अपना मुँह नोचवाने जायगा। उनको फिकर होती तो क्या मुँह में दही जमा था, कहती नहीं।

चौधरी निरुत्तर हो गये। गंगाजली घर में जा कर गहनों की पिटारी लायी और एक-एक करके सब गहने चौधरी के अंगोछे में बाँध दिये। चौधरी ने आँखों में आँसू भर कर कहा—हाय राम, इस शरीर की क्या गति लिखी है ! यह कह कर उठे। बहुत संभालने पर भी आँखों में आँसू न छिपे।

4

रात का समय था। बेतवा नदी के किनारे-किनारे मार्ग को छोड़कर सुक्खू चौधरी गहनों की गठरी काँख में दबाये इस तरह चुपके-चुपके चल रहे थे मानो पाप की गठरी लिये जाते हैं। जब वह झगड़ू साहु के मकान के पास पहुँचे तो ठहर गये, आँखें खूब साफ थीं, जिसमें किसी को यह न बोध हो कि चौधरी रोता था।

झगड़ू साहु धागे की कमानी की एक मोटी ऐनक लगाये बहीखाता फैलाये हुक्का पी रहे थे, और दीपक के धुँधले प्रकाश में उन अक्षरों को पढ़ने की व्यर्थ चेष्टा में लगे थे जिनमें स्याही की किफायत की गयी थी। बार-बार ऐनक को साफ करते और आँख मलते, पर चिराग की बत्ती उकसाना या दोहरी बत्ती लगाना शायद इसलिए उचित नहीं समझते थे कि तेल का अपव्यय होगा। इसी समय सुक्खू चौधरी ने आ कर कहा—जै राम जी।

झगड़ू साहु ने देखा। पहचान कर बोले—जयराम चौधरी ! कहो मुकदमे में क्या हुआ ? यह लेन-देन बड़े झंझट का काम है। दिन भर सिर उठाने की छुट्टी नहीं मिलती।

चौधरी ने पोटली को खूब सावधानी से छिपा कर लापरवाही के साथ कहा—अभी तक तो कुछ नहीं हुआ। कल इजरायडिगरी होने वाली है। ठाकुर साहब ने न जाने कब का बैर निकाला है। हमको दो-तीन दिन की भी मुहलत होती तो डिगरी न जारी होने पाती। छोटे साहब और बड़े साहब दोनों हमको अच्छी तरह जानते हैं। अभी इसी साल मैंने उनसे नदी किनारे घंटों बातें कीं, किंतु एक तो बरसात के दिन, दूसरे एक दिन की भी मुहलत नहीं, क्या करता। इस समय मुझे रुपयों की चिंता है।

झगड़ू साहु ने विस्मित हो कर पूछा—तुमको रुपयों की चिंता ! घर में भरा है, वह किस दिन काम आवेगा। झगड़ू साहु ने यह व्यंग्यबाण नहीं छोड़ा था। वास्तव में उन्हें और सारे गाँव को विश्वास था कि चौधरी के घर में लक्ष्मी महारानी का अखंड राज्य है।

चौधरी का रंग बदलने लगा। बोले—साहु जी ! रुपया होता तो किस बात की चिंता थी ? तुमसे कौन छिपाव है। आज तीन दिन से घर में चूल्हा नहीं जला रोना-पीटना पड़ा है। अब तो तुम्हारे बसाये बसूँगा। ठाकुर साहब ने तो उजाड़ने में कोई कसर न छोड़ी।

झगड़ू साहु जीतनसिंह को खुश रखना जरूर चाहते थे, पर साथ ही चौधरी को भी नाखुश करना मंजूर न था। यदि सूद-दर-सूद छोड़ कर मूल तथा ब्याज सहज वसूल हो जाय तो उन्हें चौधरी पर एहसान लादने में कोई आपत्ति न थी। यदि चौधरी के अफसरों की जान-पहचान के कारण साहु जी का टैक्स से गला छूट जाय, तो अनेकों उपाय करने—अलहकारों की मुट्ठी गरम करने—पर भी नित्य प्रति उनके तोंद की तरह बढ़ता ही जा रहा था तो क्या पूछना ! बोले—

क्या कहें चौधरी जी, खर्च के मारे आजकल हम भी तबाह हैं। लहने वसूल नहीं होते। टैक्स का रुपया देना पड़ा। हाथ बिलकुल खाली हो गया। तुम्हें कितना रुपया चाहिए ?

चौधरी ने कहा—सौ रुपये की डिगरी है। खर्च-बर्च मिला कर दो सौ के लगभग समझो।

झगड़ू अब अपने दाँव खेलने लगे। पूछा—तुम्हारे लड़कों ने तुम्हारी कुछ भी मदद न की। वह सब भी तो कुछ न कुछ कमाते ही हैं।

साहु जी का यह निशाना ठीक पड़ा—लड़कों ने लापरवाही से चौधरी के मन में जो कुत्सित भाव भरे थे वह सजीव हो गये। बोले—भाई, लड़के किसी काम के होते तो यह दिन क्यों देखना पड़ता। उन्हें तो अपने भोग-विलास से मतलब। घर-गृहस्थी का बोझ तो मेरे सिर पर है। मैं इसे जैसे चाहूँ, सँभालूँ उनसे कुछ सरोकार नहीं, मरते दम भी गला नहीं छूटना। मरूँगा तो सब खाल में भूसा भरा कर रख छोड़ेंगे। 'गृह कारज नाना जंजाला।'

झगड़ू ने तीसरा तीर मारा—क्या बहुओं से भी कुछ न बन पड़ा।

चौधरी ने उत्तर दिया—बहू-बेटे सब अपनी-अपनी मौज में मस्त हैं। मैं तीन दिन तक द्वार पर बिना अन्न-जल के पड़ा था, किसी ने बात भी नहीं पूछी। कहाँ की सलाह, कहाँ की बातचीत। बहुओं के पास रुपये न हों, पर गहने तो हैं और वे भी मेरे बनाये हुए। इस दुर्दिन के समय यदि दो-दो थान उतार देतीं तो क्या मैं छुड़ा न देता ? सदा यही दिन थोड़े ही रहेंगे।

झगडू समझ गये कि यह महज़ ज़बान का सौदा है और वह ज़बान का सौदा भूलकर भी न करते थे। बोले—तुम्हारे घर के लोग भी अनूठे हैं। क्या इतना भी नहीं जानते कि बूढ़ा रुपये कहाँ से लावेगा ? अब समय बदल गया। या तो कुछ जायदाद लिखो या गहने गिरों रखो तब जा कर रुपया मिले। इसके बिना रुपये कहाँ। इसमें भी जायदाद में सैकड़ों बखेड़े पड़े हैं। सुभीता गिरों रखने में ही है। हाँ, तो जब घरवालों को कोई इसकी फिक्र नहीं तो तुम क्यों व्यर्थ जान देते हो। यही न होगा कि लोग हँसेंगे सो यह लाज कहाँ तक निबाहोगे?

चौधरी ने अत्यन्त विनीत हो कर कहा—साहु जी, यह लाज तो मारे डालती है। तुमसे क्या छिपा है। एक वह दिन था कि हमारे दादा-बाबा महाराज की सवारी के साथ चलते थे अब एक दिन यह कि घर-घर की दीवार तक बिकने की नौबत आ गयी है। कहीं मुँह दिखाने को भी जी नहीं चाहता। यह लो गहनों की पोटली। यदि लोकलाज न होती तो इसे लेकर कभी यहाँ न आता, परन्तु यह अधर्म इसी लाज निबाहने के कारण करना पड़ा है।

झगडू साहु ने आश्चर्य में हो कर पूछा—यह गहने किसके हैं ? चौधरी ने सिर झुका कर बड़ी कठिनता से कहा—मेरी बेटी गंगाजली के। झगडू साहु स्तम्भित हो गये। बोले—अरे ! राम-राम।

चौधरी ने कातर स्वर में कहा—डूब मरने को जी चाहता है। झगडू ने बड़ी धार्मिकता के साथ स्थिर हो कर कहा—शास्त्र में बेटी के गाँव का पेड़ देखना मना है।

चौधरी ने दीर्घ निःश्वास छोड़ कर करुण स्वर में कहा—न जाने नारायण कब मौत देंगे। भाई की तीन लड़कियाँ ब्याहीं। कभी भूल कर भी उनके द्वार का मुँह नहीं देखा। परमात्मा ने अब तक तो टेक निबाही है, पर अब न जाने मिट्टी की क्या दुर्दशा होने वाली है।

झगडू साहु 'लेखा जौ-जौ बखशीश सौ-सौ' के सिद्धांत पर चलते थे। सूद की एक कौड़ी भी छोड़ना उनके लिए हराम था। यदि एक महीने का एक दिन भी लग जाता तो पूरे महीने का सूद वसूल कर लेते। परन्तु नवरात्र में नित्य दुर्गा-पाठ करवाते थे। पितृपक्ष में रोज ब्राह्मणों को सीधा बाँटते थे। बनियों की धर्म में बड़ी निष्ठा होती है। यदि कोई दीन ब्राह्मण लड़की ब्याहने के लिए उनके सामने हाथ पसारता तो वह खाली हाथ न लौटता, भीख माँगने वाले ब्राह्मणों को चाहे वह कितने ही संडे-मुसंडे हों, उनके दरवाजे पर फटकार नहीं सुननी पड़ती थी। उनके धर्म-शास्त्र में कन्या के गाँव के कुएँ का पानी पीने से प्यासों मर जाना अच्छा है। वह स्वयं इस सिद्धांत के भक्त थे और इस सिद्धांत के अन्य पक्षपाती उनके लिए महामान्य देवता थे। वे पिघल गये। मन में सोचा, मनुष्य तो कभी ओछे विचारों को मन में नहीं लाया।

निर्दय काल की ठोकर से अधर्म मार्ग पर उतर आया है, तो उसके धर्म की रक्षा करना हमारा कर्तव्य-धर्म है। यह विचार मन में आते ही झगडू साहु गद्दी से मनसद के सहारे उठ बैठे और दृढ़ स्वर से कहा—वही परमात्मा जिसने अब तक तुम्हारी टेक निबाही है, अब भी निबाहेंगे। लड़की के गहने लड़की को दे दो। लड़की जैसी तुम्हारी है वैसी मेरी

भी है। यह लो रुपये। आज काम चलाओ। जब हाथ में रुपये आ जायँ, दे देना।

चौधरी पर इस सहानुभूति का गहरा असर पड़ा। वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। उसे अपने भावों की धुन में कृष्ण भगवान् की मोहिनी मूर्ति सामने विराजमान दिखायी दी। वही झगड़ू जो सारे गाँव में बदनाम था, जिसकी उसने खुद कई बार हाकिमों से शिकायत की थी, आज साक्षात् देवता जान पड़ता था। रुँधे हुए कंठ से गद्गद हो बोला—

झगड़ू, तुमने इस समय मेरी बात, मेरी लाज, मेरा धर्म कहाँ तक कहूँ मेरा सब कुछ रख लिया। मेरी डूबती नाव पार लगा दी। कृष्ण मुरारी तुम्हारे इस उपकार का फल देंगे और मैं तो तुम्हारा गुण जब तक जीऊँगा, गाता रहूँगा।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'जमाना', नवम्बर, 1915 में प्रकाशित। उर्दू कहानी-संग्रह 'प्रेम बत्तीसी' तथा 'देहात के अफसाने' में संकलित। हिन्दी रूप इसी शीर्षक से 'लक्ष्मी', अक्टूबर, 1918 में प्रकाशित। हिन्दी रूप 'मानसरोवर' भाग-8 में संकलित।]

सौत-1

पंडित देवदत्त का विवाह हुए बहुत दिन हुए, पर उनके कोई संतान न हुई। जब तक उनके माँ-बाप जीवित थे तब तक वे उनसे सदा दूसरा विवाह कर लेने के लिए आग्रह किया करते थे पर वे राजी न हुए। उन्हें अपनी पत्नी गोदावरी से अटल प्रेम था। संतान से होने वाले सुख के निमित्त वे अपना वर्तमान पारिवारिक सुख नष्ट न करना चाहते थे। इसके अतिरिक्त वे कुछ नये विचार के मनुष्य थे। कहा करते थे कि संतान होने से माँ-बाप की जिम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं। जब तक मुनष्य में यह सामर्थ्य न हो कि वह उसका भले प्रकार पालन-पोषण और शिक्षण आदि कर सके तब तक उसकी संतान से देश, जाति और निज का कुछ भी कल्याण नहीं हो सकता। पहले तो कभी-कभी बालका को हँसते-खेलते देख कर उनके हृदय पर चोट भी लगती थी, परंतु अब अपने अनेक देश-भाइयों की तरह व भी शारीरिक व्याधियों से ग्रस्त रहने लगे। अब किस्से-कहानियों के बदले धार्मिक ग्रंथों से उनका अधिक मनोरंजन होता था। अब संतान का खयाल करते ही उन्हें भय-सा लगता था।

पर, गोदावरी इतनी जल्दी निराश होनेवाली न थी। पहले तो वह देवी-देवता, गंडे-तावीज और तंत्र-मंत्र आदि की शरण लेती रही, परंतु जब उसने देखा कि ये औषधियाँ कुछ काम नहीं करतीं तब वह एक महौषधि की फिक्र में लगी जो कायाकल्प से कम नहीं थी। उसने महीनों, बरसों इसी चिंता-सागर में गोते लगाते काटे। उसने दिल को बहुत समझाया; परंतु मन में जो बात समा गयी थी किसी तरह न . रुली। उसे बड़ा भारी आत्मत्याग करना पड़ेगा। शायद पति-प्रेम के सदृश अनमोल रत्न भी उसके हाथ से निकल जाय, पर क्या ऐसा हो सकता है ? पंद्रह वर्ष तक लगातार जिस प्रेम के वृक्ष की उसने सेवा की है क्या वह हवा का एक झोंका भी न सह सकेगा ?

गोदावरी ने अंत में अपने प्रबल विचारों के आगे सिर झुका ही दिया। अब सौत का

शुभागमन करने के लिए वह तैयार हो गयी थी।

2

पंडित देवदत्त गोदावरी का यह प्रस्ताव सुन कर स्तम्भित हो गये। उन्होंने अनुमान किया कि या तो यह प्रेम की परीक्षा कर रही है या मेरा मन लेना चाहती है। उन्होंने उसकी बात हँस कर टाल दी। पर जब गोदावरी ने गंभीर भाव से कहा, तुम इसे हँसी मत समझो, मैं अपने हृदय से कहती हूँ कि संतान का मुँह देखने के लिए मैं सौत से छाती पर मूँग दलवाने के लिए भी तैयार हूँ, तब तो उनका संदेह जाता रहा। इतने ऊँचे और पवित्र भाव से भरी हुई गोदावरी को उन्होंने गले से लिपटा लिया। वे बोले, मुझसे यह न होगा। मुझे संतान की अभिलाषा नहीं।

गोदावरी ने जोर दे कर कहा, तुमको न हो मुझे तो है। अगर अपनी खातिर से नहीं तो तुम्हें मेरी खातिर से यह काम करना ही पड़ेगा।

पंडित जी सरल स्वभाव के आदमी थे। हामी तो उन्होंने न भरी, पर बार-बार कहने से वे कुछ-कुछ राजी अवश्य हो गये। उस तरफ से इसी की देर थी। पंडित जी को कुछ भी परिश्रम न करना पड़ा। गोदावरी की कार्य-कुशलता ने सब काम उनके लिए सुलभ कर दिया। उसने इस काम के लिए अपने पास से केवल रुपये ही नहीं निकाले, किन्तु अपने गहने और कपड़े भी अर्पण कर दिये ! लोक-निंदा का भय इस मार्ग में सबसे बड़ा काँटा था। देवदत्त मन में विचार करने लगे कि जब मैं मौर सजा कर चलूँगा तब लोग मुझे क्या कहेंगे ? मेरे दफ्तर के मित्र मेरी हँसी उड़ायेंगे और मुस्कराते हुए कटाक्षों से मेरी ओर देखेंगे। उनके वे कटाक्ष छुरी से भी ज्यादा तेज होंगे। उस समय मैं क्या करूँगा ?

गोदावरी ने अपने गाँव में जा कर इस कार्य को आरम्भ कर दिया और इसे निर्विघ्न समाप्त भी कर डाला। नयी बहू घर में आ गयी। उस समय गोदावरी ऐसी प्रसन्न मालूम हुई मानो वह बेटे को ब्याह कर लायी हो। वह खूब गाती-बजाती रही। उसे क्या मालूम था कि शीघ्र ही उसे इस गान के बदले रोना पड़ेगा।

3

कई मास बीत गये। गोदावरी अपनी सौत पर इस तरह शासन करती थी मानो वह उसकी सास हो, तथापि वह यह बात कदापि न भूलती थी कि मैं वास्तव में उसकी सास नहीं हूँ। उधर गोमती को अपनी स्थिति का पूरा खयाल रहता था। इसी कारण सास के शासन की तरह कठोर न रहने पर भी गोदावरी का शासन उसे अप्रिय होता था। उसे अपनी छोटी-मोटी जरूरतों के लिए भी गोदावरी से कहते संकोच होता था।

कुछ दिनों बाद गोदावरी के स्वभाव में एक विशेष परिवर्तन दिखाई देने लगा। वह पंडित जी को घर में आते-जाते बड़ी तीव्र दृष्टि से देखने लगी। उसकी स्वाभाविक गंभीरता अब मानो लोप-सी हो गयी, जरा-सी बात भी उसके पेट में नहीं पचती ! जब पंडित जी दफ्तर से आते तब गोदावरी उनके पास घंटों बैठी गोमती का वृत्तांत सुनाया करती।

वृत्तांत-कथन में बहुत-सी ऐसी छोटी-मोटी बातें भी होती थीं कि जब कथा समाप्त होती तब पंडित जी के हृदय से बोझ-सा उतर जाता। गोदावरी क्यों इतनी मृदुभाषिणी हो गयी थी; इसका कारण समझना मुश्किल है। शायद अब वह गोमती से डरती थी। उसके सौंदर्य से, उसके जीवन से, उसके लज्जायुक्त नेत्रों से शायद वह अपने को पराभूत समझती। बाँध को तोड़ कर वह पानी की धारा को मिट्टी के ढेलों से रोकना चाहती थी।

एक दिन गोदावरी ने गोमती से मीठा चावल पकाने को कहा। शायद वह रक्षाबंधन का दिन था। गोमती ने कहा, शक्कर नहीं है। गोदावरी यह सुनते ही विस्मित हो उठी। उतनी शक्कर इतनी जल्दी कैसे उठ गयी ! जिसे छाती फाड़ कर कमाना पड़ता है, उसे अखरता है, खाने वाले क्या जानें ?

जब पंडित जी दफ्तर से आये तब यह जरा-सी बात बड़ा विस्तृत रूप धारण करके उनके कानों में पहुँची। थोड़ी देर के लिए पंडित जी के दिल में भी यह शंका हुई कि गोमती को कहीं भस्मक रोग तो नहीं हो गया।

ऐसी ही घटना एक बार फिर हुई। पंडित जी को बवासीर की शिकायत थी। लाल मिर्च वह बिल्कुल न खाते थे। गोदावरी जब रसोई बनाती थी तब वह लाल मिर्च रसोई घर में लाती ही न थी। गोमती ने एक दिन दाल में मसाले के साथ थोड़ी-सी लाल मिर्च भी डाल दी। पंडित जी ने दाल कम खायी। पर गोदावरी गोमती के पीछे पड़ गयी। ऐंठ कर वह बोली--ऐसी जीभ जल क्यों नहीं जाती ?

4

पंडित जी बड़े ही सीधे आदमी थे। दफ्तर से आये, खाना खाया, पड़ कर सो रहे। वे एक साप्ताहिक पत्र मँगाते थे। उसे कभी-कभी महीनों खोलने की नौबत न आती थी। जिस काम में जरा भी कष्ट या परिश्रम होता, उससे वे कोसों दूर भागते थे। कभी उनके दफ्तर में थियेटर के 'पास' मुफ्त मिला करते थे। पर पंडित जी उनसे कभी काम नहीं लेते, और ही लोग उनसे माँग ले जाया करते। रामलीला या कोई मेला तो उन्होंने शायद नौकरी करने के बाद फिर कभी देखा ही नहीं। गोदावरी उनकी प्रकृति का परिचय अच्छी तरह पा चुकी थी। पंडित जी भी प्रत्येक विषय में गोदावरी के मतानुसार चलने में अपनी कुशल समझते थे।

पर रुई-सी मुलायम वस्तु भी दब कर कठोर हो जाती है। पंडित जी को यह आठों पहर की चह-चह असह्य-सी प्रतीत होती, कभी-कभी मन में झुँझलाने भी लगते। इच्छा-शक्ति जो इतने दिनों तक बेकार पड़ी रहने से निर्बल-सी हो गयी थी, अब कुछ सजीव-सी होने लगी थी।

पंडित जी यह मानते थे कि गोदावरी ने सौत को घर लाने में बड़ा भारी त्याग किया है। उसका यह त्याग अलौकिक कहा जा सकता है; परन्तु उसके त्याग का भार जो कुछ है वह मुझ पर है, गोमती पर उसका क्या एहसान ? यहाँ उसे कौन-सा सुख है जिसके लिए वह फटकार पर फटकार सहे ? पति मिला है वह बूढ़ा और सदा रोगी, घर मिला है वह ऐसा कि अगर नौकरी छूट जाय तो कल चूल्हा न जले। इस दशा में गोदावरी का यह

स्नेह-रहित बर्ताव उन्हें बहुत अनुचित मालूम होता।

गोदावरी की दृष्टि इतनी स्थूल न थी कि उसे पंडित जी के मन के भाव नजर न आवें। उनके मन में जो विचार उत्पन्न होते ये सब गोदावरी को उनके मुख पर अंकित से दिखायी पड़ते। यह जानकारी उसके हृदय में एक ओर गोमती के प्रति ईर्ष्या की प्रचंड अग्नि दहका देती, दूसरी ओर पंडित देवदत्त पर निष्ठुरता और स्वार्थपिय्रता का दोषारोपण कराती। फल यह हुआ कि मनोमालिन्य दिन-दिन बढ़ता गया।

5

गोदावरी ने धीरे-धीरे पंडित जी से गोमती की बातचीत करनी छोड़ दी, मानो उसके निकट गोमती घर में थी ही नहीं। न उसके खाने-पीने की वह सुधि लेती, न कपड़े-लत्ते की। एक बार कई दिनों तक उसे जलपान के लिए कुछ भी न मिला। पंडित जी तो आलसी जीव थे। वे इन अत्याचारों को देखा करते, पर अपने शांतिसागर में घोर उपद्रव मच जाने के भय से किसी से कुछ न कहते। तथापि इस छिछले अन्याय ने उनकी महती सहन-शक्ति को भी मथ डाला। एक दिन उन्होंने गोदावरी से डरते-डरते कहा, क्या आजकल जलपान के लिए मिठाई-विठाई नहीं आती ?

गोदावरी ने क्रुद्ध हो कर जवाब दिया, तुम लाते ही नहीं तो आये कहाँ से ! मेरे कोई नौकर बैठा है ?

देवदत्त को गोदावरी के ये कठोर वचन तीर-से लगे। आज तक गोदावरी ने उनसे ऐसी रोषपूर्ण बात कभी न की थी।

वे बोले, धीरे बोलो, झुँझलाने की तो कोई बात नहीं है। गोदावरी ने आँखें नीची करके कहा, मुझे तो जैसा आत्ता है वैसे बोलती हूँ। दूसरों की-सी मधुर बोली कहाँ से लाऊँ।

देवदत्त ने जरा गरम हो कर कहा, आजकल मुझे तुम्हारे मिजाज का कुछ रंग ही नहीं मालूम होता। बात-बात पर उलझती रहती हो !

गोदावरी का चेहरा क्रोधाग्नि से लाल हो गया। वह बैठी थी खड़ी हो गयी। उसके होंठ फड़कने लगे। वह बोली, मेरी कोई बात अब तुमको क्यों अच्छी लगेगी। अब मैं सिर से पैर तक दोषों से भरी हुई हूँ। अब और लोग तुम्हारे मन का काम करेंगे। मुझसे नहीं हो सकता। यह लो संदूक की कुंजी ! अपने रुपये-पैसे सँभालो, यह रोज-रोज की झंझट मेरे मान की नहीं। जब तक निभा, निभाया। अब नहीं निभ सकता।

पंडित देवदत्त मानो मूर्च्छित-से हो गये। जिस शांति-भंग का उन्हें भय था उसने अत्यंत भयंकर रूप धारण करके घर में प्रवेश किया। वह कुछ भी न बोल सके। इस समय उनके अधिक बोलने से बात बढ़ जाने का भय था। वह बाहर चले आये और सोचने लगे कि मैंने गोदावरी के साथ कौन-सा अनुचित व्यवहार किया है। उनके ध्यान में आया कि गोदावरी के हाथ से निकल कर घर का प्रबंध कैसे हो सकेगा। इस थोड़ी-सी आमदनी में वह न जाने किस प्रकार काम चलाती थी ? क्या-क्या उपाय वह करती थी ? अब न जाने नारायण कैसे पार लगावेंगे। उसे मनाना पड़ेगा, और हो ही क्या सकता है। गोमती भला

क्या कर सकती है, सारा बोझ मेरे ही सिर पड़ेगा। मानेगी तो, पर मुश्किल से।

परंतु पंडित जी की ये शुभकामनाएँ निष्फल हुईं। संदूक की कुंजी विषैली नागिन की तरह वहीं आँगन में ज्यों की त्यों तीन दिन तक पड़ी रही, किसी को उसके निकट जाने का साहस न हुआ। चौथे दिन पंडित जी ने मानो जान पर खेल कर उस कुंजी को उठा लिया। उस समय उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानो किसी ने उनके सिर पर पहाड़ उठा कर रख दिया। आलसी आदमियों को अपने नियमित मार्ग से तिल भर भी हटना बड़ा कठिन मालूम होता है।

यद्यपि पंडित जी जानते थे कि मैं अपने दफ्तर के कारण इस कार्य को संभालने में असमर्थ हूँ, तथापि उनसे इतनी ढिठाई न हो सकी कि वह कुंजी गोमती को दें। पर यह केवल दिखावा ही भर था। कुंजी उन्हीं के पास रहती थी, काम सब गोमती को करना पड़ता था। इस प्रकार गृहस्थी के शासन का अंतिम साधन भी गोदावरी के हाथ से निकल गया। गृहिणी के नाम के साथ जो मर्यादा और सम्मान था वह भी गोदावरी के पास से उसी कुंजी के साथ चला गया। देखते-देखते घर की महरी और पड़ोस की स्त्रियों के बर्ताव में भी बहुत अंतर पड़ गया। गोदावरी अब पदच्युता रानी की तरह थी। उसका अधिकार अब केवल दूसरों की सहानुभूति पर ही रह गया था।

6

गृहस्थी के काम-काज में परिवर्तन होते ही गोदावरी के स्वभाव में भी शोकजनक परिवर्तन हो गया। ईर्ष्या मन में रहने वाली वस्तु नहीं। आठों पहर पास-पड़ोस के घरों में यही चर्चा होने लगी, देखा दुनिया कैसे मतलब की है। बेचारी ने लड़-झगड़ कर ब्याह कराया, जान-बूझ कर अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारी। यहाँ तक कि अपने गहने-कपड़े तक उतार दिये। पर अब रोते-रोते आँचल भीगता है। सौत तो सौत ही है, पति ने भी उसे आँखों से गिरा दिया। बस, अब दासी की तरह घर में पड़ी-पड़ी पेट जिलाया करे। यह जीना भी कोई जीना है ?

ये सहानुभूतिपूर्ण बात सुन कर गोदावरी की ईर्ष्याग्नि और भी प्रबल होती जाती थी। इसे इतना न सूझता था कि वह मौखिक संवेदनाएँ अधिकांश में उस मनोविकार से पैदा हुई हैं जिससे मनुष्यों को हानि और दुःख पर हँसने में विशेष आनंद आता है।

गोदावरी को जिस बात का पूर्ण विश्वास और पंडित जी को जिसका बड़ा भय था, वह न हुई। घर के काम-काज में कोई विघ्न-बाधा, कोई रुकावट न पड़ी। हाँ, अनुभव न होने के कारण पंडित जी का प्रबन्ध गोदावरी के प्रबन्ध जैसा अच्छा न था। कुछ खर्च ज्यादा पड़ जाता था। पर काम भली-भाँति चला जाता था। हाँ, गोदावरी को गोमती के सभी काम दोषपूर्ण दिखाई देते थे ! ईर्ष्या में अग्नि है। परन्तु अग्नि का गुण उसमें नहीं। वह हृदय को फैलाने के बदले और भी संकीर्ण कर देती है। अब घर में कुछ हानि हो जाने से गोदावरी को दुःख के बदले आनंद होता ! बरसात के दिन थे। कई दिन तक सूर्यनारायण के दर्शन न हुए। संदूक में रक्खे हुए कपड़ों में फफूँदी लग गयी। तेल के अचार बिगड़ गये। गोदावरी को यह सब देख कर रत्ती भर भी दुःख न हुआ। हाँ, दो-चार जली-कटी

सुनाने का अवसर अवश्य मिल गया। मालकिन ही बनना आता है कि मालकिन का काम करना भी।

पंडित देवदत्त की प्रकृति में भी अब नया रंग नजर आने लगा ! जब तक गोदावरी अपनी कार्यपरायणता से घर का सारा बोझ सम्भाले थी, तब तक उनको कभी किसी चीज की कमी नहीं खली। यहाँ तक कि शाक-भाजी के लिए भी उन्हें बाजार नहीं जाना पड़ा। पर अब गोदावरी उन्हें दिन में कई बार बाजार दौड़ते देखती। गृहस्थी का प्रबंध ठीक न रहने से बहुधा जरूरी चीजों के लिए उन्हें बाजार ऐन वक्त पर जाना पड़ता। गोदावरी यह कौतुक देखती और सुना-सुना कर कहती, यही महाराज हैं कि एक तिनका उठाने के लिए भी न उठते थे। अब देखती हूँ, दिन में दस दफे बाजार में खड़े रहते हैं। अब मैं इन्हें कभी यह कहते नहीं सुनती कि मेरे लिखने-पढ़ने में हर्ज होगा।

गोदावरी को इस बात का एक बार परिचय मिल चुका था कि पंडित जी बाजार-हाट के काम में कुशल नहीं हैं। इसलिए जब उसे कपड़े की ज़रूरत होती तब वह अपने पड़ोस के एक बूढ़े लाला साहब से मँगवाया करती थी। पंडित जी को यह बात भूल-सी गयी थी कि गोदावरी को साड़ियों की भी जरूरत पड़ती है। उनके सिर से तो जितना बोझ कोई हटा दे उतना ही अच्छा था। खुद वे भी वही कपड़े पहनते थे जो गोदावरी मँगा कर उन्हें दे देती थी। पंडित जी को नये फैशन और नये नमूनों से कोई प्रयोजन न था। पर अब कपड़ों के लिए भी उन्हीं को बाजार जाना पड़ता है। एक बार गोमती के पास साड़ियाँ न थीं। पंडित जी बाजार गये तो एक बहुत अच्छा-सा जोड़ा उसके लिए ले आये। बजाज ने मनमाने दाम लिये। उधार सौदा लाने में पंडित जी जरा भी आगा-पीछा न करते थे। गोमती ने वह जोड़ा गोदावरी को दिखाया। गोदावरी ने देखा और मुँह फेर कर रुखायी से बोली, भला तुमने उन्हें कपड़े लाना तो सिखा दिया। मुझे तो सोलह वर्ष बीत गये, उनके हाथ का लाया हुआ एक कपड़ा स्वप्न में भी पहनना नसीब न हुआ।

ऐसी घटनाएँ गोदावरी की ईर्ष्याग्नि को और भी प्रज्वलित कर देती थीं। जब तक उसे यह विश्वास था कि पंडित जी स्वभाव से ही रूखे हैं तब तक उसे संतोष था। परन्तु अब उनकी ये नयी-नयी तरंगें देख कर उसे मालूम हुआ कि जिस प्रीति को मैं सैकड़ों यत्न करके भी न पा सकी उसे इस रमणी ने केवल अपने यौवन से जीत लिया। उसे अब निश्चय हुआ कि मैं जिसे सच्चा प्रेम समझ रही थी वह वास्तव में कपटपूर्ण था। वह निरा स्वार्थ था।

दैवयोग से इन्हीं दिनों गोमती बीमार पड़ी। उसे उठने-बैठने की भी शक्ति न रही। गोदावरी रसोई बनाने लगी, पर उसे इसका निश्चय नहीं था कि गोमती वास्तव में बीमार है। उसे यही खयाल था कि मुझसे खाना पकवाने के लिए ही दोनों प्राणियों ने यह स्वाँग रचा है पड़ोस की स्त्रियों से कहती कि लौंडी बनने में इतनी ही कसर थी वह पूरी हो गयी।

पंडित जी को आजकल खाना खाते वक्त भाग-भाग-सी पड़ जाती है। वे न जाने क्यों गोदावरी से एकांत में बातचीत करते डरते हैं। न मालूम कैसी कठोर और हृदय-विदारक बातें वह सुनाने लगे। इसीलिए खाना खाते वक्त वे डरते थे कि कहीं उस भयंकर समय का आगमन न हो जाय। गोदावरी अपने तीव्र नेत्रों से उनके मन का भाव ताड़ जाती थी,

पर मन ही मन में ऐंठ कर रह जाती थी।

एक दिन उससे न रहा गया। वह बोली, क्या मुझसे बोलने की भी मनाही कर दी गयी है ? देखती हूँ, कहीं तो रात-रात भर बातों का तार नहीं टूटता, पर मेरे सामने मुँह खोलने की भी कसम-सी खायी है। घर का रंग-ढंग देखते हो न ? अब तो काम तुम्हारे इच्छानुसार चल रहा है न ?

पंडित जी ने सिर नीचा किये हुए उत्तर दिया, उँह ! जैसे चलता है, वैसे चलता है। उस फिक्र से क्या अपनी जान दे दूँ ? जब तुम यह चाहती हो कि घर मिट्टी में मिल जाय तब फिर मेरा क्या वश है ?

इस पर गोदावरी ने बड़े कठोर वचन कहे। बात बढ़ गयी। पंडित जी चौके पर से उठ आये। गोदावरी ने कसम दिला कर उन्हें बिठाना चाहा, पर वे वहाँ क्षण भर भी न रुके ! तब उसने भी रसोई उठा दी। सारे घर को उपवास करना पड़ा।

गोमती में एक विचित्रता यह थी कि वह कड़ी से कड़ी बात सहन कर सकती थी पर भूख सहन करना उसके लिए बड़ा कठिन था। इसलिए कोई व्रत भी न रखती थी। हाँ, कहने-सुनने को जन्माष्टमी रख लेती थी। पर आजकल बीमारी के कारण उसे और भी भूख लगती थी। जब उसने देखा कि दोहपर होने को आयी और भोजन मिलने के कोई लक्षण नहीं, तब विवश हो कर बाजार से मिठाई मँगायी। सम्भव है उसने गोदावरी को जलाने के लिए ही खेल खेला हो, क्योंकि कोई भी एक वक्त खाना न खाने से मर नहीं जाता। गोदावरी के सिर से पैर तक आग लग गयी। उसने भी तुरंत मिठाइयाँ मँगवायीं। कई वर्ष के बाद आज उसने पेट भर मिठाइयाँ खायीं। ये सब ईर्ष्या के कौतुक हैं।

जो गोदावरी दोपहर के पहले मुँह में पानी न डालती थी वही अब प्रातःकाल ही कुछ जलपान किये बिना नहीं रह सकती। सिर में वह हमेशा मीठा तेल डालती थी, पर अब मीठे तेल से उसके सिर में पीड़ा होने लगती थी। पान खाने का उसे नया व्यसन लग गया। ईर्ष्या ने उसे नयी नवेली बहू बना दिया।

जन्माष्टमी का शुभ दिन आया। पंडित जी का स्वाभाविक आलस्य इन दो-तीन दिनों के लिए गायब हो जाता था। बड़े उत्साह से झाँकी बनाने में लग जाते थे। गोदावरी यह व्रत बिना जल के रखती थी और पंडित जी तो कृष्ण के उपासक ही थे। अब उनके अनुरोध से गोमती ने भी निर्जल व्रत रखने का साहस किया, पर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ जब महरी ने आ कर उससे कहा, बड़ी बहू निर्जल न रहेंगी, उनके लिए फलाहार मँगा दो।

संध्या समय गोदावरी ने मान-मंदिर जाने कि लिए इक्के की फरमाइश की। गोमती को यह फरमाइश बुरी मालूम हुई। आज के दिन इक्कों का किराया बहुत बढ़ जाता था। मान-मंदिर कुछ दूर भी नहीं था। वह चिढ़ कर बोली—व्यर्थ रुपया क्यों फेंका जाय ? मन्दिर कौन बड़ी दूर है। पाँव-पाँव क्यों नहीं चली जाती। हुक्म चला देना तो सहज है। अखरता उसे है जो बैल की तरह कमाता है।

तीन साल पहले गोमती ने इसी तरह की बातें गोदावरी के मुँह से सुनी थीं। आज गोदावरी को भी गोमती के मुँह से सुननी पड़ीं। समय की गति !

इन दिनों गोदावरी बड़े उदासीन भाव से खाना बनाती है। पंडित जी के पथ्यापथ्य के

विषय में भी अब उसे पहले की-सी चिंता न थी। एक दिन उसने महरी से कहा कि अंदाज से मसाले निकाल कर पीस ले, मसाले दाल में पड़े तो मिर्च जरा अधिक तेज हो गयी। मारे भय से पंडित जी से वह न खायी गयी। अन्य आलसी मनुष्यों की तरह चटपटी वस्तुएँ उन्हें भी बहुत प्रिय थीं, परंतु वह रोग से हरे हुए थे। गोमती ने जब यह सुना तब भौंहें चढ़ा कर बोली, क्या बुढ़ापे में जबान गज भर की हो गयी है।

कुछ इसी तरह से कटु-वाक्य एक बार गोदावरी ने भी कहे थे। आज उसकी बारी सुनने की थी।

7

आज गोदावरी गंगा से गले मिलने आयी है। तीन साल हुए वह वर और वधू को ले कर गंगा जी को पुष्प और दूध चढ़ाने गयी थी। आज वह अपने प्राण समर्पण करने आयी है। आज वह गंगा जी की आनंदमयी लहरों में विश्राम करना चाहती है।

गोदावरी को अब उस घर में एक क्षण रहना भी दुस्सह हो गया था। जिस घर में रानी बन कर रही उसी में चेरी बन कर रहना उस जैसी सगर्वा स्त्री के लिए असम्भव था।

अब इस घर में गोदावरी का स्नेह उस पुरानी रस्सी की तरह था जो बराबर गाँठ देने पर भी कहीं न कहीं से टूट ही जाती है। उसे गंगा जी की शरण लेने के सिवाय और कोई उपाय न सूझ ा था।

कई दिन हुए उसके मुँह से बार-बार जान देने की धमकी सुन पंडित जी खिजला कर बोल उठे थे, तुम किसी तरह मर भी तो जातीं। गोदावरी उन विष-भरे शब्दों को अब तक न भूली थी। चुभने वाली बातें उसको कभी न भूलती थीं। आज गोमती ने भी वही बातें कहीं, यद्यपि उसने बहुत कुछ सहन करने के पीछे कठोर बातें कही थीं। तथापि गोदावरी को अपनी बातें तो भूल-सी गयी थीं। केवल गोमती और पंडित जी के वाक्य ही उसके कानों में गूँज रहे थे। पंडित जी ने उसे डाँटा तक नहीं। मुझ पर ऐसा घोर अन्याय और वे मुँह तक न खोलें।

आज सब लोगों के सो जाने पर गोदावरी घर से बाहर निकली, आकाश में काली घटाएँ छायी हुई थीं। वर्षा की झड़ी लग रही थी। उधर उसके नेत्रों से भी आँसुओं की धारा बह रही थी। प्रेम का बंधन कितना कोमल है और दृढ़ भी कितना ! कोमल है अपमान के सामने, दृढ़ है वियोग के सामने ! गोदावरी चौखट पर खड़ी-खड़ी घंटों रोती रही, कितनी ही पिछली बातें उसे याद आती थीं। हा ! कभी यहाँ उसके लिए प्रेम भी था, मान भी था, जीवन का सुख भी था। शीघ्र ही पंडित जी के वे कठोर शब्द भी याद आ गये। आँखों से फिर पानी की धारा बहन लगी। गोदावरी घर से चल खड़ी हुई।

इस समय यदि पंडित देवदत्त नंगे सिर, नंगे पाँव पानी में भीगते दौड़े आते और गोदावरी के कम्पित हाथों को पकड़ कर अपने धड़कते हुए हृदय से उसे लगा कर कहते, "प्रिये !" इससे अधिक और उनके मुँह से कुछ भी निकलता, तो भी क्या गोदावरी अपने विचारों पर स्थिर रह सकती ?

कुआर का महीना था। रात को गंगा की लहरों की गरज बड़ी भयानक मालूम होती

थी। साथ ही जब बिजली तड़प जाती तब उसकी उछलती हुई लहरें प्रकाश से उज्ज्वल हो जाती थीं। मानो प्रकाश उन्मत्त हाथी का रूप धारण कर किलोलें कर रहा हो। जीवन-संग्राम का एक विशाल दृश्य आँखों के सामने आ रहा था।

गोदावरी के हृदय में भी इस समय विचार की अनेक लहरें बड़े वेग से उठतीं, आपस में टकरातीं और ऐंठती हुई लोप हो जाती थीं। कहाँ ? अंधकार में।

क्या यह गरजने उमड़नेवाली गंगा गोदावरी को शांति प्रदान कर सकती है ? उसकी लहरों में सुधासम मधुर ध्वनि नहीं है और न उसमें करुणा का विकास ही है। वह इस समय उद्दंडता और निर्दयता की भीषण मूर्ति धारण किये हुए है।

गोदावरी किनारे बैठी क्या सोच रही थी, कौन कह सकता है ? क्या अब उसे यह खटका नहीं लगा था कि पंडित देवदत्त आते न होंगे ? प्रेम का बंधन कितना मजबूत होता है।

उसी अंधकार में ईर्ष्या, निष्ठुरता और नैराश्य की सताई हुई वह अबला गंगा की गोद में गिर पड़ी। लहरें झपटीं और उसे निगल गयीं।

सवेरा हुआ। गोदावरी घर में नहीं थी। उसकी चारपाई पर यह पत्र पड़ा हुआ था—

"स्वामिन, संसार में सिवाय आपके मेरा और कौन स्नेही था ? मैंने अपना सर्वस्व आपके सुख की भेंट कर दिया। अब आपका सुख इसी में है कि मैं इस संसार से लोप हो जाऊँ। इसीलिए ये प्राण आपकी भेंट हैं। मुझसे जो कुछ अपराध हुए हों, क्षमा कीजिएगा। ईश्वर सदा आपको सुखी रक्खे ?"

पंडित जी इस पत्र को देखते ही मूर्च्छित हो कर गिर पड़े। गोमती रोने लगी। पर क्या वे उसके विलाप के आँसू थे ?

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। प्रेमचंद की प्रथम हिन्दी कहानी। 'सरस्वती', दिसम्बर, 1915 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-8 में संकलित। उर्दू रूप 'प्रेम बत्तीसी' में संकलित।]

दो भाई

प्रातःकाल सूर्य की सुहावनी सुनहरी धूप में कलावती दोनों बेटों को जाँघों पर बैठा दूध और रोटी खिलाती। केदार बड़ा था, माधव छोटा। दोनों मुँह में कौर लिये, कई पग उछल-कूद कर फिर जाँघों पर आ बैठते और अपनी तोतली बोली में इस प्रार्थना की रट लगाते थे, जिसमें एक पुराने सहृदय कवि ने किसी जाड़े के सताये हुए बालक के हृदयोद्गार को प्रकट किया है—

'दैव-दैव घाम करो तुम्हारे बालक को लगता जाड़'

माँ उन्हें चुमकार कर बुलाती और बड़े-बड़े कौर खिलाती। उसके हृदय में प्रेम की उमंग थी और नेत्रों में गर्व की झलक। दोनों भाई बड़े हुए। साथ-साथ गले में बाँहें डाले खेलते थे। केदार की बुद्धि चुस्त थी। माधव का शरीर। दोनों में इतना स्नेह था कि साथ-

साथ पाठशाला जाते, साथ-साथ खाते और साथ ही साथ रहते थे ! दोनों भाइयों का ब्याह हुआ। केदार की वधू चम्पा अमित-भाषिणी और चंचला थी। माधव की वधू श्यामा साँवली सलोनी, रूपराशि की खान थी। बड़ी ही मृदुभाषिणी, बड़ी ही सुशीला और शांतस्वभावा थी।

केदार चम्पा पर मोहे और माधव श्यामा पर रीझे। परंतु कलावती का मन किसी से न मिला। वह दोनों से प्रसन्न और दोनों से अप्रसन्न थी। उसकी शिक्षा-दीक्षा का बहुत अंश इस व्यर्थ के प्रयत्न में व्यय होता था कि चम्पा अपनी कार्यकुशलता का एक भाग श्यामा के शांत स्वभाव से बदल ले।

दोनों भाई संतानवान हुए। हरा-भरा वृक्ष खूब फैला और फलों से लद गया। कुत्सित वृक्ष में केवल एक फल दृष्टिगोचर हुआ, वह भी कुछ पीला-सा, मुरझाया हुआ; किंतु दोनों अप्रसन्न थे। माधव को धन-सम्पत्ति की लालसा थी और केदार को संतान की अभिलाषा।

भाग्य की इस कूटनीति ने शनैः-शनैः द्वेष का रूप धारण किया। जो स्वाभाविक था। श्यामा अपने लड़कों को सँवारने-सुधारने में लगी रहती; उसे सिर उठाने की फुरसत नहीं मिलती थी। बेचारी चम्पा को चूल्हे में जलना और चक्की में पिसना पड़ता था। यह अनीति कभी-कभी कटु शब्दों में निकल जाती। श्यामा सुनती, कुढ़ती और चुपचाप सह लेती। परन्तु उसकी यह सहनशीलता चम्पा के क्रोध को शांत करने के बदले और बढ़ाती। यहाँ तक कि प्याला लबालब भर गया। हिरन भागने की राह न पा कर शिकारी की तरफ लपका। चम्पा और श्यामा समकोण बनाने वाली रेखाओं की भाँति अलग हो गयीं। उस दिन एक ही घर में दो चूल्हे जले, परन्तु भाइयों ने दाने की सूरत न देखी और कलावती सारे दिन रोती रही।

2

कई वर्ष बीत गये। दोनों भाई जो किसी समय एक ही पालथी पर बैठते थे, एक ही थाली में खाते थे और एक ही छाती से दूध पीते थे, उन्हें अब एक घर में, एक गाँव में रहना कठिन हो गया। परन्तु कुल की साख में बट्टा न लगे, इसलिए ईर्ष्या और द्वेष की धधकी हुई आग को राख के नीचे दबाने की व्यर्थ चेष्टा की जाती थी। उन लोगों में अब भ्रातृ-स्नेह न था। केवल भाई के नाम की लाज थी। माँ भी जीवित थी, पर दोनों बेटों का वैमनस्य देख कर आँसू बहाया करती। हृदय में प्रेम था, पर नेत्रों में अभिमान न था। कुसुम वही था, परंतु वह छटा न थी।

दोनों भाई जब लड़के थे, तब एक को रोते देख दूसरा भी रोने लगता था, तब वह नादान बेसमझ और भोले थे। आज एक को रोते हुए देख दूसरा हँसता और तालियाँ बजाता। अब वह समझदार और बुद्धिमान हो गये थे।

जब उन्हें अपने-पराये की पहचान न थी, उस समय यदि कोई छेड़ने के लिए एक को अपने साथ ले जाने की धमकी देता, तो दूसरा जमीन पर लोट जाता और उस आदमी का कुर्ता पकड़ लेता। अब यदि एक भाई को मृत्यु भी धमकाती तो दूसरे के नेत्रों में आँसू न आते। अब उन्हें अपने-पराये की पहचान हो गयी थी।

बेचारे माधव की दशा शोचनीय थी। खर्च अधिक था और आमदनी कम। उस पर कुल-मर्यादा का निर्वाह। हृदय चाहे रोये, पर होंठ हँसते रहें। हृदय चाहे मलीन हो, पर कपड़े मैले न हों। चार पुत्र थे, चार पुत्रियाँ और आवश्यक वस्तुएँ मोतियों के मोल। कुछ पाइयों की जमींदारी कहाँ तक संभालती। लड़कों का ब्याह अपने वश की बात थी। पर लड़कियों का विवाह कैसे टल सकता। दो पाई जमीन पहली कन्या के विवाह में भेंट हो गयी। उस पर भी बराती बिना भात खाये आँगन से उठ गये। शेष दूसरी कन्या के विवाह में निकल गयी। साल भर बाद तीसरी लड़की का विवाह हुआ, पेड़-पत्ते भी न बचे। हाँ, अब की डाल भरपूर थी। परन्तु दरिद्रता और धरोहर में वही सम्बन्ध है जो मांस और कुत्ते में।

3

इस कन्या का अभी गौना न हुआ था कि माधव पर दो साल के बकाया लगान का वारंट आ पहुँचा। कन्या के गहने गिरों (बंदक) रखे गये। गला छूटा। चम्पा इसी समय की ताक में थी। तुरन्त नये नातेदारों को सूचना दी। तुम लोग बेसुध बैठे हो, यहाँ गहनों का सफाया हुआ जाता है। दूसरे दिन एक नाई और दो ब्राह्मण माधव के दरवाजे पर आकर बैठ गये। बेचारे के गले में फाँसी पड़ गयी। रुपये कहाँ से आवें, न जमीन, न जायदाद, न बाग, न बगीचा। रहा विश्वास, वह कभी का उठ चुका था। अब यदि कोई सम्पत्ति थी, तो केवल वही दो कोठरियाँ, जिसमें उसने अपनी सारी आयु बितायी थी, और उनका कोई ग्राहक न था। विलम्ब से नाक कटी जाती थी। विवश हो कर केदार के पास आया और आँखों में आँसू भरे बोला, भैया इस समय मैं बड़े संकट में हूँ, मेरी सहायता करो।

केदार ने उत्तर दिया—मद्‌धू ! आजकल मैं भी तंग हो रहा हूँ, तुमसे सच कहता हूँ।

चम्पा अधिकारपूर्ण स्वर से बोली—अरे, तो क्या इनके लिए भी तंग हो रहे हैं! अलग भोजन करने से क्या इज्जत अलग हो जायेगी !

केदार ने स्त्री की ओर कनखियों से ताक कर कहा—नहीं-नहीं मेरा यह प्रयोजन नहीं था। हाथ तंग है तो क्या, कोई न कोई प्रबन्ध किया ही जायेगा।

चम्पा ने माधव से पूछा—पाँच बीस से ऊपर ही पर गहने रखे थे न ।

माधव ने उत्तर दिया—हाँ, ब्याज सहित कोई सवा सौ रुपये होते हैं।

केदार रामायण पढ़ रहे थे। फिर पढ़ने में लग गये। चम्पा ने तत्त्व की बातचीत शुरू की— रुपया बहुत है, हमारे पास होता तो कोई बात न थी। परन्तु हमें भी दूसरे से दिलाना पड़ेगा और महाजन बिना कुछ लिखाये-पढ़ाये रुपया देते नहीं।

माधव ने सोचा, यदि मेरे पास कुछ लिखाने-पढ़ाने को होता, तो क्या और महाजन मर गये थे, तुम्हारे दरवाजे आता क्यों ? बोला—लिखने-पढ़ने को मेरे पास है ही क्या ? जो कुछ जगह-जायदाद है, वह यही घर है।

केदार और चम्पा ने एक दूसरे को मर्मभेदी नयनों से देखा और मन ही मन कहा—क्या आज सचमुच जीवन की प्यारी अभिलाषाएँ पूरी होंगी। परन्तु हृदय की यह उमंग मुँह तक आते-आते गम्भीर रूप धारण कर गयी। चम्पा बड़ी गम्भीरता से बोली—घर पर तो कोई महाजन कदाचित् ही रुपया दे। शहर हो तो कुछ किराया ही आवे, पर गँवई में तो

कोई सेंत में रहने वाला भी नहीं। फिर साझे की चीज ठहरी।

केदार डरे कि कहीं चम्पा की कठोरता से खेल बिगड़ न जाय। बोले—एक महाजन से मेरी जान-पहचान है। वह कदाचित् कहने-सुनने में आ जाय !

चम्पा ने गर्दन हिला कर इस युक्ति की सराहना की और बोली—पर दो-तीन बीस से अधिक मिलना कठिन है।

केदार ने जान पर खेल कर कहा—अरे, बहुत दबाने पर चार बीस हो जायेंगे। और क्या !

अबकी चम्पा ने तीव्र दृष्टि से केदार को देखा और अनमनी-सी होकर बोली—महाजन ऐसे अंधे नहीं होते।

माधव अपने भाई-भावज के इस गुप्त रहस्य को कुछ-कुछ समझता था। वह चकित था कि इन्हें इतनी बुद्धि कहाँ से मिल गयी। बोला—और रुपये कहाँ से आवेंगे?

चम्पा चिढ़ कर बोली—और रुपयों के लिए फिक्र करो। सवा सौ रुपये इन दो कोठरियों के इस जनम में कोई न देगा, चार बीस चाहो तो एक महाजन से दिला दूँ, लिखा-पढ़ी कर लो।

माधव इन रहस्यमय बातों से सशंक हो गया। उसे भय हुआ कि यह लोग मेरे साथ कोई गहरी चाल चल रहे हैं। दृढ़ता के साथ अड़ कर बोला—और कौन सी फिक्र करूँ? गहने होते तो कहता, लाओ रख दूँ। यहाँ तो कच्चा सूत भी नहीं है। जब बदनाम हुए तो क्या दस क्या पचास के लिए दोनों एक ही बात है। यदि घर बेच कर मेरा नाम रह जाय, तो यहाँ तक तो स्वीकार है; परंतु घर भी बेचूँ और उस पर भी प्रतिष्ठा धूल में मिले, ऐसा मैं न करूँगा। केवल नाम का ध्यान है, नहीं एक बार नहीं कर जाऊँ तो मेरा कोई क्या करेगा। और सच पूछो तो मुझे अपने नाम की कोई चिंता नहीं है। मुझे कौन जानता है? संसार तो भैया को हँसेगा।

केदार का मुँह सूख गया। चम्पा भी चकरा गयी। वह बड़ी चतुर वाक्यनिपुण रमणी थी। उसे माधव जैसे गँवार से ऐसी दृढ़ता की आशा न थी ? उसकी ओर आदर से देख कर बोली—लालू, कभी-कभी तुम भी लड़कों की-सी बातें करते हो ? भला इस झोंपड़ी पर कौन सौ रुपये निकाल कर देगा ? तुम सवा सौ के बदले सौ ही दिलाओ, मैं आज ही अपना हिस्सा बेचती हूँ। उतना ही मेरा भी तो है ? घर पर तो तुमको वही चार बीस मिलेंगे। हाँ, और रुपयों का प्रबंध हम-आप कर देंगे। इज्जत हमारी- तुम्हारी एक ही है, वह न जाने पायेगी। वह रुपया अलग खाते में चढ़ा लिया जायेगा।

माधव की इच्छाएँ पूरी हुईं। उसने मैदान मार लिया। सोचने लगा, मुझे तो रुपयों से काम है। चाहे एक नहीं, दस खाते में चढ़ा लो। रहा मकान वह जीते जी नहीं छोड़ने का। प्रसन्न हो कर चला। उसके जाने के बाद केदार और चम्पा ने कपट-भेष त्याग दिया और बड़ी देर तक एक दूसरे को इस कड़े सौदे का दोषी सिद्ध करने की चेष्टा करते रहे। अंत में मन को इस तरह संतोष दिया की भोजन बहुत मधुर नहीं, किंतु भर-कठौत तो है। घर, हाँ देखेंगे कि श्यामा रानी इस घर में कैसे राज करती हैं।

केदार के दरवाज़े पर दो बैल खड़े हैं। इनमें कितनी संघ-शक्ति, कितनी मित्रता और

कितना प्रेम है। दोनों एक ही जुए में चलते हैं, बस इनमें इतना ही नाता है। किंतु अभी कुछ दिन हुए, जब इनमें से एक चम्पा के मैके मँगनी गया था, तो दूसरे ने तीन दिन तक नाद में मुँह नहीं डाला। परंतु शोक, एक गोद के खेले भाई, एक छाती से दूध पीने वाले आज इतने बेगाने हो रहे हैं कि एक घर में रहना भी नहीं चाहते।

4

प्रातःकाल था। केदार के द्वार पर गाँव के मुखिया और नंबरदार विराजमान थे। मुंशी दातादयाल अभिमान से चारपाई पर बैठे रेहन का मसविदा तैयार करने में लगे थे। बार-बार कलम बनाते और बार-बार खत रखते, पर खत की शान न सुधरती थी। केदार का मुखारविंद विकसित था और चम्पा फूली नहीं समाती थी। माधव कुम्हलाया और म्लान था।

मुखिया ने कहा—भाई ऐसा हित, न भाई ऐसा शत्रु। केदार ने छोटे भाई की लाज रख ली।

नम्बरदार ने अनुमोदन किया—भाई हो तो ऐसा हो।

मुख्तार ने कहा—भाइ, सपूतों का यही काम है।

दातादयाल ने पूछा—रेहन लिखने वाले का नाम ?

बड़े भाई बोले—माधव वल्द शिवदत्त।

'और लिखाने वाले का ?'

'केदार वल्द शिवदत्त।'

माधव ने बड़े भाई की ओर चकित हो कर देखा। आँखें डबडबा आयीं। केदार उसकी ओर देख न सका। नंबरदार, मुखिया और मुख्तार भी विस्मित हुए। क्या केदार खुद ही रुपया दे रहा है ? बातचीत तो किसी साहूकार की थी। जब घर ही में रुपया मौजूद है तो इस रेहननामे की आवश्यकता ही क्या थी ? भाई-भाई में इतना अविश्वास। अरे, राम ! राम! क्या माधव अस्सी रुपये का भी महँगा है। और यदि दबा ही बैठता, तो क्या रुपये पानी में चले जाते।

सभी की आँखें सैन द्वारा परस्पर बातें करने लगीं, मानो आश्चर्य की अथाह नदी में नौकाएँ डगमगाने लगीं।

श्यामा दरवाजे की चौखट पर खड़ी थी। वह सदा केदार की प्रतिष्ठा करती थी, परंतु आज केवल लोकरीति ने उसे अपने जेठ को आड़े हाथों लेने से रोका।

बूढ़ी अम्माँ ने सुना तो सूखी नदी उमड़ आयी। उसने एक बार आकाश की ओर देखा और माथा ठोंक लिया।

अब उसे उस दिन का स्मरण हो आया जब ऐसा ही सुहावना सुनहरा प्रभात था और दो प्यारे-प्यारे बच्चे उसकी गोद में बैठे हुए उछल-कूद कर दूध-रोटी खाते थे। उस समय माता के नेत्रों में कितना अभिमान था, हृदय में कितनी उमंग और कितना उत्साह।

परन्तु आज, आह ! आज नयनों में लज्जा है और हृदय में शोक-संताप। उसने पृथ्वी की ओर देख कर कातर स्वर में कहा—हे नारायण ! क्या ऐसे पुत्रों को मेरी ही

कोख में जन्म लेना था ?

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'जमाना', जनवरी, 1916 में प्रकाशित। उर्दू 'प्रेम बत्तीसी' में संकलित। हिन्दी-रूप 'दो भाई', 'लक्ष्मी', सितम्बर, 1918 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-7 में संकलित।]

शंखनाद

भानु चौधरी अपने गाँव के मुखिया थे। गाँव में उनका बड़ा मान था। दारोगा जी उन्हें टाट बिना जमीन पर न बैठने देते। मुखिया साहब की ऐसी धाक बँधी हुई थी कि उनकी मरजी बिना गाँव में एक पत्ता भी नहीं हिल सकता था। कोई घटना, चाहे वह सास-बहू का विवाद हो, चाहे मेंड़ या खेत का झगड़ा, चौधरी साहब के शासनाधिकार को पूर्णरूप से सचेत करने के लिए काफी थी, वह तुरंत घटनास्थल पर जा पहुँचते, तहकीकात होने लगती, गवाह और सबूत के सिवा किसी अभियोग को सफलता सहित चलाने में जिन बातों की जरूरत होती है, उन सब पर विचार होता और चौधरी जी के दरबार में फैसला हो जाता। किसी को अदालत जाने की जरूरत न पड़ती। हाँ इस कष्ट के लिए चौधरी साहब कुछ फीस जरूर लेते थे। यदि किसी अवसर पर फीस मिलने में असुविधा के कारण उन्हें धीरज से काम लेना पड़ता तो गाँव में आफ़त मच जाती थी; क्योंकि उनके धीरज और दारोगा जी के क्रोध में कोई घनिष्ठ संबंध था। सारांश यह कि चौधरी से उनके दोस्त-दुश्मन सभी चौकन्ने रहते थे।

2

चौधरी महाशय के तीन सुयोग्य पुत्र थे। बड़े लड़के बितान एक सुशिक्षित मनुष्य थे। डाकिये के रजिस्टर पर दस्तखत कर लेते थे। बड़े अनुभवी, बड़े मर्मज्ञ, बड़े नीति-कुशल। मिर्जई की जगह कमीज पहनते, कभी-कभी सिगरेट भी पीते, जिससे उनका गौरव बढ़ता था। यद्यपि उनके ये दुर्व्यसन बूढ़े चौधरी को नापसंद थे, पर बेचारे विवश थे; क्योंकि अदालत और कानून के मामले बितान के हाथों में थे। वह कानून का पुतला था। कानून की दफाएँ उसकी जवान पर रखी रहती थीं। गवाह गढ़ने में वह पूरा उस्ताद था। मझले लड़के शान चौधरी कृषि-विभाग के अधिकारी थे। बुद्धि के मंद; लेकिन शरीर से बड़े परिश्रमी। जहाँ घास न जमती हो, वहाँ केसर जमा दें। तीसरे लड़के का नाम गुमान था। वह बड़ा रसिक, साथ ही उद्दंड भी था। मुहर्रम में ढोल इतने जोरों से बजाता कि कान के पर्दे फट जाते। मछली फँसाने का बड़ा शौकीन था। बड़ा रँगीला जवान था। खँजड़ी बजा-बजाकर जब वह मीठे स्वर से ख्याल गाता, तो रंग जम जाता । उसे दंगल का ऐसा शौक था कि कोसों तक धावा मारता; पर घरवाले कुछ ऐसे शुष्क थे कि उसके इन व्यसनों से तनिक भी सहानुभूति न रखते थे। पिता और भाइयों ने तो उसे ऊसर खेत समझ रखा था। घुड़की-धमकी, शिक्षा और उपदेश, स्नेह और विनय, किसी का उस पर कुछ भी असर न हुआ। हाँ, भावजें अभी तक उसकी ओर से निराश न हुई थीं। वे अभी तक उसे कड़वी

दवाइयाँ पिलाये जाती थीं; पर आलस्य वह राज रोग है जिसका रोगी कभी नहीं सँभलता। ऐसा कोई बिरला ही दिन जाता होगा कि बाँके गुमान को भावजों के कटुवाक्य न सुनने पड़ते हों। ये विषैले शर कभी-कभी उसके कठोर हृदय में चुभ जाते; किन्तु यह घाव रात भर से अधिक न रहता। भोर होते ही थकान के साथ ही यह पीड़ा भी शांत हो जाती। तड़का हुआ, उसने हाथ-मुँह धोया, बंशी उठायी और तालाब की ओर चल खड़ा हुआ। भावजें फूलों की वर्षा किया करतीं; बूढ़े चौधरी पैंतरे बदलते रहते और भाई लोग तीखी निगाह से देखा करते, पर अपनी धुन का पूरा बाँका गुमान उन लोगों के बीच से इस तरह अकड़ता चला जाता, जैसे कोई मस्त हाथी कुत्तों के बीच से निकल जाता है। उसे सुमार्ग पर लाने के लिए क्या-क्या उपाय नहीं किये गये। बाप समझाता—बेटा ऐसी राह चलो जिसमें तुम्हें भी पैसे मिलें और गृहस्थी का भी निर्वाह हो। भाइयों के भरोसे कब तक रहोगे ? मैं पका आम हूं—आज टपक पड़ा या कल। फिर तुम्हारा निबाह कैसे होगा? भाई बात भी न पूछेंगे; भावजों का रंग देख रहे हो। तुम्हारे भी लड़के-बाले हैं, उनका भार कैसे सँभालोगे ? खेती में जी न लगे, कहो कांस्टिबिली में भरती करा दूँ ? बाँका गुमान खड़ा-खड़ा यह सब सुनता, लेकिन पत्थर का देवता था, कभी न पसीजता ! इन महाशय के अत्याचार का दंड उनकी स्त्री बेचारी को भोगना पड़ता था। मेहनत के घर के जितने काम होते, वे उसी के सिर थोपे जाते। उपले पाथती, कुएँ से पानी लाती, आटा पीसती और तिस पर भी जेठानियाँ सीधे मुँह बात न करतीं, वाक्य-बाणों से छेदा करतीं। एक बार जब वह पति से कई दिन रूठी रही, तो बाँके गुमान कुछ नर्म हुए। बाप से जा कर बोले—मुझे कोई दुकान खोलवा दीजिए। चौधरी ने परमात्मा को धन्यवाद दिया। फूले न समाये। कई सौ रुपये लगा कर कपड़े की दुकान खुलवा दी। गुमान के भाग जगे। तनजेब के चुन्नटदार कुरते बनवाये, मलमल का साफा धानी रंग में रँगवाया। सौदा बिके या न बिके, उसे लाभ ही होना था ! दुकान खुली हुई है, दस-पाँच गाढ़े मित्र जमे हुए हैं, चरस की दम और ख्याल की तानें उड़ रही हैं—

चल झटपट री, जमुना-तट री, खड़ो नटखट री।

इस तरह तीन महीने चैन से कटे। बाँके गुमान ने खूब दिल खोल कर अरमान निकाले, यहाँ तक कि सारी लागत लाभ हो गयी। टाट के टुकड़े के सिवा और कुछ न बचा। बूढ़े चौधरी कुएँ में गिरने चले, भावजों ने घोर आन्दोलन मचाया—अरे राम! हमारे बच्चे और हम चीथड़ों को तरसें, गाढ़े का एक कुरता भी नसीब न हो, और इतनी बड़ी दुकान इस निखट्टू का कफन बन गयी। अब कौन मुँह दिखायेगा ? कौन मुँह ले कर घर में पैर रखेगा ? किंतु बाँके गुमान के तेवर जरा भी मैले न हुए। वही मुँह लिये वह फिर घर आया और फिर वही पुरानी चाल चलने लगा। कानूनदाँ बितान उनके ये ठाट-बाट देख कर जल जाता। मैं सारे दिन पसीना बहाऊँ, मुझे नैनसुख का कुरता भी न मिले, यह अपाहिज सारे दिन चारपाई तोड़े और यों बन-ठन कर निकले? ऐसे वस्त्र तो शायद मुझे अपने ब्याह में भी न मिले होंगे। मीठे शान के हृदय में भी कुछ ऐसे ही विचार उठते थे। अंत में यह जलन न सही गयी, और अग्नि भड़की, तो एक दिन कानूनदाँ बितान की पत्नी गुमान के सारे कपड़े उठा लायी और उन पर मिट्टी का तेल उँड़ेल कर आग लगा दी। ज्वाला उठी, सारे कपड़े देखते-देखते जल कर राख हो गये। गुमान रोते थे। दोनों भाई खड़े तमाशा देखते थे।

बूढ़े चौधरी ने देखा, और सिर पीट लिया। यह द्वेषाग्नि है। घर को जला कर तब बुझेगी।

3

यह ज्वाला तो थोड़ी देर में शांत हो गयी, परंतु हृदय की आग ज्यों की त्यों दहकती रही। अंत में एक दिन बूढ़े चौधरी ने घर के सब मेम्बरों को एकत्र किया और इस गूढ़ विषय पर विचार करने लगे कि बेड़ा कैसे पार हो। बितान से बोले—बेटा, तुमने आज देखा कि बात की बात में सैकड़ों रुपयों पर पानी फिर गया। अब इस तरह निर्वाह होना असम्भव है। तुम समझदार हो, मुकदमे-मामले करते हो, कोई ऐसी राह निकालो कि घर डूबने से बचे। मैं तो यह चाहता था कि जब तक चोला रहे, सबको समेटे रहूँ, मगर भगवान् के मन में कुछ और ही है।

बितान की नीतिकुशलता अपनी चतुर सहगामिनी के सामने लुप्त हो जाती थी। वह अभी उसका उत्तर सोच ही रहे थे कि श्रीमती जी बोल उठीं—दादा जी ! अब समझाने-बुझाने से काम न चलेगा, सहते-सहते हमारा कलेजा पक गया। बेटे की जितनी पीर बाप को होगी, भाइयों को उतनी क्या, उसकी आधी भी नहीं हो सकती। मैं तो साफ कहती हूँ—गुमान का तुम्हारी कमाई में हक है, उन्हें कंचन के कौर खिलाओ और चाँदी के हिंडोले में झुलाओ। हममें न इतना बूता है, न इतना कलेजा। हम अपनी झोंपड़ी अलग बना लेंगे। हाँ, जो कुछ हमारा हो, वह हमको मिलना चाहिए। बाँट-बखरा कर दीजिए। बला से चार आदमी हँसेंगे, अब कहाँ तक दुनिया की लाज ढोवें ?

नीतिज्ञ बितान पर इस प्रबल वक्तृता का जो असर हुआ वह उनके विकसित और प्रमुदित चेहरे से झलक रहा था। उनमें स्वयं इतना साहस न था कि इस प्रस्ताव को इतनी स्पष्टता से व्यक्त कर सकते। नीतिज्ञ महाशय गंभीरता से बोले—जायदाद मुश्तरका, मन्कूला या गैरमन्कूला, आपके हीन-हयात तकसीम की जा सकती है, इसकी नजीरें मौजूद हैं। जमींदार को साकितुल-मिल्कियत करने का कोई इस्तहक़ाक़ नहीं है।

अब मंदबुद्धि शान की बारी आयी, पर बेचारा किसान, बैलों के पीछे आँखें बंद करके चलने वाला, ऐसे गूढ़ विषय पर कैसे मुँह खोलता। दुविधा में पड़ा हुआ था। तब उसकी सत्यवक्ता धर्मपत्नी ने अपनी जेठानी का अनुसरण कर यह कठिन कार्य सम्पन्न किया। बोली—बड़ी बहन ने जो कुछ कहा, उसके सिवा और दूसरा उपाय नहीं। कोई तो कलेजा तोड़-तोड़ कर कमाये मगर पैसे-पैसे को तरसे, तन ढाँकने को वस्त्र तक न मिले, और कोई सुख की नींद सोये, हाथ बढ़ा-बढ़ा के खाय ! ऐसी अंधेर नगरी में अब हमारा निबाह न होगा।

शान चौधरी ने भी इस प्रस्ताव का मुक्तकंठ से अनुमोदन किया। अब बूढ़े चौधरी गुमान से बोले—क्यों बेटा, तुम्हें भी यही मंजूर है ? अभी कुछ नहीं बिगड़ा। यह आग अब भी बुझ सकती है। काम सबको प्यारा है, चाम किसी को नहीं। बोलो, क्या कहते हो ? कुछ काम-धंधा करोगे या अभी आँखें नहीं खुलीं ?

गुमान में धैर्य की कमी न थी। बातों को इस कान से सुन कर उस कान से उड़ा देना उसका नित्य-कर्म था। किंतु भाइयों की इस जन-मुरीदी पर उसे क्रोध आ गया। बोला—भाइयों

की जो इच्छा है, वही मेरे मन में भी लगी हुई है। मैं भी इस जंजाल से भागना चाहता हूँ। मुझसे न मजूरी हुई, न होगी। जिसके भाग्य में चक्की पीसना बदा हो, वह पीसे ! मेरे भाग्य में चैन करना लिखा है, मैं क्यों अपना सिर ओखली में दूँ ? मैं तो किसी से काम करने को नहीं कहता। आप लोग क्यों मेरे पीछे पड़े हुए हैं। अपनी-अपनी फिक्र कीजिए। मुझे आध सेर आटे की कमी नहीं है।

इस तरह की सभाएँ कितनी ही बार हो चुकी थीं, परंतु इस देश की सामाजिक और राजनीतिक सभाओं की तरह इसमें भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता था। दो-तीन दिन गुमान ने घर पर खाना नहीं खाया। जतनसिंह ठाकुर शौकीन आदमी थे, उन्हीं की चौपाल में पड़ा रहता। अंत में बूढ़े चौधरी गये और मना के लाये। अब फिर वह पुरानी गाड़ी अड़ती, मचलती, हिलती चलने लगी।

4

पांडे के घर के चूहों की तरह, चौधरी के घर में बच्चे भी सयाने थे। उनके लिए घोड़े मिट्टी के घोड़े और नावें कागज की नावें थीं। फलों के विषय में उनका ज्ञान असीम था, गूलर और जंगली बेर के सिवा कोई ऐसा फल न था, जिसे वे बीमारियों का घर न समझते हों, लेकिन गुरदीन के खांचे में ऐसा प्रबल आकर्षण था कि उसकी ललकार सुनते ही उनका सारा ज्ञान व्यर्थ हो जाता था। साधारण बच्चों की तरह यदि सोते भी हों; तो चौंक पड़ते थे। गुरदीन उस गाँव में साप्ताहिक फेरे लगाता था। उसके शुभागमन की प्रतीक्षा और आकांक्षा में कितने ही बालकों को बिना किंडरगार्टन की रंगीन गोलियों के ही, संख्याएँ और दिनों के नाम याद हो गये थे। गुरदीन बूढ़ा-सा, मैला-कुचैला आदमी था; किंतु आस-पास में उसका नाम उपद्रवी लड़कों के लिए हनुमान-मंत्र से कम न था। उसकी आवाज सुनते ही उसके खोंचे पर लड़कों का ऐसा धावा होता कि मक्खियों की असंख्य सेना को भी रण-स्थल से भागना पड़ता था। और जहाँ बच्चों के लिए मिठाइयाँ थीं, वहाँ गुरदीन के पास माताओं के लिए इससे भी ज्यादा मीठी बातें थीं। माँ कितना ही मना करती रहे, बार-बार पैसा न रहने का बहाना करे पर गुरदीन चटपट मिठाइयों का दोना बच्चों के हाथ में रख ही देता और स्नेह-पूर्ण भाव से कहता—बहू जी, पैसों की कोई चिन्ता न करो, फिर मिलते रहेंगे, कहीं भागे थोड़े ही जाते हैं। नारायण ने तुमको बच्चे दिये हैं, तो मुझे भी उनकी न्योछावर मिल जाती है, उन्हीं की बदौलत मेरे बाल-बच्चे भी जीते हैं। अभी क्या, ईश्वर इनका मौर तो दिखावे, फिर देखना कैसा ठनगन करता हूँ।

गुरदीन का यह व्यवहार चाहे वाणिज्य-नियमों के प्रतिकूल ही क्यों न हो, चाहे 'नौ नगद सही, तेरह उधार नहीं' वाली कहावत अनुभव-सिद्ध ही क्यों न हो, किंतु मिष्टभाषी गुरदीन को कभी अपने इस व्यवहार पर पछताने या उसमें संशोधन करने की जरूरत नहीं हुई।

मंगल का शुभ दिन था। बच्चे बड़ी बेचैनी से अपने दरवाजों पर खड़े गुरदीन की राह देख रहे थे। कई उत्साही लड़के पेड़ों पर चढ़ गये और कोई-कोई अनुराग से विवश हो कर गाँव के बाहर निकल गये थे। सूर्य भगवान् अपना सुनहला थाल लिए पूरब से पश्चिम जा

पहुँचे थे, इतने में ही गुरदीन आता हुआ दिखायी दिया। लड़कों ने दौड़कर उसका दामन पकड़ा और आपस में खींचातानी होने लगी। कोई कहता था मेरे घर चलो; कोई अपने घर का न्योता देता था। सबसे पहले भानु चौधरी का मकान पड़ा। गुरदीन ने अपना खोंचा उतार दिया। मिठाइयों की लूट शुरू हो गयी। बालकों और स्त्रियों का ठट्ठ लग गया। हर्ष और विषाद, संतोष और लोभ, ईर्ष्या और क्षोभ, द्वेष और जलन की नाट्यशाला सज गयी। कानूनदाँ बितान की पत्नी अपने तीनों लड़कों को लिये हुए निकली। शान की पत्नी भी अपने दोनों लड़कों के साथ उपस्थित हुई। गुरदीन ने मीठी बातें करनी शुरू कीं। पैसे झोली में रखे, धेले की मिठाई दी और धेले का आशीर्वाद। लड़के दोने लिए उछलते-कूदते घर में दाखिल हुए। अगर सारे गाँव में कोई ऐसा बालक था जिसने गुरदीन की उदारता से लाभ न उठाया हो, तो वह बाँके गुमान का लड़का धान था।

यह कठिन था कि बालक धान अपने भाइयों-बहनों को हँस-हँस और उछल- उछल कर मिठाइयाँ खाते देख कर सब्र कर जाय ! उस पर तुर्रा यह कि वे उसे मिठाइयाँ दिखा-दिखा कर ललचाते और चिढ़ाते थे। बेचारा धान चीखता और अपनी माता का आँचल पकड़-पकड़ कर दरवाजे की तरफ खींचता था; पर वह अबला क्या करे। उसका हृदय बच्चे के लिए ऐंठ-ऐंठ कर रह जाता था। उसके पास एक पैसा भी नहीं था। अपने दुर्भाग्य पर, जेठानियों की निष्ठुरता पर और सबसे ज्यादा अपने पति के निखट्टूपन पर कुढ़-कुढ़ कर रह जाती थी। अपना आदमी ऐसा निकम्मा न होता, तो क्यों दूसरों का मुँह देखना पड़ता, क्यों दूसरों के धक्के खाने पड़ते ? उसने धान को गोद में उठा लिया और प्यार से दिलासा देने लगी—बेटा, रोओ मत, अबकी गुरदीन आवेगा तो तुम्हें बहुत-सी मिठाई ले दूँगी, मैं इससे अच्छी मिठाई बाजार से मँगवा दूँगी, तुम कितनी मिठाई खाओगे ! यह कहते-कहते उसकी आँखे भर आयीं। आह ! यह मनहूस मंगल आज ही फिर आवेगा; और फिर ये ही बहाने करने पड़ेंगे ! हाय, अपना प्यारा बच्चा धेले की मिठाई को तरसे और घर में किसी का पत्थर-सा कलेजा न पसीजे! वह बेचारी तो इन चिंताओं में डूबी हुई थी और धान किसी तरह चुप ही न होता था। जब कुछ वश न चला, तो माँ की गोद से जमीन पर उतर कर लोटने लगा और रो-रो कर दुनिया सिर पर उठा ली। माँ ने बहुत बहलाया, फुसलाया, यहाँ तक कि उसे बच्चे के इस हठ पर क्रोध भी आ गया। मानव हृदय के रहस्य कभी समझ में नहीं आते। कहाँ तो बच्चे को प्यार से चिपटाती थी, ऐसी झल्लायी कि उसे दो-तीन थप्पड़ जोर से लगाये और घुड़क कर बोली—चुप रह अभागे ! तेरा मुँह ही मिठाई खाने का है ? अपने दिन को नहीं रोता, मिठाई खाने चला है।

बाँका गुमान अपनी कोठरी के द्वार पर बैठा हुआ यह कौतुक बड़े ध्यान से देख रहा था। वह इस बच्चे का बहुत चाहता था। इस वक्त के थप्पड़ उसके हृदय में तेज भाले के समान लगे और चुभ गये। शायद उनका अभिप्राय भी यही था। धुनिया रुई को धुनने के लिए ताँत पर चोट लगाता है।

जिस तरह पत्थर और पानी में आग छिपी रहती है, उसी तरह मनुष्य के हृदय में भी, चाहे वह कैसा ही क्रूर और कठोर क्यों न हो, उत्कृष्ट और कोमल भाव छिपे रहते हैं। गुमान की आँखें भर आयीं। आँसू की बूँदें बहुधा हमारे हृदय की मलिनता को उज्ज्वल कर देती

हैं। गुमान सचेत हो गया। उसने जा कर बच्चे को गोद में उठा लिया और अपनी पत्नी से करुणोत्पादक स्वर में बोला—बच्चे पर इतना क्रोध क्यों करती हो ? तुम्हारा दोषी मैं हूँ, मुझको जो दंड चाहो, दो। परमात्मा ने चाहा तो कल से लोग इस घर में मेरा और मेरे बाल-बच्चों का भी आदर करेंगे। तुमने आज मुझे सदा के लिए इस तरह जगा दिया, मानों मेरे कानों में शंखनाद कर मुझे कर्म-पथ में प्रवेश का उपदेश दिया हो।

[हिन्दी कहानी। 'प्रभा', माघ, 1972 विक्रमी संवत् में प्रकाशित। तदनुसार प्रकाशन तिथि फरवरी, 1916 'मानसरोवर' भाग-7 में संकलित। उर्दू रूप 'बांगे-सहर' शीर्षक से प्रेम बत्तीसी (अगस्त, 1920) में संकलित।]

सज्जनता का दंड

साधारण मनुष्य की तरह शाहजहाँपुर के डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर सरदार शिव सिंह में भी भलाइयाँ और बुराइयाँ दोनों ही वर्तमान थीं। भलाई यह थी कि उनके यहाँ न्याय और दया में कोई अंतर न था। बुराई यह थी कि वे सर्वथा निर्लोभ और निःस्वार्थ थे। भलाई ने मातहतों को निडर और आलसी बना दिया था, बुराई के कारण उस विभाग के सभी अधिकारी उनकी जान के दुश्मन बन गये थे।

प्रातःकाल का समय था। वे किसी पुल की निगरानी के लिए तैयार खड़े थे। मगर साईस अभी तक मीठी नींद ले रहा था। रात को उसे अच्छी तरह सहेज दिया था कि पौ फटने के पहले गाड़ी तैयार कर लेना। लेकिन सुबह भी हुई, सूर्य भगवान् ने दर्शन भी दिये, शीतल किरणों में गरमी भी आयी, पर साईस की नींद अभी तक नहीं टूटी।

सरदार साहब खड़े-खड़े थक कर एक कुर्सी पर बैठ गये। साईस तो किसी तरह जागा, परंतु अर्दली के चपरासियों का पता नहीं। जो महाशय डाक लेने गये थे वे एक ठाकुरद्वारा में खड़े चरणामृत की परीक्षा कर रहे थे। जो ठेकेदार को बुलाने गये थे वे बाबा रामदास की सेवा में बैठे गाँजे का दम लगा रहे थे।

धूप तेज होती जाती थी। सरदार साहब झुँझला कर मकान में चले गये और अपनी पत्नी से बोले, इतना दिन चढ़ आया, अभी तक एक चपरासी का भी पता नहीं। इसके मारे तो मेरे नाक में दम आ गया है।

पत्नी ने दीवार की ओर देख कर दीवार से कहा, यह सब उन्हें सिर चढ़ाने का फल है।

सरदार साहब चिढ़ कर बोले, क्या करूँ, उन्हें फाँसी दे दूँ ?

2

सरदार साहब के पास मोटरकार का तो कहना ही क्या, कोई फिटन भी न थी। वे अपने इक्के से ही प्रसन्न थे, जिसे उनके नौकर-चाकर अपनी भाषा में उड़नखटोला कहते थे।

शहर के लोग उसे इतना आदर-सूचक नाम न देकर छकड़ा कहना ही उचित समझते थे। इस तरह सरदार साहब अन्य व्यवहारों में भी बड़े मितव्ययी थे। उनके दो भाई इलाहाबाद में पढ़ते थे। विधवा माता बनारस में रहती थीं। एक विधवा बहिन भी उन्हीं पर अवलम्बित थी। इनके सिवा कई गरीब लड़कों को छात्रवृत्तियाँ भी देते थे। इन्हीं कारणों से वे सदा खाली हाथ रहते ! यहाँ तक कि उनके कपड़ों पर भी इस आर्थिक दशा के चिह्न दिखायी देते थे ! लेकिन यह सब कष्ट सह कर भी वे लोभ को अपने पास फटकने न देते थे ! जिन लोगों पर उनका स्नेह था वे उनकी सज्जनता को सराहते थे और उन्हें देवता समझते थे। उनकी सज्जनता से उन्हें कोई हानि न होती थी, लेकिन जिन लोगों से उनके व्यावसायिक सम्बन्ध थे वे उनके सद्भावों के ग्राहक न थे, क्योंकि उन्हें हानि होती थी। यहाँ तक कि उन्हें अपनी सहधर्मिणी से भी कभी-कभी अप्रिय बातें सुननी पड़ती थीं।

एक दिन वे दफ्तर से आये तो उनकी पत्नी ने स्नेहपूर्ण ढंग से कहा, तुम्हारी यह सज्जनता किस काम की, जब सारा संसार तुमको बुरा कह रहा है।

सरदार साहब ने दृढ़ता से जवाब दिया, संसार जो चाहे कहे परमात्मा तो देखता है।

रामा ने यह जवाब पहले ही सोच लिया। वह बोली, मैं तुमसे विवाद तो करती नहीं, मगर ज़रा अपने दिल में विचार करके देखो कि तुम्हारी इस सचाई का दूसरों पर क्या असर पड़ता है ? तुम तो अच्छा वेतन पाते हो। तुम अगर हाथ न बढ़ाओ तो तुम्हारा निर्वाह हो सकता है ? रूखी रोटियाँ मिल ही जायँगी मगर ये दस-दस पाँच-पाँच रुपये के चपरासी, मुहर्रिर, दफ्तरी बेचारे कैसे गुजर करें। उनके भी बाल-बच्चे हैं। उनके भी कुटुम्ब-परिवार हैं। शादी-गमी, तिथि-त्योहार यह सब उनके पास लगे हुए हैं। भलमनसी का भेष बनाये काम नहीं चलता। बताओ उनका गुजर कैसे हो ? अभी रामदीन चपरासी की घरवाली आयी थी। रोते-रोते आँचल भीगता था। लड़की सयानी हो गयी है। अब उसका ब्याह करना पड़ेगा। ब्राह्मण की जाति—हजारों का खर्च। बताओ उसके आँसू किसके सिर पड़ेंगे?

ये सब बातें सच थीं। इनसे सरदार साहब को इनकार नहीं हो सकता था। उन्होंने स्वयं इस विषय में बहुत कुछ विचार किया था। यही कारण था कि वह अपने मातहतों के साथ बड़ी नरमी का व्यवहार करते थे। लेकिन सरलता और शालीनता का आत्मिक गौरव चाहे जो हो, उनका आर्थिक मोल बहुत कम है। वे बोले, तुम्हारी बातें सब यथार्थ हैं, किंतु मैं विवश हूँ। अपने नियमों को कैसे तोड़ूँ ? यदि मेरा वश चले तो मैं उन लोगों का वेतन बढ़ा दूँ। लेकिन यह नहीं हो सकता कि मैं खुद लूट मचाऊँ और उन्हें लूटने दूँ।

रामा ने व्यंग्यपूर्ण शब्दों में कहा, तो यह हत्या किस पर पड़ेगी ?

सरदार साहब ने तीव्र हो कर उत्तर दिया, यह उन लोगों पर पड़ेगी जो अपनी हैसियत और आमदनी से अधिक खर्च करना चाहते हैं। अरदली बनकर क्यों वकील के लड़के से लड़की ब्याहने को ठानते हैं। दफ्तरी को यदि टहलुवे की जरूरत हो तो यह किसी पाप कार्य से कम नहीं। मेरे साईस की स्त्री अगर चाँदी की सिल गले में डालना चाहे तो यह उसकी मूर्खता है। इस झूठी बड़ाई का उत्तरदाता मैं नहीं हो सकता।

3

इंजीनियरों का ठेकेदारों से कुछ ऐसा ही सम्बन्ध है जैसे मधु-मक्खियों का फूलों से। अगर वे अपने नियत भाग से अधिक पाने की चेष्टा न करें तो उनसे किसी को शिकायत नहीं हो सकती। यह मधु-रस कमीशन कहलाता है। रिश्वत लोक और परलोक दोनों का ही सर्वनाश कर देती है। उसमें भय है, चोरी है, बदमाशी है। मगर कमीशन एक मनोहर वाटिका है, जहाँ न मनुष्य का डर है, न परमात्मा का भय, यहाँ तक कि वहाँ आत्मा की छिपी हुई चुटकियों का भी गुजर नहीं है। और कहाँ तक कहें उसकी ओर बदनामी आँख भी नहीं उठा सकती। यह वह बलिदान है जो हत्या होते हुए भी धर्म का एक अंश है। ऐसी अवस्था में यदि सरदार शिवसिंह अपने उज्ज्वल चरित्र को इस धब्बे से साफ रखते थे और उस पर अभिमान करते थे तो क्षमा के पात्र थे।

मार्च का महीना बीत रहा था। चीफ इंजीनियर साहब जिले में मुआयना करने आ रहे थे। मगर अभी तक इमारतों का काम अपूर्ण था। सड़कें खराब हो रही थीं, ठेकेदारों ने मिट्टी और कंकड़ भी नहीं जमा किये थे।

सरदार साहब रोज ठेकेदारों को ताकीद करते थे, मगर इसका कुछ फल न होता था।

एक दिन उन्होंने सबको बुलाया। वे कहने लगे, तुम लोग क्या यही चाहते हो कि मैं इस जिले से बदनाम होकर जाऊँ। मैंने तुम्हारे साथ कोई बुरा सलूक नहीं किया। मैं चाहता तो आपसे काम छीन कर खुद करा लेता, मगर मैंने आपको हानि पहुँचाना उचित न समझा। उसकी मुझे यह सजा मिल रही है। खैर !

ठेकेदार लोग यहाँ से चले तो बातें होने लगीं। मिस्टर गोपाल दास बोले, अब आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा।

शाहबाज़ खाँ ने कहा, किसी तरह इसका जनाजा निकले तो यहाँ से...

सेठ चुन्नीलाल ने फरमाया, इंजीनियर से मेरी जान-पहचान है मैं उनके साथ काम कर चुका हूँ। वह उन्हें खूब लथेड़ेगा।

इस पर बूढ़े हरिदास ने उपदेश दिया, यारों स्वार्थ की बात है। नहीं तो सच यह है कि यह मनुष्य नहीं, देवता है। भला और नहीं तो साल भर में कमीशन के दस हजार तो होते होंगे। इतने रुपयों को ठीकरे की तरह तुच्छ समझना क्या कोई सहज बात है ? एक हम हैं कि कौड़ियों के पीछे ईमान बेचते फिरते हैं। जो सज्जन पुरुष हमसे एक पाई का रवादार न हो, सब प्रकार के कष्ट उठा कर भी जिसकी नीयत डावाँडोल न हो, उसके साथ ऐसा नीच और कुटिल बर्ताव करना पड़ता है। इसे अपने अभाग्य के सिवा और क्या समझें।

शाहबाज़ खाँ ने फरमाया—हाँ; इसमें तो कोई शक नहीं कि यह शख्स नेकी का फरिश्ता है।

सेठ चुन्नीलाल ने गम्भीरता से कहा, खाँ साहब ! बात तो वही है, जो तुम कहते हो। लेकिन किया क्या जाय ? नेकनीयती से तो काम नहीं चलता। यह दुनिया तो छल-कपट की है।

मिस्टर गोपालदास बी. ए. पास थे। वे गर्व के साथ बोले, इन्हें जब इस तरह रहना

था तो नौकरी करने की क्या जरूरत थी ? यह कौन नहीं जानता की नीयत को साफ रखना अच्छी बात है। मगर यह भी तो देखना चाहिए कि इसका दूसरों पर क्या असर पड़ता है। हमको तो ऐसा आदमी चाहिए जो खुद खाये और हमें भी खिलावे। खुद हलुवा खाय, हमें रूखी रोटियाँ ही खिलावे। वह अगर एक रुपया कमीशन लेगा तो उसकी जगह पाँच का फायदा कर देगा। इन महाशय के यहाँ क्या है ? इसीलिए आप जो चाहें कहें, मेरी तो कभी इनसे निभ नहीं सकती।

शाहबाज़ खाँ बोले, हाँ, नेक और पाक-साफ रहना जरूर अच्छी चीज है, मगर ऐसी नेकी ही से क्या जो दूसरों की जान ले ले।

बूढ़े हरिदास की बातों की जिन लोगों ने पुष्टि की थी वे सब गोपालदास की हाँ में हाँ मिलाने लगे ! निर्बल आत्माओं में सचाई का प्रकाश जुगनू की चमक है।

4

सरदार साहब के एक पुत्री थी। उसका विवाह मेरठ के एक वकील के लड़के से ठहरा था। लड़का होनहार था। जाति कुल का ऊँचा था। सरदार साहब ने कई महीने की दौड़-धूप में इस विवाह को तै किया था। और सब बातें तै हो चुकी थीं, केवल दहेज का निर्णय नही हुआ था। आज वकील साहब का एक पत्र आया। उसने इस बात का भी निश्चय कर दिया, मगर विश्वास, आशा और वचन के बिलकुल प्रतिकूल। पहले वकील साहब ने एक जिले के इंजीनियर के साथ किसी प्रकार का ठहराव व्यर्थ समझा। वड़ी सस्ती उदारता प्रकट की। इस लज्जित और घृणित व्यवहार पर खूब आँसू वहाये। मगर जब ज्यादा पूछताछ करने पर सरदार साहब के धन-वैभव का भेद खुल गया तब दहेज का ठहराना आवश्यक हो गया। सरदार साहब ने आशंकित हाथों से पत्र खोला, पाँच हजार रुपये से कम पर विवाह नहीं हो सकता। वकील साहब को बहुत खेद और लज्जा थी कि वे इस विषय में स्पष्ट होने पर मजबूर किये गये। मगर वे अपने खानदान के कई बूढ़े खुर्राट, विचारहीन, स्वार्थांध महात्माओं के हाथों बहुत तंग थे। उनका कोई वंश न था। इंजीनियर साहब ने एक लम्बी साँस खींची—सारी आशाएँ मिट्टी में मिल गयीं। क्या सोचते थे, क्या हो गया। विकल हो कर कमरे में टहलने लगे।

उन्होंने जरा देर पीछे पत्र को उठा लिया और अंदर चले गये। विचारा कि यह पत्र रामा को सुनावें, मगर फिर खयाल आया कि यहाँ सहानुभूति की कोई आशा नहीं। क्यों अपनी निर्बलता दिखाऊँ ? क्यों मूर्ख बनूँ ? वह विना बातों के बात न करेगी। यह सोच कर वे आँगन से लौट गये।

सरदार साहब स्वभाव के बड़े दयालु थे और कोमल हृदय आपत्तियों में स्थिर नहीं रह सकता। वे दुःख और ग्लानि से भरे हुए सोच रहे थे कि मैंने ऐसे कौन से बुरे काम किये हैं जिनका मुझे यह फल मिल रहा है। बरसों की दौड़-धूप के बाद जो कार्य सिद्ध हुआ था वह क्षण मात्र में नष्ट हो गया। अब वह मेरी सामर्थ्य से बाहर है। मैं उसे नहीं संभाल सकता। चारों ओर अंधकार है। कहीं आशा का प्रकाश नहीं। कोई मेरा सहायक नहीं। उनके नेत्र सजल हो गये।

सामने मेज पर ठेकेदारों के बिल रखे हुए थे। वे कई सप्ताहों से यों ही पड़े थे। सरदार ने उन्हें खोल कर भी न देखा था। आज इस आत्मिक ग्लानि और नैराश्य की अवस्था में उन्होंने इन बिलों को सतृष्ण आँखों से देखा। जरा से इशारे पर ये सारी कठिनाइयाँ दूर हो सकती हैं। चपरासी और क्लर्क केवल मेरी सम्मति के सहारे सब कुछ कर लेंगे। मुझे जबान हिलाने की भी जरूरत नहीं। न मुझे लज्जित ही होना पड़ेगा। इन विचारों का इतना प्राबल्य हुआ कि वे वास्तव में बिलों को उठा कर गौर से देखने और हिसाब लगाने लगे कि उनमें कितनी निकासी हो सकती है।

मगर शीघ्र ही आत्मा ने उन्हें जगा दिया—आह ! मैं किस भ्रम में पड़ा हुआ हूँ ? क्या उस आत्मिक पवित्रता को, जो मेरी जन्म-भर की कमाई है, केवल थोड़े से धन पर अर्पण कर दूँ ? जो मैं अपने सहकारियों के सामने गर्व से सिर उठाये चलता था, जिससे मोटरकार वाले भ्रातृगण आँखें नहीं मिला सकते थे, वही मैं आज अपने उस सारे गौरव और मान को, अपनी सम्पूर्ण आत्मिक सम्पत्ति को दस-पाँच हजार रुपयों पर त्याग दूँ। ऐसा कदापि नहीं हो सकता।

अब उस कुविचार को परास्त करने के लिए, जिसने क्षणमात्र के लिए उन पर विजय पा ली थी, वे उस सुनसान कमरे में जोर से ठठा कर हँसे। चाहे यह हँसी उन बिलों ने और कमरे की दीवारों ने न सुनी हों, मगर उनकी आत्मा ने अवश्य सुनी। उस आत्मा को एक कठिन परीक्षा में पार पाने पर परम आनंद हुआ।

सरदार साहब ने उन बिलों को उठा कर मेज के नीचे डाल दिया। फिर उन्हें पैरों से कुचला। तब इस विजय पर मुस्कराते हुए वे अन्दर गये।

5

बड़े इंजीनियर साहब नियत समय पर शाहजहाँपुर आये। उसके साथ सरदार साहब का दुर्भाग्य भी आया। जिले के सारे काम अधूरे पड़े हुए थे। उनके खानसामा ने कहा, हुजूर ! काम कैसे पूरा हो ? सरदार साहब ठेकेदारों को बहुत तंग करते हैं। हेडक्लर्क ने दफ्तर के हिसाब को भ्रम और भूलों से भरा हुआ पाया। उन्हें सरदार साहब की तरफ से न कोई दावत दी गयी न कोई भेंट। तो क्या वे सरदार साहब के नातेदार थे जो गलतियाँ न निकालते।

जिले के ठेकेदारों ने एक बहुमूल्य डाली सजायी और उसे बड़े इंजीनियर साहब की सेवा में ले कर हाजिर हुए। वे बोले, हुजूर ! चाहे गुलामों को गोली मार दें, मगर सरदार साहब का अन्याय अब नहीं सहा जाता। कहने को तो कमीशन नहीं लेते मगर सच पूछिए तो जान ले लेते हैं।

चीफ इंजीनियर साहब ने मुआइने की किताब में लिखा, "सरदार शिवसिंह बहुत ईमानदार आदमी हैं। उनका चरित्र उज्ज्वल है, मगर वे इतने बड़े जिले के कार्य का भार नहीं संभाल सकते।"

परिणाम यह हुआ कि वे एक छोटे से जिले में भेज दिये गये और उनका दरजा भी घटा दिया गया।

सरदार साहब के मित्रों और स्नेहियों ने बड़े समारोह से एक जलसा किया। उसमें उनकी धर्मनिष्ठा और स्वतंत्रता की प्रशंसा की। सभापति ने सजलनेत्र हो कर कम्पित स्वर में कहा, सरदार साहब के वियोग का दुःख हमारे दिल में सदा खटकता रहेगा। यह घाव कभी न भरेगा।

मगर 'फेयरबेल डिनर' में यह बात सिद्ध हो गयी कि स्वादिष्ट पदार्थों के सामने वियोग का दुःख दुस्सह नहीं।

यात्रा के सामान तैयार थे। सरदार साहब जलसे से आये तो रामा ने उन्हें बहुत उदास और मलिनमुख देखा। उसने बार-बार कहा था कि बड़े इंजीनियर के खानसामा को इनाम दो, हेड क्लर्क की दावत करो; मगर सरदार साहब ने उसकी बात न मानी थी। इसलिए जब उसने सुना कि उनका दरजा घटा और बदली भी हुई तब उसने बड़ी निर्दयता से अपने व्यंग्य-बाण चलाये। मगर इस वक्त उन्हें उदास देख कर उससे न रहा गया। बोली, क्यों इतने उदास हो ? सरदार साहब ने उत्तर दिया, क्या करूँ हँसूँ? रामा ने गम्भीर स्वर से कहा, हँसना ही चाहिए। रोये तो वह जिसने कौड़ियों पर अपनी आत्मा भ्रष्ट की हो—जिसने रुपयों पर अपना धर्म बेचा हो। यह बुराई का दंड नहीं है। यह भलाई और सज्जनता का दंड है, इसे सानन्द झेलना चाहिए।

यह कह उसने पति की ओर देखा तो नेत्रों में सच्चा अनुराग भरा हुआ दिखायी दिया। सरदार साहब ने भी उसकी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखा। उनकी हृदयेश्वरी का मुखारविंद सच्चे आमोद से विकसित था। उसे गले लगा कर वे बोले, रामा ! मुझे तुम्हारी ही सहानुभूति की जरूरत थी, अब मैं इस दंड को सहर्ष सहूँगा।

[हिन्दी कहानी। 'सरस्वती', मार्च 1916 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-8 मे संकलित। नवम्बर, 1916 में उर्दू में किसी अज्ञात पत्रिका में 'नेकी की सजा' नाम से प्रकाशित।]

पंच-परमेश्वर

जुम्मन शेख और अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी। साझे में खेती होती थी। कुछ लेन-देन में भी साझा था। एक को दूसरे पर अटल विश्वास था। जुम्मन जब हज करने गये थे, तब अपना घर अलगू को सौंप गये थे, और अलगू जब कभी बाहर जाते, तो जुम्मन पर अपना घर छोड़ देते थे। उनमें न खान-पान का व्यवहार था, न धर्म का नाता; केवल विचार मिलते थे। मित्रता का मूलमंत्र भी यही है।

इस मित्रता का जन्म उसी समय हुआ, जब दोनों मित्र बालक ही थे; और जुम्मन के पूज्य पिता, जुमराती, उन्हें शिक्षा प्रदान करते थे। अलगू ने गुरु जी की बहुत सेवा की थी, खूब रकाबियाँ माँजी, खूब प्याले धोये। उनका हुक्का एक क्षण के लिए भी विश्राम न लेने पाता था; क्योंकि प्रत्येक चिलम अलगू को आध घंटे तक किताबों से अलग कर देती थी। अलगू के पिता पुराने विचारों के मनुष्य थे। उन्हें शिक्षा की अपेक्षा गुरु की सेवा-शुश्रूषा पर अधिक विश्वास था। वह कहते थे कि विद्या पढ़ने से नहीं आती; जो कुछ

होता है, गुरु के आशीर्वाद से। बस, गुरु जी की कृपा-दृष्टि चाहिए। अतएव यदि अलगू पर जुमराती शेख के आशीर्वाद अथवा सत्संग का कुछ फल न हुआ, तो यह मानकर संतोष कर लेगा कि विद्योपार्जन में मैंने यथाशक्ति कोई बात उठा नहीं रखी, विद्या उसके भाग्य ही में न थी, तो कैसे आती ?

मगर जुमराती शेख स्वयं आशीर्वाद के कायल न थे। उन्हें अपने सोटे पर अधिक भरोसा था, और उसी सोटे के प्रताप से आज आस-पास के गाँवों में जुम्मन की पूजा होती थी। उनके लिखे हुए रेहननामे या बैनामे पर कचहरी का मुहर्रिर भी कलम न उठा सकता था। हल्के का डाकिया, कांस्टेबिल और तहसील का चपरासी—सब उनकी कृपा की आकांक्षा रखते थे। अतएव अलगू का मान उनके धन के कारण था, तो जुम्मन शेख अपनी अनमोल विद्या से ही सबके आदरपात्र बने थे।

2

जुम्मन शेख की एक बूढ़ी खाला (मौसी) थी। उसके पास कुछ थोड़ी-सी मिलकियत थी; परन्तु उसके निकट संबंधियों में कोई न था। जुम्मन ने लम्बे-चौड़े वादे करके वह मिलकियत अपने नाम लिखवा ली थी। जब तक दानपत्र की रजिस्ट्री न हुई थी, तब तक खालाजान का खूब आदर-सत्कार किया गया। उन्हें खूब स्वादिष्ट पदार्थ खिलाये गये। हलवे-पुलाव की वर्षा-सी की गयी; पर रजिस्ट्री की मोहर ने इन खातिरदारियों पर भी मानो मुहर लगा दी। जुम्मन की पत्नी करीमन रोटियों के साथ कड़वी बातों के कुछ तेज, तीखे सालन भी देने लगी। जुम्मन शेख भी निठुर हो गये। अब बेचारी खालाजान को प्रायः नित्य ही ऐसी बातें सुननी पड़ती थीं।

बुढ़िया न जाने कब तक जियेगी। दो-तीन बीघे ऊसर क्या दे दिया, मानो मोल ले लिया है ! बघारी दाल के बिना रोटियाँ नहीं उतरतीं ! जितना रुपया इसके पेट में झोंक चुके, उतने से तो अब तक गाँव मोल ले लेते।

कुछ दिन खालाजान ने सुना और सहा; पर जब न सहा गया तब जुम्मन से शिकायत की। जुम्मन ने स्थानीय कर्मचारी—गृहस्वामी—के प्रबंध में दखल देना उचित न समझा। कुछ दिन तक और यों ही रो-धोकर काम चलता रहा। अंत में एक दिन खाला ने जुम्मन से कहा—बेटा ! तुम्हारे साथ मेरा निर्वाह न होगा। तुम मुझे रुपये दे दिया करो, मैं अपना पका खा लूँगी।

जुम्मन ने धृष्टता के साथ उत्तर दिया—रुपये क्या यहाँ फलते हैं ?

खाला ने नम्रता से कहा—मुझे कुछ रूखा-सूखा चाहिए भी कि नहीं ?

जुम्मन ने गम्भीर स्वर से जवाब दिया—तो कोई यह थोड़े ही समझा था कि तुम मौत से लड़कर आयी हो ?

खाला बिगड़ गयीं, उन्होंने पंचायत करने की धमकी दी। जुम्मन हँसे, जिस तरह कोई शिकारी हिरन को जाल की तरफ जाते देख कर मन ही मन हँसता है। वह बोले— हाँ, जरूर पंचायत करो। फैसला हो जाय। मुझे भी यह रात-दिन की खटखट पसंद नहीं।

पंचायत में किसकी जीत होगी, इस विषय में जुम्मन को कुछ भी संदेह न था।

आस-पास के गाँवों में ऐसा कौन था, जो उसके अनुग्रहों का ऋणी न हो; ऐसा कौन था, जो उसको शत्रु बनाने का साहस कर सके ? किसमें इतना बल था, जो उसका सामना कर सके ? आसमान के फरिश्ते तो पंचायत करने आवेंगे ही नहीं।

3

इसके बाद कई दिन तक बूढ़ी खाला हाथ में एक लकड़ी लिये आस-पास के गाँवों में दौड़ती रहीं। कमर झुक कर कमान हो गयी थी। एक-एक पग चलना दूभर था; मगर बात आ पड़ी थी। उसका निर्णय करना जरूरी था।

बिरला ही कोई भला आदमी होगा, जिसके सामने बुढ़िया ने दुःख के आँसू न बहाये हों। किसी ने तो यों ही ऊपरी मन से हूँ-हाँ करके टाल दिया, और किसी ने इस अन्याय पर जमाने को गालियाँ दीं ! कहा—कब्र में पाँव लटके हुए हैं, आज मरे कल दूसरा दिन; पर हवस नहीं मानती। अब तुम्हें क्या चाहिए ? रोटी खाओ और अल्लाह का नाम लो। तुम्हें अब खेती-बारी से क्या काम है ? कुछ ऐसे सज्जन भी थे, जिन्हें हास्य-रस के रसास्वादन का अच्छा अवसर मिला। झुकी हुई कमर, पोपला मुँह, सन के-से बाल इतनी सामग्री एकत्र हों, तब हँसी क्यों न आवे ? ऐसे न्यायप्रिय, दयालु, दीन-वत्सल पुरुष बहुत कम थे, जिन्होंने उस अबला के दुखड़े को गौर से सुना हो और उसको सांत्वना दी हो। चारों ओर से घूम-घाम कर बेचारी अलगू चौधरी के पास आयी। लाठी पटक दी और दम ले कर बोली—बेटा, तुम भी दम-भर के लिये मेरी पंचायत में चले आना।

अलगू—मुझे बुला कर क्या करोगी ? कई गाँव के आदमी तो आवेंगे ही।

खाला—अपनी विपद तो सबके आगे रो आयी। अब आने न आने का अख्तियार उनको है।

अलगू—यों आने को आ जाऊँगा; मगर पंचायत में मुँह न खोलूँगा।

खाला—क्यों बेटा ?

अलगू—अब इसका क्या जवाब दूँ ? अपनी खुशी। जुम्मन मेरा पुराना मित्र है। उससे बिगाड़ नहीं कर सकता।

खाला—बेटा, क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे ?

हमारे सोये हुए धर्म-ज्ञान की सारी सम्पत्ति लुट जाय, तो उसे खबर नहीं होती, परन्तु ललकार सुन कर वह सचेत हो जाता है। फिर उसे कोई जीत नहीं सकता। अलगू इस सवाल का कोई उत्तर न दे सका, पर उसके हृदय में ये शब्द गूँज रहे थे—

क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे ?

4

संध्या समय एक पेड़ के नीचे पंचायत बैठी। शेख जुम्मन ने पहले से ही फर्श बिछा रखा था। उन्होंने पान, इलायची, हुक्के-तम्बाकू आदि का प्रबन्ध भी किया था। हाँ, वह स्वयं अलबत्ता अलगू चौधरी के साथ जरा दूर पर बैठे हुए थे। जब पंचायत में कोई आ जाता था,

तब दबे हुए सलाम से उसका स्वागत करते थे। जब सूर्य अस्त हो गया और चिड़ियों की कलरवयुक्त पंचायत पेड़ों पर बैठी, तब यहाँ भी पंचायत शुरू हुई। फर्श की एक-एक अंगुल जमीन भर गयी; पर अधिकांश दर्शक ही थे। निमंत्रित महाशयों में से केवल वे ही लोग पधारे थे, जिन्हें जुम्मन से अपनी कुछ कसर निकालनी थी। एक कोने में आग सुलग रही थी। नाई ताबड़तोड़ चिलम भर रहा था। यह निर्णय करना असम्भव था कि सुलगते हुए उपलों से अधिक धुआँ निकलता था या चिलम के दमों से। लड़के इधर-उधर दौड़ रहे थे। कोई आपस में गाली-गलौज करते और कोई रोते थे। चारों तरफ कोलाहल मच रहा था। गाँव के कुत्ते इस जमाव को भोज समझ कर झुंड के झुंड जमा हो गये थे।

पंच लोग बैठ गये, तो बूढ़ी खाला ने उनसे विनती की–

'पंचो, आज तीन साल हुए, मैंने अपनी सारा जायदाद अपने भानजे जुम्मन के नाम लिख दी थी। इसे आप लोग जानते ही होंगे। जुम्मन ने मुझे ता-हयात रोटी-कपड़ा देना कबूल किया। साल-भर तो मैंने इसके साथ रो-धोकर काटा। पर अब रात-दिन का रोना नहीं सहा जाता। मुझे न पेट की रोटी मिलती है न तन का कपड़ा। बेकस बेवा हूँ। कचहरी दरबार नहीं कर सकती। तुम्हारे सिवा और किसको अपना दुःख सुनाऊँ ? तुम लोग जो राह निकाल दो, उसी राह पर चलूँ। अगर मुझमें कोई ऐब देखो, तो मेरे मुँह पर थप्पड़ मारो। जुम्मन में बुराई देखो, तो उसे समझाओ, क्यों एक बेकस की आह लेता है ! मैं पंचों का हुक्म सिर-माथे पर चढ़ाऊँगी।'

रामधन मिश्र, जिनके कई असामियो को जुम्मन ने अपने गाँव में बसा लिया था, बोले–जुम्मन मियाँ, किसे पंच बदते हो ? अभी से इसका निपटारा कर लो। फिर जो कुछ पंच कहेंगे, वही मानना पड़ेगा।

जुम्मन को इस समय सदस्यो में विशेषकर वे ही लोग दीख पड़े, जिनसे किसी न किसी कारण उनका वैमनस्य था। जुम्मन बोले–पंचों का हुक्म अल्लाह का हुक्म है। खालाजान जिसे चाहें, उसे बदें। मुझे कोई उज्र नहीं।

खाला ने चिल्ला कर कहा–अरे अल्लाह के बन्दे ! पंचों का नाम क्यों नहीं बता देता? कुछ मुझे भी तो मालूम हो।

जुम्मन ने क्रोध से कहा–अब इस वक्त मेरा मुँह न खुलवाओ। तुम्हारी बन पड़ी है, जिसे चाहो, पंच बदो।

खालाजान जुम्मन के आक्षेप को समझ गयीं, वह बोलीं–बेटा, खुदा से डरो पंच न किसी के दोस्त होते हैं, न किसी के दुश्मन। कैसी बात कहते हो ! और तुम्हारा किसी पर विश्वास न हो, तो जाने दो; अलगू चौधरी को तो मानते हो ? लो, मैं उन्हीं को सरपंच बदती हूँ।

जुम्मन शेख आनंद से फूल उठे, परंतु भावों को छिपा कर बोले–अलगू ही सही, मेरे लिए जैसे रामधन वैसे अलगू।

अलगू इस झमेले में फँसना नहीं चाहते थे। वे कन्नी काटने लगे। बोले–खाला, तुम जानती हो कि मेरी जुम्मन से गाढ़ी दोस्ती है।

खाला ने गम्भीर स्वर में कहा–बेटा, दोस्ती के लिए कोई अपना ईमान नहीं बेचता।

पंच के दिल में खुदा बसता है। पंचों के मुँह से जो बात निकलती है, वह खुदा की तरफ से निकलती है।

अलगू चौधरी सरपंच हुए। रामधन मिश्र और जुम्मन के दूसरे विरोधियों ने बुढ़िया को मन में बहुत कोसा।

अलगू चौधरी बोले—शेख जुम्मन ! हम और तुम पुराने दोस्त हैं ! जब काम पड़ा, तुमने हमारी मदद की है और हम भी जो कुछ बन पड़ा, तुम्हारी सेवा करते रहे हैं; मगर इस समय तुम और बूढ़ी खाला, दोनों हमारी निगाह में बराबर हो। तुमको पंचों से जो कुछ अर्ज करनी हो, करो।

जुम्मन को पूरा विश्वास था कि अब बाजी मेरी है। अलगू यह सब दिखावे की बातें कर रहा है। अतएव शांत-चित्त हो कर बोले—पंचो, तीन साल हुए खालाजान ने अपना जायदाद मेरे नाम हिब्बा कर दी थी। मैंने उन्हें ता-हयात खाना-कपड़ा देना कबूल किया था। खुदा गवाह है, आज तक मैंने खालाजान को कोई तकलीफ नहीं दी। मैं उन्हें अपनी माँ के समान समझता हूँ। उनकी खिदमत करना मेरा फर्ज है; मगर औरतों में जरा अनबन रहती है, इसमें मेरा क्या बस है ? खालाजान मुझसे माहवार खर्च अलग माँगती हैं। जायदाद जितनी है; वह पंचों से छिपी नहीं। उससे इतना मुनाफा नहीं होता है कि माहवार खर्च दे सकूँ। इसके अलावा हिब्बानामे में माहवार खर्च का कोई जिक्र नहीं। नहीं तो मैं भूल कर भी इस झमेले में न पड़ता। बस, मुझे यही कहना है। आइंदा पंचों का अख्तियार है, जो फैसला चाहें, करें।

अलगू चौधरी को हमेशा कचहरी से काम पड़ता था। अतएव वह पूरा कानूनी आदमी था। उसने जुम्मन से जिरह शुरू की। एक-एक प्रश्न जुम्मन के हृदय पर हथौड़े की चोट की तरह पड़ता था। रामधन मिश्र इन प्रश्नों पर मुग्ध हुए जाते थे। जुम्मन चकित थे कि अलगू को क्या हो गया। अभी यह अलगू मेरे साथ बैठा हुआ कैसी-कैसी बातें कर रहा था! इतनी ही देर में ऐसी कायापलट हो गयी कि मेरी जड़ खोदने पर तुला हुआ है। न मालूम कब की कसर यह निकाल रहा है ? क्या इतने दिनों की दोस्ती कुछ भी काम न आवेगी ?

जुम्मन शेख तो इसी संकल्प-विकल्प में पड़े हुए थे कि इतने में अलगू ने फैसला सुनाया—

जुम्मन शेख ! पंचो ने इस मामले पर विचार किया। उन्हें यह नीति संगत मालूम होता है कि खालाजान को माहवार खर्च दिया जाय। हमारा विचार है कि खाला की जायदाद से इतना मुनाफा अवश्य होता है कि माहवार खर्च दिया जा सके। बस, यही हमारा फैसला है, अगर जुम्मन को खर्च देना मंजूर न हो, तो हिब्बानामा रद्द समझा जाय।

यह फैसला सुनते ही जुम्मन सन्नाटे में आ गये। जो अपना मित्र हो, वह शत्रु का व्यवहार करे और गले पर छुरी फेरे, इसे समय के हेर-फेर के सिवा और क्या कहें? जिस पर पूरा भरोसा था, उसने समय पड़ने पर धोखा दिया। ऐसे ही अवसरों पर झूठे-सच्चे मित्रों की परीक्षा की जाती है। यही कलियुग की दोस्ती है। अगर लोग ऐसे कपटी-धोखेबाज न होते, तो देश में आपत्तियों का प्रकोप क्यों होता ? यह हैजा-प्लेग आदि

व्याधियाँ दुष्कर्मो के ही दंड हैं।

मगर रामधन मिश्र और अन्य पंच अलगू चौधरी की इस नीति-परायणता की प्रशंसा जी खोलकर कर रहे थे। वे कहते थे—इसका नाम पंचायत है ! दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया। दोस्ती, दोस्ती की जगह है, किंतु धर्म का पालन करना मुख्य है। ऐसे ही सत्यवादियों के बल पर पृथ्वी ठहरी है, नहीं तो वह कब की रसातल को चली जाती ।

इस फैसले ने अलगू और जुम्मन की दोस्ती की जड़ हिला दी। अब वे साथ-साथ बातें करते नहीं दिखायी देते। इतना पुराना मित्रता-रूपी वृक्ष सत्य का एक झोंका भी न सह सका। सचमुच वह बालू की ही जमीन पर खड़ा था।

उनमें अब शिष्टाचार का अधिक व्यवहार होने लगा। एक दूसरे की आवभगत ज्यादा करने लगा। वे मिलते-जुलते थे, मगर उसी तरह, जैसे तलवार से ढाल मिलती है।

जुम्मन के चित्त में मित्र की कुटिलता आठों पहर खटका करती थी। उसे हर घंड़ी यही चिंता रहती थी कि किसी तरह बदला लेने का अवसर मिले।

5

अच्छे कामों की सिद्धि में बड़ी देर लगती है; पर बुरे कामों की सिद्धि में यह बात नहीं होती; जुम्मन को भी बदला लेने का अवसर जल्द ही मिल गया। पिछले साल अलगू चौधरी बटेसर से बैलों की एक बहुत अच्छी गोई मोल लाये थे। बैल पछाहीं जाति के सुंदर, बड़े-बड़े सींगोंवाले थे। महीनों तक आस-पास के गाँव के लोग दर्शन करते रहे। दैवयोग से जुम्मन की पंचायत के एक महीने के बाद इस जोड़ी का एक बैल मर गया। जुम्मन ने दोस्तों से कहा—यह दगाबाजी की सजा है। इन्सान सब्र भले ही कर जाय, पर खुदा नेक-बद सब देखता है। अलगू को संदेह हुआ कि जुम्मन ने बैल को विष दिला दिया है। चौधराइन ने भी जुम्मन पर ही इस दुर्घटना का दोषारोपण किया। उसने कहा—जुम्मन ने कुछ कर-करा दिया है। चौधराइन और करीमन में इस विषय पर एक दिन खूब ही वाद-विवाद हुआ। दोनों देवियों ने शब्द-बाहुल्य की नदी बहा दी। व्यंग्य, वक्रोक्ति, अन्योक्ति और उपमा आदि अलंकारों में बातें हुई। जुम्मन ने किसी तरह शांति स्थापित की। उन्होंने अपनी पत्नी को डाँट-डपट कर समझा दिया। वह उसे उस रणभूमि से हटा भी ले गये। उधर अलगू चौधरी ने समझाने-बुझाने का काम अपने तर्क-पूर्ण सोंटे मे लिया।

अब अकेला बैल किस काम का ? उसका जोड़ बहुत ढूँढ़ा गया, पर न मिला। निदान यह सलाह ठहरी कि इसे बेच डालना चाहिए। गाँव में एक समझू साहु थे, वह इक्का-गाड़ी हाँकते थे। गाँव के गुड़-घी लाद कर मंडी ले जाते, मंडी से तेल, नमक भर लाते, और गाँव में बेचते। इस बैल पर उनका मन लहराया। उन्होंने सोचा, यह बैल हाथ लगे तो दिन-भर में बेखटके तीन खेप हों। आज-कल तो एक ही खेप में लाले पड़े रहते हैं। बैल देखा, गाड़ी में दौड़ाया, बाल-भौंरी की पहचान करायी, मोल-तोल किया और उसे ला कर द्वार पर बाँध ही दिया। एक महीने में दाम चुकाने का वादा ठहरा। चौधरी को भी गरज थी ही, घाटे की परवा न की।

समझू साहु ने नया बैल पाया, तो लगे उसे रगेदने। वह दिन में तीन-तीन, चार-चार खेपें करने लगे। न चारे की फिक्र थी, न पानी की, बस खेपों से काम था। मंडी ले गये, वहाँ कुछ सूखा भूसा सामने डाल दिया। बेचारा जानवर अभी दम भी न लेने पाया था कि फिर जोत दिया। अलगू चौधरी के घर था तो चैन की बंशी बजती थी। बैलराम छठे-छमाहे कभी बहली में जोते जाते थे। खूब उछलते-कूदते और कोसों तक दौड़ते चले जाते थे। वहाँ बैलराम का रातिब था, साफ पानी, दली हुई अरहर की दाल और भूसे के साथ खली, और यही नहीं, कभी-कभी घी का स्वाद भी चखने को मिल जाता था। शाम-सबेरे एक आदमी खरहरे करता, पोंछता और सहलाता था। कहाँ वह सुख-चैन, कहाँ यह आठों पहर की खेप! महीने-भर ही में वह पिस-सा गया। इक्के का जुआ देखते ही उसका लहू सूख जाता था। एक-एक पग चलना दूभर था। हड्डियाँ निकल आयी थीं; पर था वह पानीदार, मार की बरदाश्त न थी।

एक दिन चौथी खेप में साहु जी ने दूना बोझ लादा। दिन-भर का थका जानवर, पैर न उठते थे। पर साहु जी कोड़े फटकारने लगे। बस, फिर क्या था, बैल कलेजा तोड़ कर चला। कुछ दूर दौड़ा और चाहा कि जरा दम ले लूँ; पर साहु जी को जल्द पहुँचने की फिक्र थी; अतएव उन्होंने कई कोड़े बड़ी निर्दयता से फटकारे। बैल ने एक बार फिर जोर लगाया; पर अबकी बार शक्ति ने जवाब दे दिया। वह धरती पर गिर पड़ा, और ऐसा गिरा कि फिर न उठा। साहु जी ने बहुत पीटा, टाँग पकड़ कर खींचा, नथनों में लकड़ी ठूँस दी; पर कहीं मृतक भी उठ सकता है ? तब साहु जी को कुछ शक हुआ। उन्होंने बैल को गौर से देखा, खोल कर अलग किया; और सोचने लगे कि गाड़ी कैसे घर पहुँचे। बहुत चीखे-चिल्लाये; पर देहात का रास्ता बच्चों की आँख की तरह साँझ होते ही बंद हो जाता है। कोई नजर न आया। आस-पास कोई गाँव भी न था। मारे क्रोध के उन्होंने मरे हुए बैल पर और दुर्रे लगाये और कोसने लगे—अभागे। तुझे मरना ही था, तो घर पहुँच कर मरता ! ससुरा बीच रास्ते ही में मर रहा ! अब गाड़ी कौन खींचे ? इस तरह साहु जी खूब जले-भुने। कई बोरे गुड़ और कई पीपे घी उन्होंने बेचे थे, दो-ढाई सौ रुपये कमर में बँधे थे। इसके सिवा गाड़ी पर कई बोरे नमक के थे; अतएव छोड़ कर जा भी न सकते थे। लाचार बेचारे गाड़ी पर ही लेट गये। वहीं रतजगा करने की ठान ली। चिलम पी, गाया। फिर हुक्का पिया। इस तरह साहु जी आधी रात तक नींद को बहलाते रहे। अपनी जान में तो वह जागते ही रहे; पर पौ फटते ही जो नींद टूटी और कमर पर हाथ रखा, तो थैली गायब! घबरा कर इधर-उधर देखा, तो कई कनस्तर तेल भी नदारत ! अफसोस में बेचारे ने सिर पीट लिया और पछाड़ खाने लगा। प्रातःकाल रोते-बिलखते घर पहुँचे। सहुआइन ने जब यह बुरी सुनावनी सुनी, तब पहले तो रोयी, फिर अलगू चौधरी को गालियाँ देने लगी—निगोड़े ने ऐसा कुलच्छनी बैल दिया कि जन्म-भर की कमाई लुट गयी।

इस घटना को हुए कई महीने बीत गये। अलगू जब अपने बैल के दाम माँगते तब साहु और सहुआइन, दोनों ही झल्लाये हुए कुत्ते की तरह चढ़ बैठते और अंड-बंड बकने लगते—वाह ! यहाँ तो सारे जन्म की कमाई लुट गयी, सत्यानाश हो गया, इन्हें दामों की पड़ी है। मुर्दा बैल दिया था, उस पर दाम माँगने चले हैं ! आँखों में धूल झोंक दी,

सत्यानाशी बैल गले बाँध दिया, हमें निग पोंगा ही समझ लिया है ! हम भी बनिये के बच्चे हैं, ऐसे बुद्धू कहीं और होंगे। पहले जा कर किसी गड़हे में मुँह धो आओ, तब दाम लेना। न जी मानता हो, तो हमारा बैल खोल ले जाओ। महीना भर के बदले दो महीना जोत लो। और क्या लोगे ?

चौधरी के अशुभचिंतकों की कमी न थी। ऐसे अवसरों पर वे भी एकत्र हो जाते और साहु जी के बर्राने की पुष्टि करते। परन्तु डेढ़ सौ रुपये से इस तरह हाथ धो लेना आसान न था। एक बार वह भी गरम पड़ । साहु जी बिगड़ कर लाठी ढूँढ़ने घर चले गये। अब सहुआइन ने मैदान लिया। प्रश्नोत्तर होते-होते हाथापाई की नौबत आ पहुँची। सहुआइन ने घर में घुस कर किवाड़ बंद कर लिये। शोरगुल सुन कर गाँव के भलेमानस जमा हो गये। उन्होंने दोनों को समझाया। साहु जी को दिलासा दे कर घर से निकाला। वह परामर्श देने लगे कि इस तरह से काम न चलेगा। पंचायत कर लो। जो कुछ तय हो जाय, उसे स्वीकार कर लो। साहु जी राजी हो गयें। अलगू ने भी हामी भर ली।

6

पंचायत की तैयारियाँ होन लगीं। दोनों पक्षों ने अपने-अपने दल बनाने शुरू किये। इसके बाद तीसरे दिन उसी वृक्ष के नीचे पंचायत बैठी। वही संध्या का समय था। खेतों में कौए पंचायत कर रहे थे। विवादग्रस्त विषय था यह कि मटर की फलियों पर उनका कोई स्वत्व है या नहीं; और जब तक यह प्रश्न हल न हो जाय, तब तक वे रखवाले के पुकार पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करना आवश्यक समझते थे। पेड़ की डालियों पर बैठी शुक-मंडली में यह प्रश्न छिड़ा हुआ था कि मनुष्यों को उन्हें बेमुरौवत कहने का क्या अधिकार है, जब उन्हें स्वयं अपने मित्रों से दगा करने में भी संकोच नहीं होता।

पंचायत बैठ गयी, तो रामधन मिश्र ने कहा—अब देरी क्या है ? पंचों का चुनाव हो जाना चाहिए। बोलो चौधरी; किस-किस को पंच बदते हो।

अलगू ने दीन भाव से कहा—समझू साहु ही चुन लें।

समझू खड़े हुए और कड़क कर बोले—मेरी ओर से जुम्मन शेख।

जुम्मन का नाम सुनते ही अलगू चौधरी का कलेजा धक्-धक् करने लगा, मानों किसी ने अचानक थप्पड़ मार दिया हो। रामधन अलगू के मित्र थे। वह बात को ताड़ गये। पूछा—क्यों चौधरी तुम्हें कोई उज्र तो नहीं।

चौधरी ने निराश हो कर कहा—नहीं, मुझे क्या उज्र होगा ?

अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान बहुधा हमारे संकुचित व्यवहारों का सुधारक होता है। जब हम राह भूल कर भटकने लगते हैं तब यही ज्ञान हमारा वि सनीय पथ-प्रदर्शक बन जाता है।

पत्र-संपादक अपनी शांति कुटी में बैठा हुआ कितनी धृष्टता और स्वतंत्रता के साथ अपनी प्रबल लेखनी से मंत्रिमंडल पर आक्रमण करता है; परंतु ऐसे अवसर आते हैं, जब वह स्वयं मंत्रिमंडल में सम्मिलित होता है। मंडल के भवन में पग धरते ही उसकी लेखनी

कितनी मर्मज्ञ, कितनी विचारशील, कितनी न्याय-परायण हो जाती है। इसका कारण उत्तरदायित्व का ज्ञान है। नवयुवक युवावस्था में कितना उद्दंड रहता है। माता-पिता उसकी ओर से कितने चिंतित रहते हैं ! वे उसे कुल-कलंक समझते हैं; परन्तु थोड़े ही समय में परिवार का बोझ सिर पर पड़ते ही वह अव्यवस्थित-चित्त उन्मत्त युवक कितना धैर्यशील, कैसा शांतचित्त हो जाता है, यह भी उत्तरदायित्व के ज्ञान का फल है।

जुम्मन शेख के मन में भी सरपंच का उच्च स्थान ग्रहण करते ही अपनी जिम्मेदारी का भाव पैदा हुआ । उसने सोचा, मैं इस वक्त न्याय और धर्म के सर्वोच्च आसन पर बैठा हूँ। मेरे मुँह से इस समय जो कुछ निकलेगा, वह देववाणी के सदृश है—और देववाणी में मेरे मनोविकारों का कदापि समावेश न होना चाहिए। मुझे सत्य से जौ भर भी टलना उचित नहीं !

पंचों ने दोनों पक्षों से सवाल-जवाब करने शुरू किये। बहुत देर तक दोनों दल अपने-अपने पक्ष का समर्थन करते रहे। इस विषय में तो सब सहमत थे कि समझू को बैल का मूल्य देना चाहिए। परंतु दो महाशय इस कारण रियायत करना चाहते थे कि बैल के मर जाने से समझू को हानि हुई। इसके प्रतिकूल दो सभ्य मूल के अतिरिक्त समझू को दंड भी देना चाहते थे, जिससे फिर किसी को पशुओं के साथ ऐसी निर्दयता करने का साहस न हो। अंत में जुम्मन ने फैसला सुनाया—

अलगू चौधरी और समझू साहु ! पंचों ने तुम्हारे मामले पर अच्छी तरह विचार किया। समझू को उचित है कि बैल का पूरा दाम दें। जिस वक्त उन्होंने बैल लिया, उसे कोई बीमारी न थी। अगर उसी समय दाम दे दिये जाते, तो आज समझू उसे फेर लेने का आग्रह न करते । बैल की मृत्यु केवल इस कारण हुई कि उससे बड़ा कठिन परिश्रम लिया गया और उसके दाने-चारे का कोई अच्छा प्रबंध न किया गया।

रामधन मिश्र बोले—समझू ने बैल को जान-बूझ कर मारा है, अतएव उससे दंड लेना चाहिए।

जुम्मन बोले—यह दूसरा सवाल है ! हमको इससे कोई मतलब नहीं !

झगड़ू साहु ने कहा—समझू के साथ कुछ रियायत होनी चाहिए।

जुम्मन बोले—यह अलगू चौधरी की इच्छा पर निर्भर है। यह रियायत करें, तो उनकी भलमनसी।

अलगू चौधरी फूले न समाये। उठ खड़े हुए और जोर से बोले—पंच-परमेश्वर की जय!

इसके साथ ही चारों ओर से प्रतिध्वनि हुई—पंच-परमेश्वर की जय !

प्रत्येक मनुष्य जुम्मन की नीति को सराहता था—इसे कहते हैं न्याय ! यह मनुष्य का काम नहीं, पंच में परमेश्वर वास करते हैं, यह उन्हीं की महिमा है। पंच के सामने खोटे को कौन खरा कह सकता है ?

थोड़ी देर बाद जुम्मन अलगू के पास आये और उनके गले लिपट कर बोले— भैया, जब से तुमने मेरी पंचायत की तब से मैं तुम्हारा प्राण-घातक शत्रु बन गया था; पर आज मुझे ज्ञात हुआ कि पंच के पद पर बैठ कर न कोई किसी का दोस्त होता है, न दुश्मन।

न्याय के सिवा उसे और कुछ नहीं सूझता। आज मुझे विश्वास हो गया कि पंच की जबान से खुदा बोलता है। अलगू रोने लगे। इस पानी से दोनों के दिलों का मैल धुल गया। मित्रता की मुरझायी हुई लता फिर हरी हो गयी।

['पंचायत' शीर्षक से उर्दू में प्रथम प्रकाशन। 'जमाना', मई-जून, 1916 में प्रकाशित। उर्दू 'प्रेम बत्तीसी' तथा 'देहात के अफसाने' में संकलित। हिन्दी रूप 'पंच परमेश्वर' शीर्षक से 'सरस्वती', जून, 1916 में प्रकाशित। हिन्दी रूप 'मानसरोवर' भाग-7 में संकलित।]

ईश्वरीय न्याय

कानपुर जिले में पंडित भृगुदत्त नामक एक बड़े जमींदार थे। मुंशी सत्यनारायण उनके कारिंदा थे। वह बड़े स्वामिभक्त और सच्चरित्र मनुष्य थे। लाखों रुपये की तहसील और हजारों मन अनाज का लेन-देन उनके हाथ में था; पर कभी उनकी नीयत डाँवाडोल न होती। उनके सुप्रबंध से रियासत दिनोंदिन उन्नति करती जाती थी। ऐसे कर्तव्यपरायण सेवक का जितना सम्मान होना चाहिए, उससे अधिक ही होता था। दुःख-सुख के प्रत्येक अवसर पर पंडित जी उनके साथ बड़ी उदारता से पेश आते। धीरे-धीरे मुंशी जी का विश्वास इतना बढ़ा कि पंडित जी ने हिसाब-किताब का समझना भी छोड़ दिया। सम्भव है, उनसे आजीवन इसी तरह निभ जाती, पर भावी प्रबल है। प्रयाग में कुम्भ लगा, तो पंडित जी भी स्नान करने गये। वहाँ से लौट कर फिर वे घर न आये। मालूम नहीं, किसी गढ़े में फिसल पड़े या कोई जल-जंतु उन्हें खींच ले गया, उनका फिर कुछ पता ही न चला। अब मुंशी सत्यनारायण के अधिकार और भी बढ़े। एक हतभागिनी विधवा और दो छोटे-छोटे बच्चों के सिवा पंडित जी के घर में और कोई न था। अंत्येष्टि-क्रिया से निवृत्त हो कर एक दिन शोकातुर पंडिताइन ने उन्हें बुलाया और रो कर कहा—लाला, पंडित जी हमें मँझधार में छोड़ कर सुरपुर को सिधार गये, अब यह नैया तुम्हीं पार लगाओगे तो लग सकती है। यह सब खेती तुम्हारी लगायी हुई है, इसे तुम्हारे ही ऊपर छोड़ती हूँ। ये तुम्हारे बच्चे हैं, इन्हें अपनाओ। जब तक मालिक जिये, तुम्हें अपना भाई समझते रहे। मुझे विश्वास है कि तुम उसी तरह इस भार को सँभाले रहोगे।

सत्यनारायण ने रोते हुए जवाब दिया—भाभी, भैया क्या उठ गये, मेरे तो भाग्य ही फूट गये, नहीं तो मुझे आदमी बना देते। मैं उन्हीं का नमक खा कर जिया हूँ और उन्हीं की चाकरी में मरूँगा भी। आप धीरज रखें। किसी प्रकार की चिंता न करें। मैं जीते-जी आपकी सेवा से मुँह न मोड़ूँगा। आप केवल इतना कीजिएगा कि मैं जिस किसी की शिकायत करूँ, उसे डाँट दीजिएगा; नहीं तो ये लोग सिर चढ़ जायँगे।

2

इस घटना के बाद कई वर्षों तक मुंशीजी ने रियासत को सँभाला। वह अपने काम में बड़े

कुशल थे। कभी एक कौड़ी का भी बल नहीं पड़ा। सारे जिले में उनका सम्मान होने लगा। लोग पंडित जी को भूल-सा गये। दरबारों और कमेटियों में वे सम्मिलित होते, जिले के अधिकारी उन्हीं को जमींदार समझते। अन्य रईसों में भी उनका आदर था; पर मान-वृद्धि महँगी वस्तु है। और भानुकुँवरि, अन्य स्त्रियों के सदृश पैसे को खूब पकड़ती। वह मनुष्य की मनोवृत्तियों से परिचित न थी। पंडित जी हमेशा लाला जी को इनाम-इकराम देते रहते थे। वे जानते थे कि ज्ञान के बाद ईमान का दूसरा स्तम्भ अपनी सुदशा है। इसके सिवा वे खुद भी कभी कागजों की जाँच कर लिया करते थे। नाममात्र ही को सही, पर इस निगरानी का डर जरूर बना रहता था; क्योंकि ईमान का सबसे बड़ा शत्रु अवसर है। भानुकुँवरि इन बातों को जानती न थी। अतएव अवसर तथा धनाभाव-जैसे प्रबल शत्रुओं के पंजे में पड़ कर मुंशी जी का ईमान कैसे बेदाग बचता ?

कानपुर शहर से मिला हुआ, ठीक गंगा के किनारे, एक बहुत आबाद और उपजाऊ गाँव था। पंडित जी इस गाँव को ले कर नदी-किनारे पक्का घाट, मंदिर, बाग, मकान आदि बनवाना चाहते थे; पर उनकी यह कामना सफल न हो सकी। संयोग से अब यह गाँव बिकने लगा। उनके जमींदार एक ठाकुर साहब थे। किसी फौजदारी के मामले में फँसे हुए थे। मुकदमा लड़ने के लिए रुपये की चाह थी। मुंशीजी ने कचहरी में यह समाचार सुना। चटपट मोल-तोल हुआ। दोनों तरफ गरज थी। सौदा पटने में देर न लगी, बैनामा लिखा गया। रजिस्ट्री हुई। रुपये मौजूद न थे, पर शहर में साख थी। एक महाजन के यहाँ से तीस हजार रुपये मँगवाये गये और ठाकुर साहब को नजर किये गये। हाँ, काम-काज की आसानी के खयाल से यह सब लिखा-पढ़ी मुंशी जी ने अपने ही नाम की; क्योंकि मालिक के लड़के अभी नाबालिग थे। उनके नाम से लेने में बहुत झंझट होती और विलम्ब होने से शिकार हाथ से निकल जाता। मुंशीजी बैनामा लिये असीम आनंद में मग्न भानुकुँवरि के पास आये। पर्दा कराया और यह शुभ-समाचार सुनाया। भानुकुँवरि ने सजल नेत्रों से उनको धन्यवाद दिया। पंडित जी के नाम पर मन्दिर और घाट बनवाने का इरादा पक्का हो गया।

मुंशी जी दूसरे ही दिन उस गाँव में आये। असामी नजराने ले कर नये स्वामी के स्वागत को हाजिर हुए। शहर के रईसों की दावत हुई। लोगों ने नावों पर बैठ कर गंगा की खूब सैर की। मन्दिर आदि बनवाने के लिए आबादी से हट कर रमणीक स्थान चुना गया।

3

यद्यपि इस गाँव को अपने नाम लेते समय मुंशी जी के मन में कपट का भाव न था, तथापि दो-चार दिन में ही उसका अंकुर जम गया और धीरे-धीरे बढ़ने लगा। मुंशी जी इस गाँव के आय-व्यय का हिसाब अलग रखते और अपनी स्वामिनी को उसका ब्योरा समझाने की जरूरत न समझते। भानुकुँवरि इन बातों में दखल देना उचित न समझती थी; पर दूसरे कारिंदों से बातें सुन-सुन कर उसे शंका होती थी कि कहीं मुंशी जी दगा तो न देंगे। अपने मन का भाव मुंशी जी से छिपाती थी, इस खयाल से कि कहीं कारिंदों ने उन्हें हानि पहुंचाने के लिए यह षड्यंत्र न रखा हो।

इस तरह कई साल गुजर गये। अब उस कपट के अंकुर ने वृक्ष का रूप धारण किया। भानुकुँवरि को मुंशी जी के उस मार्ग के लक्षण दिखायी देने लगे। उधर मुंशी जी के मन ने कानून से नीति पर विजय पायी, उन्होंने अपने मन में फैसला किया कि गाँव मेरा है। हाँ, मैं भानुकुँवरि का तीस हजार का ऋणी अवश्य हूँ। वे बहुत करेंगी तो अपने रुपये ले लेंगी और क्या कर सकती हैं ? मगर दोनों तरफ यह आग अन्दर ही अन्दर सुलगती रही। मुंशी जी अस्त्र-सज्जित हो कर आक्रमण के इंतजार में थे और भानुकुँवरि इसके लिए अवसर ढूँढ़ रही थी। एक दिन उसने साहस करके मुंशी जी को अन्दर बुलाया और कहा—लाला जी 'बरगदा' के मंदिर का काम कब से लगवाइएगा? उसे लिये आठ साल हो गये, अब काम लग जाय तो अच्छा हो। जिंदगी का कौन ठिकाना है, जो काम करना है; उसे कर ही डालना चाहिए।

इस ढंग से इस विषय को उठा कर भानुकुँवरि ने अपनी चतुराई का अच्छा परिचय दिया। मुंशी जी भी दिल में इसके कायल हो गये। जरा सोच कर बोले—इरादा तो मेरा कई बार हुआ, पर मौके की जमीन नहीं मिलती। गंगातट की जमीन असामियों के जोत में है और वे किसी तरह छोड़ने पर राजी नहीं।

भानुकुँवरि—यह बात तो आज मुझे मालूम हुई। आठ साल हुए, इस गाँव के विषय में आपने कभी भूल कर भी तो चर्चा नहीं की। मालूम नहीं, कितनी तहसील है, क्या मुनाफा है, कैसा गाँव है, कुछ सीर होती है या नहीं। जो कुछ करते हैं, आप ही करते हैं और करेंगे। पर मुझे भी तो मालूम होना चाहिए ?

मुंशी जी सँभल उठे। उन्हें मालूम हो गया कि इस चतुर स्त्री से बाजी ले जाना मुश्किल है। गाँव लेना ही है तो अब क्या डर। खुल कर बोले—आपको इससे कोई सरोकार न था, इसलिए मैंने व्यर्थ कष्ट देना मुनासिब न समझा।

भानुकुँवरि के हृदय में कुठार-सा लगा। पर्दे से निकल आयी और मुंशी जी की तरफ तेज आँखों से देख कर बोली—आप क्या कहते हैं ! आपने गाँव मेरे लिए लिया था या अपने लिए ? रुपये मैंने दिये या आपने ? उस पर जो खर्च पड़ा, वह मेरा था या आपका ? मेरी समझ में नहीं आता कि आप कैसी बातें करते हैं।

मुंशी जी ने सावधानी से जवाब दिया—यह तो आप जानती हैं कि गाँव हमारे नाम से बय हुआ है। रुपया जरूर आपका लगा, पर मैं उसका देनदार हूँ। रहा तहसील-वसूल का खर्च, यह सब मैंने अपने पास से दिया है। उसका हिसाब-किताब, आय-व्यय सब रखता गया हूँ।

भानकुँवरि ने क्रोध से काँपते हुए कहा—इस कपट का फल आपको अवश्य मिलेगा। आप इस निर्दयता से मेरे बच्चों का गला नहीं काट सकते। मुझे नहीं मालूम था कि आपने हृदय में छुरी छिपा रखी है, नहीं तो यह नौबत ही क्यों आती। खैर, अब से मेरी रोकड़ और बही खाता आप कुछ न छुएँ। मेरा जो कुछ होगा, ले लूँगी। जाइए, एकांत में बैठ कर सोचिए। पाप से किसी का भला नहीं होता। तुम समझते होंगे कि बालक अनाथ हैं, इनकी सम्पत्ति हजम कर लूँगा। इस भूल में न रहना, मैं तुम्हारे घर की ईट तक बिकवा लूँगी !

यह कह कर भानुकुँवरि फिर पर्दे की आड़ में आ बैठी और रोने लगी। स्त्रियाँ क्रोध के बाद किसी न किसी बहाने रोया करती हैं। लाला साहब को कोई जवाब न सूझा। यहाँ से उठ आये और दफ्तर जा कर कागज उलट-पलट करने लगे, पर भानुकुँवरि भी उनके पीछे-पीछे दफ्तर में पहुँची और डाँट कर बोली—मेरा कोई कागज मत छूना। नहीं तो बुरा होगा। तुम विषैले साँप हो, मैं तुम्हारा मुँह नहीं देखना चाहती।

मुंशी जी कागजों में कुछ काट-छाँट करना चाहते थे, पर विवश हो गये। खजाने की कुंजी निकाल कर फेंक दी, बही-खाते पटक दिये, किवाड़ धड़ाके-से बंद किये और हवा की तरह सन्न-से निकल गये। कपट में हाथ तो डाला, पर कपट मन्त्र न जाना।

दूसरे कारिंदों ने यह कैफियत सुनी, तो फूले न समाये। मुंशी जी के सामने उनकी दाल न गलने पाती थी। भानुकुँवरि के पास आ कर वे आग पर तेल छिड़कने लगे। सब लोग इस विषय में सहमत थे कि मुंशी सत्यनारायण ने विश्वासघात किया है। मालिक का नमक उनकी हड्डियों से फूट-फूटकर निकलेगा।

दोनों ओर से मुकदमेबाजी की तैयारियाँ होने लगीं ! एक तरफ न्याय का शरीर था, दूसरी ओर न्याय की आत्मा। प्रकृति का पुरुष से लड़ने का साहस हुआ।

भानुकुँवरि ने लाला छक्कन लाल से पूछा—हमारा वकील कौन है ? छक्कन लाल ने इधर-उधर झाँक कर कहा—वकील तो सेठ जी हैं, पर सत्यनारायण ने उन्हें पहले गाँठ रखा होगा। इस मुकदमे के लिए बड़े होशियार वकील की जरूरत है। मेहरा बाबू की आजकल खूब चल रही है। हाकिम की कलम पकड़ लेते हैं। बोलते हैं तो जैसे मोटरकार छूट जाती है। सरकार ! और क्या कहें, कई आदमियों को फाँसी से उतार लिया है, उनके सामने कोई वकील जबान तो खोल नहीं सकता। सरकार कहें तो वही कर लिये जायँ।

छक्कनलाल की अत्युक्ति ने संदेह पैदा कर दिया। भानुकुँवरि ने कहा—नहीं, पहले सेठ जी से पूछ लिया जाय। उसके बाद देखा जायगा। आप जाइए, उन्हें बुला लाइए।

छक्कनलाल अपनी तकदीर को ठोंकते हुए सेठ जी के पास गये। सेठ जी पंडित भृगुदत्त के जीवन-काल से ही उनका कानून-सम्बन्धी सब काम किया करते थे। मुकदमे का हाल सुना तो सन्नाटे में आ गये। सत्यनारायण को वह बड़ा नेकनीयत आदमी समझते थे। उनके पतन से बड़ा खेद हुआ। उसी वक्त आये। भानुकुँवरि ने रो-रो कर उनसे अपनी विपत्ति की कथा कही और अपने दोनों लड़कों को उनके सामने खड़ा करके बोली—आप इन अनाथों की रक्षा कीजिए ! इन्हें मैं आपको सौंपती हूँ।

सेठ जी ने समझौते की बात छेड़ी। बोले—आपस की लड़ाई अच्छी नहीं।

भानुकुँवरि—अन्यायी के साथ लड़ना ही अच्छा है।

सेठ जी—पर हमारा पक्ष निर्बल है।

भानुकुँवरि फिर पर्दे से निकल आयी और विस्मित हो कर बोली—क्या हमारा पक्ष निर्बल है ? दुनिया जानती है कि गाँव हमारा है। उसे हमसे कौन ले सकता है ? नहीं, मैं सुलह कभी न करूँगी, आप कागजों को देखें। मेरे बच्चों की खातिर यह कष्ट उठायें। आपका परिश्रम निष्फल न जायगा। सत्यनारायण की नीयत पहले खराब न थी। देखिए जिस मिती में गाँव लिया गया है, उस मिती में तीस हजार का क्या खर्च दिखाया गया है।

अगर उसने अपने नाम उधार लिखा हो, तो देखिए, वार्षिक सूद चुकाया गया है या नहीं। ऐसे नरपिशाच से मैं कभी सुलह न करूँगी।

सेठ जी ने समझ लिया कि इस समय समझाने-बुझाने से कुछ काम न चलेगा। कागजात देखे, अभियोग चलाने की तैयारियाँ होने लगीं।

4

मुंशी सत्यनारायणलाल खिसियाये हुए मकान पहुँचे। लड़के ने मिठाई माँगी। उसे पीटा। स्त्री पर इसलिए बरस पड़े कि उसने क्यों लड़के को उनके पास जाने दिया। अपनी वृद्धा माता को डाँट कर कहा—तुमसे इतना भी नहीं हो सकता कि जरा लड़के को बहलाओ ? एक तो मैं दिन भर का थका-माँदा घर आऊँ और फिर लड़के को खेलाऊँ? मुझे दुनिया में न कोई काम है, न धंधा। इस तरह घर में बावेला मचा कर बाहर आये, सोचने लगे—मुझसे बड़ी भूल हुई। मैं कैसा मूर्ख हूँ। और इतने दिन तक सारे कागज-पत्र अपने हाथ में थे। चाहता, कर सकता था, पर हाथ पर हाथ धरे बैठा रहा। आज सिर पर आ पड़ी, तो सूझी। मैं चाहता तो बही-खाते सब नये बना सकता था, जिसमें इस गाँव का और रुपये का जिक्र ही न होता, पर मेरी मूर्खता के कारण घर में आयी हुई लक्ष्मी रूठी जाती हैं। मुझे क्या मालूम था कि वह चुड़ैल मुझसे इस तरह पेश आयेगी, कागजों में हाथ तक न लगाने देगी।

इसी उधेड़बुन में मुंशी जी एकाएक उछल पड़े। एक उपाय सूझ गया—क्यों न कार्यकर्ताओं को मिला लूं ? यद्यपि मेरी सख्ती के कारण वे सब मुझसे नाराज थे और इस समय सीधे बात भी न करेंगे, तथापि उनमें ऐसा कोई भी नहीं, जो प्रलोभन से मुट्ठी में न आ जाय। हाँ, इसमें रुपये पानी की तरह बहाना पड़ेगा, पर इतना रुपया आयेगा कहाँ से ? हाय दुर्भाग्य ! दो-चार दिन पहले चेत गया होता, तो कोई कठिनाई न पड़ती। क्या जानता था कि वह डाइन इस तरह वज्र-प्रहार करेगी। बस, अब एक ही उपाय है। किसी तरह कागजात गुम कर दूँ। बड़ी जोखिम का काम है, पर करना ही पड़ेगा।

दुष्कामनाओं के सामने एक बार सिर झुकाने पर फिर सँभलना कठिन हो जाता है। पाप के अथाह दलदल में जहाँ एक बार पड़े कि फिर प्रतिक्षण नीचे ही चले जाते हैं। मुंशी सत्यनारायण-सा विचारशील मनुष्य इस समय इस फिक्र में था कि कैसे सेंध लगा पाऊँ !

मुंशी जी ने सोचा—क्या सेंध लगाना आसान है ? इसके वास्ते कितनी चतुरता, कितना साहस, कितनी बुद्धि, कितनी वीरता चाहिए ! कौन कहता है कि चोरी करना आसान काम है ? मैं जो कहीं पकड़ा गया, तो मरने के सिवा और कोई मार्ग न रहेगा।

बहुत सोचने-विचारने पर भी मुंशी जी को अपने ऊपर ऐसा दुस्साहस कर सकने का विश्वास न हो सका। हाँ, इससे सुगम एक दूसरी तदबीर नजर आयी—क्यों न दफ्तर में आग लगा दूँ ? एक बोतल मिट्टी का तेल और दियासलाई की जरूरत है। किसी बदमाश को मिला लूँ, मगर यह क्या मालूम कि बही उसी कमरे में रखी है या नहीं। चुड़ैल ने उसे जरूर अपने पास रख लिया होगा। नहीं; आग लगाना गुनाह बेलज्जत होगा।

बहुत देर मुंशी जी करवटें बदलते रहे। नये-नये मनसूबे सोचते; पर अपने ही तर्कों से काट देते। वर्षाकाल में बादलों की नयी-नयी सूरतें बनतीं और फिर हवा के वेग से

बिगड़ जाती हैं; वही दशा इस समय उनके मनसूबों की हो रही थी।

पर इस मानसिक अशांति में भी एक विचार पूर्णरूप से स्थिर था—किसी तरह इन कागजात को अपने हाथ में लाना चाहिए। काम कठिन है—माना ! पर हिम्मत न थी, तो रार क्यों मोल ली ? क्या तीस हजार की जायदाद दाल-भात का कौर है ! —चाहे जिस तरह हो, चोर बने बिना काम नहीं चल सकता। आखिर जो लोग चोरियाँ करते हैं, वे भी तो मनुष्य ही होते हैं। बस, एक छलाँग का काम है। अगर पार हो गये, तो राज करेंगे, गिर पड़े, तो जान से हाथ धोयेंगे।

5

रात के दस बज गये। मुंशी सत्यनारायण कुंजियों का एक गुच्छा कमर में दबाये घर से बाहर निकले। द्वार पर थोड़ा-सा पुआल रखा हुआ था। उसे देखते ही वे चौंक पड़े। मारे डर के छाती धड़कने लगी। जान पड़ा कि कोई छिपा बैठा है। कदम रुक गये। पुआल की तरफ ध्यान से देखा। उसमें बिल्कुल हरकत न हुई ! तब हिम्मत बाँधी, आगे बढ़े और मन को समझाने लगे—मैं कैसा बौखल हूँ।

अपने द्वार पर किसका डर और सड़क पर भी मुझे किसका डर है ? मैं अपनी राह जाता हूँ। कोई मेरी तरफ तिरछी आँख से नहीं देख सकता। हाँ, जब मुझे सेंध लगाते देख ले—नहीं, पकड़ ले तब अलबत्ते डरने की बात है। तिस पर भी बचाव की युक्ति निकल सकती है।

अकस्मात् उन्होंने भानुकुँवरि के एक चपरासी को आते हुए देखा। कलेजा धड़क उठा। लपक कर एक अंधेरी गली में घुस गये। बड़ी देर तक वहाँ खड़े रहे। जब वह सिपाही आँखों से ओझल हो गया, तब फिर सड़क पर आये। वह सिपाही आज सुबह तक इनका गुलाम था, उसे उन्होंने कितनी ही बार गालियाँ दी थीं, लातें मारी थीं, पर आज उसे देख कर उनके प्राण सूख गये।

उन्होंने फिर तर्क की शरण ली। मैं मानो भंग खाकर आया हूँ। इस चपरासी से इतना डरा मानो कि वह मुझे देख लेता, पर मेरा कर क्या सकता था ? हजारों आदमी रास्ता चल रहे हैं। उन्हीं में मैं भी एक हूँ। क्या वह अंतर्यामी है ? सबके हृदय का हाल जानता है ? मुझे देख कर वह अदब से सलाम करता और वहाँ का कुछ हाल भी कहता; पर मैं उससे ऐसा डरा कि सूरत तक न दिखायी। इस तरह मन को समझा कर वे आगे बढ़े। सच है, पाप के पंजों में फँसा हुआ मन पतझड़ का पत्ता है, जो हवा के जरा-से झोंके से गिर पड़ता है।

मुंशी जी बाजार पहुँचे। अधिकतर दुकानें बंद हो चुकी थीं। उनमें साँड़ और गायें बैठी हुई जुगाली कर रही थीं। केवल हलवाइयों की दुकानें खुली थीं और कहीं-कहीं गजरेवाले हार की हाँक लगाते फिरते थे। सब हलवाई मुंशी जी को पहचानते थे, अतएव मुंशी जी ने सिर झुका लिया। कुछ चाल बदली और लपकते हुए चले। एकाएक उन्हें एक बग्घी आती दिखायी दी। यह सेठ बल्लभदास वकील की बग्घी थी। उसमें बैठ कर हजारों बार सेठ जी के साथ कचहरी गये थे, पर आज वह बग्घी कालदेव के समान भयंकर मालूम

हुई। फौरन एक खाली दुकान पर चढ़ गये। वहाँ विश्राम करने वाले साँड़ ने समझा, वे मुझे पदच्युत करने आये हैं ! माथा झुकाये फुंकारता हुआ उठ बैठा; पर इसी बीच में बग्घी निकल गयी और मुंशी जी की जान में जान आयी। अबकी उन्होंने तर्क का आश्रय न लिया। समझ गये कि इस समय इससे कोई लाभ नहीं, खैरियत यह हुई कि वकील ने देखा नहीं। यह एक घाघ है। मेरे चेहरे से ताड़ जाता।

कुछ विद्वानों का कथन है कि मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति पाप की ओर होती है, पर यह कोरा अनुमान ही अनुमान है, अनुभव-सिद्ध बात नहीं। सच बात तो यह है कि मनुष्य स्वभावतः पाप-भीरु होता है और हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि पाप से उसे कैसी घृणा होती है।

एक फर्लांग आगे चल कर मुंशी जी को एक गली मिली। यह भानुकुँवरि के घर का एक रास्ता था। धुँधली-सी लालटेन जल रही थी। जैसा मुंशी जी ने अनुमान किया था, पहरेदार का पता न था। अस्तबल में चमारों के यहाँ नाच हो रहा था। कई चमारिनें बनाव-सिंगार करके नाच रही थीं। चमार मृदंग बजा-बजा कर गाते थे–

'नाहीं घरे श्याम, घेरि आये बदरा।
सोवत रहेऊँ, सपन एक देखेउँ, रामा।
खुलि गयी नींद, ढरक गये कजरा।
नहीं घरे श्याम, घेरि आये बदरा।'

दोनों पहरेदार वहीं तमाशा देख रहे थे। मुंशी जी दबे-पाँव लालटेन के पास गये और जिस तरह बिल्ली चूहे पर झपटती है, उसी तरह उन्होंने झपट कर लालटेन को बुझा दिया। एक पड़ाव पूरा हो गया, पर वे उस कार्य को जितना दुष्कर समझते थे, उतना न जान पड़ा। हृदय कुछ मजबूत हुआ। दफ्तर के बरामदे में पहुँचे और खूब कान लगा कर आहट ली। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। केवल चमारों का कोलाहल सुनायी देता था। इस समय मुंशी जी के दिल में धड़कन थी, पर सिर धमधम कर रहा था; हाथ-पाँव काँप रहे थे, साँस बड़े वेग से चल रही थी। शरीर का एक-एक रोम आँख और कान बना हुआ था। वे सजीवता की मूर्ति हो रहे थे। उनमें जितना पौरुष, जितनी चपलता, जितना साहस, जितनी चेतना, जितनी बुद्धि, जितना औसान था, वे सब इस वक्त सजग और सचेत हो कर इच्छा-शक्ति की सहायता कर रहे थे।

दफ्तर के दरवाजे पर वही पुराना ताला लगा हुआ था। इसकी कुंजी आज बहुत तलाश करके वे बाजार से लाये थे। ताला खुल गया, किवाड़ों ने बहुत दबी जबान से प्रतिरोध किया। इस पर किसी ने ध्यान न दिया। मुंशी जी दफ्तर में दाखिल हुए। भीतर चिराग जल रहा था। मुंशी जी को देख कर उसने एक दफे सिर हिलाया, मानो उन्हें भीतर आने से रोका।

मुंशी जी के पैर थर-थर काँप रहे थे। एड़ियाँ जमीन से उछली पड़ती थीं। पाप का बोझ उन्हें असह्य था।

पल भर में मुंशी जी ने बहियों को उलटा-पलटा। लिखावट उनकी आँखों में तैर रही थी। इतना अवकाश कहाँ था कि जरूरी कागजात छाँट लेते। उन्होंने सारी बहियों को समेट कर एक गट्ठर बनाया और सिर पर रख कर तीर के समान कमरे के बाहर निकल

आये। उस पाप की गठरी को लादे हुए वह अँधेरी गली से गायब हो गये।

तंग, अँधेरी, दुर्गंधपूर्ण कीचड़ से भरी हुई गलियों में वे नंगे पाँव, स्वार्थ, लोभ और कपट का बोझ लिये चले जाते थे। मानो पापमय आत्मा नरक की नालियों में बही चली जाती थी।

बहुत दूर तक भटकने के बाद वे गंगा के किनारे पहुँचे। जिस तरह कलुषित हृदयों में कहीं-कहीं धर्म का धुँधला प्रकाश रहता है, उसी तरह नदी की काली सतह पर तारे झिलमिला रहे थे। तट पर कई साधु धूनी जमाये पड़े थे। ज्ञान की ज्वाला मन की जगह बाहर दहक रही थी। मुंशी जी ने अपना गट्ठर उतारा और चादर से खूब मजबूत बाँध कर बलपूर्वक नदी में फेंक दिया। सोती हुई लहरों में कुछ हलचल हुई और फिर सन्नाटा हो गया।

6

मुंशी सत्यनारायणलाल के घर में दो स्त्रियाँ थीं—माता और पत्नी। वे दोनों अशिक्षिता थीं। तिस पर भी मुंशी जी को गंगा में डूब मरने या कहीं भाग जाने की जरूरत न होती थी ! न वे बॉडी पहनती थीं, न मोजे-जूते, न हारमोनियम पर गा सकती थीं। यहाँ तक कि उन्हें साबुन लगाना भी न आता था। हेयरपिन, ब्रूचेज, जाकेट आदि परमावश्यक चीजों का तो नाम ही नहीं सुना था। बहू में आत्म-सम्मान जरा भी नहीं था; न सास में आत्म-गौरव का जोश। बहू अब तक सास की घुड़कियाँ भीगी बिल्ली की तरह सह लेती थी—हा मूर्खे ! सास को बच्चे के नहलाने-धुलाने, यहाँ तक कि घर में झाड़ू देने से भी घृणा न थी, हा ज्ञानांधे ! बहू स्त्री क्या थी, मिट्टी का लोंदा थी। एक पैसे की जरूरत होती तो सास से माँगती। सारांश यह है कि दोनों स्त्रियाँ अपने अधिकारों से बेखबर, अंधकार में पड़ी हुई पशुवत् जीवन व्यतीत करती थीं। ऐसी फूहड़ थीं कि रोटियाँ भी अपने हाथों से बना लेती थीं। कंजूसी के मारे दालमोट, समोसे कभी बाजार से न मँगातीं। आगरे वाले की दुकान की चीजें खायी होतीं तो उनका मजा जानतीं। बुढ़िया खूसट दवा-दरपन भी जानती थी। बैठी-बैठी घास-पात कूटा करती।

मुंशी जी ने माँ के पास जा कर कहा—अम्मा ! अब क्या होगा ? भानुकुँवरि ने मुझे जवाब दे दिया।

माता ने घबरा कर पूछा—जवाब दे दिया ?

मुंशी—हाँ, बिलकुल बेकसूर !

माता—क्या बात हुई ? भानुकुँवरि का मिजाज तो ऐसा न था।

मुंशी—बात कुछ न थी। मैंने अपने नाम से जो गाँव लिया था, उसे मैंने अपने अधिकार में कर लिया। कल मुझसे और उनसे साफ-साफ बातें हुई। मैंने कह दिया कि गाँव मेरा है। मैंने अपने नाम से लिया है, उसमें तुम्हरा कोई इजारा नहीं। बस, बिगड़ गयीं, जो मुँह में आया, बकती रहीं। उसी वक्त मुझे निकाल दिया और धमका कर कहा—मैं तुमसे लड़ कर अपना गाँव ले लूँगी। अब आज ही उनकी तरफ से मेरे ऊपर मुकदमा दायर होगा; मगर इससे होता क्या है ? गाँव मेरा है। उस पर मेरा कब्जा है। एक नहीं, हजार मुकदमे चलायें, डिगरी मेरी होगी ?

माता ने बहू की तरफ मर्मांतक दृष्टि से देखा और बोली—क्यों भैया ? वह गाँव लिया तो था तुमने उन्हीं के रुपये से और उन्हीं के वास्ते ?

मुंशी—लिया था, तब लिया था। अब मुझसे ऐसा आबाद और मालदार गाँव नहीं छोड़ा जाता। वह मेरा कुछ नहीं कर सकती। मुझसे अपना रुपया भी नहीं ले सकती। डेढ़ सौ गाँव तो हैं। तब भी हवस नहीं मानती।

माता—बेटा, किसी के धन ज्यादा होता है, तो वह उसे फेंक थोड़े ही देता है ? तुमने अपनी नीयत बिगाड़ी, यह अच्छा काम नहीं किया। दुनिया तुम्हें क्या कहेगी ? और दुनिया चाहे कहे या न कहे, तुमको भला ऐसा चाहिए कि जिसकी गोद में इतने दिन पले, जिसका इतने दिनों तक नमक खाया, अब उसी से दगा करो ? नारायण ने तुम्हें क्या नहीं दिया ? मजे से खाते हो, पहनते हो, घर में नारायण का दिया चार पैसा है, बाल-बच्चे हैं, और क्या चाहिए ? मेरा कहना मानो, इस कलंक का टीका अपने माथे न लगाओ। यह अपजस मत लो। बरक्कत अपनी कमाई में होती है; हराम की कौड़ी कभी नहीं फलती।

मुंशी—ऊँह ! ऐसी बातें बहुत सुन चुका हूँ। दुनिया उन पर चलने लगे, तो सारे काम बंद हो जायँ। मैंने इतने दिनों इनकी सेवा की, मेरी ही बदौलत ऐसे-ऐसे चार-पाँच गाँव बढ़ गये। जब तक पंडित जी थे, मेरी नीयत का मान था। मुझे आँख में धूल डालने की जरूरत न थी, वे आप ही मेरी खातिर कर दिया करते थे। उन्हें मरे आठ साल हो गये; मगर मुसम्मात के एक बीड़े पान की कसम खाता हूँ; मेरी जात से उनको हजारों रुपये-मासिक की बचत होती थी। क्या उनको इतनी भी समझ न थी कि यह बेचारा, जो इतनी ईमानदारी से मेरा काम करता है, इस नफे में कुछ उसे भी मिलना चाहिए ? यह कह कर न दो, इनाम कह कर दो, किसी तरह दो तो, मगर वे तो समझती थी कि मैंने इसे बीस रुपये महीने पर मोल ले लिया है। मैंने आठ साल तक सब किया, अब क्या इसी बीस रुपये में गुलामी करता रहूँ और अपने बच्चों को दूसरों का मुँह ताकने के लिए छोड़ जाऊँ? अब मुझे यह अवसर मिला है। इसे क्यों छोड़ू? जमींदारी की लालसा लिये हुए क्यों मरूँ ? जब तक जीऊँगा, खुद खाऊँगा। मेरे पीछे मेरे बच्चे चैन उड़ायेंगे।

माता की आँखों में आँसू भर आये। बोली—बेटा, मैंने तुम्हारे मुँह से ऐसी बातें कभी नहीं सुनी थीं, तुम्हें क्या हो गया है ? तुम्हारे आगे बाल-बच्चे हैं। आग में हाथ न डालो।

बहू ने सास की ओर देख कर कहा—हमको ऐसा धन न चाहिए, हम अपनी दाल-रोटी में मगन हैं।

मुंशी—अच्छी बात है, तुम लोग रोटी-दाल खाना, गाढ़ा पहनना, मुझे अब हलवे-पूरी की इच्छा है।

माता—यह अधर्म मुझसे न देखा जायगा। मैं गंगा में डूब मरूँगी।

पत्नी—तुम्हें यह सब काँटा बोना है, तो मुझे मायके पहुँचा दो, मैं अपने बच्चों को ले कर इस घर में न रहूँगी !

मुंशी ने झुंझला कर कहा—तुम लोगों की बुद्धि तो भाँग खा गयी है। लाखों सरकारी नौकर रात-दिन दूसरों का गला दबा-दबा कर रिश्वतें लेते हैं। और चैन करते हैं। न उसके बाल-बच्चों ही को कुछ होता है, न उन्हीं को हैजा पकड़ता है। अधर्म उनको क्यों नहीं खा

जाता, जो मुझी को खा जायगा। मैंने तो सत्यवादियों को सदा दुःख झेलते ही देखा है। मैंने जो कुछ किया है, सुख लूटूँगा। तुम्हारे मन में जो आये, करो।

प्रातःकाल दफ्तर खुला तो कागजात सब गायब थे। मुंशी छक्कनलाल बौखलाये से घर में गये और मालकिन से पूछा—कागजात आपने उठवा लिये हैं।

भानुकुँवरि ने कहा—मुझे क्या खबर, जहाँ आपने रखे होंगे, वहीं होंगे।

फिर सारे घर में खलबली पड़ गयी। पहरेदारों पर मार पड़ने लगी। भानुकुँवरि को तुरंत मुंशी सत्यनारायण पर संदेह हुआ, मगर उनकी समझ में छक्कनलाल की सहायता के बिना यह काम होना असम्भव था। पुलिस में रपट हुई। एक ओझा नाम निकालने के लिए बुलाया गया। मौलवी साहब ने कुर्रा फेंका। ओझा ने बताया, यह किसी पुराने बैरी का काम है। मौलवी साहब ने फर्माया, किसी घर के भेदिये ने यह हरकत की है। शाम तक यह दौड़-धूप रही। फिर यह सलाह होने लगी कि इन कागजातों के बगैर मुकदमा कैसे चले। पक्ष तो पहले ही से निर्बल था। जो कुछ बल था, वह इसी बही-खाते का था। अब तो सबूत भी हाथ से गये। दावे में कुछ जान ही न रही, मगर भानुकुँवरि ने कहा—बला से हार जायँगे। हमारी चीज कोई छीन ले, तो हमारा धर्म है कि उससे यथाशक्ति लड़ें, हार कर बैठना कायरों का काम है। सेठ जी (वकील) को इस दुर्घटना का समाचार मिला तो उन्होंने भी यही कहा कि अब दावे में जरा भी जान नहीं है। केवल अनुमान और तर्क का भरोसा है। अदालत ने माना तो माना, नहीं तो हार माननी पड़ेगी। पर भानुकुँवरि ने एक न मानी। लखनऊ और इलाहाबाद से दो होशियार बैरिस्टर बुलाये। मुकदमा शुरू हो गया।

सारे शहर में इस मुकदमे की धूम थी। कितने ही रईसों को भानुकुँवरि ने साक्षी बनाया था। मुकदमा शुरू होने के समय हजारों आदमियों की भीड़ हो जाती थी। लोगों के इस खिंचाव का मुख्य कारण यह था कि भानुकुँवरि एक पर्दे की आड़ में बैठी हुई अदालत की कार्रवाई देखा करती थी, क्योंकि उसे अब अपने नौकरों पर जरा भी विश्वास न था।

वादी बैरिस्टर ने एक बड़ी मार्मिक वक्तृता दी। उसने सत्यनारायण की पूर्वावस्था का खूब अच्छा चित्र खींचा। उसने दिखलाया कि वे कैसे स्वामिभक्त, कैसे कार्य-कुशल, कैसे कर्म-शील थे; और स्वर्गवासी पंडित भृगुदत्त का उस पर पूर्ण विश्वास हो जाना किस तरह स्वाभाविक था। इसके बाद उसने सिद्ध किया कि मुंशी सत्यनारायण की आर्थिक व्यवस्था कभी ऐसी न थी कि वे इतना धन-संचय करते। अंत में उसने मुंशी जी की स्वार्थपरता, कूटनीति, निर्दयता और विश्वास-घातकता का ऐसा घृणोत्पादक चित्र खींचा कि लोग मुंशी जी को गालियाँ देने लगे। इसके साथ ही उसने पंडित जी के अनाथ बालकों की दशा का बड़ा ही करुणोत्पादक वर्णन किया—कैसे शोक और लज्जा की बात है कि ऐसा चरित्रवान्, ऐसा नीति-कुशल मनुष्य इतना गिर जाय कि अपने स्वामी के अनाथ बालकों की गर्दन पर छुरी चलाने में संकोच न करे। मानव-पतन का ऐसा करुण, ऐसा हृदय-विदारक उदाहरण मिलना कठिन है। इस कुटिल कार्य के परिणाम की दृष्टि से इस मनुष्य के पूर्व परिचित सद्गुणों का गौरव लुप्त हो जाता है। क्योंकि वे असली मोती नहीं, नकली काँच के दाने थे, जो केवल विश्वास जमाने के निमित्त दर्शाये गये थे। वह केवल सुंदर जाल था, जो एक सरल हृदय और छल-छंद से दूर रहने वाले रईस को फँसाने के लिए फैलाया गया था। इस

नर-पशु का अंतःकरण कितना अंधकारमय, कितना कपट-पूर्ण, कितना कठोर है; और उसकी दुष्टता कितनी घोर, कितनी अपावन है। अपने शत्रु के साथ दगा करना एक बार तो क्षम्य है, मगर इस मलिन हृदय मनुष्य ने उन बेकसों के साथ दगा किया है, जिन पर मानव-स्वभाव के अनुसार दया करना उचित है ! यदि आज हमारे पास बही-खाते मौजूद होते, अदालत पर सत्यनारायण की सत्यता स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाती, पर मुंशी जी के बरखास्त होते ही दफ्तर से उनका लुप्त हो जाना भी अदालत के लिए एक बड़ा सबूत है।

शहर के कई रईसों ने गवाही दी, पर सुनी-सुनायी बातें जिरह में उखड़ गयीं। दूसरे दिन फिर मुकदमा पेश हुआ।

प्रतिवादी के वकील ने अपनी वक्तृता शुरू की। उसमें गंभीर विचारों की अपेक्षा हास्य का आधिक्य था—यह एक विलक्षण न्याय-सिद्धांत है कि किसी धनाड्य मनुष्य का नौकर जो कुछ खरीदे, वह उसके स्वामी की चीज समझी जाय। इस सिद्धांत के अनुसार हमारी गवर्नमेंट को अपने कर्मचारियों की सारी सम्पत्ति पर कब्जा कर लेना चाहिए। यह स्वीकार करने में हमको कोई आपत्ति नहीं कि हम इतने रुपयों का प्रबंध न कर सकते थे और यह धन हमने स्वामी से ऋण लिया, पर हमसे ऋण चुकाने का कोई तकाजा न करके वह जायदाद ही माँगी जाती है। यदि हिसाब के कागजात दिखलाये जायँ, तो वे साफ बता देंगे कि मैं सारा ऋण दे चुका। हमारे मित्र ने कहा है कि ऐसी अवस्था में बहियों का गुम हो जाना भी अदालत के लिए एक सबूत होना चाहिए। मैं भी उनकी युक्ति का समर्थन करता हूँ। यदि मैं आपसे ऋण ले कर अपना विवाह करूँ, तो क्या आप मुझसे मेरी नव-विवाहित वधू को छीन लेंगे ?

'हमारे सुयोग्य मित्र ने हमारे ऊपर अनाथों के साथ दगा करने का दोष लगाया है। अगर मुंशी सत्यनारायण की नीयत खराब होती, तो उनके लिए सबसे अच्छा अवसर वह था, जब पंडित भृगुदत्त का स्वर्गवास हुआ था। इतने विलंब की क्या जरूरत थी ? यदि आप शेर को फँसा कर उसके बच्चे को उसी वक्त नहीं पकड़ लेते, उसे बढ़ने और सबल होने का अवसर देते हैं, तो मैं आपको बुद्धिमान न कहूँगा। यथार्थ बात यह है कि मुंशी सत्यनारायण ने नमक का जो कुछ हक था, वह पूरा कर दिया। आठ वर्ष तक तन-मन से स्वामी के संतान की सेवा की। आज उन्हें अपनी साधुता का जो फल मिल रहा है, वह बहुत ही दुःखजनक और हृदय-विदारक है। इसमें भानुकुँवरि का दोष नहीं। वे एक गुण-सम्पन्न महिला हैं; मगर अपनी जाति के अवगुण उनमें भी विद्यमान हैं ! ईमानदार मनुष्य स्वभावतः स्पष्टभाषी होता है; उसे अपनी बातों में नमक-मिर्च लगाने की जरूरत नहीं होती। यही कारण है कि मुंशी जी के मृदुभाषी मातहतों को उन पर आक्षेप करने का मौका मिल गया। इस दावे की जड़ केवल इतनी ही है, और कुछ नहीं। भानुकुँवरि यहाँ उपस्थित हैं। क्या वे कह सकती हैं कि इस आठ वर्ष की मुद्दत में कभी इस गाँव का जिक्र उनके सामने आया ? कभी उसके हानि-लाभ, आय-व्यय, लेन-देन की चर्चा उनसे की गयी ? मान लीजिए कि मैं गवर्नमेंट का मुलाजिम हूँ। यदि मैं आज दफ्तर में आ कर अपनी पत्नी के आय-व्यय और अपने टहलुओं के टैक्सों का पचड़ा गाने लगूँ, तो शायद मुझे शीघ्र ही अपने पद से पृथक् होना पड़े, और सम्भव है, कुछ दिनों तक बरेली की

विशाल अतिथिशाला में भी रखा जाऊँ। जिस गाँव से भानुकुँवरि का सरोकार न था, उसकी चर्चा उनसे क्यों की जाती ?'

इसके बाद बहुत से गवाह पेश हुए; जिनमें अधिकांश आस-पास के देहातों के जमींदार थे। उन्होंने बयान दिया कि हमने मुंशी सत्यनारायण को असामियों को अपनी दस्तखती रसीदें देते और अपने नाम से खजाने में रुपया दाखिल करते देखा है।

इतने में संध्या हो गयी। अदालत ने एक सप्ताह में फैसला सुनाने का हुक्म दिया।

7

सत्यनारायण को अब अपनी जीत में कोई संदेह न था। वादी पक्ष के गवाह भी उखड़ गये थे और बहस भी सबूत से खाली थी। अब इनकी गिनती भी जमींदारों में होगी और सम्भव है, यह कुछ दिनों में रईस कहलाने लगेंगे। पर किसी न किसी कारण से अब शहर के गणमान्य पुरुषों से आँखें मिलाते शर्माते थे। उन्हें देखते ही उनका सिर नीचा हो जाता था। वह मन में डरते थे कि वे लोग कहीं इस विषय पर कुछ पूछ-ताछ न कर बैठें। वह बाजार में निकलते तो दुकानदारों में कुछ कानाफूसी होने लगती और लोग उन्हें तिरछी दृष्टि से देखने लगते। अब तक लोग उन्हें विवेकशील और सच्चरित्र मनुष्य समझते थे, शहर के धनी-मानी उन्हें इज्जत की निगाह से देखते और उनका बड़ा आदर करते थे। यद्यपि मुंशी जी को अब तक इनसे टेढ़ी-तिरछी सुनने का संयोग न पड़ा था, तथापि उनका मन कहता था कि सच्ची बात किसी से छिपी नहीं है। चाहे अदालत से उनकी जीत हो जाय, पर उनकी साख अब जाती रही। अब उन्हें लोग स्वार्थी, कपटी और दगाबाज समझेंगे। दूसरों की बात तो अलग रही, स्वयं उनके घरवाले उनकी उपेक्षा करते थे। बूढ़ी माता ने तीन दिन से मुँह में पानी नहीं डाला ! स्त्री बार-बार हाथ जोड़ कर कहती थी कि अपने प्यारे बालकों पर दया करो। बुरे काम का फल कभी अच्छा नहीं होता ! नहीं तो पहले मुझी को विष खिला दो।

जिस दिन फैसला सुनाया जाने वाला था, प्रातःकाल एक कुँजड़िन तरकारियाँ ले कर आयी और मुंशियाइन से बोली—

'बहू जी ! हमने बाजार में एक बात सुनी है। बुरा न मानो तो कहूँ ? जिसको देखो, उसके मुँह से यही बात निकलती है कि लाला बाबू ने जालसाजी से पंडिताइन का कोई हलका ले लिया। हमें तो इस पर यकीन नहीं आता। लाला बाबू ने न सँभाला होता, तो अब तक पंडिताइन का कहीं पता न लगता ! एक अंगुल जमीन न बचती। इन्हीं ऐसा सरदार था कि सबको सँभाल लिया। तो क्या अब उन्हीं के साथ बदी करेंगे? अरे बहू ! कोई कुछ साथ लाया है कि ले जायगा ? यही नेकी-बदी रह जाती है। बुरे का फल बुरा होता है। आदमी न देखे, पर अल्लाह सब कुछ देखता है।'

बहू जी पर घड़ों पानी पड़ गया। जी चाहता था कि धरती फट जाती, तो उसमें समा जाती। स्त्रियाँ स्वभावतः लज्जावती होती हैं। उनमें आत्माभिमान की मात्रा अधिक होती है। निंदा-अपमान उनसे सहन नहीं हो सकता है। सिर झुकाये हुए बोली—बुआ! मैं इन बातों को क्या जानूँ ? मैंने तो आज ही तुम्हारे मुँह से सुनी है। कौन-सी तरकारियाँ हैं ?

मुंशी सत्यनारायण अपने कमरे में लेटे हुए कुँजड़िन की बातें सुन रहे थे, उसके चले जाने के बाद आ कर स्त्री से पूछने लगे—यह शैतान की खाला क्या कह रही थी।

स्त्री ने पति की ओर से मुँह फेर लिया और जमीन की ओर ताकते हुए बोली— क्या तुमने नहीं सुना ? तुम्हारा गुन-गान कर रही थी। तुम्हारे पीछे देखो, किस-किसके मुँह से ये बातें सुननी पड़ती हैं और किस-किससे मुँह छिपाना पड़ता है।

मुंशी जी अपने कमरे में लौट आये। स्त्री को कुछ उत्तर नहीं दिया। उनकी आत्मा लज्जा से परास्त हो गयी। जो मनुष्य सदैव सर्व-सम्मानित रहा हो, जो सदा आत्माभिमान से सिर उठा कर चलता रहा हो, जिसकी सुकृति की सारे शहर में चर्चा होती रही हो, वह कभी सर्वथा लज्जाशून्य नहीं हो सकता; लज्जा कुपथ की सबसे बड़ी शत्रु है। कुवासनाओं के भ्रम में पड़ कर मुंशी जी ने समझा था, मैं इस काम को ऐसी गुप्त-रीति से पूरा कर ले जाऊँगा कि किसी को कानोंकान खबर न होगी, पर उनका यह मनोरथ सिद्ध न हुआ। बाधाएँ आ खड़ी हुई। उनके हटाने में उन्हें बड़े दुस्साहस से काम लेना पड़ा; पर यह भी उन्होंने लज्जा से बचने के निमित्त किया। जिसमें यह कोई न कहे कि अपनी स्वामिनी को धोखा दिया। इतना यत्न करने पर भी वह निंदा से न बच सके। बाजार का सौदा बेचनेवालियाँ भी अब उनका अपमान करती हैं। कुवासनाओं से दबी हुई लज्जा-शक्ति इस कड़ी चोट को सहन न कर सकी। मुंशी जी सोचने लगे, अब मुझे धन-सम्पत्ति मिल जायगी, ऐश्वर्यवान् हो जाऊँगा, परंतु निंदा से मेरा पीछा न छूटेगा। अदालत का फैसला मुझे लोक-निंदा से न बचा सकेगा। ऐश्वर्य का फल क्या है ?—मान और मर्यादा। उससे हाथ धो बैठा, तो ऐश्वर्य को ले कर क्या करूँगा ? चित्त की शक्ति खो कर, लोक-लज्जा सह कर, जनसमुदाय में नीच बन कर और अपने घर में कलह का बीज बो कर यह सम्पत्ति मेरे किस काम आयेगी ? और यदि वास्तव में कोई न्याय-शक्ति हो और वह मुझे इस कुकृत्य का दंड दे, तो मेरे लिए सिवा मुख में कालिख लगा कर निकल जाने के और कोई मार्ग न रहेगा। सत्यवादी मनुष्य पर कोई विपत्ति पड़ती है, तो लोग उनके साथ सहानुभूति करते हैं। दुष्टों की विपत्ति लोगों के लिए व्यंग्य की सामग्री बन जाती है। उस अवस्था में ईश्वर अन्यायी ठहराया जाता है; मगर दुष्टों की विपत्ति ईश्वर के न्याय को सिद्ध करती है। परमात्मन्! इस दुर्दशा से किसी तरह मेरा उद्धार करो ! क्यों न जा कर मैं भानुकुँवरि के पैरों पर गिर पड़ूँ और विनय करूँ कि यह मुकदमा उठा लो ? शोक ! पहले यह बात मुझे क्यों न सूझी ? अगर कल तक मैं उनके पास चला गया होता, तो बात बन जाती; पर अब क्या हो सकता है। आज तो फैसला सुनाया जायगा।

मुंशी जी देर तक इसी विचार में पड़े रहे, पर कुछ निश्चय न कर सके कि क्या करें।

भानुकुँवरि को भी विश्वास हो गया कि अब गाँव हाथ से गया। बेचारी हाथ मल कर रह गयी। रात भर उसे नींद न आयी, रह-रह कर मुंशी सत्यनारायण पर क्रोध आता था। हाय पापी ! ढोल बजा कर मेरा पचास हजार का माल लिये जाता है और मैं कुछ नहीं कर सकती। आजकल के न्याय करने वाले बिलकुल आँख के अंधे हैं। जिस बात को सारी दुनिया जानती है, उसमें भी उनकी दृष्टि नहीं पहुँचती। बस, दूसरों की आँखों से देखते हैं। कोरे कागजों के गुलाम हैं। न्याय वह है जो दूध का दूध, पानी का पानी कर दे; यह नहीं

कि खुद ही कागजों के धोखे में आ जाय, खुद ही पाखंडियों के जाल में फँस जाय। इसी से तो ऐसे छली, कपटी, दगाबाज और दुरात्माओं का साहस बढ़ गया है। खैर, गाँव जाता है तो जाय; लेकिन सत्यनारायण, तुम शहर में कहीं मुँह दिखाने के लायक भी न रहे।

इस खयाल से भानुकुँवरि को कुछ शांति हुई। शत्रु की हानि मनुष्य को अपने लाभ से भी अधिक प्रिय होती है, मानव-स्वभाव ही कुछ ऐसा है। तुम हमारा एक गाँव ले गये, नारायण चाहेंगे तो तुम भी इससे सुख न पाओगे। तुम आप नरक की आग में जलोगे, तुम्हारे घर में कोई दिया जलाने वाला न रह जायगा।

फैसले का दिन आ गया। आज इजलास में बड़ी भीड़ थी। ऐसे-ऐसे महानुभाव उपस्थित थे, जो बगुलों की तरह अफसरों की बधाई और विदाई के अवसरों ही में नजर आया करते हैं। वकीलों और मुख्तारों की पलटन भी जमा थी। नियत समय पर जज साहब ने इजलास सुशोभित किया। विस्तृत न्याय भवन में सन्नाटा छा गया। अहलमद ने संदूक से तजबीज निकाली। लोग उत्सुक हो कर एक-एक कदम और आगे खिसक गये।

जज ने फैसला सुनाया—मुद्दई का दावा खारिज। दोनों पक्ष अपना-अपना खर्च सह लें।

यद्यपि फैसला लोगों के अनुमान के अनुसार ही था, तथापि जज के मुँह से उसे सुन कर लोगों में हलचल-सी मच गयी। उदासीन भाव से फैसले पर आलोचनाएँ करते हुए लोग धीरे-धीरे कमरे से निकलने लगे।

एकाएक भानुकुँवरि घूँघट निकाले इजलास पर आ कर खड़ी हो गयी। जाने वाले लौट पड़े। जो बाहर निकल गये थे, दौड़ कर आ गये। और कौतूहल-पूर्वक भानुकुँवरि की तरफ ताकने लगे।

भानुकुँवरि ने कंपित स्वर में जज से कहा—सरकार, यदि हुक्म दें, तो मैं मुंशी जी से कुछ पूछूँ !

यद्यपि यह बात नियम के विरुद्ध थी, तथापि जज ने दयापूर्वक आज्ञा दे दी।

तब भानुकुँवरि ने सत्यनारायण की तरफ देख कर कहा—लाला जी, सरकार ने तुम्हारी डिगरी तो कर ही दी। गाँव तुम्हें मुबारक रहे; मगर ईमान आदमी का सब कुछ है। ईमान से कह दो, गाँव किसका है ?

हजारों आदमी यह प्रश्न सुन कर कौतूहल से सत्यनारायण की तरफ देखने लगे। मुंशी जी विचार-सागर में डूब गये। हृदय में संकल्प और विकल्प में घोर संग्राम होने लगा। हजारों मनुष्यों की आँखें उनकी तरफ जमी हुई थीं। यथार्थ बात अब किसी से छिपी न थी। इतने आदमियों के समाने असत्य बात मुँह से निकल न सकी। लज्जा से जबान बंद कर ली—'मेरा' कहने में काम बनता था। कोई बात न थी; किन्तु घोरतम पाप का दंड समाज दे सकता है। उसके मिलने का पूरा भय था। 'आपका' कहने से काम बिगड़ता था। जीती-जितायी बाजी हाथ से निकल जाती थी, सर्वोत्कृष्ट काम के लिए समाज से जो इनाम मिल सकता है, उसके मिलने की पूरी आशा थी। आशा ने भय को जीत लिया। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे ईश्वर ने मुझे अपना मुख उज्ज्वल करने का यह अंतिम अवसर दिया है। मैं अब भी मानव-सम्मान का पात्र बन सकता हूँ। अब अपनी आत्मा की रक्षा कर

सकता हूँ। उन्होंने आगे बढ़ कर भानुकुँवरि को प्रणाम किया और काँपते हुए स्वर में बोले—आपका!

हजारों मनुष्यों के मुँह से एक गगनस्पर्शी ध्वनि निकली—सत्य की जय !

जज ने खड़े हो कर कहा—यह कानून का न्याय नहीं है !

ईश्वरीय न्याय

इसे कथा न समझिएगा; यह सच्ची घटना है। भानुकुँवरि और सत्यनारायण अब भी जीवित हैं। मुंशी जी के इस नैतिक साहस पर लोग मुग्ध हो गये। मानवीय न्याय पर ईश्वरीय न्याय ने जो विलक्षण विजय पायी, उसकी चर्चा शहर भर में महीनों रही। भानुकुँवरि मुंशी जी के घर गयीं, उन्हें मना कर लायीं। फिर अपना सारा कारोबार उन्हें सौंपा और कुछ दिनों उपरांत यह गाँव उन्हीं के नाम हिब्बा कर दिया। मुंशी जी ने भी उसे अपने अधिकार में रखना उचित न समझा, कृष्णार्पण कर दिया। अब इसकी आमदनी दीन-दुखियों और विद्यार्थियों की सहायता में खर्च होती है।

[हिन्दी कहानी। 'सरस्वती', जुलाई, 1916 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-5 मे संकलित। 'ईमान का फैसला' शीर्षक से उर्दू में 'प्रेम बत्तीसी' (अगस्त, 1920) में संकलित-प्रकाशित।]

घमंड का पुतला

शाम हो गई थी। मैं सरयू नदी के किनारे अपने कैंप में बैठा हुआ नदी के मजे ले रहा था कि मेरे फुटबाल ने दबे पांव पास आकर मुझे सलाम किया कि जैसे वह मुझसे कुछ कहना चाहता है।

फुटबाल के नाम से जिस प्राणी का जिक्र किया गया वह मेरा अर्दली था। उसे सिर्फ एक नजर देखने से यकीन हो जाता था कि यह नाम उसके लिए पूरी तरह उचित है। वह सिर से पैर तक आदमी की शक्ल में एक गेंद था। लंबाई-चौड़ाई बराबर। उसका भारी- भरकम पेट, जिसने उस दायरे के बनाने में खास हिस्सा लिया था, एक लंबे कमरबंद में लिपटा रहता था, शायद इसलिए कि वह इंतहा से आगे न बढ़ जाए। जिस वक्त वह तेजी से चलता था बल्कि यों कहिए कि लुढ़कता था तो साफ मालूम होता था कि कोई फुटबाल ठोकर खाकर लुढ़कता चला आता है। मैंने उसकी तरफ देखकर पूछा—क्या कहते हो ?

इस पर फुटबाल ने ऐसी रोनी सूरत बनाई कि जैसे कहीं से पिटकर आया है और बोला—हुजूर, अभी तक यहां रसद का कोई इंतजाम नहीं हुआ। जमींदार साहब कहते हैं कि मैं किसी का नौकर नहीं हूं।

मैंने इस निगाह से देखा कि जैसे मैं और ज्यादा नहीं सुनना चाहता। यह असंभव था कि एक मजिस्ट्रेट की शान में जमींदार से ऐसी गुस्ताखी होती। यह मेरे हाकिमाना गुस्से को भड़काने की एक बदतमीज कोशिश थी। मैंने पूछा—जमींदार कौन है ?

फुटबाल की बाछें खिल गईं, बोला—क्या कहूं, कुंअर सज्जनसिंह। हुजूर, बड़ा ढीठ आदमी है। रात होने आई है और अभी तक हुजूर के सलाम को भी नहीं आया। घोड़ों के सामने न घास है न दाना। लश्कर के सब आदमी भूखे बैठे हुए हैं। मिट्टी का एक बर्तन भी नहीं भेजा।

मुझे जमींदारों से रात-दिन साबका रहता था मगर यह शिकायत कभी सुनने में नहीं आई थी। इसके विपरीत वह मेरी खातिर-तवाजो में ऐसी जाँफिशानी से काम लेते थे जो उनके स्वाभिमान के लिए ठीक न थी। उसमें दिल खोलकर आतिथ्य-सत्कार करने का भाव तनिक भी न होता था। न उसमें शिष्टाचार था, न वैभव का प्रदर्शन जो ऐब है। इसके बजाय वहां बेजा रसूख़ की फिक्र और स्वार्थ की हवस साफ दिखाई देती थी और इस रसूख बनाने की कीमत काव्योचित अतिश्योक्ति के साथ उन गरीबों से वसूल की जाती थी जिनका बेकसी के सिवा और कोई हाथ पकड़ने वाला नहीं। उनके बात करने के ढंग में वह मुलायमियत और आजिजी बरती जाती थी, जिसका स्वाभिमान से बैर है और अक्सर ऐसे मौके आते थे, जब इन खातिरदारियों से तंग होकर दिल चाहता था कि काश, इन खुशामदी आदमियों की सूरत न देखनी पड़ती।

मगर आज अपने फुटबाल की जबान से यह कैफियत सुनकर मेरी जो हालत हुई उसने साबित कर दिया कि रोज-रोज की खातिरदारियों और मीठी-मीठी बातों ने मुझ पर असर किए बिना नहीं छोड़ा था। मैं यह हुक्म देने वाला ही था कि कुंअर सज्जनसिंह को हाजिर करो कि एकाएक मुझे खयाल आया, इन मुफ्तखोरे चपरासियों के कहने पर एक प्रतिष्ठित आदमी को अपमानित करना न्याय नहीं है। मैंने अर्दली से कहा—बनियों के पास जाओ, नकद दाम लेकर चीजें लाओ और याद रखो कि मेरे पास कोई शिकायत न आए।

अर्दली दिल में मुझे कोसता हुआ चला गया।

मगर मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही, जब वहां एक हफ्ते तक रहने पर भी कुंअर साहब से मेरी भेंट न हुई। अपने आदमियों और लश्कर वालों की जबान से कुंअर साहब की ढिठाई, घमंड और हेकड़ी की कहानियां रोज सुना करता। और मेरे दुनिया देखे हुए पेशकार ने ऐसे अतिथि-सत्कार-शून्य गांव में पड़ाव डालने के लिए मुझे कई बार इशारों से समझाने-बुझाने की कोशिश की। गालिबन मैं पहला आदमी था जिससे यह भूल हुई थी और अगर मैंने जिले के नक्शे के बदले लश्कर वालों से अपने दौरे का प्रोग्राम बनाने में मदद ली होती तो शायद इस अप्रिय अनुभव की नौबत न आती। लेकिन कुछ अजब बात थी कि कुंअर साहब को बुरा-भला कहना मुझ पर उल्टा असर डालता था। यहां तक कि मुझे उस आदमी से मुलाकात करने की इच्छा पैदा हुई जो सर्वशक्तिमान अफसरों से इतना ज्यादा अलग-अलग रह सकता है।

2

सुबह का वक्त था, मैं गढ़ी में गया। नीचे सरयू नदी लहरें मार रही थी। उस पार साखू का जंगल था। मीलों तक बादामी रेत, उन पर खरबूजे और तरबूजे की क्यारियां थीं। पीले-पीले

फूलों से लहराती हुई। बगुलों और मुर्गाबियों के गोल-के-गोल बैठे हुए थे। सूर्य देवता ने जंगलों से सिर निकाला, लहरें जगमगाईं, पानी में तारे निकले। बड़ा सुहाना, आत्मिक उल्लास देने वाला दृश्य था।

मैंने खबर करवाई और कुंअर साहब के दीवानखाने में दाखिल हुआ। लंबा-चौड़ा कमरा था। फर्श बिछा हुआ था। सामने मसनद पर एक बहुत लंबा-तड़ंगा आदमी बैठा था। सर के बाल मुड़े हुए, गले में रुद्राक्ष की एक माला, लाल-लाल आंखें, ऊंचा माथा—पुरुषोचित अभिमान की इससे अच्छी तस्वीर नहीं हो सकती। चेहरे से रोबदाब बरसता था।

कुंअर साहब ने मेरे सलाम का इस अंदाज से लिया कि जैसे वह इसके आदी हैं। मसनद से उठकर उन्होंने बहुत बड़प्पन के ढंग से मेरी अगवानी की, खैरियत पूछी और इस तकलीफ के लिए मेरा शुक्रिया अदा करने के बाद इतर और पान से मेरी तवाजो की। तब वह मुझे अपनी उस गढ़ी की सैर कराने चले जिसने किसी जमाने में जरूर आसफुद्दौला को जिच किया होगा मगर इस वक्त बहुत टूटी-फूटी हालत में थी। यहां के एक-एक रोड़े पर कुंअर साहब को नाज था। उनके खानदानी बड़प्पन और रोबदाब का जिक्र उनकी जबान से सुनकर विश्वास न करना असंभव था। उनका बयान करने का ढंग यकीन को मजबूर करता था और वे उन कहानियों के सिर्फ पासबान ही न थे बल्कि वह उनके ईमान का हिस्सा थीं और जहां तक उनकी शक्ति में था, उन्होंने अपनी आन निभाने में कभी कसर नहीं की।

कुंअर सज्जनसिंह खानदानी रईस थे। उनकी वंश-परम्परा यहां-वहां टूटती हुई अंत में किसी महात्मा ऋषि से जाकर मिल जाती थी। उन्हें तपस्या और भक्ति और योग का कोई दावा न था लेकिन इसका गर्व उन्हें अवश्य था कि वे एक ऋषि की संतान हैं। पुरखों के जंगली कारनामे भी उनके लिए गर्व का कुछ कम कारण न थे। इतिहास में उनका कहीं जिक्र न हो मगर खानदानी भाट ने उन्हें अमर बनाने में कोई कसर नहीं रखी थी और अगर शब्दों में कुछ ताकत है तो यह गढ़ी रोहतास या कालिंजर के किलों से भी आगे बढ़ी हुई थी। कम-से-कम प्राचीनता और बर्बादी के बाह्य लक्षणों में तो उसकी मिसाल मुश्किल से मिल सकती थी, क्योंकि पुराने जमाने में चाहे उसने मुहासरों और सुरंगों को हेच समझा हो लेकिन इस वक्त वह चींटियों और दीमकों के हमलों का भी सामना न कर सकती थी।

कुंअर सज्जनसिंह से मेरी भेंट बहुत संक्षिप्त थी लेकिन इस दिलचस्प आदमी ने मुझे हमेशा के लिए अपना भक्त बना लिया। बड़ा समझदार, मामले को समझने वाला, दूरदर्शी आदमी था। आखिर मुझे उसका बिन पैसों का गुलाम बनना था।

3

बरसात में सरयू नदी इस जोर-शोर से चढ़ी कि हजारों गांव बरबाद हो गए, बड़े-बड़े तनावर दरख्त तिनकों की तरह बहते चले जाते थे। चारपाइयों पर सोते हुए बच्चे और औरतें, खूंटे पर बंधे हुए गाय और बैल उसकी गरजती हुई लहरों में समा गए। खेतों में नाव चलती थी।

शहर में उड़ती हुई खबरें पहुंचीं। सहायता के प्रस्ताव पास हुए। सैकड़ों ने सहानुभूति और शोक के अरजेंट तार जिले के बड़े साहब की सेवा में भेजे। टाउनहाल में कौमी हमदर्दी की पुरशोर सदाएं उठीं और उस हंगामे में बाढ़-पीड़ितों की दर्द भरी पुकारें दब गईं।

सरकार के कानों में फरियाद पहुंची। एक जांच कमीशन तैनात किया गया। जमींदारों को हुक्म हुआ कि वे कमीशन के सामने अपने नुकसानों को विस्तार से बताएं और उसके सबूत दें। शिवरामपुर के महाराजा साहब को इस कमीशन का सभापति बनाया गया। जमींदारों में रेल-पेल शुरू हुई। नसीब जागे। नुकसान के तखमीने का फैसला करने में काव्य-बुद्धि से काम लेना पड़ा। सुबह से शाम तक कमीशन के सामने एक जमघट रहता। आनरेबुल महाराजा साहब को सांस लेने की फुर्सत न थी। दलील और शहादत का काम बात बनाने और खुशामद से लिया जाता था। महीनों यही कैफियत रही। नदी किनारे के सभी जमींदार अपने नुकसान की फरियादें पेश कर गए। अगर कमीशन से किसी को कोई फायदा नहीं पहुंचा तो वह कुंअर सज्जनसिंह थे। उनके सारे मौजे सरयू के किनारे पर थे और सब तबाह हो गए थे, गढ़ी की दीवारें भी उसके हमलों से न बच सकी थीं, मगर उनकी जबान ने खुशामद करना सीखा ही न था और यहां उसके बगैर रसाई मुश्किल थी। चुनांचे वह कमीशन के सामने न आ सके। मियाद खतम होने पर कमीशन ने रिपोर्ट पेश की, बाढ़ में डूबे हुए इलाकों में लगान की आम माफी हो गई। रिपोर्ट के मुताविक सिर्फ सज्जनसिंह वह भाग्यशाली जमींदार थे, जिनका कोई नुकसान नहीं हुआ था। कुंअर साहब ने रिपोर्ट सुनी, मगर माथे पर बल न आया। उनके असामी गढ़ी सहन में जमा थे, यह हुक्म सुना तो रोने-धोने लगे। तब कुंअर साहब उठे और बुलंद आवाज में बोले—मेरे इलाके में भी माफी है। एक कौड़ी लगान न लिया जाए। मैंने यह वाकया सुना और खुद-ब-खुद मेरी आंखों से आंसू टपक पड़े। बेशक यह वह आदमी है, जो हुकूमत और अख्तियार के तूफान में जड़ से उखड़ जाए मगर झुकेगा नहीं।

4

वह दिन भी याद रहेगा जब अयोध्या में हमारे जादू-सा करने वाले कवि शंकर का राष्ट्र की ओर से बधाई देने के लिए शानदार जलसा हुआ। हमारा गौरव, हमारा जोशीला शंकर योरोप और अमरीका पर अपने काव्य का जादू करके वापस आया था। अपने कमालों पर घमंड करने वाले योरोप ने उसकी पूजा की थी। उसकी भावनाओं ने ब्राउनिंग और शेली के प्रेमियों को भी अपनी वफा का पाबंद न रहने दिया। उसकी जीवन-सुधा से योरोप के प्यासे जी उठे। सारे सभ्य संसार ने उसकी कल्पना की उड़ान के आगे सिर झुका दिए। उसने भारत को योरोप की निगाहों में अगर ज्यादा नहीं तो यूनान और रोम के पहलू में बिठा दिया था।

जब तक वह योरोप में रहा, दैनिक अखबारों के पन्ने उसकी चर्चा से भरे रहते थे। युनिवर्सिटियों और विद्वानों की सभाओं ने उस पर उपाधियों की मूसलाधार वर्षा कर दी थी। सम्मान का वह पदक जो योरोप वालों का प्यारा सपना और जिंदा आरजू है, वह पदक हमारे प्यारे जिंदादिल शंकर के सीने पर शोभा दे रहा था और उसकी वापसी के बाद आज

उन्हीं राष्ट्रीय भावनाओं के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए हिंदोस्तान के दिल और दिमाग अयोध्या में जमा थे।

इसी अयोध्या की गोद में श्री रामचन्द्र खेलते थे और यहीं उन्होंने वाल्मीकि की जादूभरी लेखनी की प्रशंसा की थी। उसी अयोध्या में हम अपने मीठे कवि शंकर पर अपनी मुहब्बत के फूल चढ़ाने आए थे।

इस राष्ट्रीय कर्त्तव्य में सरकारी हुक्काम भी बड़ी उदारतापूर्वक हमारे साथ सम्मिलित थे। शंकर ने शिमला और दार्जिलिंग के फरिश्तों को भी अयोध्या में खींच लिया था। अयोध्या को बहुत इंतजार के बाद यह दिन देखना नसीब हुआ।

जिस वक्त शंकर ने उस विराट् पंडाल में पैर रखा, हमारे हृदय राष्ट्रीय गौरव और नशे से मतवाले हो गए। ऐसा महसूस होता था कि हम उस वक्त किसी अधिक पवित्र, अधिक प्रकाशवान दुनिया के बसने वाले हैं। एक क्षण के लिए—अफसोस है कि सिर्फ एक क्षण के लिए—अपनी गिरावट और बर्बादी का खयाल हमारे दिलों से दूर हो गया। जय-जय की आवाजों ने हमें इस तरह मस्त कर दिया जैसे महुअर नाग को मस्त कर देता है।

एड्रेस पढ़ने का गौरव मुझको प्राप्त हुआ था। सारे पंडाल में खामोशी छाई हुई थी। जिस वक्त मेरी जबान से ये शब्द निकले—ऐ राष्ट्र के नेता ! ऐ हमारे आत्मिक गुरु ! हम सच्ची मुहब्बत से तुम्हें बधाई देते हैं और सच्ची श्रद्धा से तुम्हारे पैरों पर सिर झुकाते हैं...यकायक मेरी निगाह उठी और मैंने एक हृष्ट-पुष्ट हैकल आदमी को ताल्लुकेदारों की कतार से उठकर बाहर जाते देखा। यह कुंअर सज्जनसिंह थे।

मुझे कुंअर साहब की यह बेमौका हरकत, जिसे अशिष्टता समझने में कोई बाधा नहीं है, बुरी मालूम हुई। हजारों आंखें उनकी तरफ हैरत से उठीं।

जलसे के खत्म होते ही मैंने पहला काम जो किया वह कुंअर साहब से इस चीज के बारे में जवाब-तलब करना था।

मैंने पूछा—क्यों साहब, आपके पास इस बेमौका हरकत का क्या जवाब है ?

सज्जनसिंह ने गंभीरता से जवाब दिया—आप सुनना चाहें तो जवाब दूं।

"शौक से फरमाइए।"

"अच्छा तो सुनिए। मैं शंकर की कविता का प्रेमी हूं, शंकर की इज्जत करता हूं, शंकर पर गर्व करता हूं, शंकर को अपने और अपनी कौम के ऊपर एहसान करने वाला समझता हूं, मगर इसके साथ ही उन्हें अपना आध्यात्मिक गुरु मानने या उनके चरणों में सिर झुकाने के लिए तैयार नहीं हूं।"

मैं आश्चर्य से उसका मुंह तकता रह गया। यह आदमी नहीं, घमंड का पुतला है। देखें, यह सर कभी झुकता है या नहीं।

5

पूरनमासी का पूरा चांद सरयू के सुनहरे फर्श पर नाचता था और लहरें खुशी से गले मिल-मिलकर गाती थीं। फागुन का महीना था, पेड़ों में कोंपलें निकली थीं और कोयल कूकने लगी थी।

मैं अपना दौरा खत्म करके सदर लौटता था। रास्ते में कुंअर सज्जनसिंह से मिलने का चाव मुझे उनके घर तक ले गया, जहां अब मैं बड़ी बेतकल्लुफी से जाता- आता था।

मैं शाम के वक्त नदी की सैर को चला। वह प्राणदायिनी हवा, वह उड़ती हुई लहरें, वह गहरी निस्तब्धता—सारा दृश्य एक आकर्षक सुहाना सपना था। चांद के चमकते हुए गीत से जिस तरह लहरें झूम रही थीं, उसी तरह मीठी चिंताओं से दिल उमड़ा आता था।

मुझे ऊंचे कगार पर एक पेड़ के नीचे कुछ रोशनी दिखाई दी। मैं ऊपर चढ़ा। वहां बरगद की घनी छाया में एक धूनी जल रही थी। उसके सामने एक साधू पैर फैलाए बरगद की एक मोटी जटा के सहारे लेटे हुए थे। उनका चमकता हुआ चेहरा आग की चमक को लजाता था। नीले तालाब में कमल खिला हुआ था।

उनके पैरों के पास एक दूसरा आदमी बैठा हुआ था। उसकी पीठ मेरी तरफ थी। वह उस साधू के पैरों पर अपना सिर रखे हुए था, पैरों को चूमता था और आंखों से लगाता था। साधू अपने दोनों हाथ उसके सिर पर रखे हुए थे कि जैसे वासना, धैर्य और संतोष के आंचल में आश्रय ढूंढ़ रही हो। भोला लड़का मां-बाप की गोद में आ बैठा था।

एकाएक वह झुका हुआ सर उठा और मेरी निगाह उसके चेहरे पर पड़ी। मुझे सकता-सा हो गया। यह कुंअर सज्जनसिंह थे। वह सर जो झुकना न जानता था, इस वक्त जमीन चूम रहा था।

वह माथा जो एक ऊंचे मंसबदार के सामने न झुका, जो एक प्रतापी वैभवशाली महाराजा के सामने न झुका, जो एक बड़े देशप्रेमी कवि और दार्शनिक के सामने न झुका, इस वक्त एक साधू के कदमों पर गिरा हुआ था। घमंड, वैराग्य के सामने सिर झुकाए खड़ा था।

मेरे दिल में इस दृश्य से भक्ति का एक आवेग पैदा हुआ। आंखों के सामने से एक परदा-सा हटा और कुंअर सज्जनसिंह का आत्मिक स्तर दिखाई दिया। मैं कुंअर साहब की तरफ चला। उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर अपने पास बिठाना चाहा लेकिन मैं उनके पैरों से लिपट गया और बोला—मेरे दोस्त, मैं आज तक तुम्हारी आत्मा के बड़प्पन से बिल्कुल बेखबर था। आज तुमने मेरे हृदय पर उसको अंकित कर दिया कि वैभव और प्रताप, कमाल और शोहरत यह सब घटिया चीजें हैं, भौतिक चीजें हैं। वासनाओं में लिपटे हुए लोग इस योग्य नहीं कि हम उनके सामने भक्ति से सिर झुकाएं। वैराग्य और परमात्मा से दिल लगाना ही वे महान् गुण हैं जिनकी ड्योढ़ी पर बड़े-बड़े वैभवशाली और प्रतापी लोगों के सिर भी झुक जाते हैं। यही वह ताकत है जो वैभव और प्रताप को, घमंड की शराब के मतवालों को और जड़ाऊ मुकुट को अपने पैरों पर गिरा सकती है। ऐ तपस्या के एकांत में बैठने वाली आत्माओ ! तुम धन्य हो कि घमंड के पुतले भी तुम्हारे पैरों की धूल को माथे पर चढ़ाते हैं।

कुंअर सज्जनसिंह ने मुझे छाती से लगाकर कहा—मिस्टर वागले, आज आपने मुझे सच्चे गर्व का रूप दिखा दिया और मैं कह सकता हूं कि सच्चा गर्व सच्ची प्रार्थना से कम नहीं। विश्वास मानिए, मुझे इस वक्त ऐसा मालूम होता है कि गर्व में भी

आत्मिकता को पाया जा सकता है। आज मेरे सिर में गर्व का जो नशा है, वह कभी नहीं था।

['सरे-पुरगुरूर' शीर्षक से उर्दू में प्रथम प्रकाशन। 'जमाना', अगस्त, 1916 में प्रकाशित। उर्दू कहानी-संग्रह 'प्रेम बत्तीसी' में संकलित। हिन्दी रूप 'घमण्ड का पुतला' शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-1 में संकलित।]

अपने फन का उस्ताद

जिस ज़माने का वाक़िआ (क़िस्सा) मैं लिखना चाहता हूँ, उसके छः माह कब्ल (पहले) कलकत्ता के मशहूर अलायंस बैंक में चोरी हो गयी थी। इसमें कोई शक नहीं कि यह चोरी उसी बैंक के खजांची हरेन्द्र और उसके मआविन (सहायक) भवनचन्द्र की करतूत थी। चोरी होने के बाद ही से वे दोनों लापता थे। पुलिस ने बहुतेरा सर मारा, मगर अभी तक उनका सुराग़ नहीं मिला।

मैं यूनियन थियेटर का मालिक हूँ। उस ज़माने में हमारे डिरामानवीस (नाटककार) हेम बाबू ने एक नाटक 'अज़मत-ए-कश्मीर' के नाम से लिखा था। हालाँकि यह उनकी पहली ही तसनीफ़ (कृति) थी, मगर मैं उसे खेलने पर राज़ी हो गया। उस वक़्त मुझे यह फ़िक्र दामनगीर थी कि ऐसी क्या तरकीब करूँ कि खेल वाले दिन खूब हुजूम हो।

कई दिन सोचते-सोचते मुझे एक तरकीब सूझी, जिसे अमली सूरत में लाने के लिए मैं हेम बाबू से मुलाक़ात करने गया।

सात बजे का वक़्त था। हेम बाबू बिस्तर से उतरकर चाय पीने बैठे थे। मुझे देखते ही आग हो गये। बड़ी रुखाई से बोले, "अब क्या ? फिर कहीं रद्दो-बदल कराने चले हो क्या ? अगर ऐसा है तो आप सीधे रास्ते वापस जाइए। अब मैं एक लफ्ज क्या, एक हर्फ़ (अक्षर) तक न बदलूँगा। आपको सौ दफ़ा ग़रज़ हो तो मेरा नाटक खेलिए। आपको नाटक क्या दिया, अपने सर ज़हमत ले ली। सब कामों की एक हद होती है, मगर आपने तो हमारी नाक में दम कर दिया। हमेशा यही लगाये रहते हो कि यहाँ यूँ बना दीजिए, वहाँ से यह निकाल दीजिए। आख़िर कोई कहाँ तक बरदाश्त करे। इससे तो यही बेहतर है कि आप बराहे-करम (कृपा करके) मेरी किताब वापस कर दीजिए। मैं इस खेल से बाज़ आया।"

मेरी हँसी रोके न रुकती थी। मुझे हँसते देखकर हेम बाबू और भी ज़्यादा बिगड़े, "जी हाँ, खूब हँसिए। हँसने में कुछ खर्च तो होता नहीं। अगर आपको मालूम होता कि ऐसी बातों से मुसन्निफ़ (लेखक) के दिल को कितना सदमा होता है, कितनी रूहानी तक़लीफ़ (आत्मिक पीड़ा) होती है....।"

अबकी बार मैंने जूँ-तूँ करके हँसी रोकी और उनकी बात काटकर बोला, "जनाबे-मन (मेरे श्रीमान्), ठहरिए, ठहरिए ! मैं जिस काम के लिए आपकी ख़िदमत में हाज़िर हुआ हूँ, वह और ही काम है।"

यह सुनकर उनका गुस्सा और भी बढ़ा। झुँझलाकर बोले, "तो फिर अब तक क्यों नहीं कहा ? वह काम कौन-सा है ?"

"बतलाता हूँ, सुनिए। मैं चाहता हूँ कि आपका नाटक बड़ी धूमधाम से खेला जाय।"

यह सुनकर हेम बाबू ठंडे पड़े। मुस्कराकर बोले, "देखिए देवेन्द्र बाबू, कल रात को खटमलों के मारे आँख तक नहीं लगी। तबीयत बदमज़ा है। झुँझलाहट में अगर आपको कुछ कह-सुन दिया तो माफ़ कीजियेगा। हाँ तो, इस बारे में आप क्या तजवीज़ (प्रस्ताव) करते हैं ?"

मैंने जवाब दिया, "मेरी तरकीब बिलकुल अछूती है। आइए, आप और मैं काश्मीर चलकर.... ।"

हेम बाबू ने क़ता कालाम करके (बात काटकर) कहा, "कशमीर चलकर ? आप क्या कहते हैं ? कश्मीर हिन्दुस्तान की शुमाली हद (उत्तरी सीमा) पर है। क्या हम लोग इतनी दूर जायेंगे ? यह ठीक नहीं। यह ग़ैरमुमकिन-सा मालूम होता है। कोई दूसरी तरकीब हो तो बतलाइए।"

हेम बाबू जितने ही मोटे हैं, उतने ही काहिलुलवजूद (आलसी) हैं। एक जगह से दूसरी जगह जाना उनके नज़दीक मलकुल-मौत (यमदूत) के यहाँ जाने से कम नहीं। काहिली (आलस्य) ही तक नहीं, एक मुश्किल और भी थी। वह हाल ही में दूसरी शादी करके लाये थे। बुढ़ापे में उस सोलह साला नाज़नीन (सुन्दरी) के पीछे दीवाने हो रहे थे। उससे एक लम्हें की जुदाई शाक़ (दुखद) थी। हमेशा उसके आँचल के कोने में बँधे रहना चाहते थे। क़न्द-ए-मुकर्रर (दुगुना मिठास) का लुत्फ़ कौन नहीं जानता था। इसलिए मुझे उनके कश्मीर न जाने पर ज़रा भी तआज़्जुब नहीं हुआ। मैं तो यह पहले ही सोच चुका था और इसके लिए तैयार था।

मैंने हँसते हुए उन्हें समझाकर कहा, "अजी, आपने पूरी बात तो सुनी ही नहीं। मैं सचमुच कश्मीर चलने को थोड़े ही कहता हूँ। हम और आप किसी गाँव में चलकर तीन माह तक छुपे रहें। उधर मेरे गोयन्दे (कहने वाले) अख़बारों में ख़बर उड़ा देंगे कि यूनियन थिएटर के मालिक और 'अज़मत-ए-कशमीर' के मुसन्निफ़ (लेखक) दोनों कशमीर से तारीख़ी तसावीर (ऐतिहासिक चित्र) ज़मा करने के लिए साथ-साथ कशमीर गये हैं। वहाँ के रस्मो-रिवाज और मआशरत (समाज) के नज़ारे (दृश्य) फ़राहन (एकत्र) कर रहे हैं। इस धूमधाम से 'अज़मत-ए-कशमीर' अबकी खेला जायेगा। आज तक कोई डिरामा इतनी तैयारियों से नहीं खेला गया और न अब शायद खेला जाय। नाटक क्या होगा, कशमीर की पुरफिज़ा (सुहानी) सैर होगी, वग़ैरा, वग़ैरा। इसके बाद वह कहेंगे कि आज दोनों सैयाह (पर्यटक) फलाँ पहाड़ की चोटी पर पहुँचे, और उसका फोटो लिया। आज फलाँ बात की तहक़ीक (खोज) की। आज फलाँ झील की सैर की। आज फलाँ मजलिस-ए-रक्स-ओ-सरोद (नाच-गाने की सभा) में शरीक हुए और उसकी तस्वीर मय हसीनान-ए-कशमीर (कशमीर की सुन्दरियों के साथ) के उतारी। ग़रज़ रोज़मर्रा अख़बारों में इसी क़िस्म की ख़बरें शाया (प्रकाशित) की जायेंगी। तीन महीने में अच्छी हलचल हो जायेगी, और जब खेल होगा तो

उस दिन सारा शहर उमड़ आयेगा। बैठने वालों को जगह न मिलेगी। नाकाम लौट जायेंगे।"

मैंने जब नाटक के कामयाबी की ऐसी शानदार तस्वीर खींची, तो हेम बाबू के चेहरे पर हल्का-हल्का तबस्सुम (मुस्कान) नज़र आया। वह तकिये के सहारे लेटे हुए मेरी बातों को बड़ी गौर से सुन रहे थे। शायद ख़्याल में उन्हें शब-ए-अव्वल (पहली रात) की आमदनी के नोट और अशर्फियों के ढेर-के-ढेर नज़र आ रहे थे। बेचारे हँसी को रोकते थे, मगर वह रोके न रुकती थी। जब मैं ख़ामोश हुआ तो वह खुशी से बोले, "वाह ! बाबू साहब वाह! क्या तरकीब सोची है। बस अब इसमें देर न कीजिए। आपको भी परमात्मा ने क्या दक़ीकारस (सूक्ष्मदर्शी) अक़्ल दी है। मुझे तो ख़्वाब में भी यह न सूझता।"

मैंने पूछा, "तो आप चलने को मुस्तैद हैं ?"

हेम बाबू तआज़्जुब (अचम्भा) से बोले, "मैं ! वाह, आप भी क्या कहते हैं ! भला मैं कैसे चल सकता हूँ। देखिए, मुझे एक ख़ास बीमारी है। वक़्तन-फ़वक़्तन (कभी-कभी) उसका दौरा हो जाता है। आजकल तो उसने बहुत दिक़ कर रखा है। मुझे कहाँ ले चलियेगा। आप अकेले ही जाइए न !"

मैंने कहा, "अकेले नहीं हो सकता। सारा खेल बिगड़ जायेगा। हम दोनों को साथ जाना चाहिए।"

हेम बाबू थोड़ी देर कुछ सोचकर बोले, "लेकिन इस काम में कोई आफ़त आने का खौफ़ तो नहीं ? मान लो, किसी ने देख लिया तो फिर ? और यह तो बताइए, चलियेगा कहाँ ?"

मैंने जवाब दिया, "अभी इसका फ़ैसला नहीं कर सकता। रात ही को तो यह तरकीब सूझी है, और इस वक़्त आपसे सलाह लेने चला आया। चलना ऐसी जगह चाहिए, जहाँ कलकत्ता के बहुत थोड़े आदमी हों। छुपकर रहने के लिए जगह की कमी नहीं और न बहुत दूर ही जाना पड़ेगा। अभी उस दिन हरेन्द्र और भवन बैंक पर हाथ साफ़ करके गायब हुए और उनका पता नहीं। मुझे तो यक़ीन है कि वे करीब ही के किसी गाँव में रूपोश (छिपे हुए) हैं और इधर पुलिस सारे शहर की ख़ाक छान रही है। हाँ, आपने रामनगर का नाम कभी सुना है ?"

"नहीं, क्यों ?"

"वह मुक़ाम जाड़े में ऐसा वीरान हो जाता है, जैसे अरब का रेगिस्तान। वहाँ नाम बदलकर रहने से किसी को हमारी खबर न होगी। रामनगर के पास ही एक नदी है। शाम-सवेरे आप इस नदी के किनारे टहलियेगा। इससे आपकी सेहत को भी नफ़ा होगा।"

"मैं बिल्कुल तन्दुरुस्त हूँ। देहात जाकर सेहत हासिल करने की ज़रूरत मुझे नहीं है, और फिर महीने-पन्द्रह दिन की बात होती तो ख़ैर। तीन-तीन महीने ! ग़ज़ब रे ग़ज़ब !"

बहुत बहस-ओ तकरार के बाद हेम बाबू ने सोचकर जवाब देने का वायदा किया। मतलब यह था कि बीवी से सलाह ले लूँ।

2

मुस्तक्बिल (भविष्य) के सब्ज़ बाग़ दिखाकर आख़िर मैंने हेम बाबू को बड़ी मुश्किल से अपने साथ चलने पर राज़ी किया।

एक हफ़्ते के अन्दर ही तमाम तैयारियाँ मुकम्मिल हो गयीं। हम लोग स्टेशन पर पहुँचे। टिकट लेकर गाड़ी में बैठने के बाद हेम बाबू ने जो मुहर्रमी सूरत बनायी, वह मुझे कभी नहीं भूलेगी। इतना ग़म तो उन्हें पहली बीवी के मरने पर भी नहीं हुआ था। बेचारे की सूरत पर तरस आता था। स्टेशन से मैंने दो अंग्रेज़ी अख़बार खरीद लिये थे। उन दोनों में ही हम दोनों के कशमीर जाने की बड़ी लम्बी-चौड़ी ख़बर दर्ज़ थी। ऐसा मालूम होता था, गोया हम लोग सचमुच कशमीर जा रहे हैं।

सफ़र ख़त्म हुआ। हम लोग रामनगर पहुँचे। गाँव बहुत छोटा था, और सब खाली पड़ा था। हम लोगों को मकान किराये पर आसानी से मिल गया। मैंने मकान-मालिक से कह दिया कि मेरे दोस्त की सेहत ख़राब है। यहाँ हम लोग आब-ओ-हवा तबदील करने आये हैं।

पाँच-सात दिन गुज़रे पर बसन्ती हवा चलने लगी। एक दिन मैंने हेम बाबू से पूछा, "कहिए, कैसी जगह है ?"

हेम बाबू मुँह बनाकर बोले, "अरे राम-राम ! ऐसी जगह भी आदमी आते हैं ! न कोई दिलचस्पी, न तफ़रीह (मनोरंजन)। गाँव क्या है, मरघट है। बैठे-बैठे जी उकता जाता है। कोई काम न काज, शाम को निठल्ले बैठे रहते हैं।"

थोड़ी देर के बाद वह फिर बोले, "कहिए, कितने दिन गुज़र गये ? मेरा तो नाक में दम आ गया इस गन्दे मकान में बैठे-बैठे। मैं तो सड़ गया। कहीं ज़रा घूमने-फिरने का मौक़ा नहीं। मैं मोटा ऐसा-बेहिसाब हूँ कि रास्ते में निकलने से लड़कों से पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो जाता है। ख़ैरियत इतनी है कि इस गाँव में लड़के ज़्यादा नहीं हैं। नहीं तो अब तक मैं सचमुच पागल हो जाता।"

ये बातें मेरे लिए कुछ नयी न थीं। रोज़ ही दुखड़ा रहता था। हँसी रोककर मैंने इतना ही कहा, "हम लोगों को यहाँ आये सिर्फ़ तीस दिन ही हुए हैं। अभी सत्तर दिन और बाक़ी हैं। फिर पौबारा है, नसीब का सितारा चमकेगा।"

हेम बाबू अफ़्सुर्दगी (फीकेपन) से बोले, "जी हाँ, अगर मैं उस वक़्त तक ज़िन्दा रहा तो। यहाँ तो एक-एक दिन कटना मुश्किल है। अगर बीच में लुढ़क गया तो वह दौलत किसके काम आयेगी ? अभी सत्तर दिन हैं। यह कहिए पूरा एक ज़माना पड़ा है। नहीं मैनेज़र साहब ! इससे तो यही बेहतर है कलकत्ता लौट चलिए। सच कहता हूँ, यहाँ की हवा मेरे लिए नाकाबिले-बरदाश्त हो गयी है। सेहत भी ख़राब हो चली है। यह भी फ़िक्र लगी हुई है कि वहाँ कोई मेरी सुध करके कराह रहा होगा।"

मुझे तो मालूम ही था कि नयी बीवी से अलग रहकर हेम बाबू कभी ख़ुश और तन्दुरुस्त नहीं रह सकते। बात टालकर बोला, "लेकिन अब कलकत्ता जाने की कौन सूरत हो सकती है ? यह सत्तर दिन तो यहाँ काटने पड़ेंगे।"

हेम बाबू ने एक ठण्डी साँस भरी और ख़ामोश हो गये।

3

एक दिन मैं हेम बाबू को डेरे पर छोड़कर कुछ काग़ज़ खरीदने बाज़ार गया था। वहाँ देखा कि दुकान के अन्दर तख़्त पर बैठा हुआ एक आदमी ज़ोर-ज़ोर से इस दिन का अख़बार पढ़ रहा था, और कई बेकार आदमी बैठे सुन रहे थे। मज़मून था, हमारे फ़र्ज़ी सियासत (राजनीति) का।

मैं वहाँ खड़ा ही था कि एक दुबले-पतले आदमी ने एक पैसा फेंका और चाय माँगी। मैंने दिल में सोचा कि क्या ऐसे फटेहाल आदमी को भी चाय का शौक होता है ? उस आदमी को अपनी तरफ़ घूरते देखकर मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ। बहुत सोचा, मगर याद न आया कि उसे कहाँ देखा है। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि मैं घबरा गया। उसका घूरना देखकर मुझे यक़ीन हो गया कि मैं उसे नहीं पहचानता तो क्या, मगर वह मुझे ज़रूर पहचानता है। मेरे ख़ौफ़ का सबब (कारण) ज़ाहिर था। कहीं उसने अख़बारों में मेरे सफ़र का हाल पढ़ा हो और मुझे यहाँ इस तरह ब यक बीनी व दो गोश (एक आँख और दो कानों से) देखकर भांडा फोड़ दे तो सारा खेल बिगड़ जाये। हम लोगों की सारी पोल खुल जावेगी और आज ही कल में इस धोकेबाज़ी का हाल सारे मुल्क में मशहूर हो जायेगा। फिर तो हम मुँह दिखाने के लायक न रहेंगे। मारे फ़िक्र के मैं बदहवास हो गया। दिल में अपने को कोसने लगा।

ख़ैर, दुकानदार को पैसे देकर मैं जल्द-जल्द क़दम बढ़ाता हुआ घर की तरफ़ चला। पर दो ही चार क़दम चला था कि पीछे से किसी ने पुकारा, "अजी साहब ! अजी देवेन्द्र बाबू !"

मैंने पीछे फिरकर कहा, "आप भूलते हैं साहब ! मेरा नाम देवेन्द्र बाबू नहीं है।"

उसने जवाब दिया, "क्यों साहब, आप झूठ क्यों बोलते हैं ? मैं आपको खूब पहचानता हूँ। मगर उसे जाने दीजिए। बराहे करम पाँच मिनट ठहरकर मेरी दो बातें सुन लीजिए। थिएटर में जाकर तो आपसे मुलाक़ात होने की नहीं।"

अब मुझे कोई शक न रहा कि यह शख़्स मुझे पहचानता है। लाचार खड़ा होकर बोला, "आप मुझसे क्या चाहते हैं ?"

वह कहने लगा, "मैं एक एक्टर हूँ। बचपन ही से मुझे नक़्ल करने का शौक है। इतनी उम्र में मैं सभी क़िस्म के नाटक खेल चुका हूँ। मुझमें एक्ट करने की ख़ास लियाक़त है, मगर कोई ज़ामिन (ज़मानती) न मिलने के बाइस (कारण) मुझे कलकत्ता में नौकरी न मिली। जब तक कोई मेरी सिफ़ारिश न करे, किसी को क्यों मेरे ऊपर यकीन आयेगा! मैंने आपको इतना वक़्त जाया (नष्ट) किया। माफ़ कीजिए। मेरी दरख़्वास्त है कि एक बार मुझे काम देकर देखिए कि फ़िलवाक़े (यथार्थ में) मुझे खेलना आता है या नहीं !"

उसकी बातें सुनने से यह मालूम हो गया कि उसे अभी तक हम लोगों के कशमीर जाने की ख़बर नहीं है, मगर कौन जाने कि आधा ही घण्टे बाद यह ख़बर उससे छुपी रहेगी। समझ में न आया कि क्या करूँ ? अगर उसे नौकरी न दूँ तो यह ज़रूर लोगों से इस मुलाक़ात का तज़करा (चर्चा) करेगा। फिर तो मेरे लिए डूब मरने का मुक़ाम होगा। मैंने पूछा, "तो आप कौन पार्ट अच्छी तरह खेल सकते हैं ?"

शायद मारे खुशी के उसने मेरी बातों को नहीं सुना। बोला, "अजी, मैं बहुत थोड़ी तनख़्वाह पर राजी हो जाऊँगा।"

मैंने कहा, "चलिए थोड़ी दूरी तक बातें करते चलें। अच्छा, आपको काम देने के कब्ल (पहले) एक बार आपका इम्तहान ज़रूरी है कि आया (क्या) आप में इस काम का माद्दा भी है या नहीं। आप जानते हैं कि यूनियन थिएटर के मामूली मुलाज़िम भी ज़रूरत पड़ने पर एक्ट कर सकते हैं, तो आपके गाँव में कोई अमेच्योर थिएटर भी नहीं है ? क्या कोई ठेके का काम भी नहीं मिलता ?"

उसने ठण्डी साँस लेकर कहा, "जी नहीं। यहाँ कोई काम नहीं मिलाता, इस वजह से ही घर बैठा हूँ।"

"मगर आप तो नाटकों की दुनिया से इतनी दूर पड़े हुए हैं।"

"जी हाँ, इसका सबब है कि मैं तनहा नहीं हूँ। मेरी एक छोटी लड़की भी है।"

"कलकत्ता में भी तो कितने ही ऐक्टर बाल-बच्चों के साथ रहते हैं।"

"जी हाँ, उनकी वैसी ही चलती भी तो है। फिर मेरे जैसा बेकार आदमी किस बूते पर जाकर कलकत्ता में रहे ? ग़रीब आदमी की लड़की जो देखेगा, दुत्कारेगा। मुझे सारी उम्र इस गाँव में काटनी मंजूर है, मगर अपनी लड़की को मौत के मुँह में न डालूँगा। वही मेरी सारी उम्र की कमाई है।"

"हाँ, आपका नाम क्या है ?"

"जी, मेरा नाम प्रान पदयान है।"

"तो प्रान बाबू, आपका खेल देखे बग़ैर तो मैं आपको काम नहीं दे सकता। आप ही सोचिए, इसमें कोई बेज़ा बात तो नहीं है ?"

"नहीं, बेज़ा क्या है ? तो आप मुझे इत्तला देंगे ?"

"हाँ, तो मैं क्या कह रहा था ? मेरे पास से आपको ख़बर मिलने में ज़रा देर लगेगी। 'अज़मत-ए-कशमीर' नाटक जब शुरू हो जाय तो आप एक ख़त लिखकर मुझे याद दिला दीजियेगा। मैं यहाँ कुछ अर्से तक न रहूँगा। कल सबेरे की गाड़ी से कशमीर जाऊँगा। अख़बारों में आज हम लोगों के कशमीर जाने की ख़बर निकल चुकी है। यह किसी पर ज़ाहिर नहीं होना चाहिए कि आप आज मुझे मिले। आपकी बात मुझे याद रहेगी।"

उसे शायद मेरी बातों का यकीन न आया। वह चुपचाप खड़ा रहा, तब अफ़सोसनाक लहज़े में बोला, "बाबू साहब, आपने मेरे साथ जिस भलमंसी का इज़हार (व्यक्त) किया है, उसका मैं मशकूर (कृतज्ञ) रहूँगा। मगर आपने मेरे साथ सुलूक क्या किया है ? मैं तो जूँ का तूँ फ़ाकामस्त बना रहा।"

"नहीं-नहीं, आप मायूस न हों। मैं बहुत जल्द आपको इत्तला दूँगा।" मुझे नहीं मालूम था कि तक़दीर की नौरंगियाँ (भाग्य की विचित्रताएँ) उस दिन उसी से दो-चार करेंगी।

4

मैंने डेरे पर आकर देखा कि हेमबाबू ख़्वाब-ए-ख़रगोश (गहरी नींद) में मुब्तला हैं। नाक

नग़्मा-सराई (गीत गाना) कर रही थी। मैंने उन्हें फ़ौरन जगाकर कहा, "कपड़े वगैरा जल्द समेटकर तैयार हो जाएं। आज ही यहां से भागना पड़ेगा।"

हेम बाबू ने मुतहैयर (अचम्भे में) होकर पूछा, "क्यूँ, क्या वात है ?"

"बात है मेरा सर। यहाँ एक कमबख़्त छोकरा है जो मुझे पहचानता है। मैं उससे कह आया हूँ कि हम लोग आज ही कशमीर चले जायेंगे। इसी से कहता हूँ, आज चल दें कि कल वह हमें यहाँ न देख पाये।"

हेम बाबू लेटे थे। उठ बैठे और बोले. "तो हम लोगों को कलकत्ता चलना होगा न?"

"अरे, नहीं-नहीं। यह क्यूँ मुमकिन है ? कहीं और चलेंगे।"

"क्यूँ ? हम लोग क्या चोर हैं ? अच्छा देवेन्द्र बाबू, इस तरह इधर-उधर मारे-मारे फिरने से क्या यह अच्छा न होगा कि मैं कलकत्ता लौट जाऊँ ? वहाँ मैं खूब ख़बरदारी से घर के दरवाज़े बन्द करके बैठा रहूँगा। कोई पता न पा सकेगा। यह सबसे अच्छा होगा।"

मैंने हेम बाबू की बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। इस वक़्त शाम हो रही थी। घर में चारों तरफ़ अँधेरा छाया हुआ था। हम लोग रोशनी के इंतज़ार में बैठे हुए थे। थोड़ी देर के बाद एक अजनबी आदमी रोशनी लिये हुए दाखिल हुआ। उसे देखकर मैं जितना नहीं चौंका था, उसकी बातें सुनकर चौंक पड़ा। हज़रत कहते क्या हैं कि तुम लोग अलाइंस बैंक से रुपया चुराकर भागे हो। वह हज़रत पुलिस के इन्स्पेक्टर थे, और हमीं लोगों के सुराग़ में कलकत्ता से आये थे।

हम दोनों बाहम (आपस में) एक-दूसरे की तरफ़ देख रहे थे। समझ लिया कि अब एक ऐसा मौक़ा आ पड़ा है कि नाम छुपाने से काम नहीं चलेगा। मैंने हिम्मत करके इन्स्पेक्टर से कहा, "जनाब, आप भूलते हैं। मेरा नाम देवेन्द्रनाथ है। मैं यूनियन थिएटर का मालिक हूँ और आपका नाम हेमेन्द्रनाथ है। घर भी कलकत्ते में हैं। नाहक़ हम लोगों को दिक़ न कीजिए।"

उस पर हमारी बातों वातों का ज़रा भी असर न हुआ। मेरी जेब में मेरे नाम के कार्ड थे। मैंने एक कार्ड निकालकर कहा, "पता देखिए, मेरे नाम का कार्ड है।"

इन्स्पेक्टर ने सर हिलाकर कहा, "इसमें क्या रखा है ? इसमें तो कोई ख़ास बात नहीं जो आपको बेख़ता साबित कर दे। फिर यह कौन कह सकता है कि आपने देवेन्द्र नाम के कार्ड चुराकर नहीं लिये ? मैं यह सब बातें नहीं सुनना चाहता। आप लोग मेरे साथ आयें। मेरे सिपाही बाहर खड़े हैं। थाने में चलकर कहिए। चलिए-चलिए, उठिए।"

यह कहकर वह मेरी तरफ़ बढ़ा। मैंने गुस्से से कहा, "ख़बरदार, मेरे बदन से हाथ न लगाना वरना जहन्नुम-रसीद कर दूँगा (नरक में पहुँचा दूँगा)। मैं कोई ऐसा-वैसा आदमी नहीं हूँ। मैं यूनियन थिएटर का मालिक हूँ। मुझे मामूली आदमी मत समझना। ख़ाक में मिला दूँगा। फिर पैरों पर गिरकर नाक रगड़ने भी चटनी किये बग़ैर न छोड़ूँगा।"

फिर भी वह अटल रहा। मेरी तरफ़ देखकर बोला, "हरिन्द्र का हुलिया बिल्कुल आपसे मिलता है। ऊँचा कद, मूँछें मुँडी हुई, पेशानी ऊँची। फिर भुवन के हुलिये में सर के बाल बढ़े हुए, उम्र पचास साल, जिस्म निहायत फरबा (मोटा), जो अलामतें (लक्षण) मुझे बतायी गयी हैं, वह सब आपके साथी साहब से मिलती हैं। फ़िजूल का बखेड़ा न कीजिए,

चुपचाप मेरे साथ चले आइए।"

हेम बाबू गरजकर बोले, "निरा गधा है। क्यूँ रे अहमक़ (मूर्ख), क्या सारे कलकत्ता में भुवन के सिवा और कोई मोटा आदमी है ही नहीं ?"

"अजी साहब, यह किसी और से जाकर पूछिए। यह न मैं जानता हूँ और न जानना चाहता हूँ।"

हेम बाबू दाँत पीसकर बोले, "मैं तुम्हें जताये देता हूँ, अब भी समझ जाओ। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। अपनी खैरियत चाहते हो तो ठण्डे-ठण्डे घर की राह लो, वरना मेरा मारा पानी भी नहीं माँगता। भुवन ही सारी दुनिया में मोटा आदमी है, यह कहाँ की मन्तिक़ (तर्क) है ? भुवन भी मोटा था और मैं भी ज़रा मोटा आदमी हूँ। बस, इसके यही मानी हैं कि मैं भुवन हूँ ?"

उसने मज़ाक में हँसकर कहा, "और इसी का क्या सबूत है कि आप भुवन नहीं है? अपनी बरीयत (बचाव) के सबूत में तो आपके पास बस यही एक कार्ड है न ? मगर इसका गवाह कौन है कि आप में से एक साहब देवेन्द्र बाबू हैं ? जाने दीजिए, बहुत हो गया। अब मेरे साथ चलिए। मेरे पास जाया (नष्ट) करने के लिए ज़रा भी वक़्त नहीं है। आप जैसे हज़रात की बदौलत मरने की भी फ़ुरसत नहीं।"

मैंने कहा, "अच्छा, मैं यहाँ के किसी आदमी से साबित करा दूँ कि मै हरेन्द्र नहीं हूँ, तब तो फिर हम लोगों से कोई मतलब न रहेगा ?"

हेम बाबू ने अथाह नदी में सहारा पाकर पूछा, "उसी आदमी की बात है न, जिससे आज आपकी मुलाक़ात हुई थी ?"

इन्स्पेक्टर साहब ने कहा, "मैंने अपनी दानिस्त (जानकारी) में तो किसी आदमी को नहीं छोड़ा जिससे आप लोगों की निस्बत (सम्बन्ध में) दरयाफ़्त न किया हो।"

मैंने ज़ोर देकर कहा, "मगर यहाँ कम-से-कम एक आदमी ऐसा ज़रूर है, जो मुझसे वाक़िफ है और वह भी यहाँ का नया नहीं, पुराना बाशिन्दा है।"

"ख़ैर, उसका नाम बताइए।"

मैंने कहा, "उसका नाम ? बात यह है कि मुझे उसका नाम नहीं आता है।" इस वक़्त महज़ उससे गला छुड़ाने के लिए कह दिया था कि आपकी बात मुझे याद रहेगी। बहुत देर सोचने पर भी मुझे उसका नाम याद न आया तो मैंने जवाब दिया, "जनाब, उसका तो नाम याद नहीं पड़ता।"

इन्स्पेक्टर बोला, "यह तो मैं पहले ही समझ गया था कि यह सब हीलेबाजी है। अच्छा तो देर न कीजिए। फौरन मेरे साथ चलिए।"

मैंने क़ता कलाम करके (बात काटकर) कहा, "नहीं-नहीं, उससे आज ही मेरी मुलाक़ात हुई है। नाम होंठों पर ही है, ज़रा ठहरो, मैं बताता हूँ।"

हेम बाबू मायूस होकर बैठ गये। पुलिस इन्स्पेक्टर ने कहा, "बहुत देर देख लिया, अब नहीं ठहर सकता। चलिए-चलिए, उठिए।"

मैंने अपने हाफ़ज़े (स्मरण-शक्ति) पर इन्तहा का ज़ोर सर्फ़ किया। आख़िर नाम याद आ गया। मैं उछलकर बोला, "लीजिए, लीजिए, याद आ गया। उसका नाम है प्रान पदपान।"

उसने अपने पॉकेट-बुक में यह नाम दर्ज़ कर लिया। फिर बोला, "इससे कहाँ मुलाक़ात होगी ?"

मैंने जवाब दिया, "मैं क्यूँकर बता सकता हूँ ? इस गाँव के किसी आदमी से जाकर पूछो और खूब समझ लो। इस गाँव के एक ऐसे आदमी का नाम बता दिया है जो मुझे पहचानता है। अब भी अपनी ख़ैरियत चाहते हो तो उसे बुलाकर तहक़ीक़ कर लो। तुम्हारे लिए एक आफ़त से निजात (छुटकारा) पाने का आख़िरी मौक़ा है।"

इन्स्पेक्टर ने कहा, "अच्छा तो मैं भी आपसे कहे देता हूँ कि अगर वह आदमी ढूँढ़ने से भी न मिला तो आपकी ख़ैरियत नहीं है।"

उसने जँगले के पास जाकर एक छोटी-सी सीटी बजायी। उसके बाद दबी ज़ुबान से किसी से कहा, "जाओ, यहाँ प्रानपदपान नाम का कोई आदमी है। उसे बुला लाओ और उससे पूछना कि क्या आज यूनियन थिएटर के मालिक देवेन्द्र बाबू से उसकी मुलाक़ात हुई थी ?"

फिर वह वापिस आकर हम लोगों के पास बैठ गया। जो आदमी प्रानपद को बुलाने गया था, हम लोग उसका बड़े इज़तराब (बेचैनी) से इन्तज़ार कर रहे थे। उफ़ ! इतना वक़्त कितनी मुश्किल से कटा। इन्स्पेक्टर बैठे-बैठे उक्ताकर बाहर चला गया।

ज़रा देर के बाद हेम बाबू बोले, "सुनते हैं कुछ ? मालूम होता है कि वह आदमी लौट आया है। यह सुनिए, वह बातें कर रहे हैं।"

कुछ मिनट और गुज़र गये। इन्स्पेक्टर ने तनहा घर में आकर कहा, "प्रानपद बाबू से मेरे आदमी की मुलाक़ात हुई और उन्होंने भी कहा कि आज सवेरे देवेन्द्र बाबू से वह मिले थे। लेकिन इससे क्या हो सकता है ? आप दोनों में से कौन देवेन्द्र बाबू हैं ? यह मुझे कैसे मालूम हो ? प्रानपद बाबू बैठे अपनी लड़की को कहानी सुना रहे हैं। इस वक़्त न आ सकेंगे। अब फ़िज़ूल देर क्यूँ की जाय। चलिए फौरन थाने में।"

आलम-ए-यास (निराश होकर) में मेरे मुँह से निकला, "या परमात्मा !" सच कहने में हर्ज़ ही क्या है। मुझे अब छूटने की कोई उम्मीद न थी। आख़िरा [illegible] टूट गया। मैं सरासीना (भयभीत) होकर घर में टहलने लगा। प्रानपद पर गुस्सा आता था। कमबख़्त इस हालत में हम लोगों के लिये यहाँ तक आने की तकलीफ़ नहीं उठा सकता। इन्स्पेक्टर ने पूछा, "उस बदमाश ने क्या कहा ?"

इन्स्पेक्टर बोला, "मेरे आदमी की जुबानी सिर्फ़ इतना ही मालूम हुआ कि वह कहता है कि जब देवेन्द्र बाबू को मेरा नाम तक याद नहीं है और वह मेरे साथ कोई भलाई नहीं कर सकते तो मैं भी क्यूँ उनकी बेगार करने जाऊँ ?"

मैं बैठ गया। दुनिया तारीक (अँधेरी) नज़र आने लगी। बदन में राशा-सा (कम्पन) हो रहा था। कलेजा सन-सन करता था। मेरी यह हालत देखकर इन्स्पेक्टर को भी कुछ तरस आ गया। बोला, "शायद उसके नाम एक ख़त लिखने से काम निकल जाये। आप लिखना चाहें तो मैं थोड़ी देर ठहर सकता हूँ।"

मैं मेज़ पर से काग़ज़-क़लम उठाकर चिट्ठी लिखने बैठा। इन्स्पेक्टर ने रोककर कहा, "ऐसे नहीं। आप उसे कुछ सिखा दें तो मैं क्या करूँगा ? मैं बोलता हूँ, आप लिखिए। यह

बेहतर होगा।"

मैंने लाचार होकर कहा, "अच्छा, आप ही बोलिए। क्या लिखूँ ?"

उसने कहा, "हाँ, लिखिए। जनाब मुकर्रम बन्दा तसलीम।"

"जी हाँ, लिख चुका। आगे बोलिए, आगे।"

वह बोलने लगा, "मैंने इतनी देर में अच्छी तरह समझ लिया कि आपमें एक्ट करने की बेनज़ीर (अद्भुत) क़ाबलियत मौजूद है। यह जानकर आज से अपने थिएटर में एक सौ रुपये माहवार तनख़्वाह पर आपको मुलाज़िम रखता हूँ। मैं जब तक थिएटर में रहूँगा, आपको मुलाज़मत से बरतरफ़ (अलग) न करूँगा।"

मैं ख़ैरियत से ख़ामोश उसकी तरफ़ देखने लगा। ज़रा देर बाद जब नातक़ा (बोलने की शक्ति) काबू में हुआ तो मैंने उससे पूछा, "जनाब, आप कौन हैं ?"

उसने मुस्कुराकर कहा, "क्यूँ ! आपका गुलाम प्रानपदपान। वह जिसे अभी आपने सौ रुपया माहवार पर नौकर रखा है। अब इस पर दस्तख़त कर दीजिए।"

अब प्रानपद बाबू की मश्शाक़ी (कुशलता) पर ज़रा भी शुबहा न रहा। मैंने खुशी से उस पर दस्तख़त कर दिये और बोला, "बेशक आप अपने फ़न के उस्ताद हैं।"

प्रानपद मुस्कुराकर बोला, "अच्छा, तो आदाब-अर्ज़ करता हूँ। गुलाम पर नज़र-ए-इनाय (कृपा-दृष्टि) रखिएगा।"

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। उर्दू पत्रिका 'जमाना', सितम्बर, 1916 में प्रकाशित। हिन्दी रूप इसी नाम से 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित।]

जुगनू की चमक

पंजाब के सिंह राजा रणजीतसिंह संसार से चल चुके थे और राज्य के वे प्रतिष्ठित पुरुष जिनके द्वारा उनका उत्तम प्रबंध चल रहा था, परस्पर के द्वेष और अनबन के कारण मर मिटे थे। राजा रणजीतसिंह का बनाया हुआ सुंदर किंतु खोखला भवन अब नष्ट हो चुका था। कुँवर दिलीपसिंह अब इंगलैंड में थे और रानी चंद्रकुँवरि चुनार के दुर्ग में। रानी चंद्रकुँवरि ने विनष्ट होते हुए राज्य को बहुत सँभालना चाहा; किंतु शासन-प्रणाली न जानती थी और कूटनीति ईर्ष्या की आग भड़काने के सिवा और क्या करती ?

रात के बारह बज चुके थे। रानी चंद्रकुँवरि अपने निवास-भवन के ऊपर छत पर खड़ी गंगा की ओर देख रही थी और सोचती थी—लहरें क्यों इस प्रकार स्वतंत्र हैं ? उन्होंने कितने गाँव और नगर डुबाये हैं, कितने जीव-जंतु तथा द्रव्य निगल गयी हैं, किंतु फिर भी वे स्वतंत्र हैं। कोई उन्हें बंद नहीं करता। इसीलिए न कि वे बंद नहीं रह सकतीं ? वे गरजेंगी, बल खायेंगी—और बाँध के ऊपर चढ़कर उसे नष्ट कर देंगी, अपने जोर से उसे बहा ले जायेंगी।

यह सोचते-विचारते रानी गादी पर लेट गयी। उसकी आँखों के सामने पूर्वावस्था की स्मृतियाँ मनोहर स्वप्न की भाँति आने लगीं। कभी उसकी भौंह की मरोड़ तलवार से भी

अधिक तीव्र थी और उसकी मुस्कराहट वसंत की सुगंधित समीर से भी अधिक प्राण-पोषक; किंतु हाय, अब इनकी शक्ति हीनावस्था को पहुँच गयी। रोये तो अपने को सुनाने के लिए, हँसे तो अपने को बहलाने के लिए। यदि बिगड़े तो किसी का क्या बिगाड़ सकती है और प्रसन्न हो तो किसी का क्या बना सकती है ? रानी और बाँदी में कितना अंतर है ? रानी की आँखों से आँसू की बूँदें झरने लगीं, जो कभी विष से अधिक प्राण-नाशक और अमृत से अधिक अनमोल थीं, वह इसी भाँति अकेली, निराश, कितनी बार रोयी, जब कि आकाश के तारों के सिवा और कोई देखने वाला न था।

2

इसी प्रकार रोते-रोते रानी की आँखें लग गयीं। उसका प्यारा, कलेजे का टुकड़ा, कुँवर दिलीपसिंह, जिसमें उसके प्राण बसते थे, उदास मुख आ कर खड़ा हो गया। जैसे गाय दिन भर जंगलों में रहने के पश्चात् संध्या को घर आती है और अपने बछड़े को देखते ही प्रेम और उमंग से मतवाली होकर स्तनों में दूध भरे, पूँछ उठाये, दौड़ती है, उसी भाँति चंद्रकुँवरि अपने दोनों हाथ फैलाये अपने प्यारे कुँवर को छाती से लपटाने के लिए दौड़ी। परंतु आँखें खुल गयीं और जीवन की आशाओं की भाँति वह स्वप्न विनष्ट हो गया। रानी ने गंगा की ओर देखा और कहा—मुझे भी अपने साथ लेती चलो। इसके बाद रानी तुरंत छत से उतरी। कमरे में एक लालटेन जल रही थी। उसके उजेले में उसने एक मैली साड़ी पहनी, गहने उतार दिये, रत्नों के एक छोटे-से बक्स को और एक तीव्र कटार को कमर में रखा। जिस समय वह बाहर निकली, नैराश्यपूर्ण साहस की मूर्ति थी।

संतरी ने पुकारा—कौन ? रानी ने उत्तर दिया—मैं हूँ झंगी।

'कहाँ जाती है ?'

'गंगाजल लाऊँगी। सुराही टूट गयी है, रानी जी पानी माँग रही हैं।'

संतरी कुछ समीप आ कर बोला—चल, मैं भी तेरे साथ चलता हूँ, जरा रुक जा।

झंगी बोली—मेरे साथ मत आओ। रानी कोठे पर हैं। देख लेंगी।

संतरी को धोखा दे कर चंद्रकुँवरि गुप्त द्वार से होती हुई अँधेरे में काँटों से उलझती, चट्टानों से टकराती, गंगा के किनारे पर जा पहुँची।

रात आधी से अधिक जा चुकी थी। गंगा जी में संतोषदायिनी शांति विराज रही थी। तरंगें तारों को गोद में लिये सो रही थीं। चारों ओर सन्नाटा था।

रानी नदी के किनारे-किनारे चली जाती थी और मुड़-मुड़ कर पीछे देखती थी। एकाएक एक डोंगी खूँटे से बँधी हुई देख पड़ी। रानी ने उसे ध्यान से देखा तो मल्लाह सोया हुआ था। उसे जगाना काल को जगाना था। वह तुरंत रस्सी खोल कर नाव पर सवार हो गयी। नाव धीरे-धीरे धार के सहारे चलने लगी, शोक और अंधकारमय स्वप्न की भाँति जो ध्यान की तरंगों के साथ बहा चला जाता हो। नाव के हिलने से मल्लाह चौंक कर उठ बैठा। आँखें मलते-मलते उसने सामने देखा तो पटरे पर एक स्त्री हाथ में डाँड लिये बैठी है। घबरा कर पूछा—तैं कौन है रे ? नाव कहाँ लिये जाती है ? रानी हँस पड़ी। भय के अन्त को साहस कहते हैं। बोली—सच बताऊँ या झूठ ?

मल्लाह कुछ भयभीत-सा हो कर बोला—सच बताया जाय।

रानी बोली—अच्छा तो सुनो। मैं लाहौर की रानी चन्द्रकुँवरि हूँ। इसी किले में कैदी थी। आज भागी जाती हूँ। मुझे जल्दी बनारस पहुँचा दे। तुझे निहाल कर दूँगी और शरारत करेगा तो देख, कटार से सिर काट दूँगी। सबेरा होने से पहले मुझे बनारस पहुँचना चाहिए।

यह धमकी काम कर गयी। मल्लाह ने विनीत भाव से अपना कम्बल बिछा दिया और तेजी से डाँड़ चलाने लगा। किनारे के वृक्ष और ऊपर जगमगाते हुए तारे साथ-साथ दौड़ने लगे।

3

प्रातःकाल चुनार के दुर्ग में प्रत्येक मनुष्य अचम्भित और व्याकुल था। संतरी, चौकीदार और लौंडियाँ सब सिर नीचे किये दुर्ग के स्वामी के सामने उपस्थित थे। अन्वेषण हो रहा था; परन्तु कुछ पता न चलता था।

उधर रानी बनारस पहुँची। परन्तु वहाँ पहले से ही पुलिस और सेना का जाल बिछा हुआ था। नगर के नाके बन्द थे। रानी का पता लगाने वाले के लिए एक बहुमूल्य पारितोषिक की सूचना दी गयी थी।

बन्दीगृह से निकल कर रानी को ज्ञात हो गया कि वह और दृढ़ कारागार में है। दुर्ग में प्रत्येक मनुष्य उसका आज्ञाकारी था। दुर्ग का स्वामी भी उसे सम्मान की दृष्टि से देखता था। किंतु आज स्वतंत्र हो कर भी उसके ओंठ बन्द थे। उसे सभी स्थानों में शत्रु देख पड़ते थे। पंखरहित पक्षी को पिंजरे के कोने में ही सुख है।

पुलिस के अफसर प्रत्येक आने-जानेवालों को ध्यान से देखते थे; किंतु उस भिखारिनी की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता था, जो एक फटी हुई साड़ी पहने, यात्रियों के पीछे-पीछे, धीरे-धीरे सिर झुकाये गंगा की ओर चली आ रही है। न वह चौंकती है, न हिचकती है, न घबराती है। इस भिखारिनी की नसों में रानी का रक्त है।

यहाँ से भिखारिनी ने अयोध्या की राह ली। वह दिन भर विकट मार्गों में चलती और रात को किसी सुनसान स्थान पर लेट रहती थी। मुख पीला पड़ गया था। पैरों में छाले थे। फूल-सा बदन कुम्हला गया था।

वह प्रायः गाँवों में लाहौर की रानी के चरचे सुनती। कभी-कभी पुलिस के आदमी भी उसे रानी की टोह में दत्तचित्त देख पड़ते। उन्हें देखते ही भिखारिनी के हृदय में सोयी हुई रानी जाग उठती। वह आँखें उठा कर उन्हें घृणा-दृष्टि से देखती और शोक तथा क्रोध से उसकी आँखें जलने लगतीं। एक दिन अयोध्या के समीप पहुँच कर रानी एक वृक्ष के नीचे बैठी हुई थी। उसने कमर से कटार निकाल कर सामने रख दी थी। वह सोच रही थी कि कहाँ जाऊँ ? मेरी यात्रा का अंत कहाँ है ? क्या इस संसार में अब मेरे लिए कहीं ठिकाना नहीं है ? वहाँ से थोड़ी दूर पर आमों का एक बहुत बड़ा बाग था। उसमें बड़े-बड़े डेरे और तम्बू गड़े हुए थे। कई एक संतरी चमकीली वर्दियाँ पहने टहल रहे थे, कई घोड़े बँधे हुए थे। रानी ने इस राजसी ठाट-बाट को शोक की दृष्टि से देखा। एक बार वह भी काश्मीर

गयी थी। उसका पड़ाव इससे कहीं बढ़ गया था।

बैठे-बैठे संध्या हो गयी। रानी ने वहीं रात काटने का निश्चय किया ! इतने में एक बूढ़ा मनुष्य टहलता हुआ आया और उसके समीप खड़ा हो गया। ऐंठी हुई दाढ़ी थी, शरीर में सटी हुई चपकन थी, कमर में तलवार लटक रही थी। इस मनुष्य को देखते ही रानी ने तुरन्त कटार उठा कर कमर में खोंस ली। सिपाही ने उसे तीव्र दृष्टि से देख कर पूछा—बेटी कहाँ से आती हो ?

रानी ने कहा—बहुत दूर से।

'कहाँ जाओगी ?'

'यह नहीं कह सकती, बहुत दूर।'

सिपाही ने रानी की ओर फिर ध्यान से देखा और कहा—जरा अपनी कटार दिखाओ। रानी कटार सँभाल कर खड़ी हो गयी और तीव्र स्वर से बोली—मित्र हो या शत्रु ? ठाकुर ने कहा—मित्र। सिपाही के बातचीत करने के ढंग में और चेहरे में कुछ ऐसी विलक्षणता थी जिससे रानी को विवश हो कर विश्वास करना पड़ा।

वह बोली—विश्वासघात न करना। यह देखो।

ठाकुर ने कटार हाथ में ली। उसको उलट-पुलट कर देखा और बड़े नम्र भाव से उसे आँखों से लगाया। तब रानी के आगे विनीत भाव से सिर झुका कर वह बोला—महारानी चन्द्रकुँवरि ?

रानी ने करुण स्वर से कहा—नहीं, अनाथ भिखारिनी। तुम कौन हो ?

सिपाही ने उत्तर दिया—आपका एक सेवक !

रानी ने उसकी ओर निराश दृष्टि से देखा और कहा—दुर्भाग्य के सिवा इस संसार में मेरा कोई नहीं।

सिपाही ने कहा—महारानी जी, ऐसा न कहिए। पंजाब के सिंह की महारानी के वचन पर अब भी सैकड़ों सिर झुक सकते हैं। देश में ऐसे लोग विद्यमान हैं, जिन्होंने आपका नमक खाया है और उसे भूले नहीं हैं।

रानी—अब इसकी इच्छा नहीं। केवल एक शांत-स्थान चाहती हूँ, जहाँ पर एक कुटी के सिवा कुछ न हो।

सिपाही—ऐसा स्थान पहाड़ों में ही मिल सकता है। हिमालय की गोद में चलिए, वहीं आप उपद्रव से बच सकती हैं।

रानी—(आश्चर्य से) शत्रुओं में जाऊँ ? नेपाल कब हमारा मित्र रहा है ?

सिपाही—राणा जंगबहादुर दृढ़प्रतिज्ञ राजपूत हैं।

रानी—किंतु वही जंगबहादुर तो है जो अभी-अभी हमारे विरुद्ध लार्ड डलहौजी को सहायता देने पर उद्यत था ?

सिपाही (कुछ लज्जित-सा हो कर)—तब आप महारानी चंद्रकुँवरि थीं, आज आप भिखारिनी हैं। ऐश्वर्य के द्वेषी और शत्रु चारों ओर होते हैं। लोग जलती हुई आग को पानी से बुझाते हैं, पर राख माथे पर चढ़ायी जाती है। आप जरा भी सोच-विचार न करें, नेपाल में अभी धर्म का लोप नहीं हुआ है। आप भय-त्याग करें और चलें। देखिए, वह आपको

किस भाँति सिर और आँखों पर बिठाता है।

रानी ने रात इसी वृक्ष की छाया में काटी। सिपाही भी वहीं सोया। प्रातःकाल वहाँ दो तीव्रगामी घोड़े देख पड़े। एक पर सिपाही सवार था और दूसरे पर एक अत्यंत रूपवान युवक। यह रानी चंद्रकुँवरि थी, जो अपने रक्षास्थान की खोज में नेपाल जाती थी। कुछ देर पीछे रानी ने पूछा—यह पड़ाव किसका है ? सिपाही ने कहा—राणा जंगबहादुर का। वे तीर्थयात्रा करने आये हैं, किन्तु हमसे पहले पहुँच जायेंगे।

रानी—तुमने उनसे मुझे यहीं क्यों न मिला दिया। उनका हार्दिक भाव प्रकट हो जाता।

सिपाही—यहाँ उनसे मिलना असम्भव था। आप जासूसों की दृष्टि से न बच सकतीं।

उस समय यात्रा करना प्राण को अर्पण कर देना था। दोनों यात्रियों को अनेकों बार डाकुओं का सामना करना पड़ा। उस समय रानी की वीरता, उसकी युद्ध-कौशल तथा फुर्ती देख कर बूढ़ा सिपाही दाँतो तले अँगुली दबाता था। कभी उनकी तरह तलवार काम कर जाती और कभी घोड़े की तेज चाल।

यात्रा बड़ी लम्बी थी। जेठ का महीना मार्ग में ही समाप्त हो गया। वर्षा ऋतु आयी। आकाश में मेघ-माला छाने लगी। सूखी नदियाँ उतरा चलीं। पहाड़ी नाले गरजने लगे। न नदियों में नाव, न नालों पर घाट; किंतु घोड़े सधे हुए थे। स्वयं पानी में उतर जाते और डूबते-उतराते, बहते, भँवर खाते पार पहुँचे जाते। एक बार बिच्छू ने कछुए की पीठ पर नदी की यात्रा की थी। यह यात्रा उससे कम भयानक न थी।

कहीं ऊँचे-ऊँचे साखू और महुए के जंगल थे और कहीं हरे-भरे जामुन के वन। उनकी गोद में हाथियों और हिरनों के झुंड किलोलें कर रहे थे। धान की क्यारियाँ पानी से भरी हुई थीं। किसानों की स्त्रियाँ धान रोपती थीं और सुहावने गीत गाती थीं। कहीं उन मनोहारी ध्वनियों के बीच में, खेत की मेड़ों पर छाते की छाया में बैठे हुए जमींदारों के कठोर शब्द सुनायी देते थे।

इसी प्रकार यात्रा के कष्ट सहते, अनेकानेक विचित्र दृश्य देखते दोनों यात्री तराइ पार करके नेपाल की भूमि में प्रविष्ट हुए।

4

प्रातःकाल का सुहावना समय था। नेपाल के महाराज सुरेंद्रविक्रमसिंह का दरबार सजा हुआ था। राज्य के प्रतिष्ठित मंत्री अपने-अपने स्थान पर बैठे हुए थे। नेपाल ने एक बड़ी लड़ाई के पश्चात्, तिब्बत पर विजय पायी थी। इस समय संधि की शर्तों पर विवाद छिड़ा था। कोई युद्ध-व्यय का इच्छुक था, कोई राज्य-विस्तार का। कोई-कोई महाशय वार्षिक कर पर जोर दे रहे थे। केवल राणा जंगबहादुर के आने की देर थी। वे कई महीनों के देशाटन के पश्चात् आज ही रात को लौटे थे और यह प्रसंग, जो उन्हीं के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था, अब मंत्रि-सभा में उपस्थित किया गया था। तिब्बत के यात्री, आशा और भय की दशा में, प्रधान मंत्री के मुख से अंतिम निर्णय सुनने को उत्सुक हो रहे थे। नियत समय

पर चोबदार ने राणा के आगमन की सूचना दी। दरबार के लोग उन्हें सम्मान देने के लिए खड़े हो गये। महाराज को प्रणाम करने के पश्चात् वे अपने सुसज्जित आसन पर बैठ गये। महाराज ने कहा—राणा जी, आप संधि के लिए कौन प्रस्ताव करना चाहते थे।

राणा ने नम्र भाव से कहा—मेरी अल्प बुद्धि में तो इस समय कठोरता का व्यवहार करना अनुचित है। शोकाकुल शत्रु के साथ दयालुता का आचरण करना सर्वदा हमारा उद्देश्य रहा है। क्या इस अवसर पर स्वार्थ के मोह में हम अपने बहुमूल्य उद्देश्य को भूल जायेंगे ? हम ऐसी संधि चाहते हैं जो हमारे हृदय को एक कर दे। यदि तिब्बत का दरबार हमें व्यापारिक सुविधायें प्रदान करने को कटिबद्ध हो, तो हम संधि करने के लिए सर्वथा उद्यत हैं।

मंत्रिमंडल में विवाद आरम्भ हुआ। सबकी सम्मति इस दयालुता के अनुसार न थी; किंतु महाराज ने राणा का समर्थन किया। यद्यपि अधिकांश सदस्यों को शत्रु के साथ ऐसी नर्मी पसंद न थी, तथापि महाराज के विपक्ष में बोलने का किसी को साहस न हुआ।

यात्रियों के चले जाने के पश्चात् राणा जंगबहादुर ने खड़े हो कर कहा—सभा में उपस्थित सज्जनों, आज नेपाल के इतिहास में एक नयी घटना होने वाली है, जिसे मैं आपकी जातीय नीतिमत्ता की परीक्षा समझता हूँ, इसमें सफल होना आपके ही कर्त्तव्य पर निर्भर है। आज राज-सभा में आते समय मुझे यह आवेदनपत्र मिला है, जिसे मैं आप सज्जनों की सेवा में उपस्थित करता हूँ। निवेदक ने तुलसीदास की यह चौपाई लिख दी है—

आपत-काल परखिये चारी।
धीरज धर्म मित्र अरु नारी।।

महाराज ने पूछा—यह पत्र किसने भेजा है ?

'एक भिखारिनी ने।'

'भिखारिनी कौन है ?'

'महारानी चंद्रकुँवरि।'

कड़बड़ खत्री ने आश्चर्य से पूछा—जो हमारी मित्र अँग्रेजी सरकार के विरुद्ध हो कर भाग आयी हैं ?

राणा जंगबहादुर ने लज्जित हो कर कहा—जी हाँ। यद्यपि हम इसी विचार को दूसरे शब्दों में प्रकट कर सकते हैं।

कड़बड़ खत्री—अँग्रेजों से हमारी मित्रता है और मित्र के शत्रु की सहायता करना मित्रता की नीति के विरुद्ध है।

जनरल शमशेर बहादुर—ऐसी दशा में इस बात का भय है कि अँग्रेजी सरकार से हमारे सम्बन्ध टूट न जायँ।

राजकुमार रणवीरसिंह—हम यह मानते हैं कि अतिथि-सत्कार हमारा धर्म है; किंतु उसी समय तक, जब तक कि हमारे मित्रों को हमारी ओर से शंका करने का अवसर न मिले।

इस प्रसंग पर यहाँ तक मतभेद तथा वाद-विवाद हुआ कि एक शोर-सा मच गया

और कई प्रधान यह कहते हुए सुनायी दिये कि महारानी का इस समय आना देश के लिए कदापि मंगलकारी नहीं हो सकता।

तब राणा जंगबहादुर उठे। उनका मुख लाल हो गया था। उनका सद्विचार क्रोध पर अधिकार जमाने के लिए व्यर्थ प्रयत्न कर रहा था। वे बोले—भाइयो, यदि इस समय मेरी बातें आप लोगों को अत्यंत कड़ी जान पड़ें तो मुझे क्षमा कीजिएगा, क्योंकि अब मुझमें अधिक श्रवण करने की शक्ति नहीं है। अपनी जातीय साहसहीनता का यह लज्जाजनक दृश्य अब मुझसे नहीं देखा जाता। यदि नेपाल के दरबार में इतना भी साहस नहीं कि वह अतिथि-सत्कार और सहायता की नीति को निभा सके तो मैं इस घटना के सम्बन्ध में सब प्रकार का भार अपने ऊपर लेता हूँ। दरबार अपने को इस विषय में निर्दोष समझे और इसकी सर्वसाधारण में घोषणा कर दे।

कड़बड़ खत्री गर्म हो कर बोले—केवल यह घोषणा देश को भय से रहित नहीं कर सकती।

राणा जंगबहादुर ने क्रोध से ओंठ चबा लिया, किंतु सँभल कर कहा—देश का शासन-भार अपने ऊपर लेने वालों की ऐसी अवस्थाएँ अनिवार्य हैं। हम उन नियमों से, जिन्हें पालन करना हमारा कर्त्तव्य है, मुँह नहीं मोड़ सकते। अपनी शरण में आये हुओं का हाथ पकड़ना—उनकी रक्षा करना राजपूतों का धर्म है। हमारे पूर्व-पुरुष सदा इस नियम पर—धर्म पर प्राण देने को उद्यत रहते थे। अपने माने हुए धर्म को तोड़ना एक स्वतंत्र जाति के लिए लज्जास्पद है। अँग्रेज हमारे मित्र हैं और अत्यन्त हर्ष का विषय है कि बुद्धिशाली मित्र हैं। महारानी चंद्रकुँवरि को अपनी दृष्टि में रखने से उनका उद्देश्य केवल यह था कि उपद्रवी लोगों के गिरोह का कोई केन्द्र शेष न रहे। यदि उनका यह उद्देश्य भंग न हो, तो हमारी ओर से शंका न होने का न उन्हें कोई अवसर है और न हमें उनसे लज्जित होने की कोई आवश्यकता।

कड़बड़ खत्री—महारानी चंद्रकुँवरि यहाँ किस प्रयोजन से आयी हैं ?

राणा जंगबहादुर—केवल एक शांति-प्रिय सुख-स्थान की खोज में, जहाँ उन्हें अपनी दुरवस्था की चिन्ता से मुक्त होने का अवसर मिले। वह ऐश्वर्यशाली रानी जो रंगमहलों में सुख-विलास करती थी, जिसे फूलों की सेज पर भी चैन न मिलता था, आज सैकड़ों कोस से अनेक प्रकार के कष्ट सहन करती, नदी-नाले, पहाड़-जंगल छानती यहाँ केवल एक रक्षित स्थान की खोज में आयी हैं। उमड़ी हुई नदियाँ और उबलते हुए नाले, बरसात के दिन। इन दुखों को आप लोग जानते हैं और यह सब उसी एक रक्षित स्थान के लिए, उसी एक भूमि के टुकड़े की आशा में। किन्तु हम ऐसे स्थान-हीन हैं कि उनकी यह अभिलाषा भी पूरी नहीं कर सकते। उचित तो यह था कि उतनी-सी भूमि के बदले हम अपना हृदय फैला देते। सोचिए, कितने अभिमान की बात है कि एक आपदा में फँसी हुई रानी अपने दुःख के दिनों में जिस देश को याद करती हैं, यह वही पवित्र देश है। महारानी चंद्रकुँवरि को हमारे इस अभयप्रद स्थान पर—हमारी शरणागतों की रक्षा पर पूरा भरोसा था और वही विश्वास उन्हें यहाँ तक लाया है। इसी आशा पर कि पशुपतिनाथ की शरण में मुझे शांति मिलेगी, वह यहाँ तक आयी हैं। आपको अधिकार है, चाहे उनकी आशा पूर्ण करें या धूल

में मिला दें। चाहे रक्षणता के–शरणागतों के साथ सदाचरण के–नियमों को निभा कर इतिहास के पृष्ठों पर अपना नाम छोड़ जायँ, या जातीयता तथा सदाचार-सम्बन्धी नियमों को मिटा कर स्वयं अपने को पतित समझें। मुझे विश्वास नहीं है कि यहाँ एक भी मनुष्य ऐसा निरभिमान है कि जो इस अवसर पर शरणागत-पालन-धर्म को विस्तृत करके अपना सिर ऊँचा कर सके। अब मैं आपके अंतिम निपटारे की प्रतीक्षा करता हूँ। कहिए, आप अपनी जाति और देश का नाम उज्ज्वल करेंगे या सर्वदा के लिए अपने माथे पर अपयश का टीका लगायेंगे ?

राजकुमार ने उमंग से कहा–हम महारानी के चरणों तले आँखें बिछायेंगे।

कप्तान विक्रमसिंह बोले–हम राजपूत हैं और अपने धर्म का निर्वाह करेंगे।

जनरल वनवीरसिंह–हम उनको ऐसी धूम से लायेंगे कि संसार चकित हो जायगा।

राणा जंगबहादुर ने कहा–मैं अपने मित्र कड़बड़ खत्री के मुख से उसका फैसला सुनना चाहता हूँ।

कड़बड़ खत्री एक प्रभावशाली पुरुष थे और मंत्रिमंडल में वे राणा जंगबहादुर के विरुद्ध मंडली के प्रधान थे। वे लज्जा भरे शब्दों में बोले–यद्यपि मैं महारानी के आगमन को भयरहित नहीं समझता, किन्तु इस अवसर पर हमारा धर्म यही है कि हम महारानी को आश्रय दें। धर्म से मुँह मोड़ना किसी जाति के लिए मान का कारण नहीं हो सकता।

कई ध्वनियों ने उमंग-भरे शब्दों में इस प्रसंग का समर्थन किया।

महाराजा सुरेंद्रविक्रमसिंह–इस निपटारे पर बधाइ देता हूँ। तुमने जाति का नाम रख लिया। पशुपति इस उत्तम कार्य में तुम्हारी सहायता करें।

सभा विसर्जित हुई। दुर्ग से तोपें छूटने लगीं। नगर भर में खबर गूँज उठी कि पंजाब की रानी चन्द्रकुँवरि का शुभागमन हुआ है। जनरल रणवीरसिंह और जनरल रणधीरसिंह बहादुर पचास हजार सेना के साथ महारानी की अगवानी के लिए चले

अतिथि-भवन की सजावट होने लगी। बाजार अनेक भाँति की उत्तम सामग्रियों से सज गये।

ऐश्वर्य की प्रतिष्ठा व सम्मान सब कहीं होता है, किंतु किसी ने भिखारिनी का ऐसा सम्मान देखा है ? सेनाएँ बैंड बजाती और पताका फहराती हुई एक उमड़ी नदी की भाँति जाती थीं। सारे नगर में आनन्द ही आनन्द था। दोनों ओर सुंदर वस्त्राभूषणों से सजे दर्शकों का समूह खड़ा था। सेना के कमांडर आगे-आगे घोड़ों पर सवार थे। सबके आगे राणा जंगबहादुर जातीय अभिमान के मद में लीन, अपने सुवर्णखचित हौदे में बैठे हुए थे। यह उदारता का एक पवित्र दृश्य था। धर्मशाला के द्वार पर यह जुलूस रुका। राणा हाथी से उतरे। महारानी चंद्रकुँवरि कोठरी से बाहर निकल आयीं। राणा ने झुक कर वन्दना की। रानी उनकी ओर आश्चर्य से देखने लगीं। यह वही उनका मित्र बूढ़ा सिपाही था।

आँखें भर आयीं। मुस्करायीं। खिले हुए फूल पर से ओस की बूँदें टपकीं। रानी बोलीं–मेरे बूढ़े ठाकुर, मेरी नाव पार लगाने वाले, किस भाँति तुम्हारा गुण गाऊँ ?

राणा ने सिर झुका कर कहा–आपके चरणारविंद से हमारे भाग्य उदय हो गये।

5

नेपाल की राजसभा ने पच्चीस हजार रुपये से महारानी के लिए एक उत्तम भवन बनवा दिया और उनके लिए दस हजार रुपया मासिक नियत कर दिया।

वह भवन आज तक वर्तमान है और नेपाल की शरणागतप्रियता तथा प्रणपालन-तत्परता का स्मारक है। पंजाब की रानी को लोग आज तक याद करते हैं।

यह वह सीढ़ी है जिससे जातियाँ, यश के सुनहले शिखर पर पहुँचती हैं।

ये ही घटनाएँ हैं, जिनसे जातीय इतिहास प्रकाश और महत्त्व को प्राप्त होता है।

पोलिटिकल रेजीडेंट ने गवर्नमेंट को रिपोर्ट की। इस बात की शंका थी कि गवर्नमेंट ऑफ इंडिया और नेपाल के बीच कुछ खिंचाव हो जाय; किंतु गवर्नमेंट को राणा जंगबहादुर पर पूर्ण विश्वास था। और जब नेपाल की राजसभा ने विश्वास और संतोष दिलाया कि महारानी चंद्रकुँवरि को किसी शत्रु भाव का अवसर न दिया जायगा, तो भारत सरकार को संतोष हो गया। इस घटना को भारतीय इतिहास की अँधेरी रात में 'जुगुनू की चमक' कहना चाहिए।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'जमाना', अक्टूबर, 1916 मे प्रकाशित। 'प्रेम बत्तीसी' में संकलित। हिन्दी रूप इसी नाम से 'मानसरोवर' भाग-6 में संकलित।]

धोखा

सतीकुण्ड में खिले हुए कमल बसंत के धीमे-धीमे झोंकों से लहरा रहे थे और प्रातःकाल की मंद-मंद सुनहरी किरणें उनसे मिल-मिल कर मुस्कराती थीं। राजकुमारी प्रभा कुण्ड के किनारे हरी-हरी घास पर खड़ी सुन्दर पक्षियों का कलरव सुन रही थी। उसका कनक वर्ण तन इन्हीं फूलों की भाँति दमक रहा था। मानो प्रभात की साक्षात् सौम्य मूर्ति है, जो भगवान् अंशुमाली के किरणकरों द्वारा निर्मित हुई थी।

प्रभा ने मौलसिरी के वृक्ष पर बैठी हुई एक श्यामा की ओर देख कर कहा—मेरा जी चाहता है कि मैं भी एक चिड़िया होती।

उसकी सहेली उमा ने मुस्करा कर पूछा—क्यों ?

प्रभा ने कुण्ड की ओर ताकते हुए उत्तर दिया—वृक्ष की हरी-भरी डालियों पर बैठी हुई चहचहाती, मेरे कलरव से सारा बाग गूँज उठता।

उमा ने छेड़ कर कहा—नौगढ़ की रानी ऐसी कितनी ही पक्षियों का गाना जब चाहे, सुन सकती हैं।

प्रभा ने संकुचित हो कर कहा—मुझे नौगढ़ की रानी बनने की अभिलाषा नहीं है। मेरे लिए किसी नदी का सुनसान किनारा चाहिए। एक वीणा और ऐसे ही सुन्दर पक्षियों के संगीत की मधुर ध्वनि में मेरे लिए सारे संसार का ऐश्वर्य भरा हुआ है।

प्रभा का संगीत पर अपरिमित प्रेम था। वह बहुधा ऐसे ही सुख-स्वप्न देखा करती

थी। उमा उत्तर देना ही चाहती थी कि इतने में बाहर से किसी के गाने की आवाज आयी—

कर गये थोड़े दिन की प्रीति।

प्रभा ने एकाग्र मन हो कर सुना और अधीर हो कर कहा—बहन, इस वाणी में जादू है। मुझसे अब बिना सुने नहीं रहा जाता, इसे भीतर बुला लाओ।

उस पर भी गीत का जादू असर कर रहा था। वह बोली—निःसंदेह ऐसा राग मैंने आज तक नहीं सुना, खिड़की खोल कर बुलाती हूँ।

थोड़ी देर में रागिया भीतर आया—सुन्दर सजीले बदन का नौजवान था। नंगे पैर, नंगे सिर, कंधे पर एक मृगचर्म, शरीर पर एक गेरुआ वस्त्र, हाथों में एक सितार। मुखारविंद से तेज छिड़क रहा था। उसने दबी हुई दृष्टि से दोनों कोमलांगी रमणियों को देखा और सिर झुका कर बैठ गया।

प्रभा ने झिझकती हुई आँखों से देखा और दृष्टि नीचे कर ली। उमा ने कहा—योगी जी, हमारे बड़े भाग्य थे कि आपके दर्शन हुए, हमको भी कोई पद सुना कर कृतार्थ कीजिए।

योगी ने सिर झुका कर उत्तर दिया—हम योगी लोग नारायण का भजन करते हैं। ऐसे-ऐसे दरबारों में हम भला क्या गा सकते हैं, पर आपकी इच्छा है तो सुनिए—

कर गये थोड़े दिन की प्रीति।
कहाँ वह प्रीति, कहाँ यह बिछरन, कहाँ मधुबन की रीति,
कर गये थोड़े दिन की प्रीति।

योगी का रसीला करुण स्वर, सितार का सुमधुर निनाद, उस पर गीत का माधुर्य, प्रभा को बेसुध किये देता था। इसका रसज्ञ स्वभाव और उसका मधुर रसीला गान, अपूर्व संयोग था। जिस भाँति सितार की ध्वनि गगनमंडल में प्रतिध्वनित हो रही थी, उसी भाँति प्रभा के हृदय में लहरों की हिलोरें उठ रही थीं। वे भावनाएँ जो अब तक शांत थीं, जाग पड़ीं। हृदय सुख स्वप्न देखने लगा। सतीकुण्ड के कमल तिलिस्म की परियाँ बन-बन कर मँडराते हुए भौंरों से कर जोड़ सजल नयन हो, कहते थे—

कर गये थोड़े दिन की प्रीति।

सुर्ख और हरी पत्तियों से लदी हुई डालियाँ सिर झुकाये चहकते हुए पक्षियों से रो-रो कर कहती थीं—

कर गये थोड़े दिन की प्रीति।

और राजकुमारी प्रभा का हृदय भी सितार की मस्तानी तान के साथ गूँजता था—

कर गये थोड़े दिन की प्रीति।

2

प्रभा बघौली के राव देवीचंद की एकलौती कन्या थी। राव पुराने विचारों के रईस थे। कृष्ण की उपासना में लवलीन रहते थे, इसलिए इनके दरबार में दूर-दूर के कलावंत और गवैये आया करते और इनाम-एकराम पाते थे। राव साहब को गाने से प्रेम था, वे स्वयं भी इस विद्या में निपुण थे। यद्यपि अब वृद्धावस्था के कारण यह शक्ति निःशेष हो चली थी, पर फिर भी विद्या के गूढ़ तत्त्वों के पूर्ण जानकार थे। प्रभा बाल्यकाल से ही इनकी सोहबतों में

बैठने लगी। कुछ तो पूर्व-जन्म का संस्कार और कुछ रात-दिन गाने की ही चर्चाओं ने उसे भी इस फन में अनुरक्त कर दिया था। इस समय उसके सौंदर्य की खूब चर्चा थी। रावसाहब ने नौगढ़ के नवयुवक और सुशील राजा हरिश्चंद्र से उसकी शादी तजवीज की थी। उभय पक्ष में तैयारियाँ हो रही थीं। राजा हरिश्चंद्र मेयो कालिज अजमेर के विद्यार्थी और नयी रोशनी के भक्त थे। उनकी आकांक्षा थी कि उन्हें एक बार राजकुमारी प्रभा से साक्षात्कार होने और प्रेमालाप करने का अवसर दिया जाये; किंतु रावसाहब इस प्रथा को दूषित समझते थे।

प्रभा राजा हरिश्चंद्र के नवीन विचारों की चर्चा सुन कर इस संबंध से बहुत संतुष्ट न थी। पर जब से उसने इस प्रेममय युवा योगी का गाना सुना था, तब से तो वह उसी के ध्यान में डूबी रहती। उमा उनकी सहेली थी। इन दोनों के बीच कोई परदा न था; परंतु इस भेद को प्रभा ने उससे भी गुप्त रखा। उमा उसके स्वभाव से परिचित थी, ताड़ गयी। परंतु उसने उपदेश करके इस अग्नि को भड़काना उचित न समझा। उसने सोचा कि थोड़े दिनों में यह अग्नि आप से आप शांत हो जायगी। ऐसी लालसाओं का अंत प्रायः इसी तरह हो जाया करता है; किंतु उसका अनुमान गलत सिद्ध हुआ। योगी की यह मोहिनी मूर्ति कभी प्रभा की आँखों से न उतरती, उसका मधुर राग प्रतिक्षण उसके कानों में गूँजा करता। उसी कुण्ड के किनारे वह सिर झुकाये सारे दिन बैठी रहती। कल्पना में वही मधुर हृदयग्राही राग सुनती और वही योगी की मनोहारिणी मूर्ति देखती। कभी-कभी उसे ऐसा भास होता कि बाहर से यह आवाज आ रही है। वह चौंक पड़ती और तृष्णा से प्रेरित हो कर वाटिका की चहारदीवारी तक जाती और वहाँ से निराश हो कर लौट आती। फिर आप ही विचार करती—यह मेरी क्या दशा है ! मुझे यह क्या हो गया है ! मैं हिंदू कन्या हूँ, माता-पिता जिसे सौंप दें, उसकी दासी बन कर रहना धर्म है। मुझे तन-मन से उसकी सेवा करनी चाहिए। किसी अन्य पुरुष का ध्यान तक मन में लाना मेरे लिए पाप है ! आह ! यह कलुषित हृदय ले कर मैं किस मुँह से पति के पास जाऊँगी ! इन कानों से क्योंकर प्रणय की बातें सुन सकूँगी जो मेरे लिए व्यंग्य से भी अधिक कर्ण-कटु होंगी ! इन पापी नेत्रों से वह प्यारी-प्यारी चितवन कैसे देख सकूँगी जो मेरे लिए वज्र से भी हृदय-भेदी होगी ! इस गले में वे मृदुल प्रेमबाहु पड़ेंगे जो लौह-दंड से भी अधिक भारी और कठोर होंगे। प्यारे, तुम मेरे हृदय मंदिर से निकल जाओ। यह स्थान तुम्हारे योग्य नहीं। मेरा वश होता तो तुम्हें हृदय की सेज पर सुलाती; परंतु मैं धर्म की रस्सियों में बँधी हूँ।

इस तरह एक महीना बीत गया। ब्याह के दिन निकट आते जाते थे और प्रभा का कमल-सा मुख कुम्हलाया जाता था। कभी-कभी विरहवेदना एवं विचार-विप्लव से व्याकुल होकर उसका चित्त चाहता कि सती-कुण्ड की गोद में शांति लूँ, किंतु रावसाहब इस शोक में जान ही दे देंगे यह विचार कर वह रुक जाती। सोचती, मैं उनकी जीवन सर्वस्व हूँ, मुझ अभागिनी को उन्होंने किस लाड़-प्यार से पाला है; मैं ही उनके जीवन का आधार और अंतकाल की आशा हूँ। नहीं, यों प्राण दे कर उनकी आशाओं की हत्या न करूँगी। मेरे हृदय पर चाहे जो बीते, उन्हें न कुढ़ाऊँगी! प्रभा का एक योगी गवैये के पीछे उन्मत्त हो जाना कुछ शोभा नहीं देता। योगी का गान तानसेन के गानों से भी अधिक मनोहर क्यों न हो, पर एक राजकुमारी का उसके हाथों बिक जाना हृदय

की दुर्बलता प्रकट करता है; रावसाहब के दरबार में विद्या की, शौर्य की और वीरता से प्राण हवन करने की चर्चा न थी। यहाँ तो रात-दिन राग-रंग की धूम रहती थी। यहाँ इसी शास्त्र के आचार्य प्रतिष्ठा के मसनद पर विराजित थे और उन्हीं पर प्रशंसा के बहुमूल्य रत्न लुटाये जाते थे। प्रभा ने प्रारंभ ही से इसी जलवायु का सेवन किया था और उस पर इनका गाढ़ा रंग चढ़ गया था। ऐसी अवस्था में उसकी गान-लिप्सा ने यदि भीषण रूप धारण कर लिया तो आश्चर्य ही क्या है!

3

शादी बड़ी धूमधाम से हुई। रावसाहब ने प्रभा को गले लगा कर विदा किया। प्रभा बहुत रोयी। उमा को वह किसी तरह छोड़ती न थी।

नौगढ़ एक बड़ी रियासत थी और राजा हरिश्चंद्र के सुप्रबंध से उन्नति पर थी। प्रभा की सेवा के लिए दासियों की एक पूरी फौज थी। उसके रहने के लिए वह आनंद-भवन सजाया गया था, जिसके बनाने में शिल्प विशारदों ने अपूर्व कौशल का परिचय दिया था। शृंगार चतुराओं ने दुलहिन को खूब सँवारा। रसीले राजा साहब अधरामृत के लिए विह्वल हो रहे थे, अंतःपुर में गये। प्रभा ने हाथ जोड़ कर, सिर झुका कर, उनका अभिवादन किया। उनकी आँखों से आँसू की नदी बह रही थी। पति ने प्रेम के मद में मत्त हो कर घूँघट हटा दिया, दीपक था, पर बुझा हुआ। फूल था, पर मुरझाया हुआ।

दूसरे दिन से राजा साहब की यह दशा हुई कि भौंरे की तरह प्रतिक्षण इस फूल पर मँडराया करते। न राज-पाट की चिंता थी, न सैर और शिकार की परवा। प्रभा की वाणी रसीला राग थी, उसकी चितवन सुख का सागर और उसका मुख-चंद्र आमोद का सुहावना कुंज। बस, प्रेम-मद में राजा साहब बिलकुल मतवाले हो गये थे, उन्हें क्या मालूम था कि दूध में मक्खी है।

यह असम्भव था कि राजासाहब के हृदयहारी और सरस व्यवहार का जिसमें सच्चा अनुराग भरा हुआ था, प्रभा पर कोई प्रभाव न पड़ता। प्रेम का प्रकाश अँधेरे हृदय को भी चमका देता है। प्रभा मन में बहुत लज्जित होती। वह अपने को इस निर्मल और विशुद्ध प्रेम के योग्य न पाती थी, इस पवित्र प्रेम के बदले में उसे अपने कृत्रिम, रँगे हुए भाव प्रकट करते हुए मानसिक कष्ट होता था। जब तक कि राजासाहब उसके साथ रहते, वह उनके गले लता की भाँति लिपटी हुई घंटों प्रेम की बातें किया करती। वह उनके साथ सुमन-वाटिका में चुहल करती, उनके लिए फूलों का हार गूँथती और उनके गले में हाथ डाल कर कहती—प्यारे, देखना ये फूल मुरझा न जायें, इन्हें सदा ताजा रखना। वह चाँदनी रात में उनके साथ नाव पर बैठ कर झील की सैर करती, और उन्हें प्रेम का राग सुनाती। यदि उन्हें बाहर से आने में जरा भी देर हो जाती, तो वह मीठा-मीठा उलाहना देती, उन्हें निर्दय तथा निष्ठुर कहती। उनके सामने वह स्वय हँसती, उनकी आँखें हँसतीं और आँखों का काजल हँसता था। किंतु आह ! जब वह अकेली होती, उसका चंचल चित्त उड़ कर उसी कुंड के तट पर जा पहुँचता; कुंड का वह नीला-नीला पानी, उस पर तैरते हुए कमल और मौलसिरी का वृक्ष-पंक्तियों का सुंदर दृश्य आँखों के सामने आ जाता। उमा मुस्कराती और नजाकत से लचकती हुई आ पहुँचती, तब रसीले योगी की मोहनी छवि आँखों में आ

बैठती और सितार के सूलसित सुर गूँजने लगते—

कर गये थोड़े दिन की प्रीति।

तब वह एक दीर्घ निःश्वास ले कर उठ बैठती और बाहर निकल कर पिंजरे में चहकते हुए पक्षियों के कलरव में शांति प्राप्त करती। इस भाँति यह स्वप्न तिरोहित हो जाता।

4

इस तरह कई महीने बीत गये। एक दिन राजा हरिश्चंद्र प्रभा को अपनी चित्रशाला में ले गये। उसके प्रथम भाग में ऐतिहासिक चित्र थे। सामने ही शूरवीर महाराणा प्रतापसिंह का चित्र नजर आया। मुखारविंद से वीरता की ज्योति स्फुटित हो रही थी। तनिक और आगे बढ़ कर दाहिनी ओर स्वामिभक्त जगमल, वीरवर साँगा और दिलेर दुर्गादास विराजमान थे। बायीं ओर उदार भीमसिंह बैठे हुए थे। राणाप्रताप के सम्मुख महाराष्ट्र केसरी, वीर शिवाजी का चित्र था। दूसरे भाग में कर्मयोगी कृष्ण और मर्यादा पुरुषोत्तम राम विराजते थे। चतुर चित्रकारों ने चित्र-निर्माण में अपूर्व कौशल दिखलाया था। प्रभा ने प्रताप के पाद-पद्मों को चूमा और वह कृष्ण के सामने देर तक नेत्रों में प्रेम और श्रद्धा के आँसू-भरे मस्तक झुकाये खड़ी रही। उसके हृदय पर इस समय कलुषित प्रेम का भय खटक रहा था। उसे मालूम होता था कि यह उन महापुरुषों के चित्र नहीं, उनकी पवित्र आत्माएँ हैं। उन्हीं के चरित्र से भारतवर्ष का इतिहास गौरवान्वित है। वे भारत के बहुमूल्य जातीय रत्न, उच्चकोटि के जातीय स्मारक और गगनभेदी जातीय तुमुल ध्वनि हैं। ऐसी उच्च आत्माओं के सामने खड़े होते उसे संकोच होता था। आगे बढ़ी दूसरा भाग सामने आया। यहाँ ज्ञानमय बुद्ध योग-साधना में बैठे हुए देख पड़े। उनकी दाहिनी ओर शास्त्रज्ञ शंकर थे और दार्शनिक दयानंद। एक ओर शांतिपथगामी कबीर और भक्त रामदास यथायोग्य खड़े थे। एक दीवार पर गुरु गोविंद अपने देश और जाति पर बलि चढ़ने वाले दोनों बच्चों के साथ विराजमान थे। दूसरी दीवार पर वेदांत की ज्योति फैलाने वाले स्वामी रामतीर्थ और विवेकानंद विराजमान थे। चित्रकारों की योग्यता एक-एक अवयव से टपकती थी। प्रभा ने इनके चरणों पर मस्तक टेका। वह उनके सामने सिर न उठा सकी। उसे अनुभव होता था कि उनकी दिव्य आँखें उसके दूषित हृदय में चुभी जाती हैं।

इसके बाद तीसरा भाग आया। यह प्रतिभाशाली कवियों की सभा थी। सर्वोच्च स्थान पर आदिकवि वाल्मीकि और महर्षि वेदव्यास सुशोभित थे। दाहिनी ओर शृंगाररस के अद्वितीय कवि कालिदास थे, बायीं तरफ गम्भीर भावों से पूर्ण भवभूति। निकट ही भर्तृहरि अपने संतोषाश्रम में बैठे हुए थे।

दक्षिण की दीवार पर राष्ट्रभाषा हिंदी के कवियों का सम्मेलन था। सहृदय कवि सूर, तेजस्वी तुलसी, सुकवि केशव और रसिक बिहारी यथाक्रम विराजमान थे। सूरदास से प्रभा का अगाध प्रेम था। वह समीप जा कर उनके चरणों पर मस्तक रखना ही चाहती थी कि अकस्मात् उन्हीं चरणों के सम्मुख सर झुकाये उसे एक छोटा-सा चित्र दीख पड़ा। प्रभा उसे देख कर चौंक पड़ी। यह वही चित्र था जो उसके हृदय पट पर खिंचा हुआ था। वह खुल कर उसकी तरफ ताक न सकी। दबी हुई आँखों से देखने लगी। राजा हरिश्चंद्र ने मुस्करा

कर पूछा—इस व्यक्ति को तुमने कहीं देखा है ?

इस प्रश्न से प्रभा का हृदय कॉप उठा। जिस तरह मृग-शावक व्याध के सामने व्याकुल हो कर इधर-उधर देखता है, उसी तरह प्रभा अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से दीवार की ओर ताकने लगी। सोचने लगी—क्या उत्तर दूं ? इसको कहीं देखा है, उन्होंने यह प्रश्न मुझसे क्यों किया ? कहीं ताड़ तो नहीं गये ? हे नारायण, मेरी पत तुम्हारे हाथ है, क्योंकर इनकार करूं ? मुँह पीला हो गया। सिर झुका कर क्षीण स्वर से बोली, 'हॉ, ध्यान आता है कि कहीं देखा है।'

हरिश्चंद्र ने कहा—कहॉ देखा है ?

प्रभा के सिर में चक्कर-सा आने लगा। बोली—शायद एक बार यह गाता हुआ मेरी वाटिका के सामने जा रहा था। उमा ने बुला कर इसका गाना सुना था।

हरिश्चंद्र ने पूछा—कैसा गाना था ?

प्रभा के होश उड़े हुए थे। सोचती थी, राजा के इन सवालों में जरूर कोई बात है। देखूं, लाज रहती है या नहीं। बोली—उसका गाना ऐसा बुरा न था।

हरिश्चंद्र ने मुस्करा कर कहा—क्या गाता था ?

प्रभा ने सोचा, इस प्रश्न का उत्तर दे दूँ तो बाकी क्या रहता है। उसे विश्वास हो गया कि आज कुशल नहीं है। वह छत की ओर निरखती हुई बोली—सूरदास का कोई पद था।

हरिश्चंद्र ने कहा—यह तो नहीं—

कर गये थोड़े दिन की प्रीति।

प्रभा की ऑखों के सामने अँधेरा छा गया। सिर घूमने लगा, वह खड़ी न रह सकी, बैठ गयी और हताश हो कर बोली—हॉ, यह पद था। फिर उसने कलेजा मजबूत करके पूछा—आपको कैसे मालूम हुआ ?

हरिश्चंद्र बोले—वह योगी मेरे यहॉ अक्सर आया-जाया करता है। मुझे भी उसका गाना पसंद है। उसी ने मुझे यह हाल बताया था किंतु वह तो कहता था कि राजकुमारी ने मेरे गानों को बहुत पसंद किया और पुनः आने के लिए आदेश दिया।

प्रभा को अब सच्चा क्रोध दिखाने का अवसर मिल गया। वह बिगड़ कर बोली—यह बिलकुल झूठ है। मैंने उससे कुछ नहीं कहा।

हरिश्चंद्र बोले—यह तो मैं पहले ही समझ गया था कि यह उन महाशय की चालाकी है। डींग मारना गवैयों की आदत है; परंतु इसमें तो तुम्हें इनकार नहीं कि उसका गान बुरा न था ?

प्रभा बोली—ना ! अच्छी चीज को बुरा कौन कहेगा ?

हरिश्चंद्र ने पूछा—फिर सुनना चाहो तो उसे बुलवाऊँ। सिर के बल दौड़ा आयेगा।

क्या उनके दर्शन फिर होंगे ? इस आशा से प्रभा का मुखमंडल विकसित हो गया। परंतु इन कई महीनों की लगातार कोशिश से जिस बात को भुलाने में वह किंचित् सफल हो चुकी थी, उसके फिर नवीन हो जाने का भय हुआ। बोली—इस समय गाना सुनने को मेरा जी नहीं चाहता।

राजा ने कहा—यह मैं न मानूँगा कि तुम और गाना नहीं सुनना चाहती, मैं उसे अभी

बुलाये लाता हूँ।

यह कह कर राजा हरिश्चंद्र तीर की तरह कमरे से बाहर निकल गये। प्रभा उन्हें रोक न सकी। वह बड़ी चिंता में डूबी खड़ी थी। हृदय में खुशी और रंज की लहरें बारी-बारी से उठती थीं। मुश्किल से दस मिनट बीते होंगे कि उसे सितार के मस्ताने सुर के साथ योगी की रसीली तान सुनाई दी—

कर गये थोड़े दिन की प्रीति।

वही हृदयग्राही राग था, वही हृदय-भेदी प्रभाव, वही मनोहरता और वही सब कुछ, जो मन को मोह लेता है। एक-क्षण में योगी की मोहिनी मूर्ति दिखायी दी। वही मस्तानापन, वही मतवाले नेत्र, वही नयनाभिराम देवताओं का-सा स्वरूप। मुखमंडल पर मंद-मंद मुस्कान थी। प्रभा ने उसकी तरफ सहमी हुई आँखों से देखा। एकाएक उसका हृदय उछल पड़ा। उसकी आँखों के आगे से एक पर्दा हट गया। प्रेम-विह्वल हो, आँखों में आँसू-भरे वह अपने पति के चरणारविंदों पर गिर पड़ी और गद्‌गद कंठ से बोली—प्यारे ! प्रियतम !

राजा हरिश्चंद्र को आज सच्ची विजय प्राप्त हुई। उन्होंने प्रभा को उठा कर छाती से लगा लिया। दोनों आज एक प्राण हो गये। राजा हरिश्चंद्र ने कहा—जानती हो, मैंने यह स्वाँग क्यों रचा था ? गाने का मुझे सदा से व्यसन है और सुना है तुम्हें भी इसका शौक है। तुम्हें अपना हृदय भेंट करने से प्रथम एक बार तुम्हारा दर्शन करना आवश्यक प्रतीत हुआ और उसके लिए सबसे सुगम उपाय यही सूझ पड़ा।

प्रभा ने अनुराग से देखकर कहा—योगी बन कर तुमने जो कुछ पा लिया, वह राजा रह कर कदापि न पा सकते। अब तुम मेरे पति हो और प्रियतम भी हो; पर तुमने मुझे बड़ा धोखा दिया और मेरी आत्मा को कलंकित किया। इसका उत्तरदाता कौन होगा?

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'जमाना', नवम्बर, 1916 में प्रकाशित। 'प्रेम बत्तीसी' में सकलित। हिन्दी रूप में इसी नाम से 'मानसरोवर' भाग-6 में संकलित।]

●●●

